

सचित्र

# उत्तराध्ययन सूत्र

ILLUSTRATED

प्रवर्तक अमर मुनि

## UTTARADHYAYANA SUTRA

Pravartak Amar Muni

# उत्तराध्ययन सूत्र

## अध्यात्म काव्य

उत्तराध्ययन सूत्र का विषय अत्यधिक विशाल, एवं जीवनव्यापी है। यह एक अध्यात्म काव्य है, तो नीति, धर्म, आचार एवं इतिहास का भी महान ग्रंथ है। कर्मविज्ञान, मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, और वनस्पतिविज्ञान आदि अनेक विषयों का सुन्दर युक्तिपूर्ण विवेचन इसमें मिलता है। भगवान महावीर की अन्तिम वाणी के रूप में सम्पूर्ण जैन जगत में इसकी विशिष्ट मान्यता एवं श्रद्धा है। उत्तराध्ययन के नियमित स्वाध्याय पाठ की विशेष परम्परा प्रचलित है।

आचार्य श्री भद्रबाहु ने कहा है—“उत्तराध्ययन सूत्र के स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म की महान कर्म निर्जरा करता हुआ जीव परम सम्बोधि की प्राप्ति करता है, तथा क्रमशः कर्म मुक्त होकर सिद्ध गति निर्वाण पद को भी प्राप्त होता है।”

उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययन आत्म-कल्याण के ३६ सोपान हैं।

## UTTARADHYAYANA SUTRA

The scope of Uttaradhyayana Sutra is very wide and life-enveloping. Though a spiritual poetic work, it is also a great scripture encompassing a variety of fields including ethics, religion, conduct, and history. It contains lucid and logical analysis on various subjects like science of karma, psychology, biology and botany. In the whole Jain society it is highly venerated and accepted as the last sermon of Bhagavan Mahavir. There is also a tradition of regular study of Uttaradhyayana Sutra in many Jain sects.

Acharya Bhadrabahu has said—“By studying Uttaradhyayana Sutra a soul (living being) achieves enormous shedding of Jnana-varaniya karma (knowledge obscuring karma), gets enlightened and in due course getting free of all karmas attains the Siddha state or liberation.”

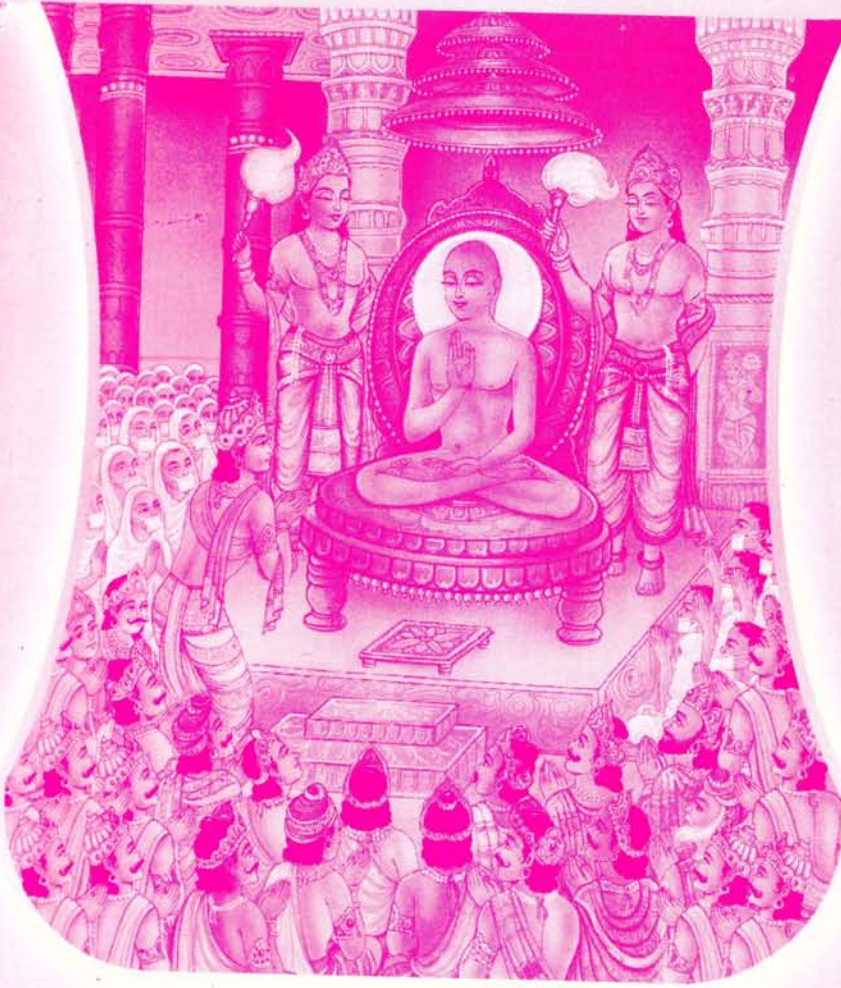
The thirty six chapters of Uttaradhyayan Sutra are 36 phases of spiritual beatitude.

## अद्विज उत्तराध्ययन सूत्र :

- ★ श्री उत्तराध्ययन सूत्र भगवान महावीर द्वारा सम्पूर्ण मानव जाति को दिया गया एक ऐसा पवित्र उपदेश है जिसमें विनय, आत्मसंयम, मनोविज्ञान, तत्त्वज्ञान जैसे गम्भीर विषयों की सरल एवं रोचक शैली में व्याख्या की गई है।
- ★ जो महत्व हिन्दूधर्म में श्रीमद् भगवत गीता, बौद्धधर्म में धम्मपद का है, वही महत्व जैनधर्म में उत्तराध्ययन सूत्र का माना जाता है।

## ILLUSTRATED UTTARADHYAYANA SUTRA

- ★ A pious sermon given by Bhagavan Mahavir to the whole humanity, **Shri Uttaradhyayana Sutra** contains elaborations on profound and serious subjects including modesty, self-discipline, psychology and metaphysics in simple and lucid style.
- ★ The prominent place **Shrimad Bhagavat Gita** and **Dhammapada** occupy in Vedic and Buddhist traditions respectively is believed to be occupied by **Uttaradhyayana Sutra** in Jain tradition.



सचित्र

# उत्तराध्ययन सूत्र

ILLUSTRATED

प्रवर्तक अमर मुनि

## UTTARADHYAYANA SUTRA

Pravartak Amar Muni

॥ॐ॥ श्री वर्धमानाय नमः॥ॐ॥



श्री आत्म गुरवे नमः



श्री आनंद गुरवे नमः



श्री पद्म गुरवे नमः



श्री अमर गुरवे नमः

राष्ट्र सन्त उत्तर भारतीय प्रवर्तक अनंत उपकारी गुरूदेव भण्डारी प.पू. **श्री पद्म चन्द्र जी मं.सा.** की पुण्य स्मृति में साहित्य सम्राट् श्रुताचार्य पूज्य प्रवर्तक वाणी भूषण गुरूदेव प.पू. **श्री अमर मुनि जी म.सा.** द्वारा संपादित एवं पद्म प्रकाशन द्वारा विश्व में प्रथम बार प्रकाशित (सचित्र, मूल, हिन्दी-इंगलिश अनुवाद सहित) जैनागम सादर सप्रेम भेंट ।

भेंटकर्ता : श्रुतसेवा लाभार्थी सौभाग्यशाली परिवार



श्रीमती मीराबाई रमेशलालजी लुणिया  
(समस्त परिवार)

# सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र

(जैनदर्शन एवं आचार का आधारभूत शास्त्र)

मूल शुद्ध पाठ, हिन्दी-अंग्रेजी भावानुवाद, विवेचन एवं रंगीन चित्रों सहित

□ प्रधान सम्पादक □

उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. सा. के सुशिष्य  
श्रुत आचार्य प्रवर्तक श्री अमर मुनि

□ सम्पादक □

श्रीचन्द्र सुराना 'सरस'

□ सह-सम्पादक □

श्री वरुण मुनि "अमर शिष्य"

□ अंग्रेजी अनुवादक □

सुरेन्द्र बोथरा

● प्रकाशक ●

पद्म प्रकाशन, पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-40

उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. सा. की  
पावन पुण्य स्मृति में सादर प्रकाशित

सचित्र आगम माला का प्रथम पुष्प

- सचित्र उत्तराध्ययन सूत्र
- प्रधान सम्पादक :  
श्रुत आचार्य प्रवर्तक श्री अमर मुनि
- सम्पादक :  
श्रीचन्द्र सुराना 'सरस'
- सह-सम्पादक :  
श्री वरुण मुनि "अमर शिष्य"
- अंग्रेजी अनुवादक :  
सुरेन्द्र जोथरा, जयपुर
- चित्रकार :  
सरदार पुरुषोत्तम सिंह
- प्रकाशक :  
पद्म प्रकाशन  
पद्म धाम, नरेला मण्डी, दिल्ली-110 040  
Mob. : 9810164071 (Shivkumar Jain)
- मुद्रण-व्यवस्था :  
संजय सुराना  
श्री दिवाकर प्रकाशन  
A-7, अवागढ़ हाउस, अंजना सिनेमा के सामने, एम. जी. रोड, आगरा-282 002  
फोन : 0562-2851165, मोबाइल : 9319203291
- प्रथम आवृत्ति :  
वि. सं. 2049, ईस्वी सन् 1993
- द्वितीय आवृत्ति :  
वि. सं. 2068, भाद्रपद सुदी, ईस्वी सन् 2011, सितम्बर
- मूल्य : छः सौ रुपया मात्र (600/-)

**ILLUSTRATED**  
**UTTARĀDHYAYANA SŪTRA**

(The basic scripture of Jain philosophy and conduct)  
Original text with Hindi and English translations,  
elaboration and multicoloured illustrations

□ EDITOR-IN-CHIEF □

**Shrut Acharya Pravartak Shri Amar Muni**

(The able disciple of Uttar Bharatiya Pravartak Gurudev  
Bhandari Shri Padmachandra ji M. S.)

□ EDITOR □

**Srichand Surana 'Saras'**

□ ASSOCIATE EDITOR □

**Shri Varun Muni "Amar Shishya"**

□ ENGLISH TRANSLATOR □

**Surendra Bothara**

● PUBLISHERS ●

**PADMA PRAKASHAN, PADMA DHAM, NARELA MANDI, DELHI-40**

Published in pious memory of Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari  
Shri Padmachandra ji M. S.

**The First Number of the Illustrated Agam Series**

- ❑ **ILLUSTRATED UTTARĀDHYAYANA SŪTRA**
- ❑ ***Editor-in-Chief***  
Shrut Acharya Pravartak Shri Amar Muni
- ❑ ***Editor***  
Srichand Surana 'Saras'
- ❑ ***Associate Editor***  
Shri Varun Muni "Amar Shishya"
- ❑ ***English Translator***  
Surendra Bothara, Jaipur
- ❑ ***Illustrations***  
Sardar Purushottam Singh, Sardar Harbinder Singh
- ❑ ***Publishers***  
**Padma Prakashan**  
Padma Dham, Narela Mandi, Delhi-110 040  
Mob. : 9810164071 (Shivkumar Jain)
- ❑ ***Printer***  
Sanjay Surana  
**Shree Diwakar Prakashan**  
A-7, Awagarh House, Opp. Anjna Cinema, M. G. Road, Agra-282 002  
Ph. (0562) 2851165. Mob. : 9319203291
- ❑ ***First Edition*** : 2049, 1993 A.D.
- ❑ ***Second Edition*** : 2068 V., Bhadrapad Sud, 2011 A.D., September
- ❑ ***Price*** : Six Hundred Rupees only (Rs. 600/-)



राष्ट्रसन्त, उत्तर भारतीय  
प्रवर्तक अनन्त उपकारी

पूज्य गुरुदेव भण्डारी

श्री पद्मचन्द्र जी

महाराज की पावन स्मृति में  
सादर सविनय



# समर्पण



प्रवर्तक

अमर मुनि

# आगम प्रकाशन के आधार स्तंभ



भोले बाबा पू. श्री रतन मुनि जी म.सा.



श्री धर्मवीर जी – रक्षा सूद  
मोगा



श्री फकीर चन्द जी – राम देवी जैन  
मानसा



श्री अनिल जी – अदीति सूद  
मोगा



श्री जगमंदरलाल जी – शकुन्तादेवी जैन  
पदमपुर वाले, दिल्ली

# आगम प्रकाशन में परम सहयोगी गुरु भक्त



श्री सत्यपाल जी - रुक्मिणीदेवी अग्रवाल  
कुरुक्षेत्र



श्री सुदर्शन जी - मोहिता अग्रवाल  
कुरुक्षेत्र



श्री पुरुषोत्तम जी - मीरा जैन  
रतिया



श्री पवन जी - सुमन बंसल जैन  
सावन पार्क, पानीपत



श्री सुरेश जी - त्रिशला जैन  
(हलालपुर वाले) दिल्ली

# श्रुत सेवा में समर्पित गुरुभक्त



श्री सुभाष जी - सुलोचना जैन  
हुड्डा कॉलोनी, पानीपत



श्री संजय जी - रजनी जैन  
मुखर्जी पार्क, दिल्ली



श्री लेखराज जी - कुसुम लता जैन  
मंडी गोविंद गढ़



श्री आनन्द जी - उपासना जैन  
हुड्डा कॉलोनी, पानीपत



श्री तारा चंद जी - पार्वती मित्तल  
पदमपुर

## स्वकथ्य

जैन आगम साहित्य चार भागों में विभक्त है—(१) अंग, (२) उपांग, (३) मूल, और (४) छेद। उत्तराध्ययनसूत्र “चार मूलसूत्र” में गिना जाता है।

कल्पसूत्र (१४६वीं वाचना) के अनुसार यह माना जाता है कि भगवान ने अपने निर्वाण से पूर्व अन्तिम समय में पावापुरी की धर्मसभा में इस आगम का प्रवचन किया था। इस सूत्र की अन्तिम गाथा (३६/२६८) में भी यही भाव स्पष्ट हुआ है कि भगवान महावीर उत्तराध्ययन का कथन करते-करते परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। इस दृष्टि से यह सूत्र “जिनभाषित” है और “जिनभाषित” सूत्र, अंगशास्त्र में गिना जाना चाहिये, परन्तु उत्तराध्ययन की गणना अंग बाह्य “मूलसूत्र” में की जाती है। इससे लगता है कि भगवान महावीर की इस पवित्र अन्तिम देशना में बहुश्रुत स्थविरों का भी योगदान सम्मिलित है। कई विद्वान् ऐसा मानते हैं कि उत्तराध्ययनसूत्र के प्रथम १८ अध्ययन प्राचीन हैं और पश्चाद्वर्ती १८ अध्ययन उत्तरकाल की संकल्पना हैं। परन्तु इस मान्यता के पीछे भी कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है। विषय प्रतिपादन, शैली तथा भाषा आदि दृष्टियों से इसकी समीक्षा करने पर अनेक मतभेद भी दृष्टिगोचर होते हैं। बहुत संभव है, इस सूत्र के कुछ अध्ययनों का संकलन पश्चाद्वर्ती स्थविरों तथा आचार्यों ने किया हो, परन्तु इससे उत्तराध्ययनसूत्र के महत्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि इस आगम की प्रतिपादन शैली और प्रतिपाद्य विषय जीवन के सर्वतोमुखी विकास और आध्यात्मिक उन्नयन में अतीव सहायक हैं। उत्तराध्ययनसूत्र—व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में भगवान महावीर के विचारों का एक निचोड़ है, नवनीत है।

भगवान महावीर के एक हजार वर्ष बाद देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने उत्तराध्ययनसूत्र का जो रूप/स्वरूप स्थिर कर दिया था वह आज भी ३६ अध्ययनों के रूप में हमारे पास सुरक्षित है और वह हमारी महत्वपूर्ण धरोहर है।

उत्तराध्ययनसूत्र के महत्व के विषय पर चर्चा करना सूर्य की महिमा का बखान करने जैसा है। जबकि वही सम्पूर्ण लोक का जीवन है। उत्तराध्ययन अध्यात्म-लोक का सूर्य है। यदि इसका प्रकाश जीवन के आँगन में नहीं चमकेगा तो जीवन शून्य हो जायेगा।

उत्तराध्ययनसूत्र का प्रथम अध्ययन विनय, दूसरा परीषह प्रविभक्ति तथा तृतीय-चतुर्थ अध्ययन मनुष्य के व्यावहारिक जीवन को अनुशासित, संयमित, सहिष्णु और प्रतिक्षण जागरूक रहने की प्रेरणा देते हैं। इन अध्ययनों में वास्तव में मनुष्य मात्र को जीने की कला सिखाई गई है।

किन्तु उत्तराध्ययन केवल व्यावहारिक जीवन की शिक्षा देने वाला शास्त्र ही नहीं है, इसमें अध्यात्म जीवन के अनुभूतिपूर्ण उपदेश, वैराग्य और अनासक्ति की धारा प्रवाहित करने वाले सुवचन तथा प्रतिक्षण अप्रमत्त, जागरूक और कर्तव्यशील रहने की शिक्षाएँ भी पद-पद पर अंकित हैं। इस सूत्र में भगवान महावीर के क्रान्तिकारी विचारों के स्वर भी मुखरित हैं तो बुद्धि और प्रज्ञा से धर्म की समीक्षा करने का सन्देश भी गुम्फित है। कुल मिलाकर सम्पूर्ण उत्तराध्ययनसूत्र जीवन और अध्यात्म का सामंजस्यपूर्ण शास्त्र है।

वैदिक परम्परा में जो स्थान 'गीता' का है, बौद्ध परम्परा में जो स्थान 'धम्मपद' का है, जैन परम्परा में वही स्थान उत्तराध्ययनसूत्र को प्राप्त है। उत्तराध्ययन का स्वाध्याय जीवन अभ्युदय का सोपान है।

### प्रस्तुत संस्करण

उत्तराध्ययनसूत्र के अब तक अनेक सुन्दर/सुन्दरतम संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें मेरा प्रयत्न उनसे कोई श्रेष्ठ हो, ऐसा मैं नहीं कहता, क्योंकि पूर्वाचार्यों व मनीषी विद्वानों के समक्ष मैं स्वयं को अल्पज्ञ और अल्पबुद्धि मानता हूँ। किन्तु उत्तराध्ययन के रूपक-दृष्टान्त एवं कुछ विशेष तथ्यों को चित्रमय प्रस्तुत करने का हमारा यह प्रयत्न अवश्य ही नवीन और सर्वसाधारण के लिये उपयोगी होगा यह विश्वास करता हूँ। मैं देखता हूँ कि अधिकतर लेखक अपनी कृति को विद्वद्भोग्य बनाने का तो प्रयत्न करते हैं, परन्तु सर्वसाधारण की चिन्ता कम ही करते हैं। सर्वसाधारण व लोकोपयोगी होने से ग्रंथ का स्तर गिर नहीं जाता या उसकी महत्ता कम नहीं होती, अपितु मेरे विचार में तो जो पुस्तक या ग्रंथ सर्वसाधारण के लिये उपयोगी होता है, वह ज्यादा सफल और महत्वपूर्ण माना जाता है, जबकि विद्वद्भोग्य महाग्रंथ केवल अलमारियों की शोभा बढ़ाते रहते हैं। अस्तु.....।

पूज्य प्रवर्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. सा. के दीक्षा हीरक जयन्ती वर्ष पर हम सब भक्त शिष्यों की यह अभिनव भेंट उनके कर-कमलों में समर्पित करते हुये हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि इस शुभ प्रसंग पर हमने एक नई और सर्वजन उपयोगी भेंट प्रस्तुत की है।

जैन समाज के प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीयुत श्रीचन्द सुराना ने चित्र तैयार कराने से लेकर सभी उत्तरदायित्वों का बड़े स्नेह एवं आत्मीयभावपूर्वक निर्वाह किया है तथा अनेक गुरुभक्त उदारमना सज्जनों ने अर्थ-सहयोग प्रदान कर प्रकाशन-कार्य को सम्पन्न करवाया है। मैं उन सभी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ और विश्वास करता हूँ कि चित्रमय आगम प्रकाशन का हमारा यह महनीय प्रयत्न आगम सम्पादन-प्रकाशन के क्षेत्र में एक नया आयाम स्थापित करेगा तथा आगे व्यापक रूप लेता

जायेगा।

### द्वितीय संस्करण

सचित्र आगम प्रकाशन का यह कार्य अब अपने अन्तिम सोपान की ओर बढ़ रहा है। अब तक कुल २७ आगम प्रकाशित हो चुके हैं। स्वाध्याय प्रेमियों में यह सचित्र प्रकाशन खासा लोकप्रिय हो रहा है। सभी प्रकाशित आगमों के प्रथम संस्करण प्रायः समाप्त हो चुके हैं। परन्तु इनकी माँग निरन्तर बनी हुई है। अतः हमने कई आगमों का पुनः संस्करण कराया है। इसी शृंखला में उत्तराध्ययनसूत्र का द्वितीय संशोधित संस्करण तैयार किया गया है। जिज्ञासु स्वाध्यायी इसका पठन-मनन कर अपने जीवन में अध्यात्म का प्रकाश फैलायें, इसी मंगल कामना के साथ.....।

—प्रवर्तक अमर मुनि

जिनेन्द्र भवन,

लुधियाना

भाद्रपद सुदी द्वादशी

9-9-2011

## FOREWORD

The corpus of Jain canonical literature has four divisions – (1) *Anga*, (2) *Upanga*, (3) *Mool*, and (4) *Chheda*. *Uttaradhyayan Sutra* is one of the four *Mool Sutras*.

According to *Kalpa Sutra* (Reading 146) it is believed that Bhagavan Mahavir gave a discourse in his last religious assembly just before his nirvana in Pavapuri and it was compiled as this canon. The last verse (36/268) also expresses this view that Bhagavan Mahavir attained nirvana while giving this discourse (*Uttaradhyayan*). From this angle this scripture is a direct utterance of the *Jina* and all the exclusive direct utterances of the *Jina* are incorporated in *Anga* literature as a rule; as such it should have been included in the *Anga* literature. But it is listed as a *Mool Sutra* among *Anga-bahya* (other than *Anga*) literature. This indicates that in this presumed last pious discourse of Bhagavan Mahavir also includes contributions of scholarly senior ascetics (*sthavir*). Some scholars believe that the first 18 chapters of *Uttaradhyayan Sutra* are ancient and last 18 chapters are creations of a later period. But even for this assumption there is no solid evidence. Analytical study from various angles including themes, style and language reveals many variant opinions. It is quite possible that some of the chapters of this work could have been compiled by later senior ascetics and *acharyas* but this does not make any dent in the importance of *Uttaradhyayan Sutra*. This is because the themes and the style of exposition of this *Agam* are extremely helpful in the all-round development of life and its spiritual uplift. *Uttaradhyayan Sutra* is the essence of Bhagavan Mahavir's thoughts regarding social and spiritual life of man.

The final reading of *Uttaradhyayan Sutra* decided by Devardhigani Kshamashramana, one thousand years after Bhagavan Mahavir, is still safe with us in the form of 36 chapters and it is a very important inheritance.

To discuss the importance of *Uttaradhyayan* is like describing greatness of the sun because it is the life-source of the whole world. *Uttaradhyayan* is the sun of the spiritual world, without its light in the yard of life, life will become a void.

The first chapter of *Uttaradhyayan* is about modesty and the second is about afflictions. The third and fourth chapters inspire man to remain disciplined, restrained, tolerant and ever alert in his social life. These chapters, in fact, teach the art of life to every human being.



But *Uttaradhyayan* is not merely a scripture that teaches social behaviour, it is pregnant with potent preaching about spiritual life, sermons that evoke feelings of renunciation and teachings that guide to remain alert, cautious as well as duty-bound every moment. On one hand this *Sutra* presents the revolutionary thoughts of Bhagavan Mahavir and on the other it contains, entwined within it, the message of analyzing religion with wisdom and intellect. All said and done the whole *Uttaradhyayan Sutra* is a scripture amalgamating social and spiritual ways of life.

The prominent place *Gita* and *Dhammapada* occupy in Vedic and in Buddhist traditions respectively is occupied by *Uttaradhyayan* in Jain tradition. Study of *Uttaradhyayan* shows the path of progress in life.

### **This Edition**

Many good and attractive editions of *Uttaradhyayan Sutra* have been published till date. I cannot claim that my effort is better than them because I feel ignorant and less equipped in comparison with the past *acharyas* and great scholars. However, I am confident that my effort to produce this *Sutra* with illustrative presentation of the allegoric narrative and some important information is unique and would be useful for general readers. I find that most of the authors direct their writings at scholarly readers and hardly worry about general readers. By being a work popular in masses does not in any way reduce its level or importance. It is my strong belief that a book or scripture that is useful for masses proves to be much more valuable and important; in fact, the works for scholarly consumption mostly end up in book cases as decoration.

During the diamond jubilee year of the initiation of Pujya Pravartak Bhandari Shri Padmachandra ji M. S., we, all devoted disciples, are filled with joy that on this pious occasion we have been able to place in his lotus-hands this gift in the form of a new work for the benefit of masses.

Renowned Jain scholar Sri Srichand Surana has shouldered, with affection and devotion, all responsibility of editing and production, including the difficult task of getting the illustrations made. Many generous devotees have given financial contributions to make this publication possible. I pay my hearty thanks to them and believe that this unique effort of publishing Illustrated *Agams* will establish a new dimension in the field of editing and publishing of Jain canon (*Agam*) and get wide spread in due course.

### **Second Edition**

This project of publication of Illustrated *Agams* is now reaching its conclusion. Till

date 27 *Agams* have been published. Among those keen in studies this illustrated series is very popular. Stocks of the first editions of almost all published *Agams* have exhausted and the demand still continues. For this reason we have gone for second editions of many these *Agams*. This revised second edition is part of this program of re-issues. As there were some shortcomings in the English translation of the first edition, Shri Surendra Bothara, who has translated majority of *Agams* of this series, was entrusted with the responsibility of translating this *Agam* in English once again. He has completed the task in his lucid style. We are sure the English language readers will appreciate the change. With the good wishes that curious devotees may study this pious *Agam* and fill their life with the glow of spiritual light.....

—Pravartak Amar Muni

Jinendra Bhawan,  
Ludhiana  
Bhadrapad Sud 12  
9-9-2011

# प्राथमिक

(प्रथम संस्करण से)

शास्त्र मनुष्य का तृतीय नेत्र है। शास्त्र के स्वाध्याय से जब मनुष्य का अन्तर् विवेक जागृत होता है तो वह मन के कलुषित विचारों, विकारों और दुर्भावों का नाश कर परम आनन्दमय आत्म-स्वरूप का दर्शन कर लेता है। इसलिये परम आनन्द की कामना करने वाले प्रत्येक मनुष्य के लिये शास्त्र का स्वाध्याय कल्पवृक्ष के समान है।

जैन शास्त्रों में उत्तराध्ययनसूत्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। यह भगवान महावीर की अन्तिम वाणी है। इसमें मानव-जीवन के सर्वांगीण विकास और अभ्युदय के लिये विविध दृष्टियों से सुन्दर उपयोगी शिक्षाओं का संग्रह हुआ है। अतः इसे हम जैनधर्म की "गीता" कह सकते हैं। दीपमालिका के दिन, जो भगवान महावीर का निर्वाण दिवस भी है, स्थान-स्थान पर उत्तराध्ययनसूत्र के वाचन और श्रवण की पावन-परम्परा है, उस दिन इस सूत्र का पठन-श्रवण विशेष महत्व रखता है। यों भी उत्तराध्ययनसूत्र प्रत्येक श्रद्धालु और जिज्ञासु के लिये पठनीय तथा मननीय है।

उत्तराध्ययनसूत्र की वर्णन-सामग्री बहुत ही रोचक तथा शिक्षाप्रद होने के साथ ही आत्म-जागृति में भी अतीव सहायक है। यही कारण है कि अब तक उत्तराध्ययनसूत्र के सैकड़ों संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, फिर भी प्रतिदिन इसकी माँग बनी हुई है।

उत्तराध्ययनसूत्र के चित्रयुक्त प्रकाशन की अभिनव कल्पना सचमुच में एक मनोरम और लोकोपकारी साहसिक संकल्प है। यह तो सुनिश्चित है कि गंभीर से गंभीर और जटिल विषय भी चित्र के द्वारा बहुत ही सुगम और सुबोध बन जाते हैं। अरूप विषय-वस्तु को रूपायित कर बुद्धिगम्य बनाने में चित्रों की अपनी उपयोगिता है, इस दृष्टि से जैन सूत्रों के प्रेरक प्रसंगों और गहन तात्विक विषयों को चित्रित कर प्रकाशित करने का यह ऐतिहासिक प्रयत्न आगम-प्रकाशन की दिशा में एक नया प्रयोग सिद्ध होगा। इससे आगमों का कठिन विषय भी पाठकों के लिये रुचिकर और सहज-गम्य बन सकेगा। इस साहसिक सत्संकल्प और सद्प्रयास के लिये विद्वदरत्न प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म. सा. का जैन साहित्य के अभिनव प्रयोग क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रहेगा।

आगम रत्नाकर, जैनधर्म दिवाकर आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी म. सा. के पौत्र शिष्य-राष्ट्रसन्त उत्तर भारतीय प्रवर्तक भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी म. सा. आधुनिक युग में महावीर युग के प्रतिनिधि प्रतीक, सरल परिणामी, निर्मल आत्मा देव-गुरु-भक्त और आगम वाणी के अत्यन्त श्रद्धालु सन्तरत्न हैं। आपश्री की प्रेरणा से आपके प्रतिभाशाली शिष्यरत्न प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म. सा.

ने सूत्रकृतांग, प्रश्नव्याकरण और भगवती जैसे विशाल जैन सूत्रों की हिन्दी टीकाएँ लिखकर स्व. आचार्यदेव श्री आत्माराम जी म. सा. के श्रुत-सेवा के अवशिष्ट कार्य को पूर्णता प्रदान करने का महान् प्रयत्न किया है। आगम सम्पादन की उसी उज्ज्वल परम्परा में अब एक अभिनव शुभ प्रयत्न सम्पन्न हो रहा है—उत्तराध्ययनसूत्र का चित्रमय प्रकाशन।

कुछ वर्ष पूर्व कल्पसूत्र का सचित्र प्रकाशन हुआ था। वह हमारे सामने है। प्राचीन चित्र-शैली के छोटे-छोटे चित्र हैं उसमें। प्राचीनता की दृष्टि से या स्वर्ण-खचित होने की दृष्टि से उनका अपना महत्व है, किन्तु चित्रों की रमणीयता, सहज भावाभिव्यक्ति और रंग-सज्जा की दृष्टि से कोई उल्लेखनीय बात उनमें नहीं लगती। कल्पसूत्र के अतिरिक्त अन्य आगमों का चित्रमय प्रकाशन अब तक देखने में नहीं आया है। एक वर्ष पूर्व हमने जब श्री उत्तराध्ययनसूत्र के चित्रमय प्रकाशन की योजना बनाई थी, तो हमारे सामने किसी प्राचीन सचित्र आगम का आधार नहीं था। इस विषय में अनेक विद्वानों से सम्पर्क किया गया। कुछ ज्ञान-भंडारों का अवलोकन भी किया। इसी प्रसंग में श्री तिलोकरत्न स्थानकवासी जैन परीक्षा बोर्ड अहमदनगर का हस्तलिखित शास्त्र भंडार भी देखने की सुविधा प्राप्त हुई। पूज्य आचार्यसम्राट् श्री आनन्द ऋषि जी म. सा. की कृपा से श्री कुन्दन ऋषि जी म. सा. ने स्वयं बड़ी उदारतापूर्वक ज्ञान भंडार की अनेक सचित्र-प्रतियाँ दिखाईं। उनमें उत्तराध्ययनसूत्र के भी कुछ प्रासंगिक चित्र प्राप्त हुये जिनमें भारंड पक्षी का प्राचीन चित्र महत्वपूर्ण था। इसके पश्चात् कला मर्मज्ञ श्री विजय यशोदेव सूरि जी म. सा. के ज्ञान भंडार जैन साहित्य मन्दिर पालीताणा में भी दो दिन तक मैंने प्राचीन सचित्र आगमों का अनुसंधान किया। स्वयं आचार्य श्री यशोदेव सूरि जी म. सा. ने उत्तराध्ययनसूत्र की स्वर्णाक्षरों में लिखित कुछ प्राचीन प्रतियाँ तथा एक स्वर्ण-चित्रांकित प्रति भी बताई। इस अवलोकन से हमें प्राचीन चित्र-शैली को समझने तथा उसे आधुनिक चित्र-शैली में परिवर्तित करने की कल्पना में काफी सहायता मिली। हम उक्त ज्ञान भंडारों व आचार्यदेवों की कृपा के सदा ऋणी रहेंगे।

उत्तराध्ययनसूत्र के ३६ अध्ययनों के ६१ बहुरंगी चित्र इस आगम के लिये तैयार किये गये हैं। चित्र संख्या की निश्चित सीमा के कारण अन्य अनेक उपयोगी विषयों को छोड़ भी दिया है। चित्रों की कल्पना में आगम की टीका आदि-के वर्णन, अन्य ग्रन्थों के वर्णन तथा प्राचीन परम्परा हमारी सहायक रही है। चूँकि इन चित्रों का मूल आधार कोई प्राचीन चित्र नहीं है, किन्तु सिर्फ टीकागत जानकारी एवं हमारी परम्परा ही है, अतः इनके रूपांकन में मतभेद भी रह सकते हैं और भूल भी रह सकती हैं। अपनी-अपनी दृष्टि से भिन्न प्रस्तुतीकरण भी हो सकता है। अतः इन चित्रों के साथ हमारा कोई आग्रह या स्थापना नहीं है, किन्तु मात्र आगमों के गंभीर विषय को सुबोध तथा रुचिकर बनाने की दिशा में एक शुभ अध्यवसाययुक्त प्रयत्न है। जहाँ-जहाँ मुनि की वेश-भूषा का

प्रश्न है, वहाँ हमने समझ-बूझकर अपनी स्थानकवासी परम्परा को ही मान्यता दी है। क्योंकि आगम और इतिहास की भाँति परम्परा भी एक महत्वपूर्ण आधार होता है। अस्तु..... ।

उत्तराध्ययनसूत्र के हिन्दी अनुवाद के साथ ही अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। आज भारत के बाहर बसे हजारों जैन परिवार तथा हजारों अहिन्दी भाषी, जैनधर्म एवं आगमों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। उनके लिए हिन्दी की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा ही एक सक्षम माध्यम हो सकती है। अतः ग्रंथ की व्यापकता को दृष्टिगत रखकर हमने अंग्रेजी अनुवाद भी देना आवश्यक समझा है। हिन्दी-अंग्रेजी अनुवाद एवं टिप्पण लेखन में जिन-जिन विद्वानों तथा पुस्तक प्रकाशकों का सहयोग प्राप्त हुआ है, हम हृदय से उनके आभारी हैं, कृतज्ञ हैं। आधारभूत ग्रंथों की सूची भी साथ में दी जा रही है।

इस सम्पादन एवं चित्रांकन में मुख्य सम्पादक प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी म. सा. का सम्पादन-श्रम, मार्गदर्शन तथा सतत प्रेरणा इस कार्य का मूल आधार है। यह उन्हीं की विशुद्ध बुद्धि एवं सतत श्रम का मधुर फल है। अतः उनके प्रति आभार ज्ञापन जैसी औपचारिकता अपेक्षित नहीं है।

चित्रकार सरदार पुरुषोत्तम सिंह तथा अंग्रेजी अनुवाद के लिए डॉ. बृजमोहन जैन का आभारी हूँ। साथ ही प्रकाशन में अर्थ-सहयोग देने वाले उदारमना सदगृहस्थों के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन सब के सहयोग और सौजन्य से यह एक ऐतिहासिक दिव्य साहित्य-मणि पाठकों के कर-कमलों में पहुँच रही है। प्रसन्नता..... !

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

# PREFACE

(From First Edition)

Scriptures are the third eye of man. Study of scriptures awakens the sense of judgement or prudence of man and then he destroys evil thoughts, perversions and ill sentiments in order to experience the blissful true form of soul. Therefore, study of holy texts is like a wish fulfilling tree for every individual who wishes to experience ultimate happiness.

*Uttaradhyayan Sutra* is prominently placed among Jain scriptures. It is the last sermon of Bhagavan Mahavir. It is a compendium of beneficial and inspiring teachings covering a variety of themes aimed at all-round development and uplift of human life. As such, it can be called the Gita of Jainism. Due to the belief that reading and hearing of *Uttaradhyayan Sutra* has special significance on the day of Deepawali festival, there is a wide spread tradition of doing the same. Even otherwise *Uttaradhyayan Sutra* is worth serious reading and contemplation by every curious devotee.

The subject-matter of *Uttaradhyayan Sutra* is very interesting and instructive and at the same time it is also very helpful in awakening of the soul. That is the reason that, though hundreds of editions of this *Sutra* have been published, its demand still persists.

The unique idea of publication of *Uttaradhyayan Sutra* with illustrations is really a bold and attractive project for the benefit of masses. It is an established fact that with the help of good illustrations, even the most serious and complex subjects become easy and comprehensible. Illustrations have their own usefulness by way of giving some visible form to abstract and subtle themes and thereby making them comprehensible. From this angle this historical project of publication of Jain scriptures with illustrations of inspiring incidents and complex metaphysical themes will prove to be a new experiment in the field of publication of Jain canons. This will present the complex themes of *Agams* in an easily understandable style for the common reader. For this noble resolve and bold effort the name of Vidvadrata Pravartak Shri Amar Mani ji M. S. will always have an important place in the area of new experiments in Jain literature.

Rashtrasant Uttar Bharatiya Pravartak Bhandari Sri Padamchandra ji M. S., the grand-disciple of *Agam* Ratnakar Jain Dharma Diwakar Acharya Samrat Shri Atmaram ji M. S., is a representative symbol of Mahavir's age in modern times, a simple hearted, pious soul,

a true devotee of Lord and guru and a saint with deep faith in the word of *Agams*. By writing Hindi commentaries on voluminous *Agams* including *Sutrakritanga*, *Prashnavyakaran* and *Bhagavati*, his talented disciple Pravartak Sri Amar Muni ji M. S. has made valuable contribution towards completing the remaining part of the mission of service to the canons launched by Acharya Samrat Shri Atmaram ji M. S. In the same noble tradition of *Agam*-editing, a new and commendable effort is being launched with the publication of Illustrated *Uttaradhyayan Sutra*.

I have in my hand a new illustrated edition of *Kalpasutra* published a few years back. It contains miniature paintings of old style. Although they have their own importance due to antiquity and gold-work, there is very little to appreciate in terms of illustrative attraction, simplicity of narrative representation and colour-scheme. I have not come across any illustrated publication of any *Agam* other than *Kalpasutra*. When we conceived the project of publishing a pictorial edition of *Uttaradhyayan Sutra* about one year back we had no reference of any ancient illustrated *Agam* available to us. We contacted many scholars and searched a few manuscript libraries for this. During this exploration we had the opportunity to see the manuscript library of Tiloka Ratna Sthanakvasi Jain Pariksha Board, Ahmadnagar. With the blessings of Pujya Acharya Samrat Shri Anand Rishi ji M. S. we were liberally shown numerous illustrated manuscripts by Shri Kundan Rishi ji M. S. himself. Among those we found some useful illustrations from *Uttaradhyayan Sutra* including a very important illustration of Bharanda bird. After that I spent two days exploring ancient illustrated manuscripts of *Agams* in the manuscript library, Jain Sahitya Mandir, of the renowned art historian Shri Vijaya Yashodeva Suri ji M. S., at Palitana. Acharya Shri Yashodeva Suri ji M. S. himself showed me some copies of *Uttaradhyayan Sutra* written in golden letters including one with gold-work illustrations. This proved to be of great help in understanding the old style of illustrations and in redoing them in modern style. We will always remain indebted to the said libraries and *acharyas*.

Sixty one multi-coloured illustrations have been prepared for thirty six chapters of this edition of *Uttaradhyayan Sutra*. Due to the limitation of the number of illustrations many useful themes had to be left alone. In conceiving the illustrations, the descriptions from commentaries, descriptions from other scriptures and the traditional information have helped us. As these illustrations are based on the information available in commentaries and tradition, there are chances of errors as well as difference of opinion because no ancient pictorial references are available. There can be different presentations according to individual perception. Therefore, we have no prejudice or dogma about these pictures. It is only a well meant sincere effort to make the serious and abstract themes of *Agams* easy and

attractive for general readers. As regards the dress and appearance of ascetics is concerned we have voluntarily given precedence to our Sthanakvasi tradition because, like *Agams* and History, tradition is also an important source of cultural information.

With the Hindi translation of *Uttaradhyayan Sutra* we have given its English translation as well. In modern times thousands of non-resident Jain families and thousands of non-Hindi speaking families also want to gain knowledge of Jainism and *Agams*. For them English language is a better medium than Hindi. As such, keeping in view the wider utility, we felt it necessary to include the English translation. We are grateful to all the scholars and publishers whose co-operation we availed in preparing Hindi and English translations as well as elaborations. A list of reference works is also included here.

The editorial contribution, guidance and continued inspiration by Up-pravartak Shri Amar Muni ji M. S. in editing and illustration of this work is the foundation of this ambitious project. This is the sweet fruit of his pristine intellect and relentless hard work. Therefore, the formality of expressing gratitude for him is out of place.

I am grateful to Dr. Brij Mohan Jain of Agra for English translation and to artist S. Purushottam Singh for illustrations. I also express my indebtedness to the generous householders by whose financial co-operation this historical work is accomplished. With great joy .....

—Srichand Surana 'Saras'



## अनुक्रम

अध्ययन	विषय	गाथा-क्रम	पृष्ठ
१. विनय श्रुत	विनय का स्वरूप	१-४८	१-१५
२. परीषह प्रविभक्ति	प्राप्त कष्ट सहने की प्रेरणा	४६-६६	१६-३२
३. चतुरंगीय	चार दुर्लभ अंगों का प्रतिपादन	६७-११६	३३-३६
४. असंस्कृत	प्रमाद और अप्रमाद का प्रतिपादन	११७-१२६	४०-४५
५. अकाममरणीय	अकाम और सकाममरण का विवेक	१३०-१६१	४६-५५
६. क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय	अविद्या से दुःख, विद्या से मुक्ति	१६२-१७८	५६-६१
७. उरभ्रीय	रस-गृद्धि का परित्याग	१७६-२०८	६२-७४
८. कापिलीय	लोभ-विजय का उपदेश	२०६-२२८	७५-८३
९. नमिप्रव्रज्या	संयम में निष्कम्प : आत्म एकत्वभाव	२२६-२६०	८४-९६
१०. द्रुमपत्रक	जीवन-जागृति का सन्देश	२६१-३२७	१००-१०६
११. बहुश्रुत पूजा	बहुश्रुत-पूजा : ज्ञान की महिमा	३२८-३५६	११०-११६
१२. हरिकेशीय	तप का अद्भुत ऐश्वर्य	३६०-४०६	१२०-१३६
१३. चित्त-सम्भूतीय	निदान-भोग संकल्प के कटु फल	४०७-४४१	१४०-१५६
१४. इषुकारीय	भोग विरक्ति : त्याग का कष्टक पथ	४४२-४६४	१५७-१७२
१५. सभिक्षुक	भिक्षु के गुण	४६५-५१०	१७३-१८१
१६. ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान	ब्रह्मचर्य की गुप्तियाँ	५११-५२६	१८२-१९७
१७. पाप श्रमणीय	पंचाचार में पाप वर्जन	५३०-५५०	१९८-२०५
१८. संजयीय	हिंसा त्याग : अभय का मार्ग	५५१-६०४	२०६-२२०
१९. मृगापुत्रीय	देहाध्यास का परित्याग-मृगचर्या	६०५-७०३	२२१-२४३
२०. महानिर्ग्रन्थीय	सनाथ-अनाथ का विवेक	७०४-७६३	२४४-२६०
२१. समुद्रपालीय	कृत कर्म का फल	७६४-७८७	२६१-२६८
२२. रथनेमीय	संयम में स्थिरीकरण	७८८-८३६	२६९-२८४

अध्ययन	विषय	गाथा-क्रम	पृष्ठ
२३. केशी-गौतमीय	धर्म की कसौटी-प्रज्ञा-विवेक	८३७-६२५	२८५-३०५
२४. प्रवचन-माता	प्रवचन-माता (समिति-गुप्ति)	६२६-६५२	३०६-३१४
२५. यज्ञीय	आत्मयज्ञ : सच्चा ब्राह्मण	६५३-६६५	३१५-३२७
२६. सामाचारी	सामाचारी (कर्तव्य-विवेक)	६६६-१०४७	३२८-३४४
२७. खलुंकीय	विनय : अनुशासन सरलता	१०४८-१०६४	३४५-३५०
२८. मोक्ष-मार्ग-गति	मोक्ष-मार्ग का सम्यक् स्वरूप	१०६५-११००	३५१-३६४
२९. सम्यक्त्व पराक्रम	सम्यक् पथ पर अप्रमत्त पराक्रम	११०१-११७६	३६५-४०३
३०. तपो-मार्ग-गति	तप का सर्वांग स्वरूप	११७७-१२१३	४०४-४१६
३१. चरण-विधि	चारित्र के विविध अंगोपांग	१२१४-१२३४	४२०-४३४
३२. प्रमाद-स्थान	प्रमाद-आसक्ति : अनासक्ति-वीतरागता	१२३५-१३४५	४३५-४६४
३३. कर्म-प्रकृति	कर्म-प्रकृति	१३४६-१३७०	४६५-४७७
३४. लेश्याध्ययन	लेश्या का स्वरूप	१३७१-१४३१	४७८-४६६
३५. अनगार-मार्ग-गति	भिक्षु के गुण	१४३२-१४५२	४६७-५०४
३६. जीवाजीव-विभक्ति	जीव-अजीव का परिबोध	१४५३-१७२०	५०५-५६८



# SEQUENCE

Chapter	Subject	Verse No.	Page No.
1.	Maxims of Modesty	Defining modesty	1-48 1-15
2.	Classification of Afflictions	Inspiration to endure afflictions	49-96 16-32
3.	Four Limbs	Defining four rare limbs	97-116 33-39
4.	Irreparability	Defining stupor and non-stupor	117-129 40-45
5.	Naive Death	Prudence about of naive and prudent death	130-161 46-55
6.	Newly Initiated Ascetic	Pain from ignorance and liberation from knowledge	162-178 56-61
7.	About Lamb	Abandoning infatuation of taste	179-208 62-74
8.	About Kapil	Teaching of winning over greed	209-228 75-83
9.	The Initiation of Nami	Unwavering in restraint : Unity of soul	229-290 84-99
10.	The Tree-leaf	Message of life-awakening	291-327 100-109
11.	Adoration of Accomplished Scholarly Ascetics	Glory of knowledge	328-359 110-119
12.	Harikesh	Astonishing wealth of austerity	360-406 120-139
13.	Chitra and Sambhuta	Bitter fruits of desires	407-441 140-156
14.	Ishukaar	Detachment from pleasures : Difficult path of renunciation	442-494 157-172
15.	The True Ascetic	Virtues of ascetic	495-510 173-181
16.	Conditions of Perfect Celibacy	Restraints of celibacy	511-529 182-197
17.	Sinful Ascetic	Negation of sins in five conducts	530-550 198-205
18.	Ascetic Sanjaya	Renouncing violence : Fear free path	551-604 206-220
19.	Mrigaputra	Abandoning care of body	605-703 221-243
20.	About Great Ascetic	Prudence about with and without protection	704-763 244-260

Chapter	Subject	Verse No.	Page No.
21. Samudrapaal	Fruits of performed deeds	764-787	261-268
22. Rathanemi	Stabilizing asceticism	788-836	269-284
23. Keshi and Gautam	Wisdom and prudence : Yardstick of religion	837-925	285-305
24. Mother Discourse	Circumspections and restraints	926-952	306-314
25. The True Sacrifice	Soul-sacrifice : The true Brahmin	953-995	315-327
26. The Right System of Ascetic Behaviour	Praxis (duties and prudence)	996-1047	328-344
27. Rogue Bullocks	Modesty : Simplicity of discipline	1048-1064	345-350
28. Endeavour on the Path of Liberation	The true path of liberation	1065-1100	351-364
29. Fortitude in Righteousness	Stupor-free endeavour on the right path	1101-1176	365-403
30. Endeavour on the Path of Austerity	Complete description of austerities	1177-1213	404-419
31. Mode of Conduct	Various limbs of conduct	1214-1234	420-434
32. The Areas of Stupor	Stupor is craving : Non-craving is detachment	1235-1345	435-464
33. The Nature of Karmas	The Nature of Karmas	1346-1370	465-477
34. Study of Soul- complexions	Description of Soul-complexions	1371-1431	478-496
35. Endeavour on the Path of Homeless-asceticism	Virtues of an ascetic	1432-1452	497-504
36. The Division of Life and Non-life	Awareness of life and non-life	1453-1720	505-568



## सहायक ग्रंथ-सूची : आभार दर्शन

- उत्तराध्ययनसूत्र (तीन भाग)  
(आत्म-ज्ञान प्रकाशिनी टीकायुक्त)  
व्याख्याकार : आचार्य श्री आत्माराम जी म. सा.  
प्रकाशक : जैन शास्त्र माला कार्यालय, लाहौर
- उत्तराध्ययनसूत्र : सम्पादन-साध्वी श्री चन्दना जी.  
प्रकाशक : वीरायतन प्रकाशन, आगरा-२
- उत्तराध्ययनसूत्र : सम्पादन-श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री  
प्रकाशक : आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर  
(प्रस्तावना : श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री)
- उत्तरज्ज्ञयणाणि (दो भाग)  
वाचना प्रमुख : आचार्य श्री तुलसी  
विवेचक सम्पादक : मुनि नथमल (आचार्य महाप्रज्ञ)
- उत्तराध्ययनसूत्र (तीन भाग)  
निदेशक : आचार्य श्री हस्तीमल जी म. सा.  
सम्पादक : श्रीचन्द सुराना 'सरस'  
प्रकाशक : सम्यक् ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर
- उत्तराध्ययनसूत्र : एक परिशीलन  
डॉ. सुदर्शनलाल जैन  
प्रकाशक : सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति, अमृतसर
- Uttaradhyayana Sutra : K.C. Lalwani  
Publishers : K.C. Lalwani, Prajnanam  
12, Duff Street, Calcutta-6
- Jain Sutras : Uttaradhyayana-Hermann Jacobi  
Publishers : Motilal Banarsidass Publishers, Delhi
- हम उक्त सम्पादक, प्रकाशकों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते हैं जिनके महत्वपूर्ण ग्रंथों से हमें सम्पादन में सहयोग प्राप्त हुआ।

## BIBLIOGRAPHY

- ★ *Uttaradhyayan Sutra* (Three Volumes)  
(With Atma-Gyan Prakashini Tika)  
Commentator : Acharya Sri Atmaram ji M. S.  
Publisher : Jain Shastramala Karyalaya, Lahore
- ★ *Uttaradhyayan Sutra* : Editor – Sadhvi Sri Chandna ji  
Publisher : Virayatana Prakashan, Agra-2
- ★ *Uttaradhyayan Sutra* : Editor – Shri Rajendra Muni Shastri  
Publishers : Agam Prakashan Samiti, Beawar  
(Preface : Sri Devendra Muni Shastri)
- ★ Uttarajjhayanani (Two Volumes)  
Vachna Pramukh : Acharya Shri Tulsi  
Elaborator Editor : Muni Nathmal (Acharya Mahapragya)
- ★ *Uttaradhyayan Sutra* (Three Volumes)  
Guidance : Acharya Sri Hastimal ji M. S.  
Editor : Srichand Surana 'Saras'  
Publisher : Samyak Jnana Pracharak Mandal, Jaipur
- ★ *Uttaradhyayan Sutra* : Ek Parishilan  
Dr. Sudarshan Lal Jain  
Publisher : Sohan Lal Jain Dharma Pracharak Samiti, Amritsar
- ★ *Uttaradhyayan Sutra* : K.C. Lalwani  
Publisher : K.C. Lalwani, Prajnanam,  
12, Duff Street, Calcutta - 6
- ★ Jain Sutras (Part II) : *Uttaradhyayan, Sutrakritanga Sutra*  
Translated by Hermann Jacobi  
Publishers : Motilal Banarsidass Publishers Private Limited, Delhi
- ★ We express our gratitude to the aforesaid editors and publishers whose important publications have helped us in editing this book.

## उत्तराध्ययन : लोकोत्तर आगम

प्रस्तुत आगम का नाम उत्तराध्ययनसूत्र है। उत्तर शब्द के कई अर्थ हैं—श्रेष्ठ (best), उत्तम (utmost), अन्तिम (last) आदि।

ऐसा विश्रुत है कि भगवान महावीर अपृष्ट वागरणा के रूप में उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययनों का वर्णन पूरा करके ३७वें 'प्रधान' नामक अध्ययन का प्रवचन करते-करते शैलेशी अवस्था को प्राप्त होकर सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो गये। इसलिये यह आगम भगवान महावीर की अन्तिम वाणी के रूप में मान्य है।

इस आगम की श्रेष्ठता और उत्तमता इसमें निहित अनेक विशेषताओं पर आधारित है। यह आगम श्रमण-धर्म का संपूर्ण और विशद् विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

उत्तराध्ययनसूत्र की सम्पूर्णता इस तथ्य में निहित है कि जैन धर्मानुमोदित तत्त्व-विज्ञान, सम्यक्-ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप का वर्णन, विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन की प्रेरक घटनाएँ, श्रमणाचार के नियम, गुरु और शिष्य के कर्त्तव्य आदि सभी कुछ इसमें गुम्फित हैं।

इसे जैनधर्म के विशाल वाङ्मय का संक्षिप्त सार संग्रह (compendium) के पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

प्रस्तुत आगम की इन्हीं तथा अन्य ऐसी ही विशिष्टताओं के कारण यह जैन जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय, पठनीय तथा श्रद्धा का केन्द्र रहा है।

इसके ३६ अध्ययन हैं। सभी अध्ययन पृथक्-पृथक् होते हुये भी, एक ही माला के ऐसे मनके हैं जो अपनी अलग-अलग आभा बिखेरते हुये, सम्पूर्ण हार को बहुरंगी विविध वर्णी प्रभा से प्रभास्वर करते हैं। सम्पूर्ण सूत्र को दिव्यता से ओत-प्रोत कर देते हैं। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण सूत्र दिव्य तथा लोकोत्तर आगम के रूप में जन-जन का कंठहार बन गया है।

## UTTARADHYAYAN : A TRANSCENDENT SCRIPTURE

This *Agam* is titled *Uttaradhyayan Sutra*. The term *uttar* has many meanings such as best, utmost, last etc.

This text is popularly attributed to Bhagavan Mahavir without any dispute about its origin from any quarter. His last sermon included these thirty six lessons. While he was giving the thirty seventh lesson, titled Pradhaan, he attained nirvana. That is why this compilation is accepted as the last sermon of Bhagavan Mahavir in popular belief.

The exceptional and lofty character of this scripture is evident in the inspiring qualities inherent in its contents. This work presents a profound and exhaustive analysis of Shraman tradition or Jainism.

The all embracing character of *Uttaradhyayan Sutra* reflects in the range of topics intricately woven in it. Besides Jain metaphysics and philosophy it envelopes discussions about right knowledge-faith-conduct-austerities, inspiring biographical sketches of great men, codes of ascetic praxis, duties of teacher and student and many other topics.

This work can be conveniently called the abridged compendium of voluminous canonical literature of Jainism.

These special qualities of *Uttaradhyayan Sutra* have made this the most popular, studied and respected *Agam* in the Jain world.

It has 36 chapters (*Adhyayan*). Though every chapter deals with different topic still they are like beads of a single rosary. Every bead shines with its unique hue to give a multicoloured glow to the whole rosary and saturate the whole scripture with divineness. As a result this canon is embraced by masses as a divine and transcendent scripture.





**Illustrated**  
**Uttaradhyayana Sutra**

**अभिज्ञ**  
**उत्तराध्यायन सूत्र**







## प्रथम अध्ययन : विनय श्रुत

### पूर्वालोक

विनय श्रुत, यह प्रथम अध्ययन है। प्राकृत भाषा के शब्द 'सुयं' के संस्कृत भाषा में दो रूपान्तर होते हैं—'सूत्र' और 'श्रुत'। प्रस्तुत अध्ययन के लिये ये दोनों ही सार्थक हैं। इसमें विनय के सूत्र भी दिये गये हैं और गुरु-शिष्य परम्परा से श्रुत का प्रवाह तो परम्परित है ही।

विनय, आचार-श्रमणाचार की नींव है, धर्म का मूल है, मोक्ष-प्राप्ति का सोपान है।

अहंकार का विसर्जन विनय है। जो व्यक्ति अपने अहंकार का त्याग कर देता है, वही नमता है, झुकता है, गुरु-वचनों को श्रद्धापूर्वक सुनकर स्वीकार करता है और उनकी आज्ञा का पालन करता है। ऐसा व्यक्ति अथवा शिष्य विनीत कहलाता है और इसके विपरीत आचरण वाला व्यक्ति अथवा शिष्य अविनीत।

प्रस्तुत अध्ययन में विनीत और अविनीत की स्पष्ट परिभाषा न देकर उनके लक्षण बताये गये हैं, उनकी वृत्ति, प्रवृत्ति, कार्य-शैली और व्यवहार का विशद् वर्णन किया गया है।

मनीषियों ने विभिन्न अपेक्षाओं से विनय के भेद-प्रभेद किये हैं।

उदाहरणार्थ—दो भेद—(१) लौकिक विनय, और (२) लोकोत्तर विनय।

चार भेद—(१-३) ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य विनय, (४) लोकोपचार विनय।

सात भेद—(१) ज्ञान विनय, (२) दर्शन विनय, (३) चारित्र्य विनय, (४) मन विनय, (५) वचन विनय, (६) काय विनय, (७) लोकोपचार विनय।

वस्तुतः विनय जीवन के सम्पूर्ण व्यवहार में परिलक्षित है। अनुशासन, आत्म-संयम, सदाचार, शील, सद्व्यवहार, मानसिक-वाचिक-कायिक नम्रता, गुरु की आज्ञा का पालन, उनके इंगित आदि को समझना, उनकी सेवा-शुश्रूषा, अनाशातना, अप्रतिकूलता, कठोर अनुशासन को भी अपने लिये हितकर समझना, तथा समय का महत्व समझकर प्रत्येक कार्य नियत समय पर करना सभी विनय के ही विविध रूप हैं।

साथ ही गुरु के समक्ष किस प्रकार उठना-बैठना, गमनागमन करना, प्रश्न पूछना, शय्या-संस्कार आदि प्रत्येक गतिविधि के सम्बन्ध में सम्पूर्ण सूचन प्रस्तुत अध्ययन में दिया गया है तथा यह बताया गया है कि विनीत शिष्य ही गुरु से आगमों का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

अन्त में कहा गया है कि जिस प्रकार जीवों के लिये पृथ्वी आधार रूप है उसी प्रकार धार्मिक जनों के लिये गुरु से ज्ञान-प्राप्त विनीत शिष्य भी आधार रूप होता है। उसे अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

इस प्रकार इस अध्ययन में विविध प्रकार से विनय के सम्पूर्ण रूप को वर्णित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ४८ गाथाएँ हैं।



## PRATHAM ADHYAYAN : VINAYA SHRUT

### Introduction

The first chapter is titled Maxims of Modesty. The Prakrit word *Suyam* is transcribed two ways in Sanskrit—*sutra* (maxim or aphorism) and *shruta* (the scriptures belonging to the oral tradition of Jains). As it contains the maxims of modesty sourced from the flow of scriptural knowledge in the teacher-disciple tradition of Jains, both the Sanskrit renderings are suitable as title of this chapter.

Modesty is the foundation of conduct (the ascetic conduct), the root of religion and the path of salvation.

Modesty is shedding conceit. That person alone bends and bows before the guru, faithfully listens to and accepts the words of the guru and obeys the command of the guru. Such a person or disciple is called modest and the one with a contrary conduct is called immodest.

In this chapter instead of giving a clear-cut definition of modest and immodest their attributes have been mentioned. Their intent, attitude, style of working and behaviour have been described in detail.

Thinkers have made divisions and subdivisions of modesty from a variety of stand points.

For example—Two divisions—1. Worldly modesty, and 2. Spiritual modesty.

Four divisions—1-3. Modesty related to knowledge, perception/faith and conduct, and 4. Social modesty.

Seven divisions—1. Knowledge related modesty, 2. Perception/faith related modesty, 3. Conduct related modesty, 4. Modesty of mind, 5. Modesty of speech, 6. Modesty of body, and 7. Worldly modesty.

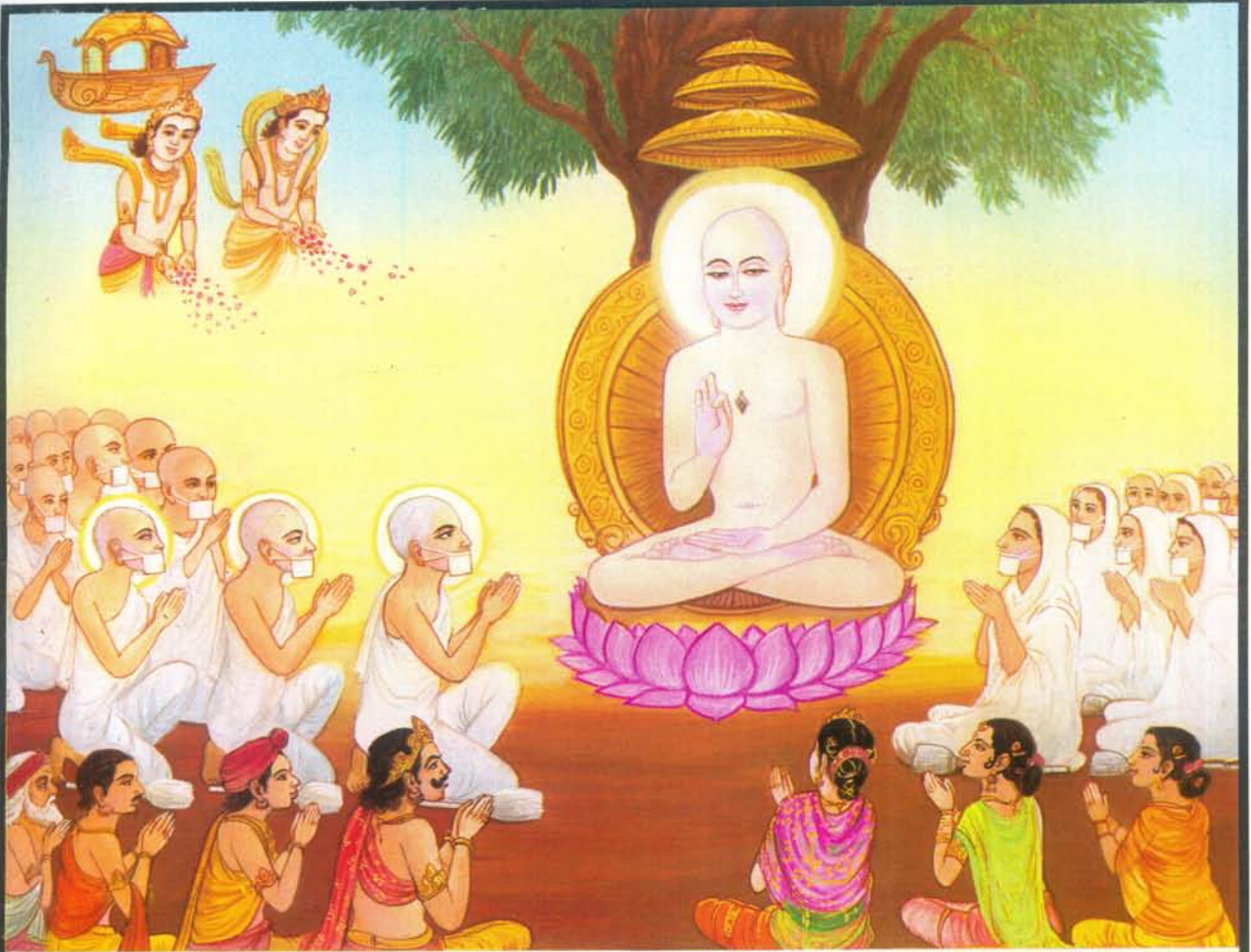
In fact modesty is associated with the overall behaviour in life. Discipline, self-control, good conduct, morality, good behaviour, mental-vocal-physical humbleness, obedience to the guru, understanding his directions, his care and service, avoiding his disrespect, not going against him, to consider strict discipline to be beneficial, and to do every thing timely realizing the importance of time, all these are different forms of modesty only.

At the same time this chapter also contains complete information about how to sit, stand, move about and ask questions, bed and the like in presence of the guru. Along with all this information it is also mentioned that only a modest pupil can acquire profound knowledge of scriptures from his guru.

It is said in the end that as the earth is the base for all worldly souls so is the modest disciple, who has acquired knowledge from the guru, for all religious people. He also acquires many special powers.

This way, overall modesty is vividly described in this chapter in a variety of ways.

This chapter contains 48 verses.



## अन्तिम उपदेश

- (1) पावापुरी के समवसरण में भगवान की अन्तिम देशना: उत्तराध्ययनसूत्र का प्रवचन दृश्य।
- (2) संयोग-त्यागी अणगार—घर, परिवार, धन आदि बाह्य संयोगों एवं कषाय, ममता आदि अन्तरंग संयोगों की बेड़ियाँ तोड़कर अणगार वृत्ति धारण करके वीतराग-मार्ग पर बढ़ने वाला भिक्षु।

—अध्ययन 1, सू. 1

## THE LAST SERMON

- (1) The last sermon of Bhagavan Mahavir in the religious assembly of Pavapuri : the scene of preaching Uttaradhyayan Sutra.
- (2) **The detached homeless ascetic** : A mendicant moving forward on the path of detachment, by accepting the way of a homeless ascetic, after breaking fetters of home, family, wealth etc.; external associations and passions; fondness as well as other internal associations and affections.

— Chapter 1, Aphorism 1





पढमं ब्रज्जयणं : विणय-सुयं  
 प्रथम अध्ययन : विनय श्रुत  
 Chapter-1 : MAXIMS OF MODESTY

संजोगा विष्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।  
 विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुब्बिं सुणेह मे ॥ १ ॥

जो सभी संयोगों (सांसारिक आसक्तियुक्त सम्बन्धों) से विप्रमुक्त-सर्वथा पृथक् है, गृहत्यागी अनगर है, (निर्दोष भिक्षा से जीवन यापन करने वाला) भिक्षु है; उसके विनय (अनुशासन एवं आचार) का मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो ॥ १ ॥

I will describe the humble behaviour (discipline and conduct) of an ascetic (*bhikkhu*), who is free from all worldly ties, and a homeless renouncer. Listen to me with all attention. (1)

आणाऽनिद्देशकरे, गुरुणमुववायकारए ।  
 इगियागारसंपन्ने, से 'विणीए' ति वुच्चई ॥ २ ॥

गुरु की आज्ञा (आदेश) एवं निर्देश (संकेत) का पालन करने वाला, उनकी सेवा करने वाला, उनके समीप रहने वाला और उनके मनोभावों के अनुसार आचरण करने वाला विनीत कहलाता है ॥ २ ॥

One, who responds to instructions and directions of the guru, serves him and remains near him, is called a modest disciple. (2)

आणाऽनिद्देशकरे, गुरुणमणुववायकारए ।  
 पडिणीए असंबुद्धे, 'अविणीए' ति वुच्चई ॥ ३ ॥

जो गुरु की आज्ञा का पालन नहीं करता है, उनसे दूर-दूर रहता है, उनके मनोभावों और संकेतों के प्रतिकूल कार्य करता है तथा जो असंबुद्ध-तत्त्व को नहीं जानता है, उसे अविनीत कहा जाता है ॥ ३ ॥

One, who does not respond to instructions and directions of the guru, keeps away from him, acts contrary to his feelings and indications, and is ignorant of the fundamentals, is called an immodest disciple. (3)

जहा सुणी पूई-कण्णी, निक्कसिज्जई सव्वसो ।  
 एवं दुस्सील-पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जई ॥ ४ ॥

जिस प्रकार सड़े कानों वाली कुतिया (घृणापूर्वक) सभी स्थानों से निकाल दी जाती है, उसी प्रकार गुरु के प्रतिकूल आचरण करने वाला, दुःशील और वाचाल शिष्य भी सभी स्थानों से (तिरस्कृत करके) निकाल दिया जाता है ॥ ४ ॥

As a bitch with ulcerous ear lobes is driven away (with disdain) from every place; in the same way a disciple, who goes against the guru, is misbehaved and talkative, is also driven out (disgracefully) from everywhere. (4)



कण-कुण्डगं चइत्ताणं, विट्ठं भुंजइ सूयरे।  
एवं सीलं चइत्ताणं, दुस्सीले रमई मिए ॥ ५ ॥

जैसे चावल मिश्रित भूसी को छोड़कर सुअर विष्टा खाता है, वैसे ही (मृग) पशु प्रवृत्ति वाला शिष्य शील (उत्तम आचार) छोड़कर निम्न कोटि के आचरण (दुःशील) में प्रवृत्त होता है ॥ ५ ॥

As a pig rejects paddy mixed chaff and eats filth; in the same way a beastly natured disciple avoids uprightness (noble conduct) and embraces misdemeanor (ignoble conduct). (5)

सुणियाऽभावं साणस्स, सूयरस्स नरस्स य।  
विणए ठवेज्ज अप्पाणं, इच्छन्तो हियमप्पणो ॥ ६ ॥

अपनी आत्मा का हित चाहने वाला साधु सड़े कानों वाली कुतिया और विष्टा खाने वाले सूअर के समान अपनी हीन (तिरस्कृत) स्थिति को समझे और अपने आप को (अपनी आत्मा को) विनय धर्म में स्थापित करे ॥ ६ ॥

An ascetic seeking spiritual uplift should understand his degraded condition in light of the aforesaid repudiation of a bitch with ulcerous ear lobes and a pig, and accordingly accept and follow the code of modesty. (6)

तम्हा विणयमेसेज्जा, सीलं पडिलभे जओ।  
बुद्ध-पुत्त नियागढी, न निक्कसिज्जई कणहुई ॥ ७ ॥

शील (सदाचार) की प्राप्ति के लिये विनय का पालन करना चाहिये (क्योंकि) बुद्धिमान गुरु के प्रिय पुत्र के समान प्रिय शिष्य (बुद्ध-पुत्र) को उसकी विनयशीलता के कारण कहीं से भी निकाला नहीं जाता। वह कहीं भी तिरस्कृत नहीं होता ॥ ७ ॥

To attain noble conduct one must embrace modesty, because like the beloved son of a wise guru even his beloved disciple (son-like pupil) is never thrown out from anywhere due to his modesty. Nowhere is he insulted. (7)

निसन्ते सियाऽमुहरी, बुद्धाणं अन्तिए सया।  
अट्टजुत्ताणि सिक्खेज्जा, निरट्ठाणि उ वज्जए ॥ ८ ॥

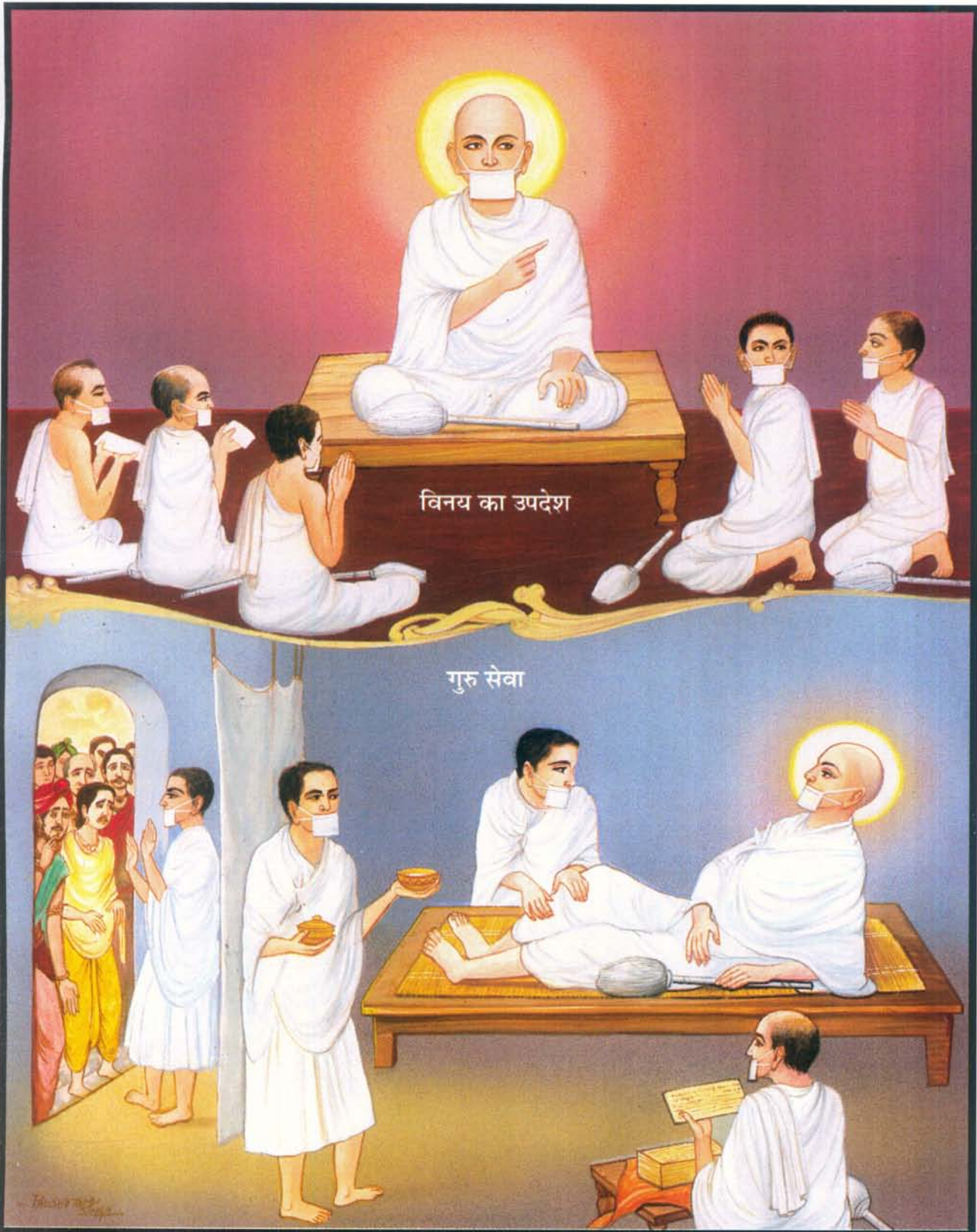
शिष्य गुरु-चरणों में सदा शांत भाव से रहे, अल्पभाषी बने, अर्थयुक्त (मोक्ष के उपाय रूप) वचनों को सीखे और निरर्थक वचनों (लोकोत्तर अर्थरहित)-पदों को छोड़ दे ॥ ८ ॥

A disciple should always remain calm at the feet of his guru. He should talk less, learn meaningful text (leading to liberation) and reject meaningless phrases (without spiritual context). (8)

अणुसासिओ न कुप्पेज्जा, खंतिं सेवेज्ज पण्डिए।  
खुड्डेहिं सह संसग्गिं, हासं कीडं च वज्जए ॥ ९ ॥

(विवेकवान) शिष्य गुरु के कठोर अनुशासन (शिक्षा, ताड़न-तर्जन) से कुपित न हो, हृदय में क्षमा (क्षांति) धारण करे तथा क्षुद्र व्यक्तियों से सम्पर्क न रखे, उनके साथ हँसी-मजाक तथा किसी प्रकार की क्रीड़ा न करे ॥ ९ ॥





विनय का उपदेश

गुरु सेवा

## विनय का स्वरूप

- (1) विनीत शिष्य गुरु के संकेत एवं मनोभावों पर लक्ष्य रखता है, नम्रतापूर्वक बैठता है और गुरु के समीप शास्त्र आदि का ज्ञान प्राप्त करता है।
- (2) विनीत शिष्य गुरु को आगम स्वाध्याय सुनाकर, शारीरिक परिचर्या करके, रुग्ण होने पर यथा समय पथ्य, औषधि आदि देकर उनकी सेवा करता है।

—अध्ययन 1, सू. 2

## DEFINING MODESTY

- (1) Humble disciple aims at the gestures and thoughts of the guru. Sits humbly and acquires knowledge of holy texts from the teacher.
- (2) Humble disciple serves his teacher by reciting Agams, taking care of his physical needs and giving medicines, food, etc. when he is sick.

— Chapter 1, Aphorism 2





A discerning disciple should not get annoyed by strict discipline imposed by the guru (instructions and rebuke), should instead have forgiving attitude (forbearance). He should neither keep company of mean persons, nor should he mock and play around with them. (9)

मा य चण्डालियं कासी, बहुयं मा य आलवे ।

कालेण य अहिज्जिता, तओ ज्ञाएज्ज एगगो ॥ १० ॥

शिष्य क्रोध के आवेश में आकर (चाण्डालिक कर्म) न असत्य बोले और न क्रूरतापूर्ण व्यवहार करे। अधिक न बोले। अध्ययन काल में अध्ययन करे और बाकी समय एकान्त में ध्यान करे ॥ १० ॥

Out of anger a disciple should not indulge in any despicable activity, neither should he tell lies nor indulge in cruel behaviour. He should talk less, should study at proper time and should spend remaining time in solitary meditation. (10)

आहच्च चण्डालियं कट्टु, न निणहविज्ज कयाइ वि ।

कडं 'कडे' ति भासेज्जा, अकडं 'नो कडे' ति य ॥ ११ ॥

यदि क्रोध आदि कषाय के आवेश में शिष्य ने असत्य भाषण अथवा क्रूर व्यवहार कर भी लिया हो तो उसे छिपाये नहीं; गुरु के समक्ष प्रगट कर दे। यदि किया है तो 'मैंने किया है—ऐसा कहे' और यदि नहीं किया है तो 'मैंने नहीं किया है—ऐसा कहे' ॥ ११ ॥

If the disciple has resorted to falsehood or barbaric behaviour out of anger or passion, he should not conceal it but reveal before the guru. If he has done wrong, he should say—'I have done it'; if not, he should say—'I have not done it'. (11)

मा गलियस्से व कसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो ।

कसं व दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए ॥ १२ ॥

अनुशासनप्रिय समझदार शिष्य, अड़ियल घोड़े के समान, बार-बार गुरु-आदेश रूप वचनों के चाबुक की इच्छा न करे; अपितु सुशिक्षित उत्तम अश्व के समान गुरु के संकेत को देखकर ही पापकर्म का त्याग कर दे ॥ १२ ॥

Like a stubborn horse, a disciplined and wise disciple should not await whip-like command of the guru; he should, instead, abandon sinful activities simply on getting a hint from the guru, like a well trained horse. (12)

अणासवा थूलवया कुसील, मिउं पि चण्डं पकरेति सीसा ।

चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयं पि ॥ १३ ॥

गुरु की आज्ञा को सुनी-अनसुनी करने वाले, अधिक बोलने वाले, कुत्सित अथवा दुष्ट आचरण करने वाले शिष्य कोमल स्वभावी गुरु को भी कठोर (चंड) बना देते हैं। (इसके विपरीत) गुरु-आज्ञापालक, अल्पभाषी, कार्यदक्ष शिष्य क्रोधी (चण्ड) गुरु को भी प्रसन्न तथा प्रशान्त कर लेते हैं ॥ १३ ॥

Disciples who are heedless, talkative and ill mannered disciples make even a gentle guru harsh (angry). (On the other hand) Obedient, reticent and proficient disciples and please and pacify even an angry (harsh) guru. (13)



नापुट्टो वागरे किचि, पुट्टो वा नालियं वए।  
कोहं असच्चं कुव्वेज्जा, धारेज्जा पियमपियं ॥ १४ ॥

बिना पूछे कुछ भी न बोले और पूछने पर सत्य ही बोले। यदि कभी क्रोध आ भी जाये तो उसे तुरन्त (निष्फल) शान्त कर ले तथा गुरु के प्रिय और अप्रिय वचनों को अपने लिये हितकारी शिक्षा समझकर धारण करे ॥ १४ ॥

A disciple should not speak without being asked to and when asked to he should speak truth only. If there is an occasion when he is angry, he should pacify the anger at once and accept harsh and pleasant words of the guru considering them to be a part of his beneficent education. (14)

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुहमो।  
अप्पा दन्तो सुही होई, अस्सि लोए परत्थ य ॥ १५ ॥

स्वयं अपनी (राग-द्वेषयुक्त) आत्मा का ही दमन करना चाहिये। उसी पर विजय प्राप्त करना चाहिये। स्वयं की आत्मा पर विजय प्राप्त करना बहुत कठिन है। लेकिन जो अपनी आत्मा को जीत लेते हैं, वे इस लोक और परलोक-दोनों लोकों में सुखी होते हैं ॥ १५ ॥

One should subdue and discipline his own soul (infected with attachment and aversion). It is one's own soul that should be conquered. Although to win over the self (soul) is a very difficult task, those who conquer their soul gain happiness in this world and the next (rebirth). (15)

वरं मे अप्पा दन्तो, संजमेण तवेण य।  
माहं परेहि दम्मन्तो, बन्धणेहि वहेहि य ॥ १६ ॥

(शिष्य विचार करे) तप और संयम के द्वारा मैं स्वयं अपनी आत्मा का दमन कर लूँ, यही श्रेष्ठ है; अन्यथा वध और बन्धन द्वारा अन्य मुझ पर शासन करेंगे, यह अच्छा नहीं होगा ॥ १६ ॥

(A disciple should think) It is better for me to discipline my own soul through austerities and restraint, otherwise others will rule over me by threat of killing and bondage and that would not be good. (16)

पडिणीयं च बुद्धाणं, वाया अदुव कम्मुणा।  
आवी वा जइ वा रहस्से, नेव कुज्जा कयाइ वि ॥ १७ ॥

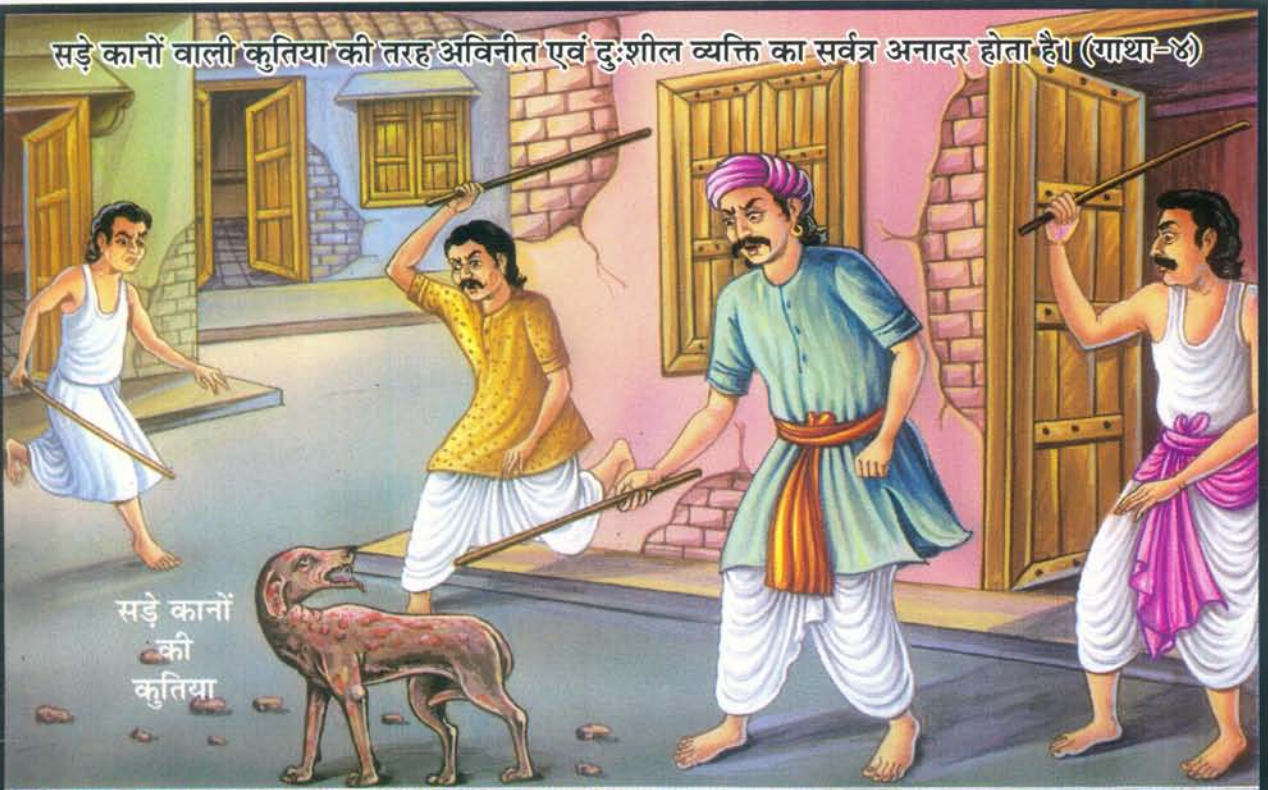
प्रबुद्ध गुरुजनों अथवा आचार्यों के समक्ष प्रगट में अथवा एकान्त में वचन किंवा शरीर से कभी भी उनके प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिये ॥ १७ ॥

A disciple should never show discourtesy to wise seniors and *acharyas* (preceptors), in their presence or otherwise, neither vocally nor physically. (17)

न पक्खओ न पुरओ, नेव किच्चाण पिट्ठओ।  
न जुंजे ऊरुणा ऊरुं, सयणे नो पडिस्सुणे ॥ १८ ॥

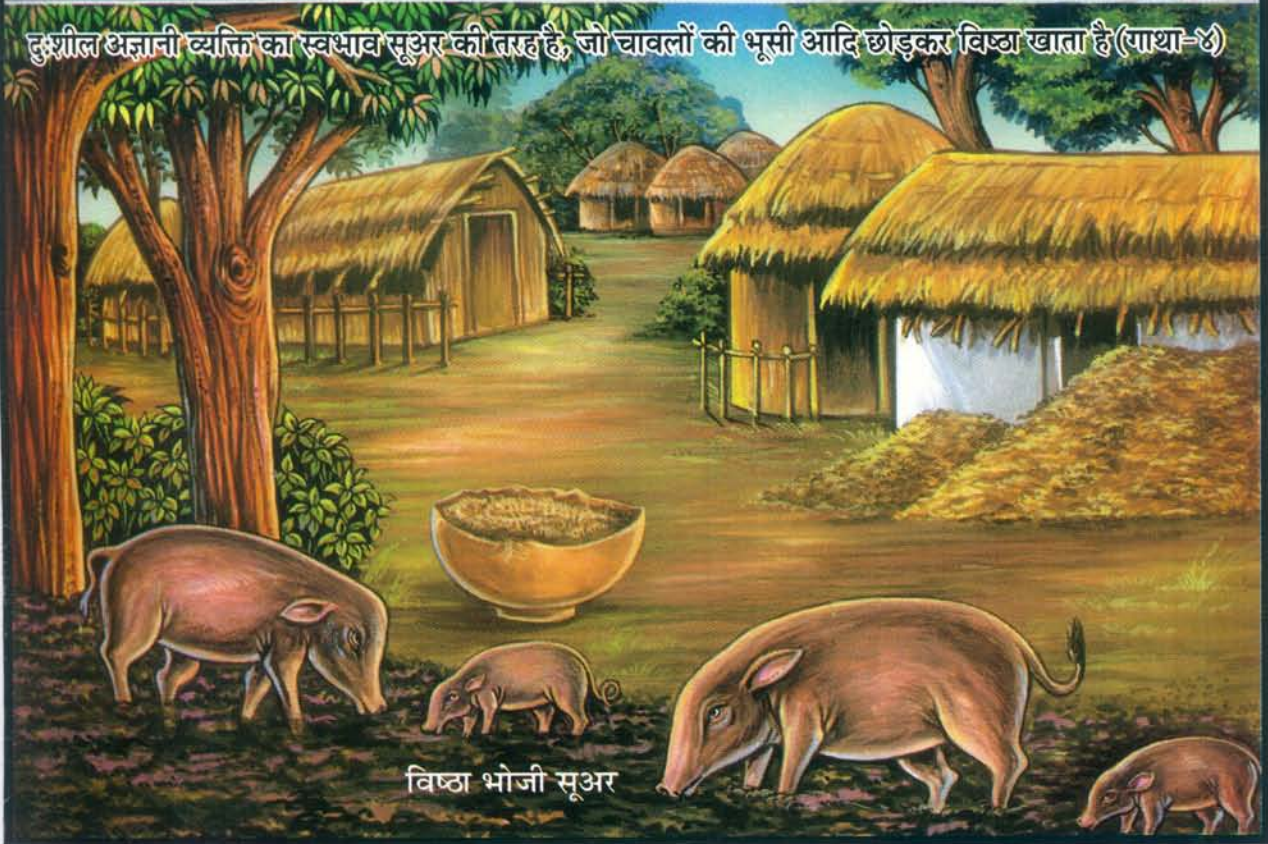
(कृत्य) अर्चनीय-वन्दनीय आचार्य आदि गुरुजनों की दाहिनी अथवा बाईं ओर उनसे सटकर न बैठे; न आगे-पीछे ही सटकर बैठे, उनकी जाँघ से जाँघ भिड़ाकर भी न बैठे। अपनी शय्या पर लेटा या बैठा ही गुरु के आदेश को न सुने ॥ १८ ॥ (चित्र देखें)

सड़े कानों वाली कुतिया की तरह अविनीत एवं दुःशील व्यक्ति का सर्वत्र अनादर होता है। (गाथा-४)



सड़े कानों  
की  
कुतिया

दुःशील अज्ञानी व्यक्ति का स्वभाव सूअर की तरह है, जो चावलों की भूसी आदि छोड़कर विष्ठा खाता है (गाथा-४)



विष्ठा भोजी सूअर

## अविनीत-अज्ञानी

- (1) जिस प्रकार सड़े कानों वाली कुतिया सभी स्थानों से निकाल दी जाती है, उसी प्रकार अविनीत को सर्वत्र तिरस्कार मिलता है।
- (2) सूअर चावलों की भूसी को छोड़कर विष्टा आदि खाता है, उसी प्रकार अज्ञानी सदाचार छोड़कर दुराचार की ओर जाता है।

—अध्ययन 1, सू. 4-5

## IMMODEST IGNORANT

- (1) As a bitch with sore ears is driven away from everywhere so an immodest is insulted at every place.
- (2) As a pig leaves a trough filled with rice and eats filth so an immodest ignorant leaves virtues and moves to perversion.

— Chapter 1, Aphorism 4-5





A disciple should not sit touching the venerable *acharya* or other seniors to their right, left, front or back. He should also not sit touching their thighs with his own. He should avoid hearing their call reclining or sitting in his own bed. (18)

नेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिण्डं व संजए।  
पाए पसारिए वावि, न चिट्ठे गुरुणन्तिए ॥ १९ ॥

संयमी साधु गुरु के सामने पालथी लगाकर न बैठे और न दोनों भुजाओं से घुटनों को बाँधकर बैठे तथा अविनयपूर्वक पाँव पसारकर भी नहीं बैठे ॥ १९ ॥ (चित्र देखें)

In presence of the guru a disciplined ascetic should not sit cross-legged or embracing folded legs to his chest. He should also not sit immodestly stretching his legs full length. (19)

आयरिएहिं वाहिनो, तुसिणीओ न कयाइ वि।  
पसाय-पेही नियागट्ठी, उवचिट्ठे गुरुं सया ॥ २० ॥

मोक्षार्थी तथा गुरुकृपाकांक्षी विनीत शिष्य आचार्य (गुरु) द्वारा बुलाये जाने पर चुप बैठा देखता न रहे किन्तु तुरन्त गुरु के समक्ष उपस्थित हो जाये ॥ २० ॥

A modest disciple, seeking guru's favour and salvation, should never ignore guru's call; he should respond at once and approach him. (20)

आलवन्ते लवन्ते वा, न निसीएज्ज कयाइ वि।  
चइऊणमासणं धीरो, जओ जत्तं पडिस्सुणे ॥ २१ ॥

गुरु के द्वारा एक बार अथवा बार-बार बुलाये जाने पर धैर्यशाली बुद्धिमान शिष्य बैठ न रहे; तुरन्त आसन छोड़कर यतनापूर्वक गुरु के समक्ष उपस्थित होकर उनके आदेश को स्वीकार करे ॥ २१ ॥

Irrespective of the guru calling once or repeatedly a patient and intelligent disciple should not keep sitting. He should at once leave his seat, go to the guru with due care and accept his command. (21)

आसण-गओ न पुच्छेज्जा, नेव सेज्जा-गओ कया।  
आगम्म्वकुडुओ सन्तो, पुच्छेज्जा पंजलीउडो ॥ २२ ॥

शिष्य अपने आसन अथवा शय्या पर बैठा हुआ गुरु से कोई बात न पूछे अपितु गुरु के समीप आकर और उकड़ू आसन से बैठकर तथा विनयपूर्वक अंजलिबद्ध होकर पूछे ॥ २२ ॥ (देखें प्रश्न-मुद्रा चित्र)

A disciple should never ask any question to the guru while sitting on his seat or reclining on his bed; instead he should approach the guru, squat before him, join his palms and put forth his question modestly. (22)

एवं विणय-जुत्तस्स, सुत्तं अत्थं च तदुभयं।  
पुच्छमाणस्स सीसस्स, वागरेज्ज जहासुयं ॥ २३ ॥

विनयी शिष्य के इस प्रकार, विनय से परिपूर्ण शब्दों द्वारा पूछे जाने पर गुरु भी सूत्र, अर्थ और दोनों का जैसा उन्होंने जाना-सुना हो, वैसा ही यथार्थ प्ररूपण करे ॥ २३ ॥



On being asked in humble words by a modest disciple the guru should also elaborate the text and the meaning correctly and properly as he has heard and learned (from his guru). (23)

मुसं परिहरे भिक्खू, न य ओहारिणिं वए।

भासा-दोसं परिहरे, मायं च वज्जए सया ॥ २४ ॥

भिक्षु मृषा-असत्य भाषा का त्याग कर दे और निश्चयकारी भाषा भी न बोले। भाषा के जो अन्य दोष हैं, उनका भी परित्याग कर दे तथा माया (छल-कपटपूर्ण वचन) का भी त्याग करे ॥ २४ ॥

An ascetic should always avoid falsehood as well as definitive language. He should also avoid all other faults of verbal communication as well as deceit (fraudulent language). (24)

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं, न निरट्ठं न मम्मयं।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, उभयस्सन्तरेण वा ॥ २५ ॥

भिक्षु किसी के पूछने पर भी अपने लिये, अन्य के लिये अथवा दोनों के लिये या निष्प्रयोजन ही पापकारी (सावध) वचन न बोले और न ही मर्मघाती वाणी का उच्चारण करे ॥ २५ ॥

On being asked by someone, an ascetic should not utter sinful words for his own sake, for the sake of others, for the sake of both or for no purpose at all. He should also not utter hurting or pinching words. (25)

समरेसु अगारेसु, सन्धीसु य महापहे।

एगो एगिस्थिए सद्धिं, नेव चिट्ठे न संलवे ॥ २६ ॥

लुहार की शाला अथवा ऐसे ही अन्य स्थानों में, घरों में घरों की सन्धियों और राजमार्गों पर अकेला साधु अकेली स्त्री के साथ न तो खड़ा रहे और न ही उसके साथ किसी प्रकार का वार्तालाप (बातचीत) ही करे ॥ २६ ॥

An ascetic should never stand or talk in solitude with an unescorted woman at forlorn places like black-smithy, (isolated spots in) houses, space between two houses and highways. (26)

जं मे बुद्धाणुसासन्ति, सीएण फरुसेण वा।

'मम लाभो' त्ति पेहाए, पयओ तं पडिस्सुणे ॥ २७ ॥

“गुरुजन जो मुझे मृदु अथवा कठोर शब्दों से अनुशासित करते हैं, वह मेरे ही लाभ के लिये हैं”, ऐसा सोचकर विनीत शिष्य उस अनुशासन अथवा हित-शिक्षा को सावधानी से सुनकर स्वीकार करे ॥ २७ ॥

“The discipline imposed in stern words by the seniors is, indeed, for my benefit alone”, with this thought a humble disciple should listen carefully and accept that disciplining or edifying command. (27)

अणुसासणमोवायं, दुक्कडस्स य चोयणं।

हियं तं मन्नए पण्णो, वेसं होइ असाहुणो ॥ २८ ॥





गुरुजनों (आचार्य) का कोमल अथवा कठोर अनुशासन दुष्कृत का निवारण करने वाला होता है। बुद्धिमान शिष्य उसे अपने लिये लाभकारी मानता है, जबकि वही असाधु (बुद्धि-विवेकविकल) शिष्य के लिये द्वेष का हेतु बन जाता है ॥ २८ ॥

Easy or stern discipline imposed by seniors (*acharya*) is for correcting and avoiding misconduct. A wise disciple considers it to be beneficial for him, whereas the same thing becomes a cause of antagonism to an unwise (devoid of wisdom and sagacity) disciple. (28)

हियं विगय-भया बुद्ध्या, फरुसं पि अणुसासणं।

वेसं तं होइ मूढाणं, खन्ति-सोहिकरं पयं ॥ २९ ॥

कठोर अनुशासन (शिक्षाप्रद वचन) को भी निर्भीक और तत्त्वज्ञ शिष्य अपने लिये कल्याणकारी, शान्ति और आत्म-विशुद्धि करने वाला मानते हैं; जबकि वही शिक्षापद मूर्ख-शिष्यों के लिये (गुरु के प्रति) द्वेष का कारण बन जाता है ॥ २९ ॥

Fearless and learned disciple considers stern discipline (edifying words) to be the means of gaining his own welfare, forbearance and self-purification; whereas the same thing becomes a cause of antagonism to an unwise (devoid of wisdom and sagacity) disciple. (29)

आसणे उवचिद्वेज्जा, अणुच्चे अकुए थिरे।

अप्पुट्ठाई निरुट्ठाई, निसीएज्जऽण्णकुक्कुए ॥ ३० ॥

शिष्य ऐसे आसन पर बैठे जो गुरु के आसन से नीचा हो, स्थिर हो, किसी प्रकार की आवाज न करता हो; उस आसन पर से भी शिष्य बार-बार न उठे, प्रयोजन होने पर भी कम उठे, चपलतारहित होकर स्थिरतापूर्वक बैठे ॥ ३० ॥

A disciple should take a seat that is lower than that of the guru and stable as well as soundless. He should also not rise often from that seat. Even when there is need he should get up only seldom. He should avoid fleetness and sit steadily. (30)

कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण य पडिक्कमे।

अकालं च विवज्जिता, काले कालं समायरे ॥ ३१ ॥

भिक्षु साधक नियत काल में भिक्षा के लिये जाये और नियत काल में ही प्रतिक्रमण करे। सभी कार्य नियत समय पर करे। अनियत काल में कोई भी प्रवृत्ति न करे ॥ ३१ ॥

An ascetic should move out to collect alms at proper time and should return within the prescribed time. He should perform all his duties and routine activities at prescribed time. None of his activities should be untimely. (31)

परिवाडीए न चिद्वेज्जा, भिक्खू दत्तेसणं चरे।

पडिरूवेण एसित्ता, मियं कालेण भक्खए ॥ ३२ ॥

भिक्षार्थी साधु अन्य जनों (याचकों) की पंक्ति (क्यू-Q) में खड़ा न रहे, मुनि-मर्यादा के अनुरूप गृहस्थ द्वारा दिया हुआ, एषणीय भोजन ग्रहण करे और शास्त्र में बताये गये समय में परिमित आहार करे ॥ ३२ ॥



An ascetic should not stand in a queue of other beggars. He should accept only prescribed food (and water) according to the ascetic-code. He should eat only a limited quantity of food at proper time as prescribed in scriptures. (32)

नाइदूरमणासन्ने, नन्नेसिं चक्खु-फासओ ।  
एगो चिट्ठेज्ज भत्तट्ठा, लंघिया तं नइक्कमे ॥ ३३ ॥

यदि गृहस्थ के द्वार पर पहले से ही अन्य भिक्षु (याचक) खड़े हों, तो श्रमण न उनके अति समीप और न ही अधिक दूर और न ही दाता गृहस्थ की दृष्टि के सामने खड़ा रहे। उन याचकों को लाँघकर भी आगे न जाय ॥ ३३ ॥

If other alms seekers are already standing at the gate of the donor householder, the ascetic should stand neither far nor near them. He should stand avoiding the householder's view and never rush ahead of those beggars. (33)

नाइउच्चे व नीए वा, नासन्ने नाइदूरओ ।  
फासुयं परकडं पिण्डं, पडिगाहेज्ज संजए ॥ ३४ ॥

संयमी भिक्षु प्रासुक-अचित्त तथा अन्य के लिये निर्मित (परकृत) आहार विधिपूर्वक गृहस्थ से ले किन्तु वह भोजन भी अधिक ऊँचे या अधिक नीचे स्थान से लाया हुआ न हो तथा अति दूर और अधिक पास से दिया जाने पर भी नहीं लेवे ॥ ३४ ॥

A restrained ascetic should accept, from a householder, only fault-free (*prasuk*) or lifeless (*achit*) food that was cooked for others. He should also ensure that it has neither been brought from a very high or a very low place nor from a very far or a very close place. If it is so he should not accept. (34)

अप्यपाणेऽप्यबीयमि, पडिच्छन्नमि संवुडे ।  
समयं संजए भुजे, जयं अपरिसाडियं ॥ ३५ ॥

संयत साधु प्राणि और बीजरहित, ऊपर से (छत आदि द्वारा) ढके हुये तथा दीवार से घिरे हुये (दीवार वाले) घर (मकान-स्थान) में सहधर्मी साधुओं के साथ, भूमि पर न गिरता हुआ, (प्रासुक अचित्त) खाद्य पदार्थ का विवेकपूर्वक आहार करे ॥ ३५ ॥

That restrained ascetic should eat that faultless food with other co-religionist ascetics carefully without spilling, at a house or a place with four walls and roof as well as free of living organism and seeds. (35)

सुकडे त्ति सुपक्के त्ति, सुच्छिन्ने सुहडे मडे ।  
सुणिट्ठिए सुलट्ठे त्ति, सावज्जं वज्जए मुणी ॥ ३६ ॥

आहार करते समय भी भिक्षु—'यह अच्छा बनाया है, पकाया है, काटा है, अच्छा प्रासुक बना है, बहुत ही बढ़िया स्वादिष्ट पदार्थ है', इत्यादि भोजन के विषय में सावद्यकारी वचन न बोले ॥ ३६ ॥

While eating that food an ascetic should not utter *saavadya* (sinful; liking for food being an obstacle on the spiritual path is a sinful act for an ascetic) words about the food, such as 'it is well-prepared, well cooked, nicely cut, fault-free, very tasty and delightful'. (36)



रमए पण्डिए सासं, हयं भदं व वाहए।

बालं सम्मइ सासन्तो, गलियस्सं व वाहए ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार वाहक (अश्व-शिक्षक) अच्छे घोड़े को हाँकता हुआ सुखी होता है और अड़ियल अश्व को हाँकता हुआ दुःखी होता है। उसी प्रकार गुरुजन बुद्धिमान विनीत शिष्य को शिक्षा देते हुए प्रसन्न होते हैं तथा मूर्ख अविनीत शिष्य को शिक्षा देते हुये खिन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ (चित्र देखें)

As a rider is happy riding a well trained horse and disgusted riding a stubborn horse, in the same way seniors and teachers are delighted while teaching a humble and intelligent disciple and are disturbed when teaching a foolish and immodest pupil. (37)

‘खड्डुया मे चवेडा मे, अक्कोसा य वहा य मे’।

कल्लाणमणुसासन्तो, पावदिदिठ ति मन्नई ॥ ३८ ॥

पाप दृष्टि वाला शिष्य गुरुजनों के कल्याणकारी शिक्षा शब्दों-वचनों को इस प्रकार मानता है, जैसे-ये मुझे ठोकर मारते हैं, चाँटा मारते हैं, गाली देते हैं, अपशब्द बोलते हैं, मारते-पीटते हैं-मुझे कष्ट देते हैं ॥ ३८ ॥

A disciple with sinful mindset finds the instructive commands of his teachers as if they are ‘kicking him, slapping him, abusing him, rebuking him, beating him or hurting him’. (38)

‘पुत्तो मे भाय नाइ’ ति, साहू कल्लाण मन्नई।

पावदिट्ठी उ अप्पाणं, सासं ‘दासं व’ मन्नई ॥ ३९ ॥

विनीत शिष्य (गुरुजनों के अनुशासन को) यह सोचकर स्वीकार करता है कि ये मुझे अपना पुत्र, भाई, आत्मीय समझकर कल्याणकारी शिक्षा देते हैं; जबकि पाप दृष्टि वाला अविनीत शिष्य हित-शिक्षा से शासित होने पर स्वयं को ‘दास’ के समान हीन मानता है ॥ ३९ ॥

A humble disciple accepts the discipline imposed by gurus with the view that ‘He is giving me instruction for my benefit considering me to be like his son, brother or close relative, whereas a disciple with sinful mindset when disciplined for his benefit finds himself lowly like a slave. (39)

न कोवए आयरियं, अप्पाणं पि न कोवए।

बुद्धोवघाई न सिया, न सिया तोत्तगवेसए ॥ ४० ॥

विनीत शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह गुरु को कुपित न करे और न स्वयं ही क्रोधित हो; वह गुरु के मन को क्षोभ पहुँचाने वाली (उपघात) चेष्टा न करे और न उनका छिद्रान्वेषण करता रहे ॥ ४० ॥

It is the duty of a humble disciple that he should neither make his guru angry nor get angry himself. He should shun any activity that causes anguish to the guru. He should also not be captious towards his guru and keep on finding faults. (40)

आयरियं कुवियं नच्चा, पत्तिएण पसायए।

विज्झवेज्ज पंजलिउडो, वएज्ज ‘न पुणो’ ति य ॥ ४१ ॥



यदि विनीत शिष्य अपने किसी अशोभनीय व्यवहार से यह जाने कि गुरु अप्रसन्न हैं तो तुरन्त प्रीति भरे वचनों से उन्हें प्रसन्न करे और अंजलिबद्ध होकर 'मैं फिर ऐसा कभी नहीं करूँगा'—विनम्र शब्दों से ऐसा कहे ॥ ४१ ॥

If a humble disciple perceives that his guru is displeased due to his uncouth behaviour then he should at once please the guru with gentle words and joining his palms convey with all humility—'I will never do that again'. (41)

धम्मज्जियं च व्यवहारं, बुद्धेहायरियं सया।  
तमायरन्तो व्यवहारं, गरहं नाभिगच्छई ॥४२॥

धर्म (धर्मोपासना) से युक्त (अर्जित) और तत्त्वज्ञ आचार्यों द्वारा आचरित व्यवहार का आचरण करने वाले साधक की कहीं भी—किसी भी व्यक्ति के द्वारा निन्दा नहीं की जाती ॥ ४२ ॥

An aspirant, who pursues the behaviour acquired by adhering to religious practices and practiced by enlightened *acharyas*, is nowhere slandered by anyone. (42)

मणोगयं वक्कगयं, जाणित्ताऽऽयरियस्स उ।  
तं परिगिज्झ वायाए, कम्मणा उववायए ॥ ४३॥

गुरुजनों (आचार्यों) के मनोगत और वचन के भावों को जानकर शिष्य वाणी से उन्हें स्वीकार करे और फिर आचरण में उतारे ॥ ४३ ॥

Anticipating the thoughts and words of seniors a disciple should express his assent in words and then put them in practice. (43)

वित्ते अचोइए निच्चं, खिप्पं हवइ सुचोइए।  
जहोवइट्ठं सुकयं, किच्चाइं कुव्वई सया ॥ ४४ ॥

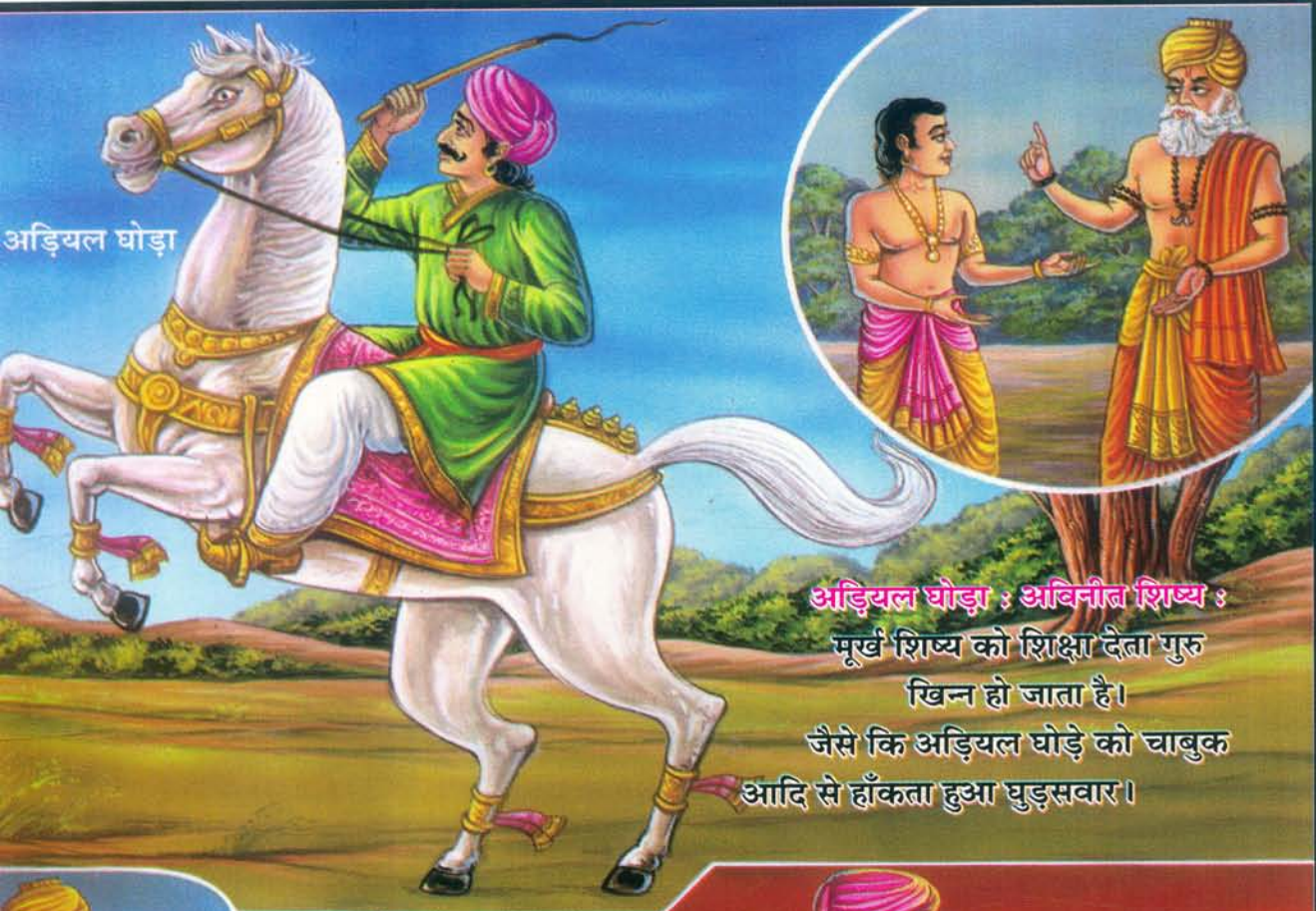
विनीत शिष्य गुरु द्वारा बिना प्रेरणा किये ही सुप्रेरित के समान कार्य करने के लिये तत्पर रहता है और गुरु द्वारा बताये गये कार्य को तो शीघ्र ही भली भाँति सम्पन्न कर देता है ॥ ४४ ॥

Even without being inspired by the guru, a modest disciple is always ready to perform his duties as if inspired. As regards an assignment by the guru, he accomplishes it with alacrity and efficiency. (44)

नच्चा नमइ मेहावी, लोए किन्ती से जायए।  
हवई किच्चाणं सरणं, भूयाणं जगई जहा ॥ ४५ ॥

जो बुद्धिमान शिष्य विनय के स्वरूप को जानकर विनम्रता धारण कर लेता है, संसार में उसका यश स्वतः बढ़ता है। जिस प्रकार प्राणियों के लिये यह पृथ्वी आधारभूत है, उसी प्रकार वह धार्मिक जनों के लिये शरणभूत होता है ॥ ४५ ॥

The wise disciple, who becomes humble by gaining complete understanding of modesty, automatically enhances his fame. He becomes refuge for all religious people, just as the earth is for all living beings. (45)



अड़ियल घोड़ा

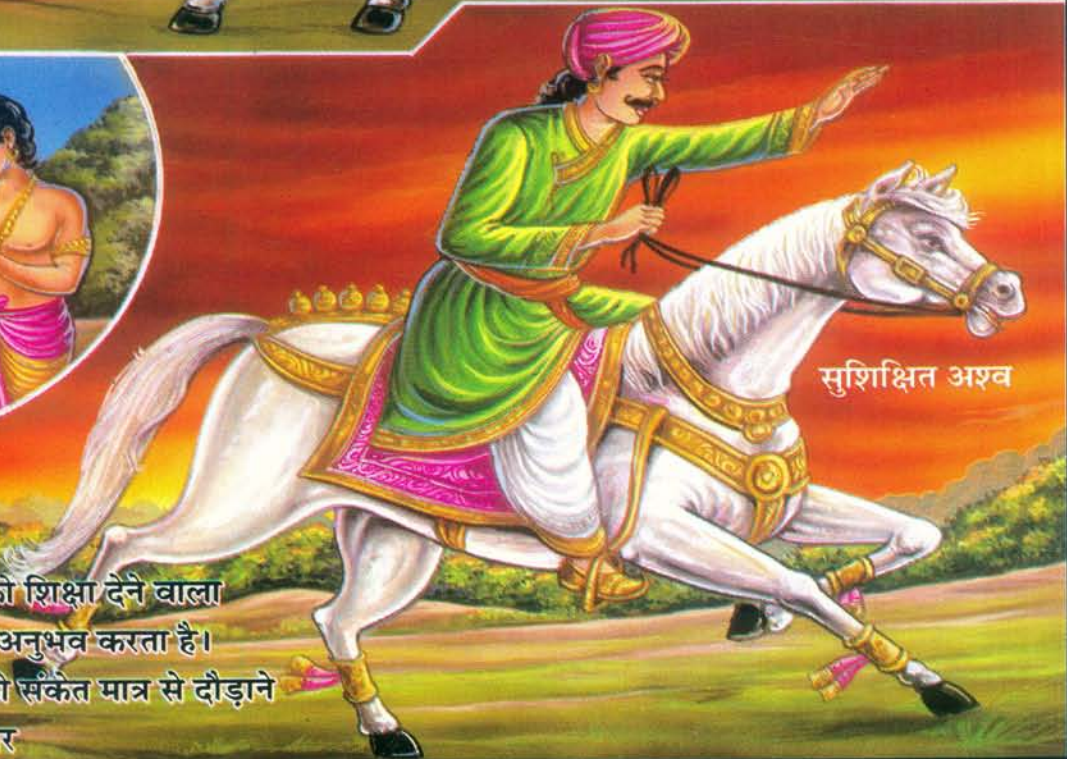
अड़ियल घोड़ा : अविनीत शिष्य :

मूर्ख शिष्य को शिक्षा देता गुरु  
खिन्न हो जाता है।

जैसे कि अड़ियल घोड़े को चाबुक  
आदि से हाँकता हुआ घुड़सवार।



बुद्धिमान शिष्य को शिक्षा देने वाला  
गुरु प्रसन्नता का अनुभव करता है।  
जैसे कि अच्छे घोड़े को संकेत मात्र से दौड़ाने  
वाला घुड़सवार



सुशिक्षित अश्व

## अविनीत शिष्य

अड़ियल घोड़े की भाँति अविनीत शिष्य को बार-बार गुरुवचन रूप चाबुक की जरूरत होती है, जबकि सुविनीत शिष्य सुशिक्षित अश्व की भाँति संकेत मात्र से सीधे रास्ते चलता रहता है।

—अध्ययन 1, सू. 37

## IMMODEST DISCIPLE

An immodest disciple needs the whip of teacher's command like an untrained horse; while a modest disciple moves, like a trained horse, by mere hints from the teacher.

—Chapter 1, aphorism 37





पुज्जा जस्स पसीयन्ति, संबुद्धा पुव्वसंथुया ।  
पसन्ना लाभइस्सन्ति, विउलं अट्ठयं सुयं ॥ ४६ ॥

शिष्य की विनम्रता आदि से परिचित हुए आचार्य आदि गुरुजन उस पर प्रसन्न होकर उसे मोक्ष का लाभ देने वाला अर्थगंभीर विपुल ज्ञान प्रदान करते हैं ॥ ४६ ॥

On being aware of modesty and other qualities of a disciple, the seniors including the *acharya* get pleased with him and happily bestow him with the vast and profoundly meaningful knowledge that leads to liberation. (46)

स पुज्जसत्थे सुविणीयसंसए, मणोरुई चिट्ठइ कम्प-संपया ।  
तवोसमायारिसमाहिसंबुडे, महज्जुई पंच वयाइं पालिया ॥ ४७ ॥

ऐसे विनीत शिष्य के शास्त्रीय ज्ञान का संसार में समादर होता है। वह (शिष्य) साधु समस्त संशयों से रहित और समस्त कर्म सम्पदा (साधुयोग्य कर्तव्य-साधु समाचारी) से युक्त हो जाता है। वह गुरु के मन को प्रियकारी होता है तथा तप के समाचरण एवं समाधि से युक्त रहता है। वह आस्रवों का निरोध (संवृत) करके पाँच महाव्रतों का पालन करता है, महान् तेजस्वी होता है ॥ ४७ ॥

The scriptural knowledge of such humble disciple begets respect in the world. That ascetic disciple becomes free of all doubts and gains the wealth of action (*karma sampada* or ascetic praxis). He becomes the source of happiness for the guru and accomplished in proper observation of austerities as well as meditation (*samaadhi*). He blocks the inflow of *karmas* and observes five great vows, thereby becoming highly effulgent. (47)

स देव-गन्धव्व-मणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मलपंकपुव्वयं ।  
सिद्धे वा हवइ सासए, देवे वा अप्परए महिइइए ॥ ४८ ॥

—त्ति बेमि ।

वह (विनीत शिष्य) देव-मानव-गंधर्वों द्वारा वन्दनीय हो जाता है तथा मल-पंक (रक्त-वीर्य) से निर्मित इस वर्तमान मानव शरीर को त्यागकर या तो शाश्वत सिद्धि प्राप्त करता है अथवा अल्पकर्म वाला महर्द्धिक देव बनता है ॥ ४८ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

He (the humble disciple) becomes venerable to gods, humans and *gandharvas* (a class of gods). On abandoning the existing human body made up of dirt and slime (blood and semen) he either attains state of eternal perfection (*siddhi*) or a highly opulent divine being (Mahardhik Dev) with a low load of *karmas*. (48)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १—“संयोग” का अर्थ आसक्तिमूलक सम्बन्ध है। वह बाह्य (परिवार तथा संपत्ति आदि) और आभ्यन्तर (विषय, कषाय आदि) के रूप में दो प्रकार का है। (सुखबोधा)

“अणगारस्स भिक्खुणो” में ‘अनगार’ और ‘भिक्षु’ दो शब्द हैं। ‘अनगार’ का अर्थ है—अगार (गृह) से रहित अर्थात् जो आहार या वसति आदि की प्राप्ति के लिये जाति, कुल आदि का परिचय देकर दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट कर आत्मीय (स्वजन) नहीं बनाता है। (वृ. वृ. श्यन्त्याचार्य)

“विनय” का एक अर्थ आचार है और दूसरा है नमन अर्थात् नम्रता।

गाथा २—“आज्ञा” और “निर्देश” समानार्थक हैं। फिर भी चूर्णि के अनुसार ‘आज्ञा’ का अर्थ होता है—“आगम का उपदेश” और ‘निर्देश’ का अर्थ होता है—“आगम से अविरुद्ध गुरुवचन”। (वृ. वृ. शा.)

“इंगित” और “आकार” शरीर की चेष्टा-विभिन्न मुद्राओं के वाचक हैं। किसी कार्य के विधि या निषेध के लिये सिर हिलाना आदि सूक्ष्म चेष्टा इंगित है और इधर-उधर दिशाओं को देखना, जँभाई लेना, आसन बदलना आदि स्थूल चेष्टायें (आकार) हैं।

“संपन्ने” का अर्थ ‘सम्पन्न’ (युक्त) भी है और ‘संप्रज्ञ’ (जानने वाला) भी। वृहद् वृत्ति में दोनों अर्थ हैं।

गाथा ५—चूर्णि के मतानुसार “कणकुण्डग” के दो अर्थ हैं—(१) चावलों की भूसी, और (२) चावल मिश्रित भूसी।

गाथा ७—“बुद्धपुत्त नियागट्ठी”—‘बुद्धपुत्र’ अर्थात् आचार्य का विनीत प्रीतिपात्र शिष्य। ‘नियागट्ठी’—निजकार्थी, आत्मार्थी। (सुखबोधा)

गाथा १०—“चण्डालियं”—इसमें “चण्ड” (क्रोध) और ‘अलीक’ (असत्य) दो शब्द हैं (चूर्णि)। क्रोध के वशीभूत होकर असत्य भाषण करना तथा क्रूर व्यवहार करना ‘चण्डालिक’ कर्म माना जाता है। (वृहद् वृत्ति)

गाथा १२—“गलियस्स” का अर्थ है—अविनीत घोड़ा।

“आकीर्णं” विनीत अश्व और बैल को कहते हैं।

गाथा १८—“कृति” का अर्थ वन्दन है। जो वन्दन के योग्य हो, वह ‘कृत्य’ अर्थात् गुरु एवं आचार्य आदि पूज्य व्यक्ति।

गाथा २६—“समर” का अर्थ—लोहार की शाला है, (चूर्णि)। लोहार की शाला तथा नाई की दुकान एवं इसी प्रकार के साधारण निम्न स्थान (वृ. वृ.) ‘समर’ का दूसरा अर्थ—युद्धभूमि है। (वृ. वृ.)

गाथा ३५—“अप्पपाण” और “अप्पबीय” में “अल्प” शब्द अभाववाची है। (वृहद् वृत्ति)

गाथा ४०—“उपघात” का अर्थ है—‘आचार्य’ आदि को मानसिक क्लेश पहुँचाना या किसी कार्य के लिये बाध्य करना। (चूर्णि)

गाथा ४७—“कर्मसंपदा” के दो अर्थ हैं—साधुओं के द्वारा समाचरित, समाचारी और योगजन्य विभूतियाँ। (वृ. वृ.)





## IMPORTANT NOTES

**Verse-1**—The word *samyoga* here means a relationship caused by infatuation. This is of two kinds—external (family, wealth etc.) and internal (passions, sensual pleasures etc.) (*Sukhabodhaa*)

The phrase *Anagaarassa bhikkhuno* has two words—*Anagaara* means one without a home and *bhikkhu* means alms seeker. Thus the meaning of this phrase is an aspirant who does not attract others by giving introduction of his caste, clan and other connections in order to get food, lodging and other facilities. (*Vrihad Vritti* by Shantyaacharya)

The term *vinaya* generally means modesty or humbleness; it also means conduct.

**Verse-2**—*Ajna* and *nirdesh* are synonyms. However, according to the commentary (*Churni*) *ajna* (command) means 'the dictate of the *Aagams*' and *nirdesh* (directions) means 'guru's words conforming to the *Aagams*'. (*V. V. S.*)

*Ingit* and *aakaar* stand for various bodily gestures. To convey the intent by subtle movement like a nod for allowing and disallowing some activity is *ingit*. Gross bodily gestures and other movements like looking in some direction, yawning and changing posture is *aakaar*.

*Sampanne* has two readings *sampannu* or endowed with; and *samprajna* or having knowledge. *Vrihad Vritti* gives both the meaning.

**Verse-5**—According to the commentary (*Churni*) there are two meanings of the word *kanakundagam*—(1) chaff of rice, and (2) rice mixed with chaff.

**Verse-7**—*Buddhaputta niyaagatthi*—Here *Buddhaputta* word stands for a favourite and modest pupil. *Niyaagatthi* means one who seeks self-realization or a spiritual aspirant. (*Sukhabodhaa*)

**Verse-10**—*Chandaaliyam*—this term is made up of two words *chand* or anger and *aleek* or falsehood (*Churni*). To speak untruth and be barbaric under the influence of anger is called a *chandaalik* act. (*Vrihad Vritti*)

**Verse-12**—*Galiyassa* means a stubborn horse.

A disciplined horse or ox is called *aakirna*.

**Verse-18**—*Kriti* means obeisance or homage. One who is venerable is called *kritya*. This includes guru, preceptor and other seniors and respectable persons.

**Verse-26**—*Samara* means black-smithy (*Churni*). It also means barber's shop and other such places of lowly profession. This term also means battle field. (*V. V.*)

**Verse-35**—In the terms *appa-paan* and *appa-biyu* the prefix *appa* conveys absence or being devoid of. (*V. V.*)

**Verse-40**—*Upaghaat* means to cause emotional hurt to seniors like *acharya*; or to compel them to do something. (*Churni*)

**Verse-47**—*Karamasampada* has two meanings—ascetic-praxis or the conduct followed by ascetics as a routine; and special powers acquired through practice of yoga. (*V. V.*)



## द्वितीय अध्ययन : परीषह प्रविभक्ति

### पूर्वालोक

उत्तराध्ययनसूत्र के प्रस्तुत द्वितीय अध्ययन का नाम परीषह प्रविभक्ति है। परीषह का अर्थ है—स्वीकृत मोक्षमार्ग से न डिगते हुये, आये हुये कष्टों को समभावपूर्वक सहन करना।

इससे पहले विनय श्रुत अध्ययन में साधक शिष्य को विनय-अनुशासन, सदाचार आदि की प्रेरणा दी गई थी। विनय में परिपक्व साधक अनुशासित तो होता ही है, साथ ही उसमें धीरता, गंभीरता, साहस आदि गुणों का भी संचार हो जाता है। वह निर्भय, निःशंक और कष्ट-सहिष्णु बन जाता है।

अपने इन्हीं गुणों के कारण वह परीषह-विजेता बनता है।

परीषह वे कष्ट हैं, जो परिस्थितियों, ऋतुओं, मनुष्यों, देवों, तिर्यचों आदि की प्रतिकूलता के कारण आते हैं। यद्यपि इनमें मूल कारण तो साधक के अपने पूर्वकृत कर्म ही होते हैं लेकिन बाह्य निमित्त परिस्थितियाँ आदि होते हैं।

साधक न तो कष्टों को आमंत्रण देता है, न शरीर व इन्द्रियों को स्वयं ही कष्टित करता है और न ही परीषहों को बेबस होकर सहन करता है। वे तो स्वयं ही उपस्थित होते हैं; किन्तु दृढ़ मनोबली साधक इनसे संत्रस्त और पराजित नहीं होता, आर्त्तध्यान नहीं करता, संक्लेश नहीं करता; अपितु इन्हें समभाव से सहन करता है।

परीषह अनुकूल भी होते हैं और प्रतिकूल भी; जिन्हें शीत और उष्ण परीषह भी कहा गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में २२ परीषहों का वर्णन है, जिनमें स्त्री और सत्कार-ये दो परीषह अनुकूल अथवा शीत परीषह हैं और शेष २० प्रतिकूल अथवा उष्ण परीषह हैं।

इन अनुकूल और प्रतिकूल परीषहों को समभावपूर्वक सहना साधक जीवन की कसौटी है कि इसकी साधना की जड़ें कितनी गहरी हैं और मोक्षमार्ग पर चलने की दृढ़ता कितनी मजबूत है।

इन २२ परीषहों में प्रज्ञा और अज्ञान का कारण ज्ञानावरणीय कर्म; अलाभ का कारण अन्तराय कर्म; अरति, अचेल, स्त्री, निषधा, याचना, आक्रोश, सत्कार-पुरस्कार का कारण चारित्रमोहनीय कर्म, दर्शन परीषह का कारण दर्शनमोहनीय कर्म तथा शेष परीषहों का कारण वेदनीय कर्म है।

आगम विज्ञों का मत है कि प्रस्तुत अध्ययन कर्मप्रवाद पूर्व के १७वें प्राभृत से उद्घृत है।

प्रस्तुत अध्ययन में परीषहों के सन्दर्भ में संयमी साधक की जीवनचर्या का सर्वांगपूर्ण विवेचन है।

इस अध्ययन में ३ सूत्र और ४६ गाथाएँ हैं।



## DVITIYA ADHYAYAN : PARISHAH PRAVIBHAKTI

### Foreview

The title of this chapter is Classification of Afflictions. In present context affliction specifies those that are endured with equanimity without drifting from the accepted path of liberation.

The preceding chapter, Vinaya Shrut, inspires the practicing disciple to observe modesty, discipline, right conduct and other codes. An aspirant mature in modesty automatically becomes disciplined, at the same time he is infused with virtues patience, sobriety and courage. He becomes fearless, doubt-free and pain-enduring.

These qualities make him a victor of afflictions.

Afflictions are the torments caused by hostile circumstances, weather conditions, human beings, divine beings, animals and such like. The root cause of all these is the *karmic* bondage acquired by the aspirant in the past but the apparent causes are the said circumstances etc.

The aspirant neither invites troubles, nor does he torment his own body and sense organs, or tolerate afflictions helplessly. They come about on their own but an aspirant endowed with strong will power is not oppressed or defeated; he is neither distressed nor dejected; instead, he endures them with equanimity.

Afflictions are favourable as well as unfavourable. They are also called cool and warm afflictions.

This chapter has description of 22 afflictions, of these woman and hospitality related afflictions are favourable or cool (apparently pleasant but harmful) and the remaining 20 afflictions are unfavourable or warm (apparently unpleasant, also harmful).

Endurance for these favourable and unfavourable afflictions with equanimity is the yardstick of the profoundness of the spiritual practices of an aspirant as well as that of the strength of his resolve to tread the spiritual path leading to liberation.

The root causes of the 22 afflictions are as follows—intellect and ignorance related afflictions are caused by the knowledge obscuring *karma* (*Jnanavaraniya karma*); non-gain related afflictions are caused by power hindering *karma* (*Antaraya karma*); spiritual apathy, nakedness, woman, resting place, begging, anger, hospitality and award related afflictions are caused by conduct deluding *karma* (*Chaaritra Mohaniya karma*); perception/faith related afflictions are caused by perception/faith deluding *karma* (*Darshan Mohaniya karma*); and all other afflictions are caused by pain or pleasure imparting *karma* (*Vedaniya karma*).

Scholars of Jain canons opine that this chapter has been excerpted from the 17<sup>th</sup> section of *Karmapravaada purva* (one of the 14 extinct subtle canons).

This chapter presents thorough description of the praxis of a disciplined ascetic in context of afflictions.

This chapter contains 3 maxims and 46 verses.





वीयं अज्झयणं : परीसह पविभ्रत्ती

द्वितीय अध्ययन : परीषह प्रविभक्ति

Chapter-2 : CLASSIFICATION OF AFFLICTIONS

सूत्र १—सुयं मे, आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—

इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा।

सूत्र १—(श्री सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं) हे आयुष्मन्! मैंने सुना है कि भगवान महावीर ने ऐसा कहा है—

काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने (साधु जीवन में आने वाले) २२ परीषहों का वर्णन किया है। इन्हें सुनकर, जानकर, जीतकर, बार-बार के अभ्यास द्वारा परिचित कर, उनकी प्रबलता को परास्त कर भिक्षाचर्या के लिये घूमता हुआ साधु (भिक्षु) इन परीषहों के आने (स्पृष्ट होने) पर भी अपनी संयम यात्रा से विचलित नहीं होता।

**Maxim 1—**(Sudharma Swami says to Jambu Swami) O long lived one! I have heard that Shraman Bhagavan Mahavir of Kashyapa *gotra* (clan) has described twenty two afflictions (related to ascetic life). Hearing about them, knowing and conquering them, comprehending them through repeated practice and subduing their intensity, an ascetic does not waver from his ascetic-discipline (*samyam*) even when he comes across these afflictions while wandering for alms-seeking.

सूत्र २—कयरे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा।

सूत्र २—(जम्बू स्वामी की जिज्ञासा) (भगवन्!) काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर द्वारा कहे हुये वे २२ परीषह कौन से हैं, जिन्हें सुनकर, जानकर अभ्यास द्वारा परिचित कर, जीतकर, उनकी प्रबलता को कम करके भिक्षाचर्या हेतु घूमता हुआ भिक्षु उनसे आक्रान्त होने पर भी अपनी संयम यात्रा से विचलित नहीं होता।

**Maxim 2—**(Jambu Swami's inquiry, "Bhante!") Which are those twenty two afflictions (related to ascetic life) that Shraman Bhagavan Mahavir of Kashyapa *gotra* (clan) has described. Hearing about them, knowing and conquering them, comprehending them through repeated practice, and subduing their intensity, an ascetic does not waver from his ascetic-discipline even when he comes across these afflictions while wandering for alms-seeking.

सूत्र ३—इमे खलु ते बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा, नच्चा, जिच्चा, अभिभूय, भिक्खायरियाए परिव्वयन्तो पुट्ठो नो विहन्नेज्जा, तं जहा—



सूत्र ३—(सुधर्मा स्वामी कहते हैं) काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर द्वारा कहे हुये २२ परीषह, जिन्हें सुनकर, जानकर, अभ्यास द्वारा परिचित कर, जीतकर, उनकी प्रबलता को सहनीय बनाकर भिक्षा हेतु पर्यटन करता हुआ भिक्षु इनसे आक्रान्त होने पर भी अपने संयम मार्ग से विचलित नहीं होता; वे २२ परीषह इस प्रकार हैं—

**Maxim 3—**(Sudharma Swami's reply) The twenty two afflictions (related to ascetic life) described by Shraman Bhagavan Mahavir of Kashyapa *gotra* (clan); by hearing about which, knowing and conquering which, comprehending which through repeated practice and subduing their intensity, an ascetic does not waver from his ascetic-discipline (*samyam*) even when he comes across these afflictions while wandering for alms-seeking; are as follows—

१. दिगिच्छा-परीसहे	२. पिवासा-परीसहे	३. सीय-परीसहे
४. उस्सिण-परीसहे	५. दंस-मसय-परीसहे	६. अचेल-परीसहे
७. अरइ-परीसहे	८. इत्थी-परीसहे	९. चरिया-परीसहे
१०. निसीहिंया-परीसहे	११. सेज्जा-परीसहे	१२. अक्कोस-परीसहे
१३. वह-परीसहे	१४. जायणा-परीसहे	१५. अलाभ-परीसहे
१६. रोग-परीसहे	१७. तण-फास-परीसहे	१६. जल्ल-परीसहे
१९. सक्कार-पुरक्कार-परीसहे	२०. पन्ना-परीसहे	२१. अत्राण-परीसहे
२२. दंसण-परीसहे।		
(१) क्षुधा परीषह	(२) पिपासा परीसह	(३) शीत परीषह
(४) उष्ण परीषह	(५) दंस-मशक परीषह	(६) अचेल परीषह
(७) अरति परीषह	(८) स्त्री परीषह	(९) चर्या परीषह
(१०) निषद्या परीषह	(११) शय्या परीषह	(१२) आक्रोश परीषह
(१३) वध परीषह	(१४) याचना परीषह	(१५) अलाभ परीषह
(१६) रोग परीषह	(१७) तृण-स्पर्श परीषह	(१६) जल्ल परीषह
(१९) सत्कार-पुरस्कार परीषह	(२०) प्रज्ञा परीषह	(२१) अज्ञान परीषह
(२२) दर्शन परीषह।		

(1) *Kshudha-parishaha* (affliction of hunger), (2) *Pipasa-parishaha* (affliction of thirst), (3) *Sheet-parishaha* (affliction of cold), (4) *Ushna-parishaha* (affliction of heat), (5) *Damsh-mashak-parishaha* (affliction of sting), (6) *Achela-parishaha* (garb related affliction), (7) *Arati-parishaha* (affliction related to disturbance in ascetic-discipline), (8) *Stree-parishaha* (affliction related to opposite sex), (9) *Charya-parishaha* (movement or wandering related affliction), (10) *Nishadya-parishaha* (accommodation related affliction), (11) *Shayya-parishaha* (place of stay or accommodation related affliction), (12) *Aukrosh-parishaha* (insult related affliction), (13) *Vadh-parishaha* (punishment related affliction), (14) *Yaachana-parishaha* (affliction related to alms-seeking), (15) *Alaabh-parishaha* (affliction of non-attainment), (16) *Roag-parishaha* (ailment related affliction), (17) *Trina-sparsh-parishaha* (hay or straw related affliction), (18) *Jalla-parishaha* (dirt or slime related affliction), (19)



*Satkaar-puraskaar-parishaha* (affliction related to honour and prize), (20) *Prajna-parishaha* (enlightenment related affliction), (21) *Jnana-parishaha* (knowledge related affliction or ignorance), (22) *Darshan-parishaha* (conduct related affliction).

परीसहाणं पविभन्ती, कासवेणं पवेइया ।  
तं मे उदाहरिस्सामि, आणुपुब्बिं सुणेह मे ॥ १ ॥

काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने परीषहों के जो विभागशः भेद बताए हैं, वे मैं तुम्हें कहता हूँ। तुम क्रमशः मुझसे सुनो ॥ १ ॥

Now I tell you the classification of the afflictions as told by Kashyap Gotriya Shraman Bhagavan Mahavir in proper order. Listen to me. (1)

### १. क्षुधा परीषह

दिगिंछा-परिगए देहे, तवस्सी भिक्खु थामवं ।  
न छिन्दे, न छिन्दावए, न पए न पयावए ॥ २ ॥  
काली-पव्वंग-संकासे, किसे धमणि-संतए ।  
मायन्ने असण-पाणस्स, अदीण-मणसो चरे ॥ ३ ॥

अत्यधिक क्षुधा की वेदना होने पर भी दृढ़ मनोबली तपस्वी न स्वयं फलों का छेदन (वृक्ष से फल तोड़ना) करे, न किसी अन्य से छेदन करावे और न स्वयं पकाये, न किसी अन्य से पकवाये ॥ २ ॥

दीर्घकाल की क्षुधा के कारण कौए की जाँघ के समान शरीर अत्यन्त दुर्बल (दुबला) और कृश हो जाए, धमनियों (शरीर का नसा-जाल) साफ दिखाई देने लगे, फिर भी अशन-पान (आहार-पानी) की मर्यादा को जानने वाला साधु दीनभाव से रहित होकर संयम यात्रा में विचरण करे ॥ ३ ॥

#### 1. Kshudha-parishaha (Affliction of hunger)

In spite of the agony of hunger an ascetic with strong will power should neither pluck fruits from tree himself nor get them plucked by others; neither should he cook them himself nor get them cooked by others. (2)

Due to prolonged hunger even if the body gets extremely weak and lean having prominent and visible veins, like limbs of a crow, an ascetic, aware of the limits of food and water, should continue practicing his ascetic-discipline (*samyam*) without a feeling of dismay. (3)

### २. पिपासा (तृषा) परीषह

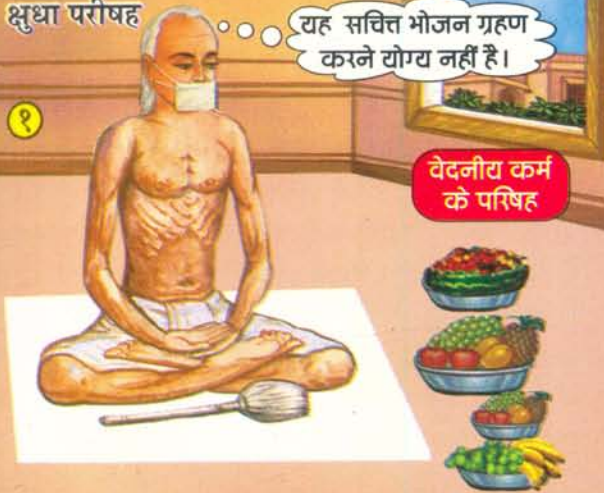
तओ पुट्ठो पिवासाए, दोगुंछी लज्ज-संजए ।  
सीओदगं न सेविज्जा, वियडस्सेसणं चरे ॥ ४ ॥  
छिन्नावाएसु पन्थेसु, आउरे सुपिवासिए ।  
परिसुक्क-मुहेऽदीणे, तं तितिक्खे परीसहं ॥ ५ ॥

असंयम से दूर रहने वाला लज्जालु संयमी भिक्षु प्यास से अत्यन्त पीड़ित होता हुआ भी शीतल जल (सचित्त जल) का सेवन न करे; अपितु अचित्त-प्रासुक जल की गवेषणा करे ॥ ४ ॥

क्षुधा परीषह

१

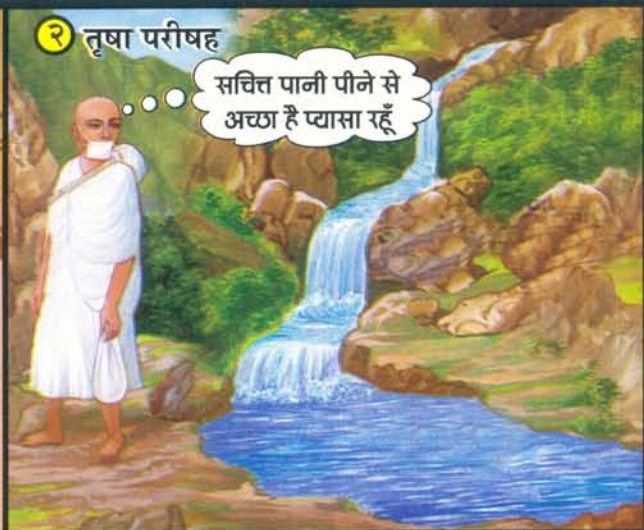
यह सचित भोजन ग्रहण करने योग्य नहीं है।



वेदनीय कर्म के परिषह

२ तृषा परीषह

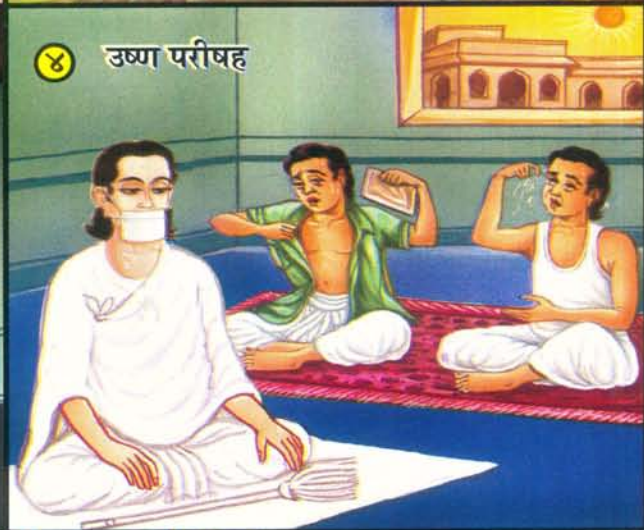
सचित पानी पीने से अच्छा है प्यासा रहूँ



३ शीत परीषह

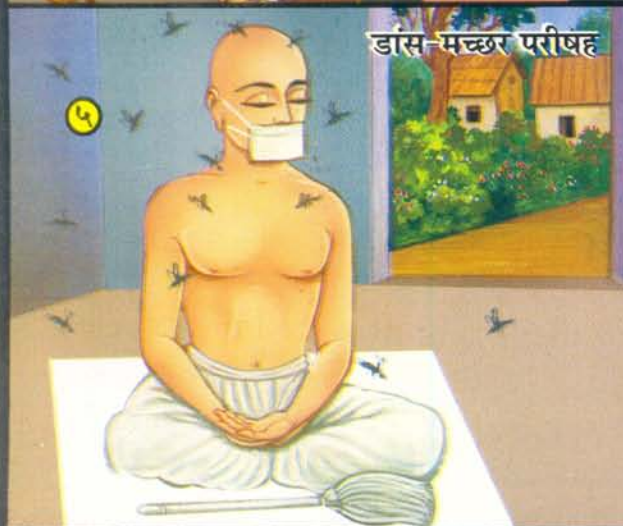


४ उष्ण परीषह



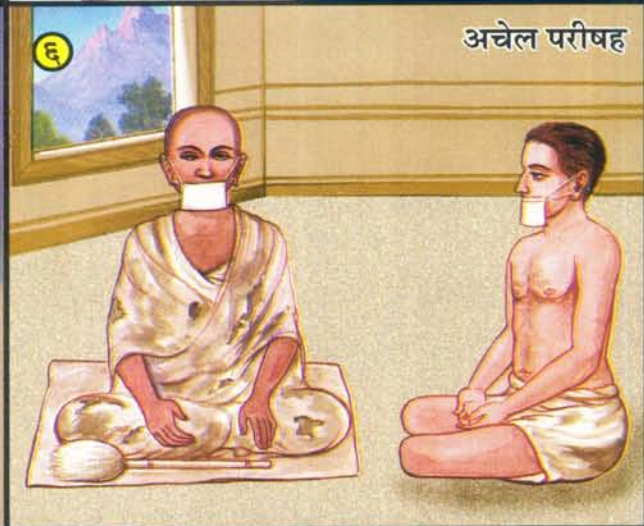
डांस-मच्छर परीषह

५



६

अचेल परीषह



## 22 परीषह - 1

भगवान महावीर स्वामी ने साधु जीवन के 22 परीषह बताये हैं। साधु इन परीषहों को समभावपूर्वक सहे। जिसमें से प्रथम 6 परीषह पीछे चित्र में दिये गये हैं।

1. क्षुधा परीषह—क्षुधा आदि परीषह उत्पन्न होने पर मुनि समभावपूर्वक उसे सहन करे।
2. तृषा परीषह—संयमी भिक्षु अत्यन्त प्यासा होने पर भी सचित्त जल का सेवन न करे। तृषा समभावपूर्वक सहे।
3. शीत परीषह—शीत से पीड़ित साधु उसे समभावपूर्वक सहन करे।
4. उष्ण परीषह—अत्यधिक गर्मी होने पर भी श्रमण व्याकुल न हो।
5. दंश-मशक परीषह—मच्छर-डांस का उपद्रव होने पर भी उन्हें न मारे। न मन में द्वेष रखे। उनके द्वारा दी जाने वाली पीड़ा समभावपूर्वक सहे।
6. अचेल परीषह—जीर्ण वस्त्र होने पर भी वह दुःख न करे।

—अध्ययन 2, सू. 2-13

## 22 AFFLICTIONS - 1

Bhagavan Mahavir has described twenty two afflictions of ascetic life. He should bear these with even-mind. First six of these are given in the illustration.

- (1) **Affliction of hunger**—An ascetic should endure this affliction with equanimity.
- (2) **Affliction of thirst**—An ascetic should endure this affliction with equanimity. He should not drink contaminated water even when thirsty.
- (3) **Affliction of cold**—An ascetic should endure affliction of cold with equanimity.
- (4) **Affliction of heat**—An ascetic should not get disturbed even when it is too hot.
- (5) **Affliction of sting**—An ascetic should endure this affliction with equanimity. He should neither kill nor hate the insects even when they sting.
- (6) **Garb related affliction**—An ascetic should not be sad if he has tattered garb.

—Chapter 2, Aphorism 2-13





निर्जन एकान्त पथों में भी तीव्र तृषा से व्याकुल होने पर, यहाँ तक कि मुँह (कण्ठ) सूख जाने पर भी साधु दीनभाव से रहित होकर तृषा की पीड़ा को सहन करे ॥ ५ ॥

### 2. Pipasa-parishaha (Affliction of thirst)

An ascetic, apprehensive of any lapse in ascetic-discipline, should not drink cool water (natural and *sachit* or infested with living organism) even when tormented by thirst, instead he should search for pure water (*achit* or free of living organism). (4)

Even while wandering on desolate paths and tortured by extreme thirst, so much so that his mouth gets dry, an ascetic should endure the affliction of thirst without a feeling of dismay. (5)

### ३. शीत परीषह

चरन्तं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया ।  
नाइवेलं मुणी गच्छे, सोच्चाणं जिणसासणं ॥ ६ ॥  
'न मे निवारणं अत्थि, छवित्ताणं न विज्जई ।  
अहं तु अग्गिं सेवामि'—इह भिक्खू न चिन्तए ॥ ७ ॥

पार्श्वों से विरक्त और (स्निग्ध भोजन न करने के कारण) रूक्ष शरीर वाला साधु विचरण करते हुये कभी शीत (ठंड) से पीड़ित हो जाये तो भी जिनशासन (वीतराग के उपदेशों) को सुन-समझकर स्वाध्याय आदि साधुचर्या के काल का उल्लंघन न करे—यथाकाल साधु-नियमों का पालन करे ॥ ६ ॥

शीत की अधिकता से पीड़ित मुनि ऐसा न सोचे कि 'मेरे पास शीत की बाधा का निवारण करने के लिये न तो अच्छा मकान है और न कंबल आदि ही है; न अग्नि का सेवन करके शीत की बाधा को शांत कर लूँ' ॥ ७ ॥

### 3. Sheet-parishaha (Affliction of cold)

If an ascetic, averse to sins and with parched body (due to avoiding fatty food), happens to be oppressed by cold while wandering, even then, being aware of and familiar with the Jain Order (the preaching of the detached one), he should not neglect the schedule of ascetic praxis including self-study (he should stick to the schedule of ascetic code). (6)

Tormented by extreme cold the ascetic should not think that—'I neither have proper shelter, nor a blanket or other form of protection against the discomfort of cold, as such why not lit fire to remove this discomfort of cold?' (7)

### ४. उष्ण परीषह

उसिण-परियावेणं, परिदाहेण तज्जिए ।  
धिंसु वा परियावेणं, सायं नो परिदेवए ॥ ८ ॥  
उण्हाहितत्ते मेहावी, सिणाणं नो वि पत्थए ।  
गायं नो परिसिंचेज्जा, न वीएज्जा य अप्पयं ॥ ९ ॥



तपी हुई गर्म भूमि, शिला, लू (गर्म वायु) के परिताप से, शरीर या तृषा के दाह से, ग्रीष्मकालीन सूर्य के प्रचण्ड ताप से पीड़ित होता हुआ श्रमण सात (शीत स्पर्श से प्राप्त सुख) के लिए आकुल-व्याकुल न बने ॥ ८ ॥

मेधावी श्रमण अत्यधिक गर्मी के ताप से तप्त होने पर भी न तो स्नान की इच्छा करे और न ही शरीर को जल से सौंचे-गीला करे और न पंखे आदि से हवा ही करे ॥ ९ ॥

#### 4. Ushna-parishaha (Affliction of heat)

Tortured by scorched ground or rock, hot wind, parched body and throat and blazing summer sun, an ascetic should not get anxious and eager for relief (comfort of cool touch). (8)

An accomplished ascetic, though parched by excessive heat, should neither desire for a bath, nor wet his body with water, or even fan himself. (9)

#### ५. दंश-मशक परीषह

पुट्ठो य दंस-मसएहिं, समरेव महामुणी ।  
नागो संगाम-सीसे वा, सूरु अभिहणे परं ॥ १० ॥  
न संतसे न वारेज्जा, मणं पि न पओसए ।  
उवेहे न हणे पाणे, भुंजन्ते मंस-सोणियं ॥ ११ ॥

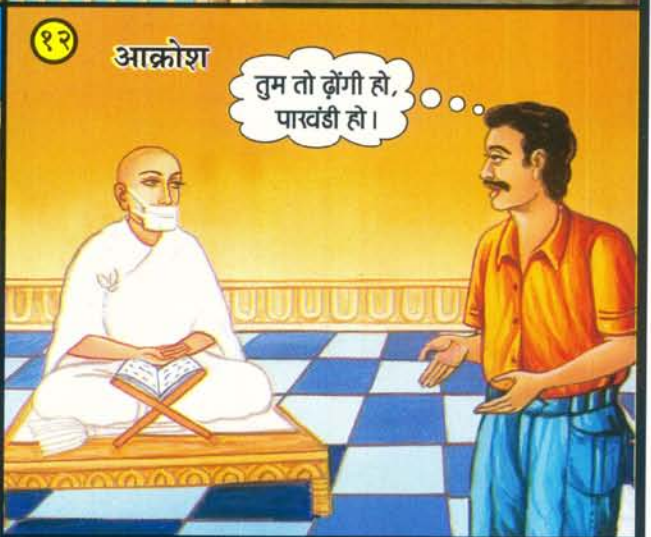
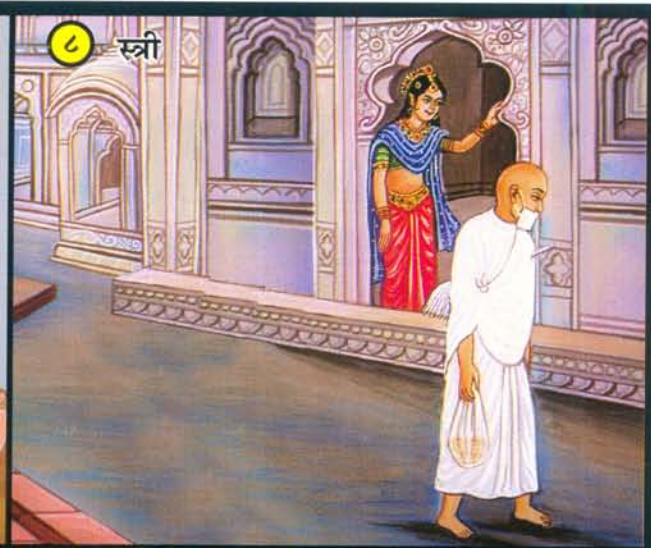
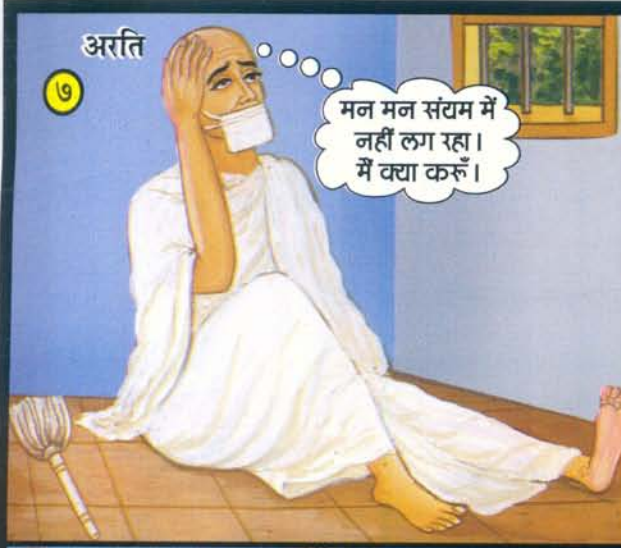
डांस-मच्छरों (चींटी आदि क्षुद्र तथा सूक्ष्म जंतुओं) का उपद्रव होने पर भी महामुनि अपने समभाव में स्थिर रहे। जिस प्रकार रणक्षेत्र में गजराज बाणों की परवाह नहीं करता हुआ शत्रुओं का विध्वंस करता है, उसी प्रकार महामुनि परीषहों पर विजय प्राप्त करके राग-द्वेष, कषाय, कर्म आदि आन्तरिक शत्रुओं का हनन करे ॥ १० ॥

डांस-मच्छरों के परीषह पर विजय प्राप्त करने वाला मुनि उनके द्वारा दी जाने वाली पीड़ा से उद्विग्न न हो। न उन्हें हटाए, न उनके प्रति मन में द्वेष ही करे। यहाँ तक कि यदि वे उसका माँस काटें, रक्त पीवें तो भी उन्हें मारे नहीं, उनके प्रति उपेक्षाभाव रखे ॥ ११ ॥

#### 5. Damsh-mashak-parishaha (Affliction of sting)

Even when afflicted by stings of mosquitoes (and other insects) a great ascetic should remain equanimous. As a bull elephant undisturbed by arrows in a battlefield continues to trample enemies, in the same way, undisturbed by afflictions, a great ascetic should relentlessly destroy inner foes like attachment, aversion, passions and *karma*. (10)

An ascetic practicing such endurance should not get agitated by the pain caused by them. He should neither push them off, nor resent them. Even if they bite his flesh and suck his blood, he should not kill them, only become indifferent toward them. (11)



## 22 परीषह - 2

7. अरति परीषह—संयम के प्रति अरुचि उत्पन्न न करे।
8. स्त्री परीषह—स्त्री परीषह आदि के समय मुनि आत्म-स्वरूप में लीन रहता हुआ उन्हें समतापूर्वक सहन करें।
9. चर्या परीषह—विहार की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर साधु गृह-बन्धन से मुक्त हो परिभ्रमण करे।
10. निषट्टा परीषह—अनिष्ट की आशंका से भयमुक्त साधु श्मशान, सूने घर, तरुमूल में अकेला ही समभावपूर्वक बैठे।
11. शय्या परीषह—शयन सम्बन्धी कठिनाइयों, जैसे—ऊँचा-नीचा स्थान, अच्छी-बुरी शय्या आदि मिलने पर साधु खेद न करे। समभावपूर्वक शयन करे।
12. आक्रोश परीषह—क्रोध का निमित्त मिलने पर भी क्रोध पर विजय पाये। कटु वचनों को भी समभावपूर्वक सहे।

—अध्ययन 2, सू. 14-25

## 22 AFFLICTIONS - 2

An ascetic should endure the following affliction with equanimity —

- (7) Affliction related to disturbance in ascetic-discipline.
- (8) Affliction related to opposite sex.
- (9) Movement or wandering related affliction.
- (10) Accommodation related affliction.
- (11) Place of stay or accommodation related affliction.
- (12) Insult related affliction.

— Chapter 2, Aphorism 14-25



### ६. अचेल परीषह

‘परिजुण्णोहि वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए’ ।  
 अदुवा ‘सचेलए होक्खं’, इइ भिक्खू न चिन्तए ॥ १२ ॥  
 ‘एगयाऽचेलए होइ, सचेले यावि एगया’ ।  
 एयं धम्महियं नच्चा, नाणी नो परिदेवए ॥ १३ ॥

वस्त्रों के अधिक जीर्ण हो जाने-फट जाने से मैं अचेलक हो जाऊँगा अथवा नये वस्त्र मिल जाने से सचेलक (नये वस्त्रधारी) बन जाऊँगा-श्रमण इस प्रकार का विचार न करे ॥ १२ ॥

परिस्थितियों के कारण ‘साधु कभी अचेलक भी होता है और कभी सचेलक भी होता है।’ दोनों ही स्थितियों को धर्म के लिये हितकारी मानकर ज्ञानी श्रमण कभी आकुल-व्याकुल न हो, दुःख न करे ॥ १३ ॥

### 6. Achela-parishaha (Garb related affliction)

An ascetic should not entertain such thoughts—‘If my garb gets torn and tattered I will become a garbless ascetic (*achelak* or sky-clad).’ or ‘If I get new garb I will become a cloth-clad ascetic (*sachelak*).’ (12)

Depending on circumstances, an ascetic is sometimes sky-clad and sometimes cloth-clad. Considering both the conditions equally conducive to religious practices an enlightened ascetic should never be disturbed or sad. (13)

### ७. अरति परीषह

ग्रामाणुग्रामं रीयन्तं, अणगारं अकिंचणं ।  
 अरइं अणुप्पविसे, तं तितिक्खे परीसहं ॥ १४ ॥  
 अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आय-रक्खिणए ।  
 धम्मरामे निरारम्भे, उवसन्ते मुणी चरे ॥ १५ ॥

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुये अनिकेत अकिंचन श्रमण के मन-मस्तिष्क में कभी संयम के प्रति अरति (अरुचि) उत्पन्न हो जाये तो उस परीषह को समभाव से सहे ॥ १४ ॥

विषयों से विरक्त, आरम्भत्यागी, आत्मरक्षक मुनि अरतिभाव को दूर कर धर्मरूपी उद्यान में स्थिर होकर उपशमभावों में रमण करे ॥ १५ ॥

### 7. Arati-parishaha (Affliction related to disturbance in ascetic-discipline)

Wandering from village to village if on occasion an ascetic, without money and shelter, is mentally plagued by apathy for ascetic-discipline (*samyam*), he should endure this affliction with equanimity. (14)

An ascetic, who is passive to sensual pleasures, renounces sins and is self-protecting, should remove the apathy, remain firmly in the garden of religion and indulge in pacification of passions. (15)



## ८. स्त्री परीषह

‘संगो एस मणुस्साणं, जाओ लोगंमि इत्थिओ’।  
जस्स एया परित्राया, सुकडं तस्स सामण्णं ॥ १६ ॥  
एवमादाय मेहावी, ‘पंकभूया उ इत्थिओ’।  
नो ताहिं विणिहन्नेज्जा, चरेज्जत्तगवेसए ॥ १७ ॥

जो साधु ऐसा जानता है कि संसार में पुरुष के लिये स्त्रियाँ बंधन का बहुत ही प्रबल कारण हैं (उनके प्रति विरक्त-बुद्धि से) उस साधु का श्रमणत्व सफल हो जाता है ॥ १६ ॥

‘स्त्रियाँ ब्रह्मचारी के लिये दल-दल के समान हैं’ इस तथ्य को भली भाँति जानकर मेधावी साधु उन (स्त्रियों) के द्वारा अपने संयम का घात न होने दे और सदा आत्मस्वरूप की गवेषणा करे ॥ १७ ॥

## 8. Stree-parishaha (Affliction related to opposite sex)

Accomplished is the asceticism of the ascetic who realizes that women are the most potent cause of bondage (*karmic*) to bind a man (thereby achieving apathy for them). (16)

‘Women are like a quagmire for a celibate,’ knowing this fact fully a wise ascetic should not allow them (the women) to damage his ascetic-discipline (*samyam*) and continue to explore the pristine form of self (soul). (17)

## ९. चर्या परीषह

एग एव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे।  
गामे वा नगरे वावि, निगमे वा रायहाणिए ॥ १८ ॥  
असमाणो चरे भिक्खू, नेव कुज्जा परिग्गहं।  
असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिएओ परिच्चए ॥ १९ ॥

निर्दोषचर्या से विभूषित-प्रशंसित (लाढ) साधु परीषहों पर विजय प्राप्त करके ग्राम में, नगर में, व्यापारिक मंडी में, राजधानी आदि में अकेला ही विचरण करे ॥ १८ ॥

भिक्षु असाधारण (आम आदमी से अलग) होकर विचरण करे। परिग्रह नहीं करे, गृहस्थों के प्रति ममत्वभाव न रखे, उनसे अलिप्त रहे तथा अनिकेत गृह-बन्धनों से मुक्त होकर परिभ्रमण करे ॥ १९ ॥

## 9. Charya-parishaha (Movement or wandering related affliction)

Endowed with faultless conduct an ascetic should win over afflictions and wander about in village, town, market place, capital city and other such places. (18)

An ascetic should be unusual in his movement (different from common man). He should remain itinerant avoiding possessions, being free from fondness for householders and having no attachment for a fixed abode. (19)



### १०. निषद्या परीषह

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्ख-मूले व एगओ ।  
अकुक्कुओ निसीएज्जा, न य वित्तासए परं ॥ २० ॥  
तत्थ से चिट्ठमाणस्स, उवसग्गाभिधारए ।  
संका-भीओ न गच्छेज्जा, उट्ठत्ता अन्नमासणं ॥ २१ ॥

श्मशान, सूने घर, तरुमूल में अकेला ही साधु अचपल होकर बैठे, किन्तु किसी प्राणी को किंचित् भी भयभीत न करे ॥ २० ॥

यदि उन स्थानों पर (ध्यानस्थ) बैठे साधु को किसी प्रकार का उपसर्ग (मनुष्य-देव-तिर्यच सम्बन्धी) आ जाये तो उसे समभाव से धारण करे, सहै; अनिष्ट की शंका से भयभीत होकर उस स्थान से उठकर अन्यत्र न जाये ॥ २१ ॥

### 10. Nishadya-parishaha (Accommodation related affliction)

At a funeral ground or a deserted house or under a tree an ascetic should sit unmoving and he should be careful not to cause even slightest fear to any other living being. (20)

If sitting (in meditation) at such places he happens to face any affliction (caused by humans, divine beings or animals), he should endure the same with equanimity. He should not get up and move to some other place out of apprehension of any harm. (21)

### ११. शय्या परीषह

उच्चावयाहिं सेज्जाहिं, तवस्सी भिक्खु थामवं ।  
नाइवेलं विहन्नेजा, पावदिट्ठी विहन्नई ॥ २२ ॥  
पइरिक्कुवस्सयं लद्धं, कल्लाणं अदु पावगं ।  
'किमेगरायं करिस्सइ', एवं तत्थऽहियासए ॥ २३ ॥

ऊँची-नीची, अच्छी-बुरी शय्या (वसति-उपाश्रय-आश्रय स्थान) पाकर, सदी-गर्मी सहन करने में समर्थ तपस्वी भिक्षु हर्ष-खेद करके अपनी संयम मर्यादा का अतिक्रमण न करे। क्योंकि पापदृष्टि (अस्थिर चित्त) साधु ही (हर्ष-विषाद करके) मर्यादा का भंग करता है ॥ २२ ॥ (अस्थिर चित्र)

मुनि को स्त्री-पशु-नपुंसक की बाधारहित अच्छा या बुरा-अनुकूल या प्रतिकूल जैसा भी स्थान मिल जाय, उसमें यह सोचकर रह ले कि एक रात में मेरा क्या बिगड़ जायेगा ॥ २३ ॥

### 11. Shayya-parishaha (Place of stay or accommodation related affliction)

An ascetic capable of tolerating heat and cold should not transgress the code of ascetic-discipline by getting pleased or displeased when he gets a higher, lower, good or bad bed (in a colony, ascetic-abode or other place of stay). This is because only an ascetic with sinful attitude (with wavering mind) transgresses the ascetic-code. (22)



Whatever place he gets, good or bad, comfortable or uncomfortable but free of disturbance (of women, animals and eunuchs), he should stay there thinking that what harm just one night-stay can cause him. (23)

### १२. आक्रोश परीषह

अक्कोसेज्ज परो भिक्खुं, न तेसिं पडिसंजले ।  
सरिसो होइ बालाणं, तम्हा भिक्खू न संजले ॥ २४ ॥  
सोच्चाणं फरुसा भासा, दारुणा गाम-कण्टगा ।  
तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ मणसीकरे ॥ २५ ॥

यदि कोई भिक्षु को दुर्वचन कहे तो भी भिक्षु उस पर आक्रोश न करे। क्रोधी तो मूर्ख अज्ञानियों के समान होता है—यह सोचकर कभी क्रोध न करे ॥ २४ ॥

शूल के समान कर्णकटु असत्य, कठोर और कानों में काँट की तरह चुभने वाला अप्रिय शब्द सुनकर मुनि मौन रहकर उनकी उपेक्षा कर दे। उनके प्रति मन में भी क्रोध न करे ॥ २५ ॥

### 12. Aakrosh-parishaha (Insult related affliction)

Even when someone abuses an ascetic, the ascetic should not be furious at him. Considering that an angry person is like a foolish ignorant, he should never be angry. (24)

Hearing thorn-like piercing, false, harsh and ear-pinching words, an ascetic should remain silent and give no heed to them. He should also avoid mental agitation. (25)

### १३. वध परीषह

हओ न संजले भिक्खू, मणं पि न पओसए ।  
'तित्तिक्खं परमं नच्चा, भिक्खु-धम्मं विचिंतए ॥ २६ ॥  
समणं संजयं दन्तं, हणेज्जा कोई कत्थई ।  
'नत्थि जीवस्स नासु' त्ति, एवं पेहेज्ज संजए ॥ २७ ॥

लाठी आदि से मारे-पीटे जाने पर भी भिक्षु क्रोध में संतप्त न हो, अपने मन को भी दूषित न करे, क्षमा को साधना का श्रेष्ठ अंग जानकर मुनि-धर्म का चिन्तन करे ॥ २६ ॥

संयमी और इन्द्रियविजयी साधु को यदि कोई व्यक्ति कहीं मारे-पीटे, प्रहार करे, घात करे तो भिक्षु यह विचार करे कि आत्मा का नाश तो होता ही नहीं ॥ २७ ॥

### 13. Vadh-parishaha (Punishment related affliction)

Even on being beaten by sticks or the like an ascetic should not burn with anger, neither should he allow this to malign his mind. Considering forgiveness to be the best part of spiritual practice, he should ponder over the ascetic-code. (26)

If any person beats, hurts or tries to kill an ascetic who is restrained and victor of senses, then the ascetic should think that soul is indestructible. (27)





## १४. याचना परीषह

दुक्करं खलु भो निच्चं, अणगारस्स भिक्खुणो ।  
सव्वं से जाइयं होइ, नत्थि किंचि अजाइयं ॥ २८ ॥  
गोयरग्गपविट्ठस्स, पाणी नो सुप्पसारए ।  
'सेओ अगार-वासु' त्ति, इइ भिक्खू न चिन्तए ॥ २९ ॥

अनगार भिक्षु की यह चर्या सदा से ही कठिन रही है कि उसके पास सभी कुछ याचित होता है, कुछ भी अयाचित नहीं होता ॥ २८ ॥

भिक्षाचर्या के लिये गृहस्थ के घर में प्रविष्ट साधु के लिये उसके समक्ष हाथ फैलाना सरल कार्य नहीं है। अतः भिक्षु यह न सोचे कि 'इससे तो गृहवास (घर में रहना) ही अच्छा है' ॥ २९ ॥

## 14. Yaachana-parishaha (affliction related to alms-seeking)

For a homeless ascetic this has always been a tough part of ascetic-code that all he has is alms and nothing that is ungifted. (28)

For an ascetic, who has entered an abode to seek alms, it is not easy to spread his hands before the householder. At that time the ascetic should never think that to be a householder was better than this. (29)

## १५. अलाभ परीषह

परेसु घासमेसेज्जा, भोयणे परिणिट्ठए ।  
लद्धे पिण्डे अलद्धे वा, नाणुतप्पेज्ज संजए ॥ ३० ॥  
'अज्जेवाहं न लब्भामि, अवि लाभो सुए सिया' ।  
जो एवं पडिसचिक्खे, अलाभो तं न तज्जए ॥ ३१ ॥

जब गृहस्थों के घरों में भोजन तैयार हो जाये तब भिक्षु गोचरी हेतु जाय। गृहस्थों से थोड़ा आहार मिले अथवा न भी मिले तो भी भिक्षु खेद न करे ॥ ३० ॥

आज मुझे आहार नहीं मिला तो संभव है कल मिल जाय। इस प्रकार से विचार करने वाले भिक्षु को अलाभ परीषह पीड़ित नहीं करता, वह अलाभ परीषह को विजित कर लेता है ॥ ३१ ॥

## 15. Alaabh-parishaha (Affliction of non-attainment)

An ascetic should go to seek alms only at the time food is conventionally ready in abodes of householders. Even when he gets little quantity of food or not at all, the ascetic should not be displeased. (30)

'Today I could not get food, perhaps tomorrow I will get', an ascetic with this thought is not tormented by the affliction of non-attainment; he, in fact, wins over the affliction of non-attainment. (31)



१६. रोग परीषह

नच्चा उप्पइयं दुक्खं, वेयणाए दुहट्ठए।  
अदीणो थावए पन्नं, पुट्ठो तत्थऽहियासए ॥ ३२ ॥  
तेगिच्छं नाभिनन्देज्जा, संचिक्खऽत्तगवेसए।  
एवं खु तस्स सामण्णां, जं न कुज्जा न कारवे ॥ ३३ ॥

अपने कृत-कर्मों के कारण ही रोग उत्पन्न होता है—यह मानकर उस वेदना से मन को व्यथित न होने दे। अपनी बुद्धि को स्थिर-संतुलित रखता हुआ मुनि प्राप्त पीड़ा को समभावपूर्वक सहन करे ॥ ३२ ॥

आत्मा की गवेषणा करने वाला साधु रोग हो जाने पर उसकी (सावद्य) चिकित्सा न करे, न कराये और न अनुमोदन करे, समाधिपूर्वक रहे। यही उसका श्रमणत्व है ॥ ३३ ॥

16. Roag-parishaha (Ailment related affliction)

Considering that ailment is caused by his own *karmas*, an ascetic should not let his mind grieve due to the resultant pain. Keeping his mind calm and balanced the ascetic should endure that pain with equanimity. (32)

The self-searching ascetic should not undergo any (sinful) treatment when ailing; he should also neither inspire others, nor approve of others for arranging the same. He should embrace serenity, which, indeed, is his asceticism. (33)

१७. तृण-स्पर्श परीषह

अचेलगस्स लूहस्स, संजयस्स तवस्सिणो।  
तणोसु सयमाणस्स, हुज्जा गाय-विराहणा ॥ ३४ ॥  
आयवस्स निवाएणां, अउला हवइ वेयणा।  
एवं नच्चा न सेवन्ति, तन्तुजं तण-तज्जिया ॥ ३५ ॥

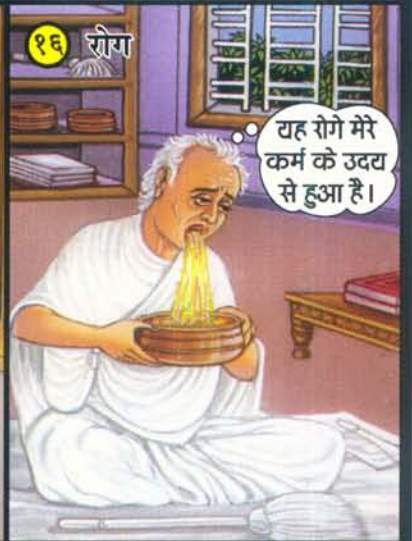
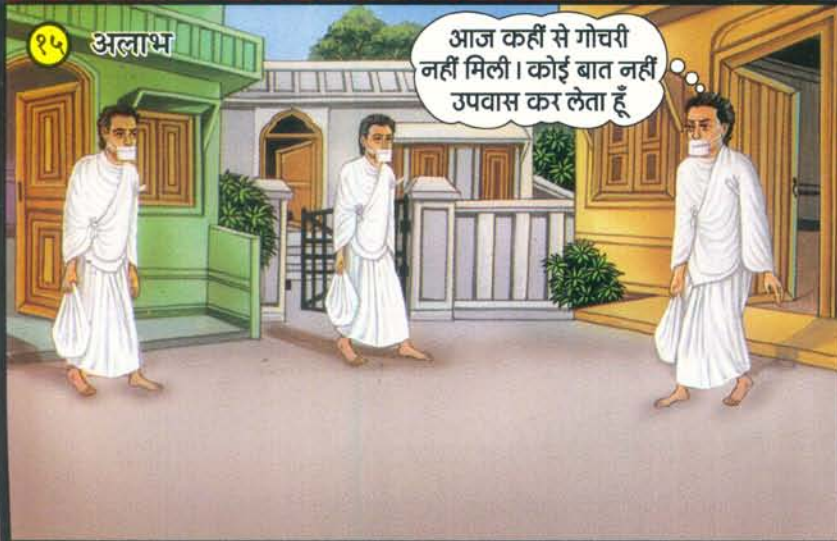
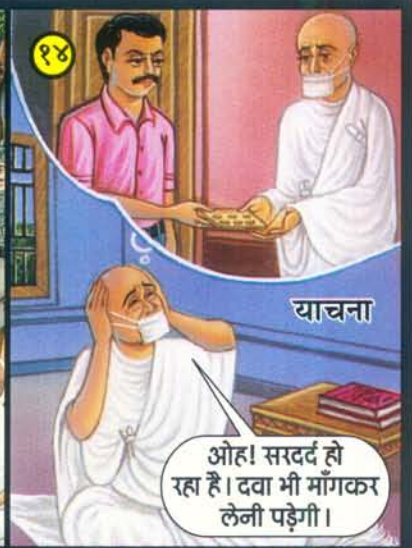
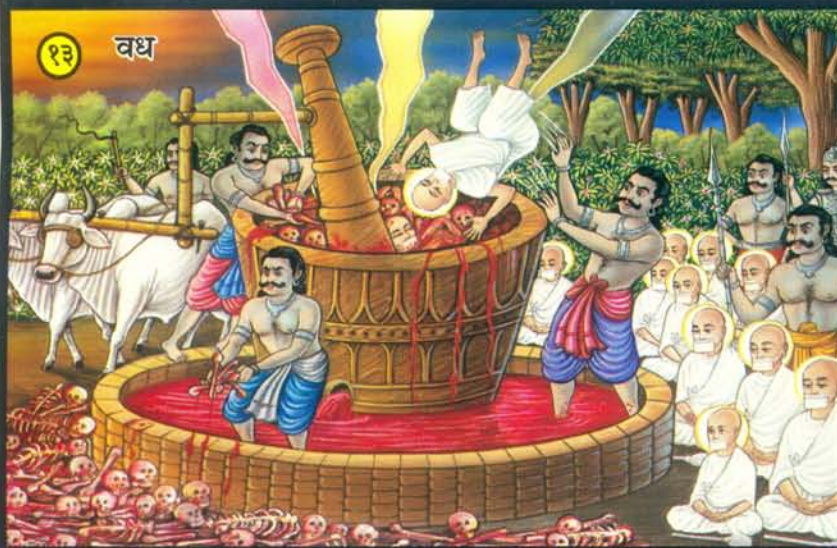
अचेलक (वस्त्ररहित) और रूखे शरीर वाले तपस्वी श्रमण को (शीतकाल में) तृण (घास-पुआल) की शय्या पर सोने से, उसके शरीर को उन तृणों की चुभन से पीड़ा होती रहती है ॥ ३४ ॥

(ग्रीष्मकाल में) सूर्य की प्रचण्ड रश्मियों के कारण भी तपस्वी श्रमण को असह्य वेदना होती है—ऐसा जानकर भी तृणों से पीड़ित मुनि वस्त्र की इच्छा नहीं करते हैं ॥ ३५ ॥

17. Trina-sparsh-parishaha (Hay or straw related affliction)

An austerity observing unclad ascetic with weather-beaten body, when sleeping on a bed of straw or hay (during winter) suffers the pain of prickly sensation due to straw. (34)

The scorching sunrays (during summer) too cause intolerable agony to an ascetic observing austerities. Knowing all this the ascetic suffering pain of straws does not desire for a garb. (35)



## 22 परीषह - 3

13. वध परीषह—मारे-पीटे जाने पर, प्रहार करने पर, घात करने पर साधु उन पर लेशमात्र भी क्रोध न करे।
14. याचना परीषह—भिक्षा माँगने में होने वाले कष्टों से मन में किसी प्रकार की ग्लानि या दुःख उत्पन्न न करें।
15. अलाभ परीषह—गोचरी पर जाने पर भोजन न मिले या थोड़ा-सा आहार प्राप्त हो तो खेद न करे।
16. रोग परीषह—शरीर में विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न होने पर मुनि पीड़ा को बिना उद्विग्न हुये समभावपूर्वक सहे।
17. तृण-स्पर्श परीषह—घास-पुआल की शय्या पर सोने से या मार्ग में चलने से अचेलक साधु को तृण आदि चुभने की पीड़ा होती है, वह समभावपूर्वक सहे।

—अध्ययन 2, सू. 27-35

## 22 AFFLICTIONS – 3

An ascetic should endure the following affliction with equanimity —

- (13) Punishment related affliction.
- (14) Affliction related to alms seeking.
- (15) Affliction of non-attainment.
- (16) Ailment related affliction.
- (17) Hay or straw related affliction.

— Chapter 2, Aphorism 27-35



### १८. जल्ल (मल) परीषह

किलिन्नगाए मेहावी, पंकेण व रण वा ।  
 धिसु वा परितावेण, सायं नो परिदेवए ॥ ३६ ॥  
 वेएज्ज निज्जरा-पेही, आरियं धम्मणुत्तरं ।  
 जाव सरीरभेउ त्ति, जल्लं काएण धारए ॥ ३७ ॥

ग्रीष्म ऋतु में पसीने से गीले शरीर पर धूल कण तथा मैल जम जाते हैं ऐसी स्थिति में भी मेधावी श्रमण साता—सुख के लिये विलाप न करे, व्याकुल न हो ॥ ३६ ॥

कर्म क्षय का इच्छुक मुनि मल जनित परीषह को सहन करे। इस श्रेष्ठ अनुत्तर धर्म को पाकर तत्त्वज्ञ मुनि जब तक शरीर न छूटे तब तक इस मैल को धारण करे। उसके प्रति जुगुप्सा न लाये, समभाव से सहन करे ॥ ३७ ॥

### 18. Jalla-parishaha (Dirt or slime related affliction)

In summer season dust particles and dirt stick to his body wet with sweat. Even in such condition a wise ascetic should not lament or get disturbed for want of comforts. (36)

An ascetic striving to destroy *karmas* should tolerate this slime related affliction. Endowed with the excellent peerless religion, the savant should carry the slime as long as his body lasts. He should not avoid any feelings of revulsion and bear it with equanimity. (37)

### १९. सत्कार-पुरस्कार परीषह

अभिवायणमभुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमन्तणं ।  
 जे ताइं पडिसेवन्ति, न तेसिं पीहए मुणी ॥ ३८ ॥  
 अणुक्कसाईं अप्पिच्छे, अन्नाएसी अलोलुए ।  
 रसेसु नाणुगिज्जेज्जा, नाणुत्तप्येज्ज पन्नवं ॥ ३९ ॥

राजा, शासक, नेता आदि जो अभिवादन, निमंत्रण, सम्मान आदि करते हैं तथा अन्य तीर्थिक साधु उन्हें स्वीकार करते हैं। लेकिन आत्मारथी श्रमण ऐसे सत्कार की मन से भी इच्छा न करे ॥ ३८ ॥

मंदकषायी, अल्प इच्छा वाला और अज्ञात कुलों से भिक्षा ग्रहण करने वाला, रसादि में लोलुपता न रखने वाला बुद्धिमान श्रमण स्वादु रसों में आसक्ति न करे और (अन्यतीर्थिकों को सत्कार पाते देखकर) मन में किंचित् भी अनुताप न करे ॥ ३९ ॥

### 19. Satkaar-puraskaar-parishaha (Affliction related to honour and prize)

Kings, rulers, leaders and other such people extend greetings, invitations, honours and other adorations and monks of other creeds accept them. But a self-indulgent ascetic should not even have a desire for such laurels. (38)



A wise ascetic with dulled passions, few needs, getting alms from unknown families, no hankering for tasty things, should not submit to taste buds. He should also not have even slightest regret (when he sees monks of other creeds honoured). (39)

२०. प्रज्ञा परीषह

से नूणं मए पुव्वं, कम्माणाणफला कडा ।  
जेणाहं नाभिजाणामि, पुट्ठो केणइ कणहुई ॥ ४० ॥  
अह पच्छा उइज्जन्ति, कम्माणाणफला कडा ।  
एवमस्सासि अप्पाणं, नच्चा कम्मविवागयं ॥ ४१ ॥

मैंने निश्चय ही पूर्वजन्म में ज्ञानावरणीय (अज्ञान रूप फल देने वाले) कर्म किये हैं, ऐसे कर्मों का बन्ध किया है; तभी तो किसी के द्वारा (जीवादि तत्त्वों के विषय में) कुछ भी पूछे जाने पर मैं कुछ उत्तर नहीं दे पाता ॥ ४० ॥

पूर्वकृत अज्ञान रूप फल देने वाले कर्मों (ज्ञानावरणीय-ज्ञान प्रतिबन्धक कर्म) का विपाक होता ही है—ऐसा जानकर अपनी आत्मा को आश्वासित करे ॥ ४१ ॥

20. Prajna-parishaha (Enlightenment related affliction)

'In the previous life or lives I have acquired bondage of knowledge-obscuring *karmas*. That is why I fail to reply questions (fundamentals including soul) posed by someone. (40)

'Fruition of knowledge obscuring *karmas* acquired in the past is but natural', realizing thus, the ascetic should reassure his ownself (soul). (41)

२१. अज्ञान परीषह

निरट्ठगमि विरओ, मेहुणाओ सुसंवुडो ।  
जो सक्खं नाभिजाणामि, धम्मं कल्लाण पावगं ॥ ४२ ॥  
तवोवहाणामादाय, पडिमं पडिवज्जओ ।  
एवं पि विहरओ मे, छउमं न नियट्ठई ॥ ४३ ॥

मुनि ऐसा चिन्तन न करे कि 'मैंने व्यर्थ ही मैथुन आदि इन्द्रिय विषयों और सांसारिक भोगों का त्याग किया; क्योंकि मैं (अभी तक) यह नहीं जान पाता कि धर्म कल्याणकारी (श्रेय) है या पापकारी है' ॥ ४२ ॥

मैं तप-उपधान आदि का पालन करता हूँ, विशिष्ट प्रतिमाओं को धारण करके भी विचरण करता हूँ; फिर भी मेरे ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का क्षय नहीं हुआ—साधक ऐसा भी निराशापूर्ण चिन्तन न करे ॥ ४३ ॥

21. Jnana-parishaha (Knowledge related affliction or ignorance)

An ascetic should not think that 'for nothing I have renounced lust and other mundane sensual pleasures because (till this day) I am unable to understand if religion is auspicious or inauspicious. (42)

१८

शरीर पर मैल धारण  
करना

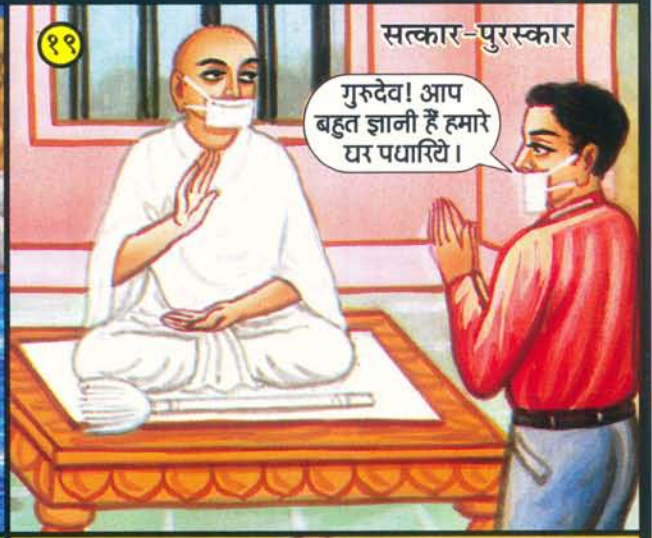
जल्ल (मल)



१९

सत्कार-पुरस्कार

गुरुदेव! आप  
बहुत ज्ञानी हैं हमारे  
घर पधारिये।



२०

प्रज्ञा

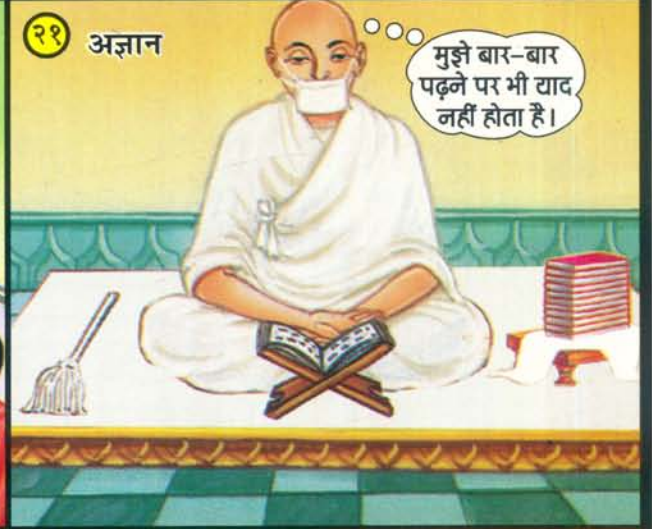
यह लोग मुझे प्रश्न पूछ-पूछ  
कर परेशान कर रहे हैं। इससे  
अच्छा तो मुझे ज्ञान ही नहीं होता।



२१

अज्ञान

मुझे बार-बार  
पढ़ने पर भी याद  
नहीं होता है।

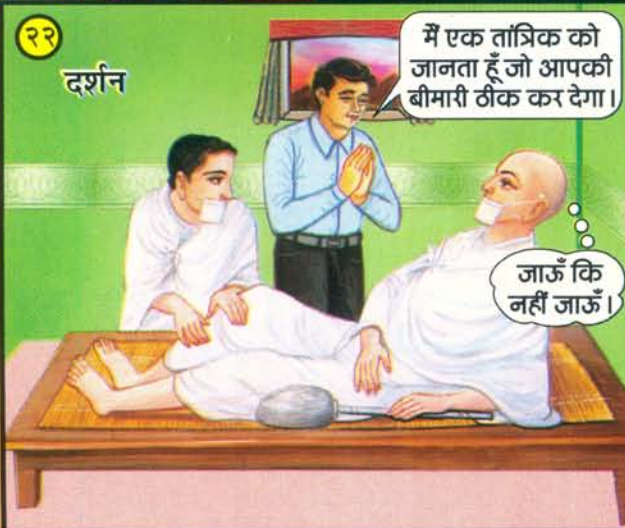


२२

दर्शन

मैं एक तांत्रिक को  
जानता हूँ जो आपकी  
बीमारी ठीक कर देगा।

जाऊँ कि  
नहीं जाऊँ।



## 22 परीषह - 4

18. जल्ल परीषह—पसीने से गोले शरीर पर मैल चिपक जाता है। साधु उसके प्रति जुगुप्सा न करे। स्नान की इच्छा न करे।
19. सत्कार-पुरस्कार परीषह—लोगों द्वारा मान-सत्कार-प्रतिष्ठा पाने पर 'समभाव' में रहे, इच्छा न करे और दूसरे को यह पाता देख विषाद न करे।
20. प्रज्ञा परीषह—अपनी प्रज्ञा पर गर्व न हो। दूसरे प्रज्ञावानों को देखकर दुःख न हो।
21. अज्ञान परीषह—ऐसा चिन्तन न करे कि मैं इतना अध्ययन करता हूँ, तप आदि करता हूँ फिर भी मुझे कुछ नहीं आता।
22. दर्शन परीषह—साधु तीर्थकर भगवान में और तीर्थकरों द्वारा कहे गये वचनों पर शंका न करे।

—अध्ययन 2, सू. 36-44

## 22 AFFLICTIONS - 4

An ascetic should endure the following affliction with equanimity —

- (18) Dirt or slime related affliction.
- (19) Affliction related to honour and prize.
- (20) Enlightenment related affliction.
- (21) Knowledge related affliction or ignorance.
- (22) Conduct related affliction.

— Chapter 2, Aphorism 36-44







The aspirant should avoid such desperate thoughts. "Though I observe austerities and other auspicious rituals (*upadhaan*), I also move about observing special austerities, still my knowledge obscuring and other *karmas* have not been destroyed. (43)

## २२. दर्शन परीषह

नत्थि नूणं परे लोए, इड्ढी वि तवस्सिणो।  
अदुवा वंचिओ मि' त्ति, इइ भिक्खू न चिन्तए ॥ ४४ ॥  
'अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवावि भविस्सई।  
मुसं ते एवमाहंसु', इइ भिक्खू न चिन्तए ॥ ४५ ॥

निश्चित रूप से परलोक नहीं है और तपस्वियों को ऋद्धि भी प्राप्त नहीं होती है अथवा मैं तो धर्म के नाम पर ठगा गया हूँ—साधु ऐसा चिन्तन न करे ॥ ४४ ॥

वर्तमान काल में जिन (अरिहंत देव) हैं, भूतकाल में जिन हुये थे अथवा आगामी काल में जिन होंगे—ऐसा जो कहते हैं, वे मिथ्यावादी हैं; साधु ऐसा विचार न करे ॥ ४५ ॥

## 22. Darshan-parishaha (Conduct related affliction)

An ascetic should not nurture such ideas, 'It is for sure that there is no after-life or those practicing austerities never gain divine wealth (*riiddhi*) or I have been duped' in name of religion.' (44)

He should also not think that mendacious are those who maintain that 'Jinas existed in the past, exist at present and will exist in future too.' (45)

एए परीसहा सव्वे, कासवेण पवेइया।  
जे भिक्खू न विहन्नेज्जा, पुट्ठो केणइ कणहुई ॥ ४६ ॥

—त्ति बेमि।

ये सभी परीषह काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने बताए हैं। इन्हें जानकर, कहीं भी, किसी भी परीषह के उपस्थित होने पर भिक्षु इनसे पराजित न हो, इन सभी परीषहों पर विजय प्राप्त करे ॥ ४६ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

All these afflictions have been told by Shraman Bhagavan Mahavir of the Kashyap clan. Knowing these, an ascetic being afflicted by any of these afflictions anywhere should not get overwhelmed by them but should overcome them. (46)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ३—“कालीपव्वंगसंकासे” में ‘कालीपव्व’ का अर्थ—काकजंघा नामक तृणविशेष है (चूर्णि)। डॉ. हर्मन जेकोबी तथा डॉ. सांडेसरा आदि आधुनिक विद्वान् इसका अर्थ “कौए की जाँघ” करते हैं जो शरीर की अत्यन्त कृशता का सूचक है।

गाथा १३—चूर्णि के अनुसार मुनि जिनकल्प अवस्था में अचेलक रहता है। वृ. वृ. के मतानुसार जिनकल्पी मुनि अचेलक रहते हैं। स्थविरकल्पी भी वस्त्र-प्राप्ति के अभाव में अचेलक रह सकता है।

गाथा २५—‘ग्राम कण्टक’—कानों में काँटों के समान चुभने वाले कठोर शब्द। (चूर्णि)

गाथा ३९—चूर्णि के अनुसार ‘अणुक्कसाई’ के दो रूप होते हैं—(१) अणुकषायी-अल्पकषाय वाला और (२) अनुत्कषायी-सत्कार-सम्मान आदि के लिये उत्कंठा न रखने वाला।

गाथा ४३—‘उपधान’—आगमों का विधिवत् अध्ययन करते समय परम्परागत निश्चित विधि के अनुसार जो आयंबिल आदि तप किया जाता है, वह उपधान है। (वृ. वृ.)

## IMPORTANT NOTES

**Verse-3**—In the phrase ‘*kaalipavvangasankaase*’ the word ‘*Kaalipavva*’ according to *Churni* stands for a particular type of grass or straw called *Kaakajanghaa*. But modern scholars like Dr. Herman Jacobi and Dr. Sandesara accept its literal meaning ‘thigh of a crow’ to convey extreme leanness of body.

**Verse-13**—According to the commentary (*Churni*) an ascetic remains unclad or without clothes in *Jinalpa* (highest level of austerities) state. This is also confirmed by another commentary (*Vrihad Vritti*). Even in the *sthavira kalpi* (state of a senior and non-itinerant ascetic or *acharya*) state an ascetic may remain unclad if he cannot get proper garb.

**Verse-25**—*Graam Kantak*—Harsh words piercing ears like thorns (*Churni*).

**Verse-39**—According to *Churni* the word *anukkasaai* has two forms—(1) *Anukashaayi* meaning one with few passions; and (2) *Anutkashaayi* meaning one who is not eager for greetings, honours etc.

**Verse-43**—*Upadhaan*—The traditionally prescribed ritual austerities, including *ayambil* (eating once in a day food cooked or baked with a single ingredient and even without any salt or other condiments) observed while studying canonical literature according to the laid down procedure is called *upadhaan*.



## तृतीय अध्ययन : चतुरंगीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन में मोक्ष-प्राप्ति के लिये आवश्यक चार अंगों का विवेचन है; वे अंग हैं— (१) मनुष्यत्व, (२) श्रुति अर्थात् सद्धर्म का श्रवण, (३) श्रद्धा-सुने हुये सद्धर्म पर श्रद्धा (विश्वास) रखना, और (४) संयम में वीर्य प्रकट करना, पुरुषार्थ एवं पराक्रम करना।

पिछले द्वितीय अध्ययन परीषह प्रविभक्ति में साधु-जीवन में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन किया गया था। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन का विषय पूर्व अध्ययन की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। पूर्व अध्ययन में सिर्फ साधुचर्या का वर्णन था और इसमें साधक के सम्पूर्ण जीवन का।

यदि मानव अपने जीवन में आने वाली कठिनाइयों, बाधाओं, विघ्नों, आपत्ति-विपत्तियों से घबराकर पलायन-वृत्ति स्वीकार कर ले तो उसका पतन हो जाता है, उसे निम्न योनियों में जन्म ग्रहण करने को विवश होना पड़ता है।

यहाँ मोक्ष-प्राप्ति के लिये आवश्यक चार अंगों का वर्णन किया गया है, जिनमें प्रथम है—मनुष्यत्व।

नारक जीव सतत वेदनाओं से पीड़ित रहते हैं और देवता भोग-विलास में मग्न; अतः अति पीड़ा और अति भोग के कारण दोनों को ही धर्म के विषय में सोचने तक का अवकाश ही नहीं मिलता। पंचेन्द्रिय संज्ञी तिर्यच जीव को शुभ कर्मोदयवश योग्य निमित्त मिल जाये तो वह अपनी आत्मा का उत्थान तो कर सकता है परन्तु मुक्ति-प्राप्ति-योग्य पुरुषार्थ नहीं कर सकता।

केवल मनुष्य ही इस योग्य होता है। मानव योनि प्राप्त होना ही सब कुछ नहीं है। कुछ मानव इन्द्रियहीन, अल्पायु, क्रूरकर्मा, असत्य दृष्टि वाले भी होते हैं। अतः मोक्ष-प्राप्ति के लिये प्रथम आवश्यक अंग मानवत्वा अथवा मनुष्यत्व है।

मानवता से युक्त बहुतों को सद्धर्म श्रवण में रुचि नहीं होती। कुछ लोग धर्म को सुन भी लेते हैं तो उस पर श्रद्धा-अटूट और अडिग विश्वास नहीं कर पाते। अनेक मत-पंथों और विचारकों के मन्तव्यों को पढ़-सुनकर उनकी सद्धर्म के प्रति श्रद्धा डगमगा जाती है। इसीलिए कहा है—श्रद्धा परम दुर्लभ है।

यदि श्रद्धा भी हो जाय तो सद्धर्म में पराक्रम—श्रमणधर्म का पालन और भी दुष्कर है। सांसारिक प्रपंचों तथा अन्य अनेक कारणों से व्यक्ति सद्धर्माचरण नहीं कर पाता।

प्रस्तुत अध्ययन में सार रूप में बताया गया है कि इन चारों अंगों की प्राप्ति और सम्यक् परिपालन से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

इस अध्ययन में २० गाथाएँ हैं।



## TRITIYA ADHYAYAN : FOUR LIMBS

### Foreview

This chapter deals with the four essential limbs (of spiritual practice) for attaining liberation. These limbs are—1. Manhood (*manushyatva*)—birth as a human. 2. Listening (*shruti*)—listening to the righteous religion, 3. Faith (*shraddha*)—firm belief on the said righteous religion, and 4. Vitality in discipline (*samyam-virya*) – to show vitality or vigour or application in (religious) discipline.

The preceding chapter describes the possible troubles faced in ascetic life. But the subject-matter of this chapter is wider as compared to the preceding chapter. The preceding chapter dealt only with the ascetic praxis while this chapter deals with the whole life of an aspirant.

If a man intimidated by the difficulties, obstacles, impediments and adversities of life, embraces escapism, he leads himself to his down-fall. He is left with no option but to be reborn in a lower genus.

Here four essential limbs prescribed for liberation have been described. The first one is manhood.

Infernal beings remain ever oppressed by extreme tortures and divine beings are engulfed in sensual pleasures. As such, extremes of pain and sensual pleasures leave them hardly any time even to think of religion. Sentient five-sensed animals may undergo a little spiritual uplift if they get conducive conditions due to fruition of meritorious *karmas*; but they are not capable enough to endeavour for liberation.

Only humans have that potential. However, it is not enough to be born as a human being. Some humans are deprived of fully developed sense organs, some have short life span, some are cruel by nature and some fallacious. Therefore, manhood or humanity is the first essential for liberation.

Many humans have no interest in listening to the right religion. Some of them cannot deposit faith and unwavering firm belief in the right religion, though they do listen to it. Their faith on right religion wavers when they listen to and study views of different creeds, sects and thinkers. That is why it is said that it is very difficult to acquire faith.

Even if faith is acquired then endeavour on the right path or following the ascetic religion is much more difficult. Mundane affairs and many other reasons create obstructions on the path of right religious conduct.

The theme of this chapter is that acceptance and right practice of these four essentials leads to liberation.

This chapter has 20 verses.





तद्वयं अण्डयणं : चाउरंभिज्जं  
 तृतीय अध्ययन : चतुरंगीय  
 Chapter-3 : FOUR LIMBS

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो ।  
 माणुसत्तं सुई सद्धा, संजममि य वीरियं ॥ १ ॥

इस लोक (संसार) में प्राणियों के लिये (मोक्ष-प्राप्ति के साधन) चार अंगों की प्राप्ति होना दुर्लभ है—(१) मनुष्यत्व (मानव गति की प्राप्ति), (२) मोक्षप्रदायक सद्धर्म को सुनना, (३) उस पर श्रद्धा, और (४) संयम में पराक्रम ॥ १ ॥

In this world it is very difficult for living beings to embrace four limbs (essentials for liberation)—1. Manhood (*manushyatva*)—birth as a human, 2. Listening (*shruti*)—listening to the righteous religion, 3. Faith (*shraddha*)—firm belief on the said righteous religion, and 4. Vitality in discipline (*samyam-viryā*)—to show vitality or vigour or application in (religious) discipline. (1)

समावन्नाण संसारे, नाणा-गोत्तासु जाइसु ।  
 कम्मा नाणा-विह्व कट्टु, पुढो विस्संभिया पया ॥ २ ॥

यह संसारी जीव अनेक प्रकार के कर्म करके तथा उन कृत कर्मों के कारण विभिन्न प्रकार की जाति और गोत्रों में उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह लोक के प्रत्येक प्रदेश का स्पर्श कर लेता है ॥ २ ॥

Indulging in various activities, this mundane being (soul), as a consequence takes birth in different kinds of species (*jati*) and classes (*gotra*). This way it touches every space-point of this *Lok* (occupied space or universe). (2)

एगया देवलोएसु, नरएसु वि एगया ।  
 एगया आसुरं कायं, आहाकम्मेहिं गच्छई ॥ ३ ॥

अपने किये हुये कर्मों के अनुसार कभी यह जीव देवलोक में देव बनता है, कभी नरक में नारक रूप उत्पन्न होता है और कभी असुर बन जाता है ॥ ३ ॥

Depending on its activities (consequent bondage of *karmas*) this soul sometimes takes birth as a divine being in heaven, sometimes as infernal being in hell and sometimes as *Asura* (divine being of lower realms). (3)

एगया खत्तिओ होई, तओ चण्डाल-वोक्कसो ।  
 तओ कीड-पयंगो य, तओ कुन्थु-पिवीलिया ॥ ४ ॥

कभी यह जीव क्षत्रिय कुल में जन्म लेता है तो कभी चाण्डाल और वर्णसंकर के रूप में उत्पन्न होता है तथा यही जीव कभी कीट-पतंग तो कभी कुन्थु और कभी चींटी आदि क्षुद्र योनियों में जन्म धारण करता है ॥ ४ ॥



Sometimes this living being (soul) is born in a warrior clan and sometimes in a lowly or mixed caste (*vokkas* or *varnasankar*). Also, this living being (soul) is sometimes born in a lowly genus, such as moth, insect, worm or ant. (4)

एवमावट्ट-जोणीसु, पाणिणो कम्मकिब्बिसा ।  
न निविज्जन्ति संसारे, सव्वट्ठेसु व खत्तिया ॥ ५ ॥

अनेक योनियों में परिभ्रमण करते हुये, कर्मों से मलिन जीव उसी प्रकार संसार से निवृत्त होने की इच्छा नहीं करते जिस प्रकार क्षत्रिय (ऐश्वर्यशाली, धनाढ्य, सत्ता-सम्पन्न व्यक्ति) विषय सुख साधनों से निवृत्त होना नहीं चाहते ॥ ५ ॥

Traversing (getting reborn) through numerous genus, the living beings tarnished with *karmas* do not desire to renounce the mundane world just like the *kshatriyas* (people of warrior clans with grandeur, wealth and power) do not wish to part with their means of worldly comforts and pleasures. (5)

कम्म-संगेहिं सम्मूढा, दुक्खिया बहु-वेयणा ।  
अमाणसासु जोणीसु, विणिहम्मन्ति पाणिणो ॥ ६ ॥

कर्मों के संयोग से मूढ़ बने हुये जीव मानवेतर (पशु, नरक आदि) योनियों में उत्पन्न होकर अत्यधिक त्रास और पीड़ा भोगते हैं ॥ ६ ॥

Living beings bewildered due to bondage of *karmas* suffer extreme distress and pain by being born in a non-human genus (as animals and infernal beings). (6)

कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुव्वी कयाइ उ ।  
जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययन्ति मणुस्सयं ॥ ७ ॥

(अति दीर्घकाल के पश्चात्) कदाचित् काल क्रम से कुछ आत्म-विशुद्धि (मनुष्य भव प्रतिबन्धक कर्मों का क्षय) होने पर वह जीव पुनः मानव-भव को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

By chance on gaining some inner purity with passage of time (after a very long period), such a living being (soul) is reborn as a human. (7)

माणुस्सं विग्गहं लद्धं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।  
जं सोच्चा पडिवज्जन्ति, तवं खन्तिमहिंसयं ॥ ८ ॥

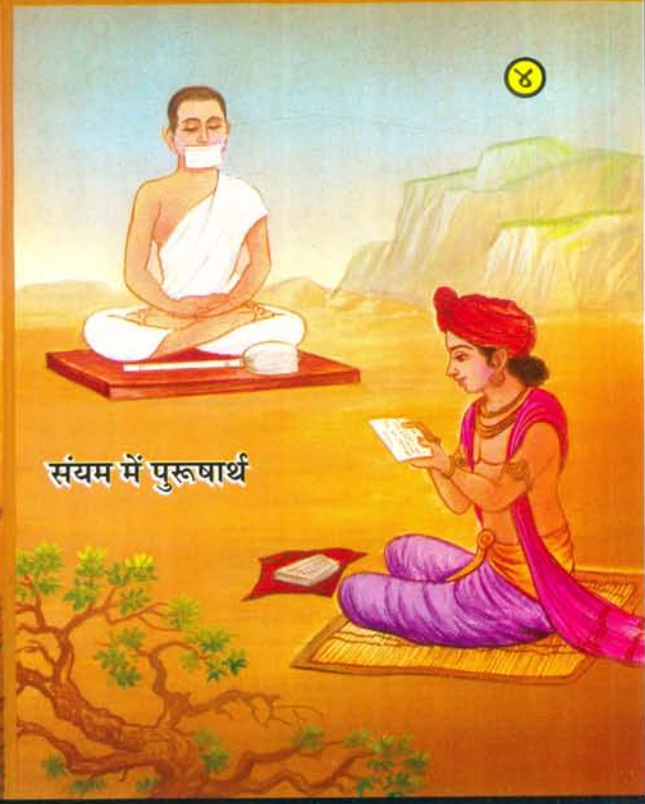
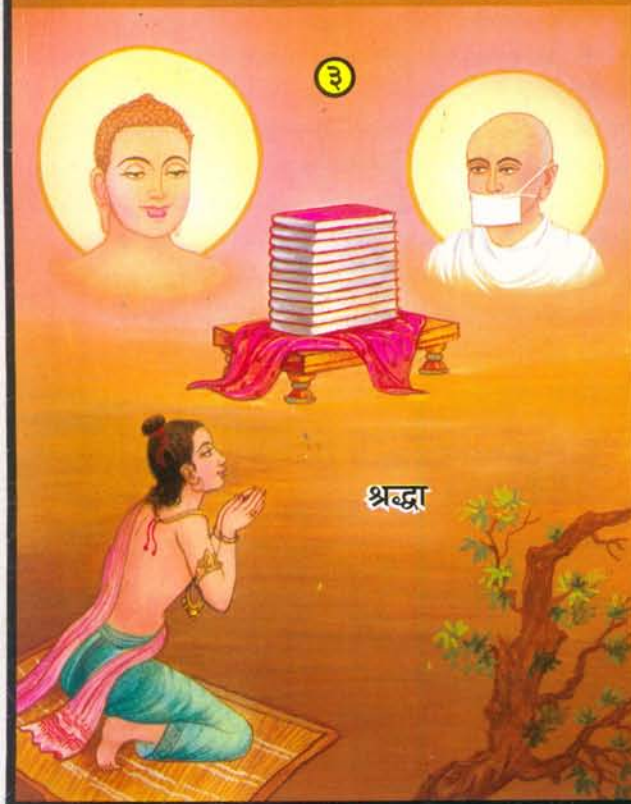
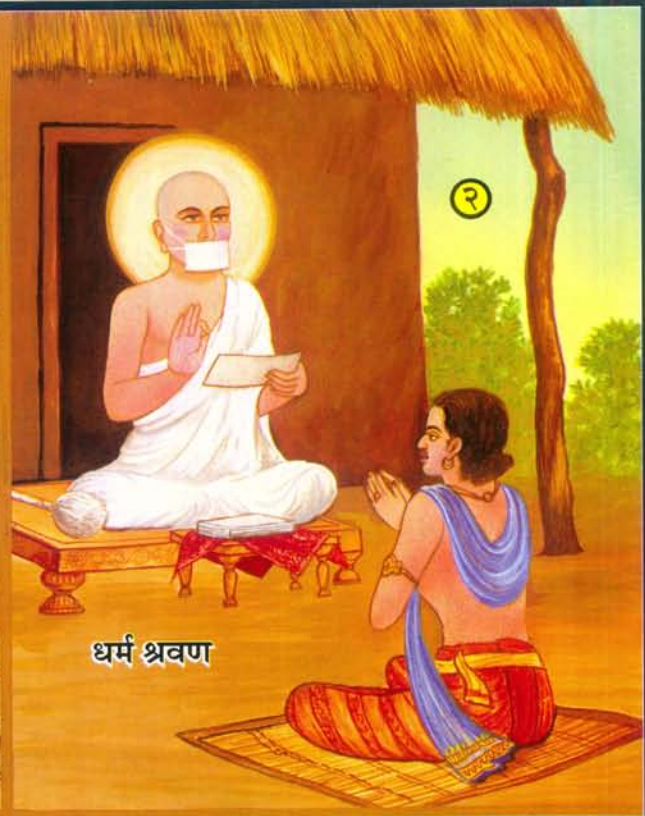
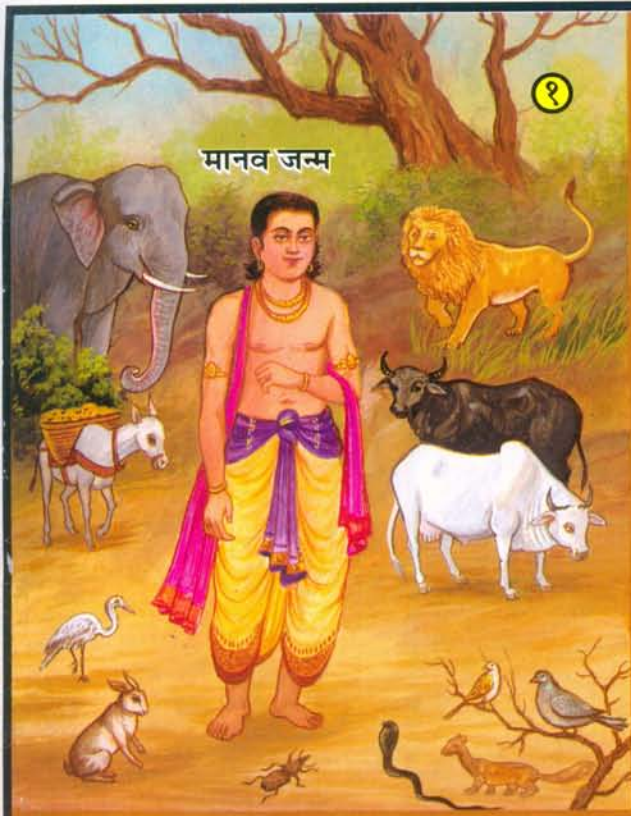
मानव (मनुष्य) योनि प्राप्त होने पर भी सद्धर्म का श्रमण कठिन है; जिसे सुनकर क्षमा, तप और अहिंसा को स्वीकार किया जा सकता है ॥ ८ ॥

Even when born as a human being it is very difficult to listen to the right religion; hearing which leads to acceptance of forgiveness, austerity and *ahimsa*. (8)

आहच्च सवणं लद्धं, सद्धा परमदुल्लहा ।  
सोच्चा नेआउयं मगं, बहवे परिभस्सई ॥ ९ ॥

सद्धर्म श्रवण का सुयोग मिल जाने पर भी उस पर श्रद्धा होना और भी दुर्लभ है। सच्चा मोक्षमार्ग सुनकर भी अनेक व्यक्ति पथभ्रष्ट हो जाते हैं ॥ ९ ॥

Even on getting opportunity to hear the right religion, it is still difficult to have faith in it. Many individuals go astray even after hearing about the true path of liberation. (9)



## चार दुर्लभ अंग

इस संसार में प्राणियों के मोक्ष-प्राप्ति के चार परम अंगों की प्राप्ति होना दुर्लभ है—

- (1) दुर्लभ मानव-जन्म—अनेकानेक जीव योनियों में परिभ्रमण करने के पश्चात् मानव-जन्म प्राप्त होता है।
- (2) गुरु मुख से सद्धर्म का सुनना (श्रुति) दुर्लभ है।
- (3) देव, गुरु व धर्म (शास्त्र) के प्रति श्रद्धा बहुत दुर्लभ है।
- (4) संयम, ध्यान, स्वाध्याय आदि संयम में पुरुषार्थ दुर्लभ है।

—अध्ययन 3

## FOUR RARE LIMBS

To avail the four noble limbs of liberation is rare for the beings of this world—

- (1) Rare human rebirth : Only after transmigrating through innumerable rebirths a being gets human existence.
- (2) To be able to listen to the true religion from a guru is rare.
- (3) To gain faith in God, guru and religion (the canon) is very rare.
- (4) It is rare to be able to exert in ascetic discipline including restraint, meditation, and study of scriptures.

— Chapter 3







सुइं च लब्धं सद्धं च, वीरियं पुण दुल्लहं।  
बहवे रोयमाणा वि, नो एणं पडिवज्जए ॥ १० ॥

बहुत से व्यक्ति सद्धर्म सुनकर उस पर श्रद्धा भी कर लेते हैं, वे संयम ग्रहण करने में रुचि भी रखते हैं, किन्तु संयम ले नहीं पाते। अतः संयम में पुरुषार्थ और भी दुष्कर है ॥ १० ॥

After hearing the right religion, many people develop faith in it. They also get interested in getting initiated but fail to do so. Therefore, endeavour on the path of ascetic-discipline is even more difficult. (10)

माणुसत्तमि आयाओ, जो धम्मं सोच्च सद्धे।  
तवस्सी वीरियं लब्धं, संवुडे निद्धणे रयं ॥ ११ ॥

जो व्यक्ति मनुष्य-जन्म पाकर सद्धर्म-श्रवण करता है, उस पर श्रद्धा रखता है और तप (संयम) में पुरुषार्थ-पराक्रम करके, आस्रवों का निरोध करता है और कर्मरूपी धूलि को धुन देता है, दूर कर देता है ॥ ११ ॥

The soul taking birth as man hears the true religion and puts firm faith in it, by vigorous endeavour in penance (ascetic-discipline) he blocks the inflow of *karmas* and thrashes out the *karmic* dust. (11)

सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिडुई।  
निव्वाणं परमं जाइ, घय-सित्तव्व पावए ॥ १२ ॥

सरल व्यक्ति को शुद्धि प्राप्त होती है, शुद्ध आत्मा-हृदय में ही धर्म की अवस्थिति होती है, धर्मयुक्त व्यक्ति ही घृत सिंचित अग्नि के समान अपने आत्म-तेज को प्रगट करके परम निर्वाण को प्राप्त करता है ॥ १२ ॥

A guileless person gains purity; religion gets ensconced only in a pure soul or heart. Only a person endowed with religion unveils his inner power, like the fire fueled with butter-oil and attains liberation. (12)

विगिंच कम्मणो हेउं, जसं संचिणु खन्तिए।  
पाढवं सरीरं हिच्चा, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥ १३ ॥

कर्म (बंधन) के कारणों को क्षय (दूर) करके तथा क्षमा द्वारा यश का अर्जन करके इस भौतिक शरीर को छोड़कर जीव ऊर्ध्व दिशा (स्वर्ग अथवा मोक्ष) की ओर गमन करता है ॥ १३ ॥

Destroying the causes of bondage of *karmas* and acquiring fame by forgiveness, the soul moves upward (heavens or liberation). (13)

विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तर-उत्तरा।  
महासुक्का व दिप्पन्ता, मन्नन्ता अपुणच्चवं ॥ १४ ॥

विसदृश (अनेक प्रकार के) शील व्रतों का पालन करके जीव यक्ष (देव) बनते हैं; वे (देव) उत्तरोत्तर समृद्धि से महाशुक्ल (तेजस्वी) होकर दीप्तिमान होते हैं और तब वे ऐसा मानने लगते हैं कि स्वर्ग से च्यवन नहीं होता, अर्थात् देव अमर होते हैं ॥ १४ ॥



By observing a variety of codes of uprightness (*sheel vratas*) souls are reborn as *Yakshu* (a class of divine beings). When their opulence enhances with increasing prosperity and they glow, then they start believing that there is no fall from the heavens, meaning that gods are immortal. (14)

अप्यिया देवकामाणां, कामरूव-विउव्विणो ।  
उड्ढं कप्पेसु चिट्ठन्ति, पुव्व वाससया बहू ॥ १५ ॥

दिव्य कामभोगों में लीन, इच्छानुसार रूप निर्मित करने में समर्थ वे देव असंख्य काल तक ऊर्ध्व कल्पों (देव-विमानों) में रहते हैं ॥ १५ ॥

These gods, capable of acquiring any desired form, dwell in higher realms (*kalpas* or celestial vehicles) for immeasurable time indulging in divine pleasures. (15)

तत्थ ठिच्चा जहाठाणं, जक्खा आउक्खए चुया ।  
उवेन्ति म्मणुसं जोणिं, से दसंगेऽभिजायई ॥ १६ ॥

वे देवलोक में यथास्थान अपनी आयु सीमा तक रहते हैं; आयु समाप्त होने पर वे देवलोक से च्यवकर मनुष्य-जन्म पाते हैं, वहाँ उन्हें दशांग (दश प्रकार की) भोग सामग्री प्राप्त होती है ॥ १६ ॥

These gods remain in those divine realms till their life-span lasts. When their life-span comes to an end they descend and are born as human-beings. Here they get ten kinds of pleasure objects. (16)

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पसवो दास-पोरुसं ।  
चत्तारि काम-खन्धाणि, तत्थ से उव्वज्जई ॥ १७ ॥

जहाँ वे उत्पन्न होते हैं, वहाँ उन्हें इन चार काम-स्कन्धों की उपलब्धि होती है—(१) खेत्त-क्षेत्र (खुली जमीन), (२) वत्थु-गृह, (३) पशु, और (४) दास पौरुषेय ॥ १७ ॥

Where they take birth they get these four facilities for work—1. area (open land), 2. dwelling, 3. gold (wealth), and 4. labour including animals, slaves and servants. (17)

मित्तवं नायवं होइ, उच्चागोए य वण्णवं ।  
अप्पायंके महापन्ने, अभिजाए जसोबले ॥ १८ ॥

वह सन्मित्रों से युक्त, ज्ञातिमान, उच्च गोत्रीय, सुन्दर वर्ण वाले, नीरोग, महाप्रज्ञ, अभिजात, यशस्वी और सामर्थ्यवान होते हैं ॥ १८ ॥

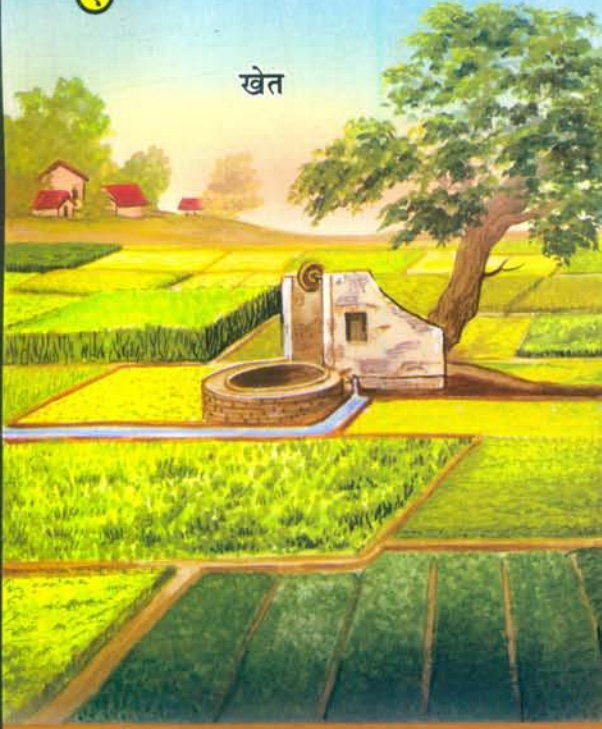
They are endowed with good friends, relatives, high family status, good complexion, perfect health, wisdom, nobility, fame and power. (18)

भोच्चा माणुस्सए भोए, अप्पडिरूवे अहाउयं ।  
पुव्वं विसुद्ध-सद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झिया ॥ १९ ॥

मानव-सम्बन्धी अनुपम भोगों को आयु पर्यन्त भोगकर भी विशुद्ध धर्म की आराधना के प्रभाव से वे निर्मल बोधि (ज्ञान) से बोधित होते हैं ॥ १९ ॥

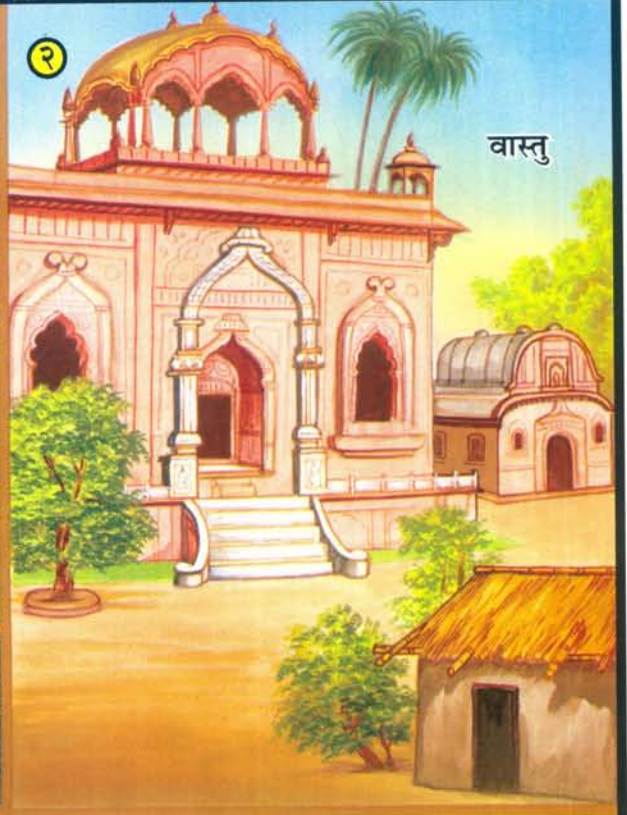
१

खेत



२

वास्तु



३

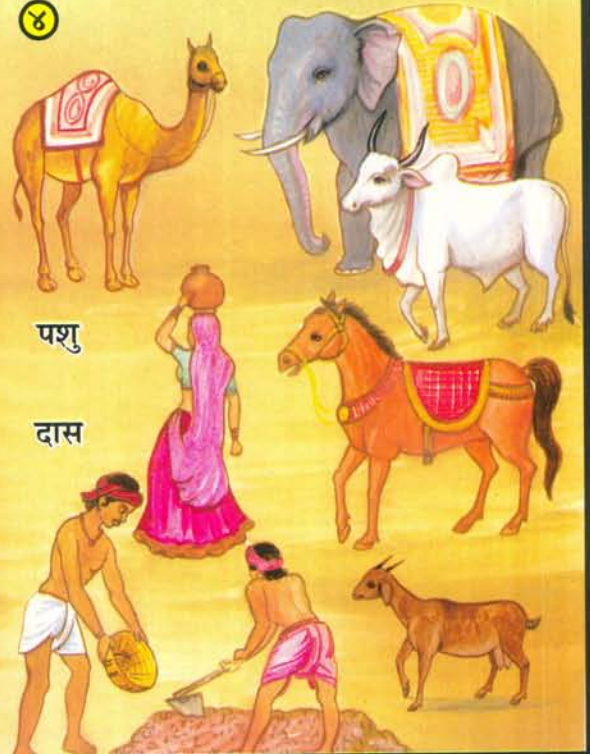
हिरण्य



४

पशु

दास



## चार काम स्कन्ध

पुण्यशाली जीव वहाँ जन्म लेते हैं। जहाँ यह चार प्रकार के काम स्कन्ध (ऐश्वर्य-भोग सामग्री) प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहते हैं—(1) क्षेत्र—हरे-भरे खेत, (2) वास्तु-भवन, (3) हिरण्य-स्वर्ण, (4) पशु, दास, सेवक आदि।

—अध्ययन 3, सू. 17

## FOUR MEANS OF PLEASURE

Meritorious souls take birth where four means of pleasure are available in abundance – (1) green fields; (2) buildings; (3) gold and silver; and (4) cattle, servants, slaves etc.

— Chapter 3, Aphorism 17





Even after enjoying these unrivalled human pleasures and comforts all their life, they attain pristine enlightenment as a consequence of the pure and righteous religious path followed in the past. (19)

चउरंगं दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया ।  
तवसा धुयकम्मसे, सिद्धे हवइ सासए ॥ २० ॥

—त्ति बेमि ।

इन चार अंगों को दुर्लभ जानकर तथा सर्वसावद्यविरत चारित्र्य रूप संयम को स्वीकार करके तपस्या द्वारा सर्व कर्माशों की निर्जरा करके साधक शाश्वत सिद्ध हो जाता है ॥ २० ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

Knowing these four essentials to be precious, the aspirant accepts the ascetic-discipline in the form of complete sinless conduct and through practice of austerities sheds all particles of *karma* to attain the liberated state of eternal perfection (*Siddha* state). (20)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १५—“पूर्व” शब्द जैन-परम्परा में एक संख्या विशेष का वाचक है। ८४ लाख को ८४ लाख से गुणा करने पर जो संख्या होती है, वह पूर्व है। अर्थात् ७० लाख छप्पन हजार करोड़ (७,०५,६०,००,००,०००) वर्षों को पूर्व कहते हैं।

गाथा १७—“कामस्कन्ध” का अर्थ है—काम अर्थात् मनोज्ञ शब्द-रूपादि के हेतुभूत पुद्गलों का स्कन्ध-समूह। भोग-विलास के मनोज्ञ साधन। (सुखबोधा)

“दास पौरुष” में आये दास का अर्थ है—“वह गुलाम, जो खरीदा हुआ है, जो क्रेता स्वामी की संपत्ति समझा जाता है।” दास और कर्मकर अर्थात् नौकर में यही अन्तर है कि दास खरीदा हुआ होने से स्वामी की सम्पत्ति है और कर्मकर वेतन लेकर अमुक समय तक काम करता है, फिर छुट्टी।

## IMPORTANT NOTES

**Verse-15**—The term *purva* is used in *Jain* tradition also to mean a number of very high order. One *purva* is square of 8.4 million or 70.56 trillion. In context of time 7,05,60,00,00,000 years make one *purva*.

**Verse-17**—*Kaama-skandh* means – Aggregate (*skandh*) of pleasurable (*kaama*) words, colours, forms etc., in other words, the means of mundane pleasures and comforts.

The term *daas* and *paurush* mean slave and servant respectively. Slave is a person who is bought and is fully owned by the buyer. Servant is one whose services are bought. The difference is that a slave is the property of his owner, while a servant gets paid for the services rendered on contracted terms.



## चतुर्थ अध्ययन : असंख्यं

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का असंख्यं (संस्कृत रूपान्तर-असंस्कृत) नाम प्रथम गाथा के प्रथम शब्द पर आधारित है। यह नाम समवायांगसूत्र में दिया गया है। इसका अर्थ है—जिसे सांधा न जा सके, टूटने के बाद जोड़ा न जा सके, जो मरम्मत के योग्य न हो।

निर्युक्ति में इस अध्ययन का गुणपरक नाम प्रमादाप्रमाद है। इस नाम को अंग्रेजी अनुवाद में प्रो. हरमन जेकोबी ने भी स्वीकार किया है।

इससे पहले तीसरे अध्ययन में मोक्ष-प्राप्ति के चार अंगों का वर्णन किया गया था, जिनमें प्रथम अंग मनुष्यत्व है।

लेकिन मानव-जीवन बहुत दीर्घ नहीं है, क्षण-विनाशी है, काल के किस क्षण में आयुष्य की कच्ची डोरी टूट जाय, कुछ निश्चित नहीं है। वस्तुतः मानव का जीवन ऐसी कच्ची डोर के समान है, जिसे एक बार टूटने पर पुनः सांधा नहीं जा सकता।

अतः प्रस्तुत अध्ययन में मानव को यही प्रेरणा दी गई है कि इस असंस्कृत मानव-जीवन को पाकर प्रमाद का त्याग कर दे, प्रमादी बनकर जीवन को व्यर्थ न खोए, एक-एक क्षण का सदुपयोग करे।

यह संपूर्ण अध्ययन प्रमाद-अप्रमाद का विवेचन करता है।

इसमें बताया गया है कि भाई, बन्धु, स्त्री-पुत्र आदि परिवारी और मित्रजन, जिनके लिये व्यक्ति पापकर्म करता है, फल भोगने में वे उसके भागीदार नहीं होते। कृत कर्मों का फल उस अकेले व्यक्ति को ही भोगना पड़ेगा; क्योंकि कर्म सत्य हैं और उन्हें भोगे बिना छुटकारा नहीं मिल सकता।

मरण के समय धन आदि सांसारिक वैभव प्राणी की रक्षा नहीं कर सकते। धन आदि को यहीं छोड़कर जाना पड़ता है।

साथ ही इस अध्ययन द्वारा, उस युग में प्रचलित मिथ्या मान्यताओं और धारणाओं की निस्सारता को भी उजागर किया गया है।

प्रमाद और अप्रमाद का विवेक करके प्रस्तुत अध्ययन में अप्रमाद के मूल सूत्रों को बहुत ही प्रेरणात्मक शैली में समझाया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में मात्र १३ गाथाएँ हैं।



## CHATURTH ADHYAYAN : ASAMSKRIT

### Foreview

The title of this chapter Asankhayam (Sanskrit transcription—*Asamskrit*) is based on the first word of the first verse. This name finds mention in *Samavayanga Sutra*. It means, that which cannot be welded; that which cannot be joined once broken; that which is irreparable.

*Niryukti* mentions its thematic name as *Pramaadaa-pramaada* (Stupor and Non-stupor). German scholar Dr. Herman Jacobi has also accepted this title in his English translation.

The preceding chapter dealt with the four essentials for attaining emancipation. First of them was manhood.

But the human life-span is not long, it is of a very short duration; at which moment of time the weak thread of life may break is, indeed, uncertain. In fact the life of a human-being is like such a weak string that cannot be rejoined once it is broken.

Therefore, in this chapter man has been advised to get rid of stupor on getting this irreparable life. He should not waste his life due to carelessness but make good use of every second.

The whole chapter discusses stupor and non-stupor in detail.

It establishes that none of the friends and family members including brothers, wife and son, for whom a person indulges in sinful deeds, shares the sufferings of the consequences. He alone has to bear the fruits of the *karmas* so bonded. This is because *karmic* bondage is a reality and there is no escaping them without suffering.

At the time of death mundane grandeur including wealth cannot save a man. He is bound to go leaving all assets here.

This chapter also reveals the worthlessness of the false beliefs and doctrines prevalent during that period.

Discerning between stupor and non-stupor, this chapter explains the fundamentals of non-stupor in very inspiring style.

There are only 13 verses in this chapter.



चतुर्थं अज्ज्ञयणं : असंख्यं  
चतुर्थ अध्यायन : असंस्कृत  
Chapter-4 : IRREPARABILITY

असंख्यं जीविय मा पमायए, जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं ।

एवं वियाणाहि जणे यमत्ते, कण्णू विहिंसा अजया गहन्ति ॥ १ ॥

जीवन असंस्कृत है, टूटने पर जोड़ा (सांधा) नहीं जा सकता। अतः प्रमाद (आलस्य), आत्म-विस्मरण मत करो। वृद्धावस्था में कोई शरण नहीं होता। ऐसा जानो (विचार करो) कि प्रमादी, हिंसक, असंयमी तथा अजितेन्द्रिय मनुष्य किसकी शरण ग्रहण करेंगे ? ॥ १ ॥

Life is irreparable; once broken it cannot be welded. Therefore, avoid stupor or lethargy or dereliction (*pramaad*). There is no refuge for old age. Consider that whose refuge will the derelict, violent, undisciplined, slave of senses take? (1)

जे पावकम्मेहि धणं मणुस्सा, समाययन्ती अमइं गहाय ।

पहाय ते पासपयट्टिए नरे, वेराणुबद्धा नरयं उवेन्ति ॥ २ ॥

जो मानव अज्ञान एवं दुर्बुद्धिवश पापकर्मों से धन का उपार्जन एवं संचय करते हैं वे पापबंधन में पड़े हुये मनुष्य धन को यहीं छोड़कर तथा वैर (शत्रुता) का अनुबंध करके नरक में उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

Out of ignorance and villainy, people who earn and accumulate wealth through sinful deeds, trapped in the bondage of demeritorious *karmas*, they leave that wealth here only and are born in hell entrapped in enmity. (2)

तेणे जहा सन्धि-मुहे गहीए, सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।

एवं पया पेच्च इहं च लोए, कडाव कम्माण न मोक्ख अत्थि ॥ ३ ॥

जिस प्रकार संध लगाता हुआ संधिमुख (मौके पर) पकड़ा गया चोर अपने ही पापकर्मों से मृत्यु (त्रास, पीड़ा, छेदन-भेदन) पाता है इसी प्रकार जीव अपने ही किये हुये कर्मों का फल भोगे बिना कभी छुटकारा नहीं होता ॥ ३ ॥

Like the housebreaker, caught red handed at the spot, begets death (torture, pain) due to his own sinful deeds; in the same way a living being (soul) begets death (torture, pain) due to his own sinful deeds in this and the next life. This is because without suffering no one can escape the consequences of his actions. (3)

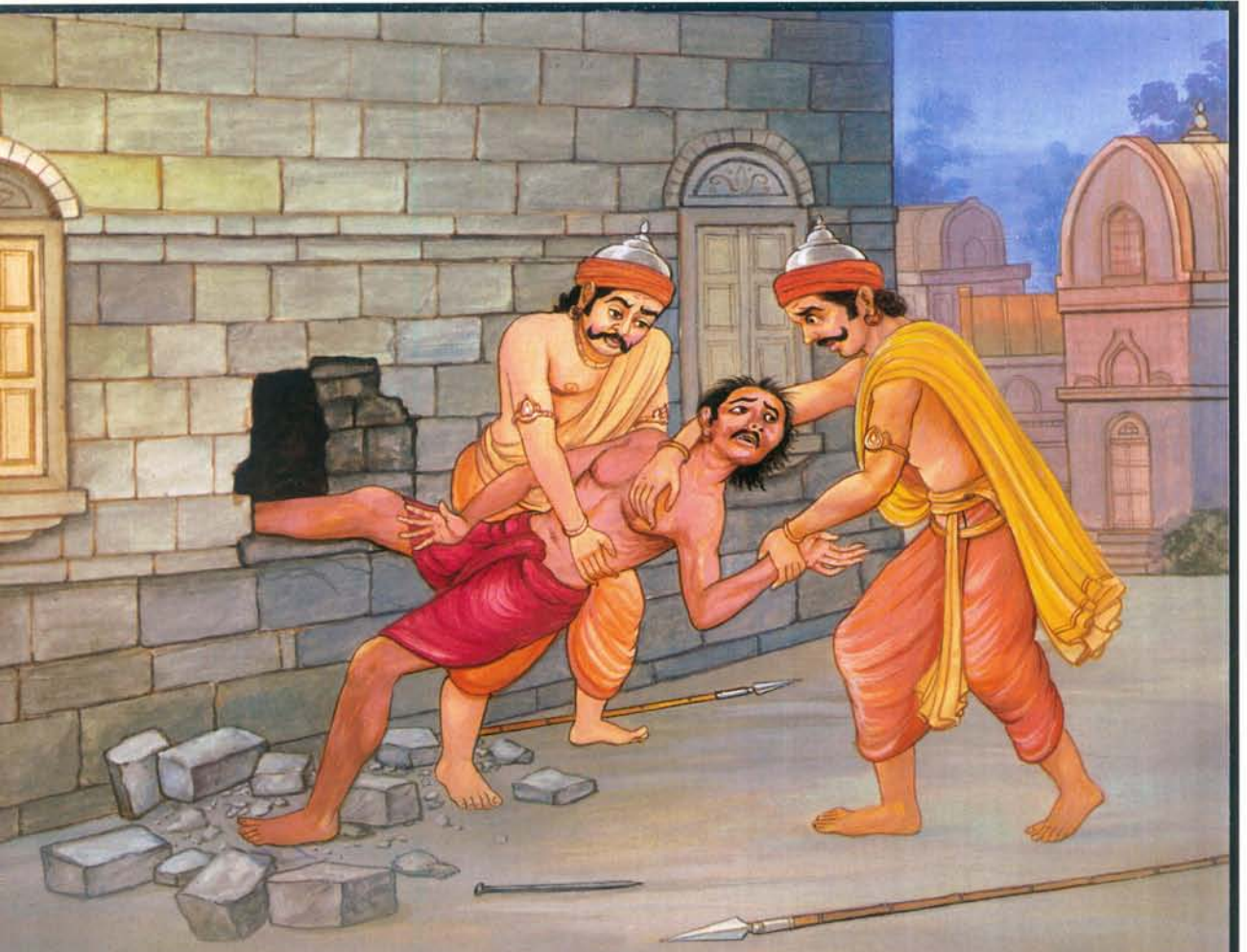
संसारमावन्न परस्स अट्टा, साहारणं जं च करेइ कम्मं ।

कम्मस्स ते तस्स उवेय-काले, न बन्धवा बन्धवयं उवेन्ति ॥ ४ ॥

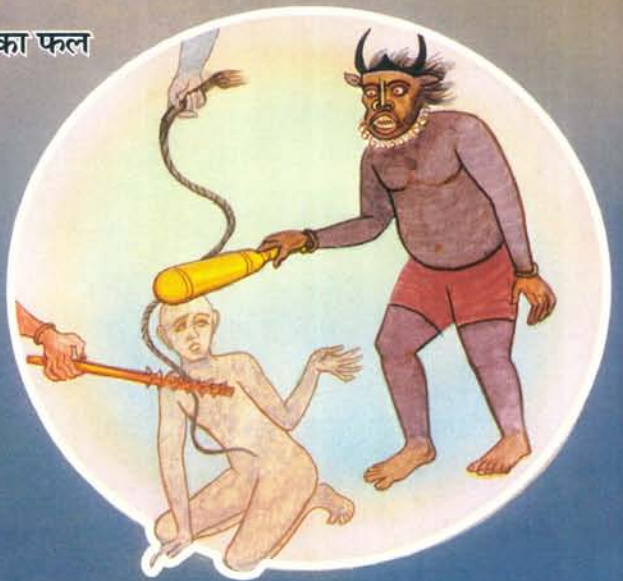
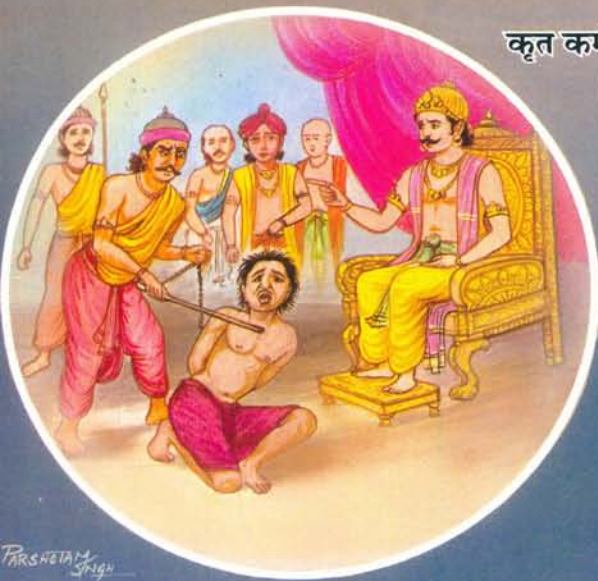
संसारी जीव अपने व दूसरों (स्त्री-पुत्रादि) के लिये साधारण (सम्मिलित लाभ की इच्छा से) कर्म करता है। किन्तु उस कर्म के फलभोग के समय बन्धुजन सहायक नहीं होते ॥ ४ ॥

The worldly being (soul) acts for limited gains for himself and others (wife, son etc). However, at the time of bearing the fruits (torments) of those deeds, no relative comes to help. (4)





कृत कर्म का फल



## कृत-कर्म फल

घर में सैंध लगाता हुआ चोर पकड़ा जाने पर इस लोक में अपने अपराध के लिये राजा आदि से दण्ड पाता है, वैसे ही जीव परलोक (नरक) में दुष्कर्मों का कटु-फल भोगता है।

—अध्ययन 4, सू. 3

## FRUITS OF DEEDS

When a thief breaking a wall is caught red-handed, he suffers punishment by the ruler in this world; in the same way a living being reborn in the next world (hell) suffers torments as a bitter consequence of his evil deeds.

— Chapter 4, Aphorism 3





वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इमंमि लोए अदुवा परत्था।  
दीव-प्पणट्टे व अणन्त-मोहे, नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ॥ ५ ॥

प्रमादी पुरुष के लिये धन, इस लोक अथवा परलोक में त्राण (शरण) दाता, रक्षक नहीं होता। अंधेरी गुफा में जिसका दीपक बुझ गया हो, ऐसा अनन्त मोही जीव सुपथ मोक्षमार्ग को देखकर भी नहीं देख पाता ॥ ५ ॥

Wealth cannot protect a careless man in this world and the next. A person deluded by endless attachments fails to recognize the right path of liberation exactly like one in a dense cave having his lamp extinguished. (5)

सुत्तेसु यावी पडिबुद्ध-जीवी, न वीससे पण्डिए आसु-पत्ते।  
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारण्ड पक्खी व चरेऽप्पमत्तो ॥ ६ ॥

उचित कार्य में शीघ्र प्रवृत्त होने वाली बुद्धि का स्वामी (आशु प्रज्ञ) ज्ञानी साधक मोहनिद्रा में सोये हुये लोगों के बीच में रहकर भी जागृत रहे। क्षणभर का भी विश्वास न करे। काल (क्षण) भयानक है, शरीर दुर्बल है अतः भारण्ड पक्षी के समान सदा अप्रमत्त होकर विचरण करना चाहिये ॥ ६ ॥

Living amidst those in slumber of delusion, the wise and quick witted aspirant should always remain alert and not rest assured even for a moment. Passage of time is dangerous and body is feeble, therefore, one should always move with alertness like *Bhaarand* (a mythical bird). (6)

चरे पयाइं परिसंकमाणो, चं किंचि पासं इह मण्णमाणो।  
लाभन्तरे जीविय वूहइत्ता, पच्छ परिन्नाय मलावधंसी ॥ ७ ॥

साधक पग-पग पर दोषों की संभावना से सावधानीपूर्वक विचरण करे। छोटे-छोटे दोषों को भी पाश (जाल) माने। जब तक गुणों का लाभ हो तब तक शरीर को धारण करे और जब लाभ न होता दीखे तो धर्म-साधनापूर्वक शरीर को त्याग दे ॥ ७ ॥

An aspirant should move with alertness for possible chances of faults at every step. He should consider even minor faults to be traps. He should maintain the body as long as it acquires virtues; and on realizing that it does not do so then he should transcend from it into the spiritual realm. (7)

छन्दं निरोहेण उवेइ मोक्खं, आसे जहा सिक्खिय-वम्मधारी।  
पुव्वाइं वासाइं चरेऽप्पमत्तो, तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ॥ ८ ॥

जिस प्रकार कवचयुक्त शिक्षित अश्व स्वच्छन्दता के निरोध से युद्ध में विजयी होता है, उसी प्रकार स्वेच्छाचार-त्यागी मुनि शीघ्र ही मुक्त हो जाता है। इसलिये मुनि पूर्व वर्षों में (साधना के प्रारम्भिक वर्षों से ही) अप्रमत्त होकर विचरण करे ॥ ८ ॥

As a trained horse with armour wins by restraining foot looseness, in the same way having abandoned recklessness, an ascetic soon attains liberation. That is why an ascetic should be free of stupor right from the early years (of his practice). (8)



स पुव्वमेवं न लभेज्ज पच्छा, एसोवमा सासय-वाइयाणं ।

विसीयइं सिद्धिले आउयंमि, कालोवणीए सरीरस्स भेए ॥ ९ ॥

जो साधक साधना के प्रारम्भिक वर्षों में अप्रमत्त-जागृत नहीं रहता, वह बाद में भी अप्रमत्त नहीं हो सकता—यह धारणा ज्ञानीजनों की है। शाश्वतवादियों की धारणा इसके विपरीत है कि आयु के अन्तिम समय में अप्रमत्त हो जायेंगे। आयु के शिक्षित होने पर तथा मृत्यु के प्रभाव से शरीर छूटने के समय वह (शाश्वतवादी) खेदित होता है ॥ ९ ॥

The sagacious believe that an aspirant who does not remain alert (*apramatta*) during the formative period of practices, cannot become alert later. The eternalists (*shashvat-vaadi*) have contrary belief that alertness could be achieved during the last phase of life. However, they are disappointed at the time of death when life-force gets weak and the body is about to abandoned. (9)

खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं, तम्हा समुट्ठांय पहाय कामे ।

समिच्च लोयं समया महेसी, अप्पाण-रक्खी चरमप्पमत्तो ॥ १० ॥

कोई व्यक्ति तत्काल ही विवेक (त्याग) करने में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिये सभी से कामभोगों को त्यागकर, मोक्षमार्ग में उद्यत होकर, प्राणिजगत् का समभाव से अवलोकन करे। आत्मा की रक्षा करने वाला महर्षि अप्रमत्त होकर विचरण करे ॥ १० ॥

No one is capable of gaining sagacity at once. As such, an aspirant should renounce sensual pleasures, launch himself on the path of liberation and observe the world of the living with equanimity. Committed to guarding his soul, the great sage should be ever alert in his movement. (10)

मुहुं मुहुं मोह-गुणे जयन्तं, अणोग-रूवा समणं चरन्तं ।

फासा फुसन्ती असमंजसं च, न तेसु भिक्खू मणसा पउस्से ॥ ११ ॥

बार-बार मोहगुणों, शब्द आदि विषयों पर विजय प्राप्त करते हुये तथा संयम-मार्ग में विचरण करते हुये श्रमण को अनेक कटु कठोर स्पर्श स्पृष्ट करते हैं, किन्तु वह उन पर मन से भी द्वेष न करे ॥ ११ ॥

While winning over sensual desires and following the path of ascetic-discipline an ascetic faces many bitter and harsh experiences again and again; he should not despise them even in his thoughts. (11)

मन्दा य फासा बहु-लोहणिज्जा, तह-प्पगारेसु मणं न कुज्जा ।

रक्खेज्ज कोहं, विणएज्ज माणं, मायं न सेवे, पयहेज्ज लोहं ॥ १२ ॥

हिताहित विवेक को मंद करने वाले अनुकूल स्पर्श बहुत लुभावने होते हैं। किन्तु साधक उनमें अपने मन को न लगाए। क्रोध से अपने को बचाये, अभिमान को दूर करे, माया-छल-कपट का सेवन न करे और लोभ को त्याग दे ॥ १२ ॥

Pleasurable experiences that dull sagacity are very enticing. But an aspirant should not get involved in them. He should avoid anger, remove pride, not indulge in deceit and abandon greed. (12)

जाग्रत साधक



भारण्ड पक्षी



चित्र क्रमांक १२

ILLUSTRATION No. 12

## प्रज्ञाशील साधक

प्रज्ञाशील ज्ञानी साधक सोये (प्रमादी) लोगों में जागता (अप्रमत्त) रहता है। दो मुख एवं एक उदर वाले भारण्ड पक्षी की भाँति वह प्रतिक्षण सजग (चौकन्ना) और अप्रमादी होकर विचरता है।

— अध्ययन 4, सू. 6

## WISE ASPIRANT

Among sleeping (in stupor) people a wise and intelligent aspirant remains awakened (not in stupor). He remains ever awake and alert like a Bharand bird that has two mouths and one stomach.

— Chapter 4, Aphorism 6





जेऽसंख्या तुच्छ परप्पवाई, ते पिज्ज-दोसाणुगया परज्झा।  
एए 'अहम्मे' त्ति दुगुंछमाणो, कंखे गुणे जाव सरीर-भेओ ॥ १३ ॥

—त्ति बेमि।

जो लोग कृत्रिम रूप से संस्कारी हैं, वे जीवन को सांधने योग्य मानते हैं। ऐसे लोग तुच्छ हैं, पर-प्रवादी हैं (दूसरों के निन्दक हैं), राग-द्वेष से ग्रस्त हैं, परवश (वासनाओं के वशीभूत) हैं। इन्हें अधर्मी जानकर साधक इनसे दूर रहे और देह-त्याग (आयु के अन्तिम क्षणों) तक सदगुणों (अप्रमत्तता) की कांक्षा-आराधना करता रहे ॥ १३ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Those who pose to be pure consider life to be repairable. Such persons are worthless, accusers of others, victims of attachment and aversion and slaves of desires. Considering them to be irreligious and impious, the aspirant should keep away from them and continue to practise virtues (including alertness) till he leaves his body (last moments of life). (13)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

भारण्ड पक्षी पौराणिक युग का एक विराटकाय पक्षी माना गया है। पंचतंत्र आदि में उसके दो ग्रीवा और एक पेट बताया गया है—“एकोदराः पृथग् ग्रीवा।” कल्पसूत्र की किरणावली टीका में भी उसके दो मुख और दो जिह्वा का उल्लेख है। इसका अर्थ है कि दो ग्रीवा एवं दो मुख होने से उसके आँख, कान आदि सब दो-दो हैं। जब वह एक ग्रीवा से भोजन करता है, तो दूसरी ग्रीवा को ऊपर किये हुये आँखों से देखता रहता है कि कोई मुझ पर आक्रमण तो नहीं करता है। इस दृष्टि से साधक को अप्रमत्तता के लिये भारण्ड पक्षी की उपमा दी जाती है। कल्पसूत्र में भगवान महावीर को भी अप्रमत्तता एवं सतत जागरूकता के लिये भारण्ड पक्षी की उपमा दी जाती है। कल्पसूत्र में भगवान महावीर को भी अप्रमत्तता एवं सतत जागरूकता के लिये भारण्ड पक्षी की उपमा दी है। उक्त पक्षी का वर्णन वसुदेवहिण्डी आदि अनेक प्राचीन जैन-कथा-ग्रन्थों में भी आता है।

## IMPORTANT NOTES

*Bhaarand* is a mythical bird of giant proportions. According to *Panchatantra* it has 'two necks and one stomach'. In *Kiranavli* commentary (*Tika*) of *Kalpasutra* there is a mention of this bird having two mouths and two tongues. This means that having two necks it also has two sets of ears, nose and eyes. Thus when it feeds with the mouth on one neck at that time it turns the other neck up keeps a watch with the second set of eyes for any possible attack. It is in this context that the alertness of an aspirant is given the simile of *Bhaarand* bird. This metaphor has also been used in *Kalpasutra* for the absolute and perpetual alertness of Bhagavan Mahavir. The description of this bird finds mention in many ancient Jain narrative works including *Vasudevahindi*.



## पंचम अध्ययन : अकाममरणीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम अकाममरणीय है और निर्युक्ति में इसका दूसरा नाम मरणविभक्ति भी दिया गया है।

इससे पूर्व चतुर्थ अध्ययन में जीवन को असंस्कृत बताया था और प्रस्तुत अध्ययन में मरण का वर्णन हुआ है।

यह सत्य है कि प्राणी मात्र का मरण अवश्यम्भावी है। प्रत्येक प्राणी को मृत्यु का ग्रास अवश्य बनना है। संसार का आदि प्रश्न है—मृत्यु क्या है?

क्या आत्मा मरती है? नहीं, वह तो अजर-अमर-अविनाशी है। उसके मरण का तो प्रश्न ही नहीं है। तब क्या शरीर मरता है? नहीं, वह भी मूल पुद्गल रूप से तो ज्यों का त्यों रहता है।

प्रश्न फिर भी ज्यों का त्यों है—मृत्यु क्या है?

समाधान है—आयुकर्म के समाप्त हो जाने पर आत्मा का शरीर से निकल जाना, आत्मा और देह का बिछोह ही मृत्यु है।

यदि ऐसा है तो क्या अन्तर पड़ा? प्रत्येक प्राणी मृत्यु से भयभीत क्यों रहता है?

भय अनजानी वस्तु से होता है। सामान्य मानव मृत्यु को नहीं जानता, इसीलिए भयभीत रहता है; किन्तु जो मृत्यु को जानता है, वह भयभीत नहीं होता, स्वेच्छामरण स्वीकार करता है।

इस तथ्य को प्रस्तुत अध्ययन में मरण के दो विभाग—(१) अकाममरण, और (२) सकाममरण करके समझाया गया है।

सकाममरण में साधक मृत्यु का वीर योद्धा के समान साहसपूर्वक सामना करता है, अतिथि के समान स्वागत करता है और मृत्यु को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करता है, मृत्यु के समय वह शान्त और प्रसन्नचित्त रहता है। उसका मरण सकाममरण अथवा पण्डितमरण कहा गया है। इसके विपरीत अकाममरण जिसे बालमरण कहा गया है, प्रत्येक प्राणी का अनादिकाल से होता रहा है और होता रहेगा।

अकाममरण अथवा बालमरण १२ प्रकार का है। इसमें क्रोध आदि कषायों तथा भय की प्रमुखता रहती है। जो प्राणी विशेष रूप से मनुष्य सद्धर्माचरण नहीं करते हैं, गतानुगतिक लोक का अनुसरण करते हैं, वे मृत्यु के समय भयाक्रान्त होते हैं, दुर्गति में गिरते हैं, संसार बढ़ाते हैं। इसके विपरीत सकाममरण से मरने वाले संसार घटाते हैं।

इस तथ्य को दृष्टान्तों और रूपकों द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में पुष्ट किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३२ गाथाएँ हैं।





## PANCHAM ADHYAYAN : AKAAM-MARANIYA

### Foreview

The title of this chapter is Akaam-maraniya or Naive Death. *Niryukti* (commentary) mentions another name also—Maran Vibhakti or Classifications of death.

In the preceding fourth chapter the life was described as irreparable and this chapter describes death.

It is a fact that death is inevitable for every living being. Each and every being is sure to die. The foremost question of the worldly being is—What is Death?

Does the soul die? No, it is immortal, imperishable and eternal. There is no question of its death. Then does the body die? No, in its basic material form it too remains as it was.

The question still remains unanswered—What is the death?

The answer is—When the life-span determining *karma* is exhausted the soul leaves the body. This separation of soul from the body is death.

If it is so, what difference does it make? Why every living being is afraid of death?

Fear originates from the unknown. Common man is afraid of death because he is ignorant about the definition of death. However, one who is aware is not afraid. He willingly accepts death.

This fact is described in this chapter by classifying death in two types—1. Naive death (*akaam maran*), and 2. Prudent death (*sakaam maran*).

In prudent death an aspirant faces death as a brave warrior, welcomes it as a guest and willingly accepts it. At the time of death he remains calm and blissful. His death is called prudent death or Pundit's death. Contrary to this the naive death or ignorant death (*Bala-maran*) has been taking place since the beginning of time and will continue to do so in future.

Naive death or ignorant death (*Bala-maran*) is of 12 types. It is preceded by abundance of passions including anger. Living beings, particularly human-beings, who do not have good conduct and follow the ongoing social traditions; they are engulfed by fear at the time of death, fall into lowly realms and extend the cycles of rebirth. Contrary to this, those who accept prudent death, they reduce their rebirth cycles.

This fact has been affirmed with the help of examples and allegories in this chapter.

There are 32 verses in this chapter.



पंचमं अज्झयणं : अकाम मरणिज्जं  
पंचम अध्ययन : अकाममरणीय  
Chapter-5 : NAIVE DEATH

अण्णवंसि महोहंसि, एगे तिण्णे दुरुत्तरे ।

तत्थ एगे महापत्ते, इमं पट्ठमुदाहरे ॥ १ ॥

यह संसार महाप्रवाहयुक्त एक सागर है। इसे तैरकर पार करना बहुत ही कठिन कार्य है। फिर भी कुछ लोग इसे पार कर गये हैं। उनमें से एक महाप्रज्ञ श्रमण भगवान महावीर भी हैं। उन्होंने ऐसी प्ररूपणा की है ॥ १ ॥

This world is like an ocean with intense flow. To swim it across is a very difficult task. Even then some individuals have crossed it. One of them is Shraman Bhagavan Mahavir, the epitome of ultimate enlightenment. He has propagated thus. (1)

सन्तिमे य दुवे ठाणा, अक्खाया मारणन्तिया ।

अकाममरणं चेव, सकाममरणं तथा ॥ २ ॥

मरण के दो स्थान (भेद या रूप) बताये हैं—(१) अकाममरण, और (२) सकाममरण ॥ २ ॥

There are two kinds of death—1. Naive death (*akaam maran*), and 2. Prudent death (*sakaam maran*). (2)

बालाणं अकामं तु, मरणं असइं भवे ।

पण्डियाणं सकामं तु, उक्कोसेण सइं भवे ॥ ३ ॥

बाल अथवा सदसद्विवेक-विकल अज्ञानी जीवों का अकाम (अनिच्छापूर्वक) मरण बार-बार होता है किन्तु पण्डितों (ज्ञानी-चारित्रवानों) का सकाम (इच्छापूर्वक) मरण उत्कृष्ट रूप से एक बार होता है ॥ ३ ॥

Ignorant or those incapable of discerning right from wrong succumb to Naive death again and again; but the pundits (having right knowledge and conduct) embrace the commendable prudent death only once. (3)

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसियं ।

काम-गिद्धे जहा बाले, भिसं कूराइं कुव्वई ॥ ४ ॥

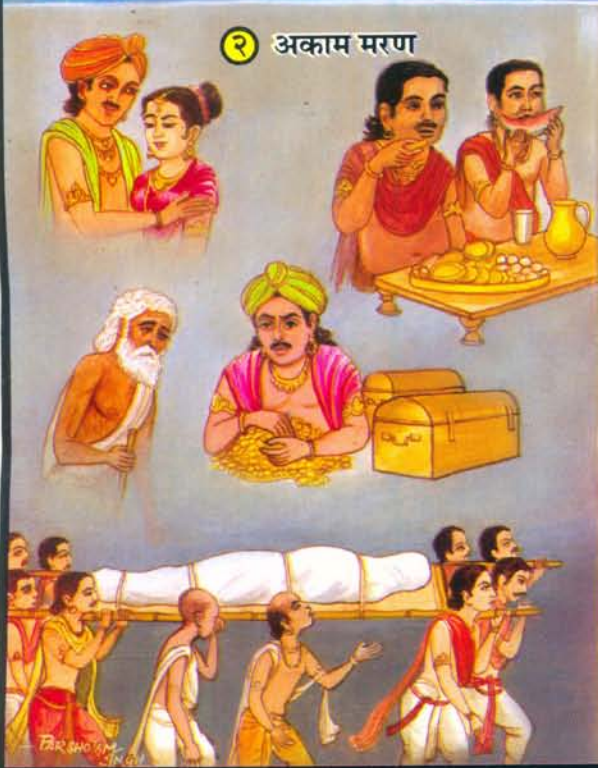
अकाममरण के विषय में भगवान महावीर ने बताया है कि कामभोगों में आसक्त अज्ञानी जीव घोर क्रूरकर्म करता है ॥ ४ ॥

About the first one (Naive death) Bhagavan Mahavir has said that an ignorant, infatuated with carnal pleasures, indulges in extremely severe cruel deeds. (4)

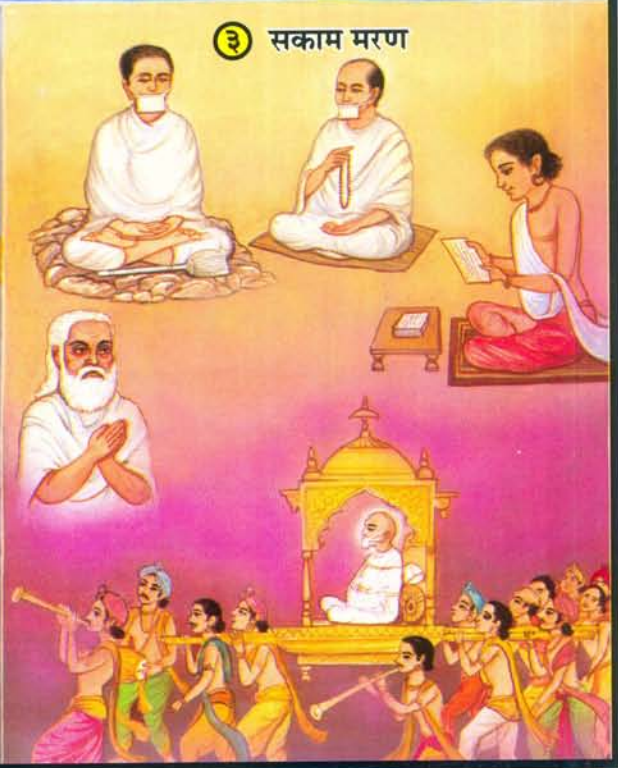
१ संसार सागर पारगामी का उपदेश



२ अकाम मरण



३ सकाम मरण



## अकाममरण-सकाममरण

- (1) दुस्कर संसार-सागर को पार कर तट पर पहुँचे हुये संसार-सागर पारगामी भगवान महावीर ने यह उपदेश दिया है।
- (2) जो मद्य-माँस आदि को सेवन करने में गृद्ध है; धन एवं स्त्रियों में आसक्त है; ऐसे अज्ञानी जीव अकाममरण प्राप्त करते हैं।
- (3) ध्यानी, स्वाध्यायी, संयमी और जितेन्द्रिय, पुण्यात्माओं का सकाममरण (मरण-उत्सवमय) होता है।

—अध्ययन 5, सू. 1

## NAÏVE DEATH AND PRUDENT DEATH

- (1) Having crossed the difficult to cross worldly ocean Bhagavan Mahavir has given this sermon.
- (2) Those who are obsessed with consuming flesh, liquors and the like as well s infatuated with wealth and women, such ignorant persons get naïve death.
- (3) The meritorious persons indulging in meditation, study, restraint and winning over senses embrace prudent death.

— Chapter 5, Aphorism 1





जे गिद्धे कामभोगेसु, एगे कूडाय गच्छई।

‘ब मे दिट्ठे परे लोए, चक्खु-दिट्ठ इमा रई’ ॥ ५ ॥

जो व्यक्ति कामभोगों में गूढ़ होता है, वह अकेला कूट (हिंसा तथा मृषावाद) की ओर जाता है। वह कहता है कि परलोक तो मैंने देखा ही नहीं किन्तु यह सांसारिक सुख तो प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं ॥ ५ ॥

A person infatuated with carnal pleasures, is drawn to evil (violence and falsehood) alone. He says—‘I have not seen the other world (next birth) but these mundane pleasures can be seen plainly and directly. (5)

‘हत्थागया इमे कामा, कालिया जे अणागया।

को जाणइ परे लोए, अत्थि वा नत्थि वा पुणो’ ॥ ६ ॥

ये कामभोग तो हाथ में आये हुये हैं; लेकिन भविष्यकालीन सुख तो अनिश्चित हैं। कौन जानता है, परलोक है भी अथवा नहीं है ॥ ६ ॥

The present mundane pleasures are in hand but the future ones are uncertain. Who knows if there is a next life or not? (6)

‘जणेण सद्धिं होक्खामि’, इइ बाले पगब्भई।

काम-भोगाणुराएणं, केसं संपडिवज्जई ॥ ७ ॥

‘मैं तो जनसाधारण के साथ ही रहूँगा’ (इन्हीं के बीच रहना है, जो इनकी दशा होगी, वह मेरी भी हो जाएगी) ऐसी धारणा बनाकर वह ढीठ बन जाता है और कामभोग-गृद्धि के कारण स्वयं ही कष्टित-पीड़ित होता है ॥ ७ ॥

‘I will go with the masses’, (I have to live among them, whatever happens to them would happen to me as well) with this idea he (the indulgent) becomes impudent and due to his infatuation with carnal pleasures he invites misery and grief himself. (7)

तओ से दण्डं समारभई, तसेसु थावरेसु य।

अट्ठाए य अणट्ठाए, भूयग्गामं विहिंसई ॥ ८ ॥

तब वह त्रस और स्थावर जीवों पर दण्ड-प्रयोग करता है। सप्रयोजन अथवा निष्प्रयोजन ही प्राणी समूह की हिंसा, उनका विनाश करता है ॥ ८ ॥

Then he inflicts torture on mobile and immobile beings. He turns violent towards the multitude of living beings and destroys them with or without purpose. (8)

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे।

भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयं ति मन्नई ॥ ९ ॥

वह हिंसक, अज्ञानी-बाल, मृषावादी, कपटी, चुगलखोर, शठ, धूर्त होता है तथा मद्य-माँस का सेवन करता हुआ मानता है कि यही श्रेयस्कर है ॥ ९ ॥

He is violent, ignorant, fallacious, deceitful, slanderer, vicious and cunning. He consumes alcohol and meat believing that alone is beneficial. (9)



कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थिसु।  
दुहओ मलं संचिणइ, सिसुणागु व्व मट्टियं ॥ १० ॥

वह तन और वचन से सदा उन्मत्त बना रहता है, धन और स्त्रियों में आसक्त रहता है तथा राग और द्वेष दोनों प्रवृत्तियों से उसी प्रकार कर्ममल का संचय करता है जिस प्रकार अलसिया—कैचुआ शरीर और मुख दोनों ओर से मिट्टी का संचय करता रहता है ॥ १० ॥

He remains frenzied in body and speech, infatuated with wealth and women, he accumulates the slime of *karmas* through indulgence in attachment and aversion, just like an earthworm gathering sand through its mouth (by swallowing) as well as body (collecting by sticky skin). (10)

तओ पुट्ठो आयंकेणं, गिलाणो परितप्पइ।  
पभीओ परलोगस्स, कम्माणुप्पेहि अण्णो ॥ ११ ॥

तब वह अज्ञानी प्राणघातक रोग से ग्रसित होकर खिन्न और परितप्त होता है तथा अपने किये हुये दुष्कर्मों का अनुप्रेक्षण-स्मरण कर परलोक से भयभीत होने लगता है ॥ ११ ॥

Then that ignorant, afflicted by terminal disease laments and suffers. Recalling the evil deeds committed by him he dreads the future rebirth. (11)

सुया मे नरए ठाणा, असीलाणं च जा गई।  
बालाणं कूर-कम्माणं, पगाढा जत्थ वेयणा ॥ १२ ॥

तब (वह सोचता है) मैंने नरक-स्थानों के विषय में सुना है जो अज्ञानी, क्रूरकर्मी और दुःशील जीवों की गति है और वहाँ अत्यधिक तीव्र कष्टकारी वेदना होती है ॥ १२ ॥

He then thinks—I have heard about the infernal worlds that are destinies of rebirth for ignorant, cruel and vicious people, and where intense and torturing agony awaits them. (12)

तत्थोववाइयं ठाणं, जहा मेयमणुस्सुयं।  
आहाकम्मोहिं गच्छन्तो, सो पच्छा परितप्पइ ॥ १३ ॥

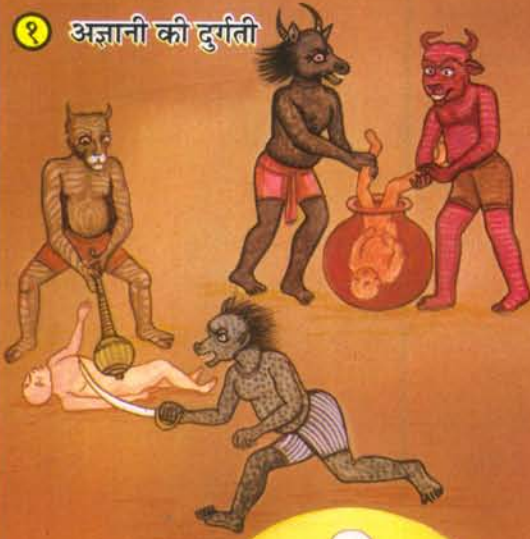
मैंने परम्परा से सुना है कि उन नरकों में उत्पत्ति-स्थान (कुम्भियाँ हैं, जिनमें जन्म लेते ही प्राणी युवा हो जाता है) हैं। मनुष्य-आयु क्षय होते ही जीव अपने कर्मों के अनुसार वहाँ (नरकों में) जाता हुआ बहुत दुःखी होता है ॥ १३ ॥

I have come to know from tradition that infernal worlds have birth places (vessels where a being is born as fully formed youth). At the end of the human life-span the soul goes there according to its *karmas* and suffers heaps of misery. (13)

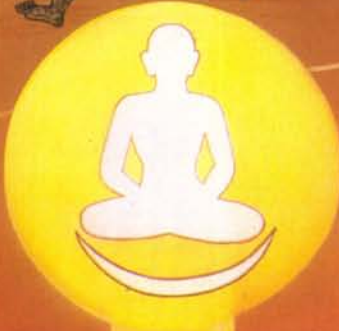
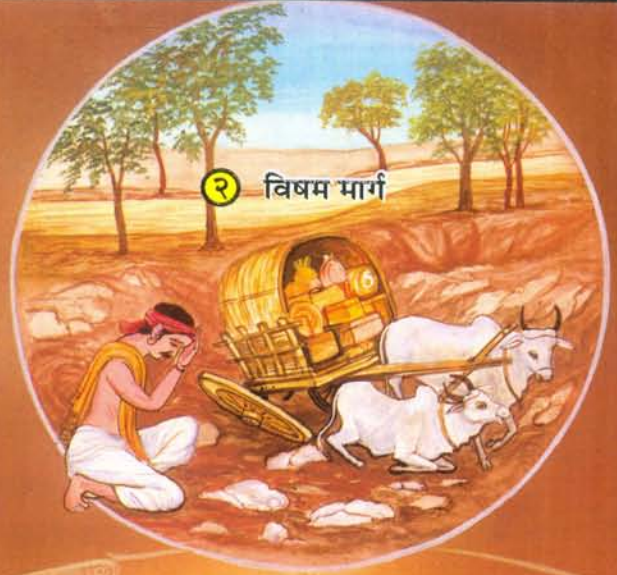
जहा सागडिओ जाणं, समं हिच्चा महापहं।  
विसमं मग्गमोइण्णो, अक्खे भग्गमि सोयई ॥ १४ ॥

जिस प्रकार कोई गाड़ीवान समतल महापथ को छोड़कर ऊबड़-खाबड़ विषम मार्ग पर चल पड़ता है और फिर गाड़ी की धरी टट जाने पर शोक करता है ॥ १४ ॥

१ अज्ञानी की दुर्गति

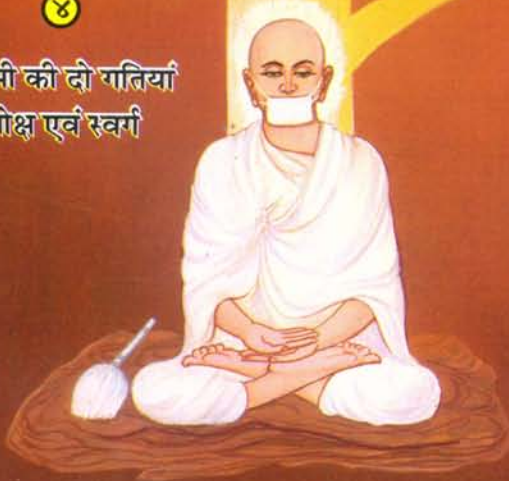


२ विषम मार्ग



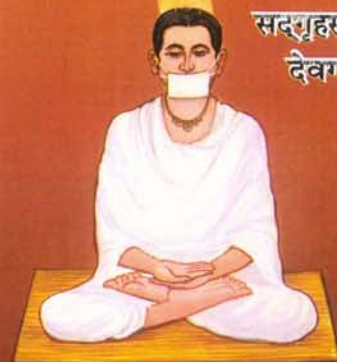
४

संयमी की दो गतियां  
मोक्ष एवं स्वर्ग



३

सद्गृहस्थ की  
देवगति



## दुर्गति-सुगति

- (1) पापकर्मा मनुष्य आयुष्य क्षीण होने पर नरक में उत्पन्न होता है।
- (2) जैसे समतल मार्ग को जानता हुआ भी गाड़ी वाला ऊबड़-खाबड़ विषम मार्ग पर जाते हुये गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक-परिताप करता है।
- (3) संयम आराधना करने वाले सुव्रती की दो गतियाँ हैं—वह कर्मक्षय कर मोक्ष में चला जाता है अथवा देवलोक में उत्पन्न होता है।
- (4) सामायिक, पौषध आदि धर्म की आराधना करने वाला सदगृहस्थ आयुष्य पूर्ण होने पर देवलोक में जाता है।

—अध्ययन 5, सू. 13-14, 25-28

## BAD REBIRTH AND GOOD REBIRTH

- (1) A man indulging in sinful deeds is reborn into hell at the end of his human life-span
- (2) Even when aware of an even path if a cart driver takes his cart on uneven path, he ends up in grief when the axle is broken.
- (3) There are two possible rebirths for an austere person practicing ascetic discipline – either he destroys all karmas and attains liberation or is reborn as a divine being.
- (4) A virtuous householder observing religious rituals including Samayik, Pausadh etc., takes birth as a divine being at the end of his human life-span.

— Chapter 5, Aphorism 13-14, 25-28





As a cart-driver, leaves a level highway, to take a rough and bumpy trail (shortcut) and then laments when the axle breaks. (14)

एवं धम्मं विउक्कम्म, अहम्मं पडिवज्जिया ।

बाले मच्चु-मुहं पत्ते, अक्खे भग्गे व सोयई ॥ १५ ॥

इसी प्रकार धर्म-पथ का व्युत्क्रम करके अधर्म पर चलने वाला, मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ अज्ञानी जीव भी गाड़ी की धुरी टूटे गाड़ीवान के समान चिन्ता-शोक करता है ॥ १५ ॥

In the same way, the ignorant who transgresses the religious path and shifts to evil ways is filled with worries and grief, like the said cart-driver, when he lands up in jaws of death. (15)

तओ से मरणन्तमि, बाले सन्तस्सई भया ।

अकाममरणं मरई, धुत्ते व कलिना जिए ॥ १६ ॥

एक ही दौंव में सब कुछ हारे हुये जुआरी के समान वह अज्ञानी जीव मृत्यु के समय परलोक के भय से संत्रस्त होकर अकाममरण से मरता है ॥ १६ ॥

Like a gambler, who has lost everything in a single bet, that ignorant being, overwhelmed by fear of the next birth at the last moment, dies a naive death. (16)

एयं अकाममरणं, बालाणं तु पवेइयं ।

एत्तो सकाममरणं, पण्डियाणं सुणेह मे ॥ १७ ॥

यहाँ तक तो अज्ञानी जीवों के अकाम का वर्णन किया गया है। अब यहाँ से आगे पंडितों (ज्ञानी जीवों) के सकाममरण का वर्णन मुझसे सुनो ॥ १७ ॥

Up to this point the naive death of ignorant beings has been described. Now onwards listen to my description of the prudent death of the wise. (17)

मरणं पि सपुण्णाणं, जहा मेयमणुस्सुयं ।

विष्यसण्णमणाघायं, संजयाणं वुसीमओ ॥ १८ ॥

जैसा कि मैंने परम्परा से सुना है—संयत, जितेन्द्रिय तथा पुण्यशालियों का मरण अति प्रसन्न और आघातरहित होता है ॥ १८ ॥

As I have heard from my tradition the death of the disciplined, victors (over senses) and pious, is in a very happy and serene state (free of shock or fear) of mind. (18)

न इमं सव्वेसु भिक्खूसु, न इमं सव्वेसुज्जारिसु ।

नाणा-सीला अगारत्था, विसम-सीला य भिक्खुणो ॥ १९ ॥

इस सकाममरण से न सभी साधु ही मृत्यु को प्राप्त होते हैं और न सभी गृहस्थ ही; क्योंकि गृहस्थ भी भिन्न-भिन्न प्रकार के शील वाले होते हैं और बहुत से भिक्षु (साधु) भी विषम (विभिन्न) शील वाले होते हैं ॥ १९ ॥



Neither every ascetic nor every householder begets such prudent death. This is because householders are at different levels of uprightness (*sheel*) and many ascetics too have variable levels of righteousness (*sheel*). (19)

सन्ति एगेहिं भिक्खूहिं, गारत्था संजमुत्तरा ।  
गारत्थेहि य सव्वेहिं, साहवो संजमुत्तरा ॥ २० ॥

कुछ भिक्षुओं की अपेक्षा गृहस्थ संयम में बढ़कर होते हैं किन्तु शुद्ध आचारवान् साधु सभी गृहस्थों से संयम में श्रेष्ठ होते हैं ॥ २० ॥

Some householders are superior to some ascetics in restraint but ascetics with purity of conduct are superior to all householders in restraint. (20)

चीराजिणं नगिणिणं, जडी-संधाडि-मुण्डिणं ।  
एयाणि वि न तायन्ति, दुस्सीलं परियागयं ॥ २१ ॥

चीवर-वस्त्र, अजिन-मृगचर्म, नग्नता, जटाधारण, चिथड़ों की कंथाधारण, शिरोमुण्डन-ये बाह्य वेश भी दीक्षा धारण किये हुये दुःशील-दुराचारी साधु की दुर्गति में जाने से रक्षा नहीं कर सकते ॥ २१ ॥

Garb, deer-skin, nudity, locks of hair, garb made of patches or tonsured head, all these tokens of appearance cannot save an unrighteous ascetic from an ignoble rebirths. (21)

पिण्डोलए व दुस्सीले, नरगाओ न मुच्चई ।  
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, सुव्वए कम्मई दिवं ॥ २२ ॥

भिक्षा द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करने वाला भिक्षु भी यदि दुःशील-दुराचारी है तो उसे नरक में जाना ही पड़ता है और सुव्रती भिक्षु हो अथवा गृहस्थ वह स्वर्ग ही प्राप्त करता है ॥ २२ ॥

Getting his livelihood by alms if such an ascetic is unrighteous in conduct, he is bound to go to hell; while an ascetic or householder, whoever he is, goes to heaven alone if he has righteous conduct. (22)

अगारि-सामाइयंगाइं, सड्ढी काएण फासर ।  
पोसहं दुहओ पक्खं, एगरायं न हावए ॥ २३ ॥

श्रद्धालु गृहस्थ साधक सामायिक साधना के सभी अंगों की काया से (मन-वचन से भी) साधना करे तथा शुक्ल और कृष्ण पक्ष दोनों में (पर्व तिथियों को) पौषध करे, एक भी पर्व रात्रि को पौषध न छोड़े ॥ २३ ॥

A devout householder should practice all limbs of the ritual equanimity-practice (*saamaayik*) physically, vocally and mentally. He should also observe partial ascetic vow (*paushadh*) during bright as well as dark fortnights (on specified auspicious dates) not avoiding even a single auspicious night. (23)



एवं सिक्खा-समावत्रे, गिह-वासे वि सुव्वए ।  
मुच्चई छवि-पव्वाओ, गच्छे जक्ख-सलोगयं ॥ २४ ॥

इस प्रकार धर्मशिक्षा से सम्पन्न गृहवासी-गृहस्थ में रहता हुआ सुव्रती भी औदारिक शरीर को छोड़कर देवलोक-देवनिकाय में उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥

A person enriched with such religious knowledge and practicing right conduct, is reborn in divine realm after his death even as a householder. (24)

अह जे संवुडे भिक्खू, दोण्हं अन्नयरे सिया ।  
सव्व-दुक्ख-प्पहीणे वा, देवे वावि महड्डिण्णए ॥ २५ ॥

संवृत (पाँच आस्रवों का निरोध करने वाला) भिक्षु की दो ही गति संभव हैं; या तो वह सभी दुःखों से सदा के लिय मुक्त हो जाता है अथवा महर्द्धिक देव बनता है ॥ २५ ॥

There are only two possible rebirths for an ascetic accomplished in checking (five kinds of) inflow of *karmas*; either he attains salvation from all miseries forever or is reborn as a highly opulent divine being (*mahardhik dev*). (25)

उत्तराइं विमोहाइं, जुइमन्ताणुपुव्वसो ।  
समाइण्णाइं जक्खेहिं, आवासाइं जसंसिणो ॥ २६ ॥

देवों के आवास क्रमशः ऊपर-ऊपर उत्तरोत्तर उत्तम, द्युतिमान् तथा यशस्वी देवों से आकीर्ण होते हैं ॥ २६ ॥

The abodes of gods are progressively loftier and better. They are crowded with opulent and illustrious gods. (26)

दीहाउया इड्डिमन्ता, समिद्धा काम-रूविणो ।  
अहुणोववन्न-संकासा, भुज्जो अच्चिमालि-प्पभा ॥ २७ ॥

उनमें निवास करने वाले देव यशस्वी, दीर्घायु, दीप्ति-कान्ति वाले, इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ होते हैं; अभी-अभी उत्पन्न हुये हों ऐसी कान्ति वाले तथा सूर्यप्रभा के समान तेजस्वी होते हैं ॥ २७ ॥

Gods living in these abodes are illustrious, long lived, opulent and capable of taking desired form. They have the glow of freshness as if born just now and brilliance of sunrays. (27)

ताणि ठाणाणि गच्छन्ति, सिक्खित्ता संजमं तवं ।  
भिक्खाए वा गिहत्थे वा, जे सन्ति परिनिव्वुडा ॥ २८ ॥

इन रमणीय देव-स्थानों में उपशान्त हृदय वाले भिक्षु (श्रमण) अथवा सद्गृहस्थ हिंसा से निवृत्त और तप-संयम की साधना करके जाते हैं—उत्पन्न होते हैं ॥ २८ ॥

The serene minded ascetics or noble householders go to these fascinating divine abodes by renouncing violence and observing austerities and restraint. (28)



तेसिं सोच्चा सपुज्जाणं, संजयाण वुसीमओ ।

न संतंसन्ति मरणन्ते, सीलवन्ता बहुस्सुया ॥ २९ ॥

उन संत जनों द्वारा पूज्य-वन्दनीय संयत और इन्द्रिय-विजयी आत्माओं का यह वर्णन सुनकर शीलवान् और बहुश्रुत साधक ( मुनि अथवा गृहस्थ ) मृत्यु के समय भी संत-भयभीत नहीं होते ॥ २९ ॥

Having heard from saints this description of venerable, restrained, victorious (over sense) souls, righteous and scholarly aspirants (ascetics or householders) are not scared even at the moment of death. (29)

तुलिया विसेसमादाय, दयाधम्मस्स खन्तिए ।

विप्पसीएज्ज मेहावी, तहा-भूएण अप्पणा ॥ ३० ॥

मेधावी साधक सकाममरण और अकाममरण की आपस में तुलना करके विशिष्ट ( सकाममरण ) को स्वीकार करे तथा दयाधर्म और क्षमा से अपनी आत्मा को भावित कर प्रसन्न रहे ॥ ३० ॥

The wise aspirant should compare the two (naive and prudent deaths) and then accept the better one (prudent death). Having done that he should enkindle his soul with kindness and forgiveness and be happy. (30)

तओ काले अभिप्पेए, सड्ढी तालिसमन्तिए ।

विणएज्ज लोम-हरिसं, भेयं देहस्स कंखए ॥ ३१ ॥

मरणकाल निकट आने पर जिस श्रद्धा से प्रव्रज्या ग्रहण की थी उसी श्रद्धा से गुरु के निकट रहकर पीड़ाजन्य लोमहर्ष को दूर करके शान्ति के साथ शरीर छूटने की प्रतीक्षा करे ॥ ३१ ॥

When the time of death approaches he should be in proximity of the guru with the same faith that he had at the time of initiation, subdue all emotions of fear and joy and await deliverance from the body. (31)

अह कालंमि संपत्ते, आघायाय समुस्सयं ।

सकाममरणं मरई, तिणहमन्नयरं मुणी ॥ ३२ ॥

—त्ति बेमि ।

मृत्युकाल प्राप्त होने पर मुनि भक्तपरिज्ञा, इंगिनी और प्रायोपगमन ( पादपोपगमन ) इन तीनों प्रकार के सकाममरण में से किसी एक प्रकार का मरण स्वीकार करके सकाममरण से शरीर का त्याग करता है ॥ ३२ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

When the time of death is near an ascetic accepts one of the three methods of prudent death—Giving up food and water till death (*bhaktaparijna maran*), pinning to spot till death (*ingini maran*), lying on one side like a fallen branch of a tree (*prayopagaman*)—and abandons his body. (32)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ९—“मरण” के दो प्रकार हैं—अकाम और सकाम। अकाममरण वह है, जो व्यक्ति विषयों व भोगों की लालसा के साथ जीना ही चाहता है, मरना नहीं। फिर भी आयुक्षय होने पर उसे लाचारी में अनचाहे ही मरना होता है। सकाममरण कामनासहित मरण है। इसका केवल इतना ही अर्थ अभिप्रेत है कि जो साधक विषयों के प्रति अनासक्त रहता है, जीवन और मरण दोनों ही स्थितियों में सम होता है, वह मरणकाल के समय भयभीत एवं संतप्त नहीं होता, अपितु अपनी पूर्ण आध्यात्मिक तैयारी के साथ अभय भाव से मृत्यु का स्वागत करता है। अकाम बालमरण है और सकाम पण्डितमरण।

गाथा १०—“सिसुनागुव्व मट्टिय” में कहा है कि जैसे शिशुनाग दोनों ओर से मिट्टी का संचय करता है, वैसे ही बाल-जीव भी दोनों ओर (राग-द्वेष) से कर्ममल का संचय करता है। मन और वाणी, राग और द्वेष, पुण्य और पाप आदि अनेक विकल्प किये हैं। (चूर्णि)

शिशुनाग गंडूपद अर्थात् अलसिया को कहते हैं। वह मिट्टी खाकर अन्दर में मल का संचय करता है और शरीर की स्निग्धता के कारण बाहर में भी इधर-उधर रेंगते हुये अपने शरीर पर मिट्टी चिपका लेता है।

## IMPORTANT NOTES

**Verse-2**—There are two kinds of death—naive and prudent. Naive death is, when a man does not want to die but wants to live with desires of sensual and worldly pleasures. But when his life-span comes to an end he has to die unwillingly. Prudent death is voluntary death. This only means that the aspirant who is not infatuated with sensual pleasures and is equanimous in both, life and death, he is not fearful or disturbed at the time of death; instead he fearlessly welcomes death with all his spiritual preparation. Involuntary death is naive and voluntary death is prudent.

**Verse-10**—*Sisunaguvva mattiyam* conveys that as earthworm (*shishunaag*) acquires sand both ways, through mouth and by body; in the same way, an ignorant being acquires the slime of *karmas* both ways (through attachment and aversion). According to the commentary (*Churni*) there are numerous alternative interpretations of the term ‘both’—mind and speech, attachment and aversion, and merit and demerit.

*Shishunaag* or *gandupad* or *alasiya* is earthworm. It accumulates sand internally by eating; and due to its sticky body accumulates sand externally also while slithering.



## षष्ठम अध्ययन : क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम क्षुल्लक निर्ग्रन्थीय है। यहाँ 'क्षुल्लक' का अभिप्राय नवदीक्षित अथवा लघु-मुनि व शिष्य है और 'निर्ग्रन्थ' शब्द श्रमण-साधु का वाचक है।

निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग जैनधर्म के लिये अति प्राचीनकाल से होता रहा है। भगवान महावीर को निगंठ नायपुत्ते कहा गया तथा उनके श्रमणों को भी निगंठ अथवा नियंठ निर्ग्रन्थ कहा गया है।

निर्ग्रन्थ का अर्थ है—ग्रन्थरहित होना। ग्रन्थ सूक्ष्म और स्थूल रूप से दो प्रकार का है। सूक्ष्म ग्रन्थ आन्तरिक परिग्रह-मिथ्यात्व, क्रोध-मान-माया-लोभ आदि १४ प्रकार का है।

इसी आन्तरिक ग्रन्थ के प्रभाव से बाह्य ग्रन्थ-धन-धान्य आदि १० प्रकार के परिग्रह का संचय किया जाता है अथवा इनके प्रति आसक्ति रखी जाती है।

पिछले पाँचवें अध्ययन में साधक के लिये सकाममरण को श्रेयस्कर बताया था किन्तु स्मरणीय तथ्य यह है कि सकाम अथवा पंडितमरण निरासक्त निर्ग्रन्थ श्रमण को ही होता है। पंडितमरण का मूल वीतरागभाव में निहित है।

प्रस्तुत अध्ययन में लघु-मुनि को ग्रन्थरहित होने की प्रेरणा देकर वीतरागभाव का संस्पर्श करने के लिये सावधान किया गया है।

जैनधर्म और आगमों में बहु-प्रचलित शब्द मिथ्यात्व के लिये प्रस्तुत अध्ययन की प्रथम गाथा में अविद्या शब्द रखा गया है और बताया गया है कि जितने भी अविद्यावान पुरुष हैं, वे सभी दुःखी होते हैं। इन शब्दों से क्षुल्लक मुनि को मिथ्यात्व से विरत होने की प्रेरणा दी गई है।

सम्पूर्ण अध्ययन में अनासक्ति का स्वर गूँज रहा है। मुनि को प्रेरणा दी गई है कि धन, परिजन आदि रक्षक नहीं हो सकते। इसलिये कहा गया है कि आसक्ति और स्नेह को तोड़ दो। यहाँ ब्रह्म कि अपने शरीर के प्रति जो मोह है, उसका भी त्याग कर देना चाहिये।

सभी प्रकार के राग-द्वेष से मुक्त होना श्रमण का लक्ष्य है, इसी लक्ष्य की ओर लघु श्रमण को प्रेरित किया गया है।

एकान्तवादियों के चक्रव्यूह में न फँसकर शुद्ध श्रमणाचार का पालन करते हुये अप्रमत्तभाव से विचरण करने की प्रेरणा दी गई। मुमुक्षु, आत्मगवेषी साधु के लिये प्रस्तुत अध्ययन में निर्ग्रन्थता का बहुत ही प्रेरक विवेचन हुआ है।

इस अध्ययन में १८ गाथाएँ हैं।



## SHASHTAM ADHYAYAN : KSHULLAK NIRGRANTHIYA

### Foreview

The title of this chapter is Kshullak Nirgranthiya. Here *kshullak* conveys neo initiate or junior ascetic or disciple; and *nirgranth* means a Jain ascetic.

The word *nirgranth* (knot-free) is in use for Jain religion since remote past. Bhagavan Mahavir was called *Nigganth Nayaputte (Nirgranth Nataputra)* and his ascetic followers were also called *Nigganth* or *Niyanth* or *Nirgranth*.

The word *nirgranth* means to be free of knot. Knots are of two types—one subtle and the other gross. Subtle knots are of 14 types including unrighteousness, anger, conceit, deceit and greed.

These internal knots give rise to external knots or 10 types of possessions including wealth and grains; they are accumulated or coveted.

In the preceding chapter prudent death was established to be beneficial. But the point to be noted is that only a detached ascetic is capable of embracing prudent death. The concept of prudent death is rooted in the feeling of detachment.

In this chapter the neo-initiate is inspired to get free of knots and be agile in his perseverance towards detachment.

In the first verse of this chapter the word *avidya* has been used in place of *mithyatva*, the popular Jain term for unrighteousness from *Aagam* literature. Stating that all unrighteous (*avidyavaan*) persons end up in misery, the neo-initiate has been advised to avoid unrighteousness.

The whole chapter has an undercurrent of detachment. The neo initiate is advised that nothing including wealth and family members can provide protection; therefore break free from fondness and attachment. So much so that even the fondness for one's own body should be abandoned.

The goal of an ascetic is to be free from attachment and aversion. The neo initiate is steered towards this goal only.

Inspiration has been given to avoid the trap of absolutists and move around carefully observing faultless ascetic code. In this chapter the knot-free state has been lucidly described for self-seeking and salvation-aspiring ascetic.

There are 18 verses in this chapter.



छद्मज्ज्ञयणं : श्रुद्धानियंठिज्जं  
षष्ठम अध्ययन : कुल्लक निर्गन्धीय  
Chapter-6 : NEWLY INITIATED ASCETIC

जावन्तऽविज्जापुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा ।

लुप्पन्ति बहुसो मूढा, संसारमि अणन्ताए ॥ १ ॥

जितने भी अविद्यावान् पुरुष (अज्ञानी-मिथ्यात्वी पुरुष) हैं, वे सभी दुःख को उत्पन्न करते हैं। वे मूढ़ अनन्त संसार में बार-बार लुप्त होते हैं, डूब जाते हैं ॥ १ ॥

All the uneducated (ignorant or unrighteous) persons are creators of misery. Those fools keep on disappearing (taking rebirths and dying) in the unending cycles of rebirth. (1)

समिक्ख पंडिए तम्हा, पास जाईपहे बहू ।

अप्पणा सच्चमेसेज्जा, मेत्तिं भूएसु कप्पए ॥ २ ॥

इसलिए पण्डित-ज्ञानी पुरुष जीवयोनियों में उत्पन्न होने के मार्गों (स्त्री-पुत्र-धन आदि के प्रति मोह) को पाश-प्रबल बंधन जाने, सत्य का स्वयं अन्वेषण करे और सभी जीवों के प्रति मित्रता का आचरण करे, मैत्रीभाव रखे ॥ २ ॥

Hence a sagacious person should consider the pathways to rebirth (fondness for wife, sons, wealth etc.) to be snares or strong bonds, explore the truth himself and let his conduct be guided by the feeling of universal fraternity for all beings. (2)

माया पिया णहुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ।

नालं ते मम ताणाय, लुप्पन्तस्स सकम्मुणा ॥ ३ ॥

माता-पिता, पुत्रवधू, भाई, पत्नी और अपने आत्मजात (औरस) पुत्र भी, स्वयंकृत कर्मों के भार से लुप्त होते (संसार-समुद्र में डूबते) और सभी प्रकार के कष्टों से त्राण दिलाने-रक्षा करने में समर्थ नहीं हैं ॥ ३ ॥

Parents, daughters-in-law, brother, wife and one's own son, none of these is capable of providing relief from the load of *karmas* that causes drowning in the ocean of mundane existence entailing calamities of all kinds. (3)

एयमट्ठं सपेहाए, पासे समियदंसणे ।

छिन्दे गेहिं सिणेहं च, न कसे पुव्वसंधवं ॥ ४ ॥

इस अर्थ (सत्य) की समीक्षा करके सम्यग्दृष्टि पुरुष मन में यह धारणा निश्चित कर ले तथा आसक्ति और स्नेह के बंधन को तोड़कर पूर्व परिचितों से संसर्ग की इच्छा भी न करे ॥ ४ ॥

Analyzing this, the righteous person should take this truth to heart and should sever the bonds of infatuation and love to the extent of not even thinking of getting in touch with former acquaintances. (4)





गवासं मणिकुण्डलं, पसवो दासपोरुसं।  
सर्वमेयं चइत्ताणं, कामरूपी भविस्ससि ॥ ५ ॥

गाय-बैल-अश्व आदि पशु, मणि कुण्डल, दास तथा अन्य पुरुष-सेवक-इन सभी को अपनी इच्छा से छोड़ देने वाला व्यक्ति (परलोक में) कामरूपी-इच्छानुसार रूप बनाने वाला देव होगा ॥ ५ ॥

Cattle including cows, oxen, horses; ornaments like beads and ear-rings; slaves and servants; one who gives up all these possessions of his own volition is reborn as a god having power of transmutation or acquiring any desired form. (5)

धावरं जंगमं चैव, धणं धणं उवक्खरं।  
पच्चमाणस्स कम्महिं, नालं दुक्खाउ मोयणे ॥ ६ ॥

स्थावर-जंगम-चल-अचल संपत्ति, धन-धान्य, उपस्कर (घर का सामान-ग्रहोपकरण) भी कर्मों से दुःख पाते हुये प्राणी को दुःख से मुक्त कराने में समर्थ नहीं हैं ॥ ६ ॥

Possessions including immovable and moveable property, wealth and granary, household equipment and furniture, are not capable of relieving from miseries caused by *karmas*. (6)

अज्झत्थं सर्व्वओ सर्व्वं, दिस्स पाणे पियायए।  
न हणे पाणिणो पाणे, भयवेराओ उवरए ॥ ७ ॥

सभी प्राणियों को, सभी ओर से प्राप्त होने वाला, सभी प्रकार से अपनी आत्मा का सुख प्रिय है तथा उन्हें अपना आयुष्य प्रिय है। यह देख-सोचकर भय और वैर से विरत साधक किसी के भी प्राणों का हनन न करे ॥ ७ ॥

All living beings love happiness coming from any and all directions; they also love a long life-span. Knowing and comprehending this, an aspirant free of fear and animosity should not deprive any living being of its life. (7)

आयाणं नरयं दिस्स, नायएज्ज तणाववि।  
दोगुंछी अप्पणो पाए, दिन्नं भुंजेज्ज भोयणं ॥ ८ ॥

बिना दी हुई वस्तु लेना नरक-गमन का कारण है, यह जानकर साधक बिना दिया हुआ एक तिनका भी न ले। असंयम (या पाप) के प्रति अरुचि रखने वाला भिक्षु अपने पात्र में ही गृहस्थ द्वारा दिये गये आहार का भोजन करे ॥ ८ ॥

To take anything without being given is the sure way to hell; knowing this an aspirant should not take even a blade of grass without being given. An ascetic averse to indiscipline (sin) should eat the food given by a householder only in his own alms-bowl. (8)

इहमेगे उ मन्नन्ति, अप्पच्चक्खाय पावगं।  
आयरियं विदिताणं, सर्व्वदुक्खा विमुच्चई ॥ ९ ॥

कुछ लोग ऐसा भी मानते हैं कि पापों का त्याग किये बिना ही केवल आर्य तत्त्वों के जान लेने मात्र से सभी दुःखों से विमुक्त हुआ जा सकता है ॥ ९ ॥

Some people believe this too that salvation from all miseries is possible even without abstaining from sinful deeds simply by gaining knowledge of noble precepts and doctrines. (9)



भणन्ता अकरेन्ता य, बन्ध-मोक्षपइण्णिणो ।

वाया-विरियमेत्तेण, समासासेन्ति अप्पयं ॥ १० ॥

जो बंध-मोक्ष के सिद्धान्तों की प्रतिज्ञा (स्थापना) तो करते हैं लेकिन मोक्ष-प्राप्ति के लिये कुछ भी क्रिया नहीं करते, वे वाणी की वीरता से अपने आप को आश्वासन देते रहते हैं ॥ १० ॥

Those who only propagate the doctrines of bondage and liberation but make no endeavour to attain liberation are merely indulging in self-assurance through excellence of speech. (10)

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसांसणं ?

विसन्ना पाव-कम्मेहिं, बाला पंडियमाणिणो ॥ ११ ॥

विभिन्न प्रकार की भाषाएँ और अनेक प्रकार की विद्याओं का शिक्षण भी रक्षा करने में समर्थ नहीं है। स्वयं को पण्डित ज्ञानी मानने वाले मूढ़ अज्ञानी पापकर्मों में डूबे रहते हैं ॥ ११ ॥

Learning a variety of languages and acquiring numerous magical and other skills too fails to provide protection (from miseries). The foolish ignorant who believe themselves to be great scholars remain absorbed in sinful indulgences. (11)

जे केईं सरीरे सत्ता, वण्णे रूवे य सव्वसो ।

मणसा कायवक्केणं, सव्वे ते दुक्खसंभवा ॥ १२ ॥

जो शरीर में, शरीर के वर्ण और रूप में मन-वचन-काया से सर्वथा आसक्त हैं, वे सभी अपने लिए दुःख का ही उपार्जन करते हैं ॥ १२ ॥

All those who are fully engrossed in body, its complexion and shape mentally, vocally and physically, earn only grief for themselves. (12)

आवन्ना दीहमद्धाणं, संसारम्मि अणंतए ।

तम्हा सव्वदिसं पस्स, अप्पमत्तो परिव्वए ॥ १३ ॥

ऐसे लोगों ने इस अनन्त संसार में लम्बे मार्ग को ग्रहण किया है। इसलिये साधक को सभी दिशाओं (जीवों के उत्पत्ति स्थानों) को देखकर अप्रमत्तभाव से विचरण करना चाहिये ॥ १३ ॥

Such persons have accepted the longer route in the unending world of mundane existence. As such, an aspirant should see in all directions (the places of birth of living beings) and move carefully remaining ever alert. (13)

बहिया उद्धमादाय, नावकंखे कयाइ वि ।

पुव्वकम्म-खयट्ठाए, इमं देहं समुद्धरे ॥ १४ ॥

उर्ध्व (मोक्ष का) लक्ष्य अपनाकर साधक कभी बाह्य विषयों की आकांक्षा न करे। इस शरीर को केवल पूर्वबद्ध कर्मों को क्षय करने के लिए धारण करे ॥ १४ ॥

Accepting a lofty goal (liberation) the aspirant should never aspire for outer (worldly) attainments. He should sustain his body only to destroy *karmic* bondage acquired in the past. (14)

विविच्च कम्मुणो हेउं, कालकंखी परिव्वए ।

मायं पिंडस्स पाणस्स, कडं लद्धूण भवस्खाए ॥ १५ ॥

समय (अवसर) को जानने वाला साधक कर्म (बंध) के कारणों को जानकर उन्हें दूर करके विचरण करे तथा गृहस्थ द्वारा उसके अपने लिये बनाए गये भोजन-पानी में से अपनी आवश्यकतानुसार ग्रहण करके उस भोजन को खाए ॥ १५ ॥



The aspirant aware of the opportunity should try to understand the causes of *karmic* bondage and move about avoiding them. He should take only the required quantity of food and water from that prepared for the donors own consumption. He should eat only that. (15)

सन्निहिं च न कुब्वेज्जा, लेवमायाए संजए ।  
पक्खी पत्तं समादाय, निरवेक्खो परिव्वए ॥ १६ ॥

संयमी लेपमात्र (लेशमात्र) भी-संचय न करे। वह पक्षी के समान निरपेक्ष होकर तथा पात्र हाथ में लेकर भोजन की गवेषणा करे ॥ १६ ॥

The restrained one should not accumulate even a little (even what sticks to his alms-bowl). Like a bird devoid of expectations, he should wander about with alms-bowl in his hand in search of food. (16)

एसणासमिओ लज्जू, गामे अणियओ चरे ।  
अप्पमत्तो पमत्तेहिं, पिंडवायं गवेसए ॥ १७ ॥

भिक्षु एषणा समिति और लज्जा से युक्त होकर ग्राम, नगर आदि में प्रतिबन्धरहित होकर विचरण करे तथा अप्रमत्त साधु गृहस्थों के घरों में आहार-पानी की गवेषणा करे ॥ १७ ॥

Observing prescribed care of exploration and modesty, an ascetic should wander about freely in areas like villages and cities; this way the careful (ascetic) should seek food and water from the careless (householder). (17)

एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी, अणुत्तरदंसी अणुत्तरनाणदंसणधरे ।  
अरहा नायपुत्ते भगवं, वेसालिए वियाहिए ॥ १८ ॥

—त्ति बेमि ।

उन अनुत्तरज्ञानी, अनुत्तरदर्शी, अनुत्तरज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हन्, ज्ञातपुत्र, वैशालिक भगवान महावीर ने इस प्रकार कहा है ॥ १८ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

Thus spoke venerable Arhat Jnataputra (Bhagavan Mahavir), the native of Vaishali, who was endowed with supreme knowledge, supreme perception, confluent supreme knowledge and perception. (18)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ८—'दोगुंछी' का अर्थ है "जुगुप्सी" जुगुप्सा करने वाला (चूर्ण)। जुगुप्सा का अर्थ है—संयम। असंयम से जुगुप्सा अर्थात् विरक्ति ही संयम है—'दुगुंछा-संजमो। किं दुगुं छति? असंजमं।'

## IMPORTANT NOTES

**Verse 8—Dogunchhi** means one filled with dislike for something. In this context the commentary (*Churni*) states—'Dislike for what? Indiscipline, therefore *dugunchha* means restraint.' As such, here it refers to dislike for indiscipline. So the term *dogunchhi* here means one who dislikes indiscipline; in other words 'the restrained one'.



## सप्तम अध्ययन : उरभ्रीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम उरभ्रीय है। यह नामकरण उरभ्र के दृष्टान्त के आधार पर हुआ है। समवायांग तथा उत्तराध्ययन निर्युक्ति में इसका नाम 'उरब्धिज्जं' है किन्तु अनुयोगद्वारसूत्र में इसे 'एलइज्जं' कहा गया है। प्रस्तुत अध्ययन की प्रथम गाथा में भी 'एलयं' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'उरभ्र' और 'एलक'—दोनों ही शब्द पर्यायवाची हैं। इनका अर्थ है—भेड़ का बच्चा—मेमना। अतः दोनों ही नाम एक ही भाव को स्पष्ट करते हैं।

श्रमण संस्कृति का मूल स्वर त्याग और विरक्ति है। विरक्ति कामभोगों से, इन्द्रिय-विषयों से। इन्द्रिय और इनसे प्राप्त होने वाला सुख स्थायी नहीं है, क्षणिक है। इस क्षणिकता को जानते हुये भी साधारण मानव अल्पकालिक सुखभोग के लोभ को त्याग नहीं पाता।

लेकिन इस अध्ययन द्वारा साधक को सावधान किया गया है कि तुच्छ एवं क्षणिक सुखों के प्रलोभन में वह अपनी बड़ी हानि न कर ले। इन्द्रियासक्ति के दुष्परिणामों तथा कटुफलों को बताने के लिये इस अध्ययन में ५ व्यावहारिक दृष्टान्त दिये गये हैं। दृष्टान्तों की मुख्यता के कारण यह अध्ययन दृष्टान्त-प्रधान हो गया है।

### १. प्रथम दृष्टान्त—कामभोग का कटुफल

किसी धनी पुरुष के पास एक गाय और उसका बछड़ा था तथा उसने एक मेमना (भेड़ का बच्चा) भी पाल रखा था। वह गाय-बछड़े को सूखी घास देता और मेमने को खूब अच्छा पौष्टिक-स्वादित भोजन देता, स्नान कराता, शरीर पर प्यार से हाथ फिराता। कुछ ही दिनों में मेमना मोटा-ताजा हो गया। उसके शरीर पर माँस चढ़ गया, वह तुन्दिल हो गया।

बछड़ा मालिक के इस भेदपूर्ण व्यवहार को देखता। एक दिन उसने माँ (गाय) से उदास-निराश स्वर में शिकायत की—“माँ! देखो, मालिक मेमने को कितना प्यार करता है? कैसा पौष्टिक भोजन देता है? कुछ ही दिनों में वह कैसा मोटा-ताजा हो गया है? और हमें सूखी घास देता है; जबकि तुम तो मालिक को दूध भी देती हो फिर भी वह हमारे साथ ऐसा व्यवहार क्यों करता है?”

अनुभवी गाय ने प्यार से बछड़े को दुलराते हुये कहा—“वत्स! यह मेमना आतुर-लक्षण है। इसकी मृत्यु निकट है। यह मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा है। इसे जो प्यार और अच्छा भोजन मिल रहा है, उसके पीछे मालिक का क्षुद्र स्वार्थ है। कुछ ही दिनों में इसका परिणाम तुम खुद ही देख लोगे।”

कुछ दिन बीते। मालिक के घर पर मेहमान आ गये। बस, वही उस मेमने का अन्तिम दिन सिद्ध हुआ। स्वामी ने मेहमान की खातिरदारी के लिये उसे काटा और उसके माँस से अतिथि का सत्कार किया, उसे खिलाया और मालिक के परिवार ने भी खाया।



निर्दयतापूर्वक मेमने के वध को देखकर बछड़ा घबड़ा गया। उसका रोम-रोम काँपने लगा। माँ के आँचल में अपना मुँह छिपाते हुये उसने कहा—“माँ! आज मालिक ने अपने लाड़ले मेमने को मार दिया। क्या मैं भी किसी दिन इसी तरह मार दिया जाऊँगा?”

गाय ने अपने वत्स (बछड़े) को दुलराते-पुचकारते हुये कहा—“नहीं बेटा! तू क्यों काटा जाएगा? तू तो सूखी घास खाता है। जो रूखा-सूखा खाते हैं; उन्हें ऐसा भयंकर फल नहीं भोगना पड़ता। जो मनचाहे सुस्वादु भोजन खाते हैं, ऐश करते हैं, इन्द्रिय-विषयों में लम्पट बने रहते हैं, उन्हीं को ऐसे भयंकर परिणाम भोगने पड़ते हैं। छुरी उन्हीं के गले पर चलती है, जो आसक्त होते हैं।”

माँ (गाय) का आशवासन पाकर बछड़ा शांत हो गया।

इस दृष्टान्त का आशय साधक को इन्द्रिय-विषयों और कामभोगों के कटुफल दिखाकर उनसे विरक्त करना है। क्योंकि भोगों की ओर रुचि भी साधक-जीवन को नष्ट कर देती है।

## २. दूसरा दृष्टान्त—अल्प के लिये अधिक को गँवाना

एक भिखारी था। उसने परदेश जाकर बड़ी कठिनाई से एक हजार कार्षापण इकट्ठे किये। उन कार्षापणों की थैली लेकर वह अपने गाँव लौट रहा था। मार्ग-व्यय के लिये उसने कुछ काकिणियाँ (एक कार्षापण की ८० काकिणी) अलग रख ली थीं। एक बार वह कहीं एक काकिणी भूल गया और आगे चल दिया। रास्ते में काफी दूर आगे जाने पर उसे काकिणी की याद आई। वह एक काकिणी को कैसे छोड़ सकता था? रास्ता जंगल का था। उसने हजार कार्षापणों की थैली गड़वा खोदकर एक वृक्ष के नीचे गाड़ दी और काकिणी लेने वापस चल दिया।

उसे थैली गाड़ते एक तस्कर ने छिपकर देख लिया। वह थैली लेकर चम्पत हो गया।

दमक (भिखारी) उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ काकिणी भूल आया था लेकिन उसे वहाँ काकिणी नहीं मिली। वापस लौटा तो हजार कार्षापणों की थैली भी गायब थी।

उसने एक काकिणी के लिये हजार कार्षापण गँवा दिये। अब वह माथा पीटकर पश्चात्ताप करने लगा।

इस दृष्टान्त में अत्यधिक लोभ का दुष्परिणाम दिखाया है। लोभासक्त व्यक्ति इसी तरह धोखा खाते हैं। अल्प सुख के लिये अधिक (दिव्य) सुखों को खो देने वाले भी इसी तरह दुःखी होते हैं।

## ३. तीसरा दृष्टान्त—स्वाद के लिये जीवन-नाश

एक राजा था। उसे आम बहुत प्रिय थे। नित्य और अधिक आम खाने के कारण, वह रोगी हो गया। एक अनुभवी वैद्य ने इलाज करके उसे स्वस्थ कर दिया और साथ ही कह दिया कि “राजन्! आम तुम्हारे लिये अपथ्य है। यदि आम का एक टुकड़ा भी तुमने खा लिया तो बच नहीं सकोगे।”

एक बार राजा मंत्री के साथ वन-भ्रमण को गया। वन में आम्रवृक्ष पर पके आमों को देखकर उसका मन ललचा गया। मंत्री के मना करते-करते भी उसने एक आम खा लिया। रोग तीव्र वेग से उभरा और राजा का प्राणान्त हो गया।



क्षणिक् इन्द्रिय-सुखों में आसक्त मानव इसी तरह अपने अनमोल जीवन को गँवा देते हैं।

#### ४. चौथा दृष्टान्त—तीन वणिक्-पुत्र

एक वणिक् ने अपने तीन पुत्रों को द्रव्योपार्जन हेतु विदेश भेजा।

प्रत्येक को एक-एक हजार कार्षापण दिये और कहा कि “एक वर्ष बाद आकर मुझे बताना कि किसने कितना धन कमाया।”

तीनों भाई धन लेकर विदेश चले गये।

प्रथम पुत्र ने सोचा—‘पास में धन है तो जिन्दगी का कुछ मजा ले लूँ। बाद में धन कमा लूँगा।’ वह आमोद-प्रमोद, मौज-शौक में पड़ गया। उसकी सारी पूँजी खत्म हो गई।

दूसरे ने पूँजी ब्याज पर लगा दी और ब्याज से अपना खर्च चलाता रहा। उसकी मूल पूँजी सुरक्षित रही।

तीसरे ने उस पूँजी से व्यापार किया। ‘व्यापारे वसति लक्ष्मीः’ के अनुसार उसने खूब लाभ कमाया। अपनी पूँजी कई गुनी कर ली।

एक वर्ष बाद जब तीनों पुत्र पिता के पास पहुँचे तो पहला फटेहाल था, उसने मूल पूँजी भी गँवा दी; दूसरे ने मूल पूँजी सुरक्षित रखी और तीसरे ने कई गुनी पूँजी पिता के समक्ष रख दी।

शास्त्रकार कहते हैं, यह व्यवहार की उपमा है। धार्मिक क्षेत्र में—

मनुष्य-जन्म मूल पूँजी है।

देव गति इससे लाभ का उपार्जन है।

पूँजी की हानि नरक, तिर्यच गति की प्राप्ति है।

यह दृष्टान्त मनुष्य-जन्म पाकर शुभ और शुद्ध आचरण-पुण्योपार्जन तथा कर्मक्षय की प्रेरणा देता है।

#### ५. पाँचवाँ दृष्टान्त—दिव्य और मानव-सुखों की तुलना

इस दृष्टान्त में मानव और देवों के सुखों की तुलना की गई है। देवों के सुखों को सागर के समान और मानवीय सुखों को कुश के अग्र भाग पर लटकी हुई ओस की बूँद के समान बताया गया है।

इन दृष्टान्तों में बहुत ही गहन रहस्य भर दिया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३० गाथाएँ हैं।

पाँचों दृष्टान्त चित्रों में स्पष्ट दर्शाये गये हैं।



## SAPTAM ADHYAYAN : URABHRIYA

### Foreview

The title of this chapter is Urabhriya (about lamb). This title is given because the first parable in this chapter is that of a lamb. In *Samavayanga* and *Uttaradhyayan Nirukti* it is mentioned as *Urabbhijjam (urabhriya)* while in *Anuyogadvara Sutra* it finds mention as *Elaijjam*. Even in the first verse of this chapter the word *Elayam* has been used. The words *urabhra* and *elak* are synonyms, bearing the same meaning—the young of a sheep or lamb. As such both the titles carry the same message.

The basic theme of *Shraman* culture is renunciation and detachment; detachment from mundane pleasures and sensual indulgences. The senses and the sensory pleasures are not lasting, they are ephemeral. Even after knowing this fact an average person finds it very difficult to subdue the attraction of momentary enjoyments.

This chapter gives a warning to an aspirant so that enticed by worthless and ephemeral pleasures he may not come to a greater harm. To reveal the ill consequences and bitter fruits of sensual indulgence, five fitting parables are narrated in this chapter. Composed primarily of these parables, this has become a chapter of parables.

### 1. First Parable—Bitter Consequences of Sensual Indulgence

A rich man had a cow and its calf. He had also domesticated a lamb. He simply fed hay to the cow and the calf with neglect. But to the lamb he fed rich and nourishing diet, nursed it well and caressed it affectionately. Within a short period the lamb grew fat to the extent of becoming plump and paunchy.

The calf watched this partisan behaviour of the owner. One day it complained sadly to its mother—“Mother ! See, how much our owner loves this lamb? How much nourishing diet he feeds it? Within a few days how fat it has become? To us he gives dry fodder. Even though you give him milk, why does he treat us as he does?”

The experienced cow replied fondling its own—“Son ! Distress awaits this lamb. Its death is very near. It is waiting for its end. The love and nourishing diet it gets is inspired by petty self-interest of the owner. Within a few days you will see the consequence.”

Some days passed. Some guests arrived at the owner’s house and that very day proved to be the last day of the lamb’s life. The owner slaughtered his lamb and feted the guest with its meat. The owner and his family members also ate the meat of the lamb.



The calf was horrified seeing the slaughter of the lamb. Trembling with fear, it slid near its mother and said—"Mother! Today the owner has slaughtered his beloved lamb. Would I face the same fate some day?"

The cow affectionately comforted the calf—"No, son! Why will you be cut to pieces? You eat dry fodder. Those who take bland and ordinary diet, do not suffer such terrible consequences. It is those who eat and enjoy delicious dishes and are obsessed with sensual pleasures, who suffer such terrible consequences. Butcher's knife is for those who are infatuated with sensual pleasures."

Getting this assurance from its mother, the calf became calm.

The message of this parable is to get the aspirant detached from sensual pleasures and mundane indulgence by showing the bitter consequences of the same. Even mere interest in mundane pleasures harms spiritual endeavour.

## 2. Second Parable—Losing Plenty for Meagre

There was a beggar. He went to some other city and with great difficulty accumulated one thousand Kaarshaapanas (silver coins) from his earnings. Taking those coins in a bag he started for his village. For necessary expenses during travel he had kept some Kaakinis (coins of lesser denomination; one Kaarshaapana has eighty Kakinis) in hand. One day he forgot one Kaakini at some place and moved ahead. Going a far, he recalled his forgotten Kaakini. How could he leave his wealth? He was passing through a dense forest. He dug out a hole under a tree and buried his bag of thousand Kaarshaapana, he then returned to collect his lost Kaakini.

A hidden bandit saw him burying the bag. He dug out the bag and eloped.

Damak, the beggar, came back to the place where he had forgotten his one Kaakini, but it had disappeared in the mean time. On returning he found the bag of Kaarshaapanas to be missing.

For a single petty coin he had lost one thousand silver coins. Now he lamented beating his head.

This parable reveals the bitter consequences of excessive greed. This is how a greedy person gets deprived. Those who lose plentiful divine pleasures in order to gain meager mundane pleasures also suffer this way.

## 3. Third Parable—Taste Buds Take Life

A king was very fond of eating mangoes. Daily and over-eating of mangoes made him sick. An experienced physician cured him but gave a warning—"Sire ! Mango is prohibited for you. If you eat even a piece of mango, you will lose your life."





Once, the king went out to roam about in the forest with his minister. There he saw a mango tree full of ripe-fruits. He could not control himself. Although the minister tried to check him, he ate one mango. The disease relapsed at once and became severe fast. The king died soon.

Man thus loses his invaluable life for ephemeral sensual pleasures.

#### 4. Fourth Parable—Three Sons of a Merchant

A merchant sent his three sons to some other country for earning money.

To each one of them he gave one thousand Kaarshaapanas as capital amount and said—"Come back after one year and tell how much each one of you earned."

The three brothers left home with the money.

The first son thought—'I have money, so let me enjoy life for some time. Earnings can come later.' He took to entertainments and enjoyments and squandered all his wealth.

The second son deposited his capital to earn interest. He met his expenses with the interest he earned. His capital remained as it was.

The third son invested his capital in business. Wealth comes from business, conforming this saying he earned a lot and increased his capital many folds.

After a year, when all the three came back to their father, the first one was in tatters, he had lost even the capital; the second one had retained the capital he had; and the third one placed the multiplied capital before his father.

The commentator explains that this is a behavioural analogy. In the religious context—

Birth as a human is capital.

To gain divine rebirth is to earn profit through good deeds.

To end up in infernal genus or animal genus is to lose capital through bad deeds.

This parable inspires to embrace noble and pure conduct to acquire meritorious *karmas* as well as destroy *karmic* bondage, once being born as a human being.

#### 5. Fifth Parable—Comparison of Divine and Human Pleasures

In this parable human and divine pleasures have been compared. Divine pleasures are shown as an ocean while the human pleasures like a dew-drop on the tip of grass.

These parables contain profound messages.

This chapter has 30 verses.

All the five parables have been vividly presented in the illustrations.



सत्तमं ब्रज्जयणं : उरब्भिज्जं  
सप्तम अध्ययन : उरभीय  
Chapter-7 : ABOUT LAMB

जहाएसं समुद्दिस्स, कोइ पोसेज्ज एलयं।  
ओयणं जवसं देज्जा, पोसेज्जा वि सयंगणे ॥ १ ॥

जिस प्रकार कोई पुरुष संभावित अतिथि का लक्ष्य रखकर मेमने (भेड़ का बच्चा) का पोषण करता है। चावल, जौ, हरी घास आदि देता-खिलाता है और अपने आँगन में ही रखकर उसका पोषण करता है ॥ १ ॥

(Like) Some person nurtures a lamb keeping in mind the possibility of providing for a guest in future. He gives it rice, barley, green grass and other feed and nourishes it keep in his yard. (1)

तओ से पुट्ठे परिवूढे, जायमेए महोदरे।  
पीणिए विउले देहे, आएसं परिकंखए ॥ २ ॥

तब वह मेमना (अच्छ खाने-पीने से) पुष्ट, बलशाली और स्थूल उदर वाला हो जाता है। अब वह माँसल शरीर वाला तथा तृप्त मेमना अतिथि के आगमन की प्रतीक्षा करता है ॥ २ ॥

Then that lamb (due to nourishment) becomes healthy, strong and paunchy. Now that well fed lamb with fleshy body awaits the coming of a guest. (2)

जाव न एइ आएसे, ताव जीवइ से दुही।  
अह पत्तंमि आएसे, सीसं छेत्तूण भुज्जई ॥ ३ ॥

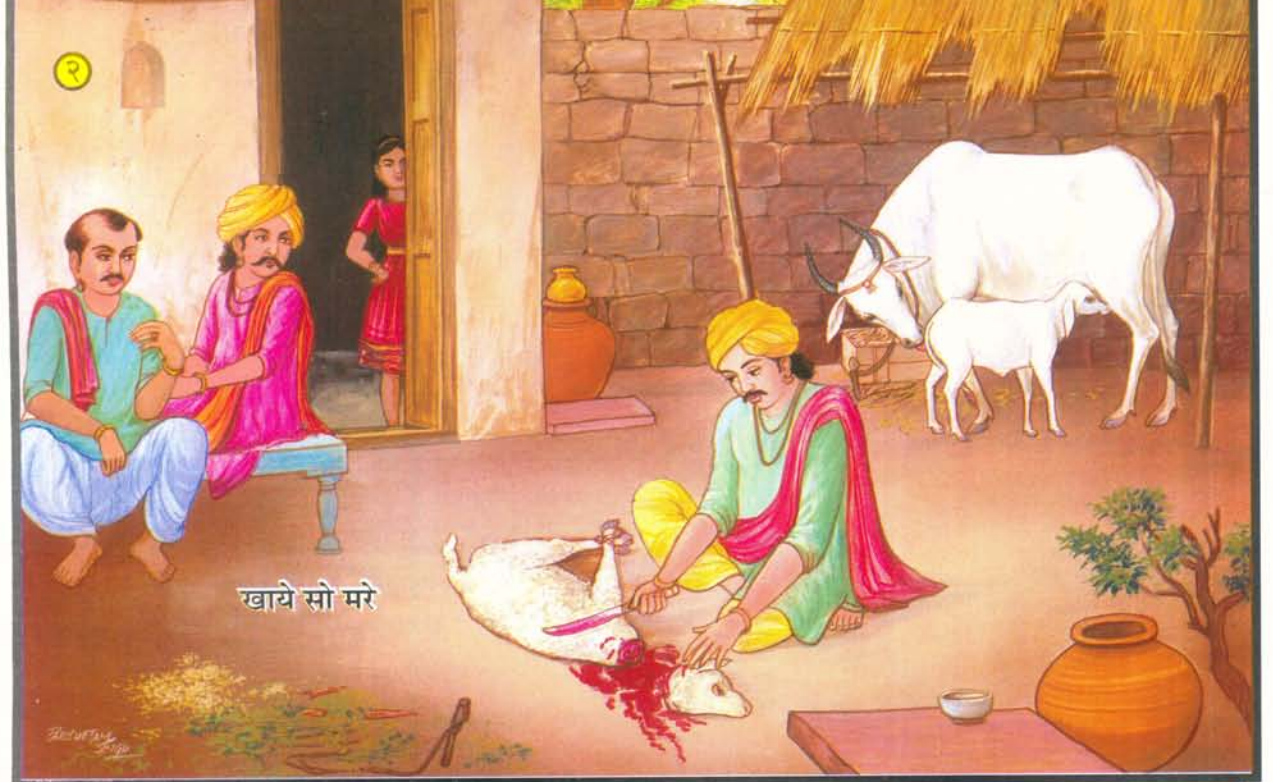
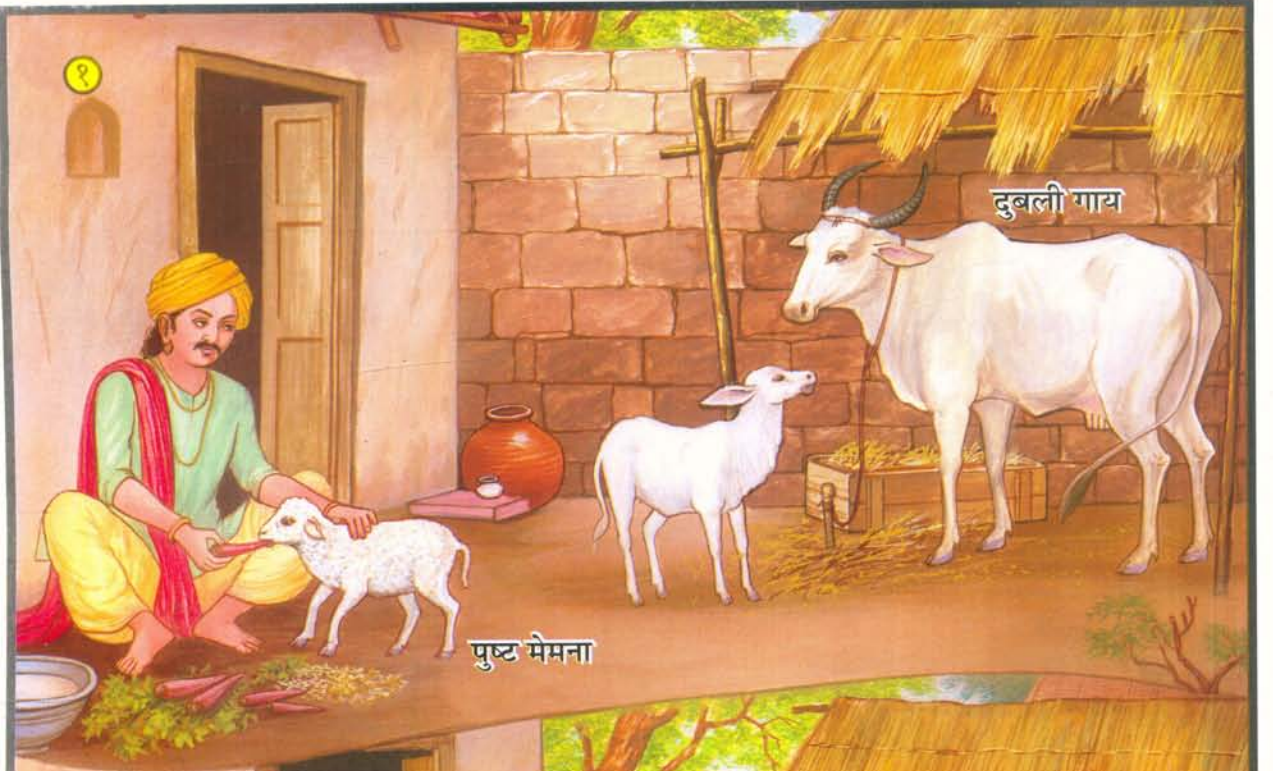
जब तक अतिथि (मेहमान) का आगमन नहीं होता तब तक वह मेमना जीवित रहता है और अतिथि के आने पर उसका सिर काटकर उसे भक्षण कर लिया जाता है ॥ ३ ॥

As long as a guest does not arrive the lamb lives and once a guest arrives it is beheaded and eaten up. (3)

जहा खलु से उरब्भे, आएसाए समीहिए।  
एवं बाले अहम्मिदुटे, ईहई नरयाउयं ॥ ४ ॥

अतिथि के हेतु कल्पित किया गया वह मेमना, जिस प्रकार उस अतिथि की प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार अज्ञानी-अधर्म में लीन जीव भी नरक आयु की (अनजाने ही) आकांक्षा-प्रतीक्षा करता है ॥ ४ ॥

Like the lamb reserved for a guest waits the guest, in the same way an ignorant living being indulging in sinful activities also (involuntarily) waits for infernal life. (4)



## मोग में शोक

चावल, हरी घास आदि खाकर हृष्ट-पुष्ट होने वाले मेमने को देखकर सूखी घास खाने वाली दुर्बल गाय और बछड़ा एक बार दुःखी होते हैं, परन्तु अन्त में माल खाने वाला मेमना, मेहमान के लिये मारा जाता है और सूखी घास खाने वाली गाय बच जाती है। (अध्ययन से पूर्व का भाग)

—अध्ययन 7, सू. 1-3

## GRIEF IN PLEASURES

The lean cow and calf eating hay feels miserable only once when seeing a lamb eating rice and green grass and getting fat. But in the end, the fat and gorging lamb is slaughtered to be served to a guest and the hay eating cow and calf remain safe. (first part of the chapter)

—Chapter 7, Aphorism 1-3





हिंसे बाले मुसावाई, अद्धानांमि विलोवए।  
अन्नदत्तहरे तेणे, माई कणहुहरे सढे ॥ ५ ॥

हिंसक, अज्ञानी, असत्यवादी, बटमार, दूसरों द्वारा दी गई वस्तु को बीच में ही हरण करने वाला, चोर, मायावी, मैं किसका हरण करूँ-इन्हीं विचारों में लगा रहने वाला, धूर्त— ॥ ५ ॥

A person who is violent, ignorant, liar, bandit, rustler, thief, crook, thinking always of kidnapping, swindler— (5)

इत्थीविसय गिद्धे य, महारंभ-परिग्गहे।  
भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवूढे परंदमे ॥ ६ ॥

स्त्री तथा अन्य विषयों में गृद्ध, महारम्भी, महापरिग्रही, मद्य-माँस का सेवन करने वाला, बलशाली, दूसरों को त्रस्त करने वाला— ॥ ६ ॥

Obsessed with women and other carnal pleasures, grave sinner, extremely covetuous, consumer of liquor and flesh, strong and oppressive— (6)

अयकक्कर-भोई य, तुंदिल्ले चियलोहिए।  
आउयं नरए कंखे, जहाएसं व एलए ॥ ७ ॥

कर-कर शब्द करता हुआ अभक्ष्यभोजी, बड़ी तोंद वाला तथा अधिक रक्त वाला उसी प्रकार नरकायु की आकांक्षा करता है, जिस प्रकार मेमना अतिथि की प्रतीक्षा करता है ॥ ७ ॥

Eater of prohibited food, pot-bellied and hot-blooded awaits infernal life just like the aforesaid lamb waits for a guest. (7)

आसणं सयणं जाणं, वित्तं कामे य भुंजिया।  
दुस्साहडं धणं हिच्चा, बहुं संचिणिया रयं ॥ ८ ॥

आसन, शय्या, वाहन, धन तथा अन्य कामभोगों का उपभोग कर, घोर परिश्रम तथा दूसरों को दुःखी करके संचित किये हुये धन को छोड़कर अत्यधिक कर्म-रज को संचित कर— ॥ ८ ॥

A person, devoted to the present, after enjoying mundane comforts including seats, beds, means of transport and wealth; leaving behind all the wealth accumulated by much toil and tormenting others, acquiring *karmic* dirt— (8)

तओ कम्मगुरु जन्तू, पच्चुप्पन्नपरायणे।  
अय च्च आगयाएसे, मरणन्तमि सोयई ॥ ९ ॥

कर्मों से भारी हुआ, केवल वर्तमान परायण जीव मरण के समय उसी प्रकार शोक करता है, जिस प्रकार अतिथि के आने पर मेमना करता है ॥ ९ ॥

And getting burdened with *karmas*, grieves at the hour of death just like the aforesaid lamb grieves at the arrival of a guest. (9)

तओ आउपरिक्खीणे, चुया देहा विहिंसगा।  
आसुरियं दिसं बाला, गच्छन्ति अवसा तमं ॥ १० ॥

विविध प्रकार से हिंसा करने वाले प्राणी, आयु समाप्त होने पर जब शरीर छोड़ते हैं तो वे अपने कृतकर्मों से विवश होकर अन्धकार से भरे नरक की ओर जाते हैं ॥ १० ॥



When beings indulging in a variety of violence abandon their bodies at the end of their life-span, driven by the *karmas* so acquired, they drift towards hells filled with darkness. (10)

जहा कागिणिए हेउं, सहस्सं हारए नरो।

अपथं अम्बगं भोच्चा, राया रज्जं तु हारए ॥ ११ ॥

जिस प्रकार एक काकिणी के लिये मूर्ख पुरुष हजार कार्षापणों को गँवा देता है तथा एक अपथ्य आम्रफल खाकर राजा अपने राज्य को खो देता है ॥ ११ ॥

Know that a foolish person loses a thousand Kaarshaapanas (silver coins) for the sake of just one Kaakinee (the smallest coin of meagre value) and a king loses his kingdom (or life) by eating a mango. (11)

एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अन्तिए।

सहस्सगुणिया भुज्जो, आउं कामा य दिव्विया ॥ १२ ॥

इसी प्रकार देवों के विषय-सुखों की अपेक्षा मानव-सम्बन्धी कामभोग नगण्य हैं; क्योंकि देवों की आयु और उनके कामभोग मनुष्यों की अपेक्षा हजार गुने अधिक हैं ॥ १२ ॥

Also, human pleasures are insignificant as compared with divine pleasures because the life-span and pleasures of gods are thousand times more than those of human beings. (12)

अणेगवासानउया, जा सा पन्नवओ ठिई।

जाणि जीयन्ति दुम्मेहा, ऊणे वाससयाउए ॥ १३ ॥

देवलोक में प्रज्ञावान साधक की आयु (स्थिति) अनेक नयुत वर्ष (असंख्यात वर्ष) की होती है—यह जानते हुये भी दुर्बुद्धि मानव सौ वर्ष से भी कम मानव आयु में उन दिव्य सुखों को हार जाते हैं—गँवा देते हैं ॥ १३ ॥

The life-span of an enlightened aspirant in the divine realm is of innumerable (*nayut*) years; in spite of being aware of this, evil-minded men lose those divine pleasures within the human life-span of less than a hundred years. (13)

जहा य तिन्नि वणिया, मूलं घेत्तूण निग्गया।

एगोऽत्थ लहई लाहं, एगो मूलेण आगओ ॥ १४ ॥

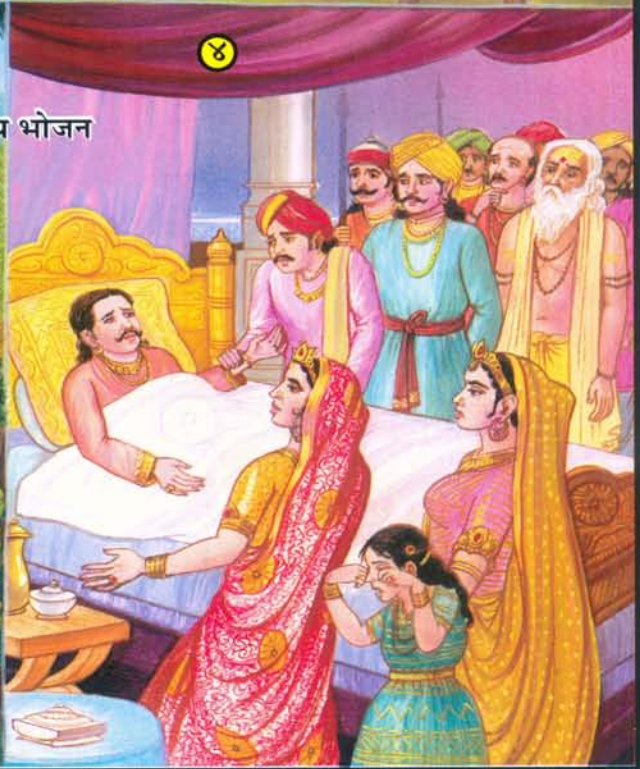
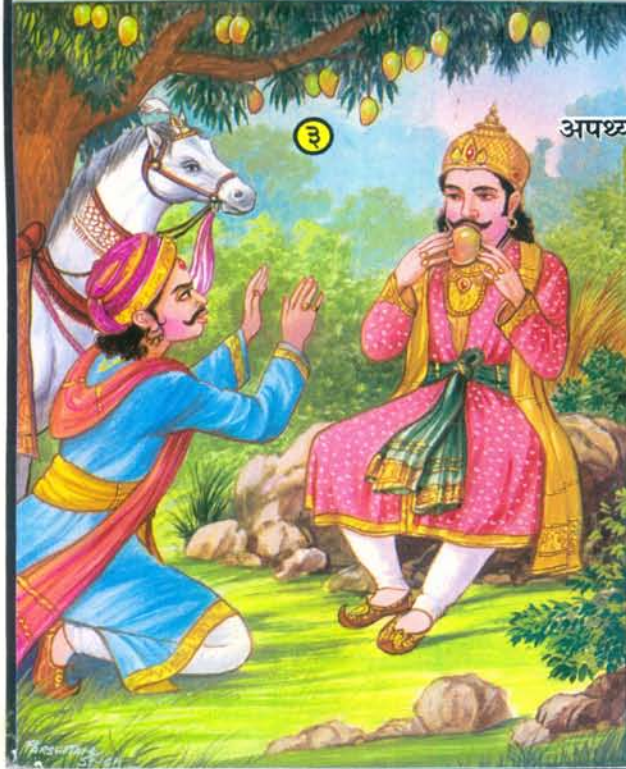
जिस प्रकार तीन वणिक् मूलधन लेकर व्यापार हेतु गये। उनमें से एक ने लाभ का उपार्जन किया तथा दूसरा मूलधन लेकर ही वापस लौट आया ॥ १४ ॥

Three merchants went out on their business tours with their respective capital amounts. One of them returned with profit and the second just with his capital intact. (14)

एगो मूलं पि हारित्ता, आगओ तत्थ वाणिओ।

ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह ॥ १५ ॥

तीसरा मूलधन भी गँवाकर लौटा। यह व्यवहार की उपमा है। धर्म के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ १५ ॥



## थोड़े के लिये बहुत हानि

- (1) एक काकिणी के लिये-भिखारी हजार मोहरें खोकर पछताता है।
- (2) मंत्री द्वारा मना करने पर भी स्वाद के लोभ में अपथ्य भोजन (आम) करके राजा रोगी हो गया और एक दिन जीवन से हाथ धो बैठा।

—अध्ययन 7, सू. 11

## LOSS OF MUCH FOR A LITTLE

- (1) A beggar repents after losing thousand gold coins for the sake of one Kakini.
- (2) Even after being forbidden by his minister the king obsessed with taste ate contaminated food (mango), caught fatal disease and died in the end.

— Chapter 7, Aphorism 11



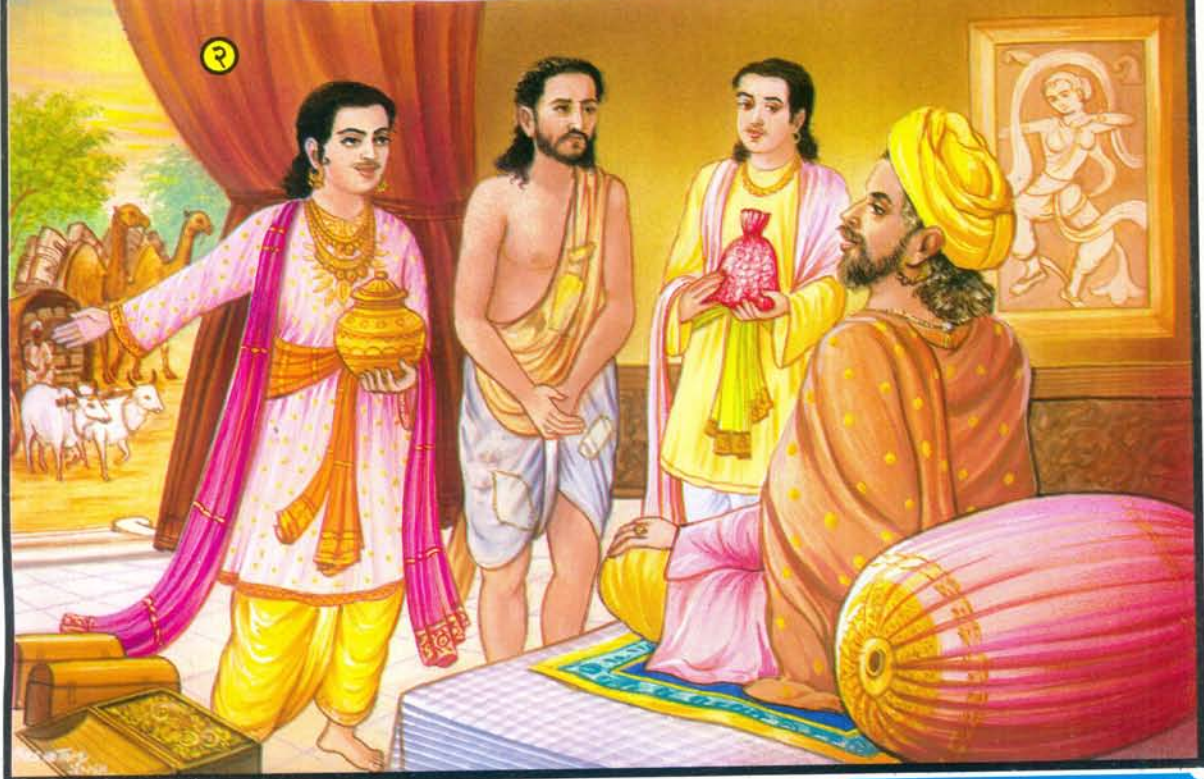


तीन वणिक् पुत्र

१



२



## तीन वणिक्-पुत्र

- (1) तीन वणिक्-पुत्र पिता से समान धन लेकर व्यापार के लिये जाते हैं।
- (2) एक भरपूर लाभ कमाकर, एक मात्र मूल धन लेकर तथा एक मूल धन हारकर दरिद्र होकर लौटता है।

—अध्ययन 7, सू. 14-15

## THREE SONS OF A MERCHANT

- (1) Three merchant-sons go for trade taking equal amount of money from their father.
- (2) One returns with enormous profits, one with capital amount and the last one penniless after loosing even the capital.

—Chapter 7, Aphorism 14-15





The third one returned losing all his capital. This is a social parable. Know the same to be true for religious life too. (15)

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगई भवे।

मूलच्छेएण जीवाणं, नरग-तिरिक्खत्तणं धुवं ॥ १६ ॥

मूलधन मनुष्य-भव है। लाभ देव गति की प्राप्ति है। और मूल के नाश से प्राणियों को निश्चित ही तिर्यच और नरक गति में जाना पड़ता है ॥ १६ ॥

Birth as a human being is the capital. Profit is the attainment of divine rebirth. And loss of the capital certainly leads everyone to a rebirth in animal genus and infernal genus. (16)

दुहओ गई बालस्स, आवई वहमूलिया।

देवत्तं माणुसत्तं च, जं जिए लोलयासडे ॥ १७ ॥

बाल (अज्ञानी) प्राणी की आपदामूलक नरक और तिर्यच-ये दो ही गति होती हैं; क्योंकि वह लोलुपता और धूर्तता करके मनुष्य और देव गति को पहले ही हार चुका है ॥ १७ ॥

An ignorant can have only two miserable states of rebirth—as an animal or an infernal being. This is because; due to his lust and cunning he has already lost the chance of a rebirth as a human being as well as a divine being. (17)

तओ जिए सइं होइ, दुविहं दोग्गइं गए।

दुल्लहा तस्स उम्मज्जा, अद्धाए सुचिरादवि ॥ १८ ॥

दो प्रकार की दुर्गति (नरक और तिर्यच गति) को प्राप्त प्राणी का उन गतियों से उबरना (निकलना) बहुत कठिन है, उसे वहाँ दीर्घकाल तक रहना पड़ता है ॥ १८ ॥

Taking birth in two lower states (infernal and animal), it is very difficult for a being to come out of them; he has to remain there for a very long time. (18)

एवं जियं सपेहाए, तुलिया बालं च पंडियं।

मूलियं ते पवेसन्ति, माणुसं जोणिमेन्ति जे ॥ १९ ॥

इस तरह सुगतियों को हारे हुये प्राणियों को देखकर तथा ज्ञानी और अज्ञानी की तुलना कर, जो मानव-योनि में आते हैं, वे उस वणिक् के समान हैं जो मूलधन लेकर वापस लौट आया ॥ १९ ॥

Seeing and knowing about the beings having lost the noble states and comparing the enlightened and the ignorant, those who take birth as a human beings are like the merchant who returned home with his capital intact. (19)

वेमायाहिं सिक्खाहिं, जे नरा गिहिसुक्क्या।

उवेन्ति माणुसं जोणिं, कम्मसच्चा हु पाणिणो ॥ २० ॥

विविध परिमाण (प्रकार) वाली शिक्षाओं को धारण कर जो मनुष्य घर में रहकर भी सुव्रती हैं, सुव्रतों का पालन करते हैं, वे पुनः मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं; क्योंकि सभी प्राणी कर्म-सत्य होते हैं। कृत कर्मों का फल अवश्य पाते हैं ॥ २० ॥



People, who learn various types of religious tenets (codes) and observe noble code of conduct even as householders, are again reborn as human beings. This is because living beings depend on *karmas*. All beings have to bear the fruits of their *karmas* (*karmic* bondage). (20)

जेंसि तु विउला सिक्खा, मूलियं ते अइच्छिया ।

सीलवन्ता सवीसेसा, अदीणा जन्ति देवयं ॥ २१ ॥

किन्तु जिन मानवों की शिक्षा विविध परिमाण वाली और व्यापक है—विशाल है, तथा वे शीलवान और उत्तरोत्तर गुण-प्राप्ति की विशेषता से युक्त हैं, दीनतारहित हैं, वे मूलधन रूप मनुष्यत्व से आगे बढ़कर देवत्व को प्राप्त करते हैं ॥ २१ ॥

However, people who gain very wide knowledge, are endowed with righteousness as well as ever enhancing virtues and are free of feebleness, they multiply their capital of manhood to gain divinity. (21)

एवमदीणवं भिक्खुं, अगारिं च वियाणिया ।

कहण्णु जिच्चमेलिक्खं, जिच्चमाणे न संविदे? ॥ २२ ॥

इस प्रकार दीनतारहित भिक्षु और गृहस्थ (महाव्रती तथा अणुव्रती साधक) को लाभ प्राप्त करते देखकर कौन विवेकी व्यक्ति उस लाभ को गँवायेगा और उस लाभ को गँवाता हुआ कौन पश्चात्ताप नहीं करेगा? ॥ २२ ॥

Seeing and knowing the benefits accruing to such accomplished ascetic and householder (observer of great and minor vows), what discerning person would like to lose such gains and not repent losing such gains? (22)

जहा कुसग्गे उदगं, समुद्देण समं मिणे ।

एवं माणुस्सगा कामा, देवकामाण अन्तिए ॥ २३ ॥

देवों के कामभोगों के समक्ष मनुष्य के कामभोग ऐसे ही क्षुद्र हैं, जैसे समुद्र की अपेक्षा कुशाग्र पर टिका हुआ जलबिन्दु क्षुद्र होता है ॥ २३ ॥

Like a drop of dew on the tip of a blade of grass as compared with ocean, the pleasures and comforts of human beings are insignificant as compared with those of divine beings. (23)

कुसग्गमेत्ता इमे कामा, सन्निरुद्धंमि आउए ।

कस्स हेउं पुराकाउं, जोगक्खेमं न संविदे? ॥ २४ ॥

मानव की आयु अत्यल्प है, संनिरुद्ध है। इसमें प्राप्त कामभोग कुश के अग्र भाग पर स्थित जलबिन्दु के समान हैं। फिर न जाने किस कारण से प्राणी (अज्ञानी) अपने योग-क्षेम को नहीं समझता ॥ २४ ॥

The life-span of man is very short and it is strewn with obstacles. The available mundane pleasures are like a dew-drop at a grass-tip. Even then, why an ignorant

१



मूल धन

मनुष्य जन्म



लाभ

देवगति



मूल हानि

तिर्य्यच



नरक

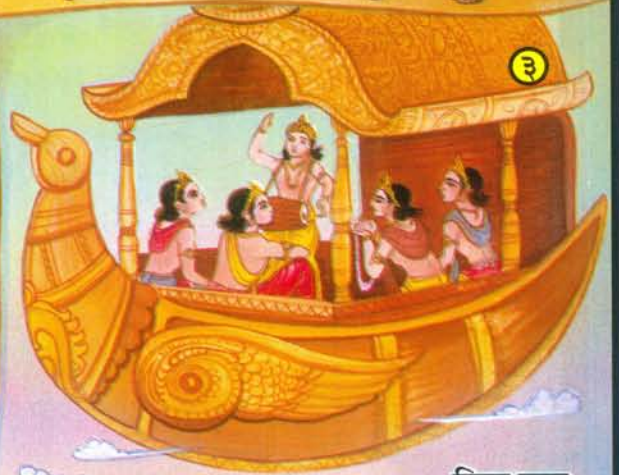


२



मानव भव के सुख

३



दिव्य सुख

## मूलधन-मनुष्य गति

- (1) मूलधन के समान मनुष्यगति है। लाभ के समान देवगति है। मूलधन की हानि के समान जीव की नरक एवं तिर्यचगति है।
- (2) मनुष्य-भव के कामभोग सूखे घास पर गिरी ओस बिन्दु के समान क्षणिक एवं तुच्छ हैं, जबकि देवताओं के दिव्य-सुख समुद्र के समान विशाल हैं।

—अध्ययन 7, सू. 16

## HUMAN EXISTENCE : THE CAPITAL

- (1) Human existence is like capital investment. Divine existence is like profit. The loss of capital is like infernal and animal existences.
- (2) The pleasures and comforts of human existence are worthless and transient like a dew-drop on dry grass; while the divine pleasures of gods are extensive like ocean.

— Chapter 7, Aphorism 16





being (man) does not recognize his wellbeing in virtues (preserving the attained virtues and enhancing them). (24)

इह कामाणियट्टस्स, अत्तट्ठे अवरज्झई ।  
सोच्चा नेयाउयं मग्गं, जं भुज्जो परिभस्सई ॥ २५ ॥

इस मानव-भव में जो कामभोगों से निवृत्त नहीं होता उसका अपना आत्म-प्रयोजन विनष्ट हो जाता है। क्योंकि न्यायमार्ग को बार-बार सुनकर भी वह उससे भ्रष्ट हो जाता है ॥ २५ ॥

He, who does not renounce mundane pleasures in this human birth, loses his true goal of spiritual pursuit because even after hearing about the path of sagacity again and again, he goes astray. (25)

इह काम-पियट्टस्स, अत्तट्ठे नावरज्झई ।  
पूइदेह-निरोहेणं, भवे देवे त्ति मे सुयं ॥ २६ ॥

किन्तु इस मनुष्य-जन्म में कामभोगों को त्यागने वाले (निवृत्त होने वाले) का आत्मार्थ नष्ट नहीं होता, वह इस मलिन औदारिक शरीर के छूट जाने पर देव बनता है—ऐसा मैंने सुना है ॥ २६ ॥

But the renouncer of enjoyments of this human life does not lose the goal of his soul. He becomes god when he gets free of this vile body; so I have heard. (26)

इइत्थी जुई जसो वण्णो, आउं सुहमणुत्तरं ।  
भुज्जो जत्थ मणुस्सेसु, तथ्य से उववज्जई ॥ २७ ॥

(देवलोक से च्यवन करके) वह पुनः मनुष्य-जन्म ग्रहण करता है तो ऐसे उत्तम कुल में जन्म लेता है जहाँ उसे श्रेष्ठ ऋद्धि, द्युति, यश, वर्ण, आयु और सुख की प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥

(On descending from the divine realm) When he is reborn as a human being, he does so in a upper class family where he gets ample wealth, brilliance, fame, beauty, life-span and happiness. (27)

बालस्स पस्स बालत्तं, अहम्मं पडिवज्जिया ।  
चिच्चा धम्मं अहम्मिट्ठे, नरए उववज्जई ॥ २८ ॥

(हे साधक!) बाल जीव की अज्ञानता को देख। वह अधर्म को स्वीकार करता है, धर्म का त्याग करता है और अधार्मिक बनकर नरक में उत्पन्न होता है ॥ २८ ॥

(O aspirant !) See the imprudence of the ignorant. He accepts unrighteousness, rejects righteousness and leading unrighteous life takes rebirth in hell. (28)

धीरस्स पस्स धीरत्तं, सव्वधम्माणुवत्तिणो ।  
चिच्चा अधम्मं धम्मिट्ठे, देवेसु उववज्जई ॥ २९ ॥

(और) क्षमा आदि सब धर्मों का परिपालन करने वाले बुद्धिमान तथा धैर्यवान् पुरुष को भी देख। वह अधर्म का त्याग करता है, अतिशय धर्मवान् बनता है और देवों में उत्पन्न होता है ॥ २९ ॥



See also the wise and patient person who sincerely observes all religious codes including forgiveness. He renounces unrighteousness, becomes perfectly righteous and takes rebirth among gods. (29)

तुलियाण बालभावं, अबालं चैव पण्डित् ।  
चङ्गुण बालभावं, अबालं सेवए मुणी ॥ ३० ॥

—त्ति बेमि ।

मेधावी बालभाव और अबालभाव की तुलना करके बालभाव को छोड़ देता है और पण्डित ज्ञानी मुनि अबालभाव का आचरण करता है ॥ ३० ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

A wise person compares ignorance and prudence and rejects ignorance. The erudite and enlightened sage moulds his conduct with prudence.

—So I say.

### विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १०—टीकाकारों ने आसुरीय दिशा के दो अर्थ किये हैं—(१) जहाँ सूर्य न हो, वह दिशा, और (२) रौद्र कर्म करने वाले असुरों की दिशा। दोनों का ही फलितार्थ नरक है।

गाथा ११—“काकिणी” एक रुप्यक अर्थात् रुपये के अस्सीवें भाग का जितना छोटा सिक्का है। (चूर्णि) बीस कौड़ियों की एक काकिणी मानी है। (वृ. वृ. शा.)

कार्षापण प्राचीन युग में एक बहु-प्रचलित सिक्का था, जो सोना, चाँदी और ताँबा तीनों धातुओं का होता था। सामान्यतः सोने का कार्षापण १६ माशा, चाँदी का ३२ रत्ती और ताँबे का ८० रत्ती जितना भार वाला होता था।

### IMPORTANT NOTES

**Verse 10**—Commentators have given two interpretations of the term *aasuriya disha* (the demonic direction)—1. the direction where the sun does not exist, 2. The direction of *asuras* (demons) who indulge in cruel deeds. Both the interpretations convey the same meaning—the hell.

**Verse 11**—*Kaakinee* is a small coin equal to eightieth part of a rupee (*Churni*). One *Kaakinee* is also equal to 20 cowries. (V.V.S.)

*Kaarshaapana* was a popular coin in ancient India. It was made of three metals—gold, silver and copper. Generally golden *Kaarshaapana* weighed 16 Mashas (15.5 gms. approx.), that of silver weighed 32 Mashas (31 gms.) and that of copper weighed 80 Mashas (77.5 gms.).





## अष्टम अध्ययन : कापिलीय

### पूर्वालोक—कथा सूत्र

कपिल के पिता काश्यप ब्राह्मण चौदह विद्याओं के ज्ञाता और कौशाम्बी-नरेश जितशत्रु की राजसभा के एक रत्न थे। राजा उन्हें बहुत सम्मान देता था। बहुत ही ठाठ-बाट से वे राजसभा को जाते थे।

अचानक ही काश्यप ब्राह्मण की मृत्यु हो जाने से उसकी पत्नी यशा और अल्पवयस्क पुत्र कपिल अनाथ हो गये। राजा जितशत्रु ने उनके स्थान पर दूसरे विद्वान् को नियुक्त कर दिया। अब वह ब्राह्मण ठाठ-बाट से राजसभा में जाने लगा। उस नये राजपण्डित को देखकर यशा की आँखों में आँसू छलक आते।

एक बार कपिल ने माँ से आँसुओं का कारण पूछा तो माँ ने सब कुछ बताकर कहा—“पुत्र! जिस समय तुम्हारे पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय तुम अल्पवयस्क थे। यदि विद्या पढ़कर विद्वान् बन जाओ तो पिता का पद तुम्हें मिल सकता है।”

कपिल ने विद्या पढ़ने की इच्छा प्रगट की तो माँ ने कहा—“पुत्र! यहाँ तो कोई पण्डित तुम्हें पढ़ायेगा नहीं। तुम्हारे पिता की विद्वत्ता से सभी ईर्ष्या करते हैं। तुम श्रावस्ती चले जाओ। वहाँ तुम्हारे पिता के मित्र इन्द्रदत्त उपाध्याय हैं। वे तुम्हें विद्याओं में निष्णात बना देंगे।”

माँ का आशीर्वाद प्राप्त कर कपिल श्रावस्ती जा पहुँचा। इन्द्रदत्त उपाध्याय से मिला, अपना परिचय दिया। इन्द्रदत्त ने कपिल को पढ़ाने का आश्वासन दिया और उसके भोजन तथा निवास की व्यवस्था नगर के धनी श्रेष्ठी शालिभद्र के यहाँ कर दी। श्रेष्ठी ने कपिल की सेवा के लिये एक दासी नियुक्त कर दी।

अब कपिल दिनभर इन्द्रदत्त उपाध्याय के यहाँ रहकर अध्ययन करता और सन्ध्या समय श्रेष्ठी शालिभद्र के यहाँ आ जाता, वहीं विश्राम करता।

दासी और कपिल-दोनों युवा थे, सुन्दर थे, हँसमुख थे। परस्पर आकर्षित हो गये। दासी कपिल के प्रति समर्पित हो गई। किन्तु दोनों ही धनहीन थे। दासी तो दासी ही थी, कपिल भी अध्ययन हेतु आया था, दूसरों की दया पर निर्भर था, अतः धन होने का प्रश्न ही नहीं था।

एक बार श्रावस्ती में कोई विशाल जन-महोत्सव होने वाला था। दासी की इच्छा भी उसमें सम्मिलित होने की थी; लेकिन महोत्सव के योग्य उसके पास वस्त्र भी न थे। दासी ने अपनी इच्छा कपिल के समक्ष प्रगट की तो अपनी धनहीनता के कारण वह उदास हो गया।

दासी ने धन-प्राप्ति का उपाय बताया—“नगर में एक धन कुबेर श्रेष्ठी है। प्रातः जो ब्राह्मण उसे सर्वप्रथम आशीर्वाद देता है उसे वह दो माशा सोना देता है। तुम वहीं पर जाओ।”

दूसरा कोई ब्राह्मण आशीर्वाद देने सेठ के पास पहले न पहुँच जाय, इस चिन्ता में कपिल को नींद न आई। वह आधी रात को ही उठकर चल दिया। राजसेवकों ने उसे चोर समझकर पकड़ लिया और प्रातः श्रावस्ती-नरेश प्रसेनजित के सामने पेश कर दिया।



राजा के पूछने पर कपिल ने सब कुछ स्पष्ट बता दिया। उसकी सरलता और सत्यवादिता से प्रभावित होकर राजा ने मन-इच्छित धन माँगने का वचन दिया। कुछ समय की मौहलत माँगकर कपिल राजोद्यान में एक स्थान पर बैठकर सोचने लगा—‘कितना धन माँगूँ-सौ मुद्राएँ, नहीं! इनसे क्या होगा? तो दो सौ स्वर्ण-मुद्राएँ? यह भी कम हैं!’ इस तरह उसकी इच्छा बढ़ती गई। लाख, करोड़ स्वर्ण-मुद्राएँ भी कम मालूम हुईं। भवन और राजसत्ता तक उसकी तृष्णा दौड़ने लगी।

तभी उसके चिन्तन को गहरा झटका लगा—‘दो माशा स्वर्ण से पूर्ण होने वाला कार्य करोड़ स्वर्ण-मुद्राओं से भी नहीं हो रहा है। यह इच्छाओं का गड्ढा कितना दुष्पूर है?’

बस, कपिल का मन विरक्त हो गया। राजा के पास आया और बोला—“हे राजन्! मुझे किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं है। जो मुझे पाना था, वह पा चुका।”

इतना कहकर कपिल राजसभा से निकल गया और निर्ग्रन्थ श्रमण बन गया। छह माह तक छद्मस्थ रहे और फिर केवली हो गये।

एक बार कपिल केवली श्रावस्ती और राजगृही के बीच फैले हुए १८ योजन के महारण्य में विहार कर रहे थे। ५०० चोरों ने उन्हें घेर लिया। तब कपिल केवली ने चोरों को भावपूर्ण उद्बोधन दिया। चोरों को दिया हुआ वह उद्बोधन ही इस अध्ययन में संकलित है।

प्रस्तुत अध्ययन के वक्ता कपिल केवली हैं। इन्हीं के नाम पर इसका नामकरण ‘काविलीयं’ हुआ है।

इससे पूर्व सातवें अध्ययन में साधक को विभिन्न दृष्टान्तों द्वारा राग-द्वेष, कामभोग आदि से विरत करने का प्रयास किया गया था। इस अध्ययन में लाभ और लोभ का दुष्पूर चक्र दिखाकर धन के प्रति साधक की आसक्ति को समाप्त करने का प्रयास है।

काम और लोभ संसार से मुक्ति प्राप्त करने में सबसे बड़े बाधक तत्त्व हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में पूर्व आसक्ति, ग्रन्थ (बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह), रस-लोलुपता, लक्षण आदि शास्त्रों के प्रयोग, स्त्री आसक्ति के त्याग तथा संसार की क्षणिकता का बहुत ही संजीव और प्रेरक विवेचन है। हिंसा आदि पापों का वर्णन है।

दुर्गति से बचने के उपाय भी बताये गये हैं—संयम, विवेक और विरक्ति। यह भी कहा गया है कि भोगों से उपरति और परिग्रह का सर्वथा त्याग ही संसार से मुक्ति-प्राप्ति में सहायक होता है।

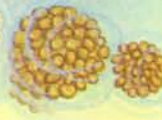
इस अध्ययन का सन्देश है—कामभोगों को देखकर भी साधक उन्हें अनदेखा करता रहे। उपेक्षा करता रहे।

यह अध्ययन गेयछन्द ध्रुवक में लिपिबद्ध है।

प्रस्तुत अध्ययन में २० गाथाएँ हैं।



राज सभा में कपिल



असीम तृष्णा



## राजसभा में कपिल

- (1) एक मासा सोना पाने के लिये आधी रात में घूमते हुये कपिल को पहरेदारों ने चोर समझकर पकड़ लिया और प्रातः राजा के सम्मुख उपस्थित किया।
- (2) एक मासा स्वर्ण की इच्छा असीम तृष्णा बन गई। अपार धन, स्वर्ण-मुद्रा, ऐश्वर्य, सेना, स्त्रियाँ, भवन सब कुछ माँग लेने पर भी कपिल की तृष्णा शान्त नहीं हुई।

—अध्ययन 8, सू. 17.

## KAPIL IN THE KING'S COURT

- (1) While wandering at midnight to earn one Masa of gold, soldiers considered Kapil to be a thief. They caught him and produced him before the king in the morning.
- (2) Desire of one Masa gold magnified extensively into craving. It could not be pacified even when Kapil demanded enormous wealth, gold coins, fortunes, women, palaces etc.

—Chapter 8, Aphorism 17





## ASHTAM ADHYAYAN : KAPILIYA

### Foreview—The Story

Kapil's father, Brahmin Kaashyap was a scholar of fourteen subjects and a gem in the court of king Jitashatru of Kaushambi. The king respected him very much and he went to the court with great pomp and show.

All of a sudden Brahmin Kaashyap died. His wife Yasha became a widow and little Kapil became an orphan. King appointed another learned Brahmin in his court. Now that Brahmin started going to the court with same grandeur. Whenever Yasha saw the new state priest she was in tears.

Once, Kapil asked his mother about the reason of her tears, the mother told him everything and added—"Son! When your father expired, you were an infant. If you study and become a scholar, you can get your father's post."

When Kapil expressed his desire to study, the mother said—"Son! No pundit in this city will teach you. They all are jealous of your father's scholarship. Go to Shravasti where your father's friend Indradutta Upadhyaya lives. He will make you master of all branches of learning."

With his mother's blessings Kapil arrived in Shravasti. He met Indradutta Upadhyaya and introduced himself. Indradutta assured him to educate and made Kapil's boarding and lodging arrangement at the house of a rich merchant named Shalibhadra. The merchant appointed a young maid-servant to look after Kapil.

Now Kapil started his day long study at Indradutta's place. In the evening he returned to the house of merchant Shalibhadra for night rest.

Maid and Kapil both were young, beautiful and jolly. Soon they were attracted to each other. The maid fell in love with Kapil. However, they both had no wealth. Maid was just a working woman. Kapil had come for studying and was on other's mercy. So wealth was out of question.

Once, a great public festival was going to be held in Shravasti. The maid also wanted to enjoy that festival; but she did not have proper dress for a festival. She expressed her desire to Kapil but unable to help due to his poverty, Kapil became sad.

The maid suggested a plan for getting money—"A wealthy merchant lives in the city. He donates two Masha gold to the first Brahmin who blesses him in the morning. You should go there."

Afraid that another Brahmin may reach the merchant to bless him first, Kapil could not sleep out of anxiety. He got up and left his place around midnight. King's guards



thought him to be a thief and apprehended. They produced him before Prasenjit, the king of Shravasti.

On being asked by the king, Kapil told everything without any hesitation. Impressed by his simplicity and truthfulness, the king promised him to give any amount of money he asked. Seeking some time to think, Kapil went to the palace garden and sat down thinking—‘How much money should I ask for? One hundred gold coins? No, that is naught. Two hundred coins? This too is meager.’ Thus his desire went on increasing. He found even ten million gold coins to be insufficient. His ambition ran amuck and his greed reached up to palaces and kingdoms.

Just then the train of his thoughts got a jolt—‘The goal that was to be reached with the help of two Masha gold is getting beyond the range of ten million gold coins. How impossible it is to fill this gorge of desires?’

Kapil’s mind was overwhelmed with the feeling of detachment. He went to the king and said—‘O king! I don’t want anything. Whatever I was to obtain, I have got.’

With these words Kapil left the king’s court and became a *Nirgranth* (Jain) ascetic. He started his practices as an ordinary ascetic (*chhadmasth*) and after a period of six months he attained omniscience to become a *Kevali*.

Once Kevali Kapil was passing through the great forest (of 18 Yojan area) spread between the cities of Shravasti and Rajagriha. On way five hundred thieves surrounded him. At that time Kapil gave a meaningful discourse to the thieves. That discourse is compiled in this chapter.

As the preceptor of this chapter is Kapil Kevali, this chapter is titled ‘About Kapil’ (Kapiliya).

In the preceding chapter effort was made to shift the aspirant away from attachment and aversion as well as mundane pleasures with the help of a variety of parables. Whereas, in this chapter effort is made to end the aspirant’s infatuation for wealth by showing the vicious circle of gain and greed.

Lust and greed are the biggest obstacles on the path of liberation.

This chapter contains vivid and inspiring discussion about—obsessions from the past, mental and physical covetousness (*granth* or knots), infatuation of taste-buds, use of books of augury and other such subjects, getting free of the obsession for women and the ephemeral nature of the world. Description of violence and other sins is also included.

The means of avoiding ignoble consequences (lower rebirth etc.) have also been discussed; they include discipline, sagacity and detachment. It is also stated that abstinence from mundane pleasures and renouncing all possessions are the only means helpful in attaining liberation.

The message of this chapter is—an aspirant should keep on ignoring mundane pleasures even though he is in their proximity.

This chapter is composed in Dhruvak Chhand (a type of metric verse).

There are 20 verses in this chapter.



अष्टमं अज्झयणं : काविलीयं  
अष्टम अध्यायन : कापिलीय  
Chapter-8 : ABOUT KAPIL

अधुवे असासयंमि, संसारंमि दुक्खपउराए।  
किं नाम होज्ज तं कम्मयं, जेणाऽहं दोग्गइं न गच्छेज्जा ? ॥ १ ॥

यह संसार अधुव, नश्वर, अनित्य और प्रचुर दुःख से भरा है। ऐसा कौन-सा कर्म है, जिससे मैं दुर्गति में न जाऊँ ? ॥ १ ॥

This world is transient, destructible, impermanent and full of miseries. What are the deeds that can help me avoid a rebirth in lower states ? (1)

विजहित्तु पुव्वसंजोगं, न सिणेहं कहिंचि कुव्वेज्जा।  
असिणेह सिणेहकरेहिं, दोस-पओसेहिं मुच्चए भिक्खू ॥ २ ॥

पूर्व संयोगों का परित्याग करके फिर किसी भी पदार्थ के प्रति स्नेह न करे, प्रेम करने वालों के प्रति भी स्नेहरहित रहने वाला भिक्षु दोष और प्रदोषों से मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

Abandoning the former links, avoiding fondness for any substance and being free of love, even for those who love, an ascetic becomes free from faults as well as grave faults. (2)

तो नाण-दंसणसमग्गो, हियनिस्सेसाए सव्वजीवाणं।  
तेसिं विमोक्खणट्ठाए, भासई मुणिवरो विगयमोहो ॥ ३ ॥

तब केवलज्ञान-केवलदर्शन से संपन्न तथा मोह से पूर्णतः मुक्त मुनिवर (कपिल केवली) ने सभी जीवों के कल्याण, हित तथा उनके मोक्ष के लिये उपदेश दिया ॥ ३ ॥

After that the sage (Kapil Kevali), endowed with *Keval-jnana* and *Keval-darshan* (omniscience and omni-perception) and completely devoid of fondness, gave a discourse for the beatitude and salvation of all beings. (3)

सव्वं गन्थं कलहं च, विप्पजहे तहाविहं भिक्खू।  
सव्वेसु कामजाएसु, पासमाणो न लिप्पई ताई ॥ ४ ॥

भिक्षु कर्मबन्धन के कारण सभी प्रकार के परिग्रह का और कलह के कारणों का त्याग करे तथा सभी कामभोगों के कटु परिणामों को देखकर आत्म-रक्षक मुनि उनसे निर्लिप्त रहे ॥ ४ ॥

An ascetic should renounce all type of possession and all causes of dispute. Observing the bitter consequences of all and any mundane indulgences, or worldly pleasures, the sage protecting his soul should remain detached from them. (4)

भोगामिसदोसविसण्णो, हियनिस्सेयसबुद्धि-वोच्चत्थे।  
बाले य मन्दिए मूढे, बज्झई मच्छिया व खेलंमि ॥ ५ ॥



आमिषरूप भोगों से विषाद को प्राप्त तथा अपने हित और कल्याण में विपरीत बुद्धि का धारक, मन्द मति, मूर्ख जीव वैसे ही कर्मों से बँध जाता है, जैसे श्लेष्म (कफ) में मक्खी फँस जाती है ॥ ५ ॥

Engulfed by grief due to indulgence in flesh-like (prohibited) mundane pleasures and having an attitude contrary to his own benefit and beatitude, a dimwit and stupid being is entrapped in *karmas* exactly like a fly stuck in phlegm. (5)

दुपरिच्चया इमे कामा, नो सुजहा अधीरपुरिसेहिं ।

अह सन्ति सुव्वया साहू, जे तरन्ति अतरं वणिया व ॥ ६ ॥

इन कामभोगों का परित्याग करना बहुत कठिन है। अधीर व्यक्ति इनका त्याग नहीं कर पाते। किन्तु जो शांत-सुव्रती साधु होते हैं, वह इन कामभोगों को उसी प्रकार सहजता से त्याग कर देते हैं; जैसे पोतवणिक सागर को पार कर जाते हैं ॥ ६ ॥

It is very difficult to renounce these worldly pleasures. Impatient persons fail to abandon them. But the calm ascetics, accomplished in observance of vows, renounce them with ease like sea-faring merchants conveniently cross a sea. (6)

'समणा सु' एगे वयमाणा, पाणवहं मिया अयाणन्ता ।

मन्दा नरयं गच्छन्ति, बाला पावियाहिं दिट्ठीहिं ॥ ७ ॥

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि 'हम श्रमण हैं' किन्तु मिथ्यात्वग्रस्त मंद बुद्धि वाले पशु के समान अज्ञानी प्राणि-वध को हिंसा नहीं मानते; अपनी इस पापदृष्टि के कारण वे नरक गति में जाते हैं ॥ ७ ॥

Some individuals claim to be ascetics but blockheads, unrighteous and ignorant like animals, as they are, they do not accept killing of living beings to be violence. Due to this sinful attitude they go to hell. (7)

'न हु पाणवहं अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ सव्वदुक्खाणं' ।

एवारिएहिं अक्खायं, जेहिं इमो साहुधम्मो पन्नतो ॥ ८ ॥

साधु धर्म की प्ररूपणा करने वाले आर्य पुरुषों-तीर्थकरों ने ऐसा कहा है कि हिंसा (असत्य, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह) की अनुमोदना करने वाले कभी भी सभी दुःखों से मुक्त नहीं हो सकते ॥ ८ ॥

The noble ones (*Tirthankaras*), who have propagated the ascetic code, have said that those who even support killing (falsehood, stealing, non-celibacy and covetousness) can never be free from all miseries. (8)

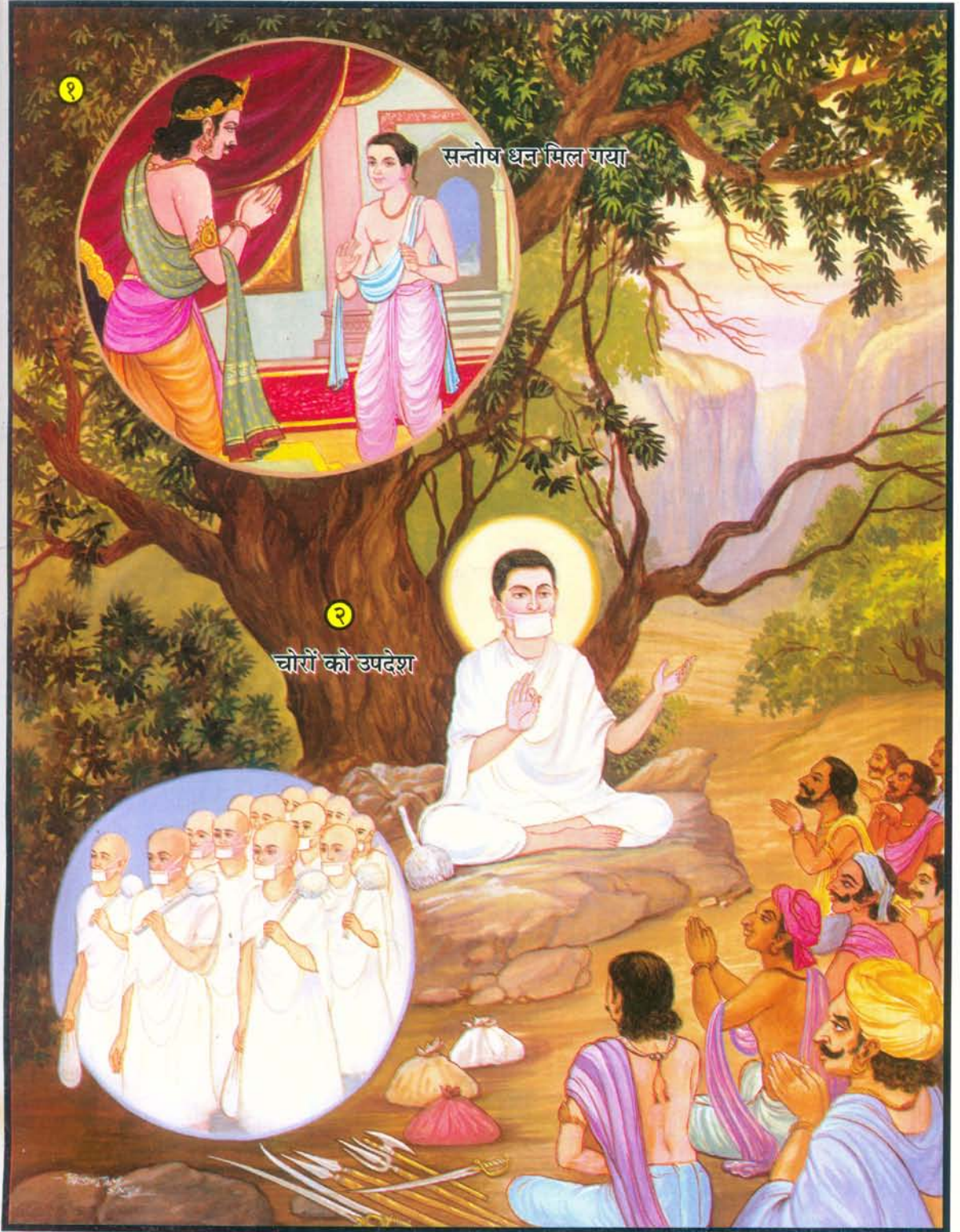
पाणे य नाइवाएज्जा, से 'समिए' त्ति वुच्चई ताई ।

तओ से पावयं कम्मं, निज्जाइ उदगं व थलाओ ॥ ९ ॥

जो साधक प्राणियों की हिंसा नहीं करता वह अपनी आत्मा और सभी जीवों का रक्षक तथा समितिवान् होता है। उससे पापकर्म उसी प्रकार दूर हो जाते हैं जिस प्रकार ऊँचे स्थान से जल बहकर दूर चला जाता है ॥ ९ ॥

An aspirant, who does not harm living beings, becomes the protector of his soul as well as all living beings. He is also an observer of self-regulations (*samitivaan*).





१

सन्तोष धन मिल गया

२

चोरों को उपदेश

## कपिल मुनि

- (1) चिन्तन करते-करते कपिल का मन विरक्त हो गया। उसने राजा से कहा—मुझे सन्तोष धन मिल गया, अब कुछ नहीं चाहिये। कपिल मुनि बन गये।
- (2) जंगल में पाँच सौ चोरों को मधुर स्वर में धर्म उपदेश सुनाया तो सभी चोर प्रबुद्ध होकर उनके शिष्य बन गये।

—अध्ययन 8, सू. 1-20

## ASCETIC KAPIL

- (1) Kapil came and said to the King – I got the wealth of contentment. Now I want nothing. Kapil became an ascetic.
- (2) In the forest he gave a religious discourse in a sweet voice to 500 thieves. All the thieves got enlightened and became his disciples.

—Chapter 8, Aphorism 1-20





Demertorious *karmas* move away from him like water flows away from a high place. (9)

जगनिस्सिएहिं भूएहिं, तसनामेहिं थावरेहिं च।

नो तेसिमारभे दंडं, मणसा वयसा कायसा चेव ॥ १० ॥

संसार में जितने भी त्रस और स्थावर प्राणी हैं, (उनके द्वारा सताये जाने पर भी) उनके प्रति मन-वचन-काय से हिंसा रूप दण्ड का समारम्भ न करे ॥ १० ॥

He (an ascetic) should refrain from using violence through mind, speech or body as punishment for all mobile and immobile beings of the world (even when tormented by them). (10)

सुद्धेसणाओ नच्चाणं, तत्थ ठवेज्ज भिक्खू अप्पाणं।

जायाए घासमेसेज्जा, रसगिद्धे न सिया भिक्खाए ॥ ११ ॥

शुद्ध एषणाओं को जानकर भिक्षु उनका सावधानी से आचरण करे। भिक्षाजीवी साधु संयम यात्रा के सुचारु निर्वाह के लिये आहार की गवेषणा करे लेकिन रसों में गृह्य न हो ॥ ११ ॥

An ascetic should understand the true precautions of alms collection and observe them with all sincerity and care. An ascetic subsisting on alms should explore for food only for the purpose of proper sustenance on the path of restraint; however, he should refrain from being epicure. (11)

पन्ताणि चेव सेवेज्जा, सीयपिण्डं पुराणकुम्मासं।

अदु बुक्कसं पुलागं वा, जवणट्ठाए निसेवए मंथुं ॥ १२ ॥

भिक्षाजीवी साधु संयमी जीवन यापन के लिये बचा-खुचा नीरस आहार, शीत पिंड, पुराने कुल्माष-उड़द अथवा सारहीन, रूखा बेर या सत्तू के चूर्ण आदि का सेवन करे ॥ १२ ॥

An ascetic subsisting on alms should eat only leftover tasteless food, stale food or cold rice, old *udad* (a pulse; *Phaseolus mungo*) or blend, dry and powdered berries or gram for his survival. (12)

'जे लक्खणं च सुविणं च, अंगविज्जं च जे पउंजन्ति।

न हु ते समणा वुच्चन्ति', एवं आयरिएहिं अक्खायं ॥ १३ ॥

आचार्यों ने ऐसा कहा है कि जो साधु शुभाशुभ लक्षण सूचक, स्वप्न फल और अंगस्फुरण विद्या का प्रयोग करते हैं, वे श्रमण कहे जाने योग्य नहीं हैं ॥ १३ ॥

*Acharyas* (preceptors) have said that those ascetics who (for prediction and otherwise) interpret auspicious and inauspicious marks on body, dreams and foreboding changes in body parts (*Angavidya*) are not worthy of being called ascetics. (13)

इहजीवियं अणियमेत्ता, पब्भट्ठा समाहिजोएहिं।

ते कामभोग-रसगिद्धा, उववज्जन्ति आसुरे काए ॥ १४ ॥

जो वर्तमान जीवन में अनियमित रहकर समाधियोग से भ्रष्ट हो जाते हैं, ऐसे लोग कामभोग और रसों में लोलुप आसुर काय में उत्पन्न होते हैं ॥ १४ ॥



Those, who fall from the spiritual path due to irregularity and indiscipline in the present life, are reborn among evil divine beings (*Asur kaaya*) who are infatuated with carnal pleasures and tastes. (14)

ततो वि य उवट्टित्ता, संसारं बहुं अणुपरियडन्ति।  
बहुकम्मलेवलित्ताणं, बोही होइ सुदुल्लहा तेसिं ॥ १५ ॥

उस आसुर काय से निकलकर भी वे दीर्घकाल तक संसार में परिभ्रमण करते हैं, अत्यधिक कर्मों से लिप्त होने के कारण उन्हें सम्यक् बोधि की प्राप्ति अति दुर्लभ होती है ॥ १५ ॥

Even after leaving that genus (*Asur kaaya*), they transmigrate in cycles of rebirth (*samsaar*) for a long time. As they are highly maligned by *karmas*, the chances of their gaining enlightenment are extremely rare. (15)

कसिणं पि जो इमं लोयं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।  
तेणावि से न संतुस्से, इइ दुप्परए इमे आया ॥ १६ ॥

यह आत्मा लोभ से इतनी अभिभूत है—धन-धान्य आदि से परिपूर्ण यह संसार किसी एक व्यक्ति को भी दे दिया जाय तब भी वह संतुष्ट नहीं होता ॥ १६ ॥

This soul is so overpowered by greed that if this world with abundance of wealth is given to a single person, even then he is not contented. (16)

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।  
दोमास-कयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं ॥ १७ ॥

जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे ही लोभ भी होता है। लाभ से लोभ बढ़ता जाता है। दो माशा सोने से पूरा हो जाने वाला कार्य करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओं से भी पूरा न हो सका ॥ १७ ॥

The more a man gets, the greedier he becomes. Greed increases with gain. The work that needed just two Masha of gold could not be accomplished even with millions of gold coins. (17)

नो रक्खसीसु गिज्जेज्जा, गंडवच्छासु ऽणोगचित्तासु।  
जाओ पुरिसं पलोभित्ता, खेल्लन्ति जहा व दासेहिं ॥ १८ ॥

कपटपूर्ण हृदय वाली तथा जिनके वक्ष पर फोड़े या गाँठ के समान स्तन हैं, जिनका हृदय अनेक कामनाओं से चंचल है, जो पुरुष को प्रलोभन में फँसाकर उसे दास के समान नचाने वाली हैं, वासनाओं से भरी राक्षसी के समान स्त्रियों में आसक्ति मत रखो ॥ १८ ॥

Never have craving for lustful demonic women, who have breasts that are tumor-like lumps, who are mercurial due to numerous desires and who ensnare man by tantalizing with carnal favours to make them dance to their tune like slaves. (18)



नारीसु नोवगिज्जेज्जा, इत्थी विप्पजहे अणगारे।  
धम्मं च पेसलं नच्चा, तत्थ ठवेज्ज भिक्खु अप्पाणं ॥ १९ ॥

स्त्रियों (स्त्री संसर्ग) का त्याग करने वाला गृहत्यागी भिक्षु उनमें गृद्ध न हो और साधुधर्म को ही इस लोक तथा परलोक में कल्याणकारी समझकर उसमें स्वयं अपनी आत्मा को स्थिर करे ॥ १९ ॥

The homeless ascetic, who has also renounced (contact with) women, should not get fond of them. Believing ascetic-code to be the lone source of beatitude in this life and the next, the ascetic should focus his soul only on that (ascetic-code). (19)

इइ एस धम्मे अक्खाए, कविलेणं च विसुद्धपत्तेणं।  
तरिह्तिन्ति जे उ काह्तिन्ति, तेहिं आराहिया दुवे लोग ॥ २० ॥

—त्ति बेमि।

विशुद्ध प्रज्ञा के धारक कपिल मुनि ने यही धर्म कहा। इस धर्म का आचरण करने वाले संसार-सागर को पार करेंगे, उनके दोनों लोक सफल हो जायेंगे ॥ २० ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Sage Kamil, endowed with pristine wisdom, has propagated this religion only. Those who follow this code are sure to cross the ocean of cycles of rebirth and both their lives (this and the next) will be fruitful. (20)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १५—स्थानांगसूत्र में बोधि के तीन प्रकार बताये हैं—

(1) ज्ञानबोधि, (2) दर्शनबोधि, और (3) चारित्रबोधि।

## IMPORTANT NOTES

Verse-15—In *Sthananga Sutra* three types of enlightenment is mentioned—

1. Knowledge-enlightenment, 2. Faith-enlightenment, and 3. Conduct-enlightenment.



## नवम अध्ययन : नमिप्रव्रज्या

### पूर्वालोक

विदेहराज मिथिला-नरेश राजा नमि एक बार भयंकर दाह-ज्वर से व्यथित हुये। छह माह तक दाह-ज्वर की पीड़ा चलती रही। अनेक उपचार किये गये लेकिन रोग शान्त नहीं हुआ। अन्त में एक वैद्य ने कहा—“महाराज के शरीर पर गोशीर्ष चन्दन का लेप किया जाय तो इन्हें शान्ति मिलेगी।”

रानियाँ स्वयं चन्दन घिसने लगीं। उनके हाथों के कंगन परस्पर टकराने से शोर हुआ। दाह-पीड़ित राजा को यह शोर असह्य हो गया। मंत्री के संकेत पर हाथ में सौभाग्यसूचक एक-एक कंगन रखकर रानियाँ चन्दन घिसने लगीं। शोर बन्द हो गया।

राजा ने मंत्री से पूछा—“क्या चन्दन घिसना बन्द हो गया?”

मंत्री ने स्थिति स्पष्ट करते हुये कहा—“महाराज! चन्दन अब भी घिसा जा रहा है। एक कंगन किससे टकरायेगा और कैसे शोर होगा?”

राजा गहराई में उतर गया—‘अशान्ति और शोर वही होता है, जहाँ दो या दो से अधिक—अनेक हों। एक होने पर शान्ति होती है। शरीर, इंद्रिय, मन, परिवार आदि की भीड़ से घिरा आत्मा सदा ही अशान्त रहता है। यदि आत्मा इन सब का त्याग कर दे, अकेला निस्पृह हो जाय तो शान्ति ही शान्ति है। सुख और शान्ति तो आत्म-भावों में लीन रहने में है।’

इस प्रकार एकत्वभावना का चिन्तन करते-करते राजा नमि को शान्ति अनुभव हुई। नींद लग गई। भावना का प्रभाव हुआ। राजा का दाह-ज्वर भी शान्त हो गया। पुत्र को राजसिंहासन सौंपकर संयम ग्रहण कर लिया।

राजा का वैराग्य क्षणिक आवेश है अथवा इसमें दृढ़ता है, इस बात की परीक्षा करने के लिये स्वयं शक्रेन्द्र ब्राह्मण का वेश बनाकर आया। उसने राजर्षि नमि से कई प्रश्न किये, सांसारिकता की ओर मोड़ने का प्रयास किया लेकिन राजर्षि ने उन सब का युक्तियुक्त समाधान किया।

इन सब का संकलन इस अध्ययन में हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन का ‘नमिप्रव्रज्या’ नाम ही अपनी विषय-वस्तु का संसूचन कर देता है।

आठवें अध्ययन कापिलीय में लाभ और लोभ के दुष्पूर चक्र से विरति का वर्णन हुआ है। किन्तु प्रस्तुत अध्ययन में अन्य प्रकार की विशेषता है।

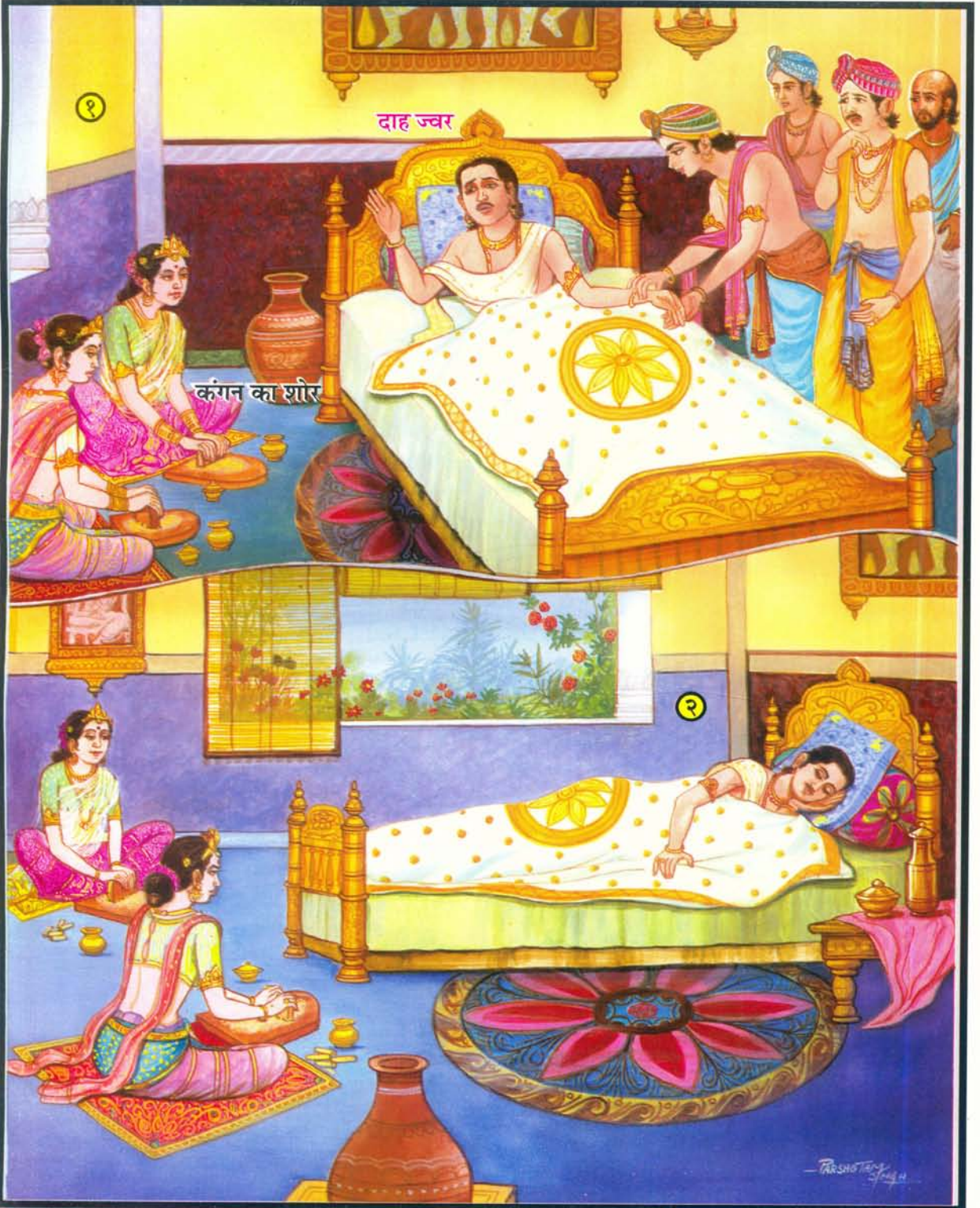
यहाँ विशेषता यह है कि शक्रेन्द्र ब्राह्मण अथवा वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व करता है, उसके सभी प्रश्न और प्रेरणाएँ वैदिक मान्यताओं से अनुप्राणित हैं। जबकि राजर्षि नमि श्रमण परम्परा के प्रतिनिधि हैं। उनके सभी समाधान और उत्तर श्रमण परम्परा के अनुसार हैं। राजर्षि नमि के उत्तरों में आध्यात्मिकता मुखर हो रही है, जबकि इन्द्र उन्हें सांसारिकता की ओर अग्रसर करने के लिये प्रयत्नशील हैं।

इस अध्ययन की गाथाओं में बड़े ही वैज्ञानिक और मनोरम दृष्टान्त तथा रूपक हैं। गाथाबद्ध होने पर भी प्रश्नोत्तर बड़े ही चुटीले और सार्थक हैं। उपमा और रूपक अलंकार प्रत्येक गाथा में दृष्टव्य हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में आदि से अन्त तक आध्यात्मिकता व संसार से विरक्ति के स्वर मुखरित हो रहे हैं।

अन्त में जब शक्रेन्द्र राजर्षि नमि को नमन करके उनकी प्रशंसा करता है तब तो आध्यात्मिकता की विजय स्पष्ट परिलक्षित हो जाती है।

प्रस्तुत अध्ययन में ६२ गाथाएँ हैं।



## नमिराज का जागरण

- (1) नमिराज के दाह ज्वर की शान्ति के लिये रानियों ने चन्दन घिसना प्रारंभ किया तो हाथ की चूड़ियों (कंगन) का शोर राजा को असह्य होने लगा।
- (2) रानियों ने सिर्फ एक-एक कंगन हाथ में रखा, जिस कारण चन्दन घिसने पर भी आवाज नहीं हुई। राजा को शान्ति अनुभव होने पर हल्की-सी नींद लग गई।

—अध्ययन 9 (अध्ययन से पूर्व का भाग)

## SLEEPLESS KING NAMI

- (1) Queens began to grind sandal wood to cure burning fever of the king. The noise of their bracelets became intolerable to the king.
- (2) Queens removed all bracelets except one. Now there was no sound even while grinding sandal wood. The king felt comfortable and went to sleep.

—Chapter 9, (First part of the chapter)







## NAVAM ADHYAYAN : NAMIPRAVRAJYA

### Foreview

Once, Nami, the overlord of Videh state and king of Mithila, had high fever. He continued to suffer for six months. Many treatments were given but in vain. At last one physician advised—"The king will get immediate relief if paste of *Goshirsh Chandan* (a class of sandal-wood) is applied on his body."

The queens started grinding the required sandal-wood with their own hands. The bracelets on their arms collided due to movement and made noise. The noise became unbearable to the ailing king. On the advice of a minister the queens removed all bracelets, keeping just one as auspicious sign and resumed grinding sandal-wood. The noise stopped.

The king asked his minister—"Has the grinding of sandal-wood been stopped?"

The minister explained—"Sire ! The grinding of sandal-wood continues, but when there is just one bracelet on arm, what will it strike to produce sound?"

The king went deep into thoughts—'Disturbance and noise take place only where there are two or more than two things at a place. When there is one there is peace and quiet. A soul surrounded by body, senses, mind and a crowd of family members and other people is always in a disturbed state. However, if the soul renounces all these and becomes solitary and free of expectations, then there is peace and peace alone. Happiness and peace comes when one is completely absorbed in the self or soul.'

Thus ruminating about solitariness king Nami experienced a unique calmness and fell asleep. The influence of thoughts extended to the body and the high fever was cured. He gave the kingdom to his son and got initiated as an ascetic.

In order to test if the king's detachment was resolute enough or just a momentary impulse, Shakrendra, the king of gods himself appeared before Nami in the guise of a Brahmin. He tried to turn sage Nami towards the mundane by asking many pointed questions. But sage Nami answered all questions logically and correctly.

All this has been compiled in this chapter.

The title, 'Initiation of Nami', of this chapter is suggestive of this.

The previous chapter 'Kaapiliya' talks about the disengagement from the vicious circle of gain and greed, but this chapter has a different but unique theme.



The said special feature is that Shakrendra here represents the Brahminic or Vedic school of thought. All his questions and inspirations are empowered by Vedic beliefs, whereas Nami represents Shraman school of thought. All his answers and clarifications are according to Shraman tradition. The answers of sage Nami are drenched in spirituality while Indra is making efforts to push him towards the worldly life.

There are many allegories and parables, appealing yet scientific in the verses of this chapter. In spite of being versified, the dialogues are incisive and meaningful. Similes and Metaphors enrich every verse of this chapter.

From beginning to the end this chapter conveys the message of spiritualism and renouncing the worldly affairs.

In the end when Shakrendra bows to sage Nami and praises his resolve, the victory of spiritualism is clearly visible.

There are 62 verses in this chapter.



अनेक में दुख, एक में सुख



## अनेक में दुःख-एक में सुख

नमिराज के पूछने पर पटरानी ने कहा-हमारे हाथ में सिर्फ एक ही कंगन है, फिर एक कंगन से आवाज कैसे होगी? राजा के चिन्तन ने नया मोड़ लिया- 'संसार में जहाँ अनेक हैं, वहीं दुःख है, संघर्ष है। जहाँ एक है, वहाँ पर सुख-शान्ति है।'

—अध्ययन 9, (पूर्वालोक)

## SORROW WITH MANY – HAPPINESS WITH ONE

When King Nami asked the chief queen explained – We have only one bracelet in our hands now. How can a single bracelet make sound? The king's thoughts took a turn, "In this world, where there are many, there is collision and pain. Where there is one, there is peace and happiness."

—Chapter 9, Foreview





**नवमं अज्झयणं : नमिपव्वज्जा**  
**नवम अध्ययन : नमिप्रव्वज्जा**  
**Chapter-9 : THE INITIATION OF NAMI**

चइरुण देवलोगाओ, उववन्नो माणुसंमि लोगमि।  
 उवसन्त-मोहणिज्जो, सरई पोरणियं जाइं ॥ १ ॥

देवलोक का अपना आयुष्य पूर्ण कर (नमि राजा) मानव लोक में उत्पन्न हुए। मोह उपशांत होने पर उन्हें पूर्वजन्म की स्मृति-जातिस्मरण ज्ञान हुआ ॥ १ ॥

On completion of his life-span in the divine realm (king Nami) was reborn in the land of humans. On pacification of his deluding *karmas*, he remembered his past birth (*jati-smaran jnana*). (1)

जाइं सरित्तु भयवं, सहसंबुद्धो अणुत्तरे धम्मे।  
 पुत्तं ठवेत्तु रज्जे, अभिणिक्खमई नमी राया ॥ २ ॥

पूर्वजन्म का स्मरण हो जाने पर भगवान नमिराज स्वयं संबुद्ध हुये और अनुत्तर धर्म के परिपालन हेतु तत्पर होकर अपने पुत्र को राजसिंहासन पर बिठाकर अभिनिष्क्रमण किया ॥ २ ॥

On remembering his past birth king Nami became self-enlightened and after crowning his son he renounced the world in order to pursue the supreme spiritual path. (2)

से देवलोग-सरिसे, अन्तेउरवरगओ वरे भोए।  
 भंजित्तु नमी राया, बुद्धो भोगे परिच्चयईं ॥ ३ ॥

अपने अन्तःपुर में रहकर देवलोक के समान श्रेष्ठ भोगों को भोगकर नमिराज प्रतिबद्ध हुये और उन्होंने भोगों का परित्याग कर दिया ॥ ३ ॥

After enjoying divine-like exquisite pleasures and comforts of his palace king Nami became enlightened and renounced all pleasures and comforts. (3)

मिहिलं सपुरजणवयं, बलमोरोहं च परियणं सव्वं।  
 चिच्चां अभिनिक्खन्तो, एगन्तमहिट्ठओ भयवं ॥ ४ ॥

अपने पुर, जनपद, मिथिला नगरी, सेना, अन्तःपुर तथा समस्त परिजनों का परित्याग करके भगवान नमिराज ने अभिनिष्क्रमण किया और एकान्तवासी बने ॥ ४ ॥

Leaving his palace, kingdom of Mithila city, state, army, retinue and the entire family as well as relatives, venerable king Nami moved out and went into solitude. (4)

कोलाहलगभूयं, आसी मिहिलाए पव्वयन्तंमि।  
 तइया रायरिसिंमि, नमिमि अभिणिक्खमन्तंमि ॥ ५ ॥

जिस समय नमि राजर्षि अभिनिष्क्रमण करके प्रव्रजित हो रहे थे उस समय मिथिला नगरी में सर्वत्र बहुत कोलाहल हो रहा था ॥ ५ ॥



After the renunciation when sage Nami was getting initiated there was a lot of hue and cry all around Mithila city. (5)

अब्भुद्विठ्यं रायरिसिं, पव्वज्जा-ठाणमुत्तमं।

सक्को माहणरूवेण, इमं वयणमब्बवी— ॥ ६ ॥

उत्तम प्रव्रज्या स्थान (साधु पद) के लिए उद्यत नमि राजर्षि के पास शक्रेन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके आया और उसने नमि राजर्षि से इस प्रकार के वचन कहे— ॥ ६ ॥

Shakrendra (king of gods) in the guise of a Brahmin appeared before sage Nami when he was about to embrace the best type of initiation (ascetic status) and said to sage Nami as follows— (6)

‘किण्णु भो! अज्ज मिहिलाए, कोलाहलग-संकुला।

सुव्वन्ति दारुणा सद्दा, पासाएसु गिहेसु य?’ ॥ ७ ॥

हे राजर्षि! आज मिथिला नगरी के महलों में, घरों में, कोलाहलपूर्ण हृदय विदारक शब्द क्यों सुनने में आ रहे हैं? ॥ ७ ॥

Sage! Why the palaces and other houses in Mithila city resonate with heart rending ululating noise? (7)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ।

तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ ८ ॥

देवेन्द्र के इस प्रश्न को सुनकर तथा हेतु और कारण से प्रेरित होकर नमि राजर्षि ने इन्द्र से इस प्रकार कहा— ॥ ८ ॥

Hearing the words of the king of gods and stirred by logic and reason sage Nami spoke thus to Indra— (8)

‘मिहिलाए चेइए वच्छे, सीयच्छाए मणोरमे।

पत्त-पुप्फ-फलोवेए, बहूणं बहुगुणे सया ॥ ९ ॥

मिथिला नगरी में शीतल छाया वाला, मनोरम पत्र-पुष्प-फलों से युक्त, बहुतों (बहुत पक्षियों) के लिए उपकरक एक चैत्य वृक्ष था ॥ ९ ॥

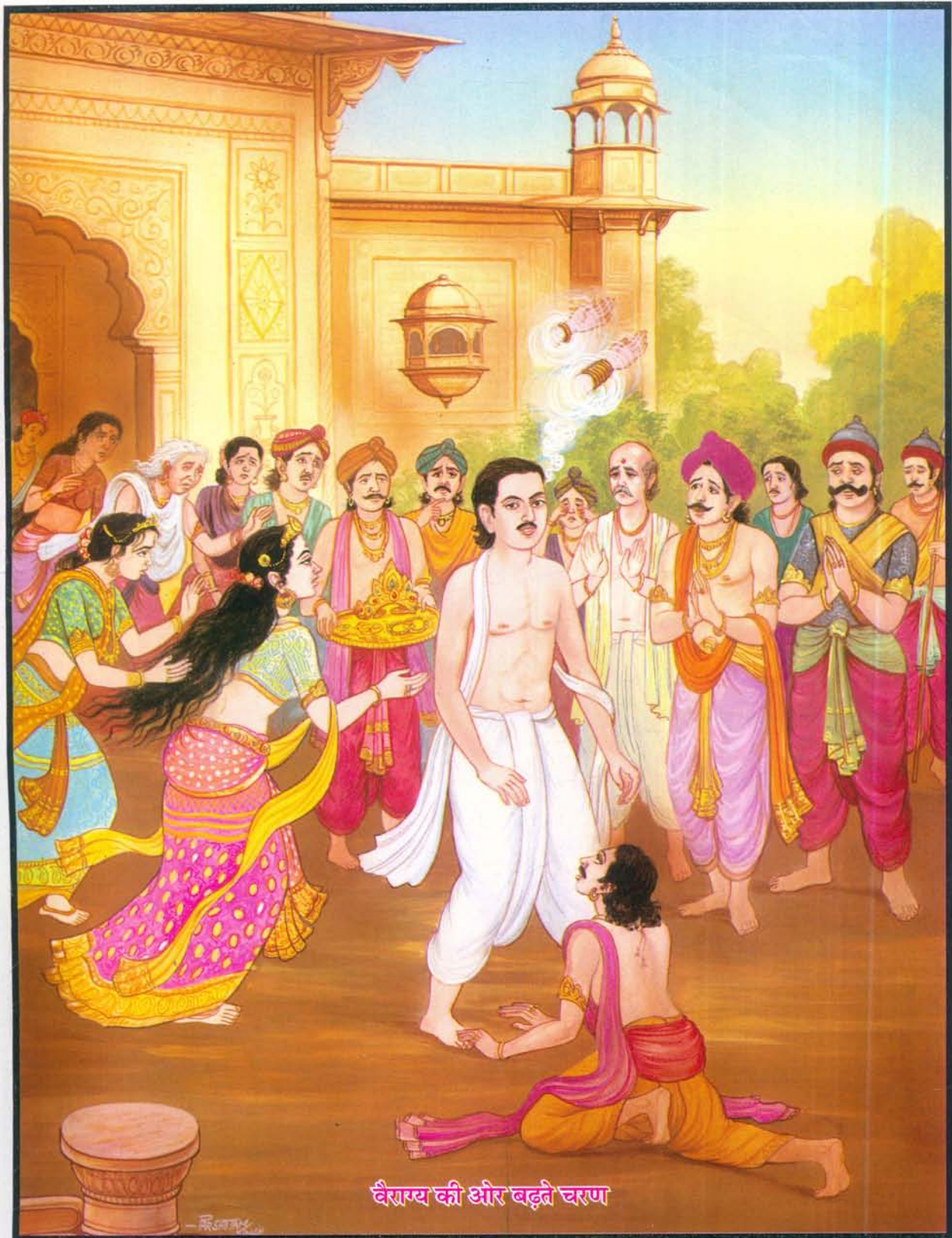
In the city of Mithila there was a sacred tree with cool shade, full of beautiful leaves-flowers-fruits and a shelter and support for many (birds). (9)

वाएण हीरमाणमि, चेइयमि मणोरमे।

दुहिया असरणा अत्ता, एए कन्दन्ति भो! खगा’ ॥ १० ॥

प्रचण्ड वायु के वेग से वह मनोरम चैत्य वृक्ष उखड़ गया। हे विप्र! उस वृक्ष के उखड़ जाने से दुःखी और अशरण ये पक्षी आक्रन्दन कर रहे हैं ॥ १० ॥

Now that pleasant sacred tree has been uprooted by stormy winds. O Brahmin! Grieved by the uprooting of that sacred tree these, now shelterless, birds are wailing. (10)



वैराग्य की ओर बढ़ते चरण

## वैराग्य पथ

एकत्वभाव से प्रबुद्ध होकर नमिराज ने राज्य, परिवार, वैभव, यहाँ तक कि अपने शरीर के वस्त्र-आभूषणों का भी त्याग कर वन की ओर प्रस्थान कर दिया। मंत्री, पुरोहित, सेनापति और रानियाँ आदि ने रोकने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वैराग्य की ओर बढ़ते दृढ़ चरण नहीं रुके।

—अध्ययन 9, सू. 3

## THE PATH OF RENUNCIATION

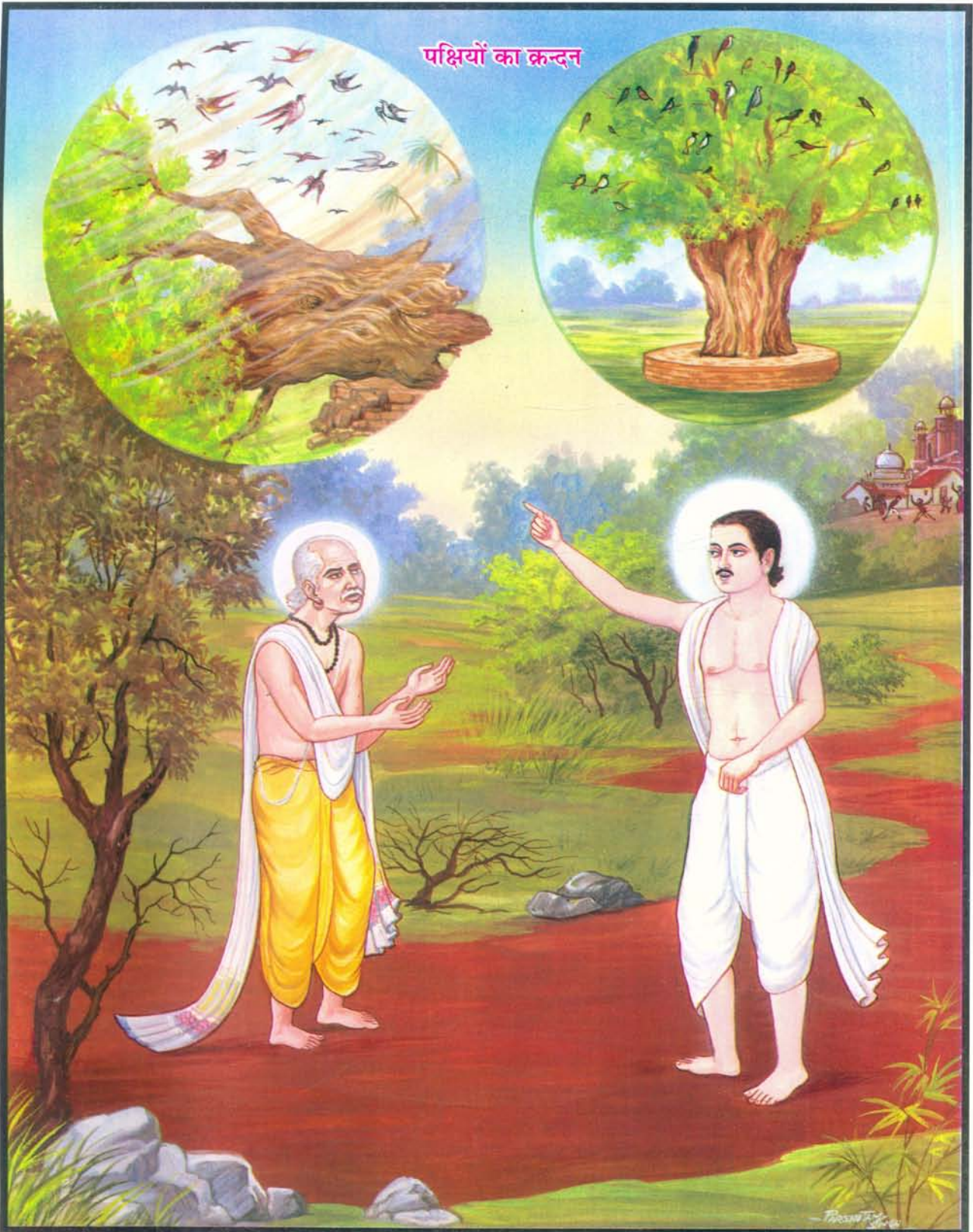
Enlightened by the feeling of oneness king Nami left for forest renouncing his kingdom, family, fortunes and even the costly costumes and ornaments on his body. Ministers, queens, commanders etc. tried their best to stop him but the steps leading to renunciation did not stop.

—Chapter 9, Aphorism 3





पक्षियों का क्रन्दन



## आश्रयहीन का क्रन्दन

प्रब्रज्या के लिये प्रस्तुत हुये नमि राजर्षि के सामने ब्राह्मण वेषधारी देवेन्द्र ने प्रश्न किया—आज मिथिला नगरी में हृदय विदारक कोलाहल क्यों सुनाई दे रहा है? नमि राजर्षि उत्तर देते हैं—एक विशाल चैत्य वृक्ष के ढह जाने से आश्रयहीन हुये पक्षी क्रन्दन कर रहे हैं; उसी का यह कोलाहल है।

—अध्ययन 9, सू. 9-10 .

## CRY OF THE SHELTER-LESS

The king of gods in the guise of a Brahmin asked the king Nami, who was about to get initiated,— why there is heart rending uproar in Mithila city today? Sage Nami replied – A huge tree has fallen down, so the unsheltered birds are crying; that is why this uproar.

—Chapter 9, Aphorism 9-10





एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।

तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ ११ ॥

नमि राजर्षि का यह उत्तर सुनकर तथा हेतु और कारण से प्रेरित होकर ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा— ॥ ११ ॥

Hearing sage Nami's answer, the king of gods spoke thus on the basis of his reason and logic— (11)

‘एस अग्गी य वाऊ य, एयं डज्जइ मन्दिरं ।

भयवं ! अन्नेउरं तेणं, कीस णं नावपेक्खसि?’ ॥ १२ ॥

भगवन्! अग्नि और वायु से आपका महल तथा अंतःपुर जल रहा है। आप इसकी ओर क्यों नहीं देखते? ॥ १२ ॥

O revered sage! Due to fire and air your palace with its inner parts is burning. Why do you not even look at that? (12)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।

तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ १३ ॥

विप्र वेशधारी इन्द्र के इस प्रश्न को सुनकर तथा हेतु और कारण से प्रेरित होकर नमि राजर्षि ने इन्द्र को इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ १३ ॥

Hearing this question from Indra disguised as a Brahmin and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (13)

‘सुहं वसामो जीवामो, जेसिं मो नत्थि किंचणं ।

मिहित्ताए डज्जमाणीए, न मे डज्जइ किंचणं ॥ १४ ॥

जिसके पास अपना कुछ भी नहीं है, ऐसा मैं सुख से जीता हूँ। मिथिला के जलने में मेरा कुछ भी नहीं जलता ॥ १४ ॥

I, who has nothing to call my own, live happily. If Mithila is on fire nothing burns that is mine. (14)

चत्तपुत्तकलत्तस्स निव्वावारस्स भिक्खुणो ।

पियं न विज्जई किंचि, अप्पियं पि न विज्जए ॥ १५ ॥

गृह व्यापार से मुक्त तथा स्त्री-पुत्र के त्यागी श्रमण को न कोई वस्तु प्रिय होती है और न अप्रिय ही होती है ॥ १५ ॥

For a sage, who is free from household affairs and has renounced wife and sons, there is nothing that is dear or repugnant to him. (15)

बहुं खु मुणिणो भहं, अणगारस्स भिक्खुणो ।

सव्वओ विप्पमुक्कस्स, एगन्तमणुपस्सओ ॥ १६ ॥



‘समस्त संयोगों से मुक्त और एकान्तदर्शी-आत्मदर्शी मैं अकेला ही हूँ’, इस प्रकार की भावना वाले अनगर भिक्षु के लिये सुख ही सुख है ॥ १६ ॥

‘Free from all worldly ties I see myself alone (an introvert absorbed in his soul)’, for such a homeless ascetic every moment is a happy moment. (16)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।

तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ १७ ॥

नमि राजर्षि के इस उत्तर को सुनकर तथा हेतु कारण से प्रेरित होकर इन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा— ॥ १७ ॥

Hearing sage Nami’s answer, the king of gods, on the basis of his reason and logic, spoke thus to the sage— (17)

‘पागारं कारइत्ताणं, गोपुरट्टालगाणि य।

उस्सूलग-सयग्घीओ, तओ गच्छसि खत्तिया!’ ॥ १८ ॥

हे क्षत्रिय! पहले नगर का परकोटा, द्वार, अट्टालिकाएँ, नगर की खाई तथा शतघ्नी (सौ पुरुषों का एक साथ वध कर सके, ऐसी तोप) का निर्माण कराओ, उसके बाद प्रव्रज्या लेना ॥ १८ ॥

O Kshatriya (of warrior caste)! First erect a boundary wall around the city, gates, mansions, a surrounding moat and a *shataghni* (cannon that can kill hundred warriors in one shot); get initiated only after that. (18)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ।

तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ १९ ॥

देवेन्द्र के यह वचन सुनकर तथा हेतु कारण से प्रेरित होकर नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से कहा— ॥ १९ ॥

Hearing these words from Indra and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (19)

‘सद्धं नगरं किच्चा, तवसंवरमगलं।

खन्तिं निउणपागारं, तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥ २० ॥

श्रद्धारूपी नगर, तप-संयम की अर्गला-साँकल, क्षमा का परकोटा और तीनों गुप्तियों (मन-वचन-काय गुप्ति) की बुर्ज, खाई और शतघ्नी से सुरक्षित, अजेय बनाकर— ॥ २० ॥

Making faith his city, austerity and restraint its bolts (of the city gate), forgiveness its rampart and making it secure and invincible with the help of three restraints (mental, vocal and bodily) as tower, moat and cannon— (20)

धणु परक्कमं किच्चा, जीवं च ईरियं सया।

धिइं च केयणं किच्चा, सच्चेण पलिमन्थए ॥ २१ ॥

पराक्रम को धनुष तथा ईर्या समिति को उस धनुष की प्रत्यंचा (डोर), धृति को उसकी मूठ तथा सत्य से उसे बाँधकर— ॥ २१ ॥



Creating a bow of spiritual prowess, careful movement its string, steadiness its grip and truth the tying cord— (21)

तवनारायजुत्तेण, भेत्तूणं कम्मकंचुयं ।  
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए' ॥ २२ ॥

तपरूपी बाण से युक्त उस धनुष के द्वारा कर्म-कवच को छिन्न-भिन्न कर, अन्तर्युद्ध में विजय प्राप्त कर मुनि संसार-भ्रमण से मुक्त हो जाता है ॥ २२ ॥

Shattering the armour of *karmus* with the arrow of austerities loaded on such a bow and winning this spiritual war, the ascetic gets liberated from the cycles of rebirth. (22)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।  
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ २३ ॥

नमि राजर्षि के इस उत्तर को सुनकर, हेतु और कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा— ॥ २३ ॥

Hearing sage Nami's answer, the king of gods, on the basis of his reason and logic, spoke thus to the sage— (23)

'पासाए कारइत्ताणं, वद्धमाणगिहाणि य ।  
वालगपोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया !' ॥ २४ ॥

हे क्षत्रिय! प्रासाद, वर्द्धमान गृह, चन्द्रशालाएँ (सरोवर के मध्य निर्मित छोटा महल, जलमहल या हवामहल) बनवाओ, तदुपरान्त दीक्षा ग्रहण करना ॥ २४ ॥

O Kshatriya! Erect palaces, exquisite mansions (*vardhaman griha*) and turrets or water-palaces (*chandrashala*) and then only get initiated. (24)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।  
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ २५ ॥

इस कथन को सुनकर हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से कहा— ॥ २५ ॥

Hearing these words from Indra and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (25)

'संसयं खलु सो कुणई, जो मग्गे कुणई घरं ।  
जत्थेव गन्तुमिच्छेज्जा, तत्थ कुब्बेज्ज सासयं' ॥ २६ ॥

जिसके मन में शंका होती है, वही मार्ग में घर का निर्माण करता है। जहाँ जाने की इच्छा हो, वहीं अपना शाश्वत-स्थायी निवास बनाना चाहिये ॥ २६ ॥

Only those who are apprehensive erect a house when on the way. One should make his eternal home only where he finally desires to go. (26)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।  
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ २७ ॥

इस उत्तर को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित इन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा— ॥ २७ ॥



Hearing sage Nami's answer, the king of gods, on the basis of his reason and logic, spoke thus to the sage— (27)

'आमोसे लोमहारे य, गंठिभेए य तक्करे ।  
नगरस्स खेमं काऊणं, तओ गच्छसि खत्तिया !' ॥ २८ ॥

हे क्षत्रिय! तुम लुटेरों, प्राणघातक दस्युओं, हत्यारों, गिरहकटों और चोरों-तस्करों से नगर को सुरक्षित करके तदुपरान्त श्रमणत्व धारण कर लेना ॥ २८ ॥

O Kshatriya! First you secure your city against robbers, murdering dacoits, killers, pick-pockets, thieves and smugglers and then only get initiated. (28)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।  
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ २९ ॥

इन्द्र के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने देवेन्द्र से कहा— ॥ २९ ॥

Hearing these words from Indra and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (29)

'असइं तु मणुस्सेहिं, मिच्छादण्डो पजुंजई ।  
अकारिणोऽथ बज्झन्ति, मुच्चई कारगो जणो' ॥ ३० ॥

मनुष्यों के द्वारा कई बार गलत दण्ड का भी प्रयोग किया जाता है। निर्दोष दण्डित हो जाते हैं और अपराधी साफ छूट जाते हैं ॥ ३० ॥

Sometimes men employ punishment wrongly. Innocents are punished while the criminals cleanly escape. (30)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।  
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ ३१ ॥

इस उत्तर को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से इस प्रकार कहा— ॥ ३१ ॥

Hearing sage Nami's answer, the king of gods, on the basis of his reason and logic, spoke thus to the sage— (31)

'जे केई पत्थिवा तुब्भं, नाऽऽनमन्ति नराहिवा ।  
वसे ते ठावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया!' ॥ ३२ ॥

हे राजन् ! जो राजा तुम्हारे समक्ष झुकते नहीं, उन पर विजय प्राप्त करके वश में करो तब प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना ॥ ३२ ॥

O King! First conquer the rulers who have still not submitted to you and then only get initiated. (32)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।  
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ ३३ ॥

देवेन्द्र के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने इन्द्र से कहा— ॥ ३३ ॥



Hearing these words from Indra and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (33)

‘जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।  
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥ ३४ ॥

दुर्जय संग्राम में जो दस लाख योद्धाओं को जीत लेता है उसकी अपेक्षा सच्चा वीर वही है जो अपनी आत्मा को जीत लेता है। आत्मविजय ही सच्ची विजय है ॥ ३४ ॥

As compared to a fighter who wins thousands and thousands of warriors in a tough battle, he who conquers his soul is the real brave. Conquering one's soul is, indeed, the real victory. (34)

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ?  
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥ ३५ ॥

स्वयं अपनी आत्मा से ही युद्ध करना चाहिये, बाह्य युद्ध से क्या लाभ है? आत्मा से आत्मा को जीतने पर ही सच्चा सुख प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥

One should fight his own soul. What is the use of an external battle? True happiness is gained by winning one's soul through one's own endeavour. (35)

पंचिन्द्रियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोहं च ।  
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वं अप्पे जिए जियं ॥ ३६ ॥

पाँचों इन्द्रियों, क्रोध, मान, माया, लोभ और मन—ये सभी दुर्जेय हैं। एक अपनी आत्मा को जीत लेने से इन सब पर विजय प्राप्त हो जाती है ॥ ३६ ॥

Five senses (hearing, sight, smell, taste and touch), anger, conceit, deceit and greed (four passions) and mind, all these (ten) are difficult to conquer. However, by winning over one's soul, all these are conquered automatically. (36)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।  
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ ३७ ॥

नमिं राजर्षि के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमिं राजर्षि से इस प्रकार कहा— ॥ ३७ ॥

Hearing sage Nami's answer, the king of gods, on the basis of his reason and logic, spoke thus to the sage— (37)

‘जइत्ता विउले जन्ने, भोइत्ता समणमाहणे ।  
दच्चा भोच्चा य जिट्ठा य, तओ गच्छसि खत्तिया! ॥ ३८ ॥

हे क्षत्रिय! पहले तुम विशाल यज्ञ करो, श्रमण और माहनों को भोजन कराओ, दान दो, भोगों को भोगो और फिर स्वयं यज्ञ करके साधु होना ॥ ३८ ॥



O Kshatriya! Organize an elaborate yajna (religious sacrifice according to Vedic tradition), feed Shramans (ascetics) and Brahmins, give alms to them, enjoy the ceremonies and perform yajna yourself and then only become an ascetic. (38)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।

तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ ३९ ॥

इन्द्र के इस कथन को सुन और हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने इन्द्र से कहा— ॥ ३९ ॥

Hearing these words from Indra and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (39)

‘जो सहस्सं सहस्साणं, मासे मासे गवं दए ।

तस्सावि संजमो सेओ, अदिन्तस्स वि किंचण’ ॥ ४० ॥

जो मानव प्रति मास दस लाख गायें दान देता है उसके लिये भी संयम श्रेयस्कर है—कल्याणकारी है, चाहे वह कुछ भी दान न दे ॥ ४० ॥

As compared to one who donates thousands and thousands of cows every month, he who observes restrain is, indeed, superior even though he has nothing to donate. (40)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।

तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ ४१ ॥

राजर्षि के इस अर्थ को सुनकर, हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने नमि राजर्षि से कहा— ॥ ४१ ॥

Hearing sage Nami's answer, the king of gods, on the basis of his reason and logic, spoke thus to the sage— (41)

‘घोरासमं चइत्ताणं, अन्नं पत्थेसि आसमं ।

इहेव पोसहरओ, भवाहि मणवाहिवा!’ ॥ ४२ ॥

हे नराधिप! तुम घोराश्रम-गृहस्थाश्रम को छोड़कर अन्य आश्रम (संन्यास) की इच्छा कर रहे हो (यह अनुचित है)। इसी गृहस्थाश्रम में रहकर पोषधरत हो जाओ ॥ ४२ ॥

Renouncing the most difficult life-order (life as a householder), you wish to enter another life-order (ascetic life), (which is not proper for you). Remain a householder and observe the partial-ascetic vow (*paushadha*). (42)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।

तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ ४३ ॥

देवेन्द्र के इस कथन को सुन, हेतु-करण से प्रेरित नमि राजर्षि ने उससे कहा— ॥ ४३ ॥

Hearing these words from Indra and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (43)

‘मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए ।

न सो सुयक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं’ ॥ ४४ ॥





अज्ञानी तपस्वी एक-एक मास की तपस्या करके पारणे में कुशाग्र-कुश की नोंक पर आये उतना ही भोजन करता है उसका वह घोर तप भी सु-आख्यात-तीर्थकरों द्वारा प्ररूपित श्रमण धर्म की तुलना में सोलहवीं कला-अंश के बराबर भी नहीं है ॥ ४४ ॥

The harsh penance of an ignorant hermit, who observes a month long fast and breaks his fast with so meager a quantity of food that it can rest on the tip of grass, does not equal the sixteenth part of the *Shraman Dharma* (ascetic order) propagated by *Tirthankaras*. (44)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।

तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ ४५ ॥

नमि राजर्षि का यह अर्थ सुनकर तथा हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने उनसे कहा— ॥ ४५ ॥

Hearing sage Nami's answer, the king of gods, on the basis of his reason and logic, spoke thus to the sage— (45)

‘हिरण्णं सुवण्णं मणिमुत्तं, कंसं दूसं च वाहणं ।

कोसं वड्ढावड्ढत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया!’ ॥ ४६ ॥

हे क्षत्रिय! चाँदी, सोना, मणि, मोती, काँसे के बर्तन, वस्त्र, वाहन तथा कोष को बढ़ाकर उसके उपरान्त प्रव्रजित होना ॥ ४६ ॥

O Kshatriya! Multiply the stock of your silver, gold, gems, pearls, bronze (utensils), dresses, vehicles and treasure and then only you get initiated. (46)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ ।

तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ ४७ ॥

देवेन्द्र के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित नमि राजर्षि ने उससे कहा— ॥ ४७ ॥

Hearing these words from Indra and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (47)

सुवण्ण-रुप्पस उ पव्वया भवे, सिया हु केलाससमा असंखया ।

नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि, इच्छा उ आगाससमा अणन्तिया ॥ ४८ ॥

कैलाश के समान स्वर्ण और चाँदी के असंख्य पर्वत भी हों, किन्तु उनसे भी लोभी व्यक्ति की बिल्कुल भी तृप्ति नहीं होती क्योंकि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं ॥ ४८ ॥

If there are innumerable mountains of gold and silver, as vast and high as Kailash mountain, even then the greedy person cannot get a bit of contentment because the desires are infinite—as vast as the space. (48)

पुढवी साली जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह ।

पडिपुण्णं नालमेगस्स, इइ विज्जा तवं चरे ॥ ४९ ॥

समस्त पृथ्वी, चावल, जौ तथा अन्य धान्य, पशु और स्वर्ण-ये सभी एक व्यक्ति की भी इच्छा पूरी नहीं कर सकते-यह जानकर तप का आचरण करे ॥ ४९ ॥



The whole earth, with its crops of rice, barley and other serials along with cattle and gold all combined, cannot satisfy the ambition of even a single man. Knowing this, one should practice austerities. (49)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊकारण-चोइओ।  
तओ नमिं रायरिसिं, देविन्दो इणमब्बवी— ॥ ५० ॥

नमि राजर्षि के इस कथन को सुन, हेतु-कारण से प्रेरित देवेन्द्र ने उनसे कहा— ॥ ५० ॥

Hearing sage Nami's answer, the king of gods, on the basis of his reason and logic, spoke thus to the sage— (50)

'अच्छेरगमब्भुदए, भोए चयसि पत्थिवा!  
असन्ते कामे पत्थेसि, संकप्पेण विहन्नसि' ॥ ५१ ॥

हे पृथ्वीनाथ! आश्चर्य है कि अभ्युदय काल में प्रत्यक्ष प्राप्त भोगों का तो त्याग कर रहे हो और अप्राप्त भोगों की इच्छा कर रहे हो; तुम अपने संकल्प से ही प्रताड़ित हो रहे हो ॥ ५१ ॥

O Lord of the land! It is surprising that during the prime of your life you are renouncing the available pleasures and comforts and seeking those that are not available or non-existent; you are, in fact, suffering due to your own resolve. (51)

एयमट्ठं निसामित्ता, हेऊ कारण-चोइओ।  
तओ नमी रायरिसी, देविन्दं इणमब्बवी— ॥ ५२ ॥

देवेन्द्र के इस कथन को सुन और हेतु-कारण से प्रेरित हो नमि राजर्षि इन्द्र से कहते हैं— ॥ ५२ ॥

Hearing these words from Indra and stirred by logic and reason sage Nami answered to Indra thus— (52)

'सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा।  
कामे पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइं ॥ ५३ ॥

जगत् के कामभोग शल्य हैं, विष हैं और आशीविष सर्प के समान हैं। जो लोग कामभोगों की इच्छा तो रखते हैं लेकिन किसी कारणवश भोग नहीं पाते, वे भी दुर्गति में जाते हैं ॥ ५३ ॥

The mundane and carnal pleasures are thorns, poison and are like a snake with venomous fangs. Even those who hanker for these but are unable to enjoy for some reason end up in misery (lower rebirth). (53)

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई।  
माया गईपडिग्घाओ, लोभाओ दुहओ भयं' ॥ ५४ ॥

क्रोध से नीच गति और मान से अधम गति की प्राप्ति होती है तथा छल-कपट-माया सुगति को रोक देती है और लोभ से इस लोक तथा परलोक-दोनों में भय होता है ॥ ५४ ॥

Anger leads to mean existence, conceit leads to meanest existence, deceit obstructs the progress of noble existence and greed begets fear in both the worlds (this life and the next). (54)



अवउज्झिऊण माहणरूवं, विउव्विऊण इन्दत्तं ।

वन्दइ अभित्थुणन्तो, इमाहि महुराहिं वग्गूहिं— ॥ ५५ ॥

विप्ररूप को त्यागकर देवेन्द्र अपने वास्तविक रूप में आया तथा मधुर और प्रशस्त वचनों से नमि राजर्षि की वन्दना करता हुआ कहने लगा— ॥ ५५ ॥

Shedding the disguise as a Brahmin, the king of gods, appeared in his real form. After bowing and paying homage to sage Nami in sweet and illustrious terms he said— (55)

‘अहो ! ते निज्जओ कोहो, अहो ! ते माणो पराजिओ ।

अहो ! ते निरक्किया माया, अहो ! ते लोभो वसीकओ ॥ ५६ ॥

अहो! तुमने क्रोध पर विजय प्राप्त की। अहो! तुमने मान को पराजित कर दिया। अहो! तुमने छल-कपट-माया को दूर कर दिया। अहो! तुमने लोभ को वश में कर लिया ॥ ५६ ॥

Great! You have conquered anger. Great! You have defeated conceit. Great! You have wiped off deceit. Great! You have subjugated greed. (56)

अहो! ते अज्जवं साहु, अहो! ते साहु महवं ।

अहो! ते उत्तमा खन्ती, अहो! ते मुत्ति उत्तमा ॥ ५७ ॥

अहो! तुम्हारा आर्जव उत्तम है। अहो! तुम्हारा मार्दव उत्तम है। तुम्हारी क्षमा और निर्लोभता उत्तम है ॥ ५७ ॥

Great! Your simplicity is commendable and so is your humbleness. Great! Your forgiveness is lofty and so is your freedom from attachment (greed). (57)

इहं सि उत्तमो भन्ते!, पेच्चा होहिसि उत्तमो ।

लोगत्तमुत्तमं ठणं, सिद्धिं गच्छसि नीरओ’ ॥ ५८ ॥

भगवन्! आप इस लोक में भी उत्तम हैं और परलोक में उत्तम होंगे। कर्म-मल से रहित होकर आप लोक में उत्तमोत्तम स्थान-सिद्ध-स्थान को प्राप्त करेंगे ॥ ५८ ॥

O venerable! You are excellent in this world (birth) and so would you be in the next world (birth). Getting free of the slime of *karma* you will attain the loftiest abode of liberation, the state of perfection (*Siddhi*). (58)

एवं अभित्थुणन्तो, रायरिसिं उत्तमाए सद्धाए ।

पयाहिणं करन्तो, पुणो पुणो वन्दई सक्को ॥ ५९ ॥

इस प्रकार देवेन्द्र-शक्रेन्द्र ने उत्तम श्रद्धा से नमि राजर्षि की स्तुति और प्रदक्षिणा की और बार-बार वन्दना की ॥ ५९ ॥

Thus Indra praised and circumabulated the sage with profound faith and offered salutations repeatedly. (59)



तो वन्दिरुण पाए, चक्कंकुसलक्खणे मुणिवरस्स।

आगासेणुप्पइओ, ललियचवलकुंडलतिरीडी ॥ ६० ॥

तत्पश्चात् नमि मुनिराज के चक्र और अंकुश के लक्षणों से युक्त पाद-पद्मों की वन्दना करके ललित तथा चपल कुण्डल और मुकुट धारण किये हुये देवराज शक्रेन्द्र आकाश में ऊपर चला गया ॥ ६० ॥

After that, bowing down at sage Nami's lotus-feet having marks of wheel and goad (hook), the king of gods, adorned with dangling earrings and crown, rose high in the sky. (60)

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।

चइऊण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठओ ॥ ६१ ॥

राजर्षि नमि ने अपनी आत्मा को आत्म-भावों में विनत किया, साक्षात् इन्द्र द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी धर्म से विचलित नहीं हुए, गृह तथा विदेह देश की राज्यलक्ष्मी को त्याग कर श्रामण्य भाव में स्थिर रहे ॥ ६१ ॥

Sage Nami submerged himself into his soul. In spite of being dissuaded by Shakrendra himself he did not waver from his duty (ascetic code). Renouncing his home and the kingdom of Videh, he remained steadfast in his ascetic state. (61)

एवं करेन्ति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा।

विणियद्वन्ति भोगेसु, जहा से नमी रायरिसी ॥ ६२ ॥

—त्ति बेमि।

संबुद्ध, पण्डित, प्रविचक्षण साधक ऐसा ही आचरण करते हैं; नमि राजर्षि के समान कामभोगों से निवृत्त होकर आत्म-साधना में निरत होते हैं ॥ ६२ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

The enlightened, scholarly and proficient aspirants follow the same conduct; like sage Nami they renounce mundane pleasures and comforts and get engrossed in spiritual practice. (62)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ७—साधारण मकान गृह होता है। सात या उससे अधिक मंजिलों का भवन प्रासाद कहलाता है। अथवा देवमन्दिर और राजभवन प्रासाद कहलाते हैं। (वृहद् वृत्ति)

गाथा ८—'हेतु'-साध्य के अभाव में जिसका अभाव निश्चित हो, उसे हेतु कहते हैं। उसका प्रयोग इस प्रकार है—जैसे कि इन्द्र कहता है—“तुम्हारा अभिनिष्क्रमण अनुचित है, क्योंकि तुम्हारे अभिनिष्क्रमण के कारण समूचे नगर में हृदयद्रावक कोलाहल हो रहा है।” पहला अंश प्रतिज्ञा वचन है, अतः वह पक्ष है। दूसरा वचन हेतु है, जो अभिनिष्क्रमण के अनौचित्य को सिद्ध करता है।

कारण—जिसके अभाव में कार्य की उत्पत्ति किसी भी प्रकार सम्भव न हो, अर्थात् जो नियत रूप से कार्य का पूर्ववर्ती हो, उसे कारण कहते हैं। जैसे धूम्र रूप कार्य का पूर्ववर्ती कारण अग्नि है। इस प्रसंग में इन्द्र ने जो कहा कि “(यदि) तुम अभिनिष्क्रमण नहीं करते, तो इतना हृदयद्रावक कोलाहल नहीं होता।” इसमें कोलाहल कार्य है, अभिनिष्क्रमण उसका कारण है। (सुखबोधवृत्ति)

गाथा २४—मूल “पोसह” शब्द के श्वेताम्बर साहित्य में “पोषध” तथा “प्रोषध” दोनों संस्कृत रूपान्तर मिलते हैं। दिगम्बर साहित्य में इसे “प्रोषध” और बौद्ध साहित्य में “उपोसथ” कहते हैं। शान्त्याचार्य ने पोषध की व्युत्पत्ति की है—“धर्म के पोष अर्थात् पुष्टि को धारण करने वाला व्रतविशेष—“पोष धर्मपुष्टि विधते।” (वृ. वृ.)

बौद्ध परम्परा में (अंगुत्तर निकाय, भा. १, पृ. २१२) के अनुसार प्रत्येक पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और पंचदशी (पूर्णिमा और अमावस्या) को उपोसथ होता है। उपोसथ में प्राणियों की हिंसा, चोरी, मैथुन और मृषावाद का त्याग होता है। रात्रि में भोजन नहीं किया जाता। दिन में भी विकाल में एक बार ही भोजन होता है। माला, ग्रन्थ आदि का उपयोग नहीं किया जाता है।

## IMPORTANT NOTES

**Verse 7**—Ordinary building is called house. A building with seven or more storeys is called *praasaad* or mansion. Temples and palaces are also called *praasaad*. (*Vrihad Vritti*)

**Verse 8**—*Hetu*—That which becomes meaningless in absence of inference is called *hetu* (reason). For example, the king of gods says—“Your renunciation is not proper, because by that heart rending uproar is taking place.” The first portion of this sentence is a statement of proposition that is to be proved, so it is one side of the argument. The second sentence is the reason which proves the impropriety of renunciation.”

**Kaaran**—In absence of which there is no possibility of an action; in other words, that which essentially precedes an action is called *Kaaran* (cause). For example, fire is the preceding cause of smoke. In the present context—The king of gods says—“Had you not renounced, so much heart rending uproar would not have taken place.” Here the uproar is the effect and renouncing is its cause. (*Sukhabodha Vritti*)

**Verse 24**—*Poshadh* and *proshadh*, both these Sanskrit renderings of the Prakrit term *posaham* are found in Shvetambar texts. In Digambar literature only *proshadh* is found and in Buddhist literature it is *uposatha*. Shantiyacharya has given the grammatical derivation of *poshadh* as—The vow, which enriches *dharma* (religious duty) is called *poshadh*. (*posha dharmapushti vidhate*) (V.V.)

According to Buddhist tradition (*Anguttara Nikaya*, Vol., I, p. 212) on eighth, tenth and fifteenth days of every fortnight of lunar month *uposath* is observed. In this violence towards living beings, falsity, stealing and sexual intercourse are renounced, also eating during the night is abandoned. Even during the day only one meal is taken at odd hours. Books, rosary and the like are also not used.



## दशम अध्ययन : द्रुमपत्रक

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम द्रुमपत्रक (संस्कृत-द्रुमपत्रक) इसकी प्रथम गाथा के प्रथम शब्द के आधार पर रखा गया है।

इससे पूर्व नौवें अध्ययन में श्रमण संस्कृति द्वारा अनुमोदित आध्यात्मिक स्वर मुखर हुआ था। इस दसवें अध्ययन में साधक को जागरूक रहने और जीवन के प्रत्येक क्षण के सदुपयोग की प्रेरणा दी गई है। वृक्ष के पके हुए श्वेत-पीत पत्र को आधार बनाकर साधकों को जीवन की नश्वरता का बोध देकर अप्रमाद की प्रेरणा दी है।

यद्यपि भगवान महावीर प्रत्यक्ष रूप से गौतम गणधर को संबोधित करते हुये कहते हैं कि हे गौतम! एक क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो। किन्तु यह उद्बोधन श्रमण अथवा श्रावक सभी साधकों के लिये है।

मानव-जीवन की नश्वरता के प्रतिपादन के साथ पाँचों एकेन्द्रिय स्थावरकार्यों, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय त्रसकाय के जीवों की कायस्थिति और आयुस्थिति भी बताई गई है। पंचेन्द्रिय जीवों की आयु का भी वर्णन है।

इस वर्णन का अभिप्राय यह है कि यदि वर्तमान मानव-जीवन में मुक्ति प्राप्त नहीं की तो अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा।

मनुष्य गति में भी अनेक विघ्न-बाधाओं, रोगों, आतंकों का वर्णन करके कहा गया है कि शरीर दिन-दिन क्षीण हो रहा है अतः प्रमाद को जीवन में स्थान मत दो। शीघ्रातिशीघ्र अपने लक्ष्य-मुक्ति को प्राप्त करो।

अप्रमाद का प्रबल प्रेरक यह एक अध्ययन ही वैराग्य ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठापित हो सकता है।

इस अध्ययन की भाषा सुललित और हृदयहारिणी है। शैली की प्रवाहशीलता में प्रवहण करता हुआ साधक (पाठक) वैराग्य भावों में सराबोर हो जाता है।

नियुक्ति, चूर्ण आदि के अनुसार इस अध्ययन की पृष्ठभूमि में गौतम गणधर की खिन्नता बताई गई है। उस खिन्नता का कारण कई घटनाएँ थीं। सभी घटनाएँ 'उत्तराध्ययन महिमा' में संकलित हैं। पाठक वहाँ देखें।

गौतम की खिन्नता का प्रमुख कारण उन्हें केवलज्ञान की उत्पत्ति न होना था जबकि उनके बाद प्रव्रजित हुए अनेक साधु केवली बन चुके थे। गौतम को केवलज्ञान न होने का प्रमुख कारण उनका भगवान के प्रति धर्म-स्नेह था। इसीलिए भगवान ने इस अध्ययन की २८वीं गाथा में गौतम को स्नेह बंधन को तोड़ने की पुरजोर प्रेरणा दी।

इस संपूर्ण अध्ययन में अप्रमाद, सतत जागरूकता, निर्लेपता, चारित्र और ज्ञान आराधना का स्वर गुंजायमान है। साधक की निर्दोष और सतत साधना के लिये यह अध्ययन महत्वपूर्ण प्रेरणा प्रदान करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३७ गाथाएँ हैं।



## DASHAM ADHYAYAN : DRUMAPATRAK

### Foreview

The title, Dumapattayam (*Drumapatrak*) of this chapter is based on the first word of the first verse.

In the preceding ninth chapter the spiritual trend supported by the Shraman culture was elaborated. In this chapter an aspirant is inspired to remain alert and rightly utilize every moment of life. Taking mature (about to fall) pale leaf of a tree as an example and edifying the aspirants about the mortal nature of life, inspiration is given to them to avoid stupor (*pramaad*).

Apparently Bhagavan Mahavir directly addresses only Gautam Ganadhar—'O Gautam! Avoid even a momentary stupor.' However, this message is meant for all aspirants, ascetics as well as householders.

Along with the description of transient nature of human life, life-span and body-duration of the five one-sensed immobile beings, two-sensed, three-sensed and four-sensed mobile beings have also been mentioned. The life-span of five-sensed beings has also been detailed.

The underlying idea of all this description is the fact that if one does not attain liberation during this human life then he will be trapped in the unending cycles of rebirth for all time.

Elaborating the impediments, obstacles, ailments and fears faced in human life, it has been established that every passing day the body is degenerating, therefore allow no space to stupor in life and try to attain your goal of liberation as soon as possible.

As this chapter carries strong inspiration for non-stupor it can well be promoted as a source book for detachment.

The language of this chapter is very charming and lucid. Moving with the flowing style the aspiring reader gets overwhelmed by feelings of detachment.

According to commentaries (*Niryukti, Churni* etc.) the background of this chapter is said to be the exasperation of Gautam Ganadhar. There were numerous incidents at the back of his vexation. All those incidents are compiled in the book *Uttaradhyayan Mahima*. Readers may refer to that.

The primary cause of Gautam's vexation was his inability to attain omniscience while many of his junior ascetics had been successful. The main cause for this inability to attain omniscience was his pious adoration for Bhagavan Mahavir. That is the reason Bhagavan Mahavir gave strong inspiration to shatter this bond of fondness to Gautam in the 28<sup>th</sup> verse of this chapter.

The whole chapter is impregnated with the theme of practicing non-stupor, constant alertness, non-attachment, right conduct and pursuit of knowledge. This chapter is full of inspiration for faultless and continued spiritual pursuit.

The chapter contains 37 verses.



दशमं श्रुज्झयणं : दुमपत्तयं  
दशम अध्ययन : दुमपत्रक  
Chapter-10 : THE TREE-LEAF

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।  
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए ॥ १ ॥

जिस प्रकार रात्रियाँ (समय) बीत जाने पर वृक्ष का पका हुआ पत्ता झड़ जाता है। उसी प्रकार मनुष्य का जीवन है। इसलिये हे गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत करो ॥ १ ॥

With passing of nights (time) the mature pale leaf of a tree gets shed; same is the fate of human life. Therefore, Gautam! Do not be negligent (in stupor or *pramaad*) even for a moment. (1)

कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लम्बमाणए।  
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए ॥ २ ॥

कुश (घास) के अग्र भाग (नोंक) पर चमकते हुये ओस-बिन्दु के समान यह मानव-जीवन क्षणिक है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २ ॥

This human life is ephemeral like a shining dew-drop on the tip of grass. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (2)

इइ इत्तरियम्मि आउए, जीवियए बहुपच्चवायए।  
विहुणाहि रयं पुरे कडं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ३ ॥

यह अल्पकालीन मनुष्य आयु भी बहुत से विघ्नों से भरी है और इसी में सम्पूर्ण कर्म-रज को झाड़ देना है। इसलिए हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ३ ॥

This short human life-span is filled with many impediments and this is all the time we have to shed the dust of *karmas*. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (3)

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिणं।  
गाढा य विवाग कम्मणो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ४ ॥

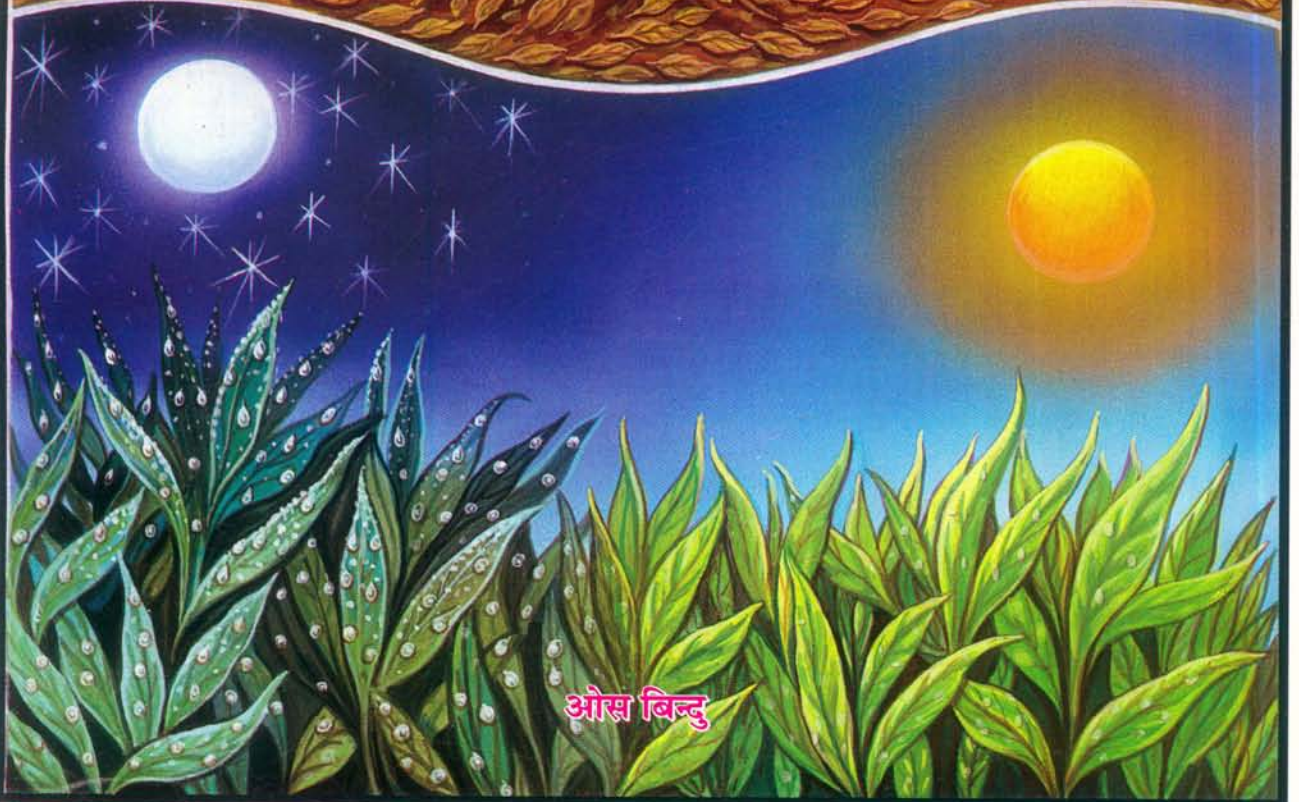
संसार के समस्त प्राणियों को चिरकाल से ही मनुष्य-जन्म की प्राप्ति बहुत दुर्लभ रही है और कर्मों का विपाक अत्यन्त सुदृढ़ तथा तीव्र है। इस कारण हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ४ ॥

For all (classes of) living beings the chance of human rebirth has been rare since time immemorial and the fruition of *karmas* is very strong and intense. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (4)





दुम पत्र



ओस बिन्दु

## जीवन की क्षणमंगुरता

- (1) यह जीवन वृक्ष के पत्ते की तरह नश्वर है। हरी-हरी कौंपलें (शिशुकाल) समय आने पर पीला पत्ता बनकर (जरा-जीर्ण होकर) झड़ जाती हैं।
- (2) कुश (डाभ) की नोंक पर टिकी हुई ओस की बूँदें कुछ समय तक मोती की भाँति चमककर धूप लगते ही सूख जाती हैं—ऐसा क्षणिक है मानव-जीवन।

—अध्ययन 10, सू. 1-2

## TRANSIENCE OF LIFE

- (1) This life is transient like leaves of a tree. The green sprouts (childhood) with passage of time turn to yellow leaves (old age) and fall down.
- (2) Dew-drops at the tip of grass shine like pearls for a few moments but as the rays of sun-light touch them, they dry up. So transient is human life.

—Chapter 10, Aphorism 1-2





पृथ्वीकायमङ्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ५ ॥

पृथ्वीकाय में उत्पन्न हुआ जीव, उसी काय में पुनः-पुनः जन्म-मरण करता हुआ, अधिकतम असंख्यातकाल तक पृथ्वीकाय में ही रहता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ५ ॥

A soul reborn in the genus of earth-bodied beings (*prithvi-kaya*) remains in the same genus for a maximum of uncountable period of time by getting reborn time and again. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (5)

आउक्कायमङ्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ६ ॥

जलकाय में उत्पन्न हुआ जीव, उसी काय में बार-बार जन्म-मरण करता हुआ, अधिकतम असंख्यातकाल तक रहता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ६ ॥

A soul reborn in the genus of water-bodied beings (*jala-kaya*) remains in the same genus for a maximum of uncountable period of time by getting reborn time and again. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (6)

तेउक्कायमङ्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ७ ॥

जो जीव तेजस्काय में उत्पन्न होता है, वह उसी काय में बार-बार जन्म-मरण करता हुआ, अधिक से अधिक संख्यातीत-असंख्यकाल तक उसी तेजस्काय में रहता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ७ ॥

A soul reborn in the genus of fire-bodied beings (*tejas-kaya*) remains in the same genus for a maximum of uncountable period of time by getting reborn time and again. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (7)

वाउक्कायमङ्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालं संखाईयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ८ ॥

वायुकाय में जो जीव उत्पन्न होता है, वह बार-बार वायुकाय में ही जन्म-मरण करता हुआ, अधिक से अधिक असंख्यकाल तक उसी वायुकाय में रहता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ८ ॥

A soul reborn in the genus of air-bodied beings (*vaayu-kaya*) remains in the same genus for a maximum of uncountable period of time by getting reborn time and again. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (8)

वणस्सङ्कायमङ्गओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।

कालमणन्तदुरन्तं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ९ ॥

वनस्पतिकाय में उत्पन्न हुआ जीव, बार-बार जन्म-मरण करता हुआ, उत्कृष्टतः दुरन्त अनन्तकाल तक उसी काय में रहता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ९ ॥



A soul reborn in the genus of plant-bodied beings (*vanaspati-kaya*) remains in the same genus for a maximum of infinite period of time by getting reborn time and again. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (9)

बेइन्द्रियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।  
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १० ॥

द्वीन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्यातकाल तक उसी काय में रहता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १० ॥

A soul reborn in the genus of two-sensed beings (*dvindriya-kaya*) remains in the same genus for a maximum of countable period of time by getting reborn time and again. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (10)

तेइन्द्रियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।  
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ११ ॥

त्रीन्द्रियकाय के जीवों की उत्कृष्टतः कायस्थिति संख्यातकाल तक की है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ११ ॥

A soul reborn in the genus of three-sensed beings (*trindriya-kaya*) remains in the same genus for a maximum of countable period of time by getting reborn time and again. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (11)

चउरिन्द्रियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।  
कालं संखिज्जसन्नियं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १२ ॥

चतुरिन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक संख्यातकाल तक उसमें रहता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १२ ॥

A soul reborn in the genus of four-sensed beings (*chaturindriya-kaya*) remains in the same genus for a maximum of countable period of time by getting reborn time and again. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (12)

पंचिन्द्रियकायमइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।  
सत्तट्ठ-भवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १३ ॥

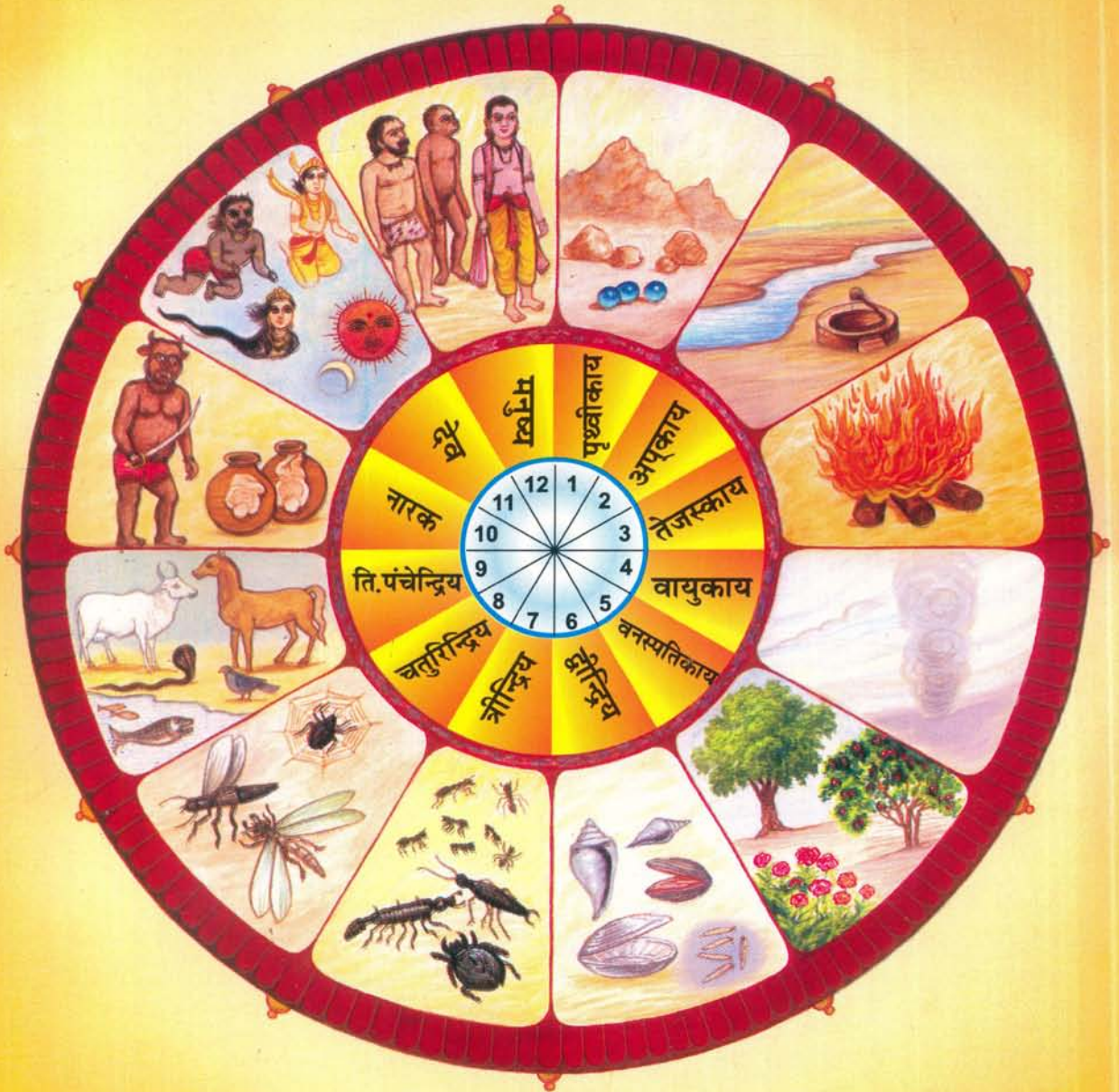
पंचेन्द्रियकाय में उत्पन्न हुआ जीव अधिक से अधिक सात या आठ बार तक उसी गति में जन्म-मरण कर सकता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १३ ॥

A soul reborn in the genus of five-sensed beings (*panchindriya-kaya*) can remain in the same genus, getting reborn for a maximum of seven or eight times. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (13)

देवे नेरइए य अइगओ, उक्कोसं जीवो उ संवसे ।  
इविकक्क भवग्गहणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १४ ॥

देव और नारकी जीव अधिक से अधिक उसी गति में एक बार ही जन्म लेते हैं। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १४ ॥

# संसार चक्र



## संसार चक्र

- (१) पृथ्वीकाय—पर्वत, मिट्टी, मणिरत्न आदि।
- (२) अप्काय—समुद्र, सरोवर, नदी, कूप, हिम आदि का जल।
- (३) अग्निकाय—सभी प्रकार की अग्नियाँ।
- (४) वायुकाय—अनेक प्रकार की हवा।
- (५) वनस्पतिकाय—वृक्ष, फूल, कन्द, मूल आदि।
- (६) द्वीन्द्रियकाय—शंख, सीप, कृमि आदि।
- (७) त्रीन्द्रियकाय—चींटी, मकोड़े आदि।
- (८) चतुरिन्द्रियकाय—मक्खी, मच्छर, मकड़ी आदि।
- (९) पंचेन्द्रियकाय—तिर्यच, पशु-गाय, घोड़ा आदि, पक्षी-कबूतर, चिड़िया आदि, जलचर-मछली आदि। उरपरिसर्प—सांप आदि। भुजपरिसर्प—नेवला आदि।
- (१०) नारक
- (११) देव—सूर्य, चन्द्र, ज्योतिष्क देव, वैमानिक देव, असुर, नागकुमार आदि।
- (१२) मनुष्य—आर्य अनार्य आदि। इस प्रकार संसार-चक्र में जीव सतत परिभ्रमण करता रहा है।

—अध्ययन 10, सू. 5-16

## THE CYCLES OF REBIRTH

- (1) Earth-bodied beings—mountain, sand, gemstones etc.;
- (2) Water-bodied beings—water of ocean, lake, river, well, ice etc.;
- (3) Fire-bodied beings—all kinds of fires and flames;
- (4) Air-bodied beings—various kinds of air;
- (5) Plant-bodied beings—trees, flowers, roots, etc.;
- (6) Two-sensed beings—conch-shell, mother of pearl, worms etc.;
- (7) Three-sensed beings—ants, small insects etc.;
- (8) Four-sensed beings—house-flies, mosquitoes, spiders etc.;
- (9) Five-sensed beings—animals—cows, horses etc., birds—pigeons, sparrows, etc., aquatic—fishes etc.;
- (10) Infernal beings;
- (11) Gods—Sun, Moon, Stellar Gods, *Vaimanik* Gods, *Asur*, *naagkumar* God etc.;
- (12) This way soul continuous to wander in the cycle of rebirth.

—Chapter 10, Aphorism 5-16



The divine and infernal-beings get reborn in the same genus only once. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (14)

एवं भव-संसारं, संसरइ सुहासुहेहि कम्पेहिं।  
जीवो पमाय-बहुलो, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १५ ॥

इस प्रकार प्रमाद की अधिकता वाला जीव, शुभाशुभ कर्मों के कारण जन्म-मरणरूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १५ ॥

Thus a soul lost in excessive stupor keeps on drifting in the world of cyclic rebirths due to meritorious and demeritorious *karmanas*. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (15)

लद्धूण वि माणुसत्तणं, आरिअत्तं पुणरावि दुल्लहं।  
बहवे दसुया मिलेक्खुया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १६ ॥

मनुष्य-जन्म पाने के बाद भी आर्यत्व की प्राप्ति और भी दुर्लभ है क्योंकि बहुत से मनुष्य दस्यु तथा प्लेच्छ भी होते हैं। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १६ ॥

Even on getting birth as a human it is still rare to gain nobleness since many men are bandits and ignoble also. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (16)

लद्धूण वि आरियत्तणं, अहीणपंचिन्दियया हु दुल्लहा।  
विगलिन्दियया हु दीसई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १७ ॥

आर्यत्व-प्राप्ति के उपरान्त भी पाँचों इन्द्रियों की परिपूर्णता-प्राप्ति और भी कठिन है; क्योंकि बहुत से आर्य भी परिपूर्ण इन्द्रियों वाले नहीं दिखाई देते। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १७ ॥

Even on gaining nobleness (or noble origin) it is difficult to have perfect development of all five sense organs since many nobles deprived of perfectly developed sense organs can also be seen. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (17)

अहीणपंचिन्दियत्तं पि से लहे, उत्तमधम्मसुई हु दुल्लहा।  
कुत्तिस्थिनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १८ ॥

पंचेन्द्रिय की परिपूर्णता प्राप्त होने पर भी उत्तम धर्म का श्रवण और भी कठिन है क्योंकि बहुत से मानव कुतीर्थिकों के उपासक होते हैं। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १८ ॥

Even on having perfectly developed five sense organs it is even tougher to be able to listen to the right religious tenets since there are also many men worshipping heretics. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (18)

लद्धूण वि उत्तमं सुइं, सद्वहणा पुणरावि दुल्लहा।  
विच्छत्तनिसेवए जणे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १९ ॥

उत्तम धर्म का श्रवण होने पर भी इस सद्धर्म पर श्रद्धा होना और भी कठिन है क्योंकि बहुत से मनुष्य मिथ्यात्वी भी होते हैं, मिथ्यात्व का सेवन करते हैं। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ १९ ॥



Even on having listened to the right tenets it is difficult to have faith on this righteous path since many men are unrighteous (*mithyatvi*) and behave accordingly. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (19)

धम्मं पि हु सद्वहन्तया, दुल्लहया काएण फासया ।

इह कामगुणेहिमुच्छिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २० ॥

उत्तम धर्म पर श्रद्धा होने के उपरान्त भी उसका आचरण करना और भी दुष्कर है; क्योंकि बहुत से श्रद्धावान भी कामभोगों में आसक्त रहते हैं। इसलिये हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २० ॥

Even on having faith on the righteous path it is very difficult to practice it (translate it into conduct) since many devoted persons are seen indulging in mundane pleasures and comforts. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (20)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।

से सोयबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २१ ॥

तुम्हारा शरीर जर्जरित हो रहा है, केश सफेद हो रहे हैं, सुनने की शक्ति कम हो रही है। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २१ ॥

Your body is wasting away, hairs are turning grey and hearing ability is on the decline. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (21)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।

से चक्खुबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २२ ॥

तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, सिर के बाल सफेद हो रहे हैं, नेत्र-ज्योति मन्द हो रही है। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २२ ॥

Your body is getting feeble, hairs are turning white and eye-sight is getting weak. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (22)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।

से घाणबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २३ ॥

तुम्हारा शरीर कमजोर हो रहा है, सिर के केश श्वेत हो रहे हैं, सूँघने की शक्ति घटती जा रही है। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २३ ॥

Your body is getting weak, hairs are turning white and capacity to smell is waning. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (23)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते ।

से जिब्भबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २४ ॥

तुम्हारा शरीर परिजीर्ण हो रहा है, केश श्वेत हो रहे हैं, जिह्वाबल-रस लेने और बोलने की शक्ति कम हो रही है। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २४ ॥





Your body is getting exhausted, hairs are turning white and competence of tongue (tasting and speaking) is deteriorating. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (24)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते।  
से फासबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २५ ॥

तुम्हारा शरीर जर्जरित हो रहा है, केश श्वेत हो रहे हैं, कायबल क्षीण होता जा रहा है। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २५ ॥

Your body is getting atrophied, hairs are turning whitish and physical strength is reducing. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (25)

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पण्डुरया हवन्ति ते।  
से सव्वबले य हायई, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २६ ॥

तुम्हारा शरीर जीर्ण हो रहा है, केश धवल हो रहे हैं, सभी प्रकार के बल क्षीण हो रहे हैं। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २६ ॥

Your body is weakening, your hairs are turning white and every kind of strength is on the decline. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (26)

अरई गण्डं विसूइया, आयंका विविहा फुसन्ति ते।  
विवडइ विद्धंसइ ते सरीरयं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २७ ॥

वात या पित्त विकार से होने वाला चित्त का उद्वेग, फोड़ा, विसूचिका (हैजा-वमन) आदि विविध प्रकार के शीघ्रघाती रोगों से तुम्हारा शरीर गिर जाता है, विध्वस्त हो जाता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २७ ॥

Dementia, boils, cholera and other mortal diseases of many kinds are wrecking and destroying your body. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (27)

वोछिन्द सिणेहमप्यणो, कुमुयं सारइयं व पाणियं।  
से सव्वसिणेहवज्जिए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २८ ॥

शरद् ऋतु का चन्द्र विकासी कमल जैसे जल से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार तुम भी अपने स्नेह बन्धन को तोड़ दो, उसमें लिप्त मत बनो और फिर सभी प्रकार के स्नेहों को त्याग दो। हे गौतम! इस कार्य में—स्नेह-बन्धनों को तोड़ने में क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २८ ॥

As the autumn lotus, blooming in moonlight, is unaffected by water, in the same way shatter your bondage of fondness. Do not get caught in affection and break all ties of attachment. Gautam! Be not negligent even for a moment. (28)

चिच्च्वाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं।  
मा वन्तं पुणो वि आइए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ २९ ॥

धन तथा पत्नी को त्यागकर तुम अनगार बने हो, प्रव्रजित हुए हो। उन वमन किये हुये भोगों की पुनः इच्छा मत करो। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ २९ ॥



Renouncing wealth and woman you have become a homeless ascetic by getting initiated. Do not desire for those vomited (rejected) pleasures. Gautam! Be not negligent even for a moment. (29)

अवउज्झिय मित्तबन्धवं, विउलं चेव धणोहसंचयं ।

मा तं बिइयं गवेसए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ३० ॥

मित्र, बान्धव, विपुल धन आदि के संचय का परित्याग कर, पुनः दूसरी बार इन मित्रादि की इच्छा मत करो और उनकी तलाश भी मत करो। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ३० ॥

After renouncing friends, kin and amassing wealth etc., do not desire for them once again and do not look out for them. Gautam! Be not negligent even for a moment. (30)

न हु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिए ।

संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ३१ ॥

आज जिन नहीं दीख रहे हैं और मार्गदर्शकों के भी भिन्न-भिन्न अनेक प्रकार के मत हैं ( भविष्य में साधकों के समक्ष यह कठिन स्थिति उपस्थित होगी।) किन्तु आज अभी मेरी उपस्थिति में तुम्हें संसार से पार ले जाने में सक्षम न्यायपूर्ण पथ प्राप्त है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ३१ ॥

Today Jinas (victors of attachment and aversion) are not to be seen and there are many dogmas of creeds professed by many guides (This is about the difficulties to be faced by aspirants in future). However, at this moment when I am present, the right path to take you across the cycles of rebirth is available to you. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (31)

अवसोहिय कण्ठगापहं, ओइण्णो सि पहं महालयं ।

गच्छसि मग्गं विसोहिया, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ३२ ॥

कंटक भरे मार्ग को छोड़कर तुम विशाल महापथ-राजमार्ग पर आ गये हो, दृढ़ निश्चय करके इसी पथ पर बढ़े चलो। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ३२ ॥

Leaving the thorny path you have come to the broad highway. With firm determination continue your journey on this very path. Gautam! Be not negligent even for a moment. (32)

अबले जह भारवाहए, मा मग्गे विसमेवगाहिया ।

पच्छा पच्छाणुतावए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ३३ ॥

शक्तिहीन भारवाहक के समान तुम विषम मार्ग पर मत चले जाना; क्योंकि विषम मार्ग पर चलने वाले भारवाहक और साधक को बाद में पछताना पड़ता है। अतः हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ३३ ॥

Like a feeble burden-bearer do not shift to a tough trail. This is because the burden-bearer and the aspirant, who take an uneven path, both lament in the end. Therefore, Gautam! Be not negligent even for a moment. (33)

जरा-जीर्ण

१

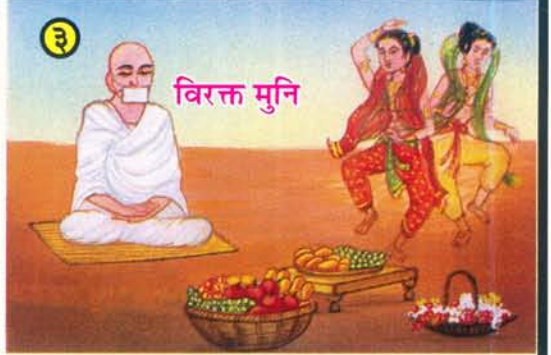


२



अलिप्त कमल

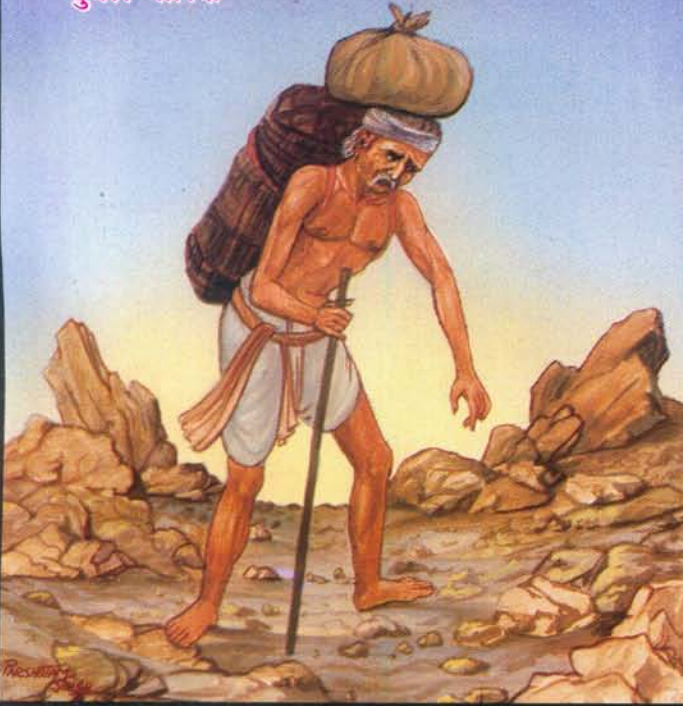
३



विरक्त मुनि

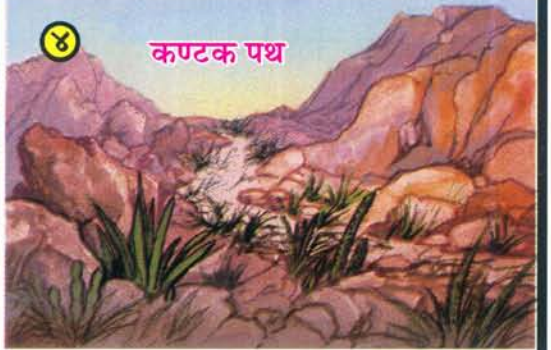
५

दुर्बल भारिक



४

कण्टक पथ



राजपथ



## प्रमाद-त्याग

- (1) तुम्हारा शरीर जरा से जीर्ण और अशक्त हो गया है।
- (2) शरदकालीन कमल जैसे पंक से अलिप्त रहता है, उसी प्रकार तुम विषयों से अलिप्त रहो।
- (3) धन, स्त्रियाँ, भोग-सामग्री को त्यागकर पुनः भोग की इच्छा मत करो।
- (4) तुम अज्ञान एवं आसक्ति के कंटक पथ को छोड़कर ज्ञान एवं श्रद्धा के राजपथ पर बढ़ चले हो।
- (5) जैसे दुर्बल भारवाहक ऊबड़-खाबड़ पथ पर चलता हुआ पछताता है, तुम्हारी यह स्थिति नहीं हो। इसलिये धर्म करने में क्षणभर भी प्रमाद मत करो।

—अध्ययन 10, सू. 25-33

## ABANDONING STUPOR

- (1) Your body has become weak and feeble by old age.
- (2) As autumn lotus remains unaffected by water, so you should remain unaffected by worldly pleasures.
- (3) Once renouncing wealth, women and pleasures, do not seek them again.
- (4) Leaving the thorny path of ignorance and obsession, you are advancing smoothly on the highway of knowledge of faith.
- (5) A weak burden-carrier repents while moving on uneven path; you should avoid such situation. Therefore, do not be lethargic in embracing religion even for a moment.

—Chapter 10, Aphorism 25-33)





तिण्णो हु सि अण्णवं महं, किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ ।

अभितुर पारं गमित्तए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ३४ ॥

तुम संसाररूपी महासागर को पार कर आये हो; किन्तु अब किनारे पर क्यों खड़े रह गये हो? इसे पार करने की शीघ्रता करो। हे गौतम ! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ३४ ॥

You have swum across the great ocean of cycles of rebirth; why you are still marooned so near the shore? Cross it soon and step on the other side. Gautam! Be not negligent even for a moment. (34)

अकलेवरसेणामुस्सिया, सिद्धिं गोयम लोयं गच्छसि ।

खेमं च सिवं अणुत्तरं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ३५ ॥

तुम अशरीरी सिद्ध पद तक पहुँचाने वाली क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ होकर क्षेम अनुत्तर शिव रूप सिद्ध लोक को प्राप्त करोगे। इसलिये हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ३५ ॥

You are destined to reach the supreme and beatific realm of perfection (*Siddha Lok*) by stepping on the trail of destruction of *karmas* (*kshapak shreni*) that leads to disembodied perfect state of emancipation. So, Gautam! Be not negligent even for a moment. (35)

बुद्धे परिनिव्वुडे चरे, गामगए नगरे व संजए ।

सन्तिमगं च बूहए, समयं गोयम ! मा पमायए ॥ ३६ ॥

तत्त्वज्ञ, परिनिर्वृत्त—उपशांत और संयम में निरत होकर तुम ग्राम-नगरों में विचरण करके शांति मार्ग को बढ़ाओ, उसका प्रचार-प्रसार करो। हे गौतम! क्षण मात्र का भी प्रमाद मत करो ॥ ३६ ॥

After being aware of fundamentals, perfectly serene and engrossed in self-restraint you should become itinerant. Wandering in villages and cities you should propagate and popularize the path of peace. As such, Gautam ! Be not negligent even for a moment. (36)

बुद्धस्स निसम्म भासियं, सुकहियमट्ठपओवसोहियं ।

रागं दोसं च छिन्दिया, सिद्धिगइं गए गोयमे ॥ ३७ ॥

अर्थ और पदों से सुशोभित, सुकथित सर्वज्ञ भगवान महावीर की वाणी को सुनकर तथा राग-द्वेष का छेदन कर गौतम गणधर सिद्ध गति में गये ॥ ३७ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Having heard the lucid sermon of omniscient Bhagavan Mahavir, adorned with meaningful verses and destroying attachment and aversion, Gautam Ganadhar attained the state of liberation. (37)

—So I say.



## एकादश अध्ययन : बहुश्रुत पूजा

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम बहुश्रुत पूजा है। बहुश्रुत का अभिप्राय विशिष्ट ज्ञानियों से है। इस अध्ययन में ज्ञानियों की श्रेष्ठता और उनकी महत्ता का वर्णन किया गया है। पूजा का अभिप्राय यहाँ बहुश्रुतों के प्रति बहुमान, भक्ति और मानसिक, वाचिक, कायिक विनम्रता है।

पिछले दसवें अध्ययन द्रुमपत्रक में साधक को अप्रमाद की प्रेरणा दी गई थी और प्रस्तुत अध्ययन में ज्ञानियों की महिमा का उल्लेख है।

बहुश्रुतों की तीन कोटियाँ मानी गई हैं—(१) जघन्य—कम से कम आचार प्रकल्प और निशीथ सूत्र का ज्ञाता हो, (२) मध्यम—वृहत्कल्प और व्यवहारसूत्र का ज्ञाता हो, और (३) उत्कृष्ट—नौवें पूर्व की तीन वस्तुओं अथवा दसवें पूर्व का ज्ञाता हो; और १४ पूर्व का धारी सर्वोत्कृष्ट बहुश्रुत होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में सर्वप्रथम अबहुश्रुतों के स्वरूप का वर्णन करके बहुश्रुत होने के कारणों का उल्लेख किया गया है। इसका अभिप्राय साधक को बहुश्रुत बनने का दिशा-निर्देश देना है।

आगे अविनीतता के १४ लक्षण दिये गये हैं जो बहुश्रुत बनने में बाधक हैं; साथ ही बहुश्रुत बनने के साधक १५ गुणों का उल्लेख भी किया गया है। तदुपरान्त बहुश्रुत को सूर्य, चन्द्र, कथक अश्व आदि भौतिक जगत् की १५ विशिष्ट वस्तुओं से उपमित करके ज्ञान और ज्ञानी की महत्ता का प्रेरक शब्दों में प्रतिपादन किया गया है।

और अन्त में बहुश्रुतता की फलश्रुति मोक्षगामिता बताई गई है।

यह सम्पूर्ण अध्ययन ज्ञान की महत्ता को प्रतिस्थापित करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३२ गाथाएँ हैं।



## EKADASH ADHYAYAN : BAHUSHRUT PUJA

### Foreview

The title of this chapter is Bahushrut Puja. The term *bahushrut* means one who has acquired very wide range of knowledge, a consummate or accomplished scholar. This chapter informs about the nobility and importance of scholarly ascetics. The term *puja* literally means worship and it includes expression of reverence and devotion as well as mental, vocal and physical humbleness towards scholarly ascetics.

In the preceding chapter the aspirant was inspired to be alert or free of stupor. This chapter discusses the glory of the wise.

The accomplished scholarly ascetics are said to be of three levels—1. At the lowest level—he should at least be a scholar of *Aachaara Prakalp* and *Nisheeth Sutra*. 2. At the medium level—he should also be a scholar of *Vrihatkalp* and *Vyavahaaru Sutra*. 3. At the higher level—he should also be a scholar of three sections (*Vastu*) of the ninth *Purva* (the subtle canons of Jains) or the tenth *Purva*. A scholar of the fourteen *Purvās* is the supreme scholar.

The chapter, first of all, describes those who are lower than the *Bahushrut* (accomplished scholarly ascetic) level. Then the reasons for becoming an accomplished scholarly ascetic have been enumerated. The purpose of this is to provide guidance to aspirants for becoming accomplished scholarly ascetics.

After that, fourteen signs of immodesty are mentioned. These are impediments in becoming an accomplished scholarly ascetic. Also mentioned are the fifteen qualities that help attaining the goal. All this is followed by a lucid and inspiring narration of importance of knowledge and the knower, employing fifteen metaphors from the physical world, such as the sun, the moon, *Kanthak* (a superior breed) horse etc.

In the end the consequence of such superb learning is mentioned as attainment of liberation.

The whole chapter establishes the greatness of knowledge.

The chapter contains 32 verses.



इक्कारसमं ब्रह्मज्ञयणं : बहुशुच्यपुज्जा  
एकादश अध्यायन : बहुश्रुत पूजा  
Chapter-11 : ADORATION OF ACCOMPLISHED  
SCHOLARLY ASCETICS

संजोगा विष्णुमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।  
आचारं पाउकरिस्सामि, आणपुत्विं सुणेह मे ॥ १ ॥

सभी संयोगों से विप्रमुक्त भिक्षाजीवी अनगर के आचार का मैं अनुक्रम से वर्णन करूँगा। उसे मुझसे सुनो ॥ १ ॥

I will describe the conduct of a homeless ascetic, who is free of all worldly ties, in proper sequence. Listen that from me. (1)

जे यावि होइ निव्विज्जे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे ।  
अभिक्खणं उल्लवई, अविणीए अबहुस्सुए ॥ २ ॥

जो विद्याहीन-ज्ञानहीन है अथवा विद्यावान होकर भी अहंकारी है, रसादि विषयों में लोलुप है, इन्द्रिय और मन का निग्रह नहीं करता, बार-बार असंबद्ध बोलता है और अविनीत है—वह अबहुश्रुत है ॥ २ ॥

One who is ignorant of truth or learned but conceited and arrogant, infatuated with sensual pleasures, greedy, devoid of control over his senses and mind, compulsive chatterer and immodest, is not an accomplished scholarly ascetic. (2)

अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिक्खा न लब्भई ।  
थम्भा कोहा पमाएणं, रोगेणाऽलस्सएण य ॥ ३ ॥

(१) अभिमान, (२) क्रोध, (३) प्रमाद, (४) रोग, और (५) आलस्य—इन ५ कारणों से विद्या की प्राप्ति नहीं होती ॥ ३ ॥

Gaining knowledge is improbable for these five reasons—1. Conceit, 2. Anger, 3. Stupor, 4. Disease, and 5. Lethargy. (3)

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ।  
अहस्सिरे सया दन्ते, न य मम्ममुदाहरे ॥ ४ ॥

इन ८ कारणों से व्यक्ति शिक्षाशील कहा जाता है—(१) अमर्यादित हँसी-मजाक नहीं करना, (२) शान्त-दान्त रहना, (३) किसी का मर्म प्रकाशित नहीं करना ॥ ४ ॥

By eight factors a man (disciple) is called well-versed—1. not indulging in unlimited frolic and mirth, 2. remaining calm and composed, 3. not revealing secrets of others. (4)





नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।

अकोहणो सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चई ॥ ५ ॥

(४) सर्वथा शीलरहित न होना, (५) विकृत शील वाला न होना, (६) अतिलोलुपी-रस लंपट न होना, (७) अत्यधिक क्रोधी न होना, तथा (८) सदा सत्य में अनुरक्त रहना ॥ ५ ॥

4. not being completely devoid of uprightness, 5. not adhering to perverse values, 6. not being excessively covetuous, 7. not being excessively angry, and 8. being truth loving always. (5)

अह चउदसहिं ठाणेहिं, वट्टमाणे उ संजए।

अविणीए वुच्चई सो उ, निव्वाणं च न गच्छइ ॥ ६ ॥

अभिक्षणं कोही हवइ, पबन्धं च पकुव्वई।

मेत्तिज्जमाणो वमइ, सुयं लद्धूण मज्जई ॥ ७ ॥

अवि पावपरिक्खेवी, अवि मित्तेसु कुप्पई।

सुप्पियस्सावि मित्तस्स, रहे भासइ पावगं ॥ ८ ॥

पइण्णावाई दुहिले, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।

असंविभागी अचियत्ते, अविणीए त्ति वुच्चई ॥ ९ ॥

चौदह स्थानों-दोषों से युक्त व्यवहार करने वाला संयमी साधु अविनीत कहा जाता है और वह मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ६ ॥

(१) जो बार-बार क्रोध करता है। (२) दीर्घकाल तक क्रोध करता रहता है। (३) मित्रता किये जाने पर भी उसे तुकरा देता है। (४) श्रुतज्ञान को उपलब्ध करके उसका अभिमान करता है ॥ ७ ॥

(५) स्वखलना होने पर आचार्यादि का तिरस्कार करता है। (६) मित्रों पर भी कुपित होता है। (७) अतिप्रिय मित्र के भी एकान्त में अवगुणवाद बोलता है ॥ ८ ॥

(८) असम्बद्ध प्रलाप करता है। (९) द्रोही है। (१०) अभिमानी है। (११) आहार में लुब्ध है। (१२) मन और इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता। (१३) असंविभागी है। (१४) अप्रीतिकर है ॥ ९ ॥

A disciplined ascetic committing fourteen faults is called immodest or ill behaved and he cannot attain liberation. (The said fourteen faults are as follows -) (6)

1. One who gets angry often. 2. One who perseveres in his anger for long. 3. One who spurns friendship when offered. 4. One who is proud of the scriptural knowledge he has acquired. (7)

5. One who insults seniors including *acharya* on their slips. 6. One who gets angry even with friends. 7. One who speaks ill even of dearest friend in his absence. (8)

8. One who talks irrelevant. 9. One who is malicious. 10. One who is conceited. 11. One who is obsessed with food. 12. One who does not discipline his senses and mind. 13. One who does not share with fellow ascetics. 14. One who is unkind. He is called immodest. (9)



अह पन्नरसहिं ठाणेहिं, सुविणीए त्ति वुच्चई ।  
नीयावत्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ॥ १० ॥  
अप्पं चाऽहिक्खिखवई, पबन्धं च न कुव्वई ।  
मेत्तिज्जमाणो भयई, सुयं लद्धं न मज्जई ॥ ११ ॥  
न य पावपरिक्खेवी, न य मित्तेसु कुप्पई ।  
अप्पियस्सावि मित्तस्स, रह कल्लाण भासई ॥ १२ ॥  
कलह-डमरवज्जए, बुद्धे अभिजाइए ।  
हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए त्ति वुच्चई ॥ १३ ॥

पन्द्रह स्थानों-गुणों से सुविनीत कहा जाता है—

(१) नम्रता, (२) अचपलता-स्थिरता, (३) दम्भ का अभाव-सरलता, (४) अकौतूहलत्व-गंभीरता ॥ १० ॥

(५) किसी की निन्दा न करना, (६) लम्बे समय तक क्रोध न करते रहना, (७) मित्रों के प्रति कृतज्ञता, (८) श्रुत-प्राप्ति होने पर भी अहंकार नहीं करना ॥ ११ ॥

(९) स्खलना होने पर भी उसका तिरस्कार न करना, (१०) मित्रों पर क्रोध न करना, (११) अप्रिय मित्र के प्रति भी एकान्त में उसके कल्याण की बात कहना ॥ १२ ॥

(१२) वाक्कलह और मार-पीट न करना, (१३) अभिजात्यता-कुलीनता (शालीनता), (१४) लज्जाशीलता, (१५) प्रतिसंलीनता-आत्मलीनता ।

इन १५ गुणों को धारण करने वाला साधु सुविनीत होता है ॥ १३ ॥

(But if he is endowed with fifteen qualities an ascetic is called modest or well behaved. These qualities are—)

1. Humility, 2. Stability, 3. Simplicity (absence of conceit), 4. Absence of curiosity (sobriety), (10)

5. Avoidance of slandering, 6. Avoidance of extending anger for a long period, 7. Gratefulness towards friends, 8. Absence of conceit of learning. (11)

9. Avoidance of insult to seniors including *acharya* even when their slip shows, 10. Absence of anger towards friends, 11. Speaking good even of a bad friend in his absence. (12)

12. Avoidance of quarrels and rows, 13. Gracefulness, 14. Shyness, 15. Spiritual inclination.

An ascetic endowed with these fifteen virtues is called modest. (13)

वसे गुरुकुले निच्चं, जोगवं उवहाणवं ।

पियंकरे पियंवाई, से सिक्खं लद्धुमरिहई ॥ १४ ॥

सदा गुरुकुल-गुरुजनों की सेवा में रहने वाला, योग उपधान-शास्त्र-स्वाध्याय संबंधी तप करने वाला तथा प्रिय करने वाला और प्रिय बोलने वाला साधु शिक्षा-प्राप्ति के योग्य होता है ॥ १४ ॥



Only that ascetic is qualified to get education who is always in service of teachers, indulges in austerities related to yoga and scriptural studies, does good and speak good. (14)

जहा संखम्मि पयं निहियं, दुहओ वि विरायइ ।  
एवं बहुस्सुए भिक्खू, धम्मो किच्ची तहा सुयं ॥ १५ ॥

जिस प्रकार शंख में रखा हुआ दूध स्वयं अपने और आधार को सुशोभित करता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म, कीर्ति और श्रुत भी अपने और अपने आधार से सुशोभित होते हैं, मल और विकाररहित रहते हैं ॥ १५ ॥

As the milk filled in conch-shell glamourizes itself as well as its base (conch-shell) so do religion, fame, and scriptural knowledge residing in an accomplished ascetic scholar (*bahushrut*) grace themselves as well as their base and remain free of dirt and demerit. (15)

जहा से कम्बोयाणं, आइण्णे कन्थए सिया ।  
आसे जवेण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ १६ ॥

जैसे कम्बोज देश के घोड़ों में कन्थक अश्व, जाति एवं वेग में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत श्रेष्ठ होता है ॥ १६ ॥

As, among horses from Kamboja, a well trained *Kanthak* (a superior breed) horse is excellent in speed and other qualities, so is an accomplished scholarly ascetic (among ascetics). (16)

जहाऽऽइण्णसमारूढे, सूरे दढपरक्कमे ।  
उभओ नन्दिघोसेणं, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ १७ ॥

जिस प्रकार आकीर्ण-जातिमान् अश्व पर सवार दृढ़ पराक्रमी शूरवीर दोनों ओर के नन्दीघोषों जय-जयकारों से सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी सुशोभित होता है ॥ १७ ॥

As a brave hero with unyielding valour astride a trained horse of good breed appears glamorous heralded by both camps, so glamorous appears an accomplished scholarly ascetic. (17)

जहा करेणुपरिकिण्णे, कुंजरे सट्ठिहायणे ।  
बलवन्ते अप्पडिहए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ १८ ॥

जिस प्रकार हथिनियों से परिवृत्त साठ वर्ष का शक्तिशाली हाथी किसी अन्य हाथी से पराजित नहीं होता, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अपराजित रहते हैं ॥ १८ ॥

Just as a sixty years old strong bull elephant surrounded by she elephants is not defeated by any other elephant, in the same way an accomplished scholarly ascetic remains unconquered. (18)



जहा से तिक्खसिंगे, जायखन्धे विरायई।

वसहे जूहाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ १९ ॥

जिस तरह तीखे सींगों और बलिष्ठ स्कन्धों वाला, गौ-समूह का अधिपति, वृषभ सुशोभित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी शोभायमान होते हैं ॥ १९ ॥

As a large bull with pointed horns and strong shoulders looks grand as the leader of its herd, so does an accomplished scholarly ascetic. (19)

जहा से तिक्खदाढे, उदग्गे दुप्पहंसए।

सीहे मियाण पवरे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २० ॥

जैसे तीक्ष्ण दाढ़ों वाला, पूर्ण युवा और दुर्जेय सिंह वन्य पशुओं में प्रधान होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी होता है ॥ २० ॥

As a lion with sharp fangs, youthful, mature and unconquerable is supreme among all wild animals, so is an accomplished scholarly ascetic (among humans). (20)

जहा से वासुदेवे, संख-चक्क-गयाधरे।

अप्पडिहयबले जोहे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २१ ॥

जिस प्रकार शंख, चक्र और गदा आयुधों को धारण करने वाला वासुदेव अप्रतिहत बलशाली योद्धा होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी होता है ॥ २१ ॥

As Vasudeva, armed with conch-shell (*Shankh*), disc-weapon (*Chakra*) and mace (*Gada*), is an invincible and powerful warrior, so is an accomplished scholarly ascetic. (21)

जहा से चाउरन्ते, चक्कवट्टी महिडिडए।

चउदसरयणाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २२ ॥

जिस प्रकार चारों दिशाओं के अन्त तक का स्वामी, महर्द्धिक, चौदह रत्नों का अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी चौदह पूर्वों के ज्ञान का धारक होता है ॥ २२ ॥

As an exalted emperor, the owner of fourteen gems (with special powers), is the emperor of the land till the end of all four cardinal directions, so is an accomplished scholarly ascetic, the possessor of the knowledge of 14 *Purvas* (the subtle Jain canons). (22)

जहा से सहस्सक्खे, वज्जपाणी पुरन्दरे।

सक्के देवाहिवई, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २३ ॥

जिस प्रकार सहस्रचक्षु, वज्रपाणि, पुरन्दर शक्रेन्द्र देवों का अधिपति होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी दिव्य ज्ञान का अधिपति होता है ॥ २३ ॥

As the thousand-eyed, thunderbolt wielding, fortress destroyer, Shakra is the master of gods, in the same way an accomplished scholarly ascetic is the master of divine knowledge. (23)



## बहुश्रुत की 15 उपमाएँ - 1

जिस प्रकार शंख में रखा हुआ दूध निर्विकार रहता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भिक्षु में धर्म एवं श्रुत निर्विकार रहकर शोभित होते हैं। भगवान महावीर ने बहुश्रुत की 15 उपमाओं का वर्णन किया है—

- (1) घोड़ों में कन्थक अश्व, जाति एवं वेग में श्रेष्ठ होता है।
- (2) आकीर्ण-जातिमान् अश्व पर सवार दृढ़ पराक्रमी शूरवीर दोनों ओर के नन्दीघोषों, जयकारों से सुशोभित होता है।
- (3) हथिनियों से परिवृत साठ वर्ष का शक्तिशाली हाथी किसी अन्य हाथी से पराजित नहीं होता।
- (4) तीखे सींगों और बलिष्ठ स्कन्धों वाला, गौसमूह का अधिपति, वृषभ सुशोभित होता है।
- (5) तीक्ष्ण दाढ़ों वाला, पूर्ण युवा और दुर्जय सिंह वन्य पशुओं में प्रधान होता है।
- (6) शंख, चक्र और गदा आयुधों को धारण करने वाला वासुदेव अप्रतिहत बलशाली योद्धा होता है।
- (7) चारों दिशाओं के अन्त तक का स्वामी, महर्द्धिक, चौदह रत्नों का अधिपति चक्रवर्ती सम्राट् होता है।

—अध्ययन 11, सू. 15-22

## 15 METAPHORS FOR ACCOMPLISHED SCHOLARLY ASCETIC - 1

As milk kept in a conch-shell remains faultless, so religion and scriptural knowledge remain faultless and resplendent in a learned ascetic. Bhagavan Mahavir has mentioned 15 metaphors for the learned—

- (1) Among horses the *Kanthak* breed horse is excellent in speed and other qualities, so is an accomplished scholarly ascetic (among ascetics).
- (2) As a brave hero with unyielding valour astride a trained horse is heralded by both camps, so...
- (3) As a sixty years old strong bull elephant surrounded by she elephants is not defeated by any other elephant, so...
- (4) As a large bull with pointed horns and strong shoulders looks grand as the leader of its herd, so...
- (5) As a lion with sharp fangs, youthful, mature and unconquerable is supreme among wild animals, so ...
- (6) As Vaasudeva, armed with *Shankh*, *Chakra*, and *Gada* is an invincible and powerful warrior, so ...
- (7) As an exalted emperor, the owner of fourteen gems, is the emperor of the land till the end of all four cardinal directions, so is an accomplished scholarly ascetic.

—Chapter 11, Aphorism 15-22



८



१२



९



१३



१०



१४



११



१५

## बहुश्रुत की 15 उपमाएँ - 2

- (8) सहस्रचक्षु, वज्रपाणि, पुरन्दर शक्रेन्द्र देवों का अधिपति होता है।
- (9) अन्धकार का नाश करने वाला, उदय होता हुआ सहस्ररश्मि दिवाकर अपने तेज से जाज्वल्यमान प्रतीत होता है।
- (10) तारागणों का अधिपति चन्द्रमा नक्षत्रों से परिवृत पूर्णिमा को अपनी परिपूर्ण ज्योत्स्ना से प्रकाशित होता है।
- (11) सामाजिकों-किसान, व्यापारियों का भण्डार सुरक्षित एवं विभिन्न प्रकार के धान्यों से भरा-पूरा रहता है।
- (12) अनाधृत देव का निवास स्थान सुदर्शन जम्बू वृक्ष सभी वृक्षों में श्रेष्ठ होता है।
- (13) नीलवंत वर्षधर पर्वत से निकली, सदैव जल से परिपूर्ण, सागर में मिलने वाली सीता नदी अन्य नदियों से श्रेष्ठ है।
- (14) अनेक प्रकार की औषधियों से दीप्त, महान् मन्दरगिरि-मेरु पर्वत सभी पर्वतों में श्रेष्ठ माना जाता है।
- (15) अक्षय जल से भरा-पूरा तथा अनेक रत्नों से परिपूर्ण स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ है। वैसे ही गम्भीर कष्टों से अबाधित, किसी से भी पराजित न होने वाले, अविचलित, विपुल श्रुतज्ञान से परिपूर्ण, छह काय के रक्षक, बहुश्रुत कर्मों का क्षय करके उत्तम गति को प्राप्त करते हैं।

—अध्ययन 11, सू. 22-31

## 15 METAPHORS FOR ACCOMPLISHED SCHOLARLY ASCETIC - 2

- (8) As the thousand-eyed, thunderbolt wielding, fortress destroyer, Shakra is the lord of gods, so is an accomplished scholarly ascetic.
- (9) As the rising sun, the dispeller of darkness with thousand rays, is scintillating with its brilliance, so ...
- (10) As the moon, the head of stars, surrounded by asterisms, manifests its full glow on the full-moon night; so ...
- (11) As a store-house of social people is well-guarded and has abundance of variety of grains, so ...
- (12) As the Jambu tree, the abode of god Anadhrita, is best among all trees, so...
- (13) As river Sita, a perennial source of water flowing from Nilavanta Varshadhara mountain up to the ocean, is the best among all rivers, so ...
- (14) As Mandaara Giri (Meru) mountain, opulent with many kinds of herbs is believed to be the best among all mountains, so ...
- (15) As the Swayambhu Ramana sea, filled with endless water and an inexhaustible source of many kinds of gems is best among seas, so is an accomplished scholarly ascetic ocean-like serene, unimpeded by difficulties, invincible, unwavering, endowed with unlimited knowledge, protector of six classes of living beings, and he sheds all *karmas* to attain supreme state of perfection.

—Chapter 11, Aphorism (22-31)





जहा से तिमिरविद्धंसे, उत्तिट्ठन्ते दिवायरे ।

जलन्ते इव तेएण, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २४ ॥

जिस प्रकार अन्धकार का नाश करने वाला उदय होता हुआ सहस्ररश्मि दिवाकर अपने तेज से जाज्वल्यमान प्रतीत होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी तेजस्वी होता है ॥ २४ ॥

As the rising sun, the dispeller of darkness with thousand rays, is scintillating with its brilliance, so too an accomplished scholarly ascetic scintillates (with intellectual brilliance). (24)

जहा से उडुवई चन्दे, नक्खत्त-परिवारिए ।

पडिपुण्णे पुण्णमासीए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २५ ॥

जैसे तारागणों का अधिपति चन्द्रमा नक्षत्रों से परिवृत्त पूर्णिमा को अपनी परिपूर्ण ज्योत्स्ना से प्रकाशित होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी होता है ॥ २५ ॥

As the moon, the head of stars, surrounded by asterisms, manifests its full glow on the full moon night; so does an accomplished scholarly ascetic (among ascetics). (25)

जहा से सामाइयाणं, कोट्ठागारे सुरक्खिए ।

नाणाधन्नपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २६ ॥

जैसे सामाजिकों-किसान, व्यापारियों का भण्डार सुरक्षित एवं विभिन्न प्रकार के धान्यों से भरा-पूरा रहता है, उसी तरह बहुश्रुत भी अपने प्रकार के श्रुत से परिपूर्ण होता है ॥ २६ ॥

As a store-house of social people (farmer or merchant) is well-guarded and has abundance of variety of grains, in the same way an accomplished scholarly ascetic has abundance of a variety of subjects and branches of knowledge. (26)

जहा सा दुमाण पवरा, जम्बू नाम सुदंसणा ।

अणाढियस्स देवस्स, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २७ ॥

जिस प्रकार अनाधृत देव का निवास स्थान सुदर्शन जम्बू वृक्ष सभी वृक्षों में श्रेष्ठ होता है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी श्रेष्ठ होता है ॥ २७ ॥

As the Jambu tree, the abode of god Anadhrita (a presiding deity of Jambu continent), is best among all trees, so is an accomplished scholarly ascetic (among ascetics). (27)

जहा सा नईण पवरा, सलिला सागरंगमा ।

सीया नीलवन्तपवहा, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २८ ॥

जिस प्रकार नीलवंत वर्षधर पर्वत से निकली, सदैव जल से परिपूर्ण, सागर में मिलने वाली सीता नदी अन्य नदियों से श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी सर्वश्रेष्ठ होता है ॥ २८ ॥

As river Sita, a perennial source of water flowing from Nilavanta Varshadhara mountain up to the ocean, is the best among all rivers, so is an accomplished scholarly ascetic (among ascetics). (28)



जहा से नगाण पवरे, सुमहं मन्दरे गिरी।

नाणोसहिपज्जलिए, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ २९ ॥

जैसे अनेक प्रकार की औषधियों से दीप्त, महान् मन्दरगिरि-मेरु पर्वत सभी पर्वतों में श्रेष्ठ माना जाता है, उसी तरह बहुश्रुत भी श्रेष्ठ माना जाता है ॥ २९ ॥

As Mandaara Giri (Meru) mountain, opulent with many kinds of herbs is believed to be the best among all mountains, so is an accomplished scholarly ascetic (among ascetics). (29)

जहा से सयंभूरमणे, उदही अक्खओदए।

नाणारयणपडिपुण्णे, एवं हवइ बहुस्सुए ॥ ३० ॥

जिस प्रकार अक्षय जल से भरा-पूरा तथा अनेक रत्नों से परिपूर्ण स्वयंभूरमण समुद्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी श्रेष्ठ ज्ञान रत्नों से परिपूर्ण होता है ॥ ३० ॥

As the Swayambhu Ramana sea, filled with endless water and an inexhaustible source of many kinds of gems is best among seas, so is an accomplished scholarly ascetic (among ascetics), a source of numerous gems of knowledge. (30)

समुद्दगम्भीरसमा दुरासया, अचक्किया केणइ दुप्पहंसया।

सुयस्स पुण्णा विड्डलस्स ताइणो, खवित्तु कम्मं गइमुत्तमं गया ॥ ३१ ॥

सागर जैसे गम्भीर, कष्टों से अबाधित (दुरासद), किसी से भी पराजित न होने वाले, अविचलित, विपुल श्रुतज्ञान से परिपूर्ण, छह काय के रक्षक, बहुश्रुत कर्मों का क्षय करके उत्तम गति को प्राप्त करते हैं ॥ ३१ ॥

The accomplished scholarly ascetics (*bahushrut*), ocean-like serene, unimpeded by difficulties, invincible, unwavering, endowed with unlimited knowledge, protectors of six classes of living beings, shed all their *karmas* and attain supreme state of perfection (liberation). (31)

तम्हा सुयमहिट्ठज्जा, उत्तमट्ठगवेसए।

जेणऽप्याणं परं चेव, सिद्धिं संपाउणेज्जासि ॥ ३२ ॥

—त्ति बेमि।

इसलिए उत्तम अर्थ के गवेषक, मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु श्रुत का अध्ययन करें जिससे वे स्वयं भी मुक्त हो सकें तथा अन्यो को भी सिद्धि-मुक्ति प्राप्त करा सकें ॥ ३२ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Therefore the seekers of noble meaning and aspirants craving liberation should study the canon, so that they may attain liberation and be helpful to others in attaining the same. (32)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा २१—वासुदेव के शंख का नाम पाञ्चजन्य, चक्र का नाम सुदर्शन और गदा का नाम कौमोदकी है। लोहे के दण्डविशेष को गदा कहते हैं। (वृ. वृ.)

गाथा २२—जिसके राज्य के उत्तर सीमान्त परिदिगन्त में हिमवान् पर्वत और शेष तीन दिगन्तों में समुद्र हो, वह “चातुरन्त” कहलाता है।

चक्रवर्ती के १४ रत्न इस प्रकार हैं—(१) सेनापति, (२) गाथापति, (३) पुरोहित, (४) गज, (५) अश्व, (६) मनचाहा भवन का निर्माण करने वाला वर्द्धकि अर्थात् बढई, (७) स्त्री, (८) चक्र, (९) छत्र, (१०) चर्म, (११) मणि, (१२) जिससे पर्वत शिलाओं पर लेख या मण्डल अंकित किये जाते हैं, वह काकिणी, (१३) खड्ग, और (१४) दण्ड। (वृ. वृ.) (चित्र देखें)

गाथा २३—इन्द्र के सहस्राक्ष और पुरन्दर नाम वैदिक पुराणों के कथानकों पर आधारित हैं। इन्द्र के पाँच सौ देव मन्त्री होते हैं। राजा मन्त्री की आँखों से देखता है, अर्थात् उनकी दृष्टि से अपनी नीति निर्धारित करता है, इसलिये इन्द्र सहस्राक्ष है। दूसरा अर्थ है जितना हजार आँखों से देखता है, अर्थात् उनकी दृष्टि से अपनी नीति निर्धारित करता है, इसलिये इन्द्र सहस्राक्ष है। दूसरा अर्थ है जितना हजार आँखों से देखता है, इन्द्र उससे अधिक अपनी दो आँखों से देख लेता है, इसलिये वह सहस्राक्ष है। “जं सहस्त्रेण अक्खाणं दीसति, तं सो दोहि अक्खीहिं अब्भहियतरांग पेच्छति।” (चूर्णि)

## IMPORTANT NOTES

**Verse 21**—The name of Vasudeva's conch-shell (*shankh*) is Paanchjanya, that of the disc weapon (*chakra*) is Sudarshana and that of mace (*gada*) is Kaumodaki. (V.V.)

**Verse 22**—The land area bounded by Himavan mountain on the north and by seas on the remaining three directions is called *chaaturant*.

The 14 gems (gem like illustrious divine possessions) of a *Chakravarti* (the emperor of six regions of Bharat) are—1. *Senapati* (Commander-in-chief), 2. *Gathapati* (householder), 3. *Purohit* (priest), 4. *Gaja* (elephant), 5. *Ashva* (horse), 6. *Vardhaki* (carpenter who can make desired fully equipped buildings), 7. *Stree* (woman, i. e., chief queen), 8. *Chakra* (disc weapon), 9. *Chhatra* (umbrella), 10. *Charma* (leather), 11. *Mani* (gem), 12. *Kaakini* (capable of inscribing motifs on mountain rocks), 13. *Khady* (sword), and 14. *Dand* (royal staff). (V.V.) (See illustration)

**Verse 23**—Sahasraksha (thousand eyed) and Purandar (fort destroyer), these two names of Indra (king of gods) are based on Vedic and Puranic myths. Indra, the king of gods, has five hundred gods as ministers. The king observes through the eyes of ministers; in other words he frames his policies on the basis of information received from them; as such he is said to be having thousand eyes. Another interpretation is that as much ordinary people can see through thousand eyes, the king of gods can see much more than that by his two eyes, hence he is thousand-eyed. (*Churni*)



## द्वादश अध्ययन : हरिकेशीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम इसके प्रमुख पात्र हरिकेशबल के नाम पर प्रसिद्ध हुआ है।

पिछले बहुश्रुत पूजा अध्ययन में बहुश्रुत की तेजस्विता का वर्णन किया गया है और प्रस्तुत अध्ययन में बहुश्रुत तथा शुद्ध श्रमणधर्म का पालन करने वाले मुनि हरिकेशबल की तेजस्विता और विशिष्ट प्रभावशालिता का वर्णन बड़े ही रोमांचक और चमत्कारी ढंग से प्रतिपादित हुआ है।

मुनि हरिकेशबल के चाण्डाल कुल में जन्म, पूर्व-जन्म तथा इस जन्म की विशिष्ट घटनाएँ, श्रमणत्व धारण और पालन आदि के सम्बन्ध में जिज्ञासा होनी भी स्वाभाविक है और उनकी तेजस्विता के लिये इन घटनाओं को जानना भी आवश्यक है।

### कथासूत्र

संक्षेप में हरिकेशबल से संबंधित घटनाएँ इस प्रकार हैं—

मथुरा-नरेश राजा शंख संसार से विरक्त हुये। उन्होंने उग्र तप किया। तप के प्रभाव से अनेक विशिष्ट लब्धियाँ उन्हें प्राप्त हो गईं।

ग्रामानुग्राम विचरण करते हुये वे हस्तिनापुर पधारे। भिक्षा के लिये नगर की ओर चले। नगर-प्रवेश के दो मार्ग थे। उनमें एक मार्ग पर लोगों को आते-जाते न देखकर शंख-मुनि विचार में पड़ गये। एक व्यक्ति को उसके घर के बाह्य भाग में बैठा देखकर उससे नगर-प्रवेश का मार्ग पूछा।

वह व्यक्ति ब्राह्मण सोमदत्त था। सोमदत्त जात्यभिमान से ग्रसित और श्रमणद्वेषी था। उसने गलत मार्ग बताते हुये कहा—“यह मार्ग निकट का है। आप शीघ्र ही नगर में पहुँच जायेंगे।”

तपस्वी मुनि उसी मार्ग पर चल दिये।

वास्तविकता यह थी कि उस मार्ग का नाम ‘हुताशन’ अथवा ‘हुतवह रथ्या’ था। वह मार्ग अग्नि की भाँति गरम रहता था, उस पर चलना कठिन था। ग्रीष्मकाल में तो वह तपे हुये तवे की भाँति जलता था।

सोमदत्त ने शंख मुनि को वह मार्ग द्वेषवश बताया था; लेकिन जब उसने देखा कि मुनि तो गजगति से उस मार्ग पर शांतिपूर्वक चले जा रहे हैं तो वह चकित हुआ। उसने स्वयं उस मार्ग पर चलकर देखा तो उसे मार्ग हिम के समान शीतल लगा। वह समझ गया कि ये विशिष्ट लब्धिधारी मुनि हैं, इनके तपःप्रभाव से यह उष्ण मार्ग शीतल हो गया है।

चमत्कार को नमस्कार करता हुआ ब्राह्मण सोमदत्त शीघ्र ही शंख मुनि के पास पहुँचा और अपने अपराध की क्षमा माँगने लगा।



जैन श्रमण तो क्षमावीर होते ही हैं, क्षमा कर दिया। साथ ही सोमदत्त की जिज्ञासा पर धर्म का उपदेश भी दिया। उपदेश से प्रतिबद्ध होकर सोमदत्त दीक्षित हो गया, तपस्या करने लगा, लेकिन जात्यभिमान और रूपमद करता ही रहा। अन्त समय तक भी वह जाति-मद के चंगुल से छूट नहीं सका। चारित्र-पालन के परिणामस्वरूप आयु पूर्ण कर वह देव बना।

देवायु पूर्ण कर वह मृतगंगा के किनारे हरिकेश गोत्रीय चाण्डालों के अधिपति 'बलकोट्ट' नामक चाण्डाल की पत्नी गौरी के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। उसका नाम 'बल' रखा गया।

यही बालक आगे चलकर हरिकेशबल कहलाया।

पूर्व-जन्म में किये गये जातिमद और रूपमद के कारण उसका जन्म चाण्डाल-कुल में हुआ तथा उसका शरीर भी काला-कलूटा, बेडौल और कुरूप था। ज्यों-ज्यों वह बड़ा हुआ, उसके स्वभाव में उग्रता बढ़ती गई। क्रोधी, झगड़ालू और कटुभाषी बन गया। शरीर की कुरूपता और स्वभाव की उग्रता-करेला और नीम चढ़ा वाली कहावत चरितार्थ हो गई। बस्ती के सभी लोगों, साथी बालकों और यहाँ तक कि माता-पिता की आँखों में भी कण्टक-सा खटकने लगा।

एक बार बस्ती के सभी लोग उद्यान में बसन्तोत्सव मना रहे थे। बालक खेल रहे थे। हरिकेशबल ने उनके साथ खेलने का प्रयत्न किया तो खेल में किसी बात पर क्रुद्ध होकर वह अपशब्द बोलने लगा, गाली बकने लगा तो अन्य बालकों ने उसे निकाल दिया। वह उपेक्षित-सा एक ओर बैठ गया।

तभी एक विषधर सर्प निकला। लोगों ने उसे बैत-लाठियों से उसी क्षण मार दिया। कुछ समय बाद एक निर्विष सर्प (दुमुही-अलसिया) निकला। उसे देखकर लोगों ने कहा—“अरे यह तो विषरहित है, किसी को काटता नहीं। इसे मारने से क्या लाभ? पकड़कर दूर छोड़ आओ।” और कुछ लोग उस निर्विष सर्प को दूर छोड़कर पुनः उत्सव-क्रीड़ा में निमग्न हो गये।

हरिकेशबल भी इस घटना को देख रहा था। उसका विचार-प्रवाह बहने लगा—‘प्राणी अपने ही दोषों के कारण दुःख पाता है, समाज का तिरस्कार सहता है। लोगों ने विषधर सर्प को मार दिया और विषहीन को नहीं मारा। मैं भी अपनी कड़वी जुबान और दुर्व्यवहार के कारण उपेक्षित बना हुआ हूँ। यदि इन दोषों को छोड़ दूँ तो सबका प्रिय बन जाऊँ। लेकिन मुझमें ये दोष आये ही क्यों? इसका क्या कारण है.....।’

यों सोचते-सोचते हरिकेशबल का चिन्तन गहरा हुआ। उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। पूर्व के दो जन्म (सोमदत्त विप्र और स्वर्ग के देवभव) उसके स्मृति-पटल पर चलचित्र के समान तैर गये।

उसी क्षण उसे संसार और सांसारिक सम्बन्धों तथा भोगोपभोगों से विरक्ति हो गई, निम्न कुल में जन्म होने का तथा कुरूपता एवं उग्र स्वभावी होने का कारण भी ज्ञात हो गया।

वह वहाँ से उठकर चल दिया। किसी श्रमण के पास पहुँचकर भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली। शुद्ध श्रामण्य-मुनिधर्म का पालन करने लगा। चाण्डाल हरिकेशबल अब मुनि हरिकेशबल बनकर ग्रामानुग्राम विहार करने लगे। उनकी तपश्चर्या इतनी उच्च कोटि पर पहुँच गई कि देवता भी उन्हें नमन करने लगे, पूज्य और आराध्य मानने लगे तथा सेवा में तत्पर रहने लगे।



ग्रामानुग्राम विहार करते हुये वे वाराणसी नगरी में आये। उद्यान में अवस्थित यक्ष-मन्दिर में मासखमण की प्रतिज्ञा धारण कर कायोत्सर्ग में लीन हो गये। उनके उत्कट तप के प्रभाव से प्रभावित यक्षराज तिन्दुक उन्हें अपना आराध्य मानने लगा।

किसी दिन नगर-नरेश कौशलिक की पुत्री भद्रा अपनी सखियों सहित यक्ष की पूजा के लिये यक्ष-मन्दिर में आई। यक्ष-प्रतिमा की प्रदक्षिणा करते हुये उसकी दृष्टि एक वृक्ष के नीचे खड़े कायोत्सर्ग-लीन मुनि हरिकेशबल पर पड़ी। मुनि की कुरूपता, मलिन शरीर और वस्त्रों को देखकर राजकुमारी भद्रा का हृदय घृणा से भर गया। ग्लानि में भरकर उसने मुनि के मुँह पर थूक दिया।

अपने आराध्य मुनि का यह अपमान तिन्दुक यक्ष न सह सका। तुरन्त राजकुमारी भद्रा के शरीर में प्रविष्ट हो गया। यक्षाविष्ट राजकुमारी भद्रा अण्ट-शण्ट बोलती और अनर्गल चेष्टाएँ करती हुई बेहोश हो गई। सखियाँ किसी तरह उसे राजमहल में ले गईं।

राजा ने पुत्री के बहुत उपचार कराये किन्तु कोई लाभ न हुआ। राजा अपनी पुत्री के जीवन के लिये चिन्तित हो गया। तब राजकुमारी के शरीर में प्रविष्ट यक्ष ने कहा—

“राजन्! तुम कितने भी उपचार करा लो, कोई लाभ नहीं होगा। इसने मेरे मन्दिर में ध्यानलीन एक घोर तपस्वी महामुनि का अपमान कर दिया है। उसका फल चखाने के लिये ही मैंने इसकी यह दशा की है। यदि तुम उन महामुनि के साथ इसका विवाह करो तो मैं इसे छोड़ सकता हूँ अन्यथा इसे जीवित नहीं रहने दूँगा।”

पिता को पुत्री प्रिय होती ही है। राजा ने यक्ष की शर्त स्वीकार कर ली। यक्ष राजकुमारी के शरीर से निकल गया। राजकुमारी स्वस्थ हो गई।

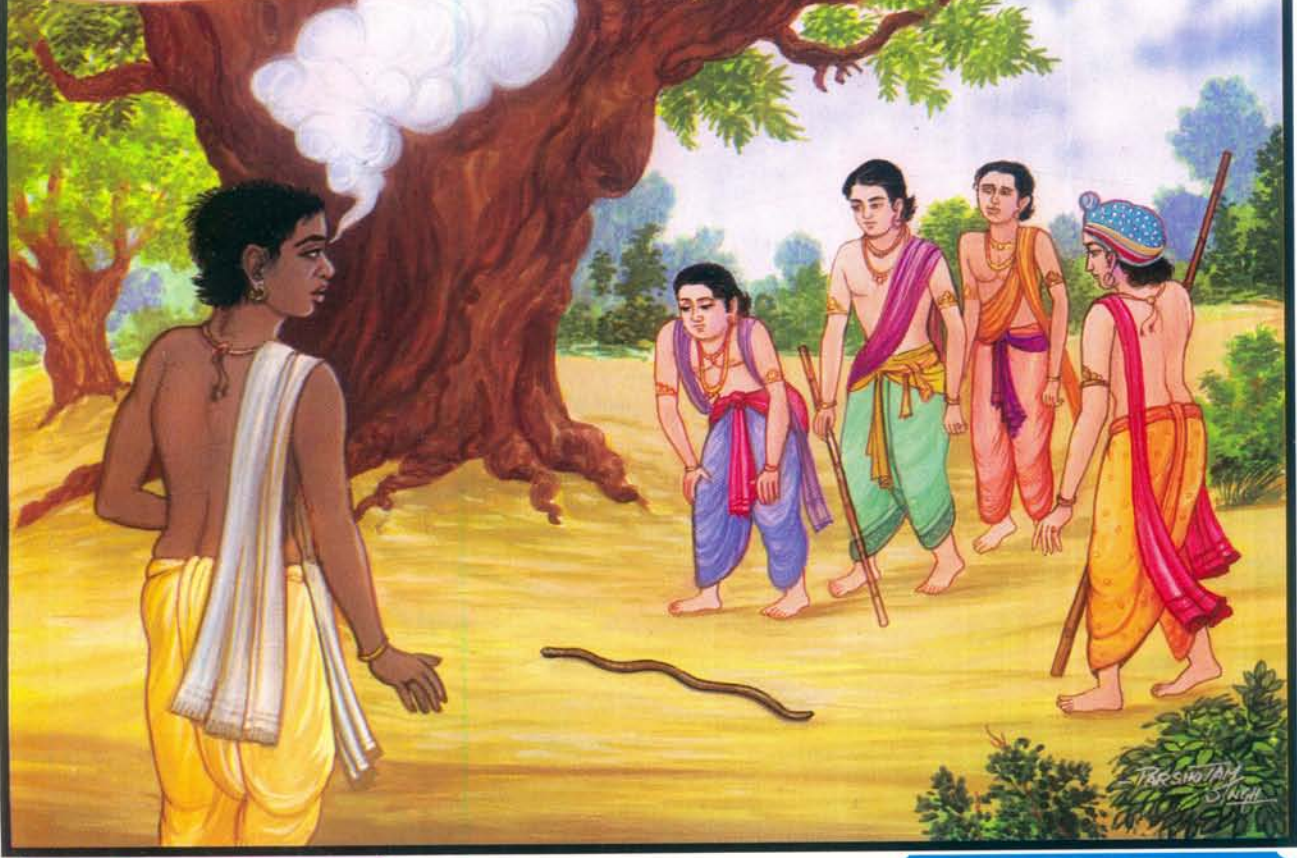
राजा अपनी पुत्री को साथ लेकर तिन्दुक यक्ष के आयतन में पहुँचा। पिता ने अपनी पुत्री के अपराध के लिये क्षमा माँगी और करबद्ध होकर तथा भद्रा को सामने करके प्रार्थना की—“भगवन्! इस कन्या ने आपका बहुत बड़ा अपराध किया है। इसका प्रायश्चित्त यही है कि आप इसके साथ पाणिग्रहण करें और यह कन्या परिचारिका के रूप में आपकी सेवा करे।”

मुनि हरिकेशबल ने कहा—“राजन्! न तो इस कन्या ने मेरा कोई अपराध किया है और न मेरा अपमान ही हुआ है। पाणिग्रहण की बात तो बहुत दूर, मैं ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करने वाला हूँ। जहाँ स्त्रियों का आवागमन हो, वहाँ मैं ठहर भी नहीं सकता। तुम अपनी पुत्री को ले जाओ। मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं है।”

राजा ने कन्या को यक्ष-प्रकोप से मुक्त करने की मुनि से प्रार्थना की; लेकिन मुनि मौन हो गये। तब यक्ष ने ही कहा—“मुनि तुम्हें स्वीकार नहीं करते तो तुम चली जाओ।”

राजा अपनी पुत्री के साथ वापस लौट आया।<sup>१</sup>

१. (विशेष-ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि राजा अपनी पुत्री को वहीं छोड़कर चला आता है। यक्ष मुनि हरिकेशबल का रूप रखकर राजकुमारी के साथ पाणिग्रहण करता है। प्रातः मुनि से सच्चाई जानकर राजकुमारी वापस राजमहल लौट जाती है। तदुपरान्त ऋषि-पत्नी मानकर उसका विवाह याज्ञिक रुद्रदेव के साथ होता है।)



## हरिकेशबल का चिन्तन

हरिकेशबल ने देखा कि विषधर साँप को सभी मारते हैं, परन्तु विषरहित अलसिये को कोई नहीं मारता। यह सोचता हुआ वह चिन्तन में गहरा उतर गया। (पूर्वालोक)

—अध्ययन 12, सू. 00

## HARIKESH-BALA'S THOUGHTS

Harikesh-bala saw that everyone kills a poisonous snake but no one kills a benign snake. This inspired him and he went deep into thoughts.

—Chapter 12, Foreview







## मुनि की महिमा

- (1) यक्ष-पूजा करके आई राजकुमारी भद्रा ने जब कुरूप मुनि को वहाँ देखा तो उसने घृणापूर्वक मुनि के ऊपर थूक दिया।
- (2) मुनि-भक्त यक्ष ने क्रुद्ध होकर राजकुमारी को मूर्च्छित कर दिया। जब वह किसी भी उपचार से स्वस्थ नहीं हुई तो यक्ष ने स्वप्न में निर्देश दिया—राजकुमारी मुनि के साथ विवाह करेगी तभी स्वस्थ हो पायेगी। (पूर्वालोक)

—अध्ययन 12, सू. 00

## THE GLORY OF THE ASCETIC

- (1) After Yaksha-worship, when princess Bhadra came and saw an ugly ascetic there, she spat at him hatefully.
- (2) The Yaksha, a devotee of the ascetic, got angry and he made her unconscious. When all the treatments failed to bring her to senses, the Yaksha gave direction in dream – If the princess marries the ascetic, only then she will regain her senses.

—Chapter 12, Foreview





राजा ने मंत्रियों से विचार-विमर्श किया तो मंत्रियों ने कहा—“मुनि-परित्यक्ता कन्या का विवाह ब्राह्मण के साथ ही किया जा सकता है।” अतः भद्रा का विवाह विप्र रुद्रदेव याज्ञिक के साथ हो गया।

रुद्रदेव ने अपनी यज्ञशाला की व्यवस्था नवविवाहिता पत्नी राजकुमारी भद्रा को सौंपी और एक विशाल यज्ञ का आयोजन किया।

मासोपवासी मुनि हरिकेशबल भिक्षा हेतु भ्रमण करते हुए संयोगवश उसी यज्ञशाला में पहुँचे।

आगे की कथा प्रस्तुत अध्ययन की गाथा १२ से ४७ तक प्रतिपादित है।

इस अध्ययन में कई ऐसी विशेषताएँ हैं, जो शाश्वत महत्व की हैं; जैसे—

जाति का कोई महत्व नहीं; शील-सदाचार, तप-त्याग आदि ही महत्वपूर्ण होते हैं।

यज्ञ-याग आदि का वास्तविक स्वरूप।

वैदिक परम्परा जाति पर आधारित है। जाति-व्यवस्था के आधार पर ही ब्राह्मण सर्वोच्च और पूज्य माने जाते थे; जबकि चांडाल आदि निकृष्टतम।

श्रमण (जैन और बौद्ध दोनों) परम्परा जाति का महत्व नहीं मानती, यहाँ सदाचरण और गुणों का महत्व तथा तप-त्याग की विशेषता मानी गई है।

प्रस्तुत अध्ययन में मुनि हरिकेशबल ने वैदिक और जैन-दोनों परम्पराओं के समन्वय का प्रयास किया है।

प्रस्तुत अध्ययन में पुण्य क्षेत्र, आत्मिक यज्ञ, शील-सदाचार, चारित्र्य, ब्रह्मचर्य आदि की यथार्थ स्थिति की बड़े ही सम्यक् ढंग से विवेचना करके स्थापना की गई है।

ब्राह्मणत्व पर श्रमणत्व की विजय की अनुगूँज प्रसरित हो रही है।

प्रस्तुत अध्ययन में ४७ गाथाएँ हैं।





## DWADASH ADHYAYAN : HARIKESHIYA

### Foreview

The title of this chapter is derived from the name of its principal character Harikesh-bala.

In the preceding chapter the glory of accomplished scholarly ascetics (*bahushrut*) has been described. In this chapter the glory and powerful magnetism of the accomplished scholarly ascetic Harikesh-bala, who strictly followed the duties of a *Shraman* (Jain ascetic), has been narrated in a lucid and exciting style.

It is natural to have curiosity about ascetic Harikesh-bala's birth in a *chandaal* (untouchable low caste; keeper of cremation ground) family, important events of his past birth and this birth, initiation into ascetic order and strict observation of the code of conduct. Moreover, it is also necessary to know about all such incidents in order to appreciate his lofty spiritual level.

### The Story

Briefly speaking, the important incidents in ascetic Harikesh-bala's life are as follows—

King Shankha, the king of Mathura city got detached from his mundane life. He did rigorous austerities. As a result he acquired many boons and special powers.

Wandering from one village to another, he arrived in Hastinapur and went into the city to seek alms. There were two roads into the city. When he saw no movement on one of these roads, ascetic Shankha hesitated. He saw a man sitting outside a house and asked about the way into the city.

That person was Brahmin Somdutt. He was proud of his clan and averse to *shramans*. As such, he pointed at the wrong path and said—“This is a short cut. You will reach the city in no time.”

The austere ascetic took that very path.

The fact was that this road was called *Hutashan* or *Hutavaha-rathya* (Fiery road). It was always hot like fire and was difficult to walk on. During the summer months it simmered like a red hot griddle.

Somdutt had pointed out this path to ascetic Shankha due to his hatred for sages. However, he was amazed when he saw the ascetic saunter peacefully on that road like an elephant. In order to check he himself walked on that road and found the path to be as



cool as snow. He realized that this ascetic has special powers. The road has cooled down due to his power of penance.

Saluting the power of miracle, Brahmin Somdutt at once approached ascetic Shankha and begged forgiveness for his mistake.

Jain ascetics are kind and forgiving. Ascetic Shankha forgave Somdutt and, on his request, gave him sermon. Getting enlightened Somdutt got initiated and started observing austerities. But he could not get rid of his pride of caste and beauty. Even at the last moment of his life he was still trapped in the pride of his caste. In spite of that, as a consequence of following ascetic conduct, he reincarnated as a divine being.

At the end of his divine life-span he was reborn as the son of Gauri the wife of Balakott, the chief of the Harikesh clan of Chandaals on the banks of river Mritaganga. He was named as Bala.

With passage of time he became popular as Harikesh-bala.

Due to pride of clan and beauty during his past birth he was reborn in lowest Chandaal caste with a dark, deformed and grotesque body. As he grew up his disposition also became violent. He became ill tempered, quarrelsome and sharp tongued. Everyone in the village including children of his age despised him. He became a thorn even in the flesh of his parents.

Once all the people of his hamlet were enjoying the spring ceremony in a nearby garden. Boys were playing. Harikesh-bala also tried to play with them. While playing he got angry on something and started abusing. His playmates threw him out. He sat aside disgraced. Everyone was enjoying but Harikesh-bala was staring at them sitting alone.

All of a sudden a poisonous snake came out. The crowd at once killed it with canes and sticks. After some time a benign snake came out. Seeing it, people said—"Oh! It is not poisonous. It does not bite anybody. What is the use of killing it? Catch it and leave it at some far away place." Some of them took snake away and resumed their fun games on coming back.

Harikesh-bala observed all this. He got lost in his thoughts. His train of thoughts took a turn—"Due to his own faults a living being suffers and is disgraced by the society. People killed the poisonous snake and did not kill the non-poisonous one. I am neglected and ignored due to my pungent speech and misbehaviour. If I remove these faults, I will be loved by all. But why these vices infected me? What is the cause of this....."

Pondering thus Harikesh-bala went deeper and deeper. He attained *Jatismaran-jnana* (the awakening of the memories of the past births). Two former births (as Brahmin Somadutt and the reincarnation as god) surfaced in his memory like a movie.



He at once got disgusted and detached from worldly connections and pleasures. He also came to know the reason for his lowly birth, ugly looks and all other vices.

He stood up and moved away. Finding a Jain ascetic he got initiated and started observing ascetic conduct strictly. Chandaal Harikesh-bala now became ascetic Harikesh-bala and commenced his itinerant way. His austerities reached such heights that even gods started bowing to him; considering him venerable, they were ever ready to serve him.

Wandering from one village to another, he came to Varanasi city. In a Yaksha temple in a garden he took a vow of month long fast and stood engrossed in meditation. Impressed by his rigorous austerities Yaksha Tinduka accepted him as object of his adoration and devotion.

One day Bhadra, the daughter of king Kaushalika, came to the Yaksha temple for worship with her friends. While circumambulating the Yaksha idol, her glance fell on the meditating ascetic. Seeing his repulsive appearance, dirty body and dress, princess Bhadra was filled with repugnance. With disgust she spat on the face of the ascetic.

Tinduka Yaksha could not bear this insult of the ascetic he worshipped. He at once entered the mind of the princess. Possessed by the Yaksha, princess started flailing and uttering incoherent sounds before falling unconscious. Her friends somehow carried her to the palace.

The king tried a variety of cures but his daughter's condition did not improve. He got concerned for his daughter's life. At that time the Yaksha possessing the princess spoke—

“O king! No matter what treatment you give, you cannot cure your daughter. She has insulted a great ascetic who was meditating in my temple. It is I who put her into this state in order to punish her. If you marry her to that great saint I will free her, otherwise I will not allow her to live.”

Every father loves his daughter. The king accepted Yaksha's terms and in turn the Yaksha released the princess from his clutches. The princess was cured.

The king came to the temple of Tinduka Yaksha with her daughter. The father begged forgiveness for the offence of his daughter. With joined palms he made Bhadraa step ahead and submitted—“Revered one! The offence of my daughter is very serious. The only expiation for her is that you please wed this girl and then she serves you as a maidservant.”

Ascetic Harikesh-bala said—“O king! Neither this girl has committed any offence against me nor have I been insulted. I observe the great vow of celibacy. What to say of wedding, I cannot even stay at a place frequented by women. Please take away your daughter. She is of no use to me.”



The king requested the ascetic to get her daughter rid of the torment caused by the Yaksha, but the ascetic remained silent. However, the Yaksha himself said—“If the ascetic does not accept you, you may go.”

The king and his daughter returned.<sup>1</sup>

When the king consulted his ministers about his daughter’s marriage, they informed—“A girl abandoned by her husband can only be married to a Brahmin.” As such, Bhadra was married to Brahmin Rudradev, a *yajna* priest.

Rudradeva entrusted the management of his Yajna enclosure to his newly wedded wife Bhadra and organized an elaborate *Yajna*.

In order to conclude his month-long fast ascetic Harikesh-bala wandering to seek alms coincidentally arrived at the same *Yajna* enclosure.

From this point on the story continues in verses 12 to 47 of this chapter.

This chapter has some special features of lasting importance, such as—

Caste is of no importance at all. Only virtues such as uprightness, good conduct, austerities and detachment are important.

The true concept of Yajna or sacrifice and offerings is shown.

Vedic tradition is based on caste. It is on the basis of the caste system that Brahmins are considered to be highest and venerable while Chandaals and the like, the lowest and worst.

Shraman traditions (both Jain and Buddhist) do not give importance to caste. They give importance to good conduct and virtues and value austerities and detachment.

In this chapter ascetic Harikesh-bala makes efforts of co-operation and assimilation between the Vedic and Jain traditions.

Factual position of meritorious area, self-*yajna* (self-sacrifice), uprightness and good behaviour, conduct, celibacy etc., has been authenticated with proper elaboration.

The theme of victory of *Shramanism* (Jainism) over Brahminism radiates from this chapter.

The chapter has 47 verses.



1. There is another version of the story from this point on—the king left his daughter there and went back. The Yaksha disguises himself as the ascetic and marries the princess. In the morning when the princess hears the truth from the ascetic she returns to the palace. Later on considering her to be the wife of an ascetic, she is married to Rudradev, a *yajna* priest.



बारसमं ब्रज्जयणं : हरिणुसिज्जं  
द्वादश अध्ययन : हरिकेशीय  
Chapter-12 : HARIKESH

सोवागकुलसंभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी।  
हरिएसबलो नाम, आसि भिक्खू जिइन्दिओ ॥ १ ॥

हरिकेशबल नामक मुनि श्वपाक-चाण्डाल-कुल में उत्पन्न हुये थे किन्तु वे क्षमा आदि उत्तम गुणों को धारण करने वाले जितेन्द्रिय भिक्षु थे ॥ १ ॥

Ascetic Harikesh-bala was born in Shvapaak (*chandaal*) clan; but he was an ascetic endowed with great virtues including forgiveness and had conquered his senses. (1)

इरि-एसण-भासाए, उच्चार-समिईसु य।  
जओ आयाणनिक्खेवे, संजओ सुसमाहिओ ॥ २ ॥

ईर्या, भाषा, एषणा, उच्चार-प्रस्रवण-खेल्ल-जल्ल परिष्ठापनिका एवं आदान-निक्षेपण-इन पाँच समितियों में यतनाशील, सुसमाधिस्थ एवं संयत थे ॥ २ ॥

He was alert in five circumspections (*samitis*) of movement (*iryā*), speech (*bhasha*), alms-seeking (*eshana*), (4) disposal of excreta (*uchchaar-prasravan-khella-jalla parishthapanika*) as well as give and take (*aadaan-nikshepan*), as also serene and self-controlled. (2)

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइन्दिओ।  
भिक्खट्ठा बम्भ-इज्जंमि, जन्नवाडं उवट्ठिओ ॥ ३ ॥

मन-वचन-काय गुप्तियों से गुप्त, इन्द्रियविजयी मुनि हरिकेशबल एक दिन भिक्षा हेतु ब्राह्मणों द्वारा संपादित यज्ञ-मंडप में पहुँचे ॥ ३ ॥

Restrained by three restraints (*gupti*) of mind, speech and body, ascetic Harikesh-bala, the conqueror of senses, while seeking alms, arrived in a *yajna* enclosure managed by Brahmins. (3)

तं पासिरुणामेज्जन्तं, तवेण परिसोसियं।  
पन्तोवहिउवगरणं, उवहसन्ति अणारिया ॥ ४ ॥

तप से कृश हुए शरीर वाले तथा मलिन एवं जीर्ण उपकरण वाले मुनि को यज्ञ-मंडप की ओर आते देखकर अनार्य-अशिष्ट व्यक्ति उनका उपहास करने लगे ॥ ४ ॥

When they saw an ascetic, with penance-emaciated body, dressed in rags and carrying old and shabby ascetic-equipment, approaching the *yajna* enclosure, the rustic gathering of people started making fun of him. (4)





जाईमयपडिथद्ध, हिंसगा अजिइन्दिया ।

अब्रम्भचारिणो बाला, इमं वयणमब्बवी— ॥ ५ ॥

जातिमद के अहंकार से ग्रसित, हिंसक, अजितेन्द्रिय, अब्रह्मचारी और अज्ञानी ब्राह्मण इस प्रकार के वचन कहने लगे— ॥ ५ ॥

Possessed by arrogance of their caste the ignorant Brahmins, maligned with violence, unbridled senses and non-celibacy, started uttering as follows—(5)

कयरे आगच्छइ दित्तरूवे, काले विगराले फोक्कनासे ।

ओमचेलाए पंसुपिसायभूए, संकरदूसं परिहरिय कण्ठे? ॥ ६ ॥

दैत्य जैसे बीभत्स रूप वाला, काला-कलूटा, विकराल, मोटी और बेडौल नाक वाला, अल्प और जीर्ण वस्त्र वाला, पिशाच जैसा गले में श्मशानी फटा चिथड़ा धारण किये हुये यह कौन आ रहा है? ॥ ६ ॥

With demon-like disgusting disposition, dark complexion, dreadful appearance, broad and misshaped nose, scanty and tattered dress and carrying filthy rags of the dead around his neck, who is this coming here? (6)

कयरे तुमं इय अदंसणिज्जे, काए व आसा इहमागओ सि ।

ओमचेलगा पंसुपिसायभूया, गच्छ क्खलाहि किमिह ठिओ सि? ॥ ७ ॥

अदर्शनीय रूप वाले तुम कौन हो? किस आशा से यहाँ आये हो? अरे जीर्णवस्त्रधारी, पिशाच-जैसे दिखाई देने वाले, तुम यहाँ क्यों खड़े हो? हटो, यहाँ से चले जाओ ॥ ७ ॥

Who are you, abominable man? What expectation brings you here? Hey! Devilish looking man in tattered clothes, why are you standing here? Move! Go away from here. (7)

जक्खो तहिं तिन्दुयरुक्खवासी, अणुकम्पओ तस्स महामुणिस्स ।

पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइमुदाहरित्था— ॥ ८ ॥

उस समय तिन्दुक वृक्षवासी यक्ष जो मुनि के प्रति अनुकम्पाभावी (सेवाभावी) था, उसने अपने शरीर को छिपाकर, मुनि के शरीर में प्रविष्ट होकर इस प्रकार के वचन कहे— ॥ ८ ॥

At that moment the Yaksha residing on Tinduka tree, with feelings of compassion (devotion) for the ascetic, concealed his own body, entered the body of the ascetic and said—(8)

समणो अहं संजओ बम्भयारी, विरओ धणपयणपरिग्हाओ ।

परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥ ९ ॥

मैं श्रमण हूँ, संयमी हूँ, ब्रह्मचारी हूँ, धन-पचन (भोजन पकाने), परिग्रह से विरत हूँ। मैं तो भिक्षा के समय, दूसरों के लिये बनाए गये आहार के लिये तुम्हारे यज्ञ-मंडल में आया हूँ ॥ ९ ॥

I am a *shraman* (Jain ascetic), who is restrained, celibate, free of any possessions and the need of cooking food. I have come at appropriate time (post meal-time) to your *yajna* enclosure to seek food that has been cooked for others (not for me). (9)



वियरिज्जइ खज्जइ भुज्जइ य, अन्नं पभूयं भवयाणमेयं ।  
जाणाहि मे जायणजीविणु त्ति, सेसावसेसं लभऊ तवस्सी ॥ १० ॥

यहाँ प्रचुर आहार दिया जा रहा है, खाया जा रहा है, उपभोग किया जा रहा है। आप यह निश्चित जानिये कि मैं भिक्षाजीवी हूँ। अतः बचे हुये आहार में से कुछ तपस्वी को भी मिल जाए ॥ १० ॥

Here plenty of food is being given, eaten and consumed. I assure you that I subsist only on alms. Therefore, please let the ascetic get some food out of the leftovers. (10)

उवक्खडं भोयण माहणाणं, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं ।  
न ऊ वयं एरिसमन्न-पाणं, दाहासु तुज्झं किमिहं ठिओ सि? ॥ ११ ॥

(याज्ञिक प्रमुख रुद्रदेव)—यहाँ बनाया हुआ, यह भोजन केवल ब्राह्मणों के अपने लिये है, एकपक्षीय है, अतः दूसरों को नहीं दिया जा सकता। हम तुम्हें इसमें से भोजन नहीं देंगे। फिर तुम यहाँ क्यों खड़े हो? ॥ ११ ॥

(Rudradeva, the head priest of the *yajna*—) The food prepared here is for Brahmins and exclusively for us. As such, it cannot be given to others. We will not give any food to you from this. Then why are you standing here? (11)

थलेसु बीयाइ ववन्ति कासगा, तहेव निन्नेसु य आससाए ।  
एयाए सद्धाए दलाह मज्झं, आराहए पुण्णमिणं खु खेत्तं ॥ १२ ॥

(मुनि शरीर में प्रविष्ट यक्ष)—उत्तम फसल की आशा से कृषक जैसे ऊँची भूमि में बीज बोता है, उसी प्रकार नीची भूमि में भी बोता है। इसी श्रद्धा से मुझे भोजन देकर इस पुण्य क्षेत्र की आराधना अवश्य कर लो ॥ १२ ॥

(The yaksha in the body of the ascetic —) Farmers with the hope of high yield sow seeds on higher ground and lower ground alike. With the same belief, by giving me food you must propitiate (cultivate) this (lower) field too to gain merit. (12)

खेत्ताणि अहं विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहन्ति पुण्णा ।  
जे माहणा जाइ-विज्जोववेया, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥ १३ ॥

(रुद्रदेव)—संसार में हमें ऐसे क्षेत्र ज्ञात हैं, जिनमें बोया हुआ बीज पूर्ण रूप से उग आता है और ऐसे पुण्य क्षेत्र जाति तथा विद्या से संपन्न ब्राह्मण ही हैं ॥ १३ ॥

(Rudradeva —) We are well aware of such areas in the world where sown seed fully grows. Such meritorious areas are Brahmins only, who are of high birth and endowed with learning. (13)

कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहं च ।  
ते माहणा जाइविज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥ १४ ॥

(यक्ष)—जिनके जीवन में क्रोध, मान, हिंसा, असत्य, परिग्रह आदि दुर्गुणों का समावेश है वे ब्राह्मण होते हुए भी विद्या और जाति से हीन हैं, वे पाप क्षेत्र हैं ॥ १४ ॥



(Yaksha –) Although Brahmin, whose life is maligned with vices like anger, conceit, violence, falsehood, covetousness, they are lowly in terms of learning and caste; they, in fact, are areas of sin. (14)

तुष्मेत्य भो! भारधरा गिराणं, अट्टं न जाणाह अहिज्ज वेए।  
उच्चावयाइं मुणिणो चरन्ति, ताइं तु खेत्ताइं सुपेसलाइं ॥ १५ ॥

हे विप्रो! तुम केवल वेद आदि वाणी का बोझा ही ढो रहे हो। वेदों को पढ़कर भी उनका अर्थ नहीं समझते हो। स्वयं पाचन (भोजन बनाकर) न करके जो संयमी भिक्षु समभावपूर्वक ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े घरों से प्राप्त भिक्षा द्वारा अपनी संयम यात्रा का निर्वाह करते हैं, वे ही वास्तविक पुण्य क्षेत्र हैं ॥ १५ ॥

O Brahmins! You only carry the burden of the words of scriptures including the *Vedas*. Although you have read the *Vedas*, you still do not understand their meaning. The ascetics who are not cooking food themselves and subsisting on alms sought from high and low or large and small families to continue their journey of restraints, only they are the real fields of merit. (15)

अज्झावयाणं पडिकूलभासी, पभाससे किंतु सगासि अम्हं।  
अवि एयं विणस्सउ अन्नपाणं, न य णं दहामु तुमं नियण्ठा ॥ १६ ॥

(रुद्रदेव के छात्र) हमारे अध्यापकों के प्रति ऐसे प्रतिकूल वचन बोलने वाले निर्ग्रन्थ! तू क्यों बढ़-बढ़कर बोल रहा है? यह भोजन, चाहे सड़-गलकर नष्ट हो जाए, किन्तु तुमको बिलकुल भी नहीं देंगे ॥ १६ ॥

(Pupils of Rudradeva –) O Knotless Ascetic! How dare you speak such nasty words against our teachers? Why you are boasting so much? Even if this food rots and is wasted, we will not give it to you at all. (16)

समिईहि मज्झं सुसमाहियस्स, गुत्तीहि गुत्तस्स जिइन्दियस्स।  
जइ मे न दाहित्थ अहेसणिज्जं, किमज्ज जत्राण लहित्थ लाहं? ॥ १७ ॥

(यक्ष) — मैं पाँच समितियों से समाहित तथा तीन गुप्तियों से गुप्त और जितेन्द्रिय हूँ। यदि मुझे यह निर्दोष भोजन नहीं दोगे तो इस यज्ञ का लाभ तुम्हें कैसे मिलेगा? ॥ १७ ॥

(Yaksha –) I am composed by five circumspections and restrained by three restraints and have subdued to my senses. If you do not give me this faultless food, how can you get the benefits of this *yajna*? (17)

के एत्थ खत्ता उवजोइया वा, अज्झावया वा सह खण्डिइहिं।  
एयं खु दण्डेण फलेण हन्ता, कण्ठम्मि घेतूण खलेज्ज जो णं? ॥ १८ ॥

(रुद्रदेव) — यहाँ क्षत्रिय, रसोइया, अध्यापक, छात्र आदि कोई है जो इस निर्ग्रन्थ को डण्डे से, काष्ठ के फलक से पीटकर और गला पकड़कर निकाल दे ॥ १८ ॥



(Rudradeva-) Is there any Kshatriya (of martial race), cook, teacher or student present here who can drive this ascetic (*nirgranth*) off by beating with stick or wooden plank and holding from the neck ? (18)

अज्झावयाणं वयणं सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।  
दण्डेहि वित्तेहि कसेहि चेष, समागया तं इसि तालयन्ति ॥ १९ ॥

अध्यापकों के ऐसे वचन सुनकर वहाँ बहुत-से कुमार दौड़ते हुये आए और ऋषि (हरिकेशबल) को डंडों से, बेंतों से, चाबुकों से पीटने लगे ॥ १९ ॥

Hearing these words from teachers, many youngsters rushed forward and started beating ascetic Harikesh-bala with canes, sticks and whips. (19)

रत्तो तर्हि कोसलियस्स धूया, भद्द त्ति नामेण अणिन्दियंगी ।  
तं पासिया संजय हम्ममाणं, कुब्धे कुमारे परिनिव्ववेइ ॥ २० ॥

कौशलिक राजा की अनिन्द्य सुन्दरी भद्रा नामक पुत्री ने ऋषि को इस प्रकार पिटते देखा तो क्रुद्ध कुमारों को शान्त करने का प्रयास करने लगी ॥ २० ॥

When Bhadraa, the spotlessly beautiful daughter of king Kaushalika, saw the ascetic being beaten thus, she tried to appease the angry youngsters. (20)

देवाभिओगेण निओइएणं, दिन्ना मु रत्ता मणसा न झाया ।  
नरिन्द-देविन्दऽभिवन्दिएणं, जेणऽमि वन्ता इसिणा स एसो ॥ २१ ॥

(भद्रा) —यक्ष देवता की बलवती प्रेरणा से प्रेरित होकर मेरे पिता राजा कौशलिक ने मुझे इनको प्रदान किया था; किन्तु इन मुनि ने मुझे मन से भी नहीं चाहा। मेरा परित्याग करने वाले ये ऋषि नरेन्द्रों और देवेन्द्रों द्वारा भी पूजित हैं ॥ २१ ॥

(Bhadraa-) On insistence of a yaksha my father gave me to this revered ascetic; but this ascetic had no desire for me. This great ascetic, who abandoned me, is worshipped by kings of men and gods. (21)

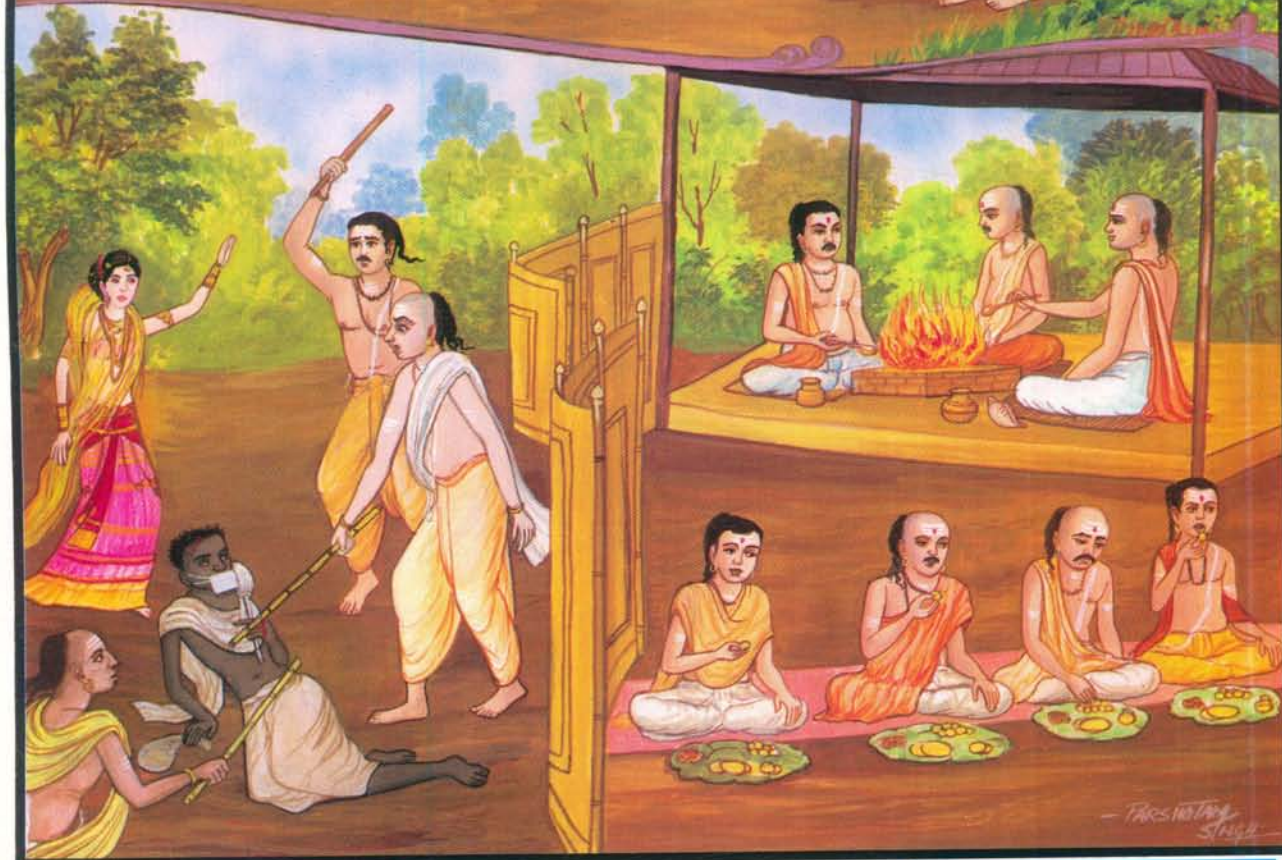
एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइन्दिओ संजओ बम्भयारी ।  
जो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रत्ता ॥ २२ ॥

ये वही उग्र तपस्वी, महात्मा, इन्द्रियविजेता, संयत और ब्रह्मचारी हैं; जिन्होंने उस समय मेरे पिता राजा कौशलिक द्वारा मुझे इनको दिये जाने पर भी इन्होंने मेरी तनिक भी इच्छा नहीं की ॥ २२ ॥

This is the same rigorous hermit, great soul, conqueror of senses, restrained and celibate ascetic, who did not have even slightest desire for me even when my father, king Kaushalik gave me to him. (22)

महाजसो एस महाणुभागो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य ।  
मा एयं हीलह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भे निद्देहज्जा ॥ २३ ॥

ये मुनि महायशस्वी, महानुभाव, घोर व्रती और घोर पराक्रमी हैं। ये अवहेलना योग्य नहीं हैं। इनकी अवहेलना मत करो। कहीं ऐसा न हो कि अपने तप-तेज से ये तुम सब को भस्म कर दें ॥ २३ ॥



## हरिकेशीबल मुनि

- (1) राजा ने विविध उपहारों के साथ राजकुमारी को सजाकर, मुनि से उसे पत्नी रूप में स्वीकारने की प्रार्थना की।
- (2) यज्ञशाला की ओर मुनि को भिक्षा के लिये आया देखकर ब्राह्मणों ने क्रोधित होकर मुनि को डण्डों आदि से पीटा। भद्रा राजकुमारी ने उन्हें यह दुष्कृत्य करने से रोककर मुनि के तपःप्रभाव का वर्णन किया।

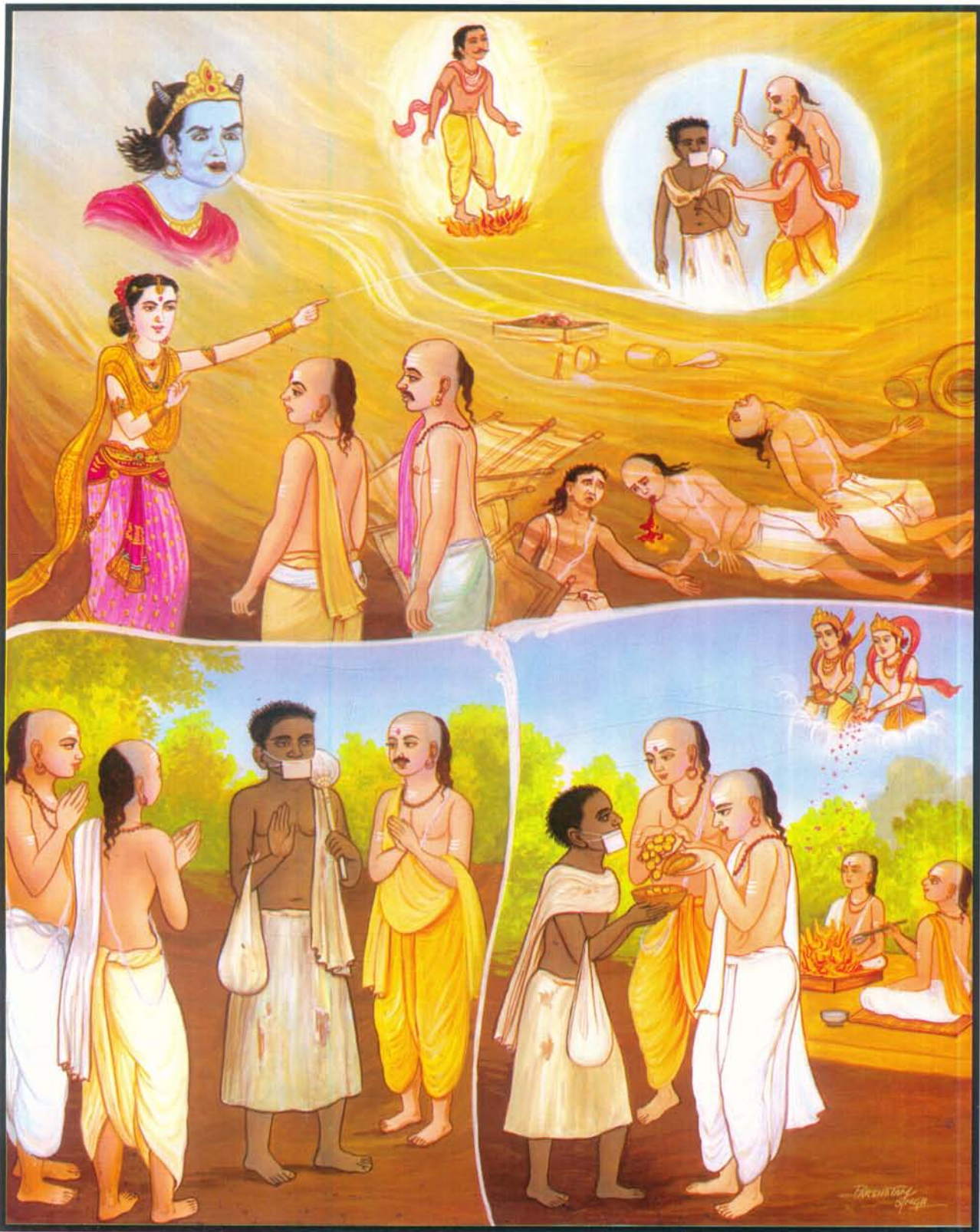
—अध्ययन 12, सू. 9-23

## ASCETIC HARIKESH-BALA

- (1) The king offered a variety of gifts and requested the monk to accept the princess in marriage.
- (2) When the Brahmins saw the ascetic approaching the Yajna pavilion they got angry and started beating him with sticks. Princess Bhadra stopped them from doing this misdeed and described the power of austerities of the ascetic.

—Chapter 12, Aphorism 9-23





## क्षमाशील मुनि

- (1) मुनि-भक्त यक्ष ने क्रुद्ध होकर यज्ञ की सब सामग्री बिखेर दी। ब्राह्मण कुमारों की दुर्दशा की। तब राजकुमारी ने ब्राह्मणों को समझाया—यह सब मुनि के अपमान का दुष्फल है उनसे क्षमा माँगो।
- (2) भयभीत ब्राह्मणों ने मुनि से क्षमा माँगी और भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की। मुनि ने शान्त भाव से भिक्षा ग्रहण की।

—अध्ययन 12, सू. 24-30, 34

## THE FORGIVING ASCETIC

- (1) Fervent devotee of the ascetic, the Yaksha became angry and scattered all the material of the yajna offerings. He tortured the Brahmin youth. Then the princess explained the Brahmins – all this is the bitter consequence of insulting the sage. Beg his pardon.
- (2) Fear stricken Brahmins begged forgiveness from the sage and requested to accept alms. The sage accepted alms serenely.

—Chapter 12, Aphorism 24-30, 34







This ascetic possesses great fame and power. He observes rigorous austerities. He is highly valorous. He should not be neglected or ill treated lest he consumes you all by his fire of austerities. (23)

एयाइं तीसे वयणाइ सोच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुहासियाइं।  
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खा कुमारे विणिवारयन्ति ॥ २४ ॥

रुद्रदेव पुरोहित की पत्नी भद्रा के इन सुन्दर वचनों को सुनकर ऋषि हरिकेशबल की सेवा करने वाले यक्षों ने भी उन विप्र कुमारों को रोकने का प्रयत्न किया ॥ २४ ॥

Hearing these sweet words of Bhadraa, wife of the chief priest Rudradeva, the attendant yakshas (a kind of divine beings) of ascetic Harikesh-bala, also tried to stop the Brahmin youngsters. (24)

ते घोररूवा ठिय अन्तलिक्खे, असुरा तहिं तं जणं तालयन्ति।  
ते भिन्नदेहे रुहिरं वमन्ते, पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो— ॥ २५ ॥

आकाश में स्थित भयंकर रूप और असुरभाव वाले यक्ष उन कुमारों को प्रताड़ित करने लगे। उन अदृश्य प्रहारों से विप्रकुमारों के क्षत-विक्षत शरीर और उन्हें रक्त-वमन करते हुये देखकर भद्रा ने पुनः कहा— ॥ २५ ॥

Yakshas having ferocious appearance and evil attitude lurking in the sky started tormenting those youngsters. Seeing the bodies of the Brahmin youngsters wounded by invisible blows and vomiting blood, Bhadraa spoke again—(25)

गिरिं नहेहिं खणह, अयं दन्तेहिं खायह।  
जायतेयं पाएहिं हणह, जे भिक्खुं अवमन्नह ॥ २६ ॥

जो लोग साधु का अपमान करते हैं, वे नाखूनों से पर्वत खोदते हैं, दाँतों से लोहा खाते हैं, पैरों से अग्नि को कुचलते हैं ॥ २६ ॥

Those who insult an ascetic, they dig the mountain by nails, cut iron by teeth, vanquish fire by bare feet. (26)

आसीविसो उगतवो महेसी, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।  
अगणिं व पक्खन्द पयंगसेणा, जे भिक्खुयं भत्तकाले वहेह ॥ २७ ॥

ये महर्षि आशीविष (लब्धि-सम्पन्न) हैं, उग्र तपस्वी, घोर व्रती और महापराक्रमी हैं। जो व्यक्ति भिक्षा के समय भिक्षु को व्यथित करते हैं, वे पतंगों के समान अग्नि में कूदते हैं ॥ २७ ॥

This great ascetic has venomous fangs (endowed with divine powers), observer of rigorous austerities, resolute in vows and highly valorous. Those who torment an alms-seeking ascetic fall in fire, like moths. (27)

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सब्वजणेण तुब्भे।  
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा, लोगं पि एसो कुविओ डहेज्जा ॥ २८ ॥



यदि तुम लोग अपना जीवन तथा धन सुरक्षित चाहते हो तो सिर झुकाकर सभी इनकी शरण ग्रहण करो। ये मुनि यदि क्रोधित हो गये तो सम्पूर्ण संसार को भस्म कर सकते हैं ॥ २८ ॥

If you want your life and wealth safe then submit to him with bowed heads. If this ascetic becomes furious he can burn the whole world to ashes. (28)

अवहेडिय पिट्ठसउत्तमंगे, पसारियाबाहु अकम्मचेट्ठे।

निब्भेरियच्छे रुहिरं वमन्ते, उड्ढं मुहे निग्गय-जीह-नेत्ते ॥ २९ ॥

मुनि हरिकेशबल को पीटने वाले छात्रों के सिर पीठ की ओर झुक गये थे। उनकी बाहुएँ फैल गई थीं और वे निश्चेष्ट हो गये थे तथा उनकी आँखें खुली रह गई थीं। उनके मुखों से रक्त निकलने लगा था, मुँह ऊपर को हो गये थे और जिह्वाएँ बाहर की ओर निकल आई थीं ॥ २९ ॥

The students, who were beating ascetic Harikesh-bala, had their heads bent backwards and arms spread wide. They were lying senseless with their eyes wide open. They were vomiting blood with upturned mouth and tongues protruding. (29)

ते पासिया खण्डिय कट्ठभूर, विमणो विसण्णो अह माहणो सो।

इसिं पसाएइ सभारियाओ, हीलं च निन्दं च खमाह भन्ते ॥ ३० ॥

छात्रों को कष्ट के समान निश्चेष्ट देखकर वह विप्र रुद्रदेव उदास और भयभीत हो गया तथा अपनी पत्नी भद्रा सहित मुनि को प्रसन्न करने लगा, कहने लगा—हे भगवन्! हमने जो आपकी निन्दा और अवहेलना की है, हमारे इस अपराध की क्षमा प्रदान करें ॥ ३० ॥

Seeing his students like lifeless logs, Brahmin Rudradeva became sad and fearful. He and his wife Bhadraa began appeasing the ascetic. He submitted—O Revered one! We have abused and insulted you. Please forgive us for this offence. (30)

बालेहिं मूढेहिं अयाणएहिं, जं हीलिया तस्स खमाह भन्ते!

महप्पसाया इसिणो हवन्ति, न हु मुणी कोवपरा हवन्ति ॥ ३१ ॥

हे भगवन्! ऋषिजन तो महान् प्रसन्नचित्त होते हैं, वे किसी पर क्रोध नहीं करते। आप भी इन मूर्ख अज्ञानी बालकों को इनके द्वारा की गई आपकी अवहेलना को क्षमा करें ॥ ३१ ॥

O Venerable! Sages always have very joyous disposition; they are never angry with anyone. Kindly forgive these foolish ignorant boys for their negligent behaviour towards you. (31)

पुब्बिं च इण्हिं च अणागयं च, मणप्पदोसो न मे अत्थि कोइ।

जक्खा हु वेयावडियं करेन्ति, तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥ ३२ ॥

(मुनि हरिकेशबल)—हे सौम्य! मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति किसी प्रकार का द्वेष न पहले कभी था, न अब है और न भविष्य में ही कभी होगा। मेरी सेवा में जो यक्ष रहते हैं, उन्होंने ही कुमारों की ऐसी दशा की है ॥ ३२ ॥



(Ascetic Harikesh-bala-) Gentleman! I never had any feeling of aversion for you in the past, neither have I at present nor will I have in the future. It was the yakshas in my attendance who brought the youngsters to this condition on their own. (32)

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा, तुब्भे न वि कुप्पह भूइपत्ता ।  
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे ॥ ३३ ॥

(रुद्रदेव) — धर्म और उसके अर्थ को वास्तविक रूप से जानने वाले आप भूतिप्रज्ञ हैं— रक्षाप्रधान बुद्धि से युक्त हैं। आप क्रोध नहीं करते हैं। हम सब आपकी शरण ग्रहण कर रहे हैं ॥ ३३ ॥

(Rudradeva-) You, who know the true meaning of religion and its meaning, are endowed with wisdom dominant with feeling of protection of all beings (*bhutiprajna*). You are free of anger. We all take refuge at your feet. (33)

अच्चेमु ते महाभाग !, न ते किंचि न अच्चिमो ।  
भुंजाहि सालिमं कूरं, नाणावज्जण-संजुयं ॥ ३४ ॥

हे महाभाग! हम आपकी अर्चना करते हैं। आपका ऐसा कुछ भी नहीं है जो अर्चनीय न हो। अब आप दधि आदि अनेक प्रकार के व्यंजनों से युक्त शालि-चावलों से तैयार किया हुआ भोजन ग्रहण करिए ॥ ३४ ॥

Revered sir! We adore you. There is nothing in you that is not adorable. Now, be kind enough to accept this food made of boiled rice of best quality, mixed with curd and seasoned with many condiments. (34)

इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं, तं भुंजसू अम्ह अणुग्गहट्ठा ।  
'बादं' ति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स उ पारणए महप्पा ॥ ३५ ॥

इस प्रचुर अन्न को मेरे अनुग्रह हेतु आप स्वीकार करिए। पुरोहित के आग्रह को मान देकर महामुनि ने एक मास की तपस्या के पारणे के लिये आहार-पानी स्वीकार किया ॥ ३५ ॥

Please favour me by accepting all this food. Respecting the request of the priest the great ascetic accepted food and water to break his month-long fast. (35)

तहियं गन्धोदय-पुप्फवासं, दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा ।  
पहयाओ दुन्दुहीओ सुरेहिं, आगासे अहो दाणं च घुट्ठं ॥ ३६ ॥

उसी समय वहाँ देवों ने पंच दिव्य प्रगट किये—(१-३) सुगन्धित पुष्पों, सुगन्धित जल एवं दिव्य धन की वृष्टि की, (४) देव-दुन्दुभि बजाई, और (५) अहोदान-अहोदान का दिव्य घोष किया ॥ ३६ ॥

At that time (gods celebrated the occasion with five divine presentations—) (1-3) shower of divine flowers, shower of perfumed water and shower of divine wealth, (4) sounded divine drums, and (5) divine hailing—"Great pious gift". (36)



सक्खं खु दीसइ तवोविसेसो, न दीसई जाइविसेस कोई ।  
सोवागपुत्ते हरिएस साहु, जस्सेरिस्सा इड्ढि महाणुभागा ॥ ३७ ॥

प्रत्यक्षतः तप की ही विशेषता-महिमा है, जाति की कोई विशेषता नहीं दिखाई देती। जिसकी ऐसी महान् ऋद्धि है, वह हरिकेशबल साधु चाण्डाल-पुत्र है ॥ ३७ ॥

In fact it makes clear that the greatness lies in austerities; there is no importance of caste. Ascetic Harikesh-bala who was so exalted was son of a Chandaal (a low caste untouchable). (37)

किं माहणा! जोइसमारभन्ता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा?  
जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं सुदिट्ठं कुसला वयन्ति ॥ ३८ ॥

(मुनि)—हे ब्राह्मणो! अग्नि का समारम्भ-यज्ञ आदि करके क्या तुम बाहर से जल से शुद्धि करना चाहते हो? जो बाह्य शुद्धि करना चाहते हैं, उन्हें कुशल पुरुष सुदृष्टिवान् नहीं कहते ॥ ३८ ॥

(The ascetic) Brahmins! Why after indulging in the violence of fire-sacrifice (*yajna*) do you wish to do the external cleansing (by water)? Those who seek external purity are said to be reft of the right perspective by the accomplished. (38)

कुसं च जूवं तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदगं फुसन्ता?  
पाणाइ भूयाइ विहेडयन्ता, भुज्जो वि मन्दा ! पगरेह पावं ॥ ३९ ॥

कुश, यूप-यज्ञस्तम्भ, तृण, काष्ठ तथा अग्नि का प्रयोग और प्रातः-सन्ध्या जल का स्पर्श-इस तरह तुम मन्द-बुद्धि लोग प्राणियों और जीवों का विनाश करके पापकर्मों का संचय कर रहे हो ॥ ३९ ॥

By using grass, sacrificial poles, straw, wood (in the ritual) and touching (for bath and washing) water every morning and evening, you dim-witted people destroy living beings (*pranis*) and organisms (*bhoots*). Thereby you accumulate demeritorious *karmas*. (39)

कहं चरे? भिक्खु! वयं जयामो?, पावाइ कम्माइ पणुल्लयामो?  
अक्खाहि णे संजय ! जक्खपूइया !, कहं सुइट्ठं कुसला वयन्ति? ॥ ४० ॥

(रुद्रदेव)—हे साधु ! हम किस प्रकार प्रवृत्ति करें, यज्ञ करें? जिससे पापकर्मों से दूर रहें। हे यक्षार्चित संयत! हमें बताएँ कि तत्त्वज्ञानी पुरुष किस प्रकार का यज्ञ श्रेष्ठ बताते हैं ॥ ४० ॥

(Rudradeva—) O ascetic! In what should we indulge (what ritual offering should we make) so that we remain free of demerit-*karmas*? O Yaksha-adored ascetic! Please tell us, what type of offerings enlightened seers declare as best. (40)

छज्जीवकाए असमारभन्ता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा।  
परिग्गहं इत्थिओ माण-मायं, एवं परित्राय चरन्ति दन्ता ॥ ४१ ॥



(मुनि)—इन्द्रियों का दमन करने वाले श्रेष्ठ पुरुष पृथ्वीकाय आदि छह कार्यों के जीवों की हिंसा नहीं करते, असत्य नहीं बोलते, अदत्तादान नहीं करते, परिग्रह, स्त्री, मान और माया के स्वरूप को जानकर उनका परित्याग करते हैं ॥ ४१ ॥

(The ascetic—) Exalted persons, who have subdued senses, never harm any living being of six classes including earth-bodied beings, never speak a lie, never take what is not given and renounce possessions, women, conceit and deceit after understanding their true form. (41)

सुसंबुडो पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणो ।

वोसट्ठकाओ सुइचत्तदेहो, महाजयं जयई जन्नसिट्ठं ॥ ४२ ॥

जो पाँचों प्रकार के संवरों से संवृत्त होते हैं, जीवन की आकांक्षा और शरीर की आसक्ति का त्याग करते हैं, विदेहभाव में रहते हैं, पवित्र हैं; ऐसे वासनाओं पर विजय पाने वाले महाजयी पुरुष श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं ॥ ४२ ॥

Those who are well protected by all five kinds of preventions of *karma*-inflow, who renounce the desire for life and obsession for their own body, who live in the state of dissociation from the body, who are pure and pious; such great victors, who have conquered lust, are performers of the best sacrifice. (42)

के ते जोई ? के व ते जोइठाणे ? , का ते सुया ? किं व ते कारिसंगं ?

एहा य ते कयरा सन्ति ? भिक्खू !, कयरेण होमेण हुणासि जोइं ? ॥ ४३ ॥

(रुद्रदेव)—हे भिक्षु! आपकी ज्योति (अग्नि) कौन-सी है? ज्योति-स्थान क्या है? घृत आदि डालने की कड़छियाँ कौन-सी हैं? अग्नि को दीपित वाले कण्डे क्या हैं? आपका ईंधन और शान्ति-पाठ क्या है? और किस होम से आप अग्नि को प्रज्वलित करते हैं-जलाते हैं ॥ ४३ ॥

(Rudradeva—) O ascetic! Which is your fire? What is your fire-place? Which are your sacrificial ladles for pouring butter-oil? What are cow-dung discs to lit fire? What is your fuel? And what is your peace-chant? What oblation do you offer to intensify the fire? (43)

तवो जोई जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।

कम्म एहा संजमजोग सन्ती, होमं हुणामी इसिणं पसत्थं ॥ ४४ ॥

(मुनि)—तप ज्योति है। जीवात्मा ज्योति-स्थान है। मन-वचन-काया-ये तीनों कड़छियाँ हैं। शरीर कण्डे हैं। कर्म ईंधन है। संयम की प्रवृत्ति शान्ति-पाठ है। मैं ऐसा ऋषियों द्वारा प्रशस्त यज्ञ करता हूँ ॥ ४४ ॥

(The ascetic—) Penance is my fire, soul is fire-place, mind-speech-body are ladles, body is cow-dung disc, *karmas* are fuel and practice of restraint is my peace-chant. I perform such sacrifice that has been praised by sages. (44)



के ते हरए ? के य ते सन्तितित्थे ?, कहिसि ण्हाओ व रयं जहासि ?  
आइक्ख णे संजय ! जक्खपूइया !, इच्छामो नाउं भवओ सगासे ॥ ४५ ॥

(रुद्रदेव)—हे यक्ष पूजित संयमी साधु ! आपका हृद (सरोवर) कौन-सा है, शांति-तीर्थ कौन-से हैं ? तुम कहाँ स्नान करके मलिनता दूर करते हो ? यह सब हमारी जानने की इच्छा है ॥ ४५ ॥

(Rudradeva—) O restrained ascetic adored by Yaksha! What is your pond? What is your pilgrimage of peace? Where do you have your lustrating bath? We wish to know all this. (45)

धम्मे हरए बंभे सन्तितित्थे, अणाविले अत्तपसन्नलेसे।  
जहिसि ण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं ॥ ४६ ॥

धर्म मेरा हृद है, ब्रह्मचर्य शान्ति-तीर्थ है—जहाँ आत्मा की लेश्या प्रशस्त हो जाती है। जिसमें स्नान करके मैं भावमल और कर्मकलंक से रहित होता हूँ। शारीरिक-मानसिक संतापों से रहित, शीतल-शान्त होता हुआ रागादि दोषों को दूर करता हूँ ॥ ४६ ॥

(The ascetic—) Religion is my pond, celibacy my pilgrimage of peace, where the soul complexion improves. Bathing in it I become free of internal dirt and blemishes of *karmas*. Getting rid of mental and physical torments, as well as becoming calm and peaceful, I mend all faults including attachment. (46)

एयं सिणाणं कुसलेहि दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं।  
जहिसि ण्हाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमठाण पत्ते ॥ ४७ ॥

—त्ति बेमि।

कुशल तत्त्वज्ञानी पुरुषों ने इसे ही वास्तविक स्नान बताया है। ऋषियों के लिये यही महास्नान प्रशस्त है। इसी धर्म जलाशय में स्नान करके महर्षियों ने कर्ममलरहित और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान प्राप्त किया है ॥ ४७ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

The accomplished enlightened ones have declared this to be the true bath. This is the best pious bath for sages. Bathing in this pond of religion sages have gained riddance from the slime of *karmas* and consequent purity to attain the exalted state (liberation). (47)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १—“श्वपाक” का अर्थ चाण्डाल लिया जाता है। यह एक अत्यन्त निम्न श्रेणी की नीच जाति थी। चूर्ण के अनुसार इस जाति में कुत्ते का माँस पकाया जाता था। “श्वेन पचतीति श्वपाकः।”

गाथा १८—“उपज्योतिष्क” का अर्थ है—अग्नि के समीप रहने वाला रसोइया।

गाथा २४—“वेयावडिय” की व्युत्पत्ति चूर्णिकार ने बड़ी ही महत्वपूर्ण की है जिससे कर्मों का विदारण होता है, उसे “वेयावडिय” कहते हैं—“विदारयति वेदारयति वा कर्म वेदावडिता।”

गाथा २७—“आशीविष” एक योगजन्य लब्धि है। आशीविष लब्धि के द्वारा साधक किसी का भी मनचाहा अनुग्रह और निग्रह करने में समर्थ हो जाता है। वैसे आशीविष सर्प को भी कहते हैं। मुनि को छेड़ना, आशीविष सर्प को छेड़ना है।

## IMPORTANT NOTES

**Verse 1**—The accepted meaning of Shwapaak is *chandaal*. It was a very low caste. According to *Churni*, in this caste the flesh of dogs was cooked. “*Shwena pachateeti shwapaakah.*”

**Verse 18**—*Upajyotishka* means, one who sits besides fire; i.e., a cook.

**Verse 24**—The etymology of *veyaavadiyam* by the commentator (*Churni*) is very important—“*vidaarayati vedaarayati vaa karma vedaavaditaa*” meaning – that which causes shattering of *karmas* is *veyaavadiyam*.

**Verse 27**—*Aashivisha* is a quality or special power attained through yoga. With this power the aspirant acquires the power of favouring and harming anyone according to his wish. The term is also used for snake. Disturbing an ascetic is like disturbing a venomous snake.



## त्रयोदश अध्ययन : चित्र-सम्भूतीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम चित्र-संभूतीय है। चित्र और संभूत-दोनों भाई थे। पिछले पाँच जन्मों तक ये दोनों भाई साथ-साथ उत्पन्न हुये, जिए और मरे। लेकिन छठवें जन्म में बिछुड़ गये। इस बिछुड़न का कारण था-संभूत मुनि का निदान-कामभोगों की तीव्र आकांक्षा।

पिछले अध्ययन 'हरिकेशी' में उग्र तपस्वी की तेजस्विता का चमत्कारी ढंग से वर्णन हुआ था और इस अध्ययन में कामभोगों के निदान से मुनि का पतन-संसार-भ्रमण का चित्रण किया गया है। साथ ही इच्छा-कामरहित मुनि की मुक्ति का प्रतिपादन हुआ है।

इस प्रकार इस अध्ययन में भोग और योग का द्वन्द्व तथा उनका दुष्परिणाम एवं सुपरिणाम लक्षित होता है। योग और वियोग पर यह अध्ययन आधारित है।

### चित्र-संभूत के पिछले पाँच जन्मों का घटनाक्रम

चित्र और संभूत के पिछले पाँच जन्मों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

साकेत देश के राजा चन्द्रावतंसक के पुत्र राजा मुनिचन्द्र को राज-भोग करते-करते विरक्ति हो गई। उन्होंने मुनि सागरचन्द्र से भागवती दीक्षा ग्रहण कर ली। कठोर तपस्या करने लगे।

एक बार वे एक सार्थ के साथ वन में होकर एक नगर से दूसरे नगर को जा रहे थे। समीप के ग्राम में गोचरी हेतु गये और लौटे तब तक सार्थ जा चुका था। वन-मार्ग से अनभिज्ञ मुनि मुनिचन्द्र वन में भटक गये। भूख-प्यास से व्यथित होकर मूर्च्छित हो गये।

कुछ ही दूर चार गोपाल-पुत्र अपनी गायें चरा रहे थे। उन्होंने मुनि को मूर्च्छित देखा तो उनकी परिचर्या की। मुनि की मूर्च्छा टूटी। उन्होंने उन गोपाल-पुत्रों को धर्मोपदेश दिया तो चारों गोपाल-पुत्रों की आत्मा उद्बुद्ध हो उठी। उन्होंने संयम ग्रहण कर लिया, साधुत्व का पालन करने लगे।

उनमें से दो साधु तो श्रमणधर्म का पालन शुद्ध रूप से करते रहे किन्तु दो साधुओं को मलिन वस्त्रों से जुगुप्सा हो गई, फिर भी साधुधर्म का पालन करते रहे।

जुगुप्सा (घृणा) भाव वाले दोनों साधु मृत्यु के उपरान्त देव बने और वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर दशार्णपुर (दशपुर) में शांडिल्य ब्राह्मण की दासी यशोमति की कुक्षि से युगल रूप में उत्पन्न हुए।

एक बार दोनों भाई खेत में रात्रि के समय एक वृक्ष के नीचे सो रहे थे कि एक सर्प ने उन्हें डँस लिया। दोनों भाई मरण पाकर कालिंजर पर्वत पर युगल रूप से हरिण बने। एक बार एक शिकारी ने दोनों हरिणों को एक बाण से वीध दिया। वहाँ से मरकर मृतगंगा के तट पर राजहंस बने। वहाँ एक मछुए ने दोनों की गरदन मरोड़कर उनका प्राणान्त कर दिया।





राजहंस की योनि से निकलकर दोनों वाराणसी के अति समृद्ध और चाण्डालों के अधिपति भूतदत्त के पुत्ररूप में उत्पन्न हुए। उनके नाम चित्र और संभूत रखे गये। दोनों भाइयों में परस्पर बहुत प्रेम था। उनका रूप भी सुन्दर था।

वाराणसी में उस समय राजा शंख राज्य करता था। उसका मंत्री नमुचि था। किसी भयंकर अपराध पर राजा शंख ने नमुचि को मृत्यु-दण्ड दिया। वध का कार्य चाण्डाल भूतदत्त करता था। नमुचि ने उससे प्राण-भिक्षा माँगी। तब भूतदत्त ने शर्त रखी कि “यदि आप मेरे पुत्रों को अध्ययन करायें, विद्या सिखाएँ, तो मैं आपको अपने भूमिगृह (तहखाने) में छिपाकर रख सकता हूँ।” नमुचि ने यह शर्त स्वीकार कर ली। भूतदत्त ने उसे अपने घर में छिपा लिया। नमुचि के प्राण बच गये।

नमुचि ने कुछ ही वर्षों में दोनों चाण्डाल-पुत्रों को कई विद्याओं में प्रवीण बना दिया। चाण्डाल-पत्नी भोजनादि से नमुचि की सेवा करती थी। नमुचि ने उससे अनुचित सम्बन्ध बना लिये। भूतदत्त को ज्यों ही मालूम हुआ तो उसने नमुचि के वध का निश्चय कर लिया। परन्तु चित्र-संभूत ने गुरु के प्रति कृतज्ञतावश नमुचि को सूचित कर दिया और घर से सुरक्षित निकाल दिया।

नमुचि वहाँ से भागकर हस्तिनापुर पहुँचा और चक्रवर्ती सनत्कुमार का मंत्री बन गया।

एक बार वाराणसी में कोई उत्सव हुआ। उसमें चित्र-संभूत भी सम्मिलित हुये। उन्होंने मधुर कंठ से संगीत विद्या का प्रदर्शन किया तो श्रोतागण मंत्र-मुग्ध हो गये। जनसाधारण स्पर्श-अस्पर्श का भेद ही भूल गये। किन्तु कुछ ब्राह्मणों का जात्याभिमान जाग उठा। उन्होंने राजा से शिकायत कर दी। राजा ने नगर निष्कासन का दण्ड दिया। दोनों भाई नगर से निकाल दिये गये। वे नगर से बाहर किसी अन्य स्थान पर रहने लगे।

वाराणसी में कौमुदी महोत्सव का आयोजन हुआ। कलाकार की सबसे बड़ी कमजोरी यह होती है कि वह अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिये सदैव उत्सुक रहता है। कपड़े से मुख ढँककर दोनों भाई उत्सव में सम्मिलित होकर अपनी संगीत कला का प्रदर्शन करने लगे। जनता मंत्र-मुग्ध हो गई। लेकिन स्वर से इन्हें पहचान लिया गया। वस्त्र हटाकर देखा तो सारा रहस्य स्पष्ट हो गया।

इस बार कट्टर जाति अभिमानियों ने स्वयं ही इन दोनों भाइयों को मारा-पीटा और नगर से बाहर निकाल दिया।

चित्र-संभूत-दोनों भाइयों को इस बार का तिरस्कार बहुत बुरा लगा। वे समझ गये हीन कुल में उत्पन्न होने के कारण उन्हें कहीं भी स्नेह, मान-सम्मान नहीं मिल सकता। उनकी सारी कलाएँ व्यर्थ हैं।

क्षुब्ध होकर उन्होंने निर्णय किया—‘इस अपमानपूर्ण जीवन से तो मृत्यु ही भली’ और आत्म-हत्या का निर्णय करके वे एक पर्वत पर जा चढ़े। वहाँ से गिरने वाले ही थे कि किसी श्रमण ने उन्हें देख लिया, आत्म-हत्या से रोका, समझाया और उनका समस्त वीतक सुनकर कहा—“यदि तुम श्रमण बन जाओ तो सम्मान का जीवन जी सकोगे।”

मुनि की प्रेरणा से चित्र-संभूत-दोनों ने श्रामणी दीक्षा स्वीकार कर ली। गुरु-कृपा से ज्ञानाभ्यास किया, उग्र तपश्चर्या करने लगे। फलस्वरूप अनेक लब्धियाँ प्राप्त हो गईं। गीतार्थ बनकर विचरण करने लगे।



विचरण करते हुये वे हस्तिनापुर जा पहुँचे। उद्यान में ठहरे। सम्भूत मुनि गोचरी हेतु निकले। राजमार्ग पर गजगति से चल रहे थे। उस समय मंत्री नमुचि अपने भवन के गवाक्ष में बैठा था। सम्भूत मुनि उसकी दृष्टि में आ गये। 'कहीं ये मुनि मेरा रहस्य न प्रगट कर दे' इस आशंका से ग्रसित होकर उसने अपने सुभटों को आदेश दिया कि इस श्रमण को मार-पीटकर नगर से बाहर निकाल दो।

मंत्री नमुचि के सुभटों ने सम्भूत मुनि को मुक्कों, लातों, लाठियों से खूब पीटा, मारते ही चले गये। समताभावी सम्भूत मुनि उस मार को सहते रहे, सहते रहे।

लेकिन सहन-शक्ति की भी एक सीमा होती है। अत्याचारी के अत्याचार जब सीमा से बढ़ जाते हैं तो शीतल चन्दन भी आग उगलने लगता है। निर्मम पिटाई से संभूत मुनि का हृदय भी अशांत हो गया। लब्धिवंत तो थे ही, तेजोलेश्या प्रगट करके मुख खोल दिया। उनके मुख से तेज धुँआ निकलने लगा। कुछ ही क्षणों में धुँआ सम्पूर्ण हस्तिनापुर नगर के आकाश में छा गया। लोग भयभीत हो गये। स्वयं चक्रवर्ती भी चकित और भयभीत हुआ। अपनी पटरानी सुनन्दा के साथ आया और संभूत मुनि से क्रोध को शांत करने की प्रार्थना करने लगा, जनता तो प्रार्थना कर ही रही थी। चित्र मुनि भी आ गये। उन्होंने संभूत मुनि को समझाया। उनके समझाने से संभूत मुनि का क्रोध उपशान्त हुआ। उन्होंने अपनी तेजोलेश्या समेट ली। नगर की रक्षा हो गई।

चक्रवर्ती सनत्कुमार ने भावभक्तिपूर्वक सम्भूत मुनि को वन्दन किया; पटरानी सुनन्दा ने भी झुककर प्रमाण किया। असावधानीवश उसके लम्बे कोमल सचिक्कण केशों का स्पर्श-संभूत मुनि के पैरों से हो गया। मुनि का चित्त चंचल हो गया। उन्होंने निदान किया—'यदि मेरी तपस्या का कुछ भी फल हो तो मैं भविष्य में चक्रवर्ती बनकर संसार के अनुपम सुख भोगूँ।'

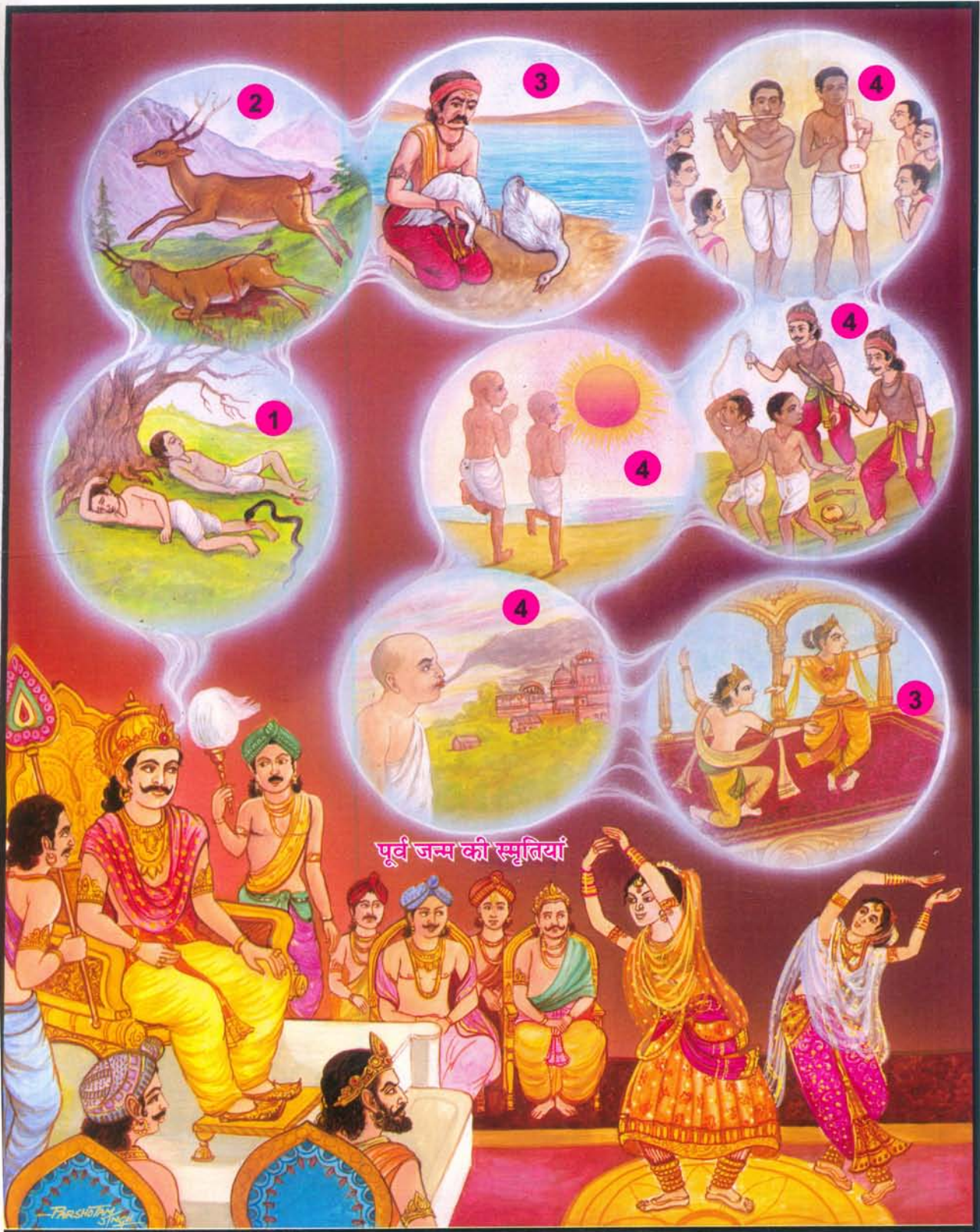
चित्र और संभूत-दोनों ने अनशन किया और दोनों ने कालधर्म प्राप्त किया। लेकिन संभूत मुनि ने अन्तिम समय तक अपने निदान की आलोचना नहीं की। कालधर्म प्राप्त कर दोनों मुनि सौधर्म देवलोक के पद्मगुल्म विमान में देव बने।

वहाँ का आयुष्य पूर्ण कर संभूत मुनि-के जीव ने काम्पिल्य नगर के ब्रह्म राजा की रानी चूलनी की कुक्षि से जन्म लिया और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बनकर सांसारिक सुखों का भोग करने लगा।

चित्र मुनि के जीव ने पुरिमताल नगर के एक अत्यधिक धनाढ्य सेठ के पुत्ररूप में जन्म ग्रहण किया। स्थविरों का उपदेश सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। श्रामणी दीक्षा ग्रहण करके तप-संयम में लीन हो गया।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती एक बार नाटक देख रहा था। नाटक देखते-देखते उसके मन में विचार आया—'ऐसा नाटक मैंने पहले भी कभी देखा है। पर कब और कहाँ?' इस प्रकार मनोमंथन करते-करते उसे अपने पाँच पूर्व-जन्मों की स्मृति हो आई (चित्र देखें)। वह अपने भाई चित्र की स्मृति में विकल हो गया। उसकी खोज करने के लिये ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने श्लोक की एक पंक्ति बनाई और घोषणा की—'जो इस श्लोक की पूर्ति करेगा, उसे मैं अपना आधा राज्य दे दूँगा।' श्लोक का पूर्वाद्ध था—

आश्व दासौ मृगौ हंसौ, मातंगाऽवमरौ तथा ।



पूर्व जन्म की स्मृतियाँ

## चित्त-संभूति मुनि के पाँच पूर्वभव

नाटक देखते-देखते ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को अपने पाँच पूर्वभव की स्मृति हो आई।

- (1) एक बार दोनों भाई दासी-पुत्र बने, खेत में वृक्ष के नीचे सोये थे, साँप के काटने से मृत्यु हुई।
- (2) जंगल में हिरण बने, वहाँ शिकारी के तीर से घायल होकर दम तोड़ दिया।
- (3) फिर राजहंस बने, वहाँ एक निर्दय मछुए ने गर्दन मरोड़कर मार डाला।
- (4) वाराणसी में चंडाल-पुत्र बने, नृत्य-गीत से जनता का मनोरंजन करने लगे। राजपुरुषों ने चंडाल-पुत्रों को पीटा, दुःखी होकर साधु बन तपस्या करने लगे। राजपुरुषों द्वारा सताये जाने पर क्रोध में आकर एक मुनि ने नगर को भस्म करने तेजोलेश्या छोड़ी।
- (5) वहाँ से दोनों भाई स्वर्ग में उत्पन्न हुए। [पूर्व-जन्म के पाँच भव]

—अध्ययन 13, सू

## FIVE PAST BIRTHS OF ASCETICS CHITRA AND SAMBHUTA

While enjoying the drama Emperor Brahmdatt recalled his five past births.

- (1) Once both the brothers were born as sons of a slave-maiden; were sleeping under a tree in the farm; died by snake bite.
- (2) Took rebirth as deer in a forest, died by the arrow of a hunter.
- (3) Then were reborn as swans. A fisherman twisted their necks and put them to death.
- (4) Reborn as Chandala-sons in Varanasi, they started entertaining public by singing and dancing. Kings' soldiers beat the two; out of grief they became ascetics and began observing austerities. On being cruelly beaten by soldiers one of the ascetics launched tejoleshya (fire power) to burn the city.
- (5) From there both the brothers got reborn as divine beings.

—Chapter 13, Aphorism 6

आस्व दासौ मृगौ हंसौ मातंगा वमरौ तथा  
एषा नौ षष्टिका जातिः अन्योन्याभ्यो वियुक्तयोः



चित्त मुनि



चक्रवर्ती को उद्बोधन

## चित्त मुनि-ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती का मिलन, मुनि द्वारा उद्बोधन

- (1) रँहट चलाने वाले के मुख से आधा श्लोक सुना तो मुनि ने आगे का श्लोक पूरा कर दिया।
- (2) रँहट चालक ने चक्रवर्ती को श्लोक की पूर्ति सुनाई। चक्रवर्ती सपरिवार चित्त मुनि के पास आया।
- (3) चित्त मुनि ने चक्रवर्ती को सिंह द्वारा गृहीत हरिण का उदाहरण देकर जीवन को काल का घास बताते हुये उद्बोधन दिया।

—अध्ययन 13, सू. 22

## MEETING OF ASCETIC CHITRA AND EMPEROR BRAHMADATT, ASCETIC'S SERMON

- (1) The sage listened to the first half of the verse from the waterman and completed the verse.
- (2) The waterman recited the completed verse to the Monarch who then came with his family to ascetic Chitra.
- (3) Ascetic Chitra tried to enlighten the Monarch by giving the example of a deer caught by lion and thus expressing the life is the morsel of death.

—Chapter 13, Aphorism 22





चक्रवर्ती के आधे राज्य का लोभ बहुत बड़ा होता है। यद्यपि इस श्लोकार्थ के रहस्य का ज्ञान किसी को नहीं था, अतः कोई पादपूर्ति तो न कर सका; किन्तु यह पंक्ति साक्षर-निरक्षर, उच्च-नीच, श्रेष्ठी-श्रमिक सभी की जुबान पर चढ़ गई थी, सभी इसे यत्र-तत्र गुनगुनाते रहते थे।

चित्र मुनि ग्रामानुग्राम विचरण करते हुये एक बार कांपिल्यपुर में आये और नगर के बाहर उद्यान में ठहर गये। वहाँ खेत पर अरघट चलाने वाला इसी पंक्ति को गुनगुना रहा था। मुनि ने पंक्ति सुनी और तुरन्त पाद-पूर्ति कर दी—

**एषा नौ षष्ठिका जातिः, अन्योन्याभ्यां वियुक्तयोः।**

अरघट चालक ने इस पंक्ति को रटकर कंठस्थ किया और चक्रवर्ती की राजसभा में जाकर वह पंक्ति ज्यों की त्यों सुना दी।

चक्रवर्ती ने पूछा—“क्या यह पाद-पूर्ति तुमने की है?”

अरघट चालक ने बताया—“महाराज! मैं इतना विद्वान् कहाँ हूँ। उद्यान में एक मुनि आज ही आये हैं, उन्होंने ही इस पंक्ति की रचना की है।”

सच्चाई जानकर चक्रवर्ती स्वयं उद्यान में आया। अपने पूर्व-जन्मों के भाई मुनि से मिला, उनकी वन्दना की और फिर वार्त्तालाप करने लगा।

उनका वार्त्तालाप मूल अध्ययन में वर्णित है ही।

पूर्व-जन्मों के स्नेह के कारण चित्र मुनि ने ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को संयम ग्रहण करने की बहुत प्रेरणा दी। यहाँ तक कहा कि यदि तू संयम का पालन नहीं कर सकता तो कम से कम आर्यकर्म तो कर जिससे अगले जन्म में महर्द्धिक देव बन सके।

लेकिन ब्रह्मदत्त पर कोई प्रभाव न पड़ा। उसने अंत में कह दिया—“मेरी दशा दलदल में फँसे उस हाथी जैसी है जो तट को देखता तो है किन्तु वहाँ पहुँच नहीं सकता।” आखिर चित्र मुनि वहाँ से यह कहकर चले जाते हैं कि “राजन्! मैंने तुम्हें समझाने में व्यर्थ ही समय नष्ट किया।”

चित्र मुनि ने उत्कृष्ट साधना की और अनुत्तर सिद्ध पद प्राप्त किया। इसके विपरीत कामभोग में फँसा ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती लोक के निकृष्टतम स्थान सातवीं नरक में पहुँचा।

नाम आदि के परिवर्तनों के साथ यही प्रसंग बौद्ध ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है।

इस अध्ययन की प्रमुख विशेषता है—निदान (कामभोगों की तीव्र इच्छा) की विवशता। कामभोग ही आत्मा के लिये सबसे बड़े बंधन हैं। इनकी आसक्ति के कारण ही जीव दुर्गति में जाकर दुःख भोगता है।

इसके विपरीत भोगेच्छाओं से उपरत रहने वाला व्यक्ति, चाहे वह सांसारिक दृष्टि से अभावग्रस्त ही क्यों न हो, सुखी रहता है और अकिंचन श्रमण तो सर्वश्रेष्ठ आत्मिक सुख की उपलब्धि कर लेते हैं। उन्हें शाश्वत, अव्याबाध मुक्ति-सुख प्राप्त हो जाता है।

इस अध्ययन में इच्छाओं की दासता से दुःख और इच्छाओं के स्वामी बनने से सुख-प्राप्ति का स्वर प्रभावशाली ढंग से प्रतिष्ठापित हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३५ गाथाएँ हैं।



## TRAYODASH ADHYAYAN : CHITRA-SAMBHUTIYA

### Foreview

The name of this chapter is Chitra-Sambhutiya (About Chitra and Sambhuta). Chitra and Sambhuta were brothers. For last five births, the two brothers were born, lived and died together, but were separated in the sixth birth. The cause of this separation was ascetic Sambhuta's *nidaan* (craving and wishing for worldly pleasures as a fruit of penance and religious activities).

In the preceding chapter the brilliance of intensely austere 'Hariksha' has been lucidly described. But this chapter contains the story of the fall of an ascetic into the whirlpool of rebirths due to his craving for worldly pleasures. It also shows how an ascetic free of desires attained liberation.

Thus in this chapter the clash of indulgence in the mundane (*bhoga*) and spiritual pursuit (*yoga*), and their bad and good consequences are described. This chapter is based on union and separation.

### Five Earlier Births of Chitra-Sambhuta

The stories of five earlier births of Chitra-Sambhuta, in brief, are as follows—

While enjoying his regal comforts, king Munichandra, the son of king Chandravatansak of Saketa, got detached. He got formally initiated by ascetic Sagar Chandra and started observing rigorous austerities.

Once he was going with a caravan from one city to another through a forest. He went to a nearby village to get alms. On his return he found the caravan gone. Ignorant of the jungle trail, ascetic Munichandra got lost in the jungle. He got unconscious due to the agony of hunger and thirst.

Not far from him four lads of a cowherd were minding their grazing herd. When they saw the unconscious ascetic, they attended him and he regained consciousness. The ascetic gave them a religious discourse. All the four boys got inspired and got initiated to lead ascetic life.

Among them two followed ascetic conduct immaculately. The other two developed hatred for their dirty clothes but otherwise they followed proper ascetic conduct.

After their death the ascetics filled with aforesaid hatred were reborn as divine beings. Completing the divine life-span they were born as twins in Dashaarnapur (Dashapur) to Yashomati, the maid servant of Brahmin Shandilya.





One night both the brothers were sleeping under a tree in a farm, a poisonous snake bit them and they died. The two brothers were reborn as deer twins on Kaalinjar mountain. One day a hunter killed them both with a single arrow. This time their rebirth was as a pair of swans on the bank of Mritaganga river. There a fisherman killed them by twisting their necks.

From the genus of swans they took rebirth as sons of Bhutadutt, very rich leader of Chandaals in Varanasi. They were named Chitra and Sambhuta. They were very fond of each other. They were also very handsome.

In those days Varanasi was under the rule of king Shankha. Namuchi was his minister. Once, for some heinous crime, Namuchi was sentenced to death by king Shankha. Chandaal Bhutadutt was the hangman. Namuchi begged for his life from Bhutadutt, who agreed to save him under one condition—"If you educate my sons in various branches of learning then I can hide you in my cellar." Namuchi accepted this condition. Bhutadutt hid him in his house and his life was saved.

In a few years Namuchi made the two Chandaal boys well trained in many branches of learning. Chandaal Bhutadutt's wife used to look after Namuchi and served him food. Namuchi made illicit relations with her. When Bhutadutt came to know of this he decided to kill Namuchi. However, out of gratitude for their teacher Chitra and Sambhuta warned Namuchi and let him out of their home safe.

Running away from there Namuchi went to Hastinapur and became the minister of emperor Sanatkumar.

Once some festival was being celebrated in Varanasi. Chitra and Sambhuta also participated in it. When they gave music recital in their melodious sweet voice the audience was spell bound. The masses forgot about the discrimination of untouchables. But some Brahmins could not forget the pride of their caste. They complained to the king. The king punished them by exiling from the city. They started living in some place outside the city.

Spring festival was organized in Varanasi. The biggest weakness of an artist is that he is always eager to display his art. The two brothers masked their faces with cloth and joined the festivities. When they started their recital the audience was charmed. But they were recognized by their unique voice. The masks were removed and the secret was at once revealed.

This time the casteist fanatics of the high caste took the law in their hands and after a severe thrashing threw them out of the city.

The two brothers Chitra and Sambhuta felt very bad about this grave insult. They were convinced that they can never ever get affection and honour anywhere as they were low born. All their art was worthless.



Out of frustration they decided--'Death is better than such disgraceful life'. After deciding to commit suicide they climbed a mountain. When they were about to jump from the peak, some *Shraman* saw them. He prevented them from committing suicide and counseled. After hearing all about their past life, the ascetic said--"If you both become *Shramans* (Jain ascetics) you will be able to lead an honourable life."

Inspired by the ascetic, Chitra and Sambhuta got initiated as *Shramans*. They studied the scriptures under the guidance of their teacher and started rigorous austerities. As a result they acquired many super powers. Once they became accomplished ascetics they started their itinerant way.

During their wanderings they arrived at Hastinapur and stayed in a garden. Ascetic Sambhuta went into the city to seek alms. While he was walking slowly on the highway, minister Namuchi, sitting in the balcony of his house saw the ascetic and recognized him. Plagued by the apprehension that 'the secret of his past could be revealed by this ascetic', he ordered his guards to beat the ascetic and throw him out of the city.

Namuchi's guards started beating ascetic Sambhuta with their fists, kicks, canes and sticks. They continued this thrashing and equanimous ascetic Sambhuta endured and endured.

But there is a limit to one's tolerance. Even cool sandal-wood starts emitting fire when oppressions of a callous oppressor exceed the limit. Ascetic Sambhuta lost his calm due to this heartless beating. He was endowed with super powers. Evoking the *tejoleshya* (fire-power) he opened his mouth. Dense smoke started coming out of his mouth. Within a few moments the smoke filled the whole sky of Hastinapur. People were frightened. Even the emperor was amazed and frightened. He came with his queen Sunanda to the ascetic and requested to pacify his anger. The public was already doing so. Ascetic Chitra also arrived. He comforted ascetic Sambhuta and convinced him to regain his composure. He retracted his *tejoleshya* and the city was saved.

Emperor Sanatkumar paid homage to ascetic Sambhuta with devotion; queen Sunanda also bowed for salutation. Inadvertently her long, soft and smooth hairs touched ascetic Sambhuta's feet. This sent a shock of excitement in the ascetic's mind. He made a wish (*nidaan*)--'If my austerities bear any fruit, may it be that I become an emperor in future and enjoy superlative pleasures and comforts of this world.'

Later ascetics Chitra and Sambhuta observed the ultimate vow of fasting and left the earthly abode. But ascetic Sambhuta did not perform critical review of his wishes till the last moment of his life. Both the ascetics were reborn as gods in Padmagulm celestial vehicle (*vimaan*) of the Saudharma divine realm.

Concluding the divine life-span, the soul of ascetic Sambhuta was reborn as the son of queen Chulani, the queen of king Brahma, the ruler of Kampilya city. He later became emperor Brahmaddutt and started enjoying mundane pleasures.



The soul of ascetic Chitra was reborn as the son of a very rich merchant of Purimataal city. On hearing sermon of senior scholarly sages, he acquired *Jatismaran jnana* (memories of past births). As a result he got detached, got initiated and engrossed in practice of restraint and austerities.

Emperor Brahmadrutt was once enjoying a drama. All of a sudden he thought—'I have seen such drama earlier also, but when and where?' Ruminating thus he went so deep into his memories that he recollected the memory of his five earlier births (see illustration). Now he was disturbed by the memory of his beloved brother. In order to find him the emperor composed one line of a couplet and made an announcement that 'whoever completes the couplet will be rewarded with half of his empire. The first half of the couplet was—

**We were slaves, deer and geese, then chandaals and at last gods.**

The greed of half kingdom of an emperor is very powerful. Though no one was aware of the cryptic meaning of this line, each and every man muttered this line, whether he was literate or illiterate, labour or merchant, or of high or low class.

Wandering from one village to another, ascetic Chitra arrived in Kampilyapur and stayed in a garden outside the city. There a keeper of water-wheel was muttering that line. The ascetic heard this line and completed the couplet at once—

**This is our sixth birth, in which we are separated from each other.**

The waterman memorized the line, went to the emperor's court and repeated it verbatim.

The emperor asked—"Did you compose this line?"

The waterman replied—"Sire! I am not such a scholar. An ascetic has come to the garden today. It was he who composed this line."

After knowing the truth, emperor himself came to the garden. He met the brother of his last birth, Chitra ascetic, paid him homage and started conversation.

This conversation is narrated in the text of the chapter.

Due to the affinity from earlier births ascetic Chitra forcefully advised emperor Brahmadrutt to get initiated. He went to the extent of saying that if he cannot practice asceticism, then he should at least indulge in noble deeds, so as to be reborn as a god of very high status (*mahardhik dev*).

But Brahmadrutt remained unaffected. In the end he said—"My condition is like an elephant caught in a swamp. It is, indeed, able to see the shore but cannot reach it. At last ascetic Chitra left after saying—Emperor! I have simply wasted my time in trying to persuade you otherwise."



Ascetic Chitra engrossed himself in lofty spiritual practice and attained the ultimate exalted state of the Siddha (perfected soul). On the other hand emperor Brahmadutt caught in the quagmire of mundane pleasures fell to the lowest hell, the seventh.

This story is also available in Buddhist texts with slight changes in incidents and characters.

The salient feature of this chapter is the compulsion of *nidaan* (wish or intense desire for mundane pleasures). These pleasures are the strongest bondage for soul. Due to infatuation with these soul suffers torments by falling into the nadir of worldly existence.

On the other hand a person detached from desires of mundane pleasures remains happy even though he may be a destitute from worldly view-point. The possession-less sages attain the supreme spiritual bliss. They reach the state of eternal, unimpeded bliss of liberation.

The fact that slavery of desires begets misery and control over them begets happiness, is emphatically established in this chapter.

There are 35 verses in this chapter.





तेरसमं ब्रज्जयणं : चित्तसम्भूइज्जं  
 त्रयोदश अध्ययन : चित्र-सम्भूतीय  
 Chapter-13 : CHITRA AND SAMBHUTA

जाईपराजिओ खलु, कासि नियाणं तु हत्थिणपुरम्मि ।

चुलणीए बम्भदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ ॥ १ ॥

जाति से तिरस्कृत (पराजित) सम्भूत मुनि ने हस्तिनापुर में चक्रवर्ती बनने का निदान किया। इसलिए पद्मगुल्म देव विमान से अपना आयुष्य पूर्ण कर चुलनी रानी की कुक्षि से उत्पन्न होकर वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बना ॥ १ ॥

Insulted due to his caste, ascetic Sambhuta made a wish (*nidaan*) to be an emperor (ruler of the six regions of Bharat area). Therefore concluding his divine life-span in Padmagulm celestial vehicle (*vimaan*) and taking birth from the womb of queen Chulani, he became emperor Brahmadutt. (1)

कम्पिल्ले सम्भूओ, चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि ।

सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥ २ ॥

काम्पिल्य नगर में संभूत का जीव उत्पन्न हुआ और चित्र मुनि का जीव पुरिमताल नगर में श्रेष्ठ के घर में उत्पन्न हुआ। वहाँ स्थविरों से धर्म सुनकर वह प्रव्रजित हो गया ॥ २ ॥

The soul of ascetic Sambhuta was born in Kampilya city and the soul of ascetic Chitra was born in the house of a merchant in Purimataal city. There, after listening to the sermon of senior sages he got initiated. (2)

कम्पिल्लम्मि य नयरे, समागया दो वि चित्तसम्भूया ।

सुहदुक्खफलविवागं, कहेन्ति ते एक्कमेक्कस्स ॥ ३ ॥

एक बार चित्र और सम्भूत दोनों काम्पिल्य नगर में मिले। दोनों ने एक-दूसरे से सुख-दुःखरूप कर्मफल विपाक के सम्बन्ध में वार्ता की ॥ ३ ॥

Once Chitra and Sambhuta met in Kampilya city and talked about experiences of pleasure and pain due to fruition of *karmas*. (3)

चक्कवट्ठी महिइहीओ, बम्भदत्तो महायसो ।

भायरं बहुमाणेणं, इमं वयणमब्बवी- ॥ ४ ॥

महायशस्वी और महाऋद्धि से सम्पन्न ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती (संभूत मुनि का जीव) ने बहुमानपूर्वक अपने भाई से कहा- ॥ ४ ॥

Endowed with enormous fame and opulence, emperor Brahmadutt (the soul of ascetic Sambhuta) said with great respect to his brother- (4)



आसिमो भायरा दो वि, अन्नमन्नवसाणुगा।

अन्नमन्नमणूरत्ता, अन्नमन्नहिएसिणो ॥ ५ ॥

(ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती—) इसके पूर्व हम दोनों भाई परस्पर एक-दूसरे का अनुगमन करने वाले, अनुरक्त और हित चाहने वाले थे ॥ ५ ॥

(Emperor Brahmadutt—) Before this birth, we two brothers used to accompany, love and benefit each other. (5)

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे नगे।

हंसा मयंगतीरे य, सोवागा कासिभूमि ॥ ६ ॥

हम दोनों पहले दशार्ण देश में दास थे, फिर कालिंजर पर्वत पर हरिण, तदुपरान्त मृतगंगा के किनारे हंस और फिर काशी में चाण्डाल के रूप में उत्पन्न हुये थे ॥ ६ ॥

First we were slaves in Dasharnapur, then antelopes on mountain Kaalinjar, after that swans on the shores of Mritaganga river and were later born as Chandaals in Kashi. (6)

देवा य देवलोगम्मि, आसि अम्हे महिडिड्या।

इमा नो छट्ठिया जाई, अन्नमन्नेण जा विणा ॥ ७ ॥

तदुपरान्त हम दोनों देवलोक में महान् ऋद्धिधारी देव थे। यह हमारा छठवाँ जन्म है, जिसमें हम दोनों पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥

Finally we were gods with great opulence in the divine realm (*Dev Lok*). This is our sixth birth and we are separately born. (7)

कम्मा नियणप्पगडा, तुमे राय ! विचिन्तिया।

तेसिं फलविवागेण, विप्पओगमुवागया ॥ ८ ॥

(चित्र मुनि—) हे राजन् ! तुमने कामभोगों की अभिलाषारूप निदान किया था। उस निदानकृत कर्मों के विपाक के कारण हम दोनों पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुये हैं ॥ ८ ॥

(Ascetic Chitra—) O king! Driven by the desire of mundane pleasures and comforts, you had made a wish. Due to fruition of the *karmas* acquired due to that wish we were born separately. (8)

सच्चसोयप्पगडा, कम्मा जाए पुरा कडा।

ते अज्ज परिभुंजामो, किं नु चित्ते वि से तहा ॥ ९ ॥

(ब्रह्मदत्त—) हे चित्र मुनि! पूर्व-जन्म में किये गये सत्य और शुभ कर्मों का फल मैं अब इस जन्म में भोग रहा हूँ। क्या तुम भी ऐसा ही फल भोग रहे हो? ॥ ९ ॥

(Brahmadutt—) O ascetic Chitra! Now in this birth I am enjoying the fruits of *karmas* acquired due to truthful and noble deeds of the earlier birth. Are you also enjoying similar fruits? (9)

सच्चं सुचिण्णं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।

अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहि, आया ममं पुण्णफलोव्वेए ॥ १० ॥



(चित्र मुनि—) मानव अपने किये हुए सभी कर्मों का फल भोगते हैं। कर्मों का फल भोगे बिना छुटकारा नहीं होता। मेरी आत्मा भी उत्तम अर्थों और कामों के फल से युक्त रही है ॥ १० ॥

(Chitra ascetic—) Men (being) have to bear fruits of all *karmas* acquired due to their deeds. There is no escape from the fruits of *karmas* without suffering them. My soul has also experienced the fruits of my virtuous deeds. (10)

जाणासि संभूय ! महाणुभागं, महिद्धियं पुण्णफलोववेयं।  
चित्तं पि जाणाहि तहेव रायं !, इड्ढी जुई तस्स वि य प्पभूया ॥ ११ ॥

हे सम्भूत ! जिस प्रकार तुम स्वयं को महाभाग्यवान, महान् ऋद्धिधारी और पुण्यफल से युक्त समझते हो; उसी प्रकार चित्र को भी समझो। हे राजन् ! उसके पास भी प्रभूत ऋद्धि और द्युति रही है ॥ ११ ॥

Sambhuta! As you consider yourself very fortunate, prosperous and endowed with the rewards of merit. Know the same about Chitra. O king! He too has been blessed with ample prosperity and splendour. (11)

महत्थरूवा वयणऽप्यभूया, गाहाणुगीया नरसंघमज्जे।  
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहऽज्जयन्ते समणो म्हि जाओ ॥ १२ ॥

स्थविरो ने जन-समुदाय में अल्प अक्षर किन्तु महान् गंभीर अर्थ से युक्त गाथा कही थी जिसे शील और गुणों से सम्पन्न भिक्षु बड़े यत्न से प्राप्त करते हैं। उस गाथा को सुनकर मैं श्रमण बन गया ॥ १२ ॥

Amidst a gathering of men, senior ascetics (*sthavirs*) had recited a verse of few words but profound meaning, which is gained only with great effort by ascetics endowed with character and virtues. Having heard that verse I became an ascetic (*shraman*). (12)

उच्चोदए महु कक्के य बम्भे, पवेइया आवसहा य रम्मा।  
इमं गिहं चित्तधणप्यभूयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥ १३ ॥

(ब्रह्मदत्त—) हे चित्र मुनि! उच्च, उदय, मधु, कर्क और ब्रह्म-ये पाँच प्रकार के प्रमुख महल तथा अन्य भी महल हैं जो उत्तम कारीगरों के द्वारा निर्मित हैं। पांचाल देश के इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों युक्त तथा धन-धान्य से परिपूर्ण इन भवनों को स्वीकार करो ॥ १३ ॥

(Brahmadutt—) O Chitra ascetic! There are five kinds of excellent palaces here—*Uchcha, Udaya, Madhu, Kark* and *Brahma*. Besides these there are other palaces also, constructed by best masons. Please accept these mansions of Panchal country, which are well equipped and fully provisioned to gratify all senses. (13)

नट्टेहि गीएहि य वाइएहिं, नारीजणाइं परिवारयन्तो।  
भुंजाहि भोगाइ इमाइ भिक्खू !, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥ १४ ॥

हे भिक्षु ! नृत्य, गीत, वाद्यों के साथ युवती स्त्रियों से घिरे हुए इन भोगों को भोगो। मुझे तो यह रचिकर लगते हैं, प्रव्रज्या तो निश्चित ही दुःखद है ॥ १४ ॥

O ascetic! Surrounded by young maidens and with accompaniment of dance, song and music enjoy all these pleasures and merriment. To me all these are charming and exhilarating. Initiation is, indeed, agonizing. (14)



तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं, नराहिवं कामगुणोसु गिद्धं।  
धम्मस्सिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयणमुदाहरित्था— ॥ १५ ॥

(चित्र मुनि—) पूर्व-जन्मों के स्नेह के कारण कामभोगों में गृद्ध राजा को धर्म में स्थिर चित्र मुनि ने उस चक्रवर्ती के लिये हितकारी ये उद्गार व्यक्त किये— ॥ १५ ॥

(Chitra ascetic—) Due to his affection from earlier birth, the resolute Chitra ascetic expressed these feelings for the benefit of the king who was obsessed with mundane indulgences— (15)

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडम्बियं।  
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥ १६ ॥

सभी गीत विलाप, सभी नाटक विडम्बना, सभी आभूषण भारभूत और सभी कामभोग दुःख देने वाले हैं ॥ १६ ॥

All songs are but wailing, all plays are just frustrating, all ornaments are mere burdens, all mundane pleasures mere sources of misery. (16)

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणोसु रायं !  
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खणं सीलगुणे रयाणं ॥ १७ ॥

हे राजन् ! अज्ञानियों को सुन्दर लगने वाले किन्तु यथार्थ में दुःख देने वाले कामभोगों में वह सुख नहीं है जो सुख कामभोगों से विरक्त, शील आदि गुणों में रत तपोधन भिक्षुओं को प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

O Overlord! Mundane pleasures, attractive to the ignorant but painful in reality, are not as blissful as the bliss experienced by the austere ascetics, apathetic to mundane pleasures and indulgent in virtues like righteousness. (17)

नरिंद ! जाई अहमा नराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं।  
जहिं वयं सव्वजणस्स वेस्सा, वसीय सोवाग-निवेसणेसु ॥ १८ ॥

हे नरेन्द्र ! मनुष्यों में सबसे अधिक अधम समझी जाने वाली चाण्डाल जाति में उत्पन्न होकर हम सभी मानवों के घृणा-पात्र बने ॥ १८ ॥

O Ruler! Taking birth in Chandaal caste, considered to be the lowest in human society, we became objects of hatred of all people. (18)

तीसे य जाईइ उ पावियाए, वुच्छामु सोवागनिवेसणेसु।  
सव्वस्स लोगस्स दुगंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरेकडाइं ॥ १९ ॥

उस पापिष्ठ-निन्दनीय चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुये हम चाण्डाल बस्ती में सभी के घृणा-पात्र बनकर रहते थे; किन्तु इस जन्म में हमें जो श्रेष्ठता प्राप्त है, वह पूर्व-जन्म में किये हुए शुभ कर्मों का फल है ॥ १९ ॥

Born in that despicable Chandaal caste we lived in the helmets of Chandaals detested by all. However, the nobility we have got in this birth is the consequence of the good deeds we did during the earlier births. (19)





सो दाणिसिं राय ! महाणुभागो, महिद्धिदो पुण्णफलोववेओ ।  
चइत्तु भोगाईं असासयाईं, आयाणहेउं अभिणिव्वमाहि ॥ २० ॥

हे राजन् ! वही सम्भूत के जीव तुम पूर्व शुभ कर्मों के कारण इस समय महाभाग्यवान्, महाऋद्धिवान् एवं पुण्यफलों से युक्त हो। अब इन क्षणिक कामभोगों को त्यागकर, चारित्र धर्म को ग्रहण करने के लिये अभिनिष्क्रमण करो ॥ २० ॥

O king! You are the soul of the same Sambhuta and are very fortunate, very prosperous, and endowed with meritorious fruits at the present moment only due to the noble deeds of the past birth. Now abandon these momentary mundane pleasures and opt for renunciation in order to embrace the ascetic conduct. (20)

इह जीविए राय ! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाईं अकुव्वमाणो ।  
से सोयईं मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परंसि लोए ॥ २१ ॥

हे राजन्! इस नश्वर मानव-जीवन को पाकर जो विपुल पुण्य कर्म नहीं करता, वह मृत्यु के समय शोक करता है और धर्म न करने के कारण परलोक में भी शोक करता है ॥ २१ ॥

O king! He who does not do plenty of meritorious deeds, laments at the hour of death and begets misery in the next life due to not performing his religious duties. (21)

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले ।  
न तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मिंऽसहरा भवन्ति ॥ २२ ॥

जिस प्रकार सिंह हरिण को पकड़कर ले जाता है उसी प्रकार आयु समाप्त होने पर मृत्यु भी अन्त समय में मानव को पकड़कर ले जाती है। मृत्यु के समय माता-पिता, भाई-बन्धु कोई भी उसके सहायक नहीं होते ॥ २२ ॥

As a lion pounces on a deer and takes it away, in the same way when life-span comes to an end death too takes a man away. When death comes no one, including mother, father, brother or relative, can help. (22)

न तस्स दुक्खं विभयन्ति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बन्धवा ।  
एक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं ॥ २३ ॥

उस मृत्यु के मुख में जाते हुये व्यक्ति के दुःख को जाति-जन, मित्र, पुत्र तथा बान्धव नहीं बँटा सकते। वह स्वयं अकेला ही उन प्राप्त दुःखों को भोगता है; क्योंकि कर्म कर्ता का ही अनुगमन करता है ॥ २३ ॥

Kinsmen, friends, sons or relations, none of these can share the miseries of the man in the jaws of death; he alone has to suffer the pain; because the *karmas* follow only the doer. (23)

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धणधन्नं च सव्वं ।  
कम्मप्पबीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुन्दर चावगं वा ॥ २४ ॥

द्विपद, चतुष्पद, खेत, घर, धन-धान्य आदि सब कुछ यहीं छोड़कर वह पराधीन आत्मा अपने कृतकर्मों को साथ लिए सुन्दर-शुभ अथवा पाप-अशुभ गतिरूप परभव को जाता है ॥ २४ ॥



Leaving his bipeds, quadrupeds, farms, houses, wealth, grains and all other possessions this helpless dependant soul, goes to a noble or ignoble next birth taking along its acquired *karmas*. (24)

तं इक्कगं तुच्छसरीरगं से, चिईगयं डहिय उ पावगेणं।  
भज्जा य पुत्ता वि य नायओ य, दायारमन्नं अणुसंकमन्ति ॥ २५ ॥

आत्मारहित इस तुच्छ शरीर को चित्ता में भस्म करके स्त्री, पुत्र तथा जाति-जन किसी अन्य आश्रयदाता का अनुसरण करते हैं ॥ २५ ॥

Burning to ashes this soul-less body in a funeral pyre, the wife, sons and kinsfolk follow some other person for support. (25)

उवणिज्जई जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं।  
पंचालराया ! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं महालयाइं ॥ २६ ॥

हे राजन्! किसी प्रकार का प्रमाद अथवा भूल किये बिना कर्म जीवन को प्रत्येक क्षण मृत्यु के समीप ले जा रहा है और यह वृद्धावस्था शरीर के लावण्य का हरण कर रही है। अतः हे पांचालराज! मेरे वचनों को सुनो और अधिक पापकर्मों को मत करो ॥ २६ ॥

O king! The *karmas* are dragging life every moment towards death with no negligence; and this old age is gnawing at the grace and beauty of the body. Therefore, O king of Panchal! Pay heed to my words and do not indulge in sinful deeds any more. (26)

अहं पि जाणामि जहेह साहू !, जं मे तुमं साहसि वक्कमेयं।  
भोगा इमे संगकरा हवन्ति, जे दुज्जया अज्जो ! अम्हारिसेहिं ॥ २७ ॥

(ब्रह्मदत्त-) हे साधु चित्र! जैसा आप मुझे बता रहे हैं, मैं भी जानता हूँ कि ये कामभोग बन्धन रूप हैं किन्तु हे आर्य! मेरे जैसे लोगों के लिए तो ये दुर्जेय ही हैं ॥ २७ ॥

(Brahmadutt-) O ascetic Chitra! I also know that these mundane pleasures and comforts, as you are telling me, are bonds but O noble one! To people like me they are, indeed, invincible. (27)

हत्थिणपुरम्मि चित्ता !, दट्ठूणं नरवई महिड्ढियं।  
कामभोगेसु गिद्धेणं, नियाणमसुहं कडं ॥ २८ ॥

हे चित्र! हस्तिनापुर में महाऋद्धि वाले चक्रवर्ती को देखकर, भोगों में आसक्त होकर मैंने अशुभ निदान किया था ॥ २८ ॥

O ascetic Chitr! In Hastinapur, seeing the enormous fortunes of the emperor (Sanatkumar) and getting infatuated with worldly pleasures I made a strong ignoble wish. (28)

तस्स मे अपडिकन्तस्स, इमं एयारिसं फलं।  
जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥ २९ ॥

मैंने उस निदान का प्रतिक्रमण नहीं किया था। उसी का यह परिणाम है कि धर्म को जानता हुआ भी मैं कामभोगों में मूर्च्छित-अत्यासक्त हो रहा हूँ ॥ २९ ॥



I did not formally undergo critical review (*pratikraman*) of the wish. As a consequence I am obsessed with mundane pleasures in spite of my awareness of the religious tenets. (29)

नागो जहा पंकजलावसन्नो, दट्टुं थलं नाभिसमेइ तीरं।  
एवं वयं कामगुणोसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयाणो ॥ ३० ॥

जिस प्रकार दल-दल में फँसा हुआ हाथी स्थल को देखकर भी किनारे पर नहीं पहुँच पाता, उसी प्रकार कामभोगों में आसक्त हम जैसे लोग भिक्षु-मार्ग (साधु धर्म) का अनुसरण नहीं कर पाते ॥ ३० ॥

As an elephant caught in a quagmire is unable to reach the shore in spite of seeing it, in the same way people like me, obsessed with mundane pleasure, cannot follow the ascetic path. (30)

अच्चेइ कालो तूरन्ति राइओ, न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा।  
अविच्च भोगा पुरिसं चयन्ति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥ ३१ ॥

(चित्र मुनि—) हे राजन्! समय व्यतीत हो रहा है, रात्रियाँ भागती जा रही हैं। मानवीय भोग भी नित्य नहीं हैं। जिस प्रकार क्षीण फल वाले वृक्ष को पक्षी छोड़ देते हैं उसी तरह पुण्य क्षीण हो जाने पर मानव को कामभोग भी छोड़ देते हैं ॥ ३१ ॥

(Chitra ascetic—) O king! Time is passing, nights are running away and mundane pleasures are also not everlasting. As birds leave a tree devoid of fruits, in the same way the worldly pleasures abandon man, when the acquired merit-karmas are exhausted. (31)

जइ तं सि भोगे चइउं असत्तो, अज्जाइं कम्माइं करेहि रायं।  
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकम्पी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी ॥ ३२ ॥

हे राजन्! यदि तुम कामभोगों को नहीं छोड़ सकते तो आर्यकर्म ही करो। धर्म में स्थित होकर सभी जीवों के प्रति दया का आचरण करो जिसके फलस्वरूप अगले जन्म में वैक्रिय शरीरधारी देव बन सकोगे ॥ ३२ ॥

O king! If you cannot renounce mundane pleasures, at least indulge in noble deeds. Establish yourself in religion and behave compassionately with all living beings, so that you could be reborn as a god with transmutable body (*vaikriya sharira*). (32)

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी, गिद्धो सि आरम्भ-परिग्गहेसु।  
मोहं कओ एत्तिउ विप्पलावो, गच्छामि रायं ! आमन्तिओउसि ॥ ३३ ॥

तुम्हारी बुद्धि भोगों को छोड़ने की नहीं है। तुम आरम्भ तथा परिग्रह में बहुत आसक्त हो। मैंने व्यर्थ ही इतने समय तक विप्रलाप (बकवास) किया—तुम्हें प्रबोधित करने का असफल प्रयत्न किया। हे राजन्! अब मैं जा रहा हूँ ॥ ३३ ॥



You have no intention to abandon mundane pleasures. You are very much obsessed with sinful activity and possessions. I chattered uselessly for so long (made vain effort to enlighten you). O king! Now I am going, farewell to you. (33)

पंचालराया वि य बभ्रदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं।  
अणुत्तरे भुजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥ ३४ ॥

पंचाल देश का स्वामी चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त चित्र मुनि के वचनों का पालन न कर सका। अतः वह अनुत्तर उत्कृष्ट कामभोगों को भोगकर अनुत्तर-सातवें नरक में उत्पन्न हुआ ॥ ३४ ॥

Emperor Brahmadrutt, the ruler of Panchal country, could not do according to the counsel of ascetic Chitra. As such, after enjoying incomparable (best) mundane pleasures he was reborn in incomparable (worst) hell, the seventh hell. (34)

चित्तो वि कामेहिं विरत्तकामो, उदग्गचारित्त-तवो महेसी।  
अणुत्तरं संजम पालइत्ता, अणुत्तरं सिद्धिगइं गओ ॥ ३५ ॥

—त्ति बेमि।

कामभोगों से विरक्त, उग्र चारित्र्यी एवं तपस्वी महर्षि चित्र मुनि अनुत्तर-उत्कृष्ट संयम का पालन करके अनुत्तर-उत्कृष्ट-सिद्धगति को प्राप्त हुए ॥ ३५ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Detached from mundane pleasures, indulgent in rigorous ascetic conduct and austerities, great ascetic Chitra after observing extreme restraint attained incomparable status of perfection, the status of *Siddha*. (35)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १—'निदान'—तपश्चरण आदि के बदले में भोग-प्राप्ति के लिये किया जाने वाला दृढ़ संकल्प निदान है। यह आर्त्तध्यान का ही एक भेद है।

गाथा २—चूर्ण आदि ग्रन्थों के अनुसार गंगा प्रतिवर्ष अपना मार्ग बदलती रहती है। जो पहले का मार्ग छोड़ देती है, उस छोड़े हुए मार्ग की भूमि को मृतगंगा कहते हैं।

## IMPORTANT NOTES

**Verse 1—Nidaan**—It is a resolute wish to get worldly pleasures as a boon in exchange of observed austerities and other religious acts. It is a kind of *aarta-dhyan* (mental state engrossed in sorrow and grief).

**Verse 6**—According to scriptures including commentaries (*Churni*) the Ganges shifts its course every year. The earlier course that is now land is called Mrit-ganga.



## चतुर्दश अध्ययन : इषुकारीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम इषुकारीय है। यद्यपि इस अध्ययन के प्रमुख पात्र भृगु पुरोहित के दोनों पुत्र हैं। उन्हीं से भृगु पुरोहित, उसकी पत्नी यशा प्रतिबोध पाते हैं और रानी कमलावती से प्रेरणा पाकर राजा इषुकार श्रमण बनकर सद्धर्म का आचरण करते हैं। किन्तु राजा की प्रमुखता होने के कारण इस अध्ययन का नाम इषुकारीय रखा गया है।

राजा का नाम इषुकार है और नगर का नाम भी इषुकार ही है।

### कथासूत्र

भृगु पुरोहित के पुत्रों को बाल्य अवस्था में जो वैराग्य हुआ, उसका कारण उनके पूर्व-जन्मों में निहित है। राजा इषुकार, रानी कमलावती, भृगु पुरोहित और पुरोहित-पत्नी यशा तथा उनके दोनों पुत्र-वे छहों जीव पूर्व-जन्मों में भी परस्पर सम्बन्धित रहे हैं। संक्षिप्त घटना क्रम इस प्रकार है—

पिछले अध्ययन 'चित्र-संभूतीय' में चार गोपाल-पुत्र साधुओं का वर्णन आया था, उनमें से दो तो चित्र-संभूत के रूप में वर्णित हो चुके हैं। शेष दो का सम्बन्ध इस अध्ययन से है।

वे दोनों देव अपना देवायुष्य पूर्ण कर क्षिति-प्रतिष्ठित नगर में इभ्य-कुल में उत्पन्न हुए। वहाँ उनकी मित्रता अन्य चार श्रेष्ठि-पुत्रों से हुई। उन छहों ने एक बार स्थविरो से श्रेष्ठ धर्म सुना और दीक्षित हो गये। दीर्घकाल तक संयम का पालन करते रहे। आयु के अन्त में समाधिमरण किया और वे छहों सौधर्म स्वर्ग के पद्मगुल्म नामक विमान में चार पत्योपम की आयु वाले देव बने।

देवायु पूर्ण होने पर एक देव तो इषुकार नगर का राजा इषुकार बना, दूसरा उसकी रानी कमलावती, तीसरा भृगु पुरोहित और चौथा उसकी पत्नी यशा के रूप में उत्पन्न हुआ।

गोपाल-पुत्र दोनों देवों का आयुष्य अभी पूर्ण नहीं हुआ था, वे दोनों स्वर्ग में ही थे।

भृगु पुरोहित और उनकी पत्नी यशा को दीर्घकाल तक पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई तो वे चिन्तित रहने लगे। पुत्र-प्राप्ति की उनकी उत्कट अभिलाषा थी।

इधर देवलोक में रहे हुए देवों ने अपने भविष्य के विषय में विचार किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि 'हम भृगु पुरोहित के पुत्र बनेंगे।' तब उन्होंने सोचा—'मानव-भव में कहीं हम धर्म को न भूल जाएँ, इसके लिये पहले ही प्रबन्ध कर लेना चाहिये।'

वे श्रमण वेष धारण कर भृगु पुरोहित के घर आये। पति-पत्नी दोनों ने श्रमणों की वन्दना की। श्रमणों ने धर्मोपदेश दिया। पति-पत्नी ने पुत्र-प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की। श्रमण वेषधारी देवों ने कहा—“तुमको दो पुत्र प्राप्त होंगे; किन्तु वे लघु वय में ही दीक्षित हो जायेंगे, उन्हें रोकना मत।”

इतना कहकर श्रमण वेषधारी देव चले गये।

ग्वाल-पुत्र देवों का आयुष्य पूर्ण हुआ, उन्होंने भृगु पुरोहित के घर में जन्म लिया। पुत्र-प्राप्ति से पति-पत्नी के हृदय की कली खिल गई। साथ ही चिन्ता भी लग गई कि पुत्र कहीं दीक्षित न हो



जाएँ। इस कारण इषुकार नगर छोड़कर पास ही ब्रज गाँव में रहने लगे। साथ ही पुत्रों को दीक्षा से विरत करने के लिये यदा-कदा कहते रहते—“ये साधु ऊपर से भले दीखते हैं, पर बड़े भयंकर होते हैं। झोली में छुरी-काँटे रखते हैं। छोटे बच्चों को पकड़कर ले जाते हैं; आदि।”

माता-पिता की इस विपरीत शिक्षा से दोनों बालकों के मन में साधुओं के प्रति डर समा गया।

एक दिन दोनों भाई गाँव के बाहर एक विशाल छायादार वृक्ष के नीचे खेल रहे थे। कुछ साधुओं की आते देखा तो भयभीत होकर उसी वृक्ष पर चढ़कर पत्तों में छिप गये। साधु भी उसी वृक्ष के नीचे रुक गये। स्थान स्वच्छ कर भोजन करने लगे। उनका दयामय व्यवहार और सात्विक आहार को देखकर भृगु-पुत्रों का भय निकल गया, साधुओं के प्रति अधिक ऊहापोह करने से जातिस्मरण ज्ञान हो गया। घर आकर माता-पिता से दीक्षा की अनुमति माँगने लगे।

पिछले अध्ययन चित्र-संभूतीय में भोग और योग की दुःख तथा सुखमय परिणति का दिग्दर्शन कराया गया था; किन्तु प्रस्तुत अध्ययन वैराग्यपरक है।

वैदिक तथा अन्य तत्कालीन धार्मिक जगत् में प्रचलित परम्पराओं का बड़े ही तार्किक ढंग से निरसन करके श्रमणधर्म की मान्यताओं की स्थापना की गई है। इस रूप में यह अध्ययन तर्कप्रधान है। रानी कमलावती ने भी उस समय की प्रचलित राजकीय परम्परा कि ‘अपुत्री के धन का स्वामी राजा होता है’ को बड़े तर्कपूर्ण ढंग से निन्द्य सिद्ध कर अपने पति राजा इषुकार को भृगु पुरोहित का धन लेने से विरत करके संयम की ओर मोड़ा है।

यह तो परम सत्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्व-जन्म के संस्कारों को लेकर आता है और वर्तमान परिस्थितियों तथा पर्यावरण से भी प्रभावित होता है।

इस अध्ययन का प्रत्येक पात्र एक टाइप है, एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करता है। राजा इषुकार इस राजनीतिक विचारधारा का प्रतिनिधि है कि उत्तराधिकारी विहीन व्यक्ति की संपत्ति का स्वामी राजा होता है। रानी कमलावती भोग के कीचड़ में भी निर्लिप्त कमलिनी के समान है।

भृगु पुरोहित तत्कालीन ब्राह्मण तथा अन्य धार्मिक विचारधाराओं का प्रतिनिधि है तो उसकी पत्नी यशा कामभोगों का सुख लेना चाहती है; वह सामान्य नारी का प्रतिनिधित्व करती है। वह पति को संसार में ही फँसाये रखने का प्रयत्न करती है।

भृगु पुरोहित के दोनों पुत्र श्रमण विचारधारा के प्रतिनिधि हैं। पिता द्वारा प्रस्तुत विचारधाराओं का प्रमाण पुरस्सर निरसन करते हैं, हृदयस्पर्शी शब्दों में उचित उत्तर देते हैं। उनके उत्तरों से पिता का मोह भंग होता है और वह भी गृह-त्याग के लिए तत्पर हो जाता है, तब पुरोहित-पत्नी भी संयमी जीवन स्वीकार करने को उद्यत होती है।

रानी कमलावती अपने पति राजा इषुकार को विभिन्न तर्कों और दृष्टान्तों से समझाती है तथा स्वयं प्रव्रजित होने की इच्छा प्रगट करती है। उसके तथ्य पूर्ण वचनों से प्रभावित राजा इषुकार भी संयम ग्रहण कर लेते हैं।

इस प्रकार भृगु पुरोहित, पुरोहित-पत्नी यशा, उनके दोनों पुत्र और रानी कमलावती तथा राजा इषुकार छहों व्यक्ति श्रमण धर्म का पालन कर संसार से मुक्त होते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में ५३ गाथाएँ हैं।



## CHATURDASH ADHYAYAN : ISHUKAAR

### Foreview

The title of this chapter is Ishukaariya. The principal characters of this story are the two sons of priest Bhrigu. It is they who preach Priest Bhrigu and his wife Yasha. It is queen Kamalavati who inspires king Ishukaar to become a *shraman* (Jain ascetic) and practice the noble religion. However, due to prominence of the king the title of this chapter is Ishukaariya.

The king and his city both bear the same name Ishukaar.

### The Story

The reason that priest Bhrigu's two sons got detached right in their boyhood is associated with their earlier births. King Ishukaar, queen Kamalavati, priest Bhrigu, his wife Yasha and their two sons, all these six souls were mutually associated in their earlier births also. The story in brief is as follows—

The preceding chapter has the story of four ascetic sons of a cowherd. Two of them have been mentioned as Chitra and Sambhuta in the preceding chapter. The other two are connected with this chapter.

On conclusion of their divine life-span, these two were reborn in an affluent family in Kshitipratishthit city. Four other youth from merchant families became their friends. Once all the six young men attended religious discourses by senior ascetics (*sthavirs*) and got initiated. After leading a long ascetic life they embraced meditational death and all the six were reborn as gods having a life-span of four Palyopam (a metaphoric unit of time) in the Padmagulma celestial vehicle in Saudharma divine realm.

When the divine life-span came to an end one god was born as Ishukaar, the king of the city of the same name, second one as his queen Kamalavati, third one as priest Bhrigu and fourth one as his wife Yasha.

The life-spans of the gods who were cowherd's sons were yet to be concluded. They were still in the divine realm.

When priest Bhrigu and his wife Yasha remained childless for a long time, they got worried. They were very eager to have a son.

In the divine realm when the aforesaid two gods thought about their future, they came to know that 'We will be reborn as sons of priest Bhrigu'. They then thought—'We should make advance arrangement lest we may forget the right religion during the birth as humans.'

They came to priest Bhrigu's home in the guise of *shramans*. The couple paid them homage. The sages gave them a religious discourse. The couple expressed their desire for a son. The sages said—"You will get two sons, but they will get initiated at an early age. Please do not stop them doing so."



Saying thus the gods guised as sages went away.

When the divine life-span of the two cowherd's sons concluded, they were reborn in priest Bhrigu's home. The couple was filled with joy to get two sons. But at the same time they got worried also about the impending initiation of the sons. To avoid this they left Ishukaar city and took residence in a nearby village called Braj. They also started to poison the minds of their sons by often telling them that "these sages are apparently noble but actually they are evil; they keep daggers and forks in their bags and kidnap children; and much more."

These adverse remarks by their parents made the sons fearful of sages.

Once, the two brothers were playing under a large and dense tree outside the village. When they saw some sages approaching, they climbed up the tree with panic and hid themselves in leaves. The sages stopped under the tree and cleaning the needed area they began taking their meal. Observing their compassionate behaviour and pure pious food the fear of the sons of Bhrigu evaporated. While they were deliberating about sages they were blessed with *Jatismaran jnana* (surfacing of the memories of past births). On their return home they sought permission for initiation from their parents.

In the previous chapter mundane indulgences and spiritual practices and their respective miserable and happy consequences were described but this chapter is detachment oriented.

Here logically refuting the traditional beliefs of Vedic and other contemporary schools in the religious arena, the beliefs of *Shraman* religion are established. In this context this chapter is logic centric. Queen Kamalavati has also logically proved the contemptuousness of the prevailing feudal tradition that 'the ruler becomes the natural owner of the wealth of an heirless person'. On strength of that, she persuaded her husband, king Ishukaar, not to confiscate the wealth of priest Bhrigu and inspired him towards ascetic restraint.

It is an established belief that every individual is born with impressions of earlier births and is also influenced by the existing circumstances and environment.

Every character of this chapter is a typed one in his own right and represents a certain school of thought. King Ishukaar represents the feudal tradition that the ruler is the owner of the wealth of an heirless person. Queen Kamalavati is like an unaffected lotus existing in the slime of mundane pleasures.

Priest Bhrigu represents the prevailing Brahminic and other creeds. Yasha, his wife, represents average woman desirous of sensual pleasures. She tries to keep her husband trapped in the mundane.

Both the sons of priest Bhrigu are representatives of the *Shramanic* school of thought. They emphatically refute the views presented by their father with proper authentication in lucid and touching words. Their answers shatter the delusion of their father and he also gets ready to renounce the world. After that, his wife Yasha also prepares herself to accept ascetic life.

Besides expressing her own desire to get initiated, Queen Kamalavati persuades her husband, king Ishukaar, with convincing arguments and examples in favour of asceticism. Influenced by her irrefutable logic king Ishukaar also joins the ascetic order.

This way, priest Bhrigu, his wife Yasha, their two sons, king Ishukaar and queen Kamalavati; all the six persons attain liberation by following the *Shraman* conduct.

The chapter has 53 verses.





चतुर्दशमं ब्रह्मयणं : उशुयारिज्जं  
 चतुर्दश अध्ययन : इषुकारीय  
 Chapter-14 : ISHUKAAR

देवा भवित्ताण पुरे भवम्पी, केइ चुया एगविमाणवासी।  
 पुरे पुराणे उशुयारनामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥ १ ॥

सुरलोक के समान रम्य-मनोहर इषुकार नाम का एक समृद्ध, प्रसिद्ध, प्राचीन नगर था। एक ही देवविमानवासी कई देव अपना देव आयुष्य पूर्ण कर उस नगर में मनुष्य रूप में उत्पन्न हुए ॥ १ ॥

There was an ancient city called Ishukaar, prosperous, famous and beautiful like heaven. On concluding their divine life-span, many gods from a particular celestial vehicle were reborn as human beings in that city. (1)

सकम्मसेसेण पुराकएणं, कुलेसु दग्गेसु य ते पसूया।  
 निव्विण्णसंसारभया जहाय, जिणिन्दमग्गं सरणं पवत्रा ॥ २ ॥

पूर्व-जन्म में कृत अपने अवशिष्ट कर्मों के कारण वे सभी आत्माएँ उच्च कुलों में उत्पन्न हुए और संसारभय से उद्विग्न होकर तथा कामभोगों को त्यागकर सभी ने जिनेन्द्र भगवान के मार्ग की शरण ग्रहण की ॥ २ ॥

Due to the residual meritorious *karmas* from their past birth, all these souls were reborn in noble families. Disgusted with the continued cycles of rebirth (*samsar*) and renouncing the mundane pleasures and comforts, they all took refuge in the path of Jinas (victors of senses). (2)

पुमत्तमागम्म कुमार दो वी, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती।  
 विसालकित्ती य तहोसुयारो, रायत्थ देवी कमलावई य ॥ ३ ॥

पुरुषत्व को प्राप्त करके दोनों पुरोहित-पुत्र तथा पुरोहित, उसकी पत्नी यशा, विपुल कीर्ति वाला राजा इषुकार और उसकी रानी कमलावती-यह छह व्यक्ति थे ॥ ३ ॥

Born as humans were these six persons—two sons of a priest, the priest himself, his wife Yasha, widely famous king Ishukaar and his queen Kamalavati. (3)

जाई-जरा-पच्चुभयाभिभूया, बहिं विहाराभिनिविट्ठचित्ता।  
 संसारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥ ४ ॥

मुनियों के दर्शन करके वे दोनों पुरोहित-पुत्र जन्म-जरा-मृत्यु के भय से उद्विग्न हो गये। उनके चित्त बहिर्विहार-मोक्ष की ओर आकृष्ट हो गये और संसार-चक्र से विमुक्त होने के लिए वे काम-गुणों से विरक्त हुए ॥ ४ ॥



Beholding virtuous sages, the two sons of priest Bhrigu got disturbed by fear of birth, dotage and death. Their thoughts were drawn to dwell away (towards liberation) and as a result they got disenchanted from sensual pleasures in order to be liberated from the cycles of rebirth. (4)

पियपुत्तगा दोन्नि वि माहणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स ।  
सरित्तु पोरणिय तत्थ जाइं, तहा सुचिण्णं तव-संजमं च ॥ ५ ॥

यज्ञ-याग आदि अपने कर्म में निरत भृगु पुरोहित के उन दोनों प्रिय पुत्रों को अपने पिछले जन्म तथा उसमें सुआचरित तप-संयम का स्मरण हो आया ॥ ५ ॥

Indulging in their activities of *yajna* (sacrifices), both the sons of priest Bhrigu remembered their earlier birth as well as the then performed immaculate austerities and self-control. (5)

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्सएसुं जे यावि दिव्वा ।  
मोक्खाभिकंखी अभिजायसद्धा, तायं उवागम्म इमं उदाहु— ॥ ६ ॥

मानुषिक तथा दिव्य कामभोगों में अनासक्त, एक मात्र मोक्ष-प्राप्ति के इच्छुक, श्रद्धा संपन्न दोनों पुरोहित-पुत्र पिता के पास आकर कहने लगे— ॥ ६ ॥

Not obsessed with human and divine pleasures, desirous to attain emancipation alone and full of faith, the priest-sons came to their father and said— (6)

असासयं दट्ठु इमं विहारं, बहुअन्तरायं न य दीहमाउं ।  
तम्हा गिहंसि न रइं लहामो, आमन्तयामो चरिस्सामु मोणं ॥ ७ ॥

(पुत्र—) यह मनुष्य-जन्म अनित्य है, इसमें बहुत-सी बाधाएँ हैं, आयु भी दीर्घ नहीं है; इस कारण घर में हमें कोई रुचि नहीं है। मुनिधर्म-पालन हेतु आपकी अनुमति चाहते हैं ॥ ७ ॥

(Sons—) This human life is transient, it is riddled with many hindrances and its span is also not long; therefore we have no interest in domestic life. We seek your consent for practicing the ascetic code. (7)

अह तायगो तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघायकरं वयासी ।  
इमं वयं वेयविओ वयन्ति, जहा न होई असुयाण लोगो ॥ ८ ॥

(पुरोहित—) पुत्रों के यह वचन सुनकर पिता ने उनको रोकने का प्रयास किया। कहा—पुत्रो! वेद के ज्ञाताओं का यह कथन है कि पुत्रहीन को सद्गति प्राप्त नहीं होती ॥ ८ ॥

Having heard these words of his sons, the father (priest Bhrigu) tried to stop them. He said—Dear sons ! The scholars of Vedas say that a man without a son is deprived of noble future (next birth). (8)

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते पडिट्ठप्प गिहंसि जाया !  
भोच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होह मुणी पसत्था ॥ ९ ॥

अतः पहले वेदों का अध्ययन करो, विप्रों को भोजन दो, विवाह करके स्त्रियों के साथ भोग भोगो। तत्पश्चात् पुत्रों को घर का भार देकर अरण्यवासी श्रेष्ठ मुनि बन जाना ॥ ९ ॥



## मृगु पुरोहित दम्पति और उसके पुत्र

- (1) स्वर्ग से च्यवकर छः प्राणियों में से दो राजा-रानी, दो पुरोहित दम्पति, दो पुरोहित-पुत्र के रूप में उत्पन्न हुये।
- (2) मुनियों को देखकर पुरोहित-पुत्र भयभीत होकर दौड़े। एक वृक्ष पर छुप गये। मुनियों का शान्त मुख और दयामय व्यवहार देखकर उनका भय दूर हुआ और वृक्ष से नीचे उतरकर वन्दना करने लगे।

—अध्ययन 14, सू. 1-5

## THE PRIEST COUPLE BHRIGU AND HIS SONS

- (1) Completing the divine life-span the six souls were reborn as human beings – two as the King and queen, two as the priest and his wife and two as sons of the priest.
- (2) Seeing the sages both the sons of priest ran away with fear and hid themselves on a tree. Looking at the serene faces and generous behaviour of sages, their fear evaporated. They came down from the tree and paid homage to the sages.

—Chapter 14, Aphorism 1-5





As such, first of all study Vedas, offer food to Brahmins, get married and enjoy married life, and after that entrust your responsibilities to your sons before retiring to the forest to become proficient sages. (9)

सोयग्गिणा आयगुणिन्धणेणं, मोहाणिला पज्जलणाहिणं ।  
संतत्तभावं परितप्पमाणं, लालप्पमाणं बहुहा बहुं च— ॥ १० ॥

अपने रागादि गुण रूप ईधन और मोहरूपी पवन से अधिकाधिक प्रज्वलित अग्नि से संतप्त, परितप्त, मोहवश दीन-हीन वचन बोलते हुये— ॥ १० ॥

(The priest was—) Tormented and tortured by the internal fire blazed by fuel of vices, including attachment and blown by wind of fondness, and was uttering humble pitiful words out of his fondness— (10)

पुरोहिययं तं कमसोऽणुणन्तं, निमंतयन्तं च सुए धणेणं ।  
जहक्कमं कामगुणेहि चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्कं— ॥ ११ ॥

तथा पुत्रों की एक के बाद एक अनुनय करते हुये, धन के, कामभोगों के निमंत्रण देते हुए पिता को मोहाच्छादित देखकर कुमारों ने कहा— ॥ ११ ॥

Beseeching and inviting his sons one after another to enjoy wealth, pleasures and comforts. Seeing their father thus overwhelmed by delusion, the sons said — (11)

वेया अहीया न भवन्ति ताणं, भुत्ता दिया निन्ति तमं तमेणं ।  
जाया य पुत्ता न हवन्ति ताणं, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ॥ १२ ॥

(पुत्र—) अध्ययन किये हुये—अधीत वेद रक्षक नहीं होते। ब्राह्मणों को भोजन कराने वाले भी तमस्तम नरक में जाते हैं। उत्पन्न हुए अपने पुत्र भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते। अतः आपके इस कथन का कौन अनुमोदन करेगा? ॥ १२ ॥

(Sons—) The acquired knowledge of Vedas cannot provide protection. Those who feed Brahmins also go to the Tamastamah (seventh) hell. One's own sons are also incapable of protecting (from misery). So who will assent to your this statement. (12)

खणमेत्तसोक्खा बहुकालदुक्खा, पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।  
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥ १३ ॥

कामभोग क्षण मात्र के लिये सुखद हैं, और दीर्घकाल तक दुखदायी हैं। वे अधिक दुःख और अल्प-सुख देते हैं। ये संसार से मुक्त होने में बाधक हैं। इसलिये अनर्थों की खान हैं ॥ १३ ॥

Mundane pleasures are joyful for a moment and painful for a very long period. They provide more suffering and little joy. These are obstacles in attainment of liberation from cycles of rebirth. As such they are mines of misfortunes. (13)

परिव्वयन्ते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे ।  
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोत्ति मच्चुं पुरिसे जरं च ॥ १४ ॥



जो पुरुष कामनाओं से निवृत्त नहीं है, वह अतृप्ति की अग्नि से संतप्त होकर रात-दिन भटकता रहता है। दूसरों के प्रति आसक्त ऐसा पुरुष धन की खोज करता हुआ वृद्धावस्था और मृत्यु को प्राप्त करता है ॥ १४ ॥

A man, who is not rid of desires, wanders about day and night distressed by the fire of discontentment. With attachment for others such a person, in the process of continued search for wealth, approaches old age and finally succumbs to death. (14)

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं ।

तं एवमेवं लालप्स्यमाणं, हरा हरति त्ति कहं पमाए ? ॥ १५ ॥

यह मेरे पास है, यह मेरे पास नहीं है। मुझे यह करना है, यह नहीं करना है—इस प्रकार व्यर्थ की बकवास करने वाले व्यक्ति को मृत्यु उठा लेती है। ऐसी स्थिति में प्रमाद कैसा ? ॥ १५ ॥

This I have and that I do not. This I have to do and that I do not have to. He who indulges in such worthless ambiguities is, in the mean time, whisked away by death. What for negligence, then ? (15)

धणं पभूयं सह इत्थियाहिं, सयणा तहा कामगुणा पगामा ।

तवं कए तप्पइ जस्स लोगो, तं सव्व साहीणमिवेह तुब्भं ॥ १६ ॥

(पिता—) जिसके लिये व्यक्ति तपस्या करते हैं, वे सब साधन-प्रचुर धन, स्त्रियाँ, उत्कृष्ट कामभोग तथा स्वजन तुम्हें यहीं पर स्वाधीन रूप से प्राप्त हैं तब परलोक के इन सुखों के लिये साधु क्यों बनते हो ? ॥ १६ ॥

(Father—) Enormous wealth, women, enchanting pleasures and comforts and family, for availing which men observe austerities, are all freely available to you. Then why become an ascetic in order to avail them in the next birth? (16)

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहि चेव ।

समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिंविहारा अभिगम्म भिक्खं ॥ १७ ॥

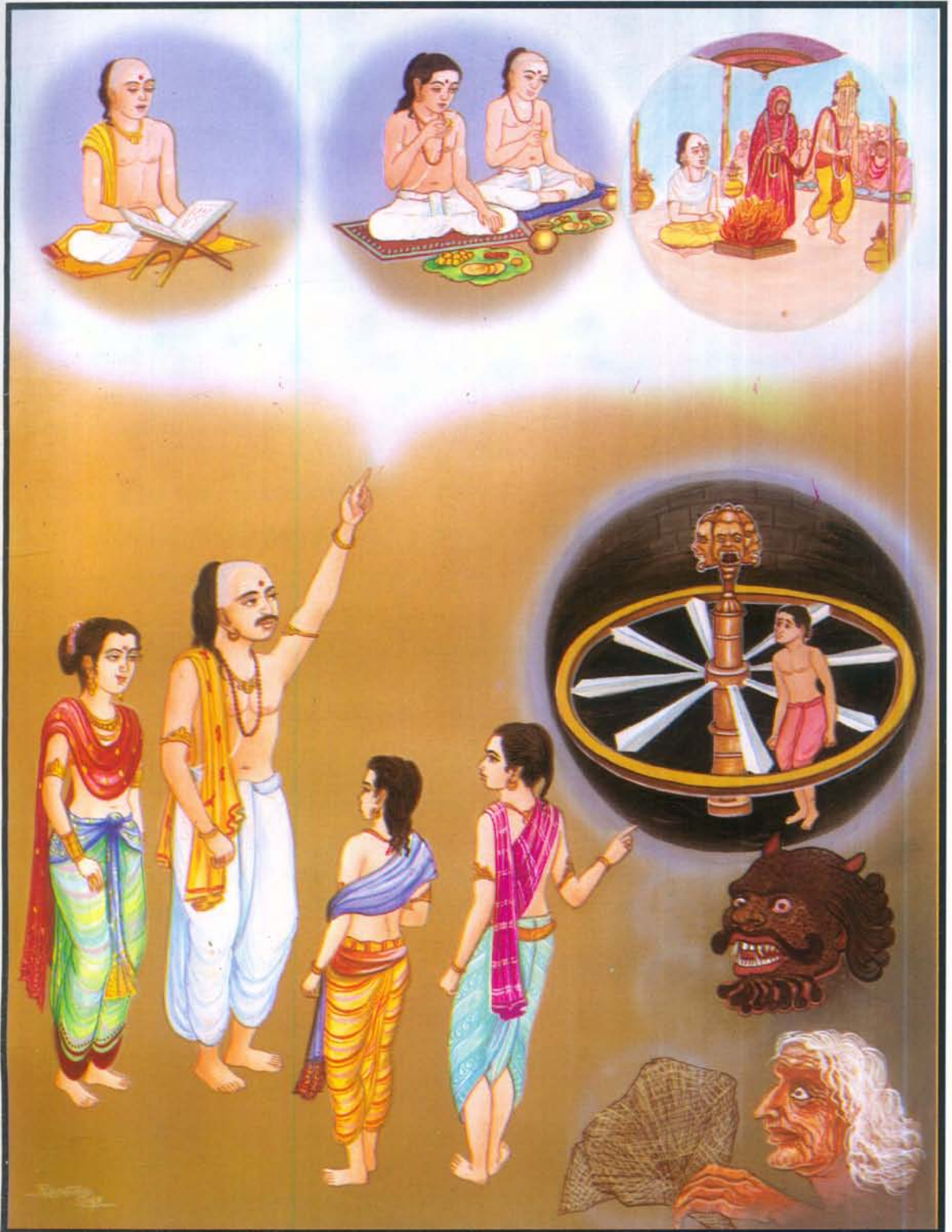
(पुत्र—) धर्म की धुरा को धारण करने वाले को धन, स्वजन, कामभोगों से क्या प्रयोजन है? हम तो गुणों के धारक, अप्रतिबद्ध विहारी शुद्ध भिक्षाजीवी श्रमण बनेंगे ॥ १७ ॥

(Sons—) Of what use are wealth, relations and mundane pleasure to those who bear the axis of the wheel of religion? We only want to be virtuous, itinerant and alms-subsisting ascetics. (17)

जहा य अग्गी अरणीउसन्तो, खीरे घयं तेत्त महातिलेसु ।

एमेव जाया ! सरीरंसि सत्ता, संमुच्छई नासइ नावचिट्ठे ॥ १८ ॥

(पिता—) पुत्रो! जिस तरह अरणिकाष्ठ में अग्नि, दूध में घी और तिलों में तेल असत् होते हुये भी प्रगट होता है, उसी प्रकार शरीर में जीव भी असत् होते हुये भी उत्पन्न होता है और शरीर के नाश के साथ ही नष्ट हो जाता है ॥ १८ ॥



## पिता-पुत्र संवाद

- (1) पिता ने दीक्षा की अभिलाषा रखने वाले अपने पुत्रों को ब्राह्मण का कर्त्तव्य बताते हुये कहा—पहले वेद पढ़ो, ब्राह्मणों को भोजन कराओ, विवाह करो, फिर साधु बनना।
- (2) पुत्रों ने उत्तर दिया—यह संसार क्रूर काल-चक्र के बीच में फँसा हुआ है। जरा और मृत्यु से घिरा हुआ है। ऐसे में जीवन का क्या भरोसा है?

—अध्ययन 14, सू. 9-30

## THE DIALOGUE BETWEEN FATHER AND SON

- (1) Expressing the duties of a Brahmin, the father said to the sons desirous of ascetic-initiation – First of all study Vedas, feed Brahmins, get married and only after that become sages.
- (2) The sons replied—This world is caught in the cruel cycle of time, is encircled by dotage and death. As such what is the surety of life?

—Chapter 14, Aphorism 9-30







(Father—) Though non-existent, fire comes into being in *Arani* wood, *ghee* (butter-oil) in milk, oil in sesame seeds. In the same way, my sons, soul comes into being in the body; it perishes the moment the body perishes. (18)

नो इन्द्रियगोञ्ज अमूर्त्तभावा, अमूर्त्तभावा वि य होइ निच्चो ।

अञ्जत्थहेउं निययऽस्स बन्धो, संसारहेउं च वयन्ति बन्धं ॥ १९ ॥

(पुत्र—) रूप, गन्ध आदि रहित अमूर्त्तभाव-आत्मा, इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। लेकिन अमूर्त्तभाव नित्य होते हैं। आत्मा के राग-द्वेषादि आन्तरिक दोषों के कारण ही बन्ध होता है और बन्ध ही संसार का हेतु कहा गया है ॥ १९ ॥

(Sons—) Devoid of sight, smell and other corporeal attributes, the formless soul cannot be grasped and known by senses. But that which is without corporeal form is eternal. Bondage is caused by inner faults of soul, including attachment and aversion, and bondage alone is said to be the reason for continued cyclic rebirths (*samsar*). (19)

जहा वयं धम्ममजाणमाणा, पावं पुरा कम्ममकासि मोहा ।

ओरुञ्जमाणा परिरक्खियन्ता, तं नेव भुज्जो वि समायरामो ॥ २० ॥

हम जब तक धर्म को नहीं जानते थे, पाप करते रहे। आपने हमें रोका और हमारा पालन-पोषण किया। लेकिन अब हम पापकर्म नहीं करेंगे ॥ २० ॥

We continued to sin until we were not aware of the religion. You detained us and brought us up. But now we will not indulge in sinful deeds anymore. (20)

अब्भाहयंमि लोगंमि, सव्वओ परिवारिए ।

अमोहाहिं पडन्तीहिं, गिहंसि न रइं लभे ॥ २१ ॥

लोक पीड़ित है। चारों ओर से घिरा है। अमोघा आ रही है। इस दशा में हम घर में सुख का अनुभव नहीं कर पाते हैं ॥ २१ ॥

The whole *Lok* (world of the living) is oppressed and surrounded from all sides. The *amogha* (unstoppable) moves on. In such situation we cannot feel comfort or pleasure at home. (21)

केण अब्भाहओ लोगो?, केण वा परिवारिओ? ।

का वा अमोहा वुत्ता?, जाया ! चिंतावरो हुमि ॥ २२ ॥

(पिता—) पुत्रो! यह लोक किससे आहत अथवा पीड़ित है? किससे घिरा हुआ है? अमोघा किसे कहते हैं? मैं यह जानने के लिये चिन्तित हूँ ॥ २२ ॥

(Father —) Sons! What hurts this *Lok* (the living of this world)? What surrounds it? What do you mean by *amogha*? I am anxious to know that all. (22)

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ।

अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय ! वियाणह ॥ २३ ॥



(पुत्र—) पिताजी ! आप भली भाँति जान लें कि यह संसार मृत्यु से आहत है, वृद्धावस्था से घिरा हुआ है और समय-चक्र की कभी न रुकने वाली गति (दिन-रात की गति) को अमोघा कहा जाता है ॥ २३ ॥

(Sons—) Father! Know well that this *Lok* (world of the living) is oppressed by death. It is surrounded by old age. The unstoppable passage of time (the continuum of day and night leading to the end of a state) is called as *amogha*. (23)

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।

अहम्मं कुणमाणस्स, अफला जन्ति राइओ ॥ २४ ॥

जो रात्रियाँ व्यतीत हो रही हैं, वे कभी वापस लौटकर नहीं आतीं। अधर्म करने वालों की रात्रियाँ निष्फल जाती हैं ॥ २४ ॥

Nights (time) that have passed never return. The nights (time) of irreligious persons are wasted (fruitless). (24)

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तई ।

धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जन्ति राइओ ॥ २५ ॥

जो रात्रियाँ व्यतीत हो रही हैं वे कभी लौटकर वापस नहीं आतीं। धर्म करने वालों की रात्रियाँ सफल होती हैं ॥ २५ ॥

Nights (time) that have passed never return. The nights (time) of religious persons are advantageous (fruitful). (25)

एगओ संवसित्ताणं, दुहओ सम्पत्तसंजुया ।

पच्छा जाया ! गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ॥ २६ ॥

(पिता—) पुत्रो ! पहले तुम और हम सब सुख से गृहवास में रहकर सम्यक्त्व और व्रतों का पालन करें, तत्पश्चात् वृद्धावस्था में भिक्षाजीवी श्रमण बन जायेंगे ॥ २६ ॥

(Father—) Sons! First of all, while still living as householders, you and we observe right faith and vows; later when we get old we will become alms-seeking ascetics. (26)

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं ।

जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥ २७ ॥

(पुत्र—) पिताजी ! जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो अथवा जो मृत्यु आने पर पलायन कर सकता हो, या जिसको विश्वास हो कि 'मैं कभी मरूँगा ही नहीं; वही कल की प्रतीक्षा कर सकता है ॥ २७ ॥

(Sons—) Father! He alone can wait for tomorrow who has friendship with death or who can escape when death comes, or who has strong belief that he will never die. (27)

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवन्ना न पुणब्भवामो ।

अणागयं नेव य अत्थि किञ्चि, सद्धाखमं णे विणइत्तु रागं ॥ २८ ॥



पिताजी ! हम आज ही राग को त्यागकर श्रद्धा सहित उस मुनिधर्म को ग्रहण करेंगे, जिसे ग्रहण करने के पश्चात् पुनः संसार में नहीं आना पड़ता। रही भोगों की बात, वे अनन्त बार भोगे जा चुके हैं, अतः कोई भी भोग अभुक्त नहीं है ॥ २८ ॥

Father ! This day only we will abandon attachment and with all faith accept ascetic religion. Accepting which, one does not have to return to this world (the cycles of rebirth). As regards mundane pleasures, they have already been experienced infinite times, therefore no pleasure remains inexperienced. (28)

पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो, वासिट्ठ ! भिक्खायरियाइ कालो ।  
साहाहि रुक्खो लहए समाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ॥ २९ ॥

(पुरोहित—) हे वाशिष्ठि (पुरोहित की पत्नी) ! पुत्रों के बिना अब मैं इस घर में नहीं रह सकता। मेरा भिक्षाचर्या का समय आ गया है। वृक्ष शाखाओं से शोभित होता है और शाखाएँ कट जाने पर टूँठ हो जाता है ॥ २९ ॥

(Priest—) O Vaashishthi (priest's wife)! I cannot live in this home now without sons. The time has come when I too should become an alms-seeker (ascetic). A tree is beautiful due to its branches and when branches are cut it turns into a stump. (29)

पंखाविहूणो व्व जहेह पक्खी, भिच्चा विहूणो व्व रणे नरिन्दो ।  
विवन्नसारो वणिओ व्व पोए, पहीणपुत्तो मि तहा अहं पि ॥ ३० ॥

इस संसार में जैसे पंखों के बिना पक्षी, सैनिकों के बिना राजा और नौका पर धनहीन वणिक् असहाय होता है। पुत्रों के बिना ऐसी ही दशा मेरी भी है ॥ ३० ॥

In this world a bird without wings, a king without warriors, a boat-faring merchant without money are helpless. My condition is same without sons. (30)

सुसंभिया कामगुणा इमे ते, संपिण्डिया अग्गरसप्पभूया ।  
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं ॥ ३१ ॥

(पुरोहित पत्नी—) हे स्वामी ! सुसंस्कृत तथा सुगृहीत कामभोगरूप प्रचुर विषय-रस जो हमें प्राप्त हैं। उनको इच्छानुरूप भोग लें। बाद में प्रव्रज्यारूप प्रधान मोक्षमार्ग पर चलेंगे ॥ ३१ ॥

(Priest's wife—) My lord ! In order to gratify our sensual needs we have excellent and fairly acquired means of pleasures and comforts in plenty. We must enjoy them fully and then we will take the path of liberation by getting initiated. (31)

भुत्ता रसा भोइ ! जहाइ णे वओ, न जीवियट्ठा पज्जहामि भोए ।  
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं, संचिक्खमाणो चरिस्सामि मोणं ॥ ३२ ॥

(पुरोहित—) हे भगवती ! हम विषय-रसों को बहुत भोग चुके। युवावस्था भी अब हमें छोड़ रही है। मैं स्वर्गीय जीवन-प्राप्ति के लिये इन भोगों का त्याग नहीं कर रहा हूँ अपितु लाभ-अलाभ, सुख-दुःख में समभाव से मुनि धर्म-मोण का पालन करूँगा ॥ ३२ ॥



(Priest-) We have enjoyed enough sensual pleasures. Our youth also is on the vane. I am not renouncing these pleasures for the sake of a divine life but to follow the ascetic conduct with equanimity in gain and loss or pleasure and pain. (32)

मा हू तुमं सोयरियाण संभरे, जुण्णो व हंसो पडिसोत्तगामी ।  
भुंजाहि भोगाइ मए समाणं, दुक्खं खु भिक्खायरियाविहारो ॥ ३३ ॥

(पुरोहित-पत्नी-) स्वामी ! धारा के विपरीत तैरने वाले-प्रतिस्रोतगामी वृद्ध हंस के समान आपको भी कहीं अपने बन्धुओं को याद न करना पड़े। अतः मेरे साथ भोग भोगो। भिक्षाचर्या और विहार निश्चित रूप से बहुत ही कष्टकारी हैं ॥ ३३ ॥

(Priest's wife-) Therefore, enjoy pleasures with me least you may be forced to remember your brothers like the old swan swimming against the current had to. Alms-seeking and wandering are, indeed, very painful. (33)

जहा य भोई ! तणुयं भुयंगो, निम्मोयणिं हिच्च पलेइ मुत्तो ।  
एमेए जाया पयहन्ति भोए, ते हं कहं नाणुगमिस्समेक्को ॥ ३४ ॥

(पुरोहित-) जिस तरह भुजंग अपने शरीर की केंचुली छोड़कर मुक्त मन से चलता है उसी प्रकार ये दोनों पुत्र भोगों का त्याग कर रहे हैं। अब मैं अकेला रहकर क्या करूँगा? क्यों न इनका ही अनुगमन करूँ? ॥ ३४ ॥

(Priest-) As a serpent casts off the slough of his body and moves free and easy, in the same way my sons are renouncing pleasures. Now left alone, what would I do? Why not just follow them? (34)

छिन्दित्तु जालं अबलं व रोहिया, मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।  
धोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरिन्ति ॥ ३५ ॥

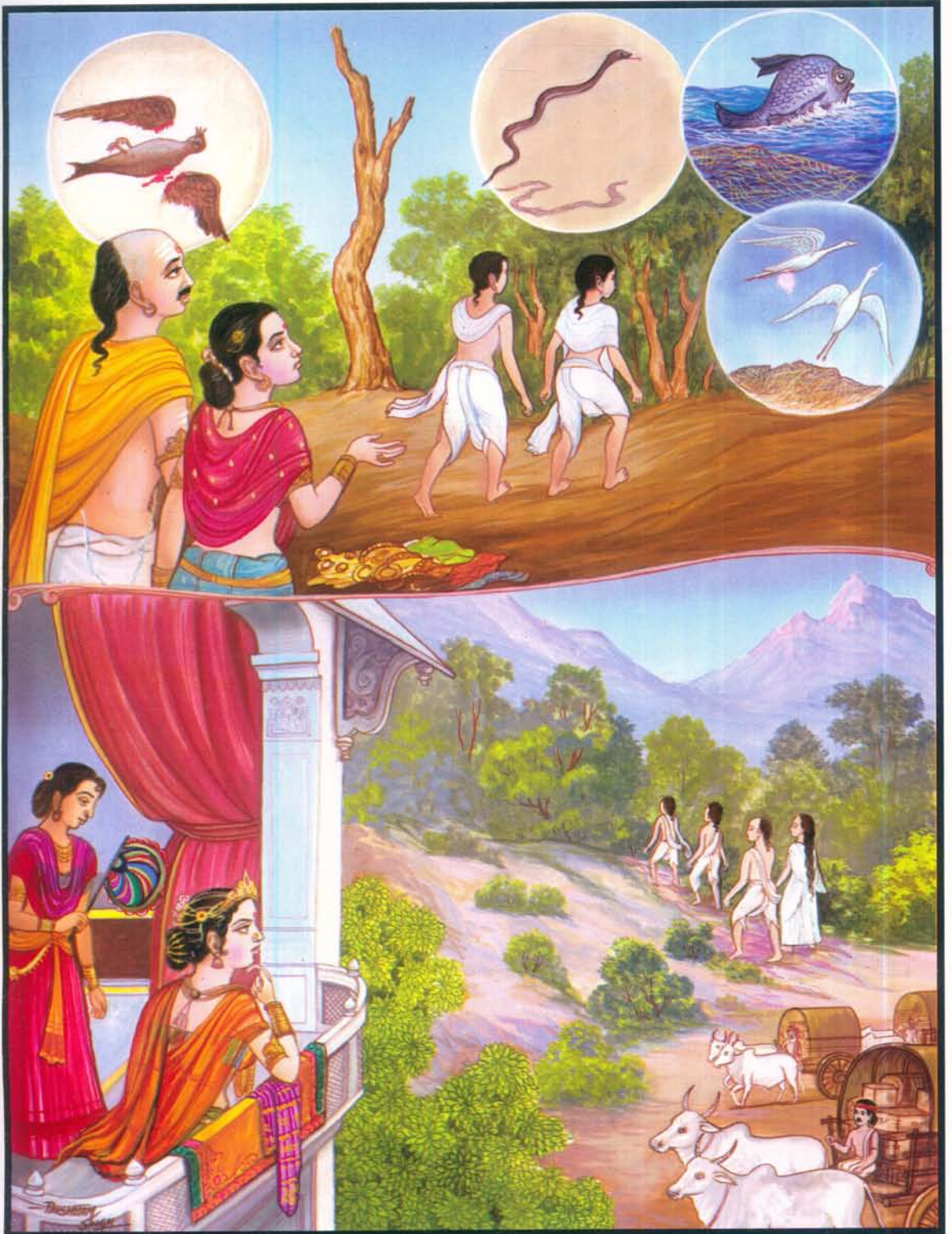
जिस प्रकार कमजोर जाल को काटकर रोहित मत्स्य निकल जाते हैं, उसी प्रकार धारण किये हुए संयम के गुरुतर भार को वहन करने वाले प्रधान तपस्वी, धीर साधक कामगुणों को त्यागकर भिक्षाचर्या रूप श्रमणधर्म पर चल पड़ते हैं ॥ ३५ ॥

As Rohit fishes break through a weak net, in the same way accomplished observers of austerities and resolute aspirants, bearing the huge burden of vowed restraint, renounce worldly pleasures to move on the path of alms-seeking, the *Shraman* religion. (35)

जहेव कुंचा समइक्कमन्ता, तथाणि जालाणि दलित्तु हंसा ।  
पलेन्ति पुत्ता य पई य मज्झं, तेहं कहं नाणुगमिस्समेक्का? ॥ ३६ ॥

(पुरोहित पत्नी-) जैसे क्रौंच पक्षी और हंस बहेलिये द्वारा बिछये गये जाल को काटकर आकाश में स्वतंत्र उड़ जाते हैं, उसी प्रकार मेरे पुत्र और पति भी जा रहे हैं। तब मैं अकेली रहकर क्या करूँगी? क्यों न मैं भी इनका ही अनुगमन करूँ? ॥ ३६ ॥

(Priest's wife-) As herons and swans cut the net spread by a fowler and fly free in the sky; in the same way my husband and sons are also going. Then left alone what would I do? Why not follow them? (36)



## पुरोहित परिवार द्वारा गृह-त्याग

- (1) पुत्रों को गृह त्यागकर जाते देखकर भृगु पुरोहित ने पत्नी यशा से कहा—साँप जैसे कँचुली को छोड़कर, मत्स्य और हंस जैसे जाल को काटकर बंधन-मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही हमारे पुत्र बंधन-मुक्त होकर जा रहे हैं। अब, हम पंख कटे पक्षी की तरह, शाखाहीन वृक्ष की तरह घर में रहकर क्या करेंगे?
- (2) रानी कमलावती ने देखा-चारों प्राणी विरक्ति के पथ पर चल पड़े हैं और उनका परित्यक्त धन, राज-भंडार में आ रहा है।

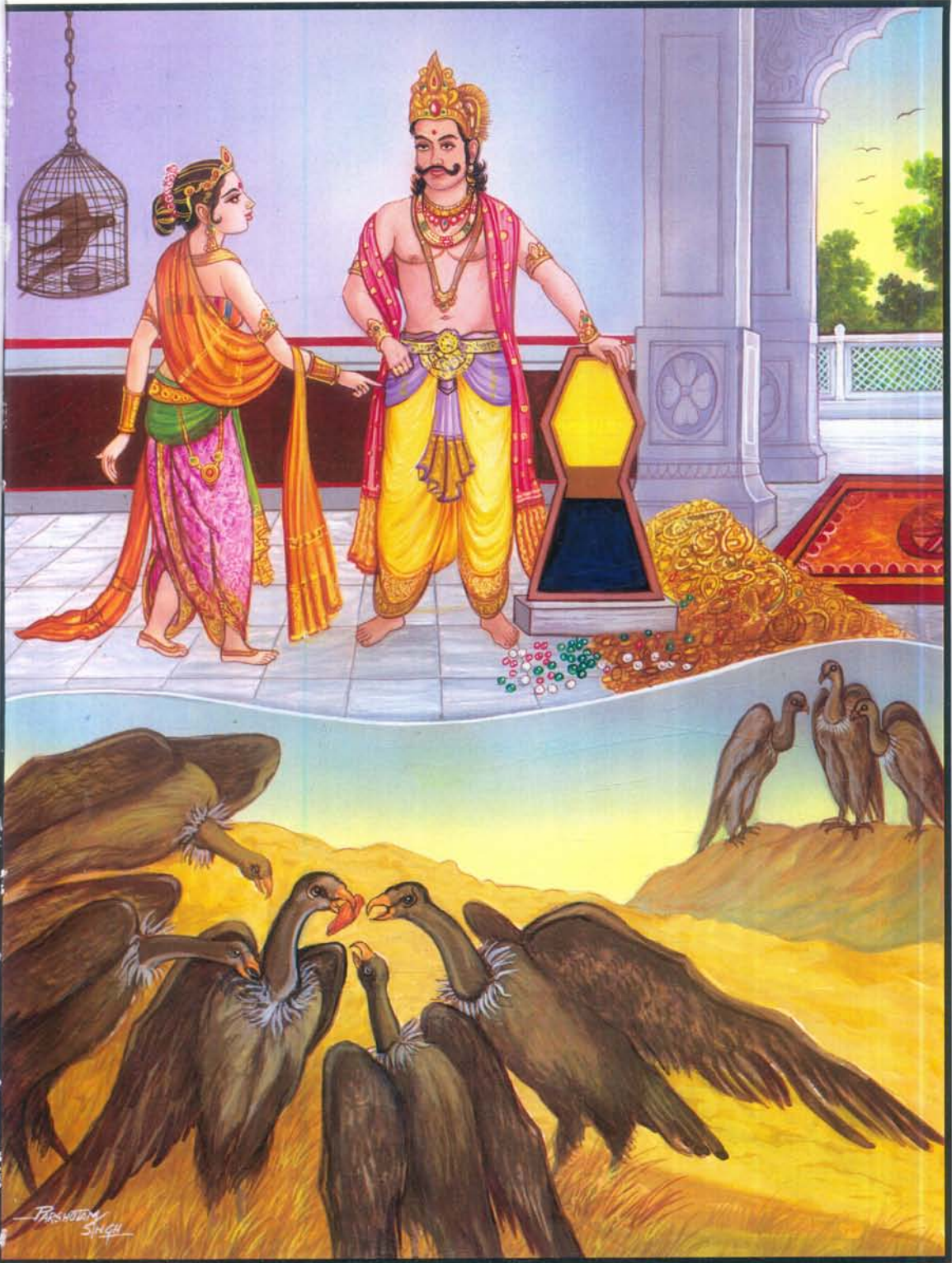
—अध्ययन 14, सू. 29-37

## RENUNCIATION BY THE PRIEST FAMILY

- (1) Watching the sons going away renouncing home, priest Bhrigu said to his wife Yasha – As a snake casts off the slough of his body, as fishes and swans cut the net and free themselves; in the same way our sons are going free from worldly ties. Now what we will do living in the house like wingless birds and branchless tree?
- (2) Queen Kamalavati saw that the four individuals were going on the path of renunciation and their abandoned wealth was coming to the state treasury.

—Chapter 14, Aphorism 29-37





## रानी कमलावती द्वारा इषुकार राजा को उद्बोधन

- (1) राजा को समझाते हुये रानी बोली—राजन्! इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं। यदि तीन लोक का सम्पूर्ण वैभव मिल जाये तब भी इच्छाएँ कभी तृप्त नहीं हो सकतीं। इस घर में मेरी स्थिति वैसी ही है जैसे पिंजरे में पक्षिणी की।
- (2) जिस गिद्ध के पास माँस का टुकड़ा होता है उस पर दूसरे पक्षी झपटते हैं। जिसके पास माँस नहीं है उस पर कोई नहीं झपटता। संसार में कामभोग के लिये ही छीना-झपटी होती है।

—अध्ययन 14, सू. 39-49

## QUEEN KAMALAVATI'S ADVISE TO KING ISHUKAR

- (1) The queen said – Sire! Desires are limitless like the sky. Even if a man gets all the wealth of the three worlds, his desires can never be satisfied. I am in this place like a bird in a cage.
- (2) Other birds of prey pounce on a vulture having a piece of flesh. Nothing attacks one that has no shred of meat. Only for the worldly pleasures and comforts there is quarrel and fight.

—Chapter 14, Aphorism 39-49







पुरोहितं तं ससुयं सदारं, सोच्चाऽभिनिक्रम्य पहाय भोए ।

कुडुंबसारं विउलुत्तमं तं, रायं अभिक्रम्यं समुवाय देवी— ॥ ३७ ॥

पुत्रों और पत्नी के साथ पुरोहित ने भोगों को त्यागकर गृहत्याग किया है, यह सुनकर उस परिवार की विपुल और उत्तम धन-सम्पत्ति की इच्छा रखने वाले राजा इषुकार से उसकी रानी कमलावती ने कहा— ॥ ३७ ॥

Hearing that priest Bhrigu has renounced the world with sons and wife, queen Kamalavati said to her husband king Ishukaar, who wanted to confiscate enormous wealth belonging to that family— (37)

वन्तासी पुरिसो रायं !, न सो होइ पसंसिओ ।

माहणेण परिच्चत्तं, धणं आदाउमिच्छसि ॥ ३८ ॥

(रानी कमलावती—) हे राजन् ! ब्राह्मण भृगु पुरोहित द्वारा परित्यक्त धन को आप लेना चाहते हो किन्तु वमन किये हुये पदार्थ को खाने वाला पुरुष प्रशंसनीय नहीं होता ॥ ३८ ॥

(Queen Kamalavati—) My lord! You want to take the wealth left by the Brahmin (priest Bhrigu) but a person who consumes vomited filth is never praised. (38)

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धणं भवे ।

सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव ॥ ३९ ॥

यदि सारा जगत् और संसार का सारा धन भी आपको प्राप्त हो जाये तो वह सब भी आपके लिये अपर्याप्त ही होगा; और वह धन भी आपकी रक्षा नहीं कर सकेगा ॥ ३९ ॥

Even if you get whole world and all its wealth, that too would be insufficient for you. And even all that wealth will fail to protect you. (39)

मरिहिसि रायं ! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे पहाय ।

एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि ॥ ४० ॥

राजन् ! जब आप इन मनोज्ञ कामभोगों को छोड़कर मरोगे तब एक मात्र धर्म ही आपका रक्षक होगा। इसलिए हे नरेन्द्र ! इस संसार में धर्म के अतिरिक्त इस प्राणी का कोई भी रक्षक नहीं है ॥ ४० ॥

O King! Leaving behind all these enchanting pleasures and comforts, when you expire, religion will be your sole protector. Thus, O King! Other than religion there is no saviour of a living being in this world. (40)

नाहं रमे पक्खिणी पंजरे वा, संताणछिन्ना चरिस्सामि मोणं ।

अकिंचणा उज्जुकडा निरामिसा, परिग्गहारंभनियत्तदोसा ॥ ४१ ॥

जिस प्रकार पिंजड़े में बन्द हुई पक्षिणी सुख का अनुभव नहीं करती, वैसे ही मैं भी नहीं करती। अतः मैं भी पारिवारिक स्नेह सम्बन्धों को तोड़कर, अकिंचन, सरल, शब्द आदि विषय-भोगों में अनासक्त, परिग्रह और हिंसा के दोषों से निवृत्त होकर मुनिधर्म का आचरण करूँगी ॥ ४१ ॥



As a bird imprisoned in a cage does not feel happy, so I also do not. Therefore, I will also follow the ascetic conduct after breaking all family relationship of love, having no possessions, getting free of all complexities as well as infatuation for mundane pleasures, and erasing all faults of covetousness and violence. (41)

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जन्तुसु।  
अन्ने सत्ता पमोयन्ति, रागदोसवसं गया ॥ ४२ ॥

जिस प्रकार वन में लगे दावानल में जलते हुये जन्तुओं को देखकर राग-देष के वशवर्ती होकर अन्य जीव प्रसन्न होते हैं ॥ ४२ ॥

When in a forest some beasts are burning in a conflagration, other animals rejoice under the influence of attachment and aversion. (42)

एवमेव वयं मूढा, काम भोगेसु मुच्छिया।  
डज्झमाणं न बुज्झामो, रागदोसग्गिणा जगं ॥ ४३ ॥

उसी तरह कामभोगों में मूर्च्छित हम मूढ़ लोग भी राग-द्वेष की अग्नि में जलते हुए संसार को नहीं समझ रहे हैं ॥ ४३ ॥

In the same way, obsessed with mundane pleasures, foolish people like us fail to appreciate (the impending doom of) the world of the living burning in the fire of attachment and aversion. (43)

भोगे भोच्चा वमिन्ता य, लहुभूयविहारिणो।  
आमोयमाणा गच्छन्ति, दिया कामकमा इव ॥ ४४ ॥

भोगों को भोगकर तथा यथावसर उनका वमन करके आत्मगवेषी मुमुक्षु साधक वायु की भाँति लघुभूत होकर अप्रतिबद्ध विहार करते हैं। अपनी इच्छानुसार, पक्षियों के समान आत्मार्थी पुरुष आमोदपूर्वक विचरण करते हैं ॥ ४४ ॥

Having enjoyed the pleasures and renouncing them at an opportune time, the self-seeking liberation aspirant becomes light as air and floats unrestrained. Like birds the self-seeking persons move about joyfully at will. (44)

इमे य बद्धा फन्दन्ति, मम हत्थेज्जमागया।  
वयं च सत्ता कामेसु, भविस्सामो जहा इमे ॥ ४५ ॥

हमारे हाथ में आये हुये और विविध प्रकार से सुरक्षित किये गये ये कामभोग क्षणिक हैं। अभी हम इनमें आसक्त हैं। लेकिन जिस प्रकार पुरोहित परिवार इन्हें त्यागकर मुक्त हुआ है वैसे ही हम भी होंगे ॥ ४५ ॥

The pleasures now in our hand and preserved in various ways; all these are transient. Still we are at present indulging in them. But as the family of Priest became free renouncing these, so we would also become. (45)

सामिसं कुललं दिस्स, बज्झमाणं निरामिसं।  
आमिसं सब्बमुज्झित्ता, विहरिस्सामि निरामिसा ॥ ४६ ॥



माँस सहित पक्षी-गोध को अन्य माँसलोलुपी पक्षियों द्वारा पीड़ित किये जाते हुए तथा माँस रहित होने पर उसी पक्षी को निराकुल देखकर मैं भी माँस के समान इन सभी कामभोगों को त्यागकर तथा भोगरूप माँस से रहित होकर विचरण करूँगी ॥ ४६ ॥

After watching a vulture holding a lump of flesh being tormented by other carnivorous birds and free of torments when getting rid of that flesh, (inspired as I am) I will also abandon these flesh-like pleasures and comforts and move about without flesh (mundane pleasures). (46)

गिद्धोवमे उ नच्चाणं, कामे संसारवड्ढणे ।

उरगो सुवण्णपासे व, संकमाणो तणुं चरे ॥ ४७ ॥

संसार-वृद्धि के हेतु कामभोगों को गोध के समान जानकर उनसे उसी प्रकार शंकित होकर चलना चाहिये जैसे सर्प गरुड़ से शंकित होकर चलता है ॥ ४७ ॥

Considering indulgence in worldly pleasures, the enhancers of cycles of rebirth, to be like a vulture, one should move about being ever apprehensive, like a snake that moves about being apprehensive of an eagle. (47)

नागो व्व बन्धणं छित्ता, अप्पणो वसहिं वए ।

एयं पत्थं महारायं !, उसुयारि त्ति मे सुयं ॥ ४८ ॥

बंधन को तोड़कर जिस प्रकार हाथी अपने नैसर्गिक निवास स्थान-वन में चला जाता है, उसी प्रकार हमको भी अपने वास्तविक स्थान-मोक्ष में चला जाना चाहिये । हे इषुकार महाराज ! ऐसा मैंने ज्ञानियों से श्रवण किया है ॥ ४८ ॥

Breaking fetters an elephant goes to its natural habitat—the forest. In the same way we also should proceed to our natural abode—state of liberation. O King Ishukaar! I have heard that from the enlightened sages. (48)

चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगो य दुच्चए ।

निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा निप्परिग्गहा ॥ ४९ ॥

विशाल राज्य और दुस्त्याज्य कामभोगों का परित्याग कर वे राजा-रानी भी निर्विषय, निरामिष, निःस्नेह और परिग्रहरहित हो गये ॥ ४९ ॥

Renouncing large kingdom and difficult to abandon worldly pleasures that royal couple too abandoned sensual indulgences, meat eating, fondness and possession. (49)

सम्मं धम्मं वियाणित्ता, चेच्चा कामगुणे वरे ।

तवं पगिज्झऽहक्खायं, घोरं घोरपरक्कमा ॥ ५० ॥

सम्यक् प्रकार से धर्म को जानकर तथा प्राप्त श्रेष्ठ काम-गुणों को त्यागकर राजा-रानी दोनों ने ही यथोपदिष्ट उग्र तप को स्वीकार किया और संयम में घोर पराक्रम करने लगे ॥ ५० ॥

After rightly understanding religion and abandoning all available enticing pleasures and comforts, the king and the queen both accepted the prescribed rigorous austerities and started resolutely pursuing practice of ascetic-discipline. (50)



एवं ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा ।  
जन्म-मच्चुभउव्विग्गा, दुक्खस्सन्तगवेसिणो ॥ ५१ ॥

इस प्रकार वे सब-छहों व्यक्ति बुद्ध और धर्मपरायण बने, जन्म एवं मरण से उद्धिग्न हुये और दुःख परम्परा के अन्त की खोज में लग गये ॥ ५१ ॥

This way all those six persons became enlightened and devoutly religious. Frightened by the cycles of rebirth, they involved themselves in pursuit of the end of the chain of miseries. (51)

सासणे विगयमोहाणं, पुव्विं भावणभाविया ।  
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सन्तमुवागया ॥ ५२ ॥

पूर्व-जन्म में जिन्होंने अनित्य आदि वैराग्य भावनाओं से अपनी आत्मा को भावित किया था, अब मोहरहित होकर तथा जिनशासन की शरण ग्रहण करके थोड़े ही समय में सभी दुःखों का अन्त कर दिया ॥ ५२ ॥

In earlier birth they had enkindled their soul with detachment inducing contemplation including that about ethereality of life. Now getting free of fondness and taking refuge with the Jain order, they ended all miseries (attained liberation) in a short period. (52)

राया सह देवीए, महाणो य पुरोहिओ ।  
माहणी दारगा चैव, सव्वे ते परिनिब्बुडे ॥ ५३ ॥

—त्ति बेमि ।

इषुकार राजा, कमलावती रानी, पुरोहित, पुरोहित-पत्नी तथा उनके दोनों पुत्र-ये सभी परिनिर्वृत्त-मुक्त हो गये ॥ ५३ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

King Ishukaar, queen Kamalavati, Priest Bhrigu, his wife and two sons, they all attained liberation. (53)

—So I say.



## पन्द्रहवाँ अध्ययन : सभिक्षुक

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का शीर्षक सभिक्षुक है। इसके दो कारण हैं; प्रथम-इसकी प्रत्येक गाथा के अन्त में 'स भिक्षु' (स भिक्षु) शब्द का प्रयोग हुआ है। दूसरा, इसमें सद्भिक्षु के गुणों, लक्षणों और जीवनचर्या का विवेचन है।

पिछले इषुकारीय अध्ययन में छह व्यक्ति भिक्षाजीवी अनगार बने थे। भिक्षु के गुण, लक्षणों का वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

'भिक्षु' शब्द का यहाँ विशेष आशय है। यहाँ सद्भिक्षु ही विविक्षित है; ऐसा भिक्षु जो सर्वसम्पत्करी भिक्षा ग्रहण करता है, स्वयं अपनी संयम यात्रा तो चलाता ही है, दाता का भी अपने आप हित होता है।

यह तो तथ्य है कि कंचन-कामिनी के त्यागी और घर-बार छोड़कर तपस्या करने वाले साधु को भी अपने शरीर-रक्षार्थ कुछ अत्यावश्यक साधनों की आवश्यकता होती ही है और वे सब याचना द्वारा सद्गृहस्थों से ही वह प्राप्त करता है।

इस याचना में कई बार उसे तिरस्कार भी सहना पड़ता है, शीत-उष्ण, शय्या-निषद्या आदि परीषह भी सहने पड़ते हैं; पर वह खिन्न नहीं होता।

सद्भिक्षु अपनी जीवनचर्या को निर्दोष रखता है और माया तथा निदान से दूर रहता है। सांसारिक जनों से अधिक परिचय नहीं रखता, रात्रि-भोजन नहीं करता, अज्ञात-अपरिचित घरों में ही भिक्षा की गवेषणा करता है, किसी भी मनोज्ञ सचित्त अथवा अचित्त वस्तु में गृद्ध नहीं होता। सिर्फ आत्मोत्थान ही उसका लक्ष्य रहता है।

इस अध्ययन में निर्दोष भिक्षाजीवी, संयम यात्रा के पथिक सद्भिक्षु के लक्षण और जीवनचर्या का संक्षेप में विवेचन कर दिया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में १६ गाथाएँ हैं।



**PANCHDASH ADHYAYAN :  
SABHIKSHUK**

**Foreview**

The title of this chapter is Sabhikkhuyam (Sabhikshuk). There are two reasons of this – the first is every verse of this chapter ends with the phrase *sa bhikkhu (sa bhikshuk)*, and the second is that this chapter elaborately deals with the virtues, attributes and praxis of a true ascetic.

In the preceding chapter six persons became alms-seeking homeless ascetics. The virtues and attributes of an ascetic are described in this chapter.

The word *bhikshu* (beggar) conveys a special meaning here. It exclusively denotes true ascetic; an alms-seeker who accepts donation that has all round benefits. He who begs to continue his pursuit of ascetic-discipline and at the same time provides automatic benefit to the donor.

It is a fact that an ascetic, who has renounced wealth and woman as well as home and possessions to practice austerities, also needs some essential means for subsistence and security. He acquires them from noble householders by begging.

In course of this begging he has to face insults many a time. He also has to endure afflictions related to cold, heat, bed, lodging and the like. But he is never annoyed.

True ascetic maintains a faultless praxis and avoids deceit and ambition. He does not encourage intimacy with worldly people, avoids eating after sunset, explores alms in unknown and unacquainted families and does not crave for any likeable thing, live or lifeless. Self-uplift is his sole goal.

In this chapter the virtues and attributes of a faultless alms-subsisting true ascetic, who treads the path of ascetic-discipline, have been discussed in brief.

The chapter contains 16 verses.





पनरसमं अज्जयणं : सभिवस्सुयं  
 पञ्चदश अध्ययन : सभिक्षुक  
 Chapter-15 : THE TRUE ASCETIC

मोणं चरिस्सामि समिच्च धम्मं, सहिए उज्जुकडे नियाणछिन्ने।  
 संधवं जहिज्ज अकामकामे, अन्नायएसी परिव्वए जे स भिक्खू ॥ १ ॥

'धर्म को स्वीकार करके मुनिव्रतों का पालन करूँगा', इस संकल्प के साथ जो अन्य साधुओं के (तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य से युक्त) साथ रहता है, सरल भाव से क्रिया करता है, निदान-विषय-वासनाओं की इच्छा जिसने त्याग दी है, पूर्व सांसारिक सम्बन्धियों से परिचय का त्याग करता है, कामभोगों की इच्छा नहीं करता, अपनी जाति, कुल आदि का परिचय न बताकर अज्ञात कुलों में निर्दोष भिक्षा की गवेषणा करता है और अप्रतिबद्ध विहार करता है; वह भिक्षु है ॥ १ ॥

One who lives among other sages (and is endowed with right knowledge-faith-conduct) with this solemn resolve—'Accepting religion, I will practice the ascetic conduct and vows'—and acts with simplicity and modesty, renounces worldly ambitions (desire for carnal pleasures), shears connection with family and relatives of the past, abandons desire for mundane pleasures and comforts, explores for faultless alms from unknown families without revealing his caste, clan and other impressive qualities and follows the itinerant way without exception, is a true ascetic. (1)

रागोवरयं चरेज्ज लाढे, विरए वेयवियाऽऽयरक्खिए।  
 पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, जे कम्मिच्चि न मुच्छिए स भिक्खू ॥ २ ॥

जो राग से उपरत है (रात्रि-भोजन का त्यागी है), सम्यक् रूप से साध्व्याचार का पालन करता है, असंयम से विरत है, शास्त्रों का ज्ञाता है, आत्म-रक्षा के लिए तत्पर है, प्राज्ञ है, परीषहों तथा राग-द्वेष का विजेता है, सभी प्राणियों को अपने समान समझता है, किसी भी वस्तु में आसक्त नहीं होता; वह भिक्षु है ॥ २ ॥

One who is free of attachment (avoids eating after sunset), follows the prescribed ascetic-praxis immaculately, shuns indiscipline (and unrestraint), is well-versed in scriptural knowledge, is ready to protect his soul, is wise and intelligent, is victor of afflictions as well as attachment and aversion, considers all living beings to be like his ownself and is free of infatuation for anything, is a true ascetic. (2)

अक्कोसवहं विइत्तु धीरे, मुणी चरे लाढे निच्चमायगुत्ते।  
 अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥ ३ ॥

जो धीर मुनि आक्रोश-कठोर वचन एवं वध-ताड़ना-तर्जना को अपने पूर्वकृत कर्मों का फल जानकर संयम में प्रसन्न रहता है। असंयम स्थानों-आस्रवों से अपनी आत्मा को गुप्त-रक्षित रखता है, जो आकुलता और हर्षातिरेक नहीं करता और समभाव से सब कुछ सहता है; वह भिक्षु है ॥ ३ ॥



Considering that insults and harsh treatment are fruits of his past *karmas*, the patient ascetic, who is happy in his restraint, protects his own soul from indiscipline (causing inflow of *karmas*), avoids vexation as well as exhilaration and endures everything with equanimity, he is a true ascetic. (3)

पन्तं सयणासनं भङ्गता, सीउण्हं विविहं च दंसमसगं ।  
अव्वग्गमणे असंपहिट्ठे, जे कसिणं अहियासए स भिक्खू ॥ ४ ॥

अति सामान्य शयन और आसन को स्वीकार करने वाला, सर्दी-गर्मी, डांस-मच्छर आदि के परीषहों-उपसर्गों से व्याकुल न होने वाला तथा अनुकूल संयोगों में हर्षित न होने वाला तथा समभाव से सब कुछ सहन करने वाला भिक्षु कहलाता है ॥ ४ ॥

He who accepts most ordinary beds and seats; does not get vexed when afflicted by heat, cold, flies, mosquitoes and other insects; is not joyous in favourable conditions and endures everything with equanimity is a true ascetic. (4)

नो सक्कियमिच्छई न पूयं, नो वि य वन्दणगं, कुओ पसंसं ?  
से संजए सुव्वए तवस्सी, सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥ ५ ॥

जो साधक सत्कार, पूजा और वन्दना की इच्छा भी नहीं करता, वह प्रशंसा की आकांक्षा कैसे कर सकता है? जो संयत, सुव्रती, तपस्वी, ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य से युक्त है और आत्मा की गवेषणा करता है; वह भिक्षु है ॥ ५ ॥

The aspirant, who does not even desire hospitality, adoration and homage, how can he expect praise? One who is restrained, sincere observer of vows and austerities, endowed with right knowledge-faith-conduct and indulges in spiritual pursuit is a true ascetic. (5)

जेण पुण जहाइ जीवियं, मोहं वा कसिणं नियच्छई ।  
नरनारिं पजहे सया तवस्वी, न य कोऊहलं उवेइ स भिक्खू ॥ ६ ॥

जिस कारण से संयमी जीवन छूट जाय; जिस कारण से कषाय-नोकषायरूप सम्पूर्ण मोहनीय कर्म का बन्ध होता हो, ऐसे पुरुष-स्त्री की संगति को जो साधु सदा के लिये त्याग देता है तथा कुतूहल नहीं करता; वह भिक्षु है ॥ ६ ॥

The ascetic who abandons for ever the company of such man and woman, which is detrimental to his ascetic life, which is the cause of bondage of deluding *karmas* (*Mohaniya karma*) through passions and sub-passions and who avoids curiosity is a true ascetic. (6)

छिन्नं सरं भोममन्तलिक्खं, सुमिणं लक्खणदण्डवत्थुविज्जं ।  
अंगवियारं सरस्स विजयं, जो विज्जाहिं न जीवइ स भिक्खू ॥ ७ ॥

जो साधक छिन्नविद्या-वस्त्र अथवा पात्र के अथवा कटे-फटे भाग से शुभाशुभ बताना, स्वर, भौम, अन्तरिक्ष, स्वप्न, लक्षण, दण्ड, वास्तु, अंग विकार, स्वर विज्ञान आदि विद्याओं से आजीविका नहीं चलाता; वह भिक्षु है ॥ ७ ॥





The aspirant who, for livelihood, does not employ any form of augury or divination including *chhinna-vidya* (from cuts and shreds of dress or pots), *sva* (from sound), *bhaum* (from vibrations of earth), *antariksha* (from sky or space; astrology), *svapna* (dream divining), *lakshan* (from signs, marks, diagrams etc.), *dand* (from stick), *vaastu* (from architecture), *anga-vikaar* (from body deformations) and *svara-vijnana* (from inhalation and exhalation) is a true ascetic. (7)

मन्तं मूलं विविहं वेज्जचिन्तं, वमणविरेयणधूमणेत्त-सिणाणं ।

आउरे सरणं तिगिच्छियं च, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ८ ॥

जो रोग आदि से ग्रसित होने पर भी मंत्र, जड़ी-बूटी आदि तथा वमन, विरेचन, धूम्रपान की नली, स्नान और स्वजनों की शरण एवं चिकित्सा का त्याग कर देता है तथा अप्रतिबद्ध विहार है; वह भिक्षु है ॥ ८ ॥

He who avoids use of mantras (charms and spells), herbs and other medicines, vomiting, purgative, fumigation, bath, help of family members and medical or other treatment, even when inflicted by disease or other ailment and continues his itinerant way undaunted is a true ascetic. (8)

खत्तियगणउगारायपुत्ता, माहणभोइयविविहा य सिप्पिणो ।

नो तेसिं वयइ सिलोगपूयं, तं परिन्नाय परिव्वए स भिक्खू ॥ ९ ॥

क्षत्रिय, गण, उग्र, राजपुत्र, ब्राह्मण, भोगिक-सामन्त आदि तथा अनेक प्रकार के शिल्पियों की प्रशंसा में कभी एक शब्द भी नहीं बोलता अपितु इसे हेय समझता है; वह भिक्षु है ॥ ९ ॥

One who does not utter even a word in praise of *kshatriya* (of martial clan), *gana* (chieftains), *ugra* (security officers), *rajaputra* (princes), Brahmins, *bhogik* (ministers) and different type of artisans, but considers it (praise) to be disconcerting is true ascetic. (9)

गिहिणो जे पव्वइएण दिट्ठा, अप्पव्वइएण व संथुया हविज्जा ।

तेसिं इहलोइयफलट्ठा, जो संथवं न करेइ स भिक्खू ॥ १० ॥

प्रव्रजित होने के बाद अथवा पहले के परिचित व्यक्तियों के साथ इस लोक के फल-प्राप्ति हेतु जो संपर्क-मेलजोल नहीं रखता; वह भिक्षु है ॥ १० ॥

He who does not maintain contact with people acquainted before or after his initiation for any earthly gains is a true ascetic. (10)

सयणासण-पाण-भोयणं, विविहं खाइमं साइमं परेसिं ।

अदए पडिसेहिए नियण्ठे, जे तत्थ न पउस्सई स भिक्खू ॥ ११ ॥

शयन, आसन, पान, भोजन तथा अनेक प्रकार के खाद्य और स्वाद्य पदार्थ कोई (गृहस्थ) स्वयं न दे अथवा माँगने पर भी न दे, इन्कार कर दे, उस व्यक्ति पर क्रोध-द्वेष न करने वाला निर्ग्रन्थ ही भिक्षु है ॥ ११ ॥



One who does not get angry or hostile towards a householder if he does not offer or refuses to give when sought, things like bed, seat, water and food and other variety of eatables, is a true ascetic. (11)

जं किञ्चि आहारपाणं विविहं, खाइम-साइमं परेसिं लब्धुं ।

जो तं तिविहेण नाणुकपे, मण-वय-कायसुसंबुडे स भिक्खू ॥ १२ ॥

जो गृहस्थों से विभिन्न प्रकार के भोजन-पानी-खाद्य-स्वाद्य पदार्थ प्राप्त करके बदले में उन पर अनुकम्पा नहीं करता-आशीर्वाद नहीं देता-उपकार नहीं करता, अपितु मन-वचन-काया से सुसंवृत रहता है; वह भिक्षु है ॥ १२ ॥

On getting a variety of *ashan*, *paan*, *khadya*, *svadya* (staple food, liquids, general food and savoury food), he who does not express any compassion (by blessing or other favours) in exchange, but remains completely composed in mind, speech and body is a true ascetic. (12)

आयामगं चेव जवोदणं च, सीयं च सोवीर-जवोदगं च ।

नो ह्रीलए पिण्डं नीरसं तु, पन्तकुलाइं परिच्चए स भिक्खू ॥ १३ ॥

धान्य, यव का ओसामण, ठंडा भोजन, कांजी का पानी तथा जौ का पानी ऐसे स्वादरहित भोजन की जो निन्दा नहीं करता; साधारण घरों में भिक्षाटन करता है; वह भिक्षु है ॥ १३ ॥

He who does not detest or belittle rice-water, barley-pap, cold-sour gruel, barley wash and other tasteless food and wanders for alms from ordinary houses is a true ascetic. (13)

सहा विविहा भवन्ति लोए, दिव्वा माणुस्सगा तथा तिरिच्छा ।

भीमा भयभेरवा उराला, जो सोच्चा न वहिज्जई स भिक्खू ॥ १४ ॥

जगत् में देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी तथा तिर्यच सम्बन्धी अनेक भीषण, भयोत्पादक और रौद्र शब्द होते हैं, जो उन शब्दों को सुनकर भयभीत नहीं होता; वह भिक्षु है ॥ १४ ॥

One who is not terrified on hearing dreadful, frightful, awful noises of divine, human and animal origin in this world is a true ascetic. (14)

वादं विविहं समिच्च लोए, सहिए खेयाणुगए य कोवियप्पा ।

पन्ने अभिभूय सव्वदंसी, उवसन्ते अविहेडए स भिक्खू ॥ १५ ॥

इस जगत् में प्रचलित धर्म सम्बन्धी अनेक प्रकार के वादों को जानकर भी जो अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र से युक्त होकर संयम में संलग्न रहता है, जिसे शास्त्रों के परामर्थ का ज्ञान है, जो प्राज्ञ है, परीषहों पर विजय प्राप्त कर जो सबके प्रति समदृष्टि रखता है, उपशान्त है, किसी का न अपमान करता है, न पीड़ा देता है; वह भिक्षु है ॥ १५ ॥

Even after knowing numerous prevailing religious theories (of various sects and schools), one who remains steadfast in his right knowledge-faith-conduct as well as restraint, who is well versed in scriptural knowledge, who is wise and intelligent, who conquers afflictions and is equanimous towards all, who is serene and who neither insults nor injures is a true ascetic. (15)



असिप्पजीवी अगिहे अमित्ते, जिइन्दिए सव्वओ विप्पमुक्के ।  
अणुक्कसाई लहुअप्पभक्खी, चेच्चा गिहं एगचरे स भिक्खू ॥ १६ ॥

—त्ति बेमि ।

जो शिल्पजीवी नहीं है, गृहविहीन है, जिसका कोई शत्रु अथवा मित्र नहीं है, जो जितेन्द्रिय है, परिग्रह से सर्वथा मुक्त है, जिसके कषाय अति मन्द हैं, जो हल्का-नीरस-अल्प भोजन ग्रहण करता है, गृहवास को छोड़ चुका है, अकेला-एक मात्र संयमभावों में विचरण करता है; वह भिक्षु है ॥ १६ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ

He who does not live on art or craft; is homeless; has neither friend nor foe; has subdued his senses; is free of all possessions; has very low intensity of passions; eats light, tasteless and little food; has abandoned household; and is engrossed exclusively in restraint in solitude is a true ascetic. (16)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १—'संस्तव' के दो अर्थ हैं—स्तुति और परिचय। यहाँ परिचय अर्थ अनुकूल है। संस्तव के दो प्रकार हैं—संवास-संस्तव और वचन-संस्तव। असाधु जनों के साथ रहना 'संवास-संस्तव' है और उनके साथ आलाप-संलाप करना "वचन-संस्तव" है। साधक के लिये दोनों ही निषिद्ध हैं। (चूर्णि)

गाथा ७—यहाँ दश विद्याओं का उल्लेख है। उनमें (१) दण्ड-विद्या, (२) स्वर-विद्या, (३) वास्तु-विद्या को छोड़कर शेष आठ विद्यायें निमित्त के अंग माने गये हैं—(१) अंग, (२) स्वर, (३) लक्षण, (४) व्यंजन, (५) स्वप्न, (६) छिन्न, (७) भौम, और (८) अन्तरिक्ष। ये अष्टांग निमित्त हैं।

(१) काष्ठ, वस्त्र आदि में चूहे या काँटे आदि के द्वारा किये गये छेदों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना छिन्न निमित्त है।

(२) भूकम्प आदि के द्वारा अथवा अकाल में होने वाले बेमौसमी पुष्प-फल आदि से शुभाशुभ का ज्ञान करना भौम निमित्त है। भूमिगत धन एवं धातु आदि का ज्ञान करना भी 'भौम' है।

(३) आकाश में होने वाले गन्धर्व नगर, दिग्दाह और धूलिवृष्टि आदि तथा ग्रहयोग आदि से शुभाशुभ का ज्ञान करना अन्तरिक्ष निमित्त है।

(४) स्वप्न पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना स्वप्न निमित्त है।

(५) शरीर के लक्षण तथा आँख फड़कना आदि अंगविकारों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना, क्रमशः लक्षण निमित्त और अंगविकार निमित्त हैं।

(६) दण्ड के गाँठ आदि विभिन्न रूपों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना दण्ड-विद्या है।



(७) मकानों के आगे-पीछे के विस्तार आदि लक्षणों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना वास्तु-विद्या है।

(८) षड्ज, ऋषभ आदि सात स्वरों पर से शुभाशुभ का ज्ञान करना स्वर-विद्या है।

उक्त विद्याओं के प्रयोग से भिक्षा प्राप्त करना, भिक्षा का "उत्पादना" नामक एक दोष है।

गाथा ८—परम्परानुसार "धूमनेत्र" एक संयुक्त शब्द माना गया है। जबकि टीकाकार धूम और नेत्र दो भिन्न शब्द मानते हैं। उनके मतानुसार धूम का अर्थ है—मन-शिला आदि धूप से शरीर को धूपित करना, और नेत्र का अर्थ है—नेत्र संस्कारक अंजन आदि से नेत्र 'आंजना'। मुनि श्री नथमल जी द्वारा संपादित दशवैकालिक और उत्तराध्ययन में धूमनेत्र का 'धुएँ की नली से धुँआ लेना'—अर्थ किया है।

स्नान से यहाँ वह स्नान-विद्या अभिप्रेत है, जिसमें पुत्र-प्राप्ति के लिये मन्त्र एवं औषधि से संस्कारित जल से स्नान कराया जाता है—बृहद्वृत्ति।

गाथा ९—आवश्यक निर्युक्ति (गा. १९८) के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने चार वर्ग स्थापित किये थे—(१) उग्र-आरक्षक, (२) भोग-गुरुस्थानीय, (३) राजन्य-समवयस्क या मित्र स्थानीय, (४) क्षत्रिय-अन्य शेष लोग।

'भोगिक' का अर्थ सामन्त भी होता है। शान्त्याचार्य "राजमान्य प्रधान पुरुष" अर्थ करते हैं।

'गण' से अभिप्राय गणतन्त्र के लोगों से है। भगवान् महावीर के समय में लिच्छवि एवं शाक्य आदि अनेक शक्तिशाली गणतन्त्र राज्य थे। बृज्जी गणतन्त्र में ९ लिच्छवि और ९ मल्लकी-ये काशी-कौशल के १८ गणराज्य सम्मिलित थे। कल्पसूत्र में इन्हें "गणरायाणो" लिखा है।

## IMPORTANT NOTES

**Verse 1**—The word *samstava* has two meanings—salutation and acquaintance. Here acquaintance is suited. There are two types of acquaintances—*samwas-samstava* or living-in acquaintance and *vachan-samstava* or talking-to acquaintance. To live with unrighteous persons is living-in acquaintance and to converse with such persons is *vachan-samstava* or talking-to acquaintance. Both are forbidden for an aspirant. (*Churni*)

**Verse 7**—Here ten types of augury is mentioned. Leaving aside three—1. *dand-vidya*, 2. *svara-vidya* and 3. *vaastu-vidya*, the remaining seven are limbs of *Ashtanga Nimitta* (eight limbed science of divination)—1. *anga*, 2. *svar*, 3. *lakshan*, 4. *vyanjan*, 5. *svapna*, 6. *chhinna*, 7. *bhaum*, and 8. *antariksha*.

1. *chhinna-nimitta*—divining by study of cuts and holes in wood, cloth, pot etc. caused by thorns or mice.

2. *svar-nimitta*—divining by study of sound including the seven musical notes.

3. *bhaum-nimitta*—divining by study of abnormal changes in the earth including vibrations due to earthquake or growth of non-seasonal flowers-fruits etc. during a famine. Divination about underground metals and treasures is also included in this subject.



4. *antariksha-nimitta*—divining by study of unusual happenings in the sky such as shapes of clouds, fiery horizon, storms, rains etc. Astrology is also a part of this.

5. *svapna-nimitta*—divining by study of dreams.

6. *lakshan-nimitta*—divining by study of signs, body-marks, diagrams etc.

7. *dand-vidya*—study of knots and other deformities in sticks for its use, effects as well as divining.

8. *vastu-vidya*—study of architecture, dimensions, directions, set-backs of buildings for use, effects as well as divining.

9. *anga-vikaar-nimitta*—divining by study of body signs, defects and other symptoms including twitching of the eyelids.

10. *svara-vidya*—study of inhalation and exhalation for effects as well as divining.

Use of the said knowledge to get alms is one of the faults of alms-seeking called *utpadana dosh* or fault related to origin.

**Verse 8**—Traditionally *dhoomanetta* is regarded as one compound word. But commentators interpret the term as two separate words *dhooma* (smoke) and *netra* (eyes). In their view *dhooma* here conveys fumigate body by fumes of herbal incenses like *manah-shila*. *Netra* conveys application of medicinal powders or ointments in eyes. In *Dashavaikalik* and *Uttaradhyayan*, edited by Muni Nathmalji, *dhoomanetra* is interpreted as inhaling smoke through pipe or tube.

*Snaana* (bath) here refers to special subject of bath related incantation. According to *Vrihad Vritti* special bath with herb mixed and mantra-potentized water was prescribed to get a son. (V.V.)

**Verse 9**—According to *Aavashyak-Niryukti* (Verse 198) Bhagavan Rishabhadev established four classes of men—1. *Ugra* (protectors), 2. *Bhoga* (teachers), 3. *Rajanya* (of same age; friends), and 4. *Kshatriya* (all others).

*Bhogik* also means ministers. Shantayacharya's etymology is—important person recognized by king or state.

*Gana* means leaders or people of a republic. At the time of Bhagavan Mahavir there were many powerful republics including *Lichchhavi* and *Shaakya*. *Vajji* republic was inclusive of eighteen republics of *Kaashi-Kaushala* including nine *Lichchhavi* and nine *Mallak*. In *Kalpasutra* these are mentioned as *Ganarajyaano* (the republic states).



## सोलहवाँ अध्ययन : ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

### उपोद्घात

प्रस्तुत अध्ययन का नाम ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान है। यह अध्ययन सूत्रों और गाथाओं में निबद्ध है। सूत्रों का विस्तार अथवा परिपुष्टिकरण गाथाओं द्वारा किया गया है।

पिछले सभिक्षुक अध्ययन में निर्दोष भिक्षाजीवी श्रमण के लक्षण और जीवनचर्या के उपरान्त उसे समाधि (शांति) के स्थान बताने के लिये इस अध्ययन में उपक्रम किया गया है।

साधारणतः ब्रह्मचर्य का अर्थ मैथुनविरति अथवा स्पर्शेन्द्रिय संयम लिया जाता है; किन्तु यह अर्थ संपूर्ण नहीं है। चिन्तन की गहराई में उतरने पर ब्रह्मचर्य का अभिप्राय सर्वेन्द्रिय संयम स्पष्ट होता है; लेकिन यह भी पूर्ण नहीं है। मानसिक, वाचिक और सभी इन्द्रियों का संयम ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ है।

ब्रह्मचर्य का आध्यात्मिक स्वरूप अपनी आत्मा में आत्मस्वभाव में रमण करना है। आत्मा, अनन्त, अक्षय, सुख और शांति का आगार है। लेकिन आत्मा की गहराइयों तक न पहुँचने वाला मानव इन्द्रिय-मोहक भौतिक सुख-साधनों में सुख की खोज करने वाला बाह्यगामी हो जाता है; उसकी इस दिग्भ्रान्ति को तोड़ने का प्रयास ही ब्रह्मचर्य का प्रारम्भ है।

प्रस्तुत अध्ययन में जो ब्रह्मचर्य के दस समाधि-स्थान बताए गये हैं, वे ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियों अथवा नवबाड़ हैं और दसवाँ स्थान है कोट-दुर्ग अथवा इन नव गुप्तियों का रक्षक।

ये नवबाड़ तथा दस समाधि-स्थान स्वयं ब्रह्मचर्य नहीं हैं, ब्रह्मचर्य के रक्षक अथवा साधक हैं। इनसे ब्रह्मचर्य साधना में सहायता मिलती है।

इस दृष्टि से इन साधनों का महत्व कम नहीं है। साधक के लिये ये अनिवार्य हैं। इनमें स्खलना होने से ब्रह्मचर्य भंग होने की संभावना रहती है।

प्रस्तुत अध्ययन की शैली से भी यह स्पष्ट है। एक ओर ब्रह्मचर्य के इन गुप्तियों के लाभ बताये हैं तो तुरन्त ही इनकी स्खलना से होने वाले दोषों का भी सूचन कर दिया है।

प्रस्तुत अध्ययन में १२ सूत्र और १७ गाथाएँ हैं।



## SHODASH ADHYAYAN : BRAHMACHARYA SAMADHI STHAAN

### Foreview

This chapter is titled Brahmacharya Samadhi Sthaan (Conditions of Perfect Celibacy). It is composed in prose and verses both. The maxims are elaborated and confirmed in verses.

In the preceding chapter attributes and praxis of an ascetic subsisting on faultless alms were described. This goes a step further and informs him about conditions of attaining serenity (*Samadhi*).

The common meaning of *brahmacharya* is taken to be celibacy or renouncing sexual activity or restrain of the sense of touch; but this meaning is not comprehensive. On deeper deliberation it becomes clear that *brahmacharya* denotes restraining all the five senses; but this too is incomplete. The wider meaning includes restrain of all mental, vocal and physical indulgences.

In the spiritual field *brahmacharya* (perfect celibacy) denotes exclusive involvement with Brahma or soul or self. Soul is the abode of eternal, infinite, imperishable bliss and peace. But a person who is unable to reach this depth of the inner self (soul) becomes extrovert searching happiness in physical means of comforts enticing to sensual organs. Practice of *brahmacharya* (perfect celibacy) commences with the effort of shattering this delusion of man.

The ten conditions (*sthaan* or places) of *brahmacharya* (perfect celibacy) mentioned in this chapter are, in fact, nine restraints (*guptis*) or nine protective fences of perfect celibacy and the tenth being the protective fort that secures these nine restraints.

On their own these ten conditions including nine fences are not perfect celibacy. These are just guards or means of the practice of celibacy. They provide help in practicing perfect celibacy.

As such the importance of these means is no less. They are essential for an aspirant. Any slip in these and the possibility of fall from perfect celibacy increases.

This is also evident in the style of this chapter. On one hand the benefits of perfect celibacy and these restrains are asserted and on the other hand the harms caused by transgression are also mentioned.

The chapter has 12 maxims and 17 verses.



शोलसमं ब्रज्जयणं : ब्रह्मचेरसमाहिठाणं  
षोडश अध्यायन : ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

Chapter-16 : CONDITIONS OF PERFECT CELIBACY

सूत्र १—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं-

इह खलु थेरेहिं भगवन्तेहिं दस ब्रह्मचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा।

सूत्र १—(सुधर्मा स्वामी—) हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है कि उन भगवान ने ऐसा कहा है—

इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थविर भगवन्तों ने दस ब्रह्मचर्य समाधि के स्थान बताये हैं, जिन्हें सुनकर तथा जिनके अर्थ को समझकर भिक्षु संयम में, संवर में और समाधि में अधिकाधिक संपन्न होकर मन-वचन-काया का गोपन करे, इन्द्रियों को नियन्त्रित करे और गुप्त ब्रह्मचारी बनकर सदा अप्रमत्त होकर विचरण करे।

**Maxim 1—(Sudharma Swami—)** O long-lived one! I have heard that Bhagavan said so—

‘The revered senior accomplished sages have, in their sermon, mentioned ten conditions for realization of *brahmacharya* (perfect celibacy), by hearing and understanding the meaning of which an ascetic should become more and more accomplished in restrain, in obstructing *karmic* inflow and meditation. Consequently he should practice mental, vocal and physical restraint, control the senses and become a perfect celibate to move about free of stupor (ever alert).

सूत्र २—कयरे खलु ते थेरेहिं भगवन्तेहिं दस ब्रह्मचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबभयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा।

सूत्र २—(जम्बू स्वामी—) हे भगवन् ! स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य समाधि के वे कौन से दस स्थान बताये हैं, जिन्हें सुनकर, जिनका अर्थ निश्चय कर भिक्षु संयम, संवर और समाधि का बार-बार अभ्यास करे, मन-वचन-काया का गोपन करे, इन्द्रियों को उनके विषयों में जाने से रोके, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे और अप्रमत्त होकर विचरण करे।

**Maxim 2—(Jambu Swami—)** *Bhante!* What are those ten conditions the revered senior accomplished sages have, in their sermon, mentioned for realization of perfect celibacy, by hearing and understanding the meaning of which an ascetic should become more and more accomplished in restrain, in obstructing *karmic* inflow and meditation? Consequently he should practice mental, vocal and physical restraint, control the senses and become perfect celibate to move about free of stupor (ever alert).





सूत्र ३—इमे खलु ते धेरेहिं भगवन्तेहिं दस बंधचेरसमाहिठाणा पन्नत्ता, जे भिक्खू सोच्चा, निसम्म, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिबहुले, गुत्ते, गुत्तिन्दिए, गुत्तबंधयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्जा।

तं जहा—

विवित्ताइं सयणासणाइं सेविज्जा, से निग्गन्थे।

नो-इत्थी-पसु-पण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ, से निग्गन्थे।

तं कहमिति चे?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु इत्थी-पसु-पण्डगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवमाणस्स बंधयारिस्स बंधचेरे संका वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उप्पायं वा पाउणज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा नो इत्थि-पसु-पंडगसंसत्ताइं सयणासणाइं सेवित्ता हवइ, से निग्गन्थे।

सूत्र ३—(सुधर्मा स्वामी—) स्थविर भगवन्तों ने ब्रह्मचर्य समाधि के ये दस स्थान बताये हैं, जिन्हें सुनकर, जिनके अर्थ का निर्णय कर भिक्षु संयम, संवर, समाधि से अधिकाधिक संपन्न हो—मन-वचन-काया का गोपन करे, इन्द्रियों को वश में रखे, ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखे तथा सदा अप्रमत्त रहकर विहार करे।

वे दस स्थान इस प्रकार हैं—

### प्रथम ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

जो विविक्त शयन आसन का सेवन करता है, वह निर्ग्रन्थ है।

जो स्त्री, पशु, नपुंसक से संसक्त शयन आसन का सेवन-उपयोग नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं—स्त्री-पशु-नपुंसक से संस्पृष्ट-सेवित शयन और आसन का सेवन-उपयोग करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा (भोगेच्छा), विचिकित्सा उत्पन्न होती है, अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, या उन्माद अथवा दीर्घकालीन रोग और आतंक उत्पन्न हो जाते हैं, वह केवली भगवान द्वारा कहे हुये धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

अतः जो स्त्री-पशु-नपुंसक से संस्पृष्ट शयन और आसन का सेवन नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

**Maxim 3—**(Sudharma Swami—) The revered senior accomplished sages have, in their sermon, mentioned ten conditions for realization of perfect celibacy, by hearing and understanding the meaning of which an ascetic should become more and more accomplished in restrain, in obstructing *karmic* inflow and meditation. Consequently he should practice mental, vocal and physical restraint, control the senses and become perfect celibate to move about free of stupor (ever alert).

These ten conditions are as follows—



### First condition of perfect celibacy

He who uses selective (as prescribed for an ascetic) bed and seat is a *nirgranth* (knotless ascetic or Jain ascetic).

He who does not use the bed and seat used or touched by women, eunuchs and animals, is an ascetic.

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic uses bed and seat used by women-animals-eunuchs, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind; in other words his vow of celibacy is breached. Also, he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore, he who does not use the bed and seat used or touched by women, eunuchs and animals, is an ascetic.

सूत्र ४—नो इत्थीणं कहं कहित्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु इत्थीणं कहं कहेमाणस्स, बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा कांखा वा वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंके हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा नो इत्थीणं कहं कहेज्जा ।

द्वितीय ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र ४—जो स्त्रियों के रूप, लावण्य, हाव-भाव आदि से सम्बन्धित कामोत्तेजक कथा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य उत्तर देते हुए कहते हैं—स्त्रियों की कथा कहने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा उत्पन्न होती है, उसके ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है, उन्माद अथवा दीर्घकालीन रोग और आतंक हो जाते हैं। वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को स्त्री-कथा नहीं करनी चाहिये।

### Second condition of perfect celibacy

**Maxim 4**—He who does not indulge in erotic talks regarding seductive beauty, charm and gestures of women is an ascetic.

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic indulges in erotic talks regarding seductive beauty, charm and gestures of women, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is



breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore a celibate should not indulge in erotic talks about women.

सूत्र ५—नो इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरित्ता हवइ, से निग्गन्थे ।  
तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागयस्स, बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंके हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे इत्थीहिं सद्धिं सन्निसेज्जागए विहरेज्जा ।

तृतीय ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र ५—जो स्त्रियों के साथ एक आसन पर नहीं बैठता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं—स्त्रियों के साथ एक आसन पर बैठने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में संका, कांक्षा, विचिकित्सा उत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य का नाश होता है, उन्माद और दीर्घकालीन रोग व आतंक उत्पन्न होते हैं, वह केवली प्रज्ञप्त धर्म से विचलित हो जाता है।

अतः निर्ग्रन्थ स्त्रियों के साथ एक आसन पर हरगिज न बैठे।

**Third condition of perfect celibacy**

**Maxim 5**—He who does not sit on one seat with women is an ascetic.

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic sits on one seat with women, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

So an ascetic should never sit on one seat with women.

सूत्र ६—नो इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं, मणोरमाइं आलोइत्ता, निज्झाइत्ता हवइ, से निग्गन्थे ।  
तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं, मणोरमाइं आलोएमाणस्स, निज्झायमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायंके हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु निग्गन्थे नो इत्थीणं इन्दियाइं मणोहराइं, मणोरमाइं आलोएज्जा, निज्झाएज्जा ।



चतुर्थ ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र ६—जो स्त्रियों की मनोहर और मनोरम-मन को हरण करने वाली तथा मन में विकार उत्पन्न करने वाली इन्द्रियों को (टकटकी लगाकर) नहीं देखता और न ही उनके विषय में चिन्तन करता है; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?

(उत्तर) आचार्य कहते हैं—स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को देखने और उनके विषय में चिन्तन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य का विनाश हो जाता है, उन्माद तथा दीर्घकालिक रोग व आतंक उत्पन्न हो जाते हैं, वह केवली भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों-अंगों को न तो देखे और न उनका चिन्तन ही करे।

Fourth condition of perfect celibacy

**Maxim 6**—He who neither gapes avidly at beautiful, enchanting and provoking body parts of women, nor ruminates upon them is an ascetic.

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic gapes avidly at beautiful, enchanting and provoking body parts of women and ruminates upon them, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore a knotless ascetic should neither gape avidly at beautiful, enchanting and provoking body parts of women, nor ruminate upon them.

सूत्र ७—नो इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुड्डयसहं वा, रुड्डयसहं वा, गीयसहं वा, हसियसहं वा, थणियसहं वा, कन्दियसहं वा, विलवियसहं वा, सुणेत्ता हवइ, से निगन्थे।

तं कहमिति चे?

आयरियाह—निगन्थस्स खलु इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुड्डयसहं वा, रुड्डयसहं वा, गीयसहं वा, हसियसहं वा, थणियसहं वा, कन्दियसहं वा, विलवियसहं वा, सुणेमाणस्स बंभयारिस्स बम्भचरे संका वा कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउण्णिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा खलु निगन्थे नो इत्थीणं कुड्डन्तरंसि वा, दूसन्तरंसि वा, भित्तन्तरंसि वा, कुड्डयसहं वा, रुड्डयसहं वा, गीयसहं वा, हसियसहं वा, थणियसहं वा, कन्दियसहं वा, विलवियसहं वा सुणेमाणे विहरेज्जा।



### पंचम ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र ७—जो मिट्टी की दीवार के अन्तर से, वस्त्र के परदे के अन्तर से, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन, विलाप-शब्दों को नहीं सुनता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?

(उत्तर) अस्चार्य कहते हैं—मिट्टी की दीवार, परदे, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गायन, हास्य, गर्जन, क्रन्दन तथा विलाप के शब्दों को सुनने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, उन्माद तथा दीर्घकालिक रोग व आतंक उत्पन्न हो जाते हैं, वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इस कारण मिट्टी की कच्ची दीवार, कपड़े के परदे, पक्की दीवार के अन्तर से स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, गर्जन, आक्रन्दन, विलाप आदि शब्दों को निर्ग्रन्थ न सुने।

### Fifth condition of perfect celibacy

**Maxim 7**—He who does not hear sounds of screeching, wailing, singing, laughing, screaming, crying or weeping of women from behind a mud-wall or screen or brick-wall, is an ascetic.

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic hears sounds of screeching, wailing, singing, laughing, screaming, crying or weeping of women from behind a mud-wall or screen or brick-wall, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore an ascetic should not hear sounds of screeching, wailing, singing, laughing, screaming, crying or weeping of women from behind a mud-wall or screen or brick-wall.

सूत्र ८—नो निग्गन्थे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरित्ता हवइ, से निग्गन्थे।

तं कहमिति चे?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरमाणस्स बभयारिस्स बंधचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे पुव्वरयं, पुव्वकीलियं अणुसरेज्जा।

### छठा ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र ८—संयम ग्रहण करने से पूर्व की हुई रति और क्रीड़ा का अनुस्मरण जो नहीं करता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?



(उत्तर) आचार्य कहते हैं—संयम ग्रहण करने से पूर्व की हुई रति एवं क्रीड़ा का स्मरण करने से ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा उत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है या उन्माद उत्पन्न होता है अथवा दीर्घकालिक रोग व आतंक से ग्रसित हो जाता है, वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

अतः निर्ग्रन्थ पूर्व रति और क्रीड़ा का स्मरण भी न करे।

### Sixth condition of perfect celibacy

**Maxim 8**—He who does not recall the carnal indulgences and enjoyments experienced before getting initiated into the order, is an ascetic.

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic recalls the carnal indulgences and enjoyments experienced before getting initiated into the order, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore an ascetic should not even recall the carnal indulgences and enjoyments experienced before getting initiated into the order.

सूत्र ९—नो पणीयं आहारं आहारित्ता हवइ, से निग्गन्थे।

तं कहमिति चे?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु पणीयं षणभोयणं आहारेमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे पणीयं आहारं आहारेज्जा।

सातवाँ ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र ९—जो सरस, प्रणीत, पौष्टिक आहार नहीं करता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?

(उत्तर) आचार्य ने कहा—सरस, पौष्टिक, प्रणीत आहार-पानी का सेवन करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ के ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य का नाश हो जाता है, उन्माद उत्पन्न होता है, अथवा दीर्घकालिक रोग व आतंक उत्पन्न हो जाता है, वह केवली भगवान द्वारा प्ररूपित किये गये धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिये निर्ग्रन्थ रसयुक्त पौष्टिक आहार न करे।

### Seventh condition of perfect celibacy

**Maxim 9**—He who does not eat delicious, oil-rich and nourishing food is an ascetic.

(Q.) Why is it so?



(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic eats delicious, oil-rich and nourishing food, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore, an ascetic should not eat delicious, oil-rich and nourishing food.

सूत्र १०—नो अइमायाए पाणभोयणं आहारेत्ता हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु अइमायाए पाणभोयणं आहारेमाणस्स, बम्भयारिस्स बंभचेरे संका वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा वा समुप्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलिपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे अइमायाए पाणभोयणं भुंजिज्जा ।

आठवाँ ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र १०—जो अधिक मात्रा में प्रमाण से अधिक भोजन-पान नहीं खाता-पीता; वह निर्ग्रन्थ है ।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है ?

(उत्तर) आचार्य ने कहा—मात्रा-परिमाण से अधिक भोजन-पान करने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है, उन्माद उत्पन्न होता है, दीर्घकालीन रोग व अतंक हो जाते हैं, वह केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है ।

इसलिए निर्ग्रन्थ को अधिक परिमाण में भोजन-पान नहीं करना चाहिये ।

### Eighth condition of perfect celibacy

**Maxim 10**—He who does not consume excessive quantity of food and drink (more than prescribed for an ascetic), is an ascetic.

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic consumes excessive quantity of food and drink, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore, an ascetic should not consume excessive quantity of food and drink.

सूत्र ११—नो विभूसाणुवाइ हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे ?

आयरियाह—विभूसावत्तिए, विभूसियसरीरे इत्थिजणस्स अभिलसणिज्जे हवइ । तओ णं तस्स इत्थिजणेणं अभिलसिज्जमाणस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वित्तिगिच्छा



वा समुष्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे विभूसाणुवाई सिया ।

नौवाँ ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र ११—जो शरीर की विभूषा-शोभा नहीं करता, वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?

(उत्तर) आचार्य ने समाधान देते हुए कहा—जिसकी मनोवृत्ति विभूषा करने की होती है, वह अपने शरीर को सजाता है; फलस्वरूप स्त्रियाँ उसे चाहने लगती हैं। तब स्त्रियों द्वारा अभिलाषा किये जाने वाले ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है अथवा ब्रह्मचर्य भंग हो जाता है या उन्माद हो जाता है अथवा वह दीर्घकालीन रोगों व आतंकों से ग्रसित हो जाता है, वह केवली प्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिये निर्ग्रन्थ विभूषानुपाती (विभूषा में आसक्त) न बने।

**Ninth condition of perfect celibacy**

**Maxim 11—He who does not embellish his body, is knotless ascetic.**

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains – If a celibate ascetic has inclination to embellish his body and he does so, then women are attracted towards him; when a celibate ascetic is desired by women, doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore, an ascetic should not get obsessed with embellishments of his body.

सूत्र १२—नो सह-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाई हवइ, से निग्गन्थे ।

तं कहमिति चे?

आयरियाह—निग्गन्थस्स खलु सह-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाइस्स बम्भयारिस्स बम्भचेरे संका वा, कंखा वा, वितिगिच्छा वा समुष्पज्जिज्जा, भेयं वा लभेज्जा, उम्मायं वा पाउणिज्जा, दीहकालियं वा रोगायकं हवेज्जा, केवलपन्नत्ताओ वा धम्माओ भंसेज्जा ।

तम्हा खलु नो निग्गन्थे सह-रूव-रस-गन्ध-फासाणुवाई हविज्जा ।

दसमे बम्भचेरसमाहिठाणे हवइ ।

दसवाँ ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान

सूत्र १२—जो शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में आसक्ति नहीं रखता; वह निर्ग्रन्थ है।

(प्रश्न) ऐसा क्यों है?





(उत्तर) आचार्य कहते हैं—शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श में आसक्त ब्रह्मचारी निर्ग्रन्थ को ब्रह्मचर्य के विषय में शंका, कांक्षा, विचिकित्सा समुत्पन्न होती है, ब्रह्मचर्य भंग होता है, उन्माद उत्पन्न हो जाता है, दीर्घकालीन रोग व आतंक पैदा हो जाते हैं, वह केवली भगवान द्वारा प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाता है।

इसलिए निर्ग्रन्थ को शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श में आसक्त नहीं होना चाहिए।

यह दसवाँ ब्रह्मचर्य समाधि-स्थान है।

### Tenth condition of perfect celibacy

**Maxim 12**—He who does not crave for (gratifying sense organs of —) sound, sight, taste, smell and touch is an ascetic.

(Q.) Why is it so?

(Ans.) The preceptor explains—If a celibate ascetic craves for (gratifying sense organs of—) sound, sight, taste, smell and touch, then doubt and disrespect for celibacy as well as desire of sexual indulgence germinate in his mind or his vow of celibacy is breached. Also he is inflicted by mental disorder, prolonged ailments and terror. Ultimately he falls from the religious path shown and established the omniscient (*Kevali*).

Therefore an ascetic should not crave for (gratifying sense organs of—) sound, sight, taste, smell and touch.

This is the tenth condition of perfect celibacy.

भवन्ति इत्थ सिलोगा, तं जहा—

यहाँ इस विषय में कुछ गाथाएँ (श्लोक) हैं, जो इस प्रकार हैं—

There are some verses on the same theme, these are as follows—

जं विवित्तमणाइण्णं, रहियं थीजणेण य ।

बम्भचेरस्स रक्खद्धा, आलयं तु निसेवए ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए संयमी विवित्त-एकान्त, अनाकीर्ण एवं स्त्रियों से रहित स्थान में रहे ॥ १ ॥

For preservation of celibacy, the restrained (ascetic) should take up a lonely detached lodging, free from and not frequented by women. (1)

मणघल्हायजणणिं, कामरागविवड्ढणिं ।

बंभचेररओ भिक्खू, थीकहं तु विवज्जए ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्य-परायण साधु चित्त में आल्हाद उत्पन्न करने वाली तथा काम-राग बढ़ाने वाली विकारवर्द्धक स्त्री-कथा का परित्याग कर दे ॥ २ ॥

A celibate ascetic should renounce any talk about women, which exhilarates mind and inflames lust and other perversions. (2)



समं च संधवं थीहिं, संकहं च अभिक्खणं ।  
बंभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्य में लीन रहने वाला भिक्षु स्त्रियों की प्रशंसा, उनके साथ अति परिचय तथा बार-बार वार्त्तालाप करना छोड़ दे ॥ ३ ॥

An ascetic engrossed in perfect celibacy should refrain from praising women, intimacy with women and frequent conversation with women. (3)

अंगपच्चंग-संठाणं, चारुल्लविय-पेहियं ।  
बंभचेररओ थीणं, चक्खुगिज्झं विवज्जए ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु दृष्टिगोचर हुए स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग, शरीर की रचना, वार्त्तालाप का ढंग तथा चितवन आदि को देखकर भी न देखे, अपनी दृष्टि तुरन्त वहाँ से हटा ले ॥ ४ ॥

A celibacy practicing ascetic should avoid observing body, limbs, figure, gestures and way of talking of women even when visible. Instead, he should at once shift his eyes from there. (4)

कुइयं रुइयं गीयं, हसियं थणिय-कन्दियं ।  
बंभचेररओ थीणं, सोयगिज्झं विवज्जए ॥ ५ ॥

ब्रह्मचारी मुनि स्त्रियों के कूजन, रुदन, गीत, हास्य, गर्जन, क्रन्दन आदि शब्द न सुने। यदि भिक्षु के कानों में वे शब्द पड़ भी जाएँ तो उन पर ध्यान न दे ॥ ५ ॥

A celibate ascetic should avoid hearing sounds of screeching, wailing, singing, laughing, screaming, crying or weeping of women. If at all such sounds happen to fall on his ears, he should not pay any attention to them. (5)

हासं किड्डं रइं दप्पं, सहसाऽवत्तासियाणि य ।  
बंभचेररओ थीणं, नाणुचिन्ते कयाइ वि ॥ ६ ॥

स्त्री के साथ गृहस्थ जीवन में किये हुये हास्य, क्रीड़ा, रति, दर्प-अभिमान आकस्मिक त्रास आदि का ब्रह्मचर्यनिरत भिक्षु मन में भी चिन्तन न करे ॥ ६ ॥

A celibate ascetic should never recall and ruminate over the experiences he had as a householder with women including laughter, enjoyment, sex, their vanity and his spontaneous tricks to frighten and win them. (6)

पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं ।  
बंभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥ ७ ॥

ब्रह्मचर्य में रत भिक्षु कामवासना को शीघ्र ही बढ़ाने वाले प्रणीत-रसयुक्त पौष्टिक भोजन का त्याग कर दे ॥ ७ ॥

A celibate ascetic should renounce delicious, oil-rich and nourishing food and water, which fast inflames carnal desires. (7)



धम्मलद्धं मियं काले, जत्तत्थं पणिहाणवं ।  
नाइमत्तं तु भुंजेज्जा, बम्भचेररओ सया ॥ ८ ॥

ब्रह्मचर्य-परायण भिक्षु स्थिर एवं स्वस्थ चित्त होकर संयम यात्रा के लिये उचित समय में धर्म-मर्यादा के अनुसार प्राप्त परिमित भोजन करे; मात्रा से अधिक आहार न करे ॥ ८ ॥

A celibate ascetic should eat his food, collected according to ascetic code, with calm and sound mind only at proper time and in prescribed limit to suit his ascetic pursuits; he should not eat in excessive quantity. (8)

विभूसं परिवज्जेज्जा, सरीर परिमण्डणं ।  
बम्भचेररओ भिक्खू, सिंगारत्थं न धारए ॥ ९ ॥

ब्रह्मचर्यनिरत भिक्षु विभूषा का परित्याग कर, शृंगार के लिये शरीर को सजाए-सँवारे नहीं ॥ ९ ॥

A celibate ascetic should renounce rich adornment and should not embellish the body for the sake of glamour. (9)

सहे रूवे य गन्धो य, रसे फासे तहेव य ।  
पंचविहे कामगुणे, निच्चवसो परिवज्जए ॥ १० ॥

शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श-इन पाँच प्रकार के कामगुणों को ब्रह्मचर्य-परायण भिक्षु सदा के लिये त्याग दे ॥ १० ॥

A celibate ascetic should abandon for ever the five sensual sources of carnal pleasure- (i) sound, (ii) sight (appearance), (iii) smell, (iv) taste, and (v) touch. (10)

आलओ थीजणाइण्णो, थीकहा य मणोरमा ।  
संथवो चेव नारीणं, तासिं इन्दियदरिसणं ॥ ११ ॥  
कुइयं रुइयं गीयं, हसियं भुत्तासियाणि य ।  
पणीयं भत्तपाणं च, अइमायं पाणभोयणं ॥ १२ ॥  
गत्तभूसणमिद्धं च, कामभोगा या दुज्जया ।  
नरस्सउत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥ १३ ॥

- (१) स्त्रियों से आकीर्ण-संसक्त स्थान ।
- (२) मनोरम स्त्री-कथा ।
- (३) स्त्रियों के साथ अति परिचय ।
- (४) उनकी इन्द्रियों पर दृष्टि जमाना ॥ ११ ॥
- (५) स्त्रियों के कूजन, रुदन, हास्य, गीत आदि शब्दों को सुनना ।
- (६) भुक्त भोगों और सह-अवस्थान-साथ रहने का स्मरण करना ।
- (७) प्रणीत-रसयुक्त, पौष्टिक भोजन-पान करना ।
- (८) अधिक मात्रा में आहार करना ॥ १२ ॥



(९) शरीर को सजाने-विभूषित करने की इच्छा ।

(१०) दुर्जय कामभोग ।

आत्मार्थी पुरुष के लिये ये दस बातें तालपुट विष के समान हैं ॥ १३ ॥

1. Lodging used or frequented by women.
2. Charming talks about women.
3. Intimate relationship with women.
4. To gape at charming body-parts of women. (11)
5. To listen to screeching, wailing, singing, laughing and other sounds by women.
6. To recall past experiences of enjoyments and cohabitation with women.
7. To consume nourishing, delicious food and drinks.
8. To eat excessive quantity of food. (12)
9. Desire of embellishing and adorning body.
10. Pleasures and comforts difficult to subdue.

Aforesaid ten things are like fatal poison for a man on spiritual path. (13)

दुज्जए कामभोगे य, निच्चसो परिवज्जए ।  
संकट्ठाणाणि सव्वाणि, वज्जेज्जा पणिहाणवं ॥ १४ ॥

स्थिर चित्त वाला साधु दुर्जय कामभोगों का सदा परित्याग करे और सभी प्रकार के शंका स्थानों से दूर रहे ॥ १४ ॥

A resolute ascetic should always avoid all pleasures and comforts that are difficult to subdue, keep away from all sources of doubt. (14)

धम्मारामे चरे भिक्खु, धिइमं धम्मसारही ।  
धम्मारामए दन्ते, बम्भचेर-समाहिए ॥ १५ ॥

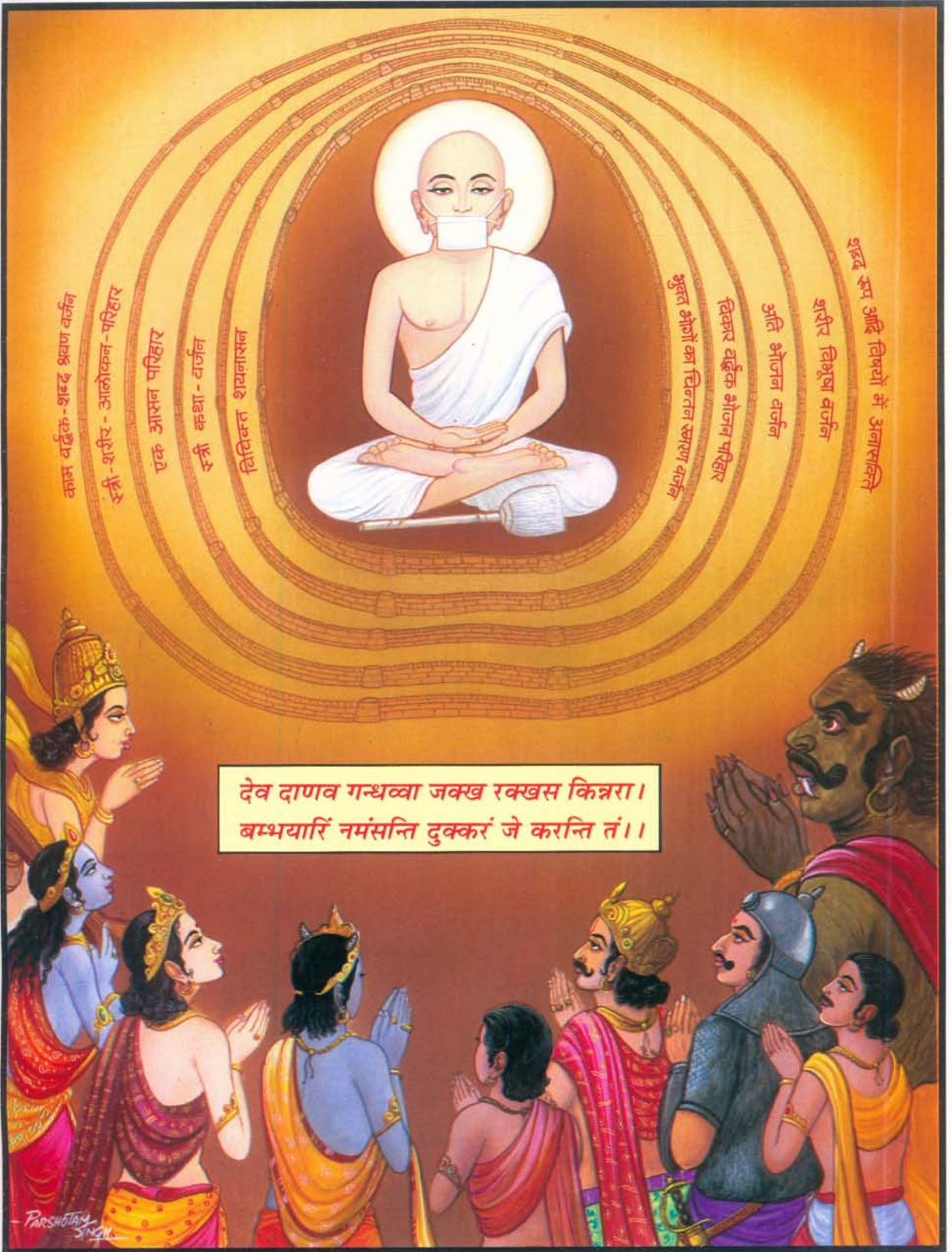
ब्रह्मचर्य में सुसमाहित भिक्षु धैर्यवान, धर्मरथ का सारथी, धर्मरूपी उद्यान में रत, इन्द्रियों और कषायों पर विजय प्राप्त करके धर्मरूपी उद्यान में विचरण करे ॥ १५ ॥

Devoted to the vessel of religion, an ascetic, well established in celibacy, should become a patient charioteer of the religious-chariot and after conquering the senses and passions, he should move about in the garden of religion. (15)

देव-दाणव-गन्धव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा ।  
बम्भयारिं नमंसन्ति, दुक्करं जे करन्ति तं ॥ १६ ॥

जो दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर-सभी नमन करते हैं ॥ १६ ॥

One who practices the difficult virtue of perfect celibacy is venerated by *Devs, Danavas, Gandharvas, Yakshas, Raakshasas* and *Kinnaras* (classes of divine beings) all. (16)



काम वद्विक-शब्द श्रवण वर्जन

स्त्री-शरीर-आलोकन-परिहार

एक आसन परिहार

स्त्री कथा-वर्जन

त्रिविक्रम शयनासन

शुद्ध भोजन का दिनतन स्मरण वर्जन

विकार वद्विक भोजन परिहार

अति भोजन वर्जन

शरीर विशुषा वर्जन

शब्द रूप अदि विषयों में अनासक्ति

देव दाणव गन्धवा जकख रकखस किन्नरा ।  
बम्भयारिं नमंसन्ति दुक्करं जे करन्ति तं ।।

## ब्रह्मचर्य की महिमा

दस समाधि-स्थानों से संरक्षित दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाले मुनि को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, चक्रवर्ती सम्राट् आदि सभी नमस्कार करते हैं।

—अध्ययन 16, सू. 10-13, 16

## THE IMPORTANCE OF CELIBACY

One who practices the difficult vow of perfect celibacy observing the ten prescribed conditions is venerated by *Devs, Danavas, Gandharvas, Yakshas, Raakshasas* and *Kinnaras* (classes of divine beings) as well as emperors.

—Chapter 16, Aphorism 10-13, 16





एस धम्मे धुवे निअए, सासए जिणदेसिए।  
सिद्धा सिज्झन्ति चाणेण, सिज्झिस्सन्ति तहावरे ॥ १७ ॥

—त्ति बेमि।

यह ब्रह्मचर्यधर्म ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है और जिनोपदिष्ट है। इस ब्रह्मचर्यधर्म का पालन करके भूतकाल में अनेक जीव सिद्ध हुए हैं, वर्तमान में हो रहे हैं और भविष्य में भी सिद्ध होंगे ॥ १७ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

This code of perfect celibacy is fixed, permanent, eternal and propagated by Jinas. By practicing this code of celibacy many souls attained state of perfection (*Siddha*) in the past, are attaining the same at present and will attain the same in future. (17)

—So I say.

### विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ३—ब्रह्मचर्य के लाभ में सन्देह होना “शंका” है। अब्रह्मचर्य-मैथुन की इच्छा “कांक्षा” है। अभिलाषा की तीव्रता होने पर चित्तविप्लव का होना “विचिकित्सा” है। विचिकित्सा के तीव्र होने पर चारित्र्य का विनाश होना “भेद” है।

गाथा ९—“प्रणीत” का अर्थ पुष्टिकारक भोजन है, जिससे घृत तथा तेल आदि की बूँदें टपकती हों। (चूर्णि)

### IMPORTANT NOTES

**Maxim 3** – Doubt about benefits of celibacy is *shanka*. Non-celibacy or desire of sexual intercourse is *kanksha*. Mental aberration caused by intensity of desire is *vichikitsa*. Falling from the ascetic code due to intense mental aberration is *bheda*.

**Maxim 9** –Nourishing fat-rich diet from which oil oozes is *praneet* food.



## सत्रहवाँ अध्ययन : पापश्रमणीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम पापश्रमणीय है। एक शब्द में कहा जाय तो पापश्रमण वह होता है जो सिंह वृत्ति से दीक्षा ग्रहण करके शृगाल वृत्ति से उसकी अनुपालना करता है अथवा शृगाल वृत्ति से ही श्रमणत्व धारण करता है और शृगाल वृत्ति से ही उसका पालन करता है।

पिछले १५वें अध्ययन में श्रेष्ठ भिक्षु (श्रमण) के लक्षण बताये गये थे और १६वें अध्ययन में ब्रह्मचर्य के महत्व का विवेचन किया गया था; जबकि प्रस्तुत अध्ययन में पापश्रमण के लक्षणों का विवेचन करके साधक को उन दोषों से दूर रहने की प्रेरणा दी गई है।

यथार्थ में श्रमणत्व का पालन खांडे की धार पर चलना है। प्रतिक्षण जागरूकता, चारित्र के प्रति सजगता, साधुत्व के नियमों के प्रति प्रतिबद्धता और निरन्तर सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना अति आवश्यक है।

लेकिन सभी साधक धर्मशीलिया नहीं होते, कुछ सुखशीलिया भी होते हैं। ऐसे साधकों को ही पापश्रमण कहा गया है। पापश्रमण की वृत्ति-प्रवृत्ति का दिग्दर्शन प्रस्तुत अध्ययन में कराया गया है।

इस अध्ययन में गाथा १ से ४ तक ज्ञानाचार से सम्बन्धित तथा गाथा ५ में दर्शनाचार, गाथा ६ से १४ तक चारित्राचार, गाथा १५-१६ में तपाचार एवं गाथा १७-१८ में वीर्याचार में निरपेक्ष रहने वाले पापश्रमण की बाह्य प्रवृत्तियों के साथ ही उसके मानसिक चिन्तन को भी स्पष्ट किया गया है।

इस अध्ययन से यह बात भी स्पष्ट होती है कि आगम शास्त्रों में जहाँ सच्चे श्रमण के प्रति बहुमान प्रदर्शित करते हुये उसे अत्युच्च स्थान दिया गया है; वहाँ शिथिलाचारी पापश्रमण के प्रति कठोर रुख भी अपनाया गया है।

सम्पूर्ण अध्ययन का सार है—शिथिलाचार को छोड़कर सच्चे निर्दोष श्रमणत्व को पालन करने की प्रेरणा।

प्रस्तुत अध्ययन में २१ गाथाएँ हैं।





## SAPTDASH ADHYAYAN : PAAP-SHRAMANIYA

### Foreview

The title of this chapter is Paap-shramaniya (Sinful Ascetic). In short, a sinful ascetic is he, who accepts initiation bravely like a lion but practices it cowardly like a jackal or gets initiated cowardly like a jackal and also practices like a jackal.

In the fifteenth chapter characteristics of an excellent ascetic were described and in the sixteenth chapter the importance of celibacy was elaborated; whereas in this chapter an aspirant is inspired to cast off faults by discussing the characteristics of a sinful ascetic.

In fact ascetic conduct is like walking on razor's edge. For this it is absolutely essential to be awake every moment, to be alert in following ascetic-praxis, to be resolute in following ascetic-codes and to be immaculate in pursuit of right knowledge-faith-conduct.

But all aspirants are not devoted to the religious path. Some are devoted to comforts and joy. Such comfort-loving aspirants are called sinful ascetics. This chapter shows the inclination and activities of such sinful ascetics.

In this chapter verses one 1 to 4 deal with knowledge-code, verse 5 with perception/faith-code, from 6 to 14 with conduct-code, 15 and 16 with austerity-code, and 17 and 18 with potency-code. In these verses the mental state and outward activities of sinful ascetics who are indifferent to these codes have been explained.

This chapter also reveals that in canonical scriptures of Jainism, on one hand the true ascetics are revered and placed on a lofty pedestal and on the other hand harsh attitude is used for the lax sinful ascetics.

The sum and substance of the whole chapter is the inspiration to abandon laxness in conduct and follow faultless ascetic code.

The chapter has 21 verses.



सतःसमं ब्रह्मयणं : पावसमणिज्जं  
सप्तदश अध्ययन : पापश्रमणीय  
Chapter-17 : SINFUL ASCETIC

जे के इमे पव्वइए नियण्ठे, धम्मं सुणिता विणओव्वन्ने ।  
सुदुल्लहं लहिउं बोहिलाभं, विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु ॥ १ ॥

जो कोई श्रुत-चारित्ररूप धर्म को सुनकर, अत्यधिक दुर्लभ बोधिलाभ प्राप्त करके पहले तो विनय से युक्त होकर निर्ग्रन्थ धर्म में प्रव्रजित हो जाता है और बाद में सुखशील बनकर स्वच्छन्द विचरण करता है ॥ १ ॥

One who hearing the religion of knowledge and conduct, and attaining rare-to-get enlightenment, first gets initiated into the ascetic order with all modesty but later becomes comfort-loving and moves about waywardly. (1)

सेज्जा दद्दा पाउरणं मे अत्थि, उप्पज्जई भोत्तुं त्हेव पाउं ।  
जाणामि जं वड्ढइ आउसु ! त्ति, किं नाम कहामि सुएण भन्ते ? ॥ २ ॥

आचार्य अथवा गुरुजन जब उसको श्रुत के अध्ययन की प्रेरणा देते हैं तब वह कहता है-हे आयुष्मन्! निवास के लिये सुन्दर उपाश्रय, शरीर-रक्षा के लिये वस्त्र मेरे पास हैं, खाने-पीने को भी यथेच्छ भोजन प्राप्त हो जाता है और जो हो रहा है उसे मैं जानता हूँ। तब शास्त्रों का अध्ययन करके मैं क्या करूँगा ? ॥ २ ॥

When his *acharya* (preceptor) and senior ascetics advise him to study scriptures, then he says-O long lived one! I have good lodging, clothes to protect my body, desired food to eat and I know what goes on. Then what is the use of studying scriptures for me ? (2)

जे के इमे पव्वइए, निद्दासीले पगामसो ।  
भोच्चा पेच्चा सुहं सुवइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ३ ॥

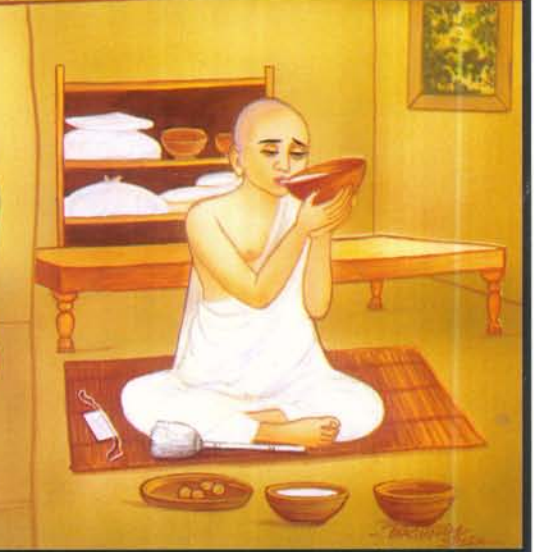
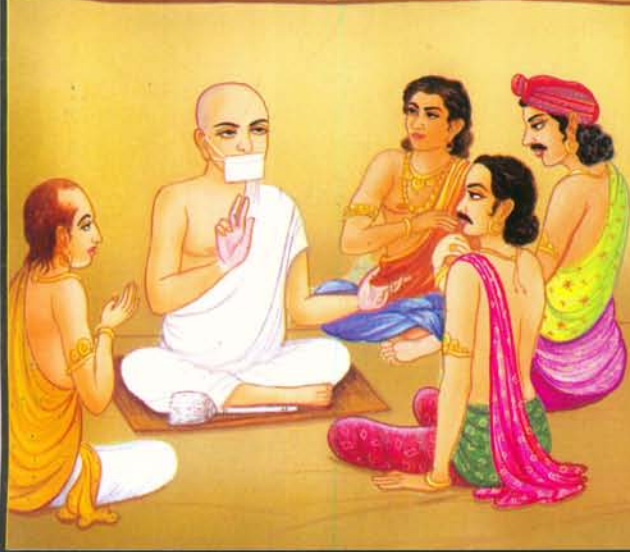
जो कोई प्रव्रज्या ग्रहण करके अत्यधिक निद्रा लेता है, इच्छानुकूल खा-पीकर (दिन में भी) सो जाता है, वह पापश्रमण कहा जाता है ॥ ३ ॥

After getting initiated, one who sleeps much, sleeps even after will-fully drinking and eating (even during day time), is called a sinful ascetic. (3)

आयरियउवज्जाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए ।  
ते चेव खिंसई बाले, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ४ ॥

जिन आचार्यों और उपाध्यायों से श्रुत-ज्ञान और विनय-आचार की शिक्षा प्राप्त की है, उन्हीं गुरुजनों की जो निन्दा करता है, वह पापश्रमण कहा जाता है ॥ ४ ॥

पाप श्रमण की उपमा



## पापश्रमण

सिंह वृत्ति से प्रव्रजित होकर जो सुख-शीलता के कारण शृगाल वृत्ति धारण कर मनचाहा खा-पीकर सोता है, वस्त्र-पात्र का संग्रह करता है, लोगों के साथ गप-शप मारता है वह अविवेकी, रस-लोलुप पापश्रमण कहलाता है।

—अध्ययन 16, सू. 1-3

## A SINFUL ASCETIC

One who gets initiated boldly like a lion but due to liking for comforts becomes coward like a jackal to eat, drink and sleep willfully; to accumulate clothes and pots, and to gossip with people; such imprudent and taste-obsessed monk is called a sinful ascetic.

—Chapter 17, Aphorism Couplets 1-3





He who slanders those *acharyas* (heads of the group or order) and *upadhyayas* (scholarly ascetics who teach) by whom he was taught the scriptures and the code of modesty is called a sinful ascetic. (4)

आयरिय-उवज्झायाणं, सम्मं नो पडित्तप्पइ ।  
अप्पडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ५ ॥

जो आचार्यों और उपाध्यायों की सम्यक् प्रकार से चिन्ता-सार-सँभाल नहीं करता, वह बड़ों का सम्मान न करने वाला, अभिमानी पापश्रमण कहलाता है ॥ ५ ॥

That conceited one who is not concerned about *acharyas* and *upadhyayas*, who does not take proper care of them and who does not even respect them, is called a sinful ascetic. (5)

सम्महमाणे पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य ।  
असंजए संजयमन्नमाणे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ६ ॥

जो द्वीन्द्रिय आदि प्राणी, बीज और हरित वनस्पति का संमर्दन करता रहता है, स्वयं असंयमी होते हुए भी अपने आप को संयमी मानता है, वह पापश्रमण कहलाता है ॥ ६ ॥

He who tramples and crushes two sensed and other living beings, seeds and green plants; although undisciplined, considers himself to be restrained, is called a sinful ascetic. (6)

संधारं फलगं पीढं, निसेज्जं पायकम्बलं ।  
अप्पमंज्जियमारुहइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ७ ॥

जो संस्तारक-बिछौना, पाट, आसन, निषद्या, स्वाध्याय भूमि, पाद-प्रोछन-चैर पोंछने के लिये कबल का टुकड़ा-इनका प्रमार्जन किये बिना ही इन पर बैठ जाता है, वह पापश्रमण कहलाता है ॥ ७ ॥

One who uses a bed, plank, low-stool, seat (*nishadya*), study-place, mattress (a piece of blanket for cleaning feet) without prior cleaning, is called a sinful ascetic. (7)

दवदवस्स चरई, पमत्ते य अभिक्खणं ।  
उल्लंघणे य चण्डे य, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ८ ॥

पैरों से दब-दब की आवाज करता हुआ जल्दी-जल्दी चलने वाला, बार-बार प्रमाद करने वाला, साधुधर्म की मर्यादा का उल्लंघन करने वाला और अधिक क्रोध करने वाला पापश्रमण कहा जाता है ॥ ८ ॥

He who stomps, walks hastily, is habitually careless, transgresses ascetic code and is wrathful, is called a sinful ascetic. (8)

पडिलेहेइ पमत्ते, उवउज्झइ पायकम्बलं ।  
पडिलेहणाअणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ९ ॥



प्रमादयुक्त-असावधान होकर प्रतिलेखन करने वाला, पात्र और कंबल को जहाँ-तहाँ, इधर-उधर रख देने वाला तथा प्रतिलेखन में अनायुक्त-असावधान रहने वाला पापश्रमण कहलाता है ॥ ९ ॥

One who inspects (*pratilekhana*) his possessions negligently, keeps his pots and blanket scattered and is generally careless in his routine of scrutiny (*pratilekhan*), is called a sinful ascetic. (9)

पहिलेहेड़ पमत्ते, से किंचि हु निसामिया।  
गुरुं परिभावए निच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १० ॥

इधर-उधर की बातें सुनता हुआ जो प्रमत्त होकर प्रतिलेखना करता है और सदा गुरुजनों का तिरस्कार करता है, वह पापश्रमण कहलाता है ॥ १० ॥

He who diverts his attention listening to useless talks and getting negligent during his routine of scrutiny (*pratilekhan*) and who always slights his seniors, is called a sinful ascetic. (10)

बहुमाई पमुहरे, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।  
असंविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ ११ ॥

अत्यधिक कपटयुक्त, अत्यधिक बोलने वाला, ढीठ, लुब्ध, इन्द्रियों और मन पर उचित नियंत्रण न रखने वाला, प्राप्त वस्तुओं का संविभाग नहीं करने वाला तथा गुरु आदि के प्रति प्रेम न रखने वाला पापश्रमण कहलाता है ॥ ११ ॥

One who is very deceitful, very talkative, arrogant, greedy, has poor control over his mind and senses, does not share collected alms with his fellow ascetics and is not amiable with his fellows and seniors, is called a sinful ascetic. (11)

विवादं च उदीरेइ, अहम्मे अत्तपन्नहा।  
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १२ ॥

शान्त हुए विवाद को पुनः-पुनः भड़काने वाला, अधर्म का आचरण करने वाला, विग्रह-कदाग्रह-कलह में रत रहने वाला पापश्रमण कहलाता है ॥ १२ ॥

He who inflames resolved disputes time and again, follows unrighteousness conduct and indulges in disruption, dogmatism and disputation, is called a sinful ascetic. (12)

अथिरासणे कुक्कुईए, जत्थ तत्थ निसीयई।  
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १३ ॥

जो अस्थिर-आसन वाला है—अर्थात् व्यर्थ ही इधर-उधर चक्कर काटता रहता है। भांडों जैसी कुचेष्टा करने वाला, जहाँ-तहाँ सचित्त स्थान पर भी बैठ जाने वाला इस प्रकार आसन के विषय में असावधान रहने वाला पापश्रमण कहा जाता है ॥ १३ ॥

One who is infirm in sitting (keeps on moving around uselessly), has clownish disposition, sits anywhere without ensuring that the place is free of living organisms and thus remains careless about seat, is called a sinful ascetic. (13)



ससरक्खपाए सुवई, सेज्जं न पडिलेहइ।  
संथारए अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १४ ॥

जो रज-धूल से भरे-सने पैरों से सो जाता है, शय्या का प्रतिलेखन नहीं करता है, संस्तारक-बिछौने के सम्बन्ध में असावधान होता है, वह पापश्रमण कहलाता है ॥ १४ ॥

He who sleeps with dusty-dirty feet, does not carefully inspect his bed and is careless about spreading his mattress is called a sinful ascetic. (14)

दुद्ध-दहीविगईओ, आहारेइ अभिक्खणं।  
अरण य तवोकम्पे, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १५ ॥

जो दूध-दही आदि विकारवर्द्धक पदार्थों का बार-बार आहार करता है और तपश्चर्या में अरुचि रखता है, वह पापश्रमण कहलाता है ॥ १५ ॥

One who frequently consumes milk, curd and other maligning eatables prohibited for ascetics and is averse towards austerities is called a sinful ascetic. (15)

अत्थन्तम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं।  
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १६ ॥

जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक दिनभर बार-बार आहार करता है, गुरु के समझाने पर उल्टा उन्हें ही उपदेश देने लगता है, वह पापश्रमण कहा जाता है ॥ १६ ॥

He who again and again eats throughout the day from sun-rise to sun-set and when admonished by the guru, responds by preaching him, is called a sinful ascetic. (16)

आयरिय परिच्चाई, परपासण्ड सेवए।  
गाणंगणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १७ ॥

जो अपने आचार्य को छोड़कर दूसरे धर्म-सम्प्रदायों, मत-परम्पराओं को स्वीकार कर लेता है। छह महीने की अल्प अवधि में ही एक गण से दूसरे गण में चला जाता है, वह दूर्भूत-निन्दनीय पापश्रमण कहलाता है ॥ १७ ॥

One who deserts his own preceptor (*acharya*) and accepts other religions, sects, schools or traditions; who shifts from one group of ascetics (*gana*) to another in a short period of six months or less, such spoiled one is called a sinful ascetic. (17)

सयं गेहं परिचज्ज, परगेहंसि वावडे।  
निमित्तेण य ववहरई, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १८ ॥

जो अपने घर को छोड़कर (प्रव्रजित होता है) दूसरे के घर के गृहकार्यों में लग जाता है; निमित्त-शुभाशुभ बताकर व्यवहार करता है, वह पापश्रमण कहलाता है ॥ १८ ॥

He who renounces his household (gets initiated) and later gets involved in other person's house work or starts working as an augur or fortune-teller is called a sinful ascetic. (18)



सन्नाइपिण्डं जेमेइ, नेच्छई सामुदाणियं।  
गिहिनिसेज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥ १९ ॥

जो अपने ज्ञाति जनों-पूर्व परिचितों से आहार प्राप्त करना चाहता है, सामुदानिक-अनेक घरों से भिक्षा नहीं लेना चाहता तथा गृहस्थ की शय्या, आसन आदि पर बैठ जाता है, वह पापश्रमण कहा जाता है ॥ १९ ॥

One who wishes to get alms from his relatives or acquaintances from the past, who does not want to collect alms from numerous families and who sits on the seats, beds and the like of a householder, is called a sinful ascetic. (19)

एयारिसे पंचकुसीलसंबुडे, रूबंधरे मुणिपवराण हेट्टिमे।  
अयंसि लोए विसमेव गरहिए, न से इहं नेव परत्थ लोए ॥ २० ॥

जो इस प्रकार आचरण करता है, वह पाँच प्रकार के कुशील साधुओं के समान असंवृत है। सिर्फ मुनि-वेष का ही धारक है, श्रेष्ठ मुनियों में निकृष्ट है। वह इस लोक में विष की तरह निन्दनीय होता है। अतः वह न इस लोक का रहता है और न ही परलोक का रहता है ॥ २० ॥

He who behaves as aforesaid is unrestrained like five types of misbehaving (*kushila*) ascetics (*osanno* or lover of delicacies, *paasattho* or fallen, *ahaacchanda* or undisciplined, *kushilo* or with bad character and *aasakt* or having obsessions—*Artha Dipika*). He is simply dressed like an ascetic but worst among worthy ascetics. In this world he is as despicable as poison. Therefore, for him both worlds, this world and the one beyond, are spoiled. (20)

जे वज्जए एए सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।  
अयंसि लोए अमयं व पूइए, आराहए लोगमिणं तहावरं ॥ २१ ॥

—त्ति बेमि।

जो इन सभी दोषों का सदा वर्जन करता है, वह मुनियों के मध्य में सुव्रत होता है तथा इस लोक में अमृत के समान पूजा जाता है और इस लोक तथा परलोक-दोनों लोकों का आराधक होता है ॥ २१ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

But one who avoids all these faults becomes sincere observer of right vows among the ascetics. He is worshipped like nectar in this world and becomes an accomplished aspirant for both, this world and the one beyond. (21)

—So I say.





## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १५—'विकृति' और 'रस' दोनों समानार्थक हैं। विकृति के नौ प्रकार हैं—(१) दूध, (२) दही, (३) नवनीत, (४) घृत, (५) तैल, (६) गुड़, (७) मधु, (८) मद्य, और (९) माँस।

गाथा १७—पाषण्ड का अर्थ व्रत है। जो व्रतधारी है, वह पाषण्डी है। परपाषण्ड से यहाँ अभिप्राय अन्य मतों से है।

“गाणगणिक” का अर्थ है “जल्दी-जल्दी गण बदलने वाला”। भगवान महावीर द्वारा प्रवर्तित संघ-व्यवस्था है कि भिक्षु जिस गण में दीक्षित हो, उसी में यावज्जीवन रहे। अध्ययन आदि के लिए यदि गण बदलने की जरूरत है तो गुरु की आज्ञा से अपने साधर्मिक गणों में जा सकता है। परन्तु दूसरे गण में जाकर भी कम से कम छह महीने तक तो गण का पुनः परिवर्तन नहीं किया जा सकता। अतः जो मुनि बिना विशेष कारण के छह मास के भीतर ही गण परिवर्तन करता है, वह गाणगणिक (गणबदलू) पापश्रमण है। (वृहद्वृत्ति)

गाथा १९—'सामुदानिक' भिक्षा का अर्थ दो प्रकार से किया जाता है—(१) अनेक घरों से लाई हुई भिक्षा, और (२) अज्ञात उच्छ-अर्थात् अपरिचित घरों से थोड़ी-थोड़ी लाई हुई भिक्षा।

## IMPORTANT NOTES

**Verse 15**—Here *vikriti* (distortion) and *rasa* (taste) convey the same meaning. What is tasteful is maligning to spiritual health. There are nine such maligning things—1. milk, 2. curd, 3. butter, 4. butter-oil, 5. cooking oil, 6. jaggery, 7. honey, 8. alcohol, and 9. meat.

**Verse 17**—*Paashand* here means vow. *Paashandi* is one who observes vows. *Par-paashand* means codes of others or other creeds.

*Gaanamganika* means one who changes *gana* frequently. In the organizational system of Bhagavan Mahavir's order the rule is that an ascetic remains all his life in the same *gana* (a defined group of ascetics) he got initiated into. If it becomes necessary to change his *gana* to pursue studies, he may do so with the permission of his guru, but only to a co-religionist groups. However, he must remain in that *gana* at least for six months before changing again. As such, the ascetic who changes *gana* without any special cause, within a period of six months is a *gaanamganika* (*gana* changer) and so a sinful ascetic. (*Vrihad Vritti*)

**Verse 19**—*Saamudaanika* alms is interpreted two ways—1. Alms collected from many households, and 2. Alms collected in small quantities from unknown households.



## अठारहवाँ अध्ययन : संजयीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम संजयीय इस अध्ययन के प्रमुख पात्र राजा संजय अथवा संयत के नाम पर आधारित है।

पिछले पापश्रमणीय अध्ययन में निर्दोष श्रमणाचार पालन की प्रेरणा दी गई थी और इस अध्ययन में एक मृगया-प्रेमी हिंसक राजा संजय के हृदय-परिवर्तन तथा शुद्ध श्रमणाचार पालन की घटना दी गई है।

### घटना-क्रम

कांपिल्यपुर नगर का मृगया-प्रेमी राजा संजय (संयत) अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर शिकार के लिये वन में गया। सैनिकों ने मृगों को केशर उद्यान की ओर हाँका और राजा उन्हें बाणों से वीधने लगा। घायल हरिण इधर-उधर भाग रहे थे। उनमें से कुछ हरिण उद्यान में जाकर गिरे और मर गये। वहीं लता-मण्डल में गर्दभालि मुनि ध्यानस्थ थे।

मृगों का पीछा करता हुआ राजा उद्यान में पहुँचा तो अनगार गर्दभालि को देखकर समझा कि ये हरिण इन्हीं मुनि के हैं। वह बहुत भयभीत हुआ। छोड़े से उतरा और करबद्ध होकर अपने अपराध (हरिणों को मारने के अपराध) की क्षमा माँगने लगा।

अनगार गर्दभालि ने ध्यान पूरा करके कहा—हे राजन्! तुम्हें मेरी ओर से अभय है। तुम भी दूसरों के लिए अभयदाता बनो।

यदि इस घटना को प्रस्तुत अध्ययन की भूमिका मानें तो अध्ययन का प्रारम्भ 'अभयदाया भवाहि य' इन शब्दों से होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में श्रामण्य, दार्शनिक सिद्धान्तों और इतिहास का बड़ा ही सुन्दर समन्वय हुआ है। अनगार गर्दभालि के उद्बोधनपरक उपदेश और संसारी रिश्ते-नातेदारों की स्वार्थपरता का वास्तविक स्वरूप जानकर राजा संजय दीक्षित हो जाता है। गुरुकृपा से ज्ञान-चारित्र्य में निष्णात बनकर एकलविहारी हो जाता है।

एकलविहारी राजर्षि संजय का शुभ मिलन एक क्षत्रिय राजर्षि से होता है। परस्पर वार्त्तालाप के दौरान विभिन्न दर्शनों, सिद्धान्तों, एकान्तवाद की चर्चा में क्षत्रिय राजर्षि भगवान महावीर द्वारा कथित अनेकान्तवाद को सर्वश्रेष्ठ बताते हैं। जैन दर्शन का यह स्थापित सत्य है कि अनेकान्तवाद के प्रथम प्रस्थापक भगवान ऋषभदेव थे। भगवान महावीर ने तो इसे पुनर्प्रचारित किया था।

अनेकान्तवाद की इस प्रतिष्ठापना को आधार बनाकर भरत, सगर, मधवा आदि १९ ऐसे महानात्माओं के दृष्टान्त सुनाते हैं जिन्होंने अनेकान्तवाद को भली-भाँति जाना और श्रमणत्व का पालन कर मुक्त हुए। इन महापुरुषों के दृष्टान्त क्षत्रिय राजर्षि ने राजर्षि संजय को जिनशासन में और भी दृढ़ बनाने के लिये दिये। द्रुमपत्रक अध्ययन में जिस प्रकार भगवान महावीर ने गौतम गणधर को क्षणमात्र भी प्रमाद न करने का उद्बोधन दिया था किन्तु था वह सबके लिए। इसी प्रकार क्षत्रिय राजर्षि का उद्बोधन, दार्शनिक चर्चा, अनेकान्तवाद की प्रतिष्ठापना तथा महापुरुषों के दृष्टान्त सभी साधकों को जिनशासन में दृढ़ करने के प्रेरक सूत्र हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में ५४ गाथाएँ हैं।



## ASHTADASH ADHYAYAN : SANJAYEEYA

### Foreview

The title of this chapter is Sanjayeeya. It is derived from the name of the principal character of this story, king Sanjaya or Samyata.

In the preceding chapter inspiration was given to practise pure ascetic-conduct. Whereas this chapter details the incident of the change of heart of and consequent practice of faultless ascetic conduct by a violent king who was fond of hunting.

### The chain of events

Fond of hunting, king Sanjaya of Kampilyapur went into a forest for hunt with his four limbed army. The soldiers drove deer towards saffron garden and the king began to pierce them with arrows. Wounded deer were running in all directions. Some of them reached the garden and fell dead. Ascetic Gardabhali was engrossed in meditation there under a pavilion of creepers.

Chasing the deer the king arrived in the garden. When he saw ascetic Gardabhali there, he thought that the deer belonged to the ascetic. Filled with fear he got down from the horse and sought forgiveness for his crime (of killing deer) with joined palms.

On concluding his meditation, ascetic Gardabhali said—O king! Have no fear from me. You too should become fountainhead of fearlessness for others.

If this incident is taken to be the introduction to this chapter then the actual theme of the chapter begins (verse 1-1) with the words 'become source of fearlessness for others' (*abhayadaayaa bhavahi ya*).

A beautiful assimilation of asceticism (Jainism), philosophical doctrines and history can be found in this chapter. On listening to the enlightening discourse of ascetic Gardabhali and getting aware of the reality about the selfishness of worldly relatives king Sanjaya gets initiated. After he became an accomplished scholar with the blessings of his guru ascetic Sanjaya became a lone wanderer.

Lone wanderer ascetic Sanjaya once met a *Kshatriya* ascetic. During their conversation on a variety of topics including different schools of philosophy, doctrines and absolutism, the *Kshatriya* ascetic established non-absolutism (many sided viewpoint) propagated by Bhagavan Mahavir as the best in comparison. This is an established belief in Jain philosophy that Bhagavan Rishabhdev was the first preceptor of non-absolutism. Bhagavan Mahavir only re-established it.

Taking this precept of non-absolutism by Bhagavan Rishabhdev as the starting point the *Kshatriya* ascetic gives examples of 19 great men who understood the principle well and attained liberation after following ascetic conduct accordingly. These examples were given by the *Kshatriya* ascetic to ascetic Sanjaya in order to strengthen his faith in the path shown by the Jina. In the tenth chapter Bhagavan Mahavir tells Gautam Ganadhara not to be negligent even for a moment; but the message is for all aspirants. In the same way the discourse, philosophical discussions, establishment of non-absolutism and the related examples of noble great men by the *Kshatriya* ascetic are inspiring maxims to bolster the faith of all aspirants in Jain order.

The chapter has 54 verses.



अद्वयसमं अज्जयणं : संजयुज्जं  
अष्टादश अध्यायन : संजयीय  
Chapter-18 : ASCETIC SANJAYA

कम्पिल्ले नयरे राया, उदिण्णबल-वाहणे ।  
नामेणं संजए नाम, मिगव्वं उवणिग्गए ॥ १ ॥

कांपिल्य नगर में बल-वाहन-सेना तथा रथादि से संपन्न संजय नाम का राजा राज्य करता था ।  
एक बार वह मृगया-शिकार के लिए सेना आदि से सुसज्जित होकर निकला ॥ १ ॥

In Kampilya city ruled a king named Sanjaya, who possessed power, troops, chariots and the like. Once he went out of city for hunting with his troops. (1)

हयाणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य ।  
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए ॥ २ ॥

वह संजय राजा चारों ओर से गज-सेना, अश्व-सेना, रथ-सेना तथा पैदल सैनिकों से परिवृत था ॥ २ ॥  
King Sanjaya was surrounded by battalions of elephants, horses, chariots and foot soldiers. (2)

मिए छुभित्ता हयगओ, कम्पिल्लुज्जाणकेसरे ।  
भीए सन्ते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए ॥ ३ ॥

सैनिकों द्वारा कांपिल्य नगर के केशर उद्यान की ओर हाँके गये, भयभीत, श्रान्त मृगों को वह  
अश्वारूढ़ संजय राजा, रस-लोलुप-माँस-लोलुप होकर मार रहा था ॥ ३ ॥

Driven by soldiers into the Saffron garden of Kampilyapur, the frightened and tired deer were being killed by the king who was obsessed with taste of meat. (3)

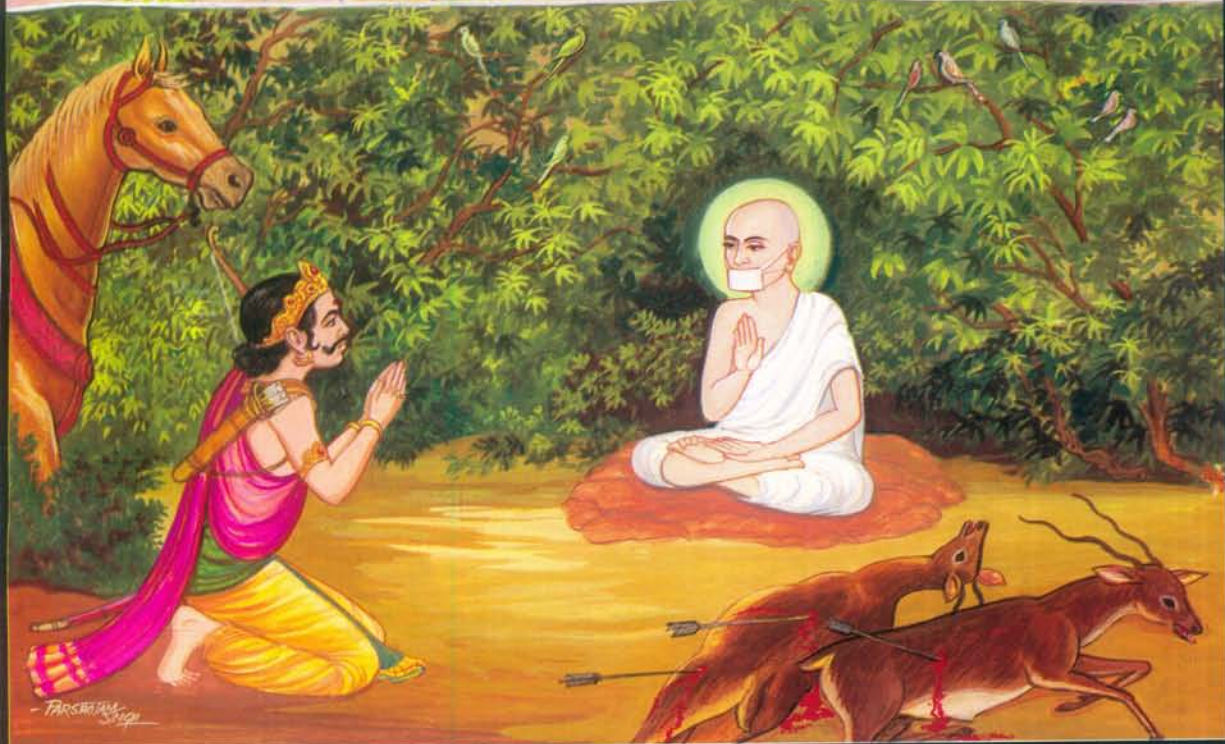
अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।  
सज्जाय-ज्जाणसंजुत्ते, धम्मज्जाणं झियायई ॥ ४ ॥

उस समय केशर उद्यान में ध्यान में लीन रहने वाले एक तपस्वी अनगार धर्मध्यान का एकाग्रचित्त  
से चिन्तन कर रहे थे ॥ ४ ॥

At that time a homeless ascetic was engrossed in deep meditation during his spiritual pursuits in the Saffron garden. (4)

अप्फोवमण्डवम्मि, ज्ञायई ज्ञवियासवे ।  
तस्सागए मिए पासं, वहेई से नराहिवे ॥ ५ ॥

आस्रवों का क्षय करने वाले वे अनगार एक लता-मण्डप में ध्यान-लीन थे । उनके समीप आये  
हुये हरिणों को राजा संजय ने बाणों से मार डाला ॥ ५ ॥



## राजा संजय

काम्पिल्य नगर का राजा संजय अपने दल-बल के साथ शिकार करने निकला। भयत्रस्त हिरणों के पीछे दौड़ता हुआ राजा केशर उद्यान के लता-मण्डप में पहुँच गया। वहाँ एक ध्यानस्थ मुनि के पास घायल हिरणों को देखकर राजा भयभीत हो उठा; हो न हो; ये हिरण मुनि के ही हैं। अज्ञान में हुये अपराध के लिये राजा मुनि से क्षमा याचना करने लगा।

—अध्ययन 18, सू. 1-7

## KING SANJAYA

King Sanjaya of Kampilya Nagar went out for hunting with his guards. Chasing frightened deer, the king arrived at creeper pavilion in the Keshar garden. Seeing the wounded deer near a meditating ascetic, the king was filled with fear. Most probably, these deer belong to this ascetic. The king sought forgiveness for the crime committed out of ignorance.

—Chapter 18, Aphorism 1-7





That homeless ascetic, who had blocked inflow of *karmas*, was deep in meditation in a pavilion of creepers. King Sanjaya killed with arrows the deer which came near the ascetic. (5)

अह आसगओ राया, खिप्यमागम्म सो तहिं।  
हए मिए उ पासित्ता, अणगारं तत्थ पासई ॥ ६ ॥

जहाँ अनगार ध्यानस्थ थे, अश्वारूढ़ राजा संजय शीघ्र ही वहाँ आया। पहले उसने मृत हरिणों को देखा और फिर उसकी दृष्टि अनगार की ओर उठ गई ॥ ६ ॥

Soon king Sanjaya on horseback came where the ascetic was meditating. First he saw the dead deer and then he happened to raise his eyes towards the ascetic. (6)

अह राया तत्थ संभन्तो, अणगारो मणाऽऽहओ।  
मए उ मन्दपुण्णोणं, रसगिद्धेण घन्तुणा ॥ ७ ॥

वहाँ अनगार को देखकर राजा सहसा भयाक्रांत हो गया। वह सोचने लगा—मैं कैसा मन्द-पुण्य, भाग्यहीन, रस-लोलुप और हिंसक हूँ कि मैंने मृगों का वध करके व्यर्थ ही अनगार को पीड़ित किया ॥ ७ ॥

Seeing the ascetic there the king was taken aback with fright. He thought—How demeritorious, ill-fated, obsessed with taste and violent I am that I have killed these deer and hurt the ascetic for nothing. (7)

आसं विसज्जइत्ताणं, अणगारस्स सो निवो।  
विणाएण वन्दए पाए, भगवं ! एत्थ मे खमे ॥ ८ ॥

अश्व को छोड़कर राजा ने विनयपूर्वक अनगार के चरणों में वन्दन किया और कहा—भगवन् ! इस अपराध के लिये मुझे क्षमा प्रदान करें ॥ ८ ॥

Leaving the horse, the king bowed respectfully at the feet of the ascetic and said—Bhante! Please forgive me for this offence. (8)

अह मोणेण सो भगवं, अणगारे झाणमस्सिए।  
रायाणं न पडिमन्तेइ, तओ राया भयदुओ ॥ ९ ॥

किन्तु उस समय वे अनगार भगवन्त मौन के साथ ध्यान में लीन थे। अतः उन्होंने राजा को कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। राजा इससे और अधिक भयाक्रांत हुआ ॥ ९ ॥

But at that time the ascetic was absorbed in deep and silent meditation. As such he did not respond. The silence added to the king's fright. (9)

संजओ अहमस्सीति, भगवं ! वाहराहि मे।  
क्रुद्धे तेएण अणगारे, डहेज्ज नरकोडिओ ॥ १० ॥

भयाक्रान्त राजा नम्रतापूर्वक बोला—भगवन् ! मैं संजय राजा हूँ। आप मुझसे कुछ तो बोलें। क्योंकि कुपित हुए अनगार अपने तपः तेज से करोड़ों मनुष्यों को जलाकर भस्म कर सकते हैं ॥ १० ॥



The frightened king said humbly—Bhante ! I am king Sanjaya. Please say something at least. I am afraid that an ascetic in his wrath can reduce millions of people to ashes. (10)

अभओ पत्थिवा ! तुब्भं, अभयदाया भवाहि य।  
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ? ॥ ११ ॥

( ध्यान पूरा करके अनगार ने कहा— ) हे पृथ्वीपति ! तुमको अभय है; लेकिन तुम भी अभयदाता बनो। इस अनित्य जीवलोक ( जीव ) में तुम क्यों हिंसा में आसक्त हो रहे हो ? ॥ ११ ॥

(Concluding his meditation the great ascetic said—) O lord of the land ! Have no fear from me. But you should also become the fountainhead of fearlessness. In this transient life why get obsessed with violence? (11)

जया सव्वं परिच्चज्ज, गन्तव्वमवसस्स ते।  
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि ? ॥ १२ ॥

जब सब कुछ यहीं छोड़कर तुम्हें विवश होकर चले जाना है तब इस अनित्य जीवलोक में तुम क्यों राज्य में आसक्त बने हुए हो ? ॥ १२ ॥

When you are bound to go away leaving everything here only, then why cling to the kingdom? (12)

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपाय-चंचलं।  
जत्थ तं मुज्झसी रायं !, पेच्चत्थं नावबुज्झसे ॥ १३ ॥

हे राजन्! जिनमें तुम मोहमुग्ध बने हुए हो वह जीवन और सौन्दर्य विद्युत् की चमक के समान चंचल है। तुम अपने परलोक के हित को नहीं समझ रहे हो ॥ १३ ॥

O king ! This life and beauty you are infatuated with are momentary like a flash of lightning. You are still ignorant about your benefits in the next world. (13)

दाराणि य सुया चेंव, मित्ता य तह बन्धवा।  
जीवन्तमणुजीवन्ति, मयं नाणुव्वयन्ति य ॥ १४ ॥

स्त्रियाँ, पुत्र, मित्र तथा बन्धुजन—सभी जीवित व्यक्ति के साथ ही रहते हैं, मरने पर उसके साथ कोई भी नहीं जाता ॥ १४ ॥

Wives, sons, friends and kinfolk give company only to a living person; on death no one gives him company. (14)

नीहरन्ति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया।  
पियरो वि त्हा पुत्ते, बन्धू रायं ! तवं चरे ॥ १५ ॥

अत्यन्त दुःखी होकर पुत्र अपने मृत पिता को बाहर-श्मशान में निकाल देते हैं। इसी प्रकार पिता भी अपने पुत्र को और भाई अपने भाई को निकाल देते हैं। इसलिए हे राजन्! तुम तपश्चरण करो ॥ १५ ॥





Sons move out their father on death (to cremation ground). In the same way fathers move out their sons and brothers move out their brothers. Therefore, O king! You should indulge in austerities. (15)

तओ तेणऽज्जिए दव्वे, दारेय परिरिक्खिए।  
कीलन्तऽन्ने नरा रायं !, तुट्ट-हट्ट-मलंकिया ॥ १६ ॥

हे राजन्! मृत्यु के उपरान्त उस व्यक्ति के उपार्जित धन एवं सुरक्षित स्त्रियों का अन्य व्यक्ति हष्ट, तुष्ट और अलंकृत होकर उपभोग करते हैं ॥ १६ ॥

O king! After the death of a man other people enjoy the wealth earned by him and wives protected by him with delight, satisfaction and flourish. (16)

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं।  
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छई उ परं भवं ॥ १७ ॥

उस व्यक्ति ने जो भी दुःखकारक अथवा सुखकारक कर्म किये हैं, उनको साथ लेकर वह परभव में जाता है ॥ १७ ॥

And that deceased person goes to next existence taking along the *karmas* acquired through his deeds causing misery or joy. (17)

सोऊण तस्स सो धम्मं, अणगारस्स अन्तिए।  
महया संवेगनिव्वेयं, समावन्नो नराहिवो ॥ १८ ॥

अनगार से महान् धर्म को सुनकर संजय राजा के हृदय में तीव्र संवेग और निर्वेद (वैराग्य) उत्पन्न हुआ ॥ १८ ॥

Listening to the great religion from the ascetic, king Sanjaya's mind was overwhelmed with intense aspiration for liberation and a feeling of detachment. (18)

संजओ चइउं रज्जं, निक्खन्तो जिणसासणो।  
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अन्तिए ॥ १९ ॥

राज्य को त्यागकर संजय राजा अनगार भगवान् गर्दभालि के समीप जिनशासन में दीक्षित हो गया ॥ १९ ॥

King Sanjaya renounced his kingdom and got initiated into the Jain order by venerated ascetic Gardabhali. (19)

चिच्चा रट्टं पव्वइए, खत्तिए परिभासइ।  
जहा ते दीसई रूवं, पसन्नं ते तहा मणो ॥ २० ॥

(संजय अनगार एक बार क्षत्रिय राजर्षि से मिला) राष्ट्र को त्यागकर प्रव्रजित हुए क्षत्रिय मुनि ने एक बार संजय राजर्षि से कहा—तुम बाह्य रूप से जैसे प्रसन्न दिखाई देते हो, उसी प्रकार तुम्हारा मन भी प्रसन्न-विकाररहित है ॥ २० ॥



(Ascetic Sanjaya once met a *Kshatriya* ascetic) The *Kshatriya* ascetic, who got initiated after renouncing his nation, said to ascetic Sanjaya—As you appear outwardly so is your heart, happy (free of perversion). (20)

किं नामे? किं गोत्ते?, कस्सद्वाए व माहणे?  
कहं पडियरसी बुद्ध?, कहं विणीए त्ति बुच्चसि ॥ २१ ॥

आपका नाम क्या है? गोत्र क्या है? किस प्रयोजन से आपने मुनिधर्म स्वीकार किया है? किस प्रकार आचार्यों की परिचर्या करते हो? और कैसे विनीत कहलाते हो? ॥ २१ ॥

What is your name? What is your lineage (*gotra*)? For what purpose did you accept ascetic code? How do you serve the preceptors (*acharyas*)? And how are you called modest? (21)

संजओ नाम नामेणं, तहा गोत्तेण गोयमो।  
गद्दभाली ममायरिया, विज्जाचरणपारगा ॥ २२ ॥

(संजय राजर्षि—) मेरा नाम संजय तथा गोत्र गौतम है। ज्ञान और चारित्र के पारगामी अनगार गर्दभालि मेरे आचार्य हैं ॥ २२ ॥

(Ascetic Sanjaya—) My name is Sanjaya and lineage is Gautam. My preceptor is ascetic Gardabhali, who is accomplished in right knowledge and right conduct. (22)

किरियं अकिरियं विणयं, अत्राणं च महामुणी।  
एएहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयन्ने किं पभासई ॥ २३ ॥

(क्षत्रिय राजर्षि—) हे महामुने! क्रिया, अक्रिया, विनय और अज्ञान-इन चार स्थानों (वादों) के द्वारा कुछ एकान्तवादी तत्त्वज्ञ कुत्सित तत्त्व की प्ररूपणा करते हैं ॥ २३ ॥

(*Kshatriya* ascetic—) O great ascetic! Some absolutist scholars (heretics) propagate false doctrines through four schools of philosophy—*Kriya* (action), *akriya* (inaction), *vinaya* (humility) and *ajnaana* (ignorance). (23)

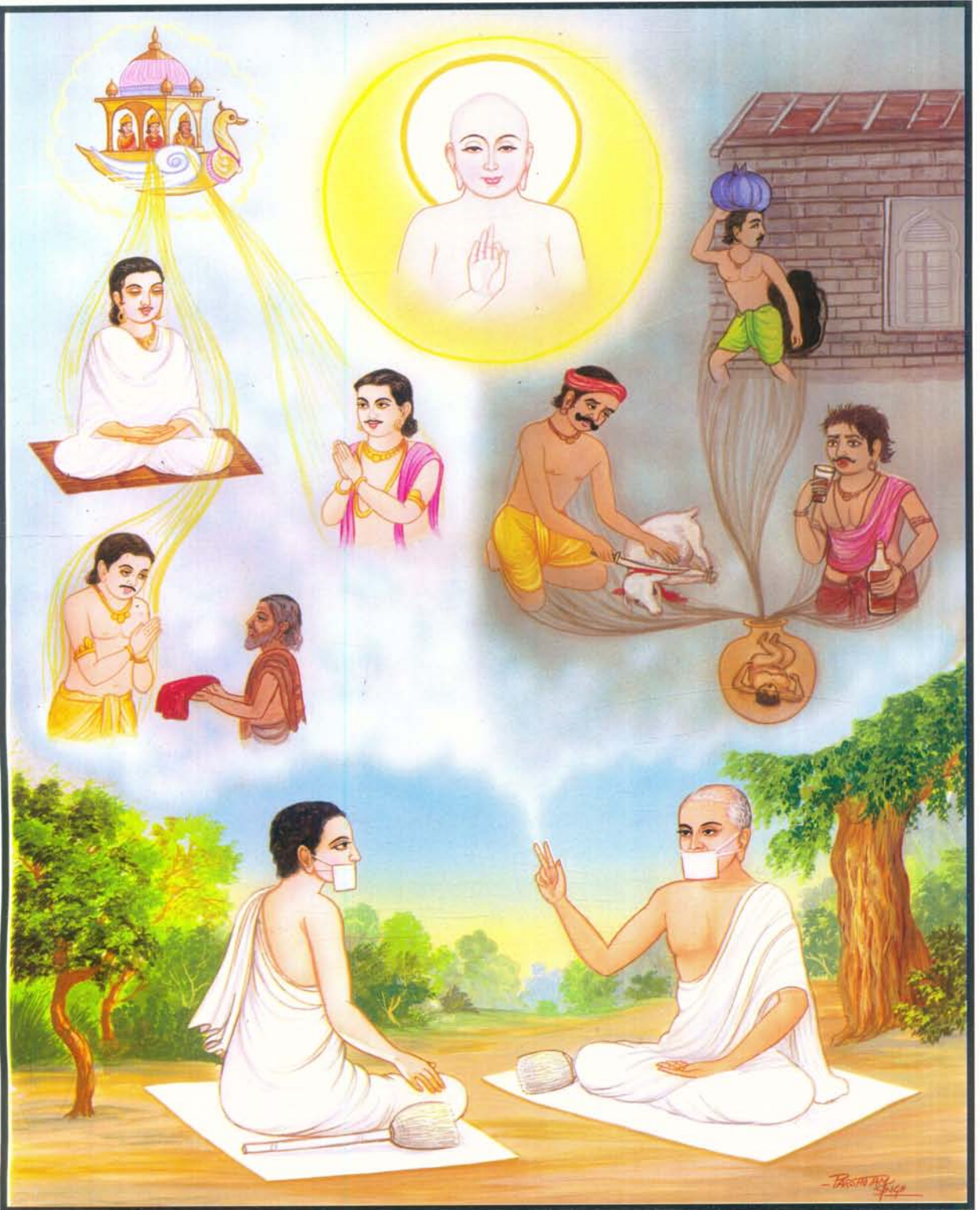
इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुडे।  
विज्जा-चरणासंपन्ने, सच्चे सच्चपरक्कमे— ॥ २४ ॥

बुद्ध-तत्त्वज्ञानी, परिनिर्वृत्त-परिशांत, ज्ञान-चारित्र से संपन्न, सत्यवादी, सत्य पराक्रमी ज्ञातवंशीय भगवान महावीर ने इस प्रकार प्रगट किया है— ॥ २४ ॥

Bhagavan Mahavir of Jnaata lineage, who was enlightened, wise, master of metaphysics, calm, liberated, opulent with right knowledge and conduct, truthful and of right energy, has expressed— (24)

पडन्ति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो।  
दिव्वं च गइं गच्छन्ति, चरित्ता धम्ममारियं ॥ २५ ॥

जो मानव पापकर्म करते हैं वे घोर नरक में गिरते हैं और जो श्रेष्ठ धर्म का आचरण करते हैं वे देवगति में जाते हैं ॥ २५ ॥



## क्षत्रिय मुनि द्वारा प्रतिबोध

क्षत्रिय मुनि ने संजय राजर्षि को बताया-भगवान महावीर ने कहा है, जो मनुष्य, चोरी, हिंसा, मद्य-सेवन आदि पापकर्म करते हैं वे घोर नरक में जाते हैं। ध्यान, दान आदि धर्म का आचरण करने वाले दिव्य गति को प्राप्त करते हैं।

—अध्ययन 18, सू. 25

## THE SERMON OF THE KSHATRIYA ASCETIC

The Kshatriya ascetic said to ascetic Sanjaya – Bhagavan Mahavir has said that the persons who indulge in sinful deeds including theft, violence, and drink liquors, they go to lowest hells and those who indulge in religious activities including meditation and charity attain divine existence.

—Chapter 18, Aphorism Couplet 25





Men who commit sins go to hell and those who observe best religious conduct attain divine rebirth. (25)

मायावृद्धयमेयं तु, मुसाभासा निरस्थिया।  
संजममाणो वि अहं, वसामि इरियामि च ॥ २६ ॥

एकान्तवादियों का कथन कपट से भरा है, मिथ्या है, निरर्थक है। मैं इन असत्य प्ररूपणाओं से निवृत्त और बचकर रहता हूँ ॥ २६ ॥

The doctrine of absolutists is full of deceit, false and meaningless. I live and move about free of and away from these false doctrines. (26)

सव्वे ते विइया मज्झं, मिच्छादिट्ठी अणारिया।  
विज्जमाणे परे लोए, सम्मं जाणामि अप्पगं ॥ २७ ॥

मिथ्यादृष्टि और अनायों को मैंने जान लिया है। परलोक का अस्तित्व होने से मैं अपनी और पराई आत्मा को सम्यक् प्रकार से जानता हूँ ॥ २७ ॥

I have understood these unrighteous and ignoble ones. I know that there is existence of next life and I also know the soul (my own and those of others). (27)

अहमासी महापाणे, जुइमं वरिससओवमे।  
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससओवमा ॥ २८ ॥

मैं पिछले जन्म में पाँचवें देवलोक के महाप्राण विमान में वर्ष शतोपम आयु वाला द्युतिमान देव था। जिस प्रकार यहाँ मानव-जीवन में सौ वर्ष की आयु पूर्ण मानी जाती है उसी प्रकार देवलोक में पल्योपम और सागरोपम की आयु पूर्ण मानी जाती है। ऐसी ही पूर्ण आयु वहाँ मेरी भी थी ॥ २८ ॥

In my previous birth, I was an opulent god in the Mahapraana celestial vehicle of the fifth divine realm having a life-span of Shatopam years. As in this human world a life-span of one hundred years is taken to be full life, in the same way the life-span of Palyopam and Sagaropam (units of metaphoric time scale) is taken to be full life. Such was my life-span too. (28)

से चुए बम्भलोगाओ, माणुस्सं भवमागए।  
अप्पणो य परेसिं च, आउं जाणे जहा तहा ॥ २९ ॥

मैं ब्रह्मलोक से अपनी आयु पूर्ण होने पर इस मनुष्यलोक में आया हूँ। जिस प्रकार मैं अपनी आयु को जानता हूँ उसी प्रकार अन्यो की आयु को भी जानता हूँ ॥ २९ ॥

I have come to this land of humans after completing my life-span in Brahmaloak. As I know my own life-span, so do I also know the life-spans of others. (29)

नाणारुइं च छन्दं च, परिवज्जेज्ज संजए।  
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ॥ ३० ॥

अनेक प्रकार की रुचि, मनःकल्पित अभिप्राय और प्रयोजनशून्य व्यापारों का परित्याग करके संयतात्मा मुनि इस तत्त्वज्ञान रूपी विद्या का अनुसरण करता है ॥ ३० ॥



Abandoning manifold interests, fancies and purposeless activities the restrained ascetic follows this knowledge of metaphysics. (30)

पडिक्कमामि पसिणाणं, परमन्तेहिं वा पुणो।  
अहो उट्टिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे ॥ ३१ ॥

मैं शुभाशुभ फल बताने वाले प्रश्नों और गृहस्थों की मंत्रणाओं से पृथक् रहता हूँ। अहो! रात-दिन धर्माचरण के लिये मुझे तत्पर जानकर तुम भी तप का आचरण करो ॥ ३१ ॥

I remain away from superstitions and augury as well as conspiracies of householders. Hey! Knowing that day or night I am ever indulgent in religious conduct, you too practice austerities. (31)

जं च मे पुच्छसी काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा।  
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे ॥ ३२ ॥

तुमने जो मुझसे सम्यक् शुद्ध चित्त से काल (आयु) के विषय में प्रश्न किया है, वह सर्वज्ञ ने प्रकट किया है तथा वह जिनशासन में है ॥ ३२ ॥

The question you have asked me about time (age) with pure heart has been answered by the omniscient and that knowledge is available in Jain order. (32)

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिवज्जए।  
दिट्ठीए दिट्ठिसंपन्ने, धम्मं चर सुदुच्चरं ॥ ३३ ॥

धीर पुरुष क्रिया में रुचि रखता है और अक्रिया का परित्याग करता है। सम्यग्दर्शन से दृष्टि-सम्पन्न होकर अति दुश्चर श्रुत-चारित्र्य धर्म का आचरण करो ॥ ३३ ॥

A person stabilized in wisdom has belief in existence of soul (*kriya*) and he rejects the heretic view of non-existence of soul (*akriya*). Being endowed with right perception/faith practise the difficult-to-follow religious order (of knowledge and conduct). (33)

एयं पुण्णपयं सोच्चा, अत्थ-धम्मोवसोहियं।  
भरहो वि भारहं वासं, चेच्चा कामाइ पव्वए ॥ ३४ ॥

अर्थ (मोक्ष-प्राप्ति का लक्ष्यभूत उद्देश्य) और धर्म से उपशोभायमान इस पुण्यपद-पवित्र उपदेश वचन को सुनकर भरत चक्रवर्ती सम्पूर्ण भरत क्षेत्र के राज्य और कामभोगों को त्यागकर प्रव्रजित हुए थे ॥ ३४ ॥

Hearing this pious exhortation impregnated with meaning (goal of attaining liberation) and righteousness, emperor Bharat had renounced the empire of the whole Bharat area as well as pleasures and comforts to get initiated in the order. (34)

सगरो वि सागरन्तं, भारहवासं नराहिवो।  
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाए परिनिव्वुडे ॥ ३५ ॥

नराधिप सगर चक्रवर्ती सागर पर्यन्त भारतवर्ष के राज्य तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्य को त्यागकर दया-संयम की साधना द्वारा परिनिर्वृत्त-मुक्त हुए ॥ ३५ ॥



Emperor Sagar, the ruler of men, renounced the empire of India right up to the ocean and all his grandeur in order to practice ascetic-discipline (the code of compassion) that finally led to liberation. (35)

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्डओ ।  
पव्वज्जमभ्भुवगओ, मघवं नाम महाजसो ॥ ३६ ॥

महाऋद्धि-सम्पन्न, महायशस्वी मघवा चक्रवर्ती ने भी भारतवर्ष के राज्य को त्यागकर प्रव्रज्या स्वीकार की थी ॥ ३६ ॥

Endowed with great fortune and fame, emperor Maghavaa also accepted initiation renouncing the empire of Bharatavarsh. (36)

सणकुमारो मणुस्सिन्दो, चक्कवट्टी महिड्डओ ।  
पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं, सो वि राया तवं चरे ॥ ३७ ॥

महर्द्धिक, मानवेन्द्र सनत्कुमार चक्रवर्ती भी अपने पुत्र को राजसिंहासन देकर तपश्चर्या में लीन हो गये थे ॥ ३७ ॥

Highly glorious ruler of men, emperor Sanatkumar also gave his empire to his son and got engrossed in austerities. (37)

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी महिड्डओ ।  
सन्ती सन्तिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ३८ ॥

महान् ऋद्धि के स्वामी और लोक में शांति करने वाले शांतिनाथ (तीर्थंकर) चक्रवर्ती ने भी संपूर्ण भारतवर्ष के राज्य का त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण की तथा अनुत्तर गति-सिद्धिगति प्राप्त की ॥ ३८ ॥

Very prosperous emperor Shantinaath (Tirthankar also) who spread peace in the world, also renounced the empire of whole Bharatavarsh, got initiated and attained the loftiest state of liberation. (38)

इक्खागरायवसभो, कुन्थू नाम नराहिवो ।  
द्विक्खायकित्ती धिइमं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ३९ ॥

इक्ष्वाकु-कुल के राजाओं में श्रेष्ठ, विख्यात कीर्ति वाले भगवान् कुन्थुनाथ नरेश्वर-चक्रवर्ती ने प्रव्रज्या ग्रहण कर अनुत्तर सिद्धिगति प्राप्त की ॥ ३९ ॥

Best among the kings of Ikshvaaku clan and having wide fame, emperor Kunthunath (Tirthankar also) too got initiated and attained the loftiest state of liberation. (39)

सागरन्तं जहित्ताणं, भरहं नरवरीसरो ।  
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४० ॥

समुद्र पर्यन्त भारतवर्ष के राज्य को त्यागकर कर्मरज को दूर करके नरों में श्रेष्ठ अरनाथ चक्रवर्ती ने मोक्ष गति प्राप्त की ॥ ४० ॥



Renouncing the ocean-reaching empire of Bharatavarsh and shedding the dirt of *karmas*, emperor Aranaath, the best among men, also attained liberation. (40)

चइत्ता भारहं वासं, चक्कवट्टी नराहियो ।  
चाइत्ता उत्तमे भोए, महापउमे तवं चरे ॥ ४१ ॥

भारतवर्ष के विशाल राज्य तथा उत्तमोत्तर भोगों को त्यागकर महर्द्धिक चक्रवर्ती महापद्म नरेश्वर ने तप का आचरण किया था ॥ ४१ ॥

Renouncing the large empire of Bharatavarsh and exquisite regal comforts, glorious emperor Mahapadma took to the path of austerities. (41)

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महिं माणनिसूरणो ।  
हरिसेणो मणुस्सिन्दो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४२ ॥

शत्रु राजाओं का मान मर्दन करने वाले हरिषेण चक्रवर्ती ने पृथ्वी का एकच्छत्र शासन किया और फिर सर्वस्व त्यागकर संयम ग्रहण किया तथा मुक्ति प्राप्त की ॥ ४२ ॥

Emperor Harishena, the humbler of all hostile kings, brought the whole earth under his rule and then renouncing everything, he accepted ascetic-discipline to attain liberation. (42)

अन्निओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे ।  
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४३ ॥

सहस्रों राजाओं के साथ श्रेष्ठ त्यागी जय चक्रवर्ती ने राज्य का परित्याग किया और जिनोक्त संयम का आचरण करके मुक्ति प्राप्त की ॥ ४३ ॥

Highly generous emperor Jaya renounced his empire and following the ascetic conduct propagated by Jinas, along with thousands of kings, attained liberation. (43)

दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ताण मुणी चरे ।  
दसण्णभद्दो निक्खन्तो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥ ४४ ॥

साक्षात् शक्रेन्द्र द्वारा प्रेरित हुए दशार्णभद्र राजा ने प्रमुदित मन से अपने दशार्ण देश को छोड़कर प्रब्रज्या ग्रहण की और मुनिधर्म का आचरण किया ॥ ४४ ॥

Inspired by Shakra (the king of gods) himself, king Dashaarnabhadr, the ruler of Dashaarna country, renounced his kingdom gladly, got initiated and followed the ascetic-conduct. (44)

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ ।  
चइरुण गेहं वइदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥ ४५ ॥

विदेहराज नमि राजर्षि ने साक्षात् इन्द्र द्वारा प्रेरित किये जाने पर भी अपना राजभवन और सम्पूर्ण राज्य छोड़कर अपनी आत्मा को नमित किया और श्रमणत्व में सम्पूर्ण रूप से स्थिर हो गये ॥ ४५ ॥

King Nami, the ruler of Videha country, bowed to his own soul, as inspired by Shakra, the king of gods, renounced his kingdom and zealously embraced asceticism. (45)





करकण्डू कलिंगेसु, पंचालेसु य दुम्मुहो ।  
नमी राया विदेहेसु, गन्धारेसु य नगई— ॥ ४६ ॥

कलिंग देश में करकण्डु, पंचाल देश में राजा द्विमुख, विदेह राज्य में नमिराज और गांधार देश में नगति राजा— ॥ ४६ ॥

King Karakandu of Kalinga country, king Dvimukha of Panchal country, king Nami of Videha country and king Naggati of Gandhar country— (46)

एए नरिन्दवसभा, निक्खन्ता जिणसासणे ।  
पुत्ते रज्जे ठवित्ताणं, सामण्णे पज्जुवट्ठया ॥ ४७ ॥

ये सभी राजाओं में उत्तम, वृषभ के समान श्रेष्ठ थे। इन चारों राजाओं-प्रत्येकबुद्धों ने अपने-अपने पुत्रों को राज्य-भार दिया और प्रव्रजित होकर मुनिधर्म में सर्वरूपेण स्थिर हो गये ॥ ४७ ॥

All these four kings were best, like a bull, among rulers. All these four kings (self-enlightened ones) entrusted their kingdoms to their sons, got initiated and whole-heartedly embraced asceticism. (47)

सोवीररायवसभो, चेच्चा रज्जं मुणी चरे ।  
उद्दायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥ ४८ ॥

राजाओं में वृषभ के समान श्रेष्ठ सौवीर नरेश उदायन ने राज्य का त्याग करके दीक्षा ग्रहण की, मुनिधर्म का आचरण किया और मुक्ति प्राप्त की ॥ ४८ ॥

King Udayan, the ruler of Sauvira region and best, like a bull, among all rulers, renounced his kingdom, got initiated, followed the ascetic-conduct and attained liberation. (48)

तहेव कासीराया, सेओ-सच्चपरक्कमे ।  
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं ॥ ४९ ॥

इसी प्रकार श्रेय और सत्य में पराक्रमी काशी-नरेश ने कामभोगों का त्यागकर कर्मरूपी महावन को भस्म कर दिया ॥ ४९ ॥

In the same way the king of Kashi, valorous in virtues and truth, renounced all comforts and turned the great forest of *karmas* to ashes. (49)

तहेव विजओ राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए ।  
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो ॥ ५० ॥

अमर कीर्तिधारी, महायशस्वी, गुण समृद्ध विजय राजा राज्य को तृणवत् त्यागकर प्रव्रजित हो गया ॥ ५० ॥

Endowed with endless glory and great fame and wealth of virtues, king Vijaya abandoned his kingdom like a piece of straw and got initiated. (50)

तहेवुगं तवं किच्चा, अब्बक्खित्तेण चेयसा ।  
महाबलो रायरिसी, अद्दाय सिरसा सिरं ॥ ५१ ॥



इसी तरह अव्याकुल मन से उग्र तपश्चर्या करके राजर्षि महाबल ने सिर देकर-अहंकार का त्याग कर सिरशीर्ष स्थान मोक्ष प्राप्त किया ॥ ५१ ॥

In the same way practicing rigorous austerities with an undisturbed mind, king Mahabal sacrificed head (pride) to acquire head (the loftiest status of the liberated). (51)

कहं धीरो अहेऊहिं, उम्पत्तो व्व महिं चरे ?  
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥ ५२ ॥

ये भरत आदि शूरवीर दृढ़ पराक्रमी राजा जिनशासन में विशेषता जानकर ही प्रव्रजित हुये थे। अहेतुवादों से प्रेरित होकर अब कोई धीर पुरुष उम्पत्तों के समान पृथ्वी पर कैसे विचरण करे ? ॥ ५२ ॥

All these brave and resolutely valorous kings, including Bharat and others, got initiated into the Jain order only after being well aware of the unique excellence of Jainism. Now, how can a serene wise man move about on this earth like a mad man devoid of reason ? (52)

अच्चन्तनियान्णखमा, सच्चा मे भासियावई ।  
अतरिंसु तरन्तेगे, तरिस्सन्ति अणागया ॥ ५३ ॥

मैंने यह अत्यन्त निदानक्षम-पूर्ण रूप से आत्म-शुद्धि करने वाली सत्य वाणी कही है। इस वाणी को धारण करके अतीतकाल में अनेक व्यक्ति संसार-समुद्र से पार हो गये हैं, वर्तमान में पार हो रहे हैं और भविष्य में भी पार होंगे ॥ ५३ ॥

I have uttered the truth that is capable of purifying the soul. Accepting (and following) this (the sermon) many have crossed the ocean of worldly existence in the past, are crossing it at present and will cross it in future too. (53)

कहं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे ?  
सव्वसंगविनिम्मक्के, सिद्धे हवइ नीरण ॥ ५४ ॥

—त्ति बेमि ।

धीर साधक एकान्तवादी अहेतुवाद में अपनी आत्मा को कैसे लगा सकता है? जो सभी प्रकार के संगों-सम्बन्धों से विनिर्मुक्त होता है, वह कर्ममल से रहित होकर सिद्ध होता है ॥ ५४ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

How can a serene aspirant involve his soul with the unreasonable (*ahetu*)? One who is free from all worldly ties becomes free from all the *karmic*-dirt and attains the state of perfection (Siddha-hood or liberation). (54)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा २३—प्राचीन युग में दार्शनिक विचारधारा के चार प्रमुख वाद थे—(१) क्रियावाद, (२) अक्रियावाद, (३) अज्ञानवाद, और (४) विनयवाद। सूत्रकृतांग के अनुसार इन चारों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है—

(१) क्रियावादी—आत्मा के अस्तित्व को तो मानते थे, पर उसके सर्वव्यापक या अव्यापक, कर्ता या अकर्ता, मूर्त या अमूर्त आदि स्वरूप के सम्बन्ध में संशय रखते थे।

(२) अक्रियावादी—आत्मा के अस्तित्व को ही नहीं मानते थे। अतः उनके यहाँ पुण्य, पाप, लोक, परलोक, संसार और मोक्ष आदि की कोई भी मान्यता नहीं थी। यह प्राचीन युग की नास्तिक परम्परा है।

(३) अज्ञानवादी—अज्ञान से ही सिद्धि मानते थे। उनके मत में ज्ञान ही सारे पापों का मूल है, सभी द्वन्द्व ज्ञान में से ही खड़े होते हैं। ज्ञान के सर्वथा उच्छेद में ही उनके यहाँ मुक्ति है।

(४) विनयवादी—एकमात्र विनय से ही मुक्ति मानते थे। उनके विचार में देव, दानव, राजा, रंक, तपस्वी, भोगी, हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, शृगाल आदि हर किसी मानव एवं पशु-पक्षी आदि को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने से ही क्लेशों का नाश होता है।

क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६७ और विनयवादियों के ३२ भेद थे। इस प्रकार कुल मिलाकर ३६३ पाषण्ड थे।

गाथा २८—क्षत्रिय मुनि के कहे हुये “दिव्यवर्षशतोपम” का भाव यह है कि जैसे मनुष्य यहाँ वर्तमान में लोकदृष्टि से सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगता है, वैसे ही मैंने वहाँ देवलोक में दिव्य सौ वर्ष की आयु का भोग किया है।

“पाली” से पल्योपम और “महापाली” से सागरोपम अर्थ किया जाता है। “पाली” साधारण जलाशय से उपमित है और “महापाली” सागर से।

पल्योपम (एक योजन के ऊँचे और विस्तृत पल्य, बोरु आदि या कूप) को सात दिन के जन्म लिये बालक के बारीक केशों से (केश के अग्र भागों से) ठसाठस भर दिया जाय, फिर सौ-सौ वर्ष के बाद क्रम से एक-एक केशखण्ड को निकाला जाये। जितने काल में वह पल्य अर्थात् कुआँ रिक्त हो, उतने काल को एक पल्य कहते हैं। इस प्रकार के दस कोड़ाकोड़ी पल्यों का एक सागर होता है। सागर अर्थात् समुद्र के जलकणों जितना विराट्, तम्बा काल-चक्र। यह एक उपमा है, अतः इसे पल्योपम और सागरोपम भी कहते हैं।

अध्ययन में वर्णित प्राचीन राजाओं का कथानक उत्तराध्ययन महिमा में देखें। संक्षिप्त सूचना चित्रों में दी है।

गाथा ५१—“सिरसा सिर” का अर्थ है—शिर देकर शिर लेना। अर्थात् जीवन की कामना से मुक्त रहकर मानव शरीर में सर्वोपरिस्थ शिर के समान सर्वोपरिवर्ती मोक्ष को प्राप्त करना।



## IMPORTANT NOTES

**Verse 23**—In ancient times there were four schools of philosophy—1. Kriyavada, 2. Akriyavada, 3. Ajnanavada, and 4. Vinayavada. According to *Sutrakritanga* they are as follows—

(1) **Kriyavada**—This school accepted the existence of soul, but they were suspicious about its attributes like all pervading or non-pervading, doer or non-doer, with form or formless etc.

(2) **Akriyavada**—This school did not accept even the existence of soul. Therefore it was devoid of concepts like merit-demerit, this world, next world, cycles of rebirth, liberation etc. This was the agnostic school of the remote past.

(3) **Ajnanavada**—This school believed in liberation only through ignorance. Its view was that knowledge is the root cause of all sins. All disputes have their origin in knowledge. Liberation is attained by completely uprooting knowledge.

(4) **Vinayavada**—This school believed in liberation only through modesty and humility. According to this school all miseries are removed only by respectful salutation of gods, demons, kings, poor, hermits, sensual pleasure seekers, elephants, horses, cows, buffaloes, jackals; in other words the goal of liberation is attained only through paying homage with devotion to all divine beings, humans, animals or birds.

There were 180 sub-sects of Kriyavada, 84 of Akriyavada, 64 of Ajnanavada and 32 of Vinayavada. Thus total number of the heretic sects was 363.

**Verse 28**—The meaning of the phrase '*Divyavarshashatopam*', as told by *Kshatriya* ascetic, is that as in popular belief the complete life-span of a human being is one hundred years, in the same way the complete life-span of a god is also one hundred divine-years.

'*Paali*' is interpreted as Palyopam and *Mahapaali* as Sagaropam (units of metaphoric scale of time). *Paali* is ordinary water body like a pond and *Mahapaali* as an enormous water body like an ocean.

**Palyopam**—A large pit of one Yojan (eight miles) volume is packed with tips of hair grown in one to seven days. Once filled, it is emptied by taking out one hair-tip every hundred years. The total time taken in emptying the pit thus is called one Palyopam. Ten koda-kodi (ten million multiplied by ten million) Palyopams make one Sagaropam (for detailed description of metaphoric time scale refer to *Illustrated Anuyogadvar Sutra*, Part II, p. 157). Thus *sagar* is a unit of time as enormous as the number of water drops in an ocean. It is a metaphor or *upama*. Therefore these units are called *palyopam* (like a well or pit) and *sagaropam* (like an ocean).

**Note**—For the stories of the kings mentioned in this chapter refer to *Uttaradhyayan Mahima*. Brief details are given in illustrations.

**Verse 51**—The term *sirasaa sira* means to sacrifice head in order to gain head. The indication is that he sacrificed head (pride) to acquire head (the loftiest status of the liberated).



## उन्नीसवाँ अध्यायन : मृगापुत्रीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम सुग्रीव नगर के राजा बलभद्र और उनकी रानी मृगावती के सुपुत्र युवराज मृगापुत्र के नाम पर निर्धारित किया गया है। युवराज का नाम बलश्री था किन्तु मृगापुत्र नाम से वह अधिक विश्रुत था।

पिछले अध्ययनों से इस अध्ययन में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें नरक और नरक के दुःखों का अनुभूत वर्णन हुआ है।

एक बार युवराज मृगापुत्र अपने महल के गवाक्ष में बैठा नगर की चहल-पहल देख रहा था। उसकी दृष्टि में एक मुनि आते हैं। मुनि के तेजस्वी ललाट और तपस्या से कृश दुर्बल शरीर को देखकर उसका चिन्तन गहरा होता है, उसे जातिस्मरण ज्ञान (पिछले जन्मों का ज्ञान) हो जाता है कि पिछले जन्म में मैं भी इसी प्रकार एक श्रमण था।

बस, पूर्व-जन्म की स्मृति के कारण उसका मन संसार से विरक्त हो जाता है। माता-पिता से दीक्षा की अनुमति माँगता है। माता-पिता के यह कहने पर कि श्रमणाचार का पालन करना तलवार की धार पर चलना है। उत्तर में मृगापुत्र बताता है कि मेरी आत्मा ने नरकों में ऐसे कष्ट भोगे हैं, जिनका शतांश भी इस मानव-लोक में नहीं है।

और फिर वह नरक के दुःखों का वर्णन करता है। यह वर्णन इतना सजीव, रोमांचकर और भयप्रद है कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। नारकीय यातनाओं को पढ़कर शरीर में सिहरन भर जाती है, हृदय काँपने लगता है। (चित्र देखें)

माता-पिता अपने पुत्र को दीक्षित होने से रोकने का अन्तिम प्रयास करते हैं कि श्रमणत्व धारण करने के पश्चात् यदि कोई रोग हो जाता है तो उसकी चिकित्सा नहीं कराई जाती।

मृगापुत्र इसका यथास्तथ्य उत्तर देता है कि वन में मृगों के रोगी होने पर उनकी चिकित्सा भी कोई नहीं कराता, वे स्वयं ही स्वस्थ हो जाते हैं। मैं भी मृगचर्या करूँगा।

पुत्र के दृढ़ संकल्प और तीव्र वैराग्य को जानकर माता-पिता ने दीक्षा की अनुमति दे दी। दीक्षित होकर मृगापुत्र ने उत्कृष्ट तपःसाधना करके मुक्ति प्राप्त की।

प्रस्तुत अध्ययन में ९९ गाथाएँ हैं।



## EKONAVIMSH ADHYAYAN : MRIGAPUTRIYA

### Foreview

The title of this chapter is based on the name, Mrigaputra, of the son of king Balabhadra, of Sugrivanagar and queen Mrigavati. Though the name of the crown-prince was Balashri but he was popularly known as Mrigaputra (Mriga's son).

This chapter stands out because it contains lucid description of the hells and the torments therein.

Once, prince Mrigaputra was watching the activities of the city folk from the balcony of his palace. His glance fell on an ascetic. Seeing the glowing forehead and lean body, emaciated due to austerities, he went deep into contemplation. In the process he attained *Jatismaran Jnana* (the memories of past births) and recollected that during his preceding birth he too was an ascetic like this one.

Those memories evoked in him feelings of detachment for the mundane world. He sought permission from his parents to get initiated. When parents said that to practise ascetic conduct is like walking on razor's edge, Mrigaputra informed them that the torments of the human world are not even as bad as a hundredth part of the severe torments his soul has already suffered in hells.

And then he launched the description of infernal torments. This description is very lucid, romantic, fearful and hair-raising. On reading this description of infernal agonies a shiver runs through the body and the heartbeats go fast. (see illustration).

Parents make their last effort with the argument that if one gets sick after initiation then no treatment can be given.

Mrigaputra says in reply that no one provides cure to deer when they fall sick in forest. They get cured on their own. He will also follow the way of deer (*mrigacharya*).

The parents finally yielded to the firm resolve of their son and gave their consent. After getting initiated, Mrigaputra observed rigorous austerities and attained liberation.

The chapter has 99 verses.





**दुबूणविंशइमं अज्झयणं : मियापुत्तिज्जं**  
**एकोनविंश अध्यायन : मृगापुत्रीय**  
**Chapter-19 : MRIGAPUTRA (Mriga's Son)**

सुग्रीवे नयरे रम्मे, काणणुज्जाणसोहिए।  
 राया बलभदे त्ति, मिया तस्सज्जमाहिसी ॥ १ ॥

वनों और उद्यानों से शोभायमान सुरम्य सुग्रीव नगर में बलभद्र नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मृगा था ॥ १ ॥

Adorned by gardens and parks, there was a pleasant city named Sugriivanagar where king Balabhadra ruled. The name of his queen was Mriga. (1)

तेसिं पुत्ते बलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए।  
 अम्मापिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥ २ ॥

उनके बलश्री नाम का एक पुत्र था जो मृगापुत्र के नाम से विख्यात था। वह माता-पिता को अतिप्रिय था। वह युवराज तथा दमीश्वर (शत्रुओं का दमन करने वालों में प्रमुख) था ॥ २ ॥

They had a son named Balashri, but he was popularly known as Mrigaputra (Mriga's son). He was beloved of his parents. He was the crown-prince and also the foremost vanquisher of enemies. (2)

नन्दणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं।  
 देवो दोगुन्दगो चेव, निच्चं मुइयमाणसो ॥ ३ ॥

वह सदा दोगुन्दक देवों के समान प्रसन्नचित्त रहकर आनन्ददायक महल में निवास करता हुआ अपनी रमणियों के साथ क्रीड़ा में निमग्न रहता था ॥ ३ ॥

He lived happily like Dogundak gods (licentious gods) in a comfortable palace and was ever busy in playful enjoyments with his wives. (3)

मणिरयणकुट्टिमतले, पासायालोयणट्टिओ।  
 आलोएइ नगरस्स, चउक्क-तिय-चच्चरे ॥ ४ ॥

एक दिन मृगापुत्र मणि-रत्नों से जड़े फर्श वाले प्रासाद-महल के गवाक्ष में बैठा नगर के चौराहों, तिराहों और चौहट्टों पर होने वाले कुतूहलों को देख रहा था ॥ ४ ॥

One day, sitting in the balcony of his palace with gem studded floor, Mrigaputra was watching the exciting clamour on squares, crossings and trisections of the city. (4)

अह तत्थ अइच्छन्तं, पासई समणसंजयं।  
 तव-नियम-संजमधरं, सीलइढं गुणआगरं ॥ ५ ॥



उसने वहाँ राजपथ पर गमन करते हुये तप-नियम-संयम के धारक, शील संपन्न, गुणों के आकर संयमी श्रमण को देखा ॥ ५ ॥

There, he chanced seeing a disciplined ascetic, endowed with austerities, codes, restraint, chastity and heaps of other virtues, walking on the highway. (5)

तं देहई मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाए उ।  
कहिं मन्नेरिसं रूवं, दिट्ठपुब्बं मए पुरा ॥ ६ ॥

श्रमण को मृगापुत्र अपलक दृष्टि से देखता हुआ विचार करता है—मैं मानता हूँ कि ऐसा रूप इससे पूर्व भी मैंने कहीं देखा है ॥ ६ ॥

Looking at the ascetic with unblinking eyes, Mrigaputra thought—I believe I have come across such appearance somewhere in the past. (6)

साहुस्स दरिसणे तस्य, अज्झवसाणांमि सोहणे।  
मोहं गयस्स सन्तस्स, जाईसरणं समुप्पन्नं ॥ ७ ॥

साधु के दर्शन तथा उसके उपरान्त शुद्ध अध्यवसायों से ऊहापोह करने पर उसे जातिस्मरण ज्ञान समुत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥

Beholding the ascetic and then pondering over pious objectives, he was blessed with *Jatismaran jnana* (memories of past births). (7)

देवलोग-चुओ संतो, माणुस्सं भवमागओ।  
सन्निनाणे समुप्पण्णे, जाई सरइ पुराणयं ॥ ८ ॥

संज्ञिज्ञान-जातिस्मरण ज्ञान होने पर उसे अपने पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया कि मैं देवलोक से च्यवित होकर इस मनुष्य-भव में आया हूँ ॥ ८ ॥

When endowed with *Jatismaran jnana* he became aware of the fact that he was born as a human being only after his descent from the divine realm. (8)

जाइसरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए।  
सरई पौराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ॥ ९ ॥

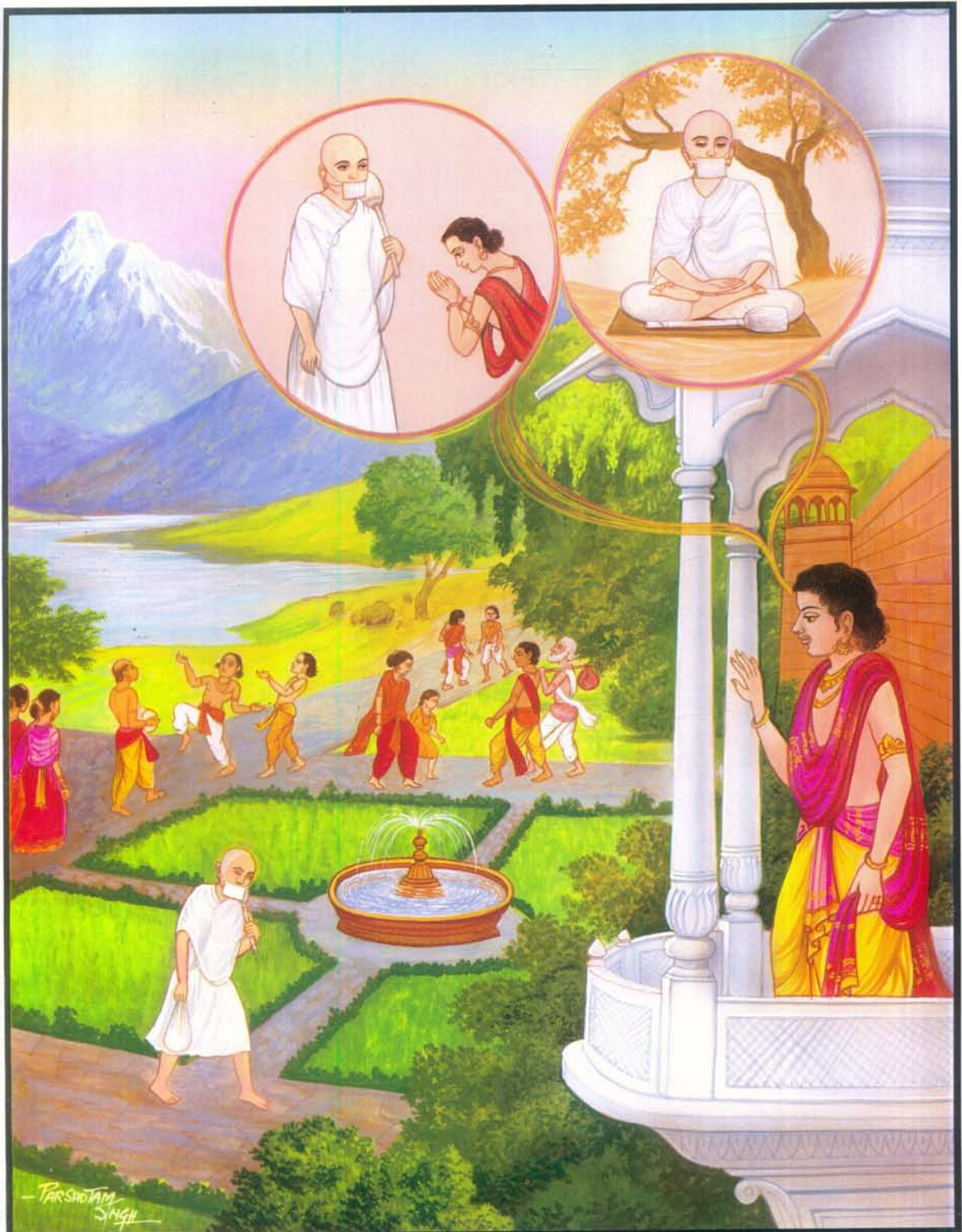
जातिस्मरण ज्ञान समुत्पन्न होते ही महान् राज्य ऋद्धि वाले मृगापुत्र को पूर्व-जन्म में आचरित श्रमण धर्म का ज्ञान हो गया ॥ ९ ॥

Due to *Jatismaran jnana* Mrigaputra, the lord of a very prosperous kingdom, recalled the knowledge of the ascetic conduct (Jainism) he practiced during a past birth. (9)

विसएहि अरज्जन्तो, रज्जन्तो संजमम्मि य।  
अम्मापियरं उवागम्म, इमं वयणमब्बवी— ॥ १० ॥

विषयों से विरक्त और संयम में अनुरक्त मृगापुत्र माता-पिता के समीप आया और उनसे इस प्रकार कहने लगा— ॥ १० ॥





- PARSHOTAM SINGH

## मृगापुत्र

राजमहलों के गवाक्ष में खड़ा मृगापुत्र राजपथ पर नगर की हलचलें देख रहा था कि एक तपस्वी संयमी श्रमण को आते हुये अनिमेष निहारने लगा। वह विचारों में गहरा खो गया तो उसे जातिस्मरण ज्ञान हुआ। पूर्व-जन्म में आचरित मुनिधर्म का वह साक्षात् अनुभव करने लगा।

—अध्यायन 19, सू. 1-9

## MRIGAPUTRA

Mrigaputra was watching the activities on highway standing in the balcony of his palace. He saw an austere ascetic and fixed his gaze on the approaching sage. He went deep in his thoughts and acquired Jati-smaran jnana (memories of the past births). He began to experience vividly the ascetic life he led during his past birth.

—Chapter 19, Aphorism 1-9





Getting detached from sensual pleasures and inclined to practice of restraint, Mrigaputra approached his parents and said— (10)

सुयाणि मे पंच महव्वयाणि, नरएसु दुक्खं च तिरिक्खजोणिसु।  
निव्विण्णकामो मि महण्णवाओ, अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ! ॥ ११ ॥

(मृगापुत्र—) मैंने पाँच महाव्रतों को सुना है। नरक और तिर्यच योनियों के दुःख भी मैं जानता हूँ। संसाररूपी महासागर से विरक्त हो गया हूँ, मुझे कामभोगों की अभिलाषा नहीं रही है। मैं अब प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा। हे माता ! मुझे अनुमति दो ॥ ११ ॥

(Mrigaputra—) I have heard about five great vows. I also know the torments and sufferings of infernal and animal existences. I have become detached from the ocean of cycles of rebirth and have no desire of mundane pleasures and comforts. Now I will get initiated. O mother! Please give me your consent. (11)

अम्मताय ! मए भोगा, भुत्ता विसफलोवमा।  
पच्छा कडुयविवागा, अणुबन्ध-दुहावहा ॥ १२ ॥

हे माता-पिता ! मैं भोगों को भोग चुका हूँ। ये विषफल के समान हैं। बाद में कटुविपाक वाले और निरन्तर दुःख देने वाले हैं ॥ १२ ॥

Mother and father! I have enjoyed pleasures and comforts. These are like poisonous fruits. They have bitter consequences and cause misery incessantly. (12)

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं।  
असासयावासमिणं, दुक्ख-केसाण भायणं ॥ १३ ॥

यह शरीर अनित्य है, अपवित्र है, अशुचि से उत्पन्न हुआ है तथा अशुचि—मल-मूत्र आदि का उत्पत्ति स्थान है। इसमें आत्मा का आवास अशाश्वत है तथा यह शरीर दुःखों और क्लेशों का भाजन है ॥ १३ ॥

This body is transient, impure, born out of filth as well as a source of filth including stool and urine. Existence of soul in this body is transitory and this body is the vessel of miseries and sufferings. (13)

असासए सरीरम्मि, रइं नोवलभामहं।  
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुय-सन्निभे ॥ १४ ॥

पहले या पीछे इसे छोड़ना ही है। यह शरीर पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है; अतः इसमें मुझे सुख की प्राप्ति नहीं हो रही है ॥ १४ ॥

Sooner or later it has to be abandoned. This body is momentary like a water-bubble; as such, I do not derive any happiness from it. (14)

माणुसत्ते असारम्मि, वाही-रोगाण आलए।  
जरा-मरणघत्थम्मि, खणं पि न रमामऽहं ॥ १५ ॥



रोगों और व्याधियों के घर तथा जरा और मरण से ग्रसित इस असार मानव-शरीर में मुझे एक क्षण भी सुख प्राप्त नहीं हो रहा है ॥ १५ ॥

Abode of sickness and diseases, maligned by old age and death, this human body fails to make me happy even for an instant. (15)

जम्मं दुक्खं जरा दुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।  
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसन्ति जन्तवो ॥ १६ ॥

जन्म दुःख है, वृद्धता दुःख है, रोग और मरण का दुःख है। यह सम्पूर्ण संसार ही दुःखमय है, जहाँ जीव क्लेश ही पाते हैं ॥ १६ ॥

Birth is misery, old age is sorrow and so are disease and death. In fact this whole world is full of miseries where the souls suffer distress. (16)

खेत्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्त-दारं च बन्धवा ।  
चाइत्ताणं इमं देहं, गन्तव्वमवसस्स मे ॥ १७ ॥

क्षेत्र-खुली भूमि, वास्तु-मकान, स्वर्ण, पुत्र, स्त्री तथा बन्धुजन और इस शरीर को भी छोड़कर एक दिन मुझे यहाँ से लाचार होकर चला जाना है ॥ १७ ॥

Abandoning the fields, buildings, gold, son, wife, kin and even this body, I have to helplessly go from here. (17)

जहा किम्पागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।  
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो ॥ १८ ॥

जिस प्रकार किम्पाक फल-विषफल का परिणाम सुन्दर नहीं होता, उसी प्रकार भोगे हुए भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता ॥ १८ ॥

As the consequences of consuming Kimpaak-fruit (poisonous fruit) are obnoxious so are the consequences of rejoiced pleasures. (18)

अद्धाणं जो महन्तं तु, अपाहेओ पवज्जई ।  
गच्छन्तो सो दुही होई, छुहा-तण्हाए पीडिओ ॥ १९ ॥

जो व्यक्ति बिना पाथेय लिए लम्बे मार्ग पर चल देता है, वह मार्ग में चलते हुए भूख-प्यास से पीड़ित होकर कष्ट पाता है ॥ १९ ॥

A person, who starts on a long journey without taking provisions with him, suffers agonies of hunger and thirst on the way. (19)

एवं धम्मं अकाऊणं, जो गच्छइ परं भवं ।  
गच्छन्तो सो दुही होइ, वाहीरोगेहिं पीडिओ ॥ २० ॥

इसी तरह जो व्यक्ति धर्म का आचरण किये बिना ही परलोक को प्रस्थान कर देता है, वह व्याधि और रोगों से पीड़ित होकर दुःखी होता है ॥ २० ॥



In the same way, a person who leaves this world without following religious conduct, suffers from diseases and the like (during next birth). (20)

अद्धाणं जो महन्तं तु, सपाहेओ पवज्जइ।  
गच्छन्तो सो सुही होइ, छुहा-तण्हाविवज्जिओ ॥ २१ ॥

जो व्यक्ति पाथेय (मार्ग का संबल) साथ लेकर लम्बे मार्ग पर प्रयाण करता है वह भूख-प्यास से पीड़ित न होकर सुखी होता है ॥ २१ ॥

A person, who starts on a long journey taking provisions with him, remains happy and does not suffer from hunger and thirst. (21)

एवं धम्मं पि काऊणं, जो गच्छइ परं भवं।  
गच्छन्तो सो सुही होइ, अप्पकम्मे अवेयणे ॥ २२ ॥

इसी प्रकार जो मानव धर्म करके परलोक को प्रयाण करता है वह अल्पकर्मा जीव वेदना से रहित होकर सुखी होता है ॥ २२ ॥

In the same way, a person who leaves this world after observing religious conduct is free of pain and happy because of the meager load of *karmas*. (22)

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू।  
सारभण्डाणि नीणेइ, असारं अवज्जइ ॥ २३ ॥

जैसे घर में अग्नि का प्रकोप हो जाने—आग लग जाने पर घर का स्वामी पहले मूल्यवान सार वस्तुओं को बाहर निकालता है और निस्सार वस्तुओं को छोड़ देता है ॥ २३ ॥

When a house is on fire, the owner first of all takes out valuable vital things and leaves behind worthless things. (23)

एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य।  
अप्पाणं तारइस्साम, तुब्भेहिं अणुमन्निओ ॥ २४ ॥

इसी तरह मैं भी (हे माता-पिता!) आपकी अनुमति पाकर वृद्धत्व और मृत्यु से जलते हुये इस संसार में से सारभूत अपनी आत्मा को निकालना चाहता हूँ ॥ २४ ॥

In the same way, with your consent, (O parents!), I want to take out my most vital thing, the soul, from the world burning in flames of dotage and death. (24)

तं बित्तं उम्मापियरो, सामण्णं पुत्त ! दुच्चरं।  
गुणाणं तु सहस्साइं, धारेयव्वाइं भिक्खुणो ॥ २५ ॥

(माता-पिता) माता-पिता ने तब मृगापुत्र से कहा—हे पुत्र! श्रमण धर्म का पालन अति कठिन है। उसमें हजारों गुण-नियमोपनियम भिक्षु को धारण करने पड़ते हैं ॥ २५ ॥

The parents then said to Mrigaputra—O son! It is very difficult to practise ascetic-conduct. An ascetic has to accept thousands of attributes (rules and regulations). (25)



समया सव्वभूएसु, सत्तु मित्तेसु वा जगे ।  
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाए दुक्करं ॥ २६ ॥

संसार के सभी जीवों पर, चाहे वे शत्रु हों अथवा मित्र, समभाव रखना और आजीवन प्राणातिपात-हिंसा से विरत होना अत्यन्त दुष्कर है ॥ २६ ॥

It is extremely difficult to harbour feelings of equality for all beings, may they be friends or foes, and not to harm any life-force (*praan*) of any living being throughout life. (26)

निच्चकालऽप्पमत्तेणं, मुसावायविवज्जणं ।  
भासियव्वं हियं सच्चं, निच्चाउत्तेण दुक्करं ॥ २७ ॥

सदैव अप्रमत्त रहकर मृषावाद का त्याग करना तथा सतत उपयोग के साथ हितकारी सत्य बोलना बहुत कठिन है ॥ २७ ॥

It is very difficult to be ever alert in order to abandon falsehood and speak truth that is beneficent. (27)

दन्त-सोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं ।  
अणवज्जेसणिज्जस्स, गेणहणा अवि दुक्करं ॥ २८ ॥

दंत शोधन (दतौन) भी बिना दिये न लेना तथा दिया हुआ भी निर्दोष और एषणीय ही लेना अत्यधिक दुष्कर है ॥ २८ ॥

It is almost impossible to avoid taking, without being given, anything even as insignificant as teeth cleaning stick; and it is also very difficult to take only what is acceptable (faultless) even when given. (28)

विरई अबम्भचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा ।  
उगं महव्वयं बम्भं, धारेयव्वं सुदुक्करं ॥ २९ ॥

कामभोगों के रसों-स्वादों को जानने वाले व्यक्ति के लिये अब्रह्मचर्य से विरति और उग्र महाव्रत ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यधिक कठिन है ॥ २९ ॥

For him who has tasted carnal pleasures, it is very difficult to completely abstain from non-celibacy and to observe the tough great-vow of celibacy. (29)

धण-धन्न-पेसवगोसु, परिग्गहविवज्जणं ।  
सव्वारम्भपरिच्चाओ, निम्ममत्तं सुदुक्करं ॥ ३० ॥

धन-धान्य, प्रेष्य-सेवक वर्ग तथा परिग्रह का एवं सर्व आरम्भ का परित्याग और ममत्वरहित होना बहुत ही कठिन है ॥ ३० ॥

It is very difficult to renounce wealth, grains, servants, covetousness and all sinful activities as well as to become free of fondness. (30)

चउच्चिहे वि आहारे, राईभोयणवज्जणा ।  
सन्निहीसंचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्करो ॥ ३१ ॥



## मृगापुत्र और माता-पिता के संवाद

- (1) जातिस्मरण से जागृत मृगापुत्र माता-पिता के पास संयम की अनुमति लेने आया। वह बोला—जिस प्रकार आग में जलते हुये घर से गृहस्वामी अपनी मूल्यवान वस्तु निकाल लेता है, उसी प्रकार मैं कषायों की अग्नि में जलती हुई अपनी आत्मा को निकालना चाहता हूँ।
- (2) माता-पिता ने कहा—जैसे प्रज्वलित अग्निशिखा को पीना, समुद्र को तैरना, मेरु पर्वत को तराजू में तोलना और तलवार की धार पर चलना कठिन है, वैसे ही संयम का आचरण अति दुष्कर है।

—अध्ययन 19, सू. 23-43

## DIALOGUE BETWEEN MRIGAPUTRA AND HIS PARENTS

- (1) Enlightened by memories of the past birth, Mrigaputra came to his parents for their permission for initiation. He said—As the owner of a house takes out his valuable assets from the house at fire; in the same way I wish to take out my soul from the fire of passions.
- (2) The parents replied—As it is very difficult to swallow the flames of burning fire, to swim across an ocean, to weigh mountain Meru with a scale and to walk on a sword's edge; in the same way the practice of ascetic-discipline is very tough.

—Chapter 19, Aphorism 23-43







अशन-पान आदि चारों प्रकार के आहारों का रात्रि में त्याग करना तथा संनिधि और संचय का त्याग करना अतीव दुष्कर है ॥ ३१ ॥

It is extremely difficult to avoid eating all four types of eatables including food and drink after sunset and also not to acquire and store (eatables). (31)

छुहा तण्हा य सीउण्हं, दंसमसगवेयणा ।  
अक्कोसा दुक्खसेज्जा य, तणफासा जल्लमेव य ॥ ३२ ॥  
तालणा तज्जणा चेव, वह-बन्धपरीसहा ।  
दुक्खं भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ॥ ३३ ॥

भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, डांस-मच्छर की पीड़ा, आक्रोश वचन, दुःखप्रद शय्या, तृणस्पर्श, जल्ल-मैल ॥ ३२ ॥

ताड़ना-तर्जना, वध, बन्धन, भिक्षाचर्या, याचना, अलाभ आदि परीषहों को समभाव से सहन करना बहुत ही दुष्कर है ॥ ३३ ॥

Hunger-thirst, cold-heat, pains caused by sting of wasp and mosquitoes, angry words, uncomfortable bed, pricking of grass, excreta and body-slime. (32)

Threats and insults, fatal attacks, bondage, alms-seeking, absence of gains and other such afflictions are very difficult to endure with equanimity. (33)

कावोया जा इमा वित्ति, केसलोओ य दारुणो ।  
दुक्खं बम्भवयं घोरं, धारेउं य महप्पणो ॥ ३४ ॥

कापोतीवृत्ति-कबूतर की तरह दोषों से सशंक और सतर्क रहना, दारुण केश लौंच तथा घोर ब्रह्मचर्य धारण करना महान् आत्माओं के लिये भी अति दुष्कर है ॥ ३४ ॥

It is very tough even for great souls to be ever alert and cautious, like a pigeon, about faults and so are practices of painful hair-plucking and absolute celibacy. (34)

सुहोइओ तुमं पुत्ता !, सुकुमालो सुमज्जिओ ।  
न हु सी पभू तुमं पुत्ता !, सामणमणुपालिउं ॥ ३५ ॥

पुत्र! तू अभी सुख भोगने योग्य है, सुकुमार है, सुमज्जित-साफ-सुथरा रहता है। अतः अभी तू श्रमणधर्म का पालन करने के लिए सक्षम नहीं है ॥ ३५ ॥

Son! At present you are of the age fit to enjoy pleasures and comforts, you are delicate and you remain well groomed. As such you are not capable of observing the ascetic code. (35)

जावज्जीवमविस्सामो, गुणाणं तु महाभरो ।  
गुरुओ लोहभारो व्व, जो पुत्ता ! होई दुव्वहो ॥ ३६ ॥

हे पुत्र! साधुचर्या के नियमों—गुणों का भार तो लोहे के समान भारी है, जिसे जीवनभर बिना विश्राम लिए उठाना है, यह कार्य बहुत ही दुर्वह है, इसे जीवनभर वहन करना अत्यधिक कठिन है ॥ ३६ ॥



O son! The burden of virtues and codes of ascetic-praxis is as heavy as that of iron. Moreover, it has to be relentlessly carried all your life. To bear this burden all your life is extremely hard. (36)

आगासे गंग सोउव्व, पडिसोओ व्व दुत्तरो ।  
बाहाहिं सागरो चेव, तरियव्वो गुणोयही ॥ ३७ ॥

जिस प्रकार आकाश-गंगा का अनुस्रोत और जल-प्रवाह का प्रतिस््रोत दुस्तर है, सागर को भुजाओं से तैरकर पार करना कठिन है; उसी प्रकार गुणों के समुद्र संयम को भी पार करना अत्यधिक दुष्कर है ॥ ३७ ॥

It is a difficult to cross the celestial Ganges and so is to cross strong flow of a stream. It is almost impossible to cross an ocean swimming with limbs alone. In the same way to cross (tackle) the ocean of virtues that is ascetic-discipline is very difficult. (37)

वालुयाकवले चेव, निरस्साए उ संजमे ।  
असिधारागमणं चेव, दुक्करं चरिउं तवो ॥ ३८ ॥

बालू-रेत के कवल-कौर की तरह संयम निःस्वाद-नीरस है तथा तप-का आचरण तो तलवार की धार पर चलने जैसा दुष्कर है ॥ ३८ ॥

Restraint is tasteless like a mouthful of sand and to practise penance is to move on the sharp edge of sword, such difficult it is. (38)

अहीवेगन्तदिट्ठीए, चरित्ते पुत्त! दुच्चरे ।  
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्करं ॥ ३९ ॥

सर्प के समान एकाग्र दृष्टि से चारित्रधर्म पर चलना दुष्कर है। लोहे के जौ चबाना जैसे कठिन है उसी तरह चारित्र का पालन करना भी दुष्कर है ॥ ३९ ॥

It is tough to tread the path of religious conduct with eyes fixed snake-like on a target. Chewing iron bits is very difficult, so it is to rightly observe ascetic-conduct. (39)

जहा अग्गिसिहा दित्ता, पाउं होइ सुदुक्करं ।  
तहा दुक्करं करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ॥ ४० ॥

जैसे प्रज्वलित अग्निशिखा का पान करना दुष्कर है; उसी प्रकार तरुणावस्था में श्रमणधर्म का पालन करना भी दुष्कर है ॥ ४० ॥

As it is very difficult to swallow blazing flame of burning fire, in the same way it is very hard to practise ascetic code in youth. (40)

जहा दुक्खं भरेउं जे, होई वायस्स कोत्थलो ।  
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं ॥ ४१ ॥

जैसे कपड़े के थैले को हवा से भरना कठिन होता है, वैसे ही कायर पुरुष के द्वारा श्रमणाचार का पालन दुःखप्रद होता है ॥ ४१ ॥



As it is difficult to fill air in a bag made of cloth, in the same way it is very painful for a coward to follow ascetic praxis. (41)

जहा तुलाए तोलेउं, दुक्करं मन्दरो गिरी।  
तहा निहुयं नीसंकं, दुक्करं समणत्तणं ॥ ४२ ॥

जैसे मंदरगिरि-मेरु पर्वत को तराजू से तोलना दुष्कर है, वैसे ही निश्चल और निःशंक होकर श्रमणधर्म का पालन दुष्कर है ॥ ४२ ॥

As to weigh Mandara Giri (Meru mountain) on a balance is a very arduous task, in the same way following ascetic code unwaveringly and doubtlessly is a very arduous task. (42)

जहा भुयाहिं तरिउं, दुक्करं रयणागरो।  
तहा अणुवसन्तेणं, दुक्करं दमसागरो ॥ ४३ ॥

जैसे रत्नाकर (समुद्र) को भुजाओं से तैरना दुष्कर है, वैसे ही अनुपशांत व्यक्ति के लिये संयम के सागर को पार करना दुष्कर है ॥ ४३ ॥

It is difficult to swim across the source of many gems, the ocean; in the same way it is very difficult to cross the sea of restraint for a person who has not pacified his mind. (43)

भुंज माणुस्सए भोगे, पंचलक्खणए तुमं।  
भुत्तभोगी तओ जाया !, पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥ ४४ ॥

हे पुत्र! पहले तुम पाँच लक्षणों वाले (शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श) मनुष्य सम्बन्धी भोगों का उपभोग करो, उसके उपरान्त भुक्तभोगी बनकर श्रमणधर्म का आचरण करना ॥ ४४ ॥

O son! You first enjoy the human sensual pleasures with five attributes (touch, taste, smell, sight and hearing). Later, having experienced them you may practise ascetic-conduct. (44)

तं बिंत ऽम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं।  
इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचि वि दुक्करं ॥ ४५ ॥

(मृगापुत्र—) मृगापुत्र ने कहा-आपने श्रामण्य की दुष्करता के लिये जो कहा, वह सब सत्य है; लेकिन इस संसार से जिसकी तृष्णा शांत हो जाती है, उसके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है ॥ ४५ ॥

(Mrigaputra—) Mother and Father! What all you have said about difficulties of ascetic-conduct is true; but for one whose thirst for the mundane is quenched, nothing is difficult. (45)

सारीर-माणसा चेव, वेयणाओ अणन्तसो।  
मए सोढाओ भीमाओ, असइं दुक्खभयाणि य ॥ ४६ ॥

मैंने शारीरिक और मानसिक वेदनाएँ अनेक बार भोगी हैं और दुःख एवं भयों का भी अनुभव किया है ॥ ४६ ॥



I have suffered physical and mental agonies innumerable times and also experienced misery and fears. (46)

जरा-मरणकन्तारे, चाउरन्ते भयागरे ।  
मए सोढाणि भीमाणि, जन्माणि मरणाणि य ॥ ४७ ॥

मैंने चतुर्गति रूप भय के स्थल, वृद्धत्व और मृत्युरूपी महावन में जन्म-मरण के कष्टों को सहन किया है ॥ ४७ ॥

In the storehouse of fear that is this Samsar (cycles of rebirth in four realms) as well as the wilderness of old age and death, I have endured the torments of birth and death. (47)

जहा इहं अगणी उण्हो, एत्तोऽणन्तगुणो तहिं ।  
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥ ४८ ॥

अग्नि यहाँ जितनी उष्ण है, उससे भी अनेक (अनन्त) गुनी उष्णता मैंने नरकों में भोगी है ॥ ४८ ॥  
In this human world fire is very hot. In hells I have suffered infinite times more heat than this. (48)

जहा इमं इहं सीयं, एत्तोऽणन्तगुणं तहिं ।  
नरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइया मए ॥ ४९ ॥

यहाँ जितना शीत है उससे भी अनन्त गुणी शीत वेदना मैंने नरकों में सहन की है ॥ ४९ ॥  
In this human world there is intense cold. In hells I have suffered infinite times more torments of chill than this. (49)

कन्दन्तो कन्दुकम्भीसु, उड्डुपाओ अहोसिरो ।  
हुयासणे जलन्तम्मि, पक्कपुव्वो अणन्तसो ॥ ५० ॥

मैं नरक की कन्दुकुम्भियों में नीचे सिर और ऊपर पैर करके प्रज्वलित अग्नि में आक्रन्दन करता हुआ अनन्त बार पकाया गया हूँ ॥ ५० ॥

Suspended heads-down in blazing fire and screaming, I have been roasted in vast cauldrons (*kumbhi*) of hell infinite times. (50)

महादवग्गिसंकासे, मरुम्मि वइरवालुए ।  
कलम्बवालुयाए य, दड्डुपुव्वो अणन्तसो ॥ ५१ ॥

महाभयंकर दावाग्नि के समान मरु प्रदेश में वज्र-जैसी कंकरीली रेत में तथा नदी तट की तप्त बालुका में मैं अनन्त बार जलाया गया हूँ ॥ ५१ ॥

In a desert on fire like a conflagration and in red hot sands of infernal rivers Vajrabaluka (with diamond hard sand) and Kadambabaluka (with turmeric like sand) I have been baked infinite times. (51)

लोह कुम्भी में पकाया गया

नरक देवता

शालमलि वृक्ष से बाँधा गया



गन्ने (ईख) की भाँति पीला गया



शस्त्रों से छेदा गया



सुअर व कुत्तों द्वारा काटा गया



वज्र बालू में जलाया गया

## नरक वेदना का वर्णन - 1

मृगापुत्र द्वारा नरक में दी जाने वाली वेदनाओं का सजीव वर्णन किया गया—

- (1) लोह-कुम्भी में पकाया गया।
- (2) शाल्मलि वृक्ष से बाँधा गया।
- (3) वज्र बालू में जलाया गया।
- (4) गन्ने (ईख) की भाँति पीला गया।
- (5) शस्त्रों से छेदा गया।
- (6) सूअर व कुत्तों द्वारा काटा गया।

—अध्ययन 19, सू. 50-55

## DESCRIPTION OF TORMENTS IN HELL - 1

Mrigaputra described the torments being given in hells vividly - I have been (1) roasted in vast cauldrons (*kumbhi*); (2) tied to the Shalmali tree; (3) baked in diamond hard sand; (4) crushed like sugarcane; (5) pierced by weapons and (6) bitten by boars and dogs.

—Chapter 19, Aphorism 50-55





रसन्तो कन्दुकुम्भीसु, उड्डं बद्धो अबन्धवो ।  
करवत्त-करकयाईहिं, छिन्नपुव्वो अणन्तसो ॥ ५२ ॥

बन्धु-बान्धवों से रहित, असहाय, रोता-आक्रन्दन करता हुआ मैं कन्दुकुम्भी में ऊँचा बाँधा गया और करवत तथा क्रकच, आरा आदि शस्त्रों से अनन्त बार छेदा-भेदा गया हूँ ॥ ५२ ॥

Without brothers and kin, helpless, wailing and screaming, I was suspended high in infernal cauldron and cut and pierced by knives and saws infinite times. (52)

अइतिक्खकंटगाइण्णो, तुंगे सिम्बलिपायवे ।  
खेवियं पासबद्धेणं, कड्ढोकड्ढाहिं दुक्करं ॥ ५३ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण काँटों से आकीर्ण शाल्मली वृक्ष से जाल (पाश) द्वारा बाँधकर मुझे इधर-उधर खींचा गया, उस दुस्सह कष्ट को मैं भोग चुका हूँ ॥ ५३ ॥

I was tied with a net to a Shaalmali tree bristling with very sharp thorns and pushed and pulled from side to side. I have suffered such unbearable pain. (53)

महाजन्तेसु उच्छू वा, आरसन्तो सुभेरवं ।  
यीलिओ मि सकम्मेहिं, पावकम्पो अणन्तसो ॥ ५४ ॥

अपने ही पापकर्मों के कारण बड़े-बड़े यन्त्रों-कोल्हों में मुझे इक्षु के समान अनन्त बार पीला गया। उन दुस्सह कष्टों को मुझे आक्रन्दन करते हुये भोगना पड़ा ॥ ५४ ॥

On account of my own sins I was crushed like sugarcane in large presses infinite times. I had to suffer those excruciating afflictions wailing. (54)

कूवन्तो कोलसुणाएहिं, सामेहिं सबलेहि य ।  
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विष्फुरन्तो अणेगसो ॥ ५५ ॥

सूअर.और श्वान रूपधारी श्याम और शबल नामक परमाधर्मी देवों द्वारा, इधर-उधर भागते हुये, चिल्लाते हुये मुझे पकड़ा गया, अनेक बार ऊपर से नीचे गिराया गया, फाड़ा गया और छिन्न-भिन्न किया गया ॥ ५५ ॥

While running hither and thither screaming, I was caught many times by the most irreligious cruel divine beings named Shyama and Shabala in the guise of wild hog and dog respectively, and tossed down, torn to pieces and lacerated. (55)

असीहि अयसिवण्णाहिं, भल्लीहिं पट्टिसेहि य ।  
छिन्नो भिन्नो विभिन्नो य, ओइण्णो पावकम्पुणा ॥ ५६ ॥

पापकर्मों के कारण मैं नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ मुझे अलसी के फूल के समान नीले रंग की तलवारों से, भालों से और लोहे के डण्डों से पीटा गया, छेदा गया, भेदा गया और खण्ड-खण्ड कर दिया गया ॥ ५६ ॥

I was born in hell for my sins. There I was cut, pierced and hacked to pieces with swords, daggers, spears and iron rods blue in colour like linseed flower. (56)



अवसो लोहरहे जुत्तो, जलन्ते समिलाजुए।  
चोइओ तोत्तजुत्तेहिं, रोज्झो वा जह पाडिओ ॥ ५७ ॥

कील (समिला) युक्त जुए वाले, जलते हुये लोहे के रथ में जबरदस्ती जोता गया हूँ, चाबुक और रस्सियों से हाँका गया हूँ तथा रोझ के समान पीट-पीटकर जमीन-भूमि पर गिराया गया हूँ ॥ ५७ ॥

I have been forcibly yoked to a nail-studded chariot of burning hot iron and then I have been driven on with whips and ropes, and I have been knocked down on earth like an antelope. (57)

हुयासणे जलन्तम्मि, चियासु महिसो विव।  
दड्ढो पक्को य अवसो, पावकम्मेहि पाविओ ॥ ५८ ॥

अपने ही पापों के कारण मैं जलती हुई चिताओं की अग्नि में भैसे की तरह जलाया और पकाया गया हूँ ॥ ५८ ॥

Due to my own sins, I have been burnt and roasted like a buffalo in blazing fire of pyres. (58)

बला संडासतुण्डेहिं, लोहतुण्डेहि पक्खिहिं।  
विलुत्तो विलवन्तोऽहं, ढंक-गिद्धेहिऽणन्तसो ॥ ५९ ॥

लोहे जैसे कठोर और मजबूत मुख तथा संडासी जैसी नुकीली चोंच वाले गीध और ढंक पक्षियों द्वारा रोता-बिलखता हुआ मैं अनंत बार नोंचा गया हूँ ॥ ५९ ॥

I have been violently lacerated by vultures and Dhunk-birds with iron bills shaped like tongs infinite times, all the while screaming and wailing. (59)

तण्हाकिलन्तो धावन्तो, पत्तो वेयरणिं नदिं।  
जलं पाहिं ति चिन्तन्तो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥ ६० ॥

मैं प्यास से व्याकुल होकर, दौड़ता हुआ वैतरणी नदी के पास पहुँचा। जल पीने की सोच ही रहा था कि छुरे की धार जैसी तीक्ष्ण धारा ने मुझे चीर दिया ॥ ६० ॥

Suffering from agony of thirst, I ran to river Vaitarani. I was just thinking of drinking water when the dagger-like sharp current of river cleaved me. (60)

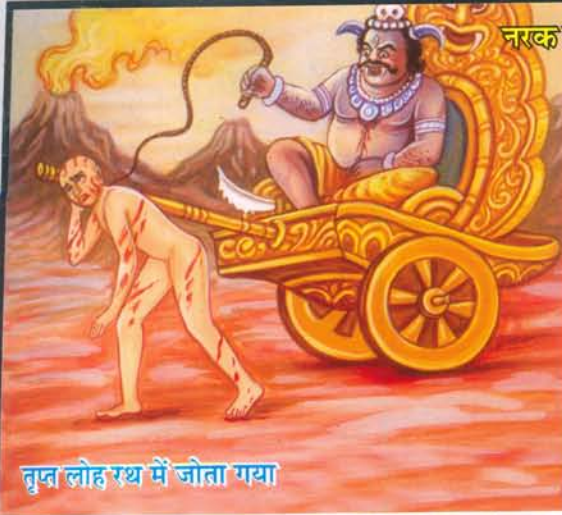
उण्हाभित्ततो संपत्तो, असिपत्तं महावणं।  
असिपत्तेहिं पडन्तेहिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥ ६१ ॥

गर्मी से संतप्त होकर छाया के लिए मैं असिपत्र महावन में पहुँचा। लेकिन वृक्षों से गिरते हुये छुरे की धार के समान तीक्ष्ण पत्तों ने मुझे चीर दिया ॥ ६१ ॥

Distressed by extreme heat I entered the Asipatra (dagger shaped leaves) great forest. But the dagger-like sharp leaves dropping from trees lacerated me. (61)

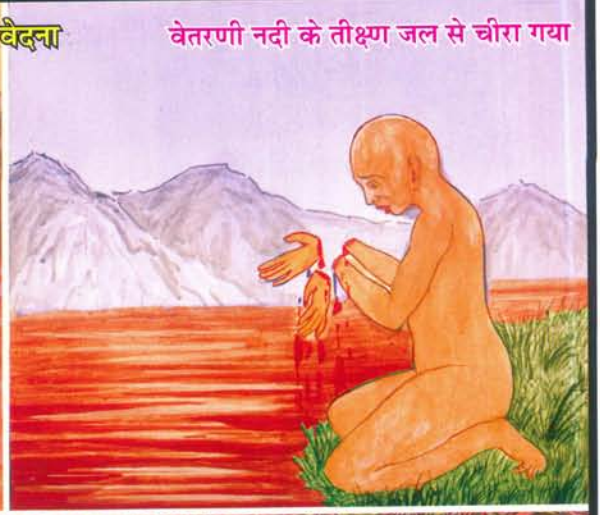
मुग्गरेहिं मुसंढीहिं, सूलेहिं मुसलेहि य।  
गयासं भग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्खं अणन्तसो ॥ ६२ ॥





नरक वैदवा

वृद्ध लोहरथ में जोता गया



वेतरणी नदी के तीक्ष्ण जल से चीरा गया



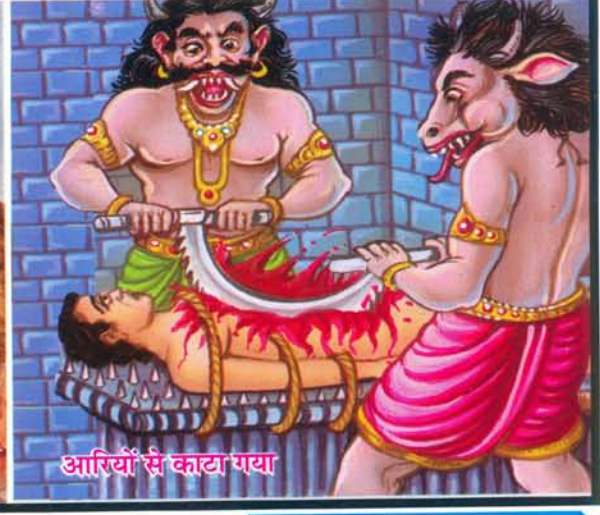
अग्नि ज्वाला में जलाया गया



अभिषर्त्रों से छेदा गया



गीध पक्षियों से नोँचा गया



आरियों से काटा गया

## नरक वेदना का वर्णन - 2

- (7) तप्त लोह-रथ में जोता गया।
- (8) वेतरणी नदी के तीक्ष्ण जल से चीरा गया।
- (9) अग्नि-ज्वाला में जलाया गया।
- (10) असिपत्रों से छेदा गया।
- (11) गीध पक्षियों से नोंचा गया।
- (12) छुरियों/कैंचियों से काटा गया।

—अध्ययन 19, सू. 57-63

## DESCRIPTION OF TORMENTS IN HELL - 2

Mrigaputra described the torments being given in hells vividly - I have been (7) yoked to a chariot of burning hot iron; (8) cleaved by dagger-like sharp current of river Vaitarani; (9) burned in flames; (10) lacerated by dagger-like sharp Asipatra leaves; (11) violently lacerated by vultures; (12) cut by knives and scissors.

—Chapter 19, Aphorism 57-63





सभी ओर से निराश हुए मुझे मुद्गरों, मुसुण्डियों, शूलों और मूसलों से चूर-चूर कर दिया गया। ऐसा भयंकर दुःख-कष्ट मैंने अनन्त बार भोगा है ॥ ६२ ॥

Disappointed from all sides, I have been crushed to pieces by mallets, knives, spears and maces. I have suffered such horrifying torments infinite times. (62)

खुरेहि तिक्खधारेहि, छुरियाहिं कप्पणीहि य।  
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कत्तो य अणोगसो ॥ ६३ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण धार वाले छुरों से, छुरियों से और कैंचियों-कतरनियों से मैं अनेक बार काटा गया हूँ, कपड़े की तरह फाड़ा गया हूँ, छेदा गया हूँ और मेरी चमड़ी उधेड़ी गयी है ॥ ६३ ॥

I have been slit, cut, mangled and skinned innumerable times by sharp edged daggers, knives, scissors and shears. (63)

पासेहिं कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं।  
वाहिओ बद्धरुद्धो अ, बहुसो चेव विवाइओ ॥ ६४ ॥

अवश बने मुझे अनेक बार पाशों-बन्धनों, कूट जालों से मृग के समान पकड़ा गया, बाँधा गया, रोका गया और विनष्ट किया गया ॥ ६४ ॥

Like a helpless deer, I have been caught, tied, detained and destroyed in snares and hidden traps innumerable times. (64)

गलेहिं मगरजालेहिं, मच्छो वा अवसो अहं।  
उल्लिओ फालिओ गहिओ, मारिओ य अणन्तसो ॥ ६५ ॥

मछली के गले में फँसाकर उसे पकड़ने वाले काँटों-गलों से, मगरों को पकड़ने वाले जालों से विवश हुए मुझे अनन्त बार पकड़ा गया, खींचा गया, फाड़ा गया और मारा गया ॥ ६५ ॥

With hooks for catching fish and bow nets for trapping crocodiles, I have been helplessly caught, dragged, torn and killed infinite times. (65)

वीदंसएहि जालेहिं, लेप्पहिं सउणो विव।  
गहिओ लग्गो बद्धो य, मारिओ य अणन्तसो ॥ ६६ ॥

पक्षियों को डस जाने वाले-भक्षण करने वाले बाज पक्षियों तथा चिपकाने वाले वज्र लेपों-जालों के द्वारा मैं पक्षियों के समान अनन्त बार पकड़ा गया, बाँधा गया, चिपकाया गया और मारा गया ॥ ६६ ॥

With the help of giant hawks, nets and bird-lime (adhesives), I have been caught, tied, stuck and killed infinite times like a bird. (66)

कुहाड-फुरसुमाईहिं, वड्ढईहिं दुमो विव।  
कुटिटओ फालिओ छिन्नो, तच्छिओ य अणन्तसो ॥ ६७ ॥

जिस प्रकार बड़ई वृक्ष को छीलते हैं उसी प्रकार मैं भी कुल्हाड़ी, फरसे आदि से अनन्त बार कूटा गया, चीरा गया, फाड़ा गया, छेदा गया और छीला गया हूँ ॥ ६७ ॥



With axes, hatchets and other such tools I have been felled, pounded, sawn, slit, drilled and scraped infinite times, like carpenters do to a tree. (67)

चवेडमुट्टिमाईहिं, कुमारेहिं अयं पिव ।  
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो, चुण्णिओ य अणन्तसो ॥ ६८ ॥

लुहार जिस तरह लोहपिंड को कूटा-पीटा है उसी तरह परमाधर्मी देवों द्वारा मैं चपतों-चाँटों-थप्पड़ों-मुक्कों द्वारा अनन्त बार पीटा गया, कूटा गया, टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया और चूर्ण बना दिया गया ॥ ६८ ॥

With palms and fists I have been pounded, hammered, sheared to pieces and powdered infinite times by extremely evil divine beings, like blacksmiths do to a lump of iron. (68)

तत्ताइं तम्बलोहाइं, तउयाइं सीसयाणि य ।  
पाइओ कलकलन्ताइं, आरसन्तो सुभेरवं ॥ ६९ ॥

भयंकर आक्रन्दन करते हुए भी मुझे कलकलाता-उबलता हुआ गर्मागर्म लोहा, ताँबा, राँगा और सीसा पिलाया गया ॥ ६९ ॥

Horridly shrieking all awhile I have been forcibly made to drink molten iron, copper, tin and lead. (69)

तुहं पियाइं मंसाइं, खण्डाइं सोल्लगाणि य ।  
खाविओ मि समंसाइं, अग्गिवण्णाइं णेगसो ॥ ७० ॥

'तुझे खण्ड-खण्ड किया हुआ तथा शूल में पकाया हुआ माँस बहुत प्रिय था' (परमाधर्मी असुरकुमारों द्वारा यह याद दिला-दिलाकर) मेरे अपने ही शरीर का माँस काटकर और उसे अग्नि में तपाकर लाल सुर्ख करके मुझे अनेक बार खिलाया गया ॥ ७० ॥

'You were very fond of minced and roasted meat' (while being reminded thus by evil divine beings), I have been made to eat my own red hot flesh after cutting and roasting. (70)

तुहं पिया सुरा सीहु, मेरओ य महूणि य ।  
पाइओ मि जलन्तीओ, वसाओ रुहिराणि य ॥ ७१ ॥

'तुझे सुरा, सीधु, मैरेय और महुए आदि से निर्मित मद्य-मादक पदार्थ बहुत प्रिय थे'—यह याद दिलाकर मुझे जलती हुई चर्बी और रक्त पिलाया गया ॥ ७१ ॥

'You were very fond of a variety of liquors including those made from palm, rice and Mahua (*Bassia latifolia*)' (while being reminded thus by evil divine beings), I have been forced to drink boiling fat and blood. (71)

निच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।  
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेइया मए ॥ ७२ ॥



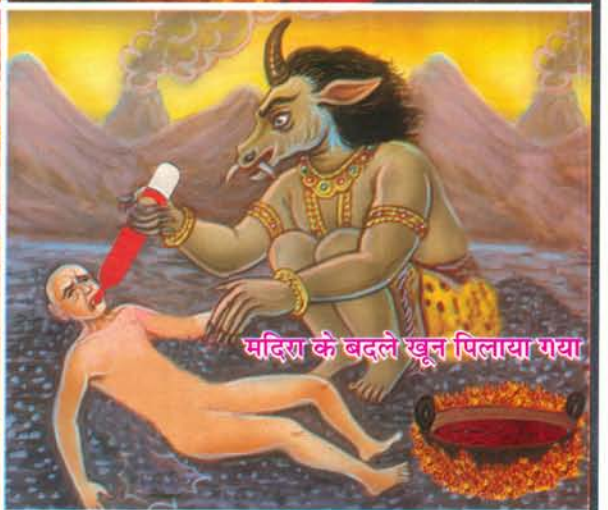
जाल में फँसा कर खींचा गया



अग्ने शरीर का मांस खिलाया गया



तलवार आदि से छीला गया



यदिरा के बदले खून पिलाया गया



उबलता रांगा सीसा पिलाया गया



तलवारों व भालों से खण्ड-खण्ड किया गया

## नरक वेदना का वर्णन - ३

- (13) जाल में फँसाकर खींचा गया।
- (14) अपने शरीर का माँस खिलाया गया।
- (15) कुल्हाड़ी आदि से छीला गया।
- (16) मदिरा के बदले खून पिलाया गया।
- (17) उबलता रांगा सीसा पिलाया गया।
- (18) तलवारों व भालों से खण्ड-खण्ड किया गया।

—अध्ययन 19, सू. 64-70

## DESCRIPTION OF TORMENTS IN HELL – 3

Mrigaputra described the torments being given in hells vividly – I have been (13) caught in net and dragged; (14) fed my own flesh; (15) cut and scraped with tools like axe; (16) made to drink my own blood instead of wine; (17) made to swallow boiling lead; and (18) cut to pieces with swords and spears.

—Chapter 19, Aphorism 64-70





मैंने इस प्रकार अपने पूर्व-जन्मों में सदा भयकारक, दुःखित, कष्टित, पीड़ित और व्यथित होकर अत्यन्त दुःख वेदना का अनुभव किया है ॥ ७२ ॥

Thus I have always experienced excruciating pain getting afraid, miserable, tormented, tortured and distressed in my past births. (72)

तिव्व-चण्ड-प्यगाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा ।

महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु वेइया मए ॥ ७३ ॥

मैंने नरकों में तीव्र, प्रचण्ड, प्रगाढ़ और घोर अत्यन्त दुःसह, महाभयंकर और भयभीत करने वाली वेदनाएँ भोगी हूँ ॥ ७३ ॥

In hells I have suffered sharp, intense, severe, excruciating, extremely intolerable, horrifying and dreadful agonies. (73)

जारिसा माणुसे लोए, ताया ! दीसन्ति वेयणा ।

एत्तो अणन्तगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ॥ ७४ ॥

पिताजी ! इस मनुष्य लोक में जैसी वेदनाएँ दिखाई देती हैं, उससे अनन्तगुणी दुःखपूर्ण वेदनाएँ—कष्ट-पीड़ाएँ नरकों में होती हैं ॥ ७४ ॥

Father! In hells there are infinitely more severe torments and tortures as compared to those experienced in this human world. (74)

सव्वभवेसु अस्साया, वेयणा वेइया मए ।

निमेसन्तरमित्तं पि, जं साया नत्थि वेयणा ॥ ७५ ॥

मैंने प्रायः सभी भवों-गतियों में असाता-दुःखरूप वेदना का ही अनुभव किया है। एक पल मात्र के लिए भी असाता-दुःख का अन्त नहीं आया। साता वेदना-सुख की अनुभूति नहीं हो सकी ॥ ७५ ॥

I have experienced sorrows and sufferings in almost all the realms of my past existence. Even for a moment there was no relief from the miseries. I never had a chance to experience happiness. (75)

तं बित्तं उम्मापियरो, छन्देणं पुत्त ! पव्वया ।

नवरं पुण सामण्णे, दुक्खं निप्पडिकम्मया ॥ ७६ ॥

(माता-पिता—) माता-पिता ने तब मृगापुत्र से कहा—तुम अपनी इच्छा से प्रव्रज्या लेना चाहो तो ग्रहण कर लो; किन्तु विशेष बात यह है कि यदि श्रमण-जीवन में किसी कारण शरीर में रोग उत्पन्न हो जाय तो उसकी निष्प्रतिकर्मता-चिकित्सा नहीं कराई जाती—यह एक बड़ा दुःख है ॥ ७६ ॥

Then mother and father said to Mrigaputra—Son, if you want to get initiated of your own volition do that. But you should know that in ascetic life if for some reason the body is inflicted with some disease it is not allowed to avail any treatment. It is a very grave situation. (76)



सो बित्तं ऽम्मापियरो !, एवमेयं जहाफुडं ।  
पडिकम्मं को कुणई, अरण्णे मियपक्खिणं ? ॥ ७७ ॥

(मृगापुत्र—) मृगापुत्र ने कहा—हे माताजी, पिताजी! श्रमणमार्ग ऐसा ही है, जैसा आपने कहा है लेकिन जंगलों में मृग आदि पशु तथा पक्षियों की चिकित्सा कौन कराता है? ॥ ७७ ॥

(Mrigaputra —) Mother and father! The ascetic discipline is exactly as you have described. But who gives treatment to the ailing animals like deer and birds in forests? (77)

एगभूओ अरण्णे वा, जहा उ चरई मिगो ।  
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य ॥ ७८ ॥

जैसे वन में मृग अकेला ही विचरण करता है उसी प्रकार मैं तप-संयम से भावित होकर अकेला ही विचरण करूँगा ॥ ७८ ॥

As a deer (or wild animal) roams about alone in the forest, so will I wander alone enkindling my soul with practice of restrain and austerities. (78)

जया मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायई ।  
अच्छन्तं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छई ? ॥ ७९ ॥

जब महाभयंकर गहन वन में मृग के शरीर में आतंक-शीघ्रघाती रोग उत्पन्न हो जाता है, तब वृक्ष के मूल में बैठे हुए उस मृग की चिकित्सा कौन कराता है? ॥ ७९ ॥

When in a vast haunting forest the body of a deer catches a fatal disease; who cures that deer resting under a tree ? (79)

को वा से ओसधं देई ?, को वा से पुच्छइ सुहं ?  
को से भत्तं च पाणं च, आहरित्तु पणामए ? ॥ ८० ॥

कौन उसे औषध देता है? कौन उसके सुख-स्वास्थ्य के विषय में पूछता है और कौन उसे आहार आदि लाकर देता है? ॥ ८० ॥

Who gives it medicine? Who inquires about its health and who brings food and water to feed it? (80)

जया य से सुही होइ, तथा गच्छइ गोयरं ।  
भत्तपाणस्स अट्टाए, वल्लराणि सराणि य ॥ ८१ ॥

जब वह स्वयं ही सुखी और स्वस्थ हो जाता है तब वह स्वयं गोचर भूमि में जाता है और खाने-पीने के लिये लता निकुंजों, झाड़ियों तथा सरोवरों को खोजता है ॥ ८१ ॥

When it gets healthy and happy naturally then he goes to a pasture himself and searches shrubs, creepers and ponds for food and water. (81)

खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहि वा ।  
मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छई मिगचारियं ॥ ८२ ॥





लता कुंजों और सरोवरों से अपनी भूख-प्यास को मिटाकर स्वतंत्र विचरण करता हुआ वह मृगों की निवास भूमि में चला जाता है ॥ ८२ ॥

Pacifying its hunger and thirst from vegetation and pond, it roams freely and joins the herd in its natural habitat. (82)

एवं समुद्विओ भिक्खू, एवमेव अणोगओ ।  
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्डं पक्कमई दिसं ॥ ८३ ॥

उसी प्रकार संयम में समुत्थित भिक्षाजीवी साधु अनियतचारी होकर तथा मृगचर्या के सदृश आचरण करके ऊर्ध्व दिशा-मोक्ष की ओर गमन करता है ॥ ८३ ॥

In the same way an alms-seeking ascetic practising restraint becomes a random wanderer and behaving like a deer, moves higher and higher towards liberation. (83)

जहा मिगे एग अणोगचारी, अणोगवासे धुवगोयरे य ।  
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे, नो हीलए नो विय खिसएज्जा ॥ ८४ ॥

जिस प्रकार मृग अकेला अनेक स्थानों पर विचरण करता है और अनेक स्थानों पर निवास करता है; उसी प्रकार गोचरी के लिए गृहस्थों के घर में प्रविष्ट हुआ मुनि न तो किसी की हीलना करता है और न ही किसी की निन्दा करता है ॥ ८४ ॥

As a deer roams and resides and takes food and water from many places; in the same way an ascetic on his begging tour, entering the houses of householders, neither insults nor speaks ill about anybody. (84)

मिगचारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता ! जहासुहं ।  
अम्मापिऊहिं अणुत्ताओ, जहाइ उवहिं तओ ॥ ८५ ॥

मृगापुत्र ने कहा—माताजी-पिताजी! मैं मृग के समान चर्या करूँगा। यह सुनकर माता-पिता ने कहा—पुत्र! जिसमें तुम्हें सुख हो, वैसा ही करो। इस तरह माता-पिता की आज्ञा प्राप्त करके मृगापुत्र उपधि का त्याग करता है ॥ ८५ ॥

I will follow a deer's way of life. Hearing this, the parents said—Son! Do as you please. Thus getting the permission of parents he abandoned all his possessions. (85)

मियचारियं चरिस्सामि, सब्बदुक्खविमोक्खणिं ।  
तुब्भेहि अम्म ! ऽणुत्ताओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ॥ ८६ ॥

(मृगापुत्र—) माताजी! आपकी आज्ञा पाकर मैं सभी दुःखों से मुक्त करने वाली मृगचर्या का आचरण करूँगा। इस पर माता ने कहा—हे पुत्र! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा ही करो ॥ ८६ ॥

(Mrigaputra—) Mother! With your permission I will follow deer's way of life that is capable of releasing me from all the miseries of the world. The mother said—Son! Do as you please. (86)



एवं सो अम्मापियरो, अणुमाणित्ताण बहुविहं।  
ममत्तं छिन्दई ताहे, महानागो व्व कंचुयं ॥ ८७ ॥

माता-पिता को अनेक प्रकार से समझाकर मृगापुत्र उसी प्रकार ममत्व को छोड़ देता है जैसे महानाग अपनी कंचुल को छोड़ देता है ॥ ८७ ॥

Persuading his parents several ways Mrigaputra abandoned fondness just like a snake casts off its slough. (87)

इड्ढि वित्तं च मित्ते य, पुत्त-दारं च नायओ।  
रेणुयं व पडे लग्गं, निद्धुणित्ताण निग्गओ ॥ ८८ ॥

वस्त्र पर चिपकी हुई धूल के समान मृगापुत्र ने ऋद्धि, धन, मित्र, पुत्र, स्त्री और जातिजनों के प्रति ममत्व को झटक दिया—त्याग दिया और संयम यात्रा के लिए निकल गया ॥ ८८ ॥

Mrigaputra shook of all his fortune, wealth, friends, son, wife and kin, like dust sticking on a cloth and set out on the path of ascetic-discipline. (88)

पंचमहव्वयजुत्तो, पंचसमिओ तिगुत्तिगुत्तो य।  
सब्भिन्तर—बाहिरओ, तवोकम्मंसि उज्जुओ— ॥ ८९ ॥

अब वह पाँच महाव्रतों से युक्त, पाँच समितियों से समित, तीन गुप्तियों से गुप्त, बाह्य और आभ्यन्तर तर्पों में तत्पर— ॥ ८९ ॥

Now he became observer of five great vows, cautious with five ascetic-precautions (*samitis*), restrained with three ascetic-restraints (*guptis*), dedicated to external and internal austerities—(89)

निम्ममो निरहंकारो, निस्संगो चत्तगारवो।  
समो य सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य ॥ ९० ॥

ममत्वरहित, निरहंकारी, आसक्ति से दूर, सुख-साता-ऋद्धि-इन तीन प्रकार के गौरवों का त्यागी, त्रस और स्थावर-सभी जीवों के प्रति समत्वभाव रखने वाला— ॥ ९० ॥

(Now he became—) Devoid of fondness, free of conceit, away from obsessions, renouncer of three kinds of glories (namely pleasure, comfort and fame), equanimous towards all beings, mobile and immobile—(90)

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा।  
समो निन्दा-पसंसासु, तहा माणवमाणओ ॥ ९१ ॥

लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशंसा तथा मान-अपमान—इन सभी स्थितियों में राग-द्वेष न करने वाला समभावी साधक— ॥ ९१ ॥

(Now he became—) Equanimous aspirant free of feelings of attachment and aversion towards gain-loss, pleasure-pain, life-death, blame-praise, honour-insult—(91)



गारवेसु कसाएसु, दण्ड-सल्ल-भएसु य ।  
नियन्तो हास-सोगाओ, अनियाणो अबन्धणो— ॥ ९२ ॥

गौरवों-गर्वों-अभिमानों, चारों कषायों, तीन प्रकार के दण्ड, तीन तरह के शल्य और सप्त प्रकार के भयों से, हास्य और शोक से निवृत्त, निदान-कामभोगों की इच्छा न करता हुआ, राग-द्वेष के बंधनों से रहित— ॥ ९२ ॥

(Now he became—) Free of glories (pride and conceit), passions (anger, conceit, deceit and greed), injuries (through mind, speech and body), spiritual-thorns (deceit, desire and unrighteousness), fear (seven kinds), feelings of joy and grief, cravings (*nidaan*), bondage of attachment and aversion— (92)

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ ।  
वासीचन्दणकण्णो य, असणे अणसणे तहा— ॥ ९३ ॥

इस लोक तथा परलोक में भी प्रतिबद्धतारहित-अनासक्त, वसूले से काटने-छीलने अथवा गोशीर्ष चन्दन लगाये जाने पर भी समभाव रखने वाला तथा आहार मिलने अथवा न मिलने पर भी समत्वभाव रखने वाला— ॥ ९३ ॥

(Now he became —) Dissociated from this world (birth) and the next, equanimous in stink (slime) or fragrance (sandal-wood) as also when getting or not getting food— (93)

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवे ।  
अज्झप्पज्झाणजोगेहिं, पसत्थ-दमसासणे ॥ ९४ ॥

अप्रशस्त द्वारों—पापकर्मों के आस्रवों के हेतुओं का सभी प्रकार से निरोध करके मृगापुत्र प्रशस्त संयम, इन्द्रिय दमन और साध्वाचार में, आध्यात्मिक ज्ञानयोग में लीन हो गया ॥ ९४ ॥

After blocking all ignoble doors (causes of inflow of demerit-*karmas*), Mrigaputra got completely engrossed in exercising lofty restraint, subduing senses, following ascetic-praxis and associating with spiritual knowledge (*adhyatmic jnana yoga*). (94)

एव नाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य ।  
भावणाहि य सुद्धाहिं, सम्मं भावेत्तु अप्पयं— ॥ ९५ ॥

इस प्रकार ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप और विशुद्ध भावनाओं से अपनी आत्मा को सम्यक् रूप से भावित करते हुए— ॥ ९५ ॥

This way rightly enkindling his soul with right knowledge, perception/faith, conduct and austerities as well as sublime sentiments— (95)

बहुयाणि उ वासाणि, सामणमणुपालिया ।  
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धिं पत्तो अणुत्तरं ॥ ९६ ॥

बहुत वर्षों तक श्रमणधर्म का अनुपालन करते रहे, आयु के अन्त में एक मास का भक्त प्रत्याख्यान करके मृगापुत्र मुनि ने अनुत्तर गति-सिद्ध गति प्राप्त की ॥ ९६ ॥



He practiced ascetic-conduct for many years. At last ascetic Mrigaputra attained the lofty state of perfection (*siddhi* or liberation) after observing month long fast. (96)

एवं करन्ति संबुद्धा, पण्डिया पवियक्खणा ।  
विणियद्वन्ति भोगेसु, मियापुत्ते जहारिसी ॥ ९७ ॥

जैसे ऋषि मृगापुत्र युवावस्था में भोगों से विरक्त हुए, उसी प्रकार तत्त्वज्ञानी, पण्डित और विचक्षण व्यक्ति भी सांसारिक भोगों से निवृत्त होते हैं ॥ ९७ ॥

As ascetic Mrigaputra renounced the worldly pleasures in his youth, in the same way enlightened, learned and prodigious individuals too abandon mundane pleasures. (97)

महापभावस्स महाजसस्स, मियाइ पुत्तस्स निसम्म भासियं ।  
तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं, गइप्पहाणं च तिलोगविस्सुयं— ॥ ९८ ॥

मृगा रानी के महान् प्रभावशाली तथा महायशस्वी पुत्र—ऋषि मृगापुत्र के तपोप्रधान त्रिलोक विश्रुत एवं मुक्तिरूपी प्रधान गति वाले उत्तम चरित्र के वर्णन को सुनकर— ॥ ९८ ॥

After hearing the austerity drenched, liberation oriented and universally known story of life of the extremely glorious and magnificent ascetic Mrigaputra, the son of queen Mriga— (98)

वियाणिया दुक्खविवद्धणं धणं, ममत्तबंध च महब्भयावहं ।  
सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं, धारेह निव्वाणगुणावहं महं ॥ ९९ ॥

—त्ति बेमिं ।

धन को दुःख बढ़ाने वाला और ममता के बंधन को महाभयंकर जानकर, निर्वाण के गुणों-मोक्ष को प्राप्त कराने वाली, अनन्त सुख को प्राप्त कराने वाली अनुत्तर धर्म की धुरा को धारण करो ॥ ९९ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

Knowing that wealth magnifies miseries and bondage of fondness is very atrocious, you too should hold the baton of the exalted religion that endows you with virtues leading to liberation and eternal bliss. (99)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ३—'त्रायस्त्रिंश' जाति के देवों को "दोगुन्दग" देव कहते हैं। ये जैन और बौद्ध परम्परा में बड़े ही महत्व के देव माने गये हैं। उन्हें सदा भोगपरायण कहा है।

गाथा ४—चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त आदि 'मणि' कहलाते हैं और शेष गोमेदक आदि 'रत्न'।

गाथा १७—"किम्पाक" एक विष वृक्ष होता है। उसके फल खाने में सुस्वादु होते हैं, किन्तु परिपाक में भयंकर कटु अर्थात् प्राणघातक किंपाक का शब्दार्थ ही है—"किम्" अर्थात् कुत्सित-बुरा, "पाक" अर्थात् विपाक-परिणाम है जिसका।

गाथा ३६—सामान्यतया जैन श्रमणों की भिक्षा के लिये गोचर (गोचरी) एवं मधुकरी शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ कापोती वृत्ति का उल्लेख है। कबूतर सशंकभाव से बड़ी सतर्कता के साथ एक-एक दाना चुगता है, इसी प्रकार एषणा के दोषों की शंका को ध्यान में रखते हुए भिक्षु भी थोड़ा-से थोड़ा आहार अनेक घरों से ग्रहण करता है।

गाथा ४६—संसाररूपी अटवी के नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव—ये चार अन्त होते हैं, अतः आगमों में संसार को "चाउरंत" कहा गया है।

## IMPORTANT NOTES

**Verse 3**—The gods of *Traayastrimsha* class are called *Dogundaga* gods. They have a very important place in both Jain and Buddhist traditions. They are defined as completely indulgence and pleasure oriented.

**Verse 4**—Some gems and ornamental stones including Chandrakanta and Suryakanta are classified as *mani* and others including Gomedaka, as *ratna*.

**Verse 17**—Kimpaak is a poisonous tree. Its fruits are very tasteful while eating. But the ultimate effect is bitter, deathly. Kimpaak means — *kim* = bad + *paak* = fruition or consequence.

**Verse 36**—For alms-seeking of Jain ascetics the words commonly in use are gochari (grazing by cow) and *madhukari* (collection of honey by bees). But here the word *Kaapoti vritti* (eating habit of a pigeon) is mentioned. Pigeon takes grains one by one carefully with precaution. In the same way an ascetic collects from small quantities from many houses being cautious and careful of faults of alms collection.

**Verse 46**—Every journey in this wilderness of worldly existence (cycles of rebirth) ends at one of the four places; namely hell, animal world, human world and divine realm. That is the reason in Jain canon (*Agams*) worldly existence is called *chaturant* (having four ends).



## बीसवाँ अध्ययन : महानिर्ग्रन्थीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम महानिर्ग्रन्थीय है। इसमें महानिर्ग्रन्थ की चर्या तथा मौलिक सिद्धान्तों का वर्णन हुआ है।

इससे पहले अध्ययन मृगापुत्र में मृगचरिया-मुनि की उत्कृष्ट चर्या के विषय में संकेतात्मक निर्देश किया गया था और इस अध्ययन में उसका विशदीकरण है।

प्रस्तुत अध्ययन का प्रारम्भ अनाथी मुनि और राजा श्रेणिक के वार्तालाप से होता है।

एक बार मगधेश श्रेणिक राजगृह के बाह्य भाग में अवस्थित मण्डिकुक्षि उद्यान में प्रातः भ्रमण के लिये गये। वहाँ उन्होंने एक तरुण निर्ग्रन्थ को ध्यान-लीन देखा। उनके अनुपम सौन्दर्य, सुकुमारता, रूप-लावण्यता आदि को देखकर राजा चकित रह गया। ध्यान पूरा होने पर जब मुनि ने आँखें खोलीं तो राजा ने कहा—

“आप श्रमण कैसे बन गये? आपकी यह युवावस्था और कांतिमान शरीर तो भोग भोगने योग्य है। इस भोग की आयु में योग ग्रहण करने का क्या कारण है?”

मुनि ने संक्षिप्त उत्तर दिया—“राजन्! मैं अनाथ हूँ।”

यद्यपि राजा श्रेणिक को मुनि के इस कथन पर विश्वास नहीं हुआ; क्योंकि मुनि की भव्य आकृति उनके सभ्रान्त कुल का परिचय दे रही थी; सोचा—‘शायद, मुनि का कथन सत्य हो।’ वह बोला—“मैं आपका नाथ बनता हूँ। आपको भोगों का आमन्त्रण देता हूँ। मैं आपके लिए सभी प्रकार की सुख-सुविधाएँ तथा शोग-सामग्री का प्रबन्ध करूँगा।”

मुनि ने कहा—“राजन्! तुम स्वयं अनाथ हो, मेरे नाथ कैसे बनोगे?”

राजा समझा कि मुनि ने उसे पहचाना नहीं है। उसने कहा—“आप मुझे नहीं जानते? मैं मगध सम्राट् श्रेणिक हूँ। मेरे पास चतुरंगिणी सेना, धन से भरा-पूरा कोश, विशाल साम्राज्य, अनेकों रानियाँ और हजारों दास-दासियाँ हैं। फिर भी आप मुझे अनाथ समझ रहे हैं। आपका यह कथन सत्य नहीं है?”

मुनि ने कहा—“राजन्! जिस अभिप्राय से मैंने ‘अनाथ’ शब्द कहा है, वह तुम नहीं समझे।”

तब श्रेणिक की जिज्ञासा पर मुनि ने अपने जीवन में घटी घटना का उल्लेख करके समझाया—

राजन्! मैं कौशाम्बी के इभ्य श्रेष्ठी का पुत्र हूँ। बड़े लाड़-प्यार से मेरा पालन-पोषण हुआ। युवा होने पर विवाह हो गया।



एक बार मेरी आँखों में तीव्र वेदना हुई। मेरे पिता ने पानी की तरह धन बहाया। वैद्य, चिकित्सक, मंत्र-तंत्रवादियों ने उपचार किया लेकिन मेरी वेदना कम न कर सके। मेरी माता-पत्नी आँसू बहाती रहती थीं। छोटे-बड़े भाई-बहन, मित्र, सुहृद भी मेरी सेवा में लगे रहते थे; किन्तु मेरी वेदना कम न हो सकी।

राजन्! वह मेरी अनाथता थी।

फिर एक रात मैंने स्वयं ही संकल्प किया—‘यदि मेरी अक्षिवेदना मिट जायेगी तो मैं श्रमण बन जाऊँगा।’ उस रात मुझे चैन से नींद आई। सुबह उठा तो वेदना भी मिट चुकी थी। मैं श्रमण बन गया।

तदुपरान्त अनाथी मुनि ने कहा—केवल श्रमण वेश धारण करने से ही सनाथता नहीं आती। जो राग-द्वेष, कामभोगों की भावनाओं से ग्रसित होते हैं, वे श्रमण भी अनाथ ही होते हैं।

सनाथ तो केवल शुद्धाचारी श्रमण ही होते हैं।

राजा श्रेणिक ने सनाथ-अनाथ का यथार्थ अभिप्राय समझा और सम्यक्त्व ग्रहण किया।

सम्पूर्ण अध्ययन की भाषा ओजपूर्ण, रोचक और प्रेरक है। सूक्तियों और उपमाओं की प्रचुरता है। यह अध्ययन किसी भी व्यक्ति को अन्तर्मुखी और उसकी आत्मा को जागृत करने में सफल है।

प्रस्तुत अध्ययन में ६० गाथाएँ हैं।



VIMSHATI ADHYAYAN :  
MAHANIRGRANTHIYA

**Foreview**

The title of this chapter is Mahanirgranthiya. It deals with praxis and conduct of a great ascetic and related basic principles.

The preceding chapter contained directional indications about ideal ascetic conduct. This chapter has its elaboration.

This chapter begins with a dialogue between king Shrenik and ascetic Anaathi.

One day Shrenik, the king of Magadh went for a morning walk in Mandikukshi garden in outskirts of Rajagriha city. There he saw a young ascetic engrossed in meditation. The king was amazed at his matchless beauty, tenderness and charm. When ascetic opened his eyes on concluding his meditation, the king asked—

“How did you become an ascetic? Your youth and radiant body are fit to indulge in worldly enjoyments and comforts? What made you embrace yoga in your tender age of enjoyment?”

Ascetic gave a brief reply—“O king! I am *anaath*.” (orphan or one without a guardian or protector).

Though king Shrenik did not believe what the ascetic said, because the handsome looks of the ascetic were suggestive of a cultured upper class family, he reluctantly took the ascetic's statement to be true and suggested—“I am ready to become your guardian and take you under my protection. I invite you to enjoy life. I will arrange for all facilities needed for happiness, comfort and joy for you.”

The ascetic said—“O king! How can you be my guardian, when you yourself are unguarded ?”

The king thought that ascetic had not recognized him. He said—“Don't you know me? I am king Shrenik, the emperor of Magadh. I have four limbed army, treasury full of riches, vast empire, many queens and thousands of slaves. Even then you consider me to be unguarded. What you say is not true.”

Ascetic said—“O king! You did not grasp what I meant by the word 'orphan' or unguarded.”

Then on being asked by Shrenik, the ascetic narrated an incident from his life.

O king! I am the son of a wealthy merchant of Kaushambi city. I was brought up with a lot of love and affection. When I grew young I was married.





Once I had severe pain in the eye. My father lavishly spent money on my treatment. Many physicians and experts of *mantra* and *tantra* (faith healers) gave the best of treatments; but they all failed to give me relief from the pain. My mother and wife shed tears. My younger brothers, sisters, friends and other well-wishers sincerely took my care but the agony could not even be reduced.

O king! That was my state of being unguarded.

Then one night I resolved on my own—'If the pain in my eye is completely cured, I will become an ascetic.' That night I slept comfortably. When I got up in the morning there was no pain in my eyes. I became an ascetic.

After the story ascetic Anaathi added—Simply donning ascetic garb does not make you guarded. In fact the ascetics who are maligned with feelings of attachment, aversion, mundane pleasures and comforts, are also unguarded.

Only those ascetics who are steadfast in faultless ascetic-conduct are truly guarded.

King Shrenik understood the real meaning of guarded and unguarded and accepted righteousness.

The language of this chapter is powerful, interesting and inspiring. It is enriched with maxims and metaphors. This chapter has the power to make a man introvert and trigger inner awakening.

The chapter has 60 verses.





विंशद्भ्रमं ब्रह्मज्ञयणं : महानियच्छिञ्जं  
विंशति अध्ययन : महानिर्गन्धीय  
Chapter-20 : ABOUT GREAT ASCETIC

सिद्धाणं नमो किच्चा, संजयाणं च भावओ ।  
अत्थधम्मगइं तच्चं, अणुसट्ठिं सुणेह मे ॥ १ ॥

सिद्धों तथा संयतों ( आचार्य, उपाध्याय, साधु) को भाव सहित नमस्कार करके मैं अर्थ—( मोक्ष) और धर्म ( रत्नत्रयरूप धर्म) का ज्ञान कराने वाली तथ्यपूर्ण शिक्षा का कथन करता हूँ, उसे मुझसे सुनो ॥ १ ॥

Paying homage to the perfected (liberated) ones and restrained ones (ascetics of all levels including *acharyas*, *upadhyayas* and *sadhus*) I convey authentic teachings, which are capable of imparting knowledge of essence (goal of liberation) and religion (based on the three gems of right knowledge, perception/faith and conduct); hear that from me. (1)

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।  
विहारजत्तं निज्जाओ, मण्डिकुच्छिसि चेइए ॥ २ ॥

प्रचुर रत्नों का स्वामी, मगध देश का अधिपति राजा श्रेणिक मण्डिकुक्षि उद्यान में उद्यान-क्रीड़ा के लिए नगर से निकला ॥ २ ॥

The owner of abundant jewels, king Shrenik, the emperor of Magadh, came out of the city to go for amusement to Mandikukshi garden. (2)

नाणादुमलयाइण्णं, नाणापक्खिनिसेवियं ।  
नाणाकुसुमसंछन्नं, उज्जाणं नन्दणोवमं ॥ ३ ॥

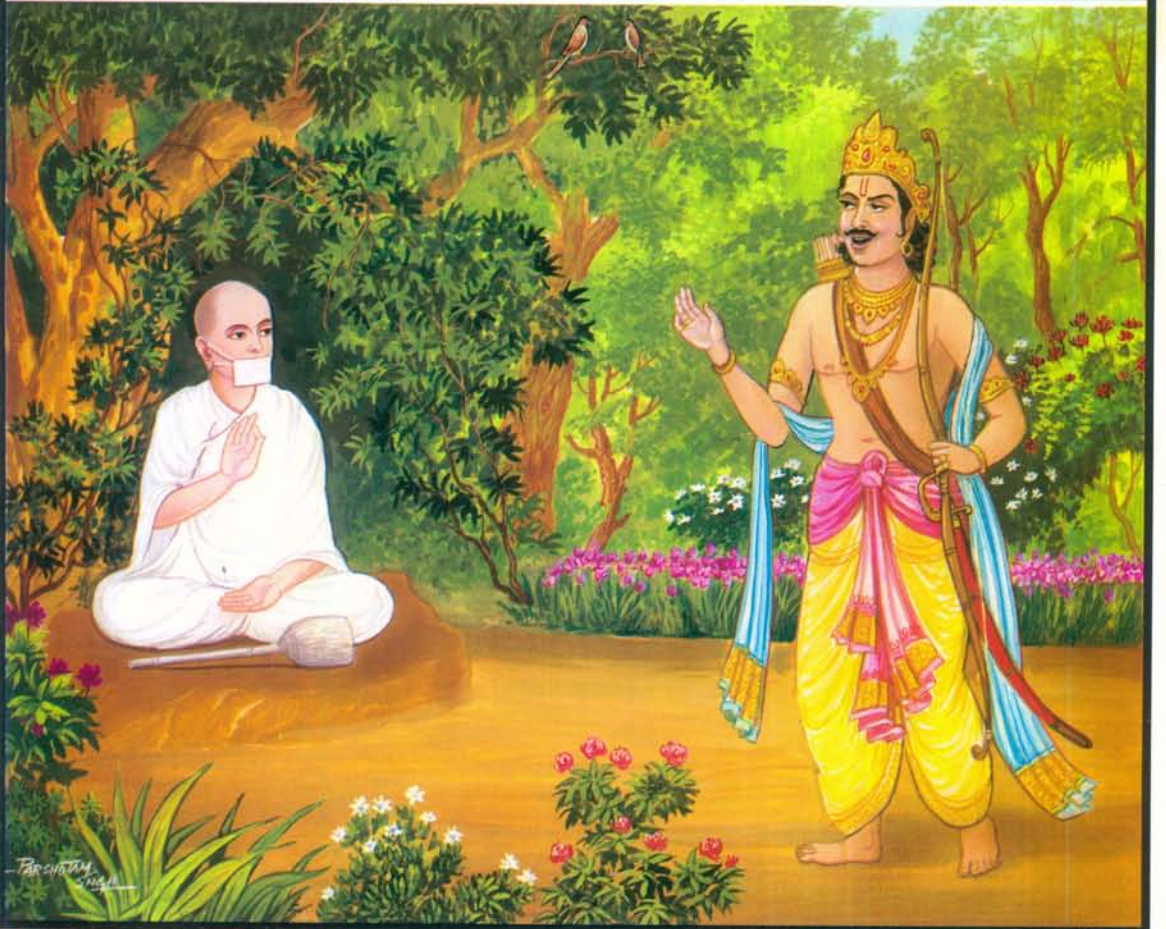
वह उद्यान नंदनवन के समान अनेक प्रकार के वृक्षों, लताओं से आच्छादित, विविध प्रकार के पक्षियों से आकीर्ण और विभिन्न प्रकार के पुष्पों से भरा हुआ था ॥ ३ ॥

Like Nandanavan (divine garden) that garden was filled with several kinds of trees, covered with creepers, crowded with a variety of birds and enriched by miscellany of flowers. (3)

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं ।  
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥

उस उद्यान में राजा श्रेणिक ने एक वृक्ष के मूल में एक सुख-भोग के आयुष्य वाले, सुकुमार, सम्यक् समाधियुक्त संयत को ध्यानस्थ बैठे देखा ॥ ४ ॥

In that garden under a tree king Shrenik saw a tender looking ascetic of merry-making age (youthful) sitting with serenity and restraint deeply engrossed in meditation. (4)



## अनाथी मुनि

राजगृह के बाहर मण्डिकुक्षि उद्यान में राजा श्रेणिक ने वृक्ष एवं लताओं से आकीर्ण एक लतामण्डप में मुनि को ध्यान करते हुये देखा। ध्यान समाप्त होने पर राजा ने मुनि से अनेक प्रश्न पूछे। मुनि ने बताया, 'मैं अनाथ हूँ' तो राजा जोर से हँसने लगा।

—अध्ययन 20, सू. 1-9

## ASCETIC ANAATHI

Once, king Shrenik went to Mandikukshi garden outside Rajagriha city. There he saw an ascetic, in deep meditation in an alcove of creepers and trees. When the ascetic concluded his meditation, the King asked many questions. When the ascetic said – 'I am an orphan', the king laughed loudly.

—Chapter 20, Aphorism 1-9





तस्स रूवं तु पासित्ता, राइणो तम्मि संजए ।  
अच्चन्तपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ ॥ ५ ॥

उस संयत के रूप को देखकर राजा के मन में उसके प्रति अत्यधिक अतुलनीय आश्चर्य हुआ ॥ ५ ॥

Observing the graceful looks of that ascetic, the king was filled with great and unequalled astonishment. (5)

अहो ! वण्णो अहो ! रूवं, अहो ! अज्जस्स सोमया ।  
अहो ! खंती, अहो ! मुत्ती, अहो ! भोगे असंगया ॥ ६ ॥

राजा श्रेणिक के हृदय में आश्चर्यकारी भाव उमड़े-अहो ! इस संयत का क्या अर्थ है ? क्या रूप है ? कैसी सौम्यता है ? कितनी क्षमा है ? कैसी निर्लोभता है ? और भोगों के प्रति कितनी असंगतता है ? ॥ ६ ॥

(King Shrenik was-) Overwhelmed with sentiments of wonderment—Oh ! What a complexion ? Oh what grace ? Oh what noble serenity ? Oh what forgiveness ? Oh what an absence of greed ? Oh what a disregard for pleasures ? this ascetic has. (6)

तस्स पाए उ वन्दिता, कारुण य पयाहिणं ।  
नाइदूरमणासन्ने, पंजली पडिपुच्छई— ॥ ७ ॥

उस साधु की प्रदक्षिणा तथा वन्दना करके न तो अधिक दूर और न अति समीप-योग्य स्थान पर खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर पूछने लगा— ॥ ७ ॥

After circumambulating the ascetic and paying homage the king stood at a proper place, neither too far nor too near and joining his palms asked— (7)

तरुणोसि अज्ज ! पव्वइओ, भोगकालम्मि संजया !  
उवट्ठओ सि सामण्णे, एयमट्ठं सुणोमि ता ॥ ८ ॥

हे आर्य ! हे संयत ! आप भोगकाल में—युवावय में प्रव्रजित हुए हो, श्रामण्य की परिपालना कर रहे हो। इसका क्या कारण है ? मैं सुनना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

O noble one! O restrained one! You have embraced the ascetic way in your age of merriment sincerely following the ascetic-conduct. What is the reason for this? I would like to know. (8)

अणाहो मि महाराय !, नाहो मज्झ न विज्जई ।  
अणुकम्पगं सुहिं वावि, कच्चि नाभिसमेमऽहं ॥ ९ ॥

(साधु—) महाराज ! मैं अनाथ हूँ, मेरा कोई नाथ नहीं है। अनुकम्पा करने वाला कोई सुहृत् मित्र भी मुझे न मिल पाया ॥ ९ ॥

(Ascetic-) O king! I am an orphan (*anaath*); I have no guardian or protection. I never found a compassionate friend or a sympathizer. (9)



तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो ।  
एवं ते इडिढमन्तस्स, कहं नाहो न विज्जई ? ॥ १० ॥

(श्रेणिक—) यह सुनकर मगधपति राजा श्रेणिक जोर से हँसा और फिर बोला—तुम ऋद्धि-सम्पन्न दिखाई देते हो, फिर भी तुम्हारा कोई नाथ कैसे नहीं है ? ॥ १० ॥

(Shrenik—) Hearing this, king Shrenik of Magadh laughed loudly and said—You appear to be wealthy, even then how come you have no guardian? (10)

होमि नाहो भयन्ताणं, भोगे भुंजाहि संजया ।  
मित्त—नाईपरिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥ ११ ॥

हे भदन्त ! मैं आपका नाथ बन जाता हूँ। हे संयत ! आप मित्र और ज्ञातिजनों के साथ भोगों को भोगो; क्योंकि मानव-जन्म की प्राप्ति अति दुर्लभ है ॥ ११ ॥

I will be your guardian. O restrained one! You should enjoy pleasures of life with your friends and clansmen; for it is rare to be born as a human. (11)

अप्पणा वि अणाहो सि, सेणिया ! मगहाहिवा !  
अप्पणा अणाहो सन्तो, कहं नाहो भविस्ससि ? ॥ १२ ॥

(श्रमण—) हे मगधाधीश राजा श्रेणिक ! तुम स्वयं अनाथ हो तब मेरे नाथ कैसे बन सकते हो ? ॥ १२ ॥

(Ascetic—) O king Shrenik, emperor of Magadh! You yourself are unguarded and without any protection, then how can you become my guardian? (12)

एवं वुत्तो नरिन्दो सो, सुसंभन्तो सुविमिहो ।  
वयणं अस्सुयपुव्वं, साहुणा विम्हयन्निओ ॥ १३ ॥

पहले से ही विस्मित राजा श्रेणिक मुनि के इन वचनों को सुनकर और भी विस्मित तथा संभ्रमित हो गया ॥ १३ ॥

Already astonished king Shrenik was further surprised and confused hearing these words from the ascetic. (13)

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे, पुरं अन्तेउरं च मे ।  
भुंजामि माणुसे भोगे, आणा इस्सरियं च मे ॥ १४ ॥

(श्रेणिक—) मेरे पास घोड़े हैं, हाथी हैं, मनुष्य (सेवक) हैं। यह नगर मेरा है और मेरा अन्तःपुर भी है, मेरा ऐश्वर्य है तथा मेरी आज्ञा चलती है। मैं मनुष्य सम्बन्धी सभी प्रकार के भोगों को भोग रहा हूँ ॥ १४ ॥

(Shrenik—) I possess horses, elephants and attendants. This city belongs to me and I have palace with female quarters (with wives and maids). I have grandeur and my word is command. I enjoy all pleasures and comforts of human life. (14)



एरिसे सम्पयग्गम्मि, सब्बकामसमप्पिए ।  
कहं अणाहो भवइ?, मा हु भन्ते ! मुसं वए ॥ १५ ॥

इस प्रकार की उत्तम संपदा के कारण मुझे सभी प्रकार के कामभोग सुलभ हैं; फिर मैं कैसे अनाथ हूँ? भन्ते! आप असत्य भाषण न करें ॥ १५ ॥

With such great wealth (power) all pleasures and comforts are easily available to me. Even then how can I be without protection? Bhante! Please do not tell a lie. (15)

न तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पोत्थं व पत्थिवा !  
जहा अणाहो भवई, सणाहो वां नराहिवा ? ॥ १६ ॥

(श्रमण—) हे पृथ्वीनाथ! तुम अनाथ शब्द और उसके परमार्थ को नहीं जानते कि कोई व्यक्ति किस प्रकार अनाथ अथवा सनाथ होता है? ॥ १६ ॥

(Ascetic—) O lord of the land ! You do not understand the word *anaath* and its real meaning that how a person is with and without guardian or protector ? (16)

सुणेह मे महाराय!, अवक्खित्तेण चेयसा ।  
जहा अणाहो भवई, जहा मे य पवत्तियं ॥ १७ ॥

हे राजन्! एकाग्रचित्त होकर सुनो कि कोई व्यक्ति कैसे अनाथ होता है और मैंने किस आशय से इस शब्द का प्रयोग किया है? ॥ १७ ॥

O king! Listen attentively that how a man becomes orphan or without protection, and with what intent I used this word ? (17)

कोसम्बी नाम नयरी, पुराणपुरभेयणी ।  
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूयधणसंचओ ॥ १८ ॥

प्राचीन नगरों में अति सुन्दर कौशाम्बी नाम की नगरी थी। वहाँ मेरे पिता निवास करते थे। उनके पास प्रचुर मात्रा में धन का संचय (संग्रह) था ॥ १८ ॥

Among the ancient cities there was a beautiful city named Kaushambi. My father lived there. He had accumulated wealth in abundance. (18)

पढमे वए महाराय!, अउला मे अच्छिवेयणा ।  
अहोत्था विउल्लो दाहो, सव्वंगेसु य पत्थिवा ! ॥ १९ ॥

महाराज! प्रथम वय-युवावस्था में मेरी आँखों में अतुल-अत्यधिक तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। हे राजन्! उसके कारण मेरे सभी अंगों में तीव्र दाह होने लगा ॥ १९ ॥

O king! In the prime of my life (youth), I was afflicted with severe pain in my eyes. That also caused high fever in my whole body. (19)

सत्थं जहा परमत्तिक्खं, सरीरविवरन्तरे ।  
पवेसेज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥ २० ॥



जैसे कोई क्रुद्ध शत्रु शरीर के मर्मस्थानों में परम तीक्ष्ण शस्त्र भौंक दे तब जैसी घोर पीड़ा होती है, वैसी तीव्र पीड़ा मेरी आँखों में हो रही थी ॥ २० ॥

The pain in my eyes was as excruciating as that in delicate vital parts of the body pierced by an enemy with a sharp weapon. (20)

तियं मे अन्तरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई।  
इन्दासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥ २१ ॥

इन्द्र के वज्र प्रहार से जैसी मर्मान्तक पीड़ा होती है, वैसी ही परम दारुण वेदना मेरे त्रिक-कटि प्रदेश, अन्तरेच्छ-हृदय और उत्तमंग-मस्तक में हो रही थी ॥ २१ ॥

Very sharp agonizing pain, like the severe pain caused by thunderbolt, had spread to my waist (*trik pradesh*), heart (*antarechchha*) and head (*uttamanga*). (21)

उवट्टिया मे आयरिया, विज्जा-मन्ततिगिच्छगा।  
अबीया सत्थकुसला, मन्त-मूलविसारया ॥ २२ ॥

विद्या तथा मंत्रों से चिकित्सा करने वाले, मंत्र एवं जड़ी-बूटियों (मूल) द्वारा चिकित्सा में निपुण, शस्त्र (शल्य) चिकित्सा में अति कुशल, आयुर्वेद में निष्णात-सभी मेरा उपचार करने लगे ॥ २२ ॥

Healers with special power of mantras, experts of herbal medicines with mantras, accomplished surgeons and proficient medical practitioners (*ayurveda*) started my treatment. (22)

ते मे तिगिन्छं कुव्वन्ति, चाउप्पायं जहाहियं।  
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २३ ॥

उन्होंने मेरे रोग की उपशान्ति के लिए चतुष्पाद-चिकित्सा (वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक) की; लेकिन वे मुझे पीड़ा से मुक्त न कर सके, यह मेरी अनाथता थी ॥ २३ ॥

For pacifying my ailment they gave me four limbed treatment (physician, patient, medicine and nurses) but they could not give me relief from the pain. This was my state of being unprotected or an orphan. (23)

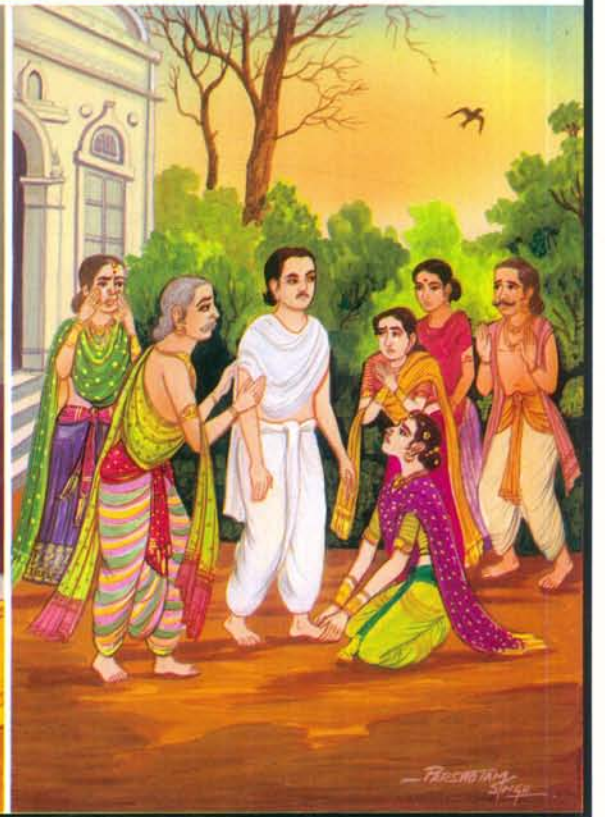
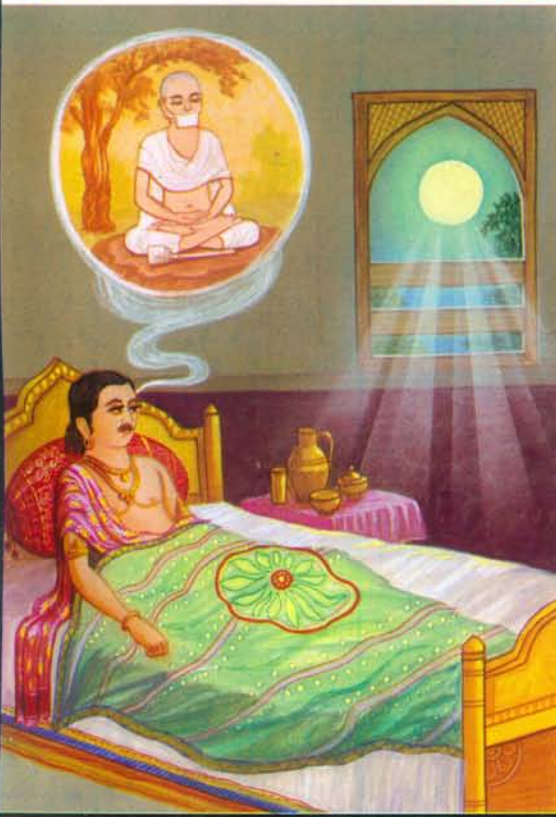
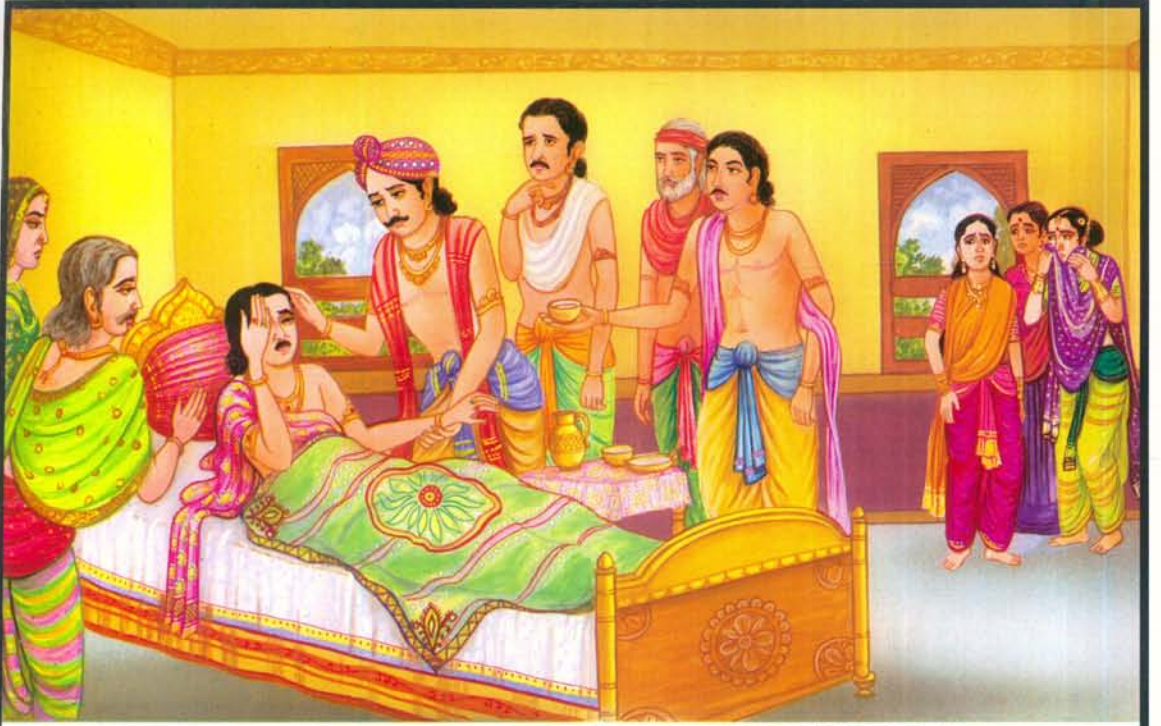
पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा।  
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥ २४ ॥

मेरे लिए मेरे पिता ने चिकित्सकों को अपनी सारभूत वस्तुएँ (धन, रत्न, मणि, माणिक्य आदि) दीं, फिर भी वे चिकित्सक मुझे वेदना-मुक्त न कर सके, यह मेरी अनाथता थी ॥ २४ ॥

My father gave his valuable possessions (wealth, jewels, gems, gold etc.) to physicians for my cure; still those healers could not pacify my pains. That is how I was an orphan or without protection. (24)

माया य मे महाराय!, पुत्तसोगदुहट्टिया।  
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥ २५ ॥





## मुनि की आत्मकथा

मुनि ने अपनी आत्मकथा सुनाई—मैं कोशाम्बी के ईभ्य सेठ का पुत्र हूँ। एक बार मेरी आँखों में तीव्र वेदना हुई, परन्तु पानी की तरह धन बहाने एवं अनेक उपचार करने पर भी पीड़ा शान्त नहीं हुई। तब आत्म-चिन्तन करते हुये मैंने संकल्प किया—यदि मैं इस वेदना से मुक्त हो जाऊँ, तो संसार त्यागकर श्रमण बन जाऊँगा। मेरी वेदना शान्त हो गई और मैंने घर-परिवार का त्याग कर दिया।

—अध्ययन 20, सू. 19-34

## THE STORY OF THE ASCETIC

The ascetic narrated his life-story — I am the son of a rich merchant of Kaushambi city. Once I had severe eye-pain. In spite of all possible treatment and spending enormous wealth I got no relief. Then after much pondering I resolved — If I get relieved of this agony I will renounce the world and become a homeless ascetic. My pain disappeared and I renounced my home and family.

—Chapter 20, Aphorism 19-34





महाराज ! मेरी माता, मेरे प्रति मोह के कारण पीड़ित रहती थी; लेकिन वह भी मुझे मेरे दुःख से मुक्त न कर सकी; यह मेरी अनाथता है ॥ २५ ॥

O king! My mother always was suffering due to her love for me but she also failed to free me from my misery. This was my state of being without any guardian. (25)

भायरो मे महाराय !, सगा जेडु-कणिडुगा।

न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २६ ॥

महाराज ! मेरे सगे छोटे-बड़े भाई भी मुझे दुःख से छुटकारा न दिला सके; यह मेरी अनाथता है ॥ २६ ॥

O king! My own younger and elder brothers also could not help rid me of my pain. That is how I was without a protector. (26)

भइणीओ मे महाराय !, सगा जेडु-कणिडुगा।

न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २७ ॥

महाराज ! मेरी छोटी-बड़ी सगी बहनें भी मुझे मेरे दुःख से त्राण न दिला सकी; यह मेरी अनाथता है ॥ २७ ॥

O king! My own younger and elder sisters too could not make me free from my pain. Thus I was without a protector. (27)

भारिया मे महाराय !, अणुरत्ता अणुव्वया।

अंसुपुण्णेहिं नयणेहिं, उरं मे परिसिंचई ॥ २८ ॥

महाराज ! मुझमें अनुरक्त मेरी पतिव्रता पत्नी मेरे वक्षस्थल पर सिर रखकर आँसुओं से मेरे हृदय को भिगोती रहती थी ॥ २८ ॥

O king! My chaste and devoted wife, keeping her head on my chest moistened it by shedding tears. (28)

अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गन्ध-मल्ल-विलेवणं।

एण नायमणायं वा, सा बाला नोवभुंजई ॥ २९ ॥

मेरी वह नवयुवती पत्नी मेरी जानकारी में या परोक्ष में अन्न, पान, स्नान, विलेपन, गंध-माल्य आदि का प्रयोग (उपभोग) नहीं करती थी ॥ २९ ॥

With or without my knowledge that young wife of mine, ceased to indulge in eating, drinking, bathing and using pastes, perfumes, garlands and other beauty aids. (29)

खणं पि मे महाराय !, पासाओ वि न फिट्टई।

न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥ ३० ॥

वह एक क्षण के लिए भी मुझसे अलग नहीं होती थी। फिर भी हे महाराज ! वह मुझे मेरी वेदना से मुक्त न कर सकी, यही मेरी अनाथता है ॥ ३० ॥



O king! She did not leave my side even for an instant, but even then she could not rid me of my pain, O king! That is my state of being without a protector. (30)

तओ हं एवमाहंसु, दुःखमाहु पुणो पुणो ।  
वेयणा अणुभविउं जे, संसारम्मि अणन्तए ॥ ३१ ॥

तब निराश होकर मैंने मन-ही-मन विचार किया कि इस अनन्त संसार में प्राणी को बार-बार दुःसह दुःख भोगना पड़ता है ॥ ३१ ॥

Then loosing all hope I thought that in this endless cycle of rebirths (worldly existence) a living being has to suffer dreadful misery time and again. (31)

सइं च जइ मुच्चेज्जा, वेयणा विउला इओ ।  
खन्तो दन्तो निरारम्भो, पव्वए अणगारियं ॥ ३२ ॥

यदि एक बार मैं इस घोर वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो क्षमावान, दमितेन्द्रिय, आरम्भ-त्यागी अनगार बन जाऊँगा ॥ ३२ ॥

For once if I am rid of this intense agony, then I will become a forgiving, sense-subdued, homeless ascetic. (32)

एवं च चिन्तइत्ताणं, पसुत्तो मि नराहिवा ।  
परियट्टन्तीए राईए, वेयणा मे खयं गया ॥ ३३ ॥

हे नरेश ! इस प्रकार का चिन्तन (दृढ़ संकल्प) करके मैं सो गया और बीतती हुई रात्रि के साथ मेरी वेदना भी समाप्त हो गई ॥ ३३ ॥

O king! With such firm resolve, I fell asleep and with the passing night my pain also vanished. (33)

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ताण बन्धवे ।  
खन्तो, दन्तो, निरारम्भो, पव्वइओ ऽणगारियं ॥ ३४ ॥

तब सूर्योदय के साथ ही नीरोग होकर मैंने बन्धु-बान्धवों से पूछा-अनुमति ली और क्षमाशील, दमितेन्द्रिय, निरारम्भी अनगार बन गया ॥ ३४ ॥

Then getting cured of my ailment with the rising sun, I took leave of my family members and relatives to become a forgiving, sense-subdued and sin-free homeless ascetic. (34)

ततो हं नाहो जाओ, अप्पणो य परस्स य ।  
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाण थावराण य ॥ ३५ ॥

तदनन्तर मैं अपना और दूसरों का, त्रस और स्थावर सभी प्राणियों का नाथ बन गया ॥ ३५ ॥

After that I became the guardian angel (*naath*) for my own self (soul) and all others—all living beings, mobile and immobile. (35)

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली ।  
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नन्दणं वणं ॥ ३६ ॥



मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, आत्मा ही कूट शाल्मली वृक्ष है, कामधेनु है और नन्दनवन है ॥ ३६ ॥

It is my own soul that is Vaitarani river, Koot Shalmali tree, Kaamadhenu and Nandanavana (divine things that harm or protect). (36)

अप्या कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।  
अप्या मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठय-सुपट्ठओ ॥ ३७ ॥

यह आत्मा ही अपने सुख-दुःखों का कर्ता है और भोक्ता भी यही है। शुभ प्रवृत्तियों में प्रवृत्त आत्मा ही अपना मित्र है और दृष्टप्रवृत्तियों में लीन आत्मा ही अपना शत्रु है ॥ ३७ ॥

This soul itself is the doer and non-doer of joy and miseries. When indulging in noble intents the soul is one's friend and when indulging in ignoble intents the soul is one's foe. (37)

इमा हु अन्ना वि अणाहया निवा !, तमेगचित्तो निहुओ सुणेहिं।  
नियण्ठधम्मं लहियाण वी जहा, सीयन्ति एगे बहुकायरा नरा ॥ ३८ ॥

नरेश ! एक अन्य प्रकार की भी अनाथता है, उसे एकाग्र और शान्त हृदय से सुनो। बहुत से ऐसे भी कायर पुरुष होते हैं जो निर्ग्रन्थ धर्म को प्राप्त करके भी खिन्न हो जाते हैं—दुःख का अनुभव करते हैं ॥ ३८ ॥

O king! There is another state of being unprotected, listen about that with serene and attentive mind. There are many such coward individuals who remain disturbed even after accepting ascetic conduct and go astray. (38)

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं, सम्मं नो फासयई पमाया।  
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे, न मूलओ छिन्दन बन्धणं से ॥ ३९ ॥

जो प्रव्रजित होकर प्रमाद के कारण महाव्रतों का सम्यक् रूप से परिपालन नहीं करता, आत्मा और इन्द्रियों का निग्रह नहीं करता, रसों-स्वादों में आसक्त रहता है वह बन्धनों का मूलोच्छेद नहीं कर सकता है ॥ ३९ ॥

After getting initiated, one who does not properly practise the great vows due to negligence does not control his own soul and senses, remains obsessed with taste buds cannot uproot the *karmic* bonds. (39)

आउत्तया जस्स न अत्थि काइ, इरियाए भासाए तहेसणाए।  
आयाण-निक्खेव-दुगुंछणाए, न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥ ४० ॥

जिस साधक की ईर्ष्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और उच्चार-प्रस्रवण (दुगुंछण-जुगुप्सा उत्पन्न करने वाली) परिष्ठापनिका—इन पाँचों समितियों में यतना (—आइत्तया) नहीं है, वह उस मार्ग पर नहीं चल सकता है, जिस पर वीर पुरुष चलते हैं ॥ ४० ॥

The aspirant who is not careful in observation of the five circumspections related to movement, speech, alms-seeking, taking and giving and disposing odious excreta, cannot follow the path the brave tread. (40)



चिरं पि से मुण्डरुई भवित्ता, अथिरव्वए तव-नियमेहि भट्ठे।  
चिरं पि अप्पण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए ॥ ४१ ॥

जो महाव्रतों के पालन में अस्थिर और तप-नियमों के आचरण से भ्रष्ट है, वह मुण्डित (मुण्डरुचि) (केशलॉच आदि द्वारा) दीर्घकाल तक शरीर को कष्ट देकर भी संसार से पार नहीं हो सकता है ॥ ४१ ॥

One who wavers in observing the great vows and transgresses the austerity and code based conduct cannot go across the cycles of rebirth even after recurrent tonsuring and mortifying the body. (41)

पोल्ले व मुट्ठी जह से असारे, अयन्तिए कूडकहावणे वा।  
राढामणी वेरुलियप्पगासे, अमहग्घए होइ य जाणएसु ॥ ४२ ॥

जिस प्रकार पोली (खाली) मुट्ठी, अयंत्रित-अप्रमाणित खोटा सिक्का और काँच मणि, यद्यपि वैदूर्य मणि के समान चमकती है लेकिन जानकारों की दृष्टि में इनका कोई मूल्य नहीं होता (इसी प्रकार चारित्र-गुणों से शून्य मात्र वेशधारी मुण्डित भी निर्मूल्य होता है) ॥ ४२ ॥

He (the aforesaid unrighteous in ascetic garb and tonsured) is empty like a clenched fist, worthless like a counterfeit coin (stamped metal pieces). In the eyes of the discerning wise he is without any value just like a glittering glass bead resembling cat's eye. (42)

कुसीललिंगं इह धारइत्ता, इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता।  
असंजए संजयलप्पमाणे, विणिघायमागच्छइ से चिरंपि ॥ ४३ ॥

इस जन्म में जो आचारहीनों का वेश (कुशील लिंग) तथा रजोहरण आदि श्रमण चिन्ह (इसिज्झय) धारण करके जीविका चलाता है तथा असंयत होकर भी अपने आप को संयत कहलाता है। वह दीर्घकाल तक जन्म-मरण की परम्परा को प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥

In this life he who subsists by donning heretic garb or by carrying token signs of asceticism (like ascetic-broom) and although unrestrained, pretends to be restrained ends up in cycles of rebirth for a very long time. (43)

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।  
एसे व धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ॥ ४४ ॥

जिस प्रकार पिया हुआ कालकूट विष, उलटा पकड़ा हुआ शस्त्र और अनियन्त्रित वैताल नाशकारी होते हैं, उसी प्रकार विषय-विकारों से युक्त धर्म भी साधक के लिए विनाशकारी होता है ॥ ४४ ॥

As consumed fatal poison, weapon held inverted and uncontrolled evil spirit (vaital) are devastating; in the same way religion contaminated with sensuality and perversion is devastating for an aspirant. (44)

जे लक्खणं सुविणं पउंजमाणे, निमित्त—कोऊहलसंपगाढे।  
कुहेडविज्जासवदारजीवी, न गच्छई सरणं तम्मि काले ॥ ४५ ॥



जो लक्षणशास्त्र, स्वप्नशास्त्र, निमित्तशास्त्र, कौतुक-इन्द्रजाल आदि असत्य और आश्चर्य उत्पन्न करने वाली विद्या (कुहेड) एवं आस्रवद्वारों में आसक्त होता है तथा इनके द्वारा अपनी जीविका चलाता है, उनके फल भोगते समय कोई भी उसका सहायक अथवा रक्षक नहीं होता ॥ ४५ ॥

One who is obsessed with and subsists on divining body-marks, signs and dreams; augury, voodoo and magic; and other such deluding and miraculous displays (*kuhed*), spells and sources of *karmic* inflow, gets no help or protection from anybody at the time of retribution. (45)

तमंतमेणेव उ से असीले, सया दुही विप्परियासुवेइ ।  
संधावई नरगतिरिक्खजोणिं, मोणं विराहेत्तु असाहुरुवे ॥ ४६ ॥

वह शीलरहित साधु अपने घोर अज्ञानान्धकार के कारण (तमंतमेणेव) विपरीत दृष्टि वाला हो जाता है तथा असाधु प्रवृत्ति वाला वह साधु मुनिधर्म (मोणं) की विराधना करके, सदा दुःखी होकर नरक तिर्य्यगति में जन्म-मरण करता रहता है ॥ ४६ ॥

That unrighteous ascetic becomes a pervert due to his own dense darkness of ignorance. That ascetic with ignoble tendency, after transgressing the ascetic code, is trapped in the cycles of rebirth in animal and infernal world to suffer miseries forever. (46)

उद्देशियं कीयगडं नियागं, न मुंचई किंचि अणेसणिज्जं ।  
अग्गी विवा सव्वभक्खी भवित्ता, इओ चुओ गच्छइ कट्टु पावं ॥ ४७ ॥

जो औद्देशिक, खरीदा हुआ नित्यपिंड आदि थोड़ा-सा भी अनेषणीय आहार नहीं छोड़ता, अग्नि की भाँति सर्वभक्षी वह साधु पापकर्म करके यहाँ से मरण करके दुर्गति में जाता है ॥ ४७ ॥

One who does not at all avoid forbidden alms including that prepared for him (*auddeshik*), bought for him (*kriti-krit*) and served after invitation (*nityagra*), due to his sinful deeds, that fire-like all consuming ascetic is reborn in lower realms after death. (47)

न तं अरी कंठछेत्ता करेइ, जं से करे अप्पणिया दुरप्पा ।  
से नाहिई मच्चुमुहं तु पत्ते, पच्छणुतावेण दयाविहूणे ॥ ४८ ॥

उस साधु की दुष्प्रवृत्तिशील आत्मा जैसा अनर्थ करती है, वैसा तो गला काटने वाला शत्रु भी नहीं करता। दया-संयमविहीन वह साधु मृत्यु के मुख में पहुँचने पर पश्चात्ताप करता हुआ इस तथ्य को जान पाता है ॥ ४८ ॥

A cut-throat enemy does not do him such harm as his own pervert soul does to him. Devoid of compassion and ascetic-discipline he becomes aware of this reality only while repenting in face of death. (48)

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स, जे उत्तमट्ठं विवज्जासमेइ ।  
इमे वि से नत्थि परे वि लोए, दुहओ वि से झिज्जइ तत्थ लोए ॥ ४९ ॥



जिस साधक की मोक्ष रूप अर्थ में विपरीत दृष्टि होती है उसकी साधुत्व में रुचि (नग्नरुई) व्यर्थ है। उसके लिए न यह लोक है, न परलोक है; वह दोनों लोकों से भ्रष्ट हो जाता है ॥ ४९ ॥

Worthless is the keenness in ascetic conduct (*nagnaruchi*) of the aspirant who has perverse view about the noble goal (liberation). Neither this world nor that is good for him; he begets depravity in both the worlds. (49)

एमेवऽहाछन्द-कुशीलरूवे, मगं विराहेत्तु जिणुत्तमाणं ।

कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा, निरद्वसोया परियावमेइ ॥ ५० ॥

इसी प्रकार स्वच्छन्द और कुशील साधु जिनेन्द्र भगवान के मार्ग की विराधना करके तथा भोग और रसों में आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली गीध पक्षिणी के समान परिताप करता है ॥ ५० ॥

In the same way the self-willed and depraved ascetic transgressing the path propagated by Jinas and getting obsessed with gratification of sensual wants grieves uselessly like a she-vulture. (50)

सोच्चाण मेहावि सुभासियं इमं, अणुसासणं नाणगुणोववेयं ।

मगं कुशीलाण जहाय सव्वं, महानियण्ठाण वए पहेणं ॥ ५१ ॥

मेधावी साधक ज्ञानगुण से युक्त इस हितशिक्षा-सुभाषित को सुनकर कुशील-आचारभ्रष्ट सब साधुओं के मार्ग को छोड़कर महानिर्ग्रन्थों के पथ का अनुगमन करे ॥ ५१ ॥

Having heard this wisdom enriched beneficial advice, an ingenious aspirant should abandon the path of all disgraced ascetics (transgressors of the code of conduct) and follow the path of great accomplished ascetics. (51)

चरित्तमायारगुणान्नि ए तओ, अणुत्तरं संजम पालियाणं ।

निरासवे संखवियाण कम्मं, उवेइ ठाणं विउलुत्तमं धुवं ॥ ५२ ॥

चारित्र-आचार तथा ज्ञान आदि गुणों से संपन्न निर्ग्रन्थ निरास्रव होता है। वह उत्कृष्ट शुद्ध संयम का पालन कर तथा कर्मों का क्षय करके विपुल, उत्तम, ध्रुव स्थान-मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥ ५२ ॥

An ascetic endowed with virtues including ascetic-praxis and right knowledge is free from inflow of *karmas*. Practicing the superb and pure ascetic-discipline he sheds all the *karmas* to attain the loftiest, best and eternal state, liberation. (52)

एवुग्गदन्ते वि महातवोधणे, महामुणी महापइन्ने महायसे ।

महानियण्ठिज्जमणिं महासुयं, से काहए महया वित्थरेणं ॥ ५३ ॥

इस प्रकार कर्मों का क्षय करने में उग्र, महातपोधन, महाप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, महायशस्वी उन मुनि ने महानिर्ग्रन्थीय महाश्रुत का अति विस्तारपूर्वक कथन किया ॥ ५३ ॥

Thus that ascetic, the vigorous destroyer of *karmas*, the great observer of austerities, the most steadfast in resolve, the victor of senses and the highly glorious, narrated in great detail the great ascetic-sermon. (53)





तुडो य सेणिको राया, इणमुदाहु कयंजली ।  
अणाहत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥ ५४ ॥

तुष्ट हुए राजा श्रेणिक ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! आपने मुझे अनाथता का स्वरूप भली-भाँति समझाया है ॥ ५४ ॥

Contented king Shrenik spoke with joined palms – Bhante! You have explained me the meaning of being unprotected very well. (54)

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं, लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी ।  
तुब्भे सणाहा य सबन्धवा य, जं भे ठिया मग्गे जिणुत्तमाणं ॥ ५५ ॥

हे महर्षि! आपका मनुष्य-जन्म वास्तव में सफल हुआ, आपकी लब्धियाँ सफल हुईं। आप ही सनाथ और सबान्धव हो क्योंकि आप जिनेश्वरों के मार्ग में स्थित हो ॥ ५५ ॥

O great sage! Really your birth as a human being has been worthwhile; your spiritual accomplishments have also been fruitful. You, indeed, are the only one with protection and with friends because you are firm on the path of Jinas. (55)

तं सि नाहो अणाहाणं, सब्बभूयाण संजया !  
खामेमि ते महाभाग !, इच्छामि अणुसासिउं ॥ ५६ ॥

हे संयत! आप अनार्थों के और सभी जीवों के नाथ हो। महाभाग! मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ और अब मेरी इच्छा है कि आप मुझे हितशिक्षा दें ॥ ५६ ॥

O restrained saint! You are the protector of the unprotected and savior of all the living beings. O fortunate one! I beg your forgiveness and I seek your beneficial instructions. (56)

पुच्छिरुण मए तुब्भं, झाणविग्घो उ जो कओ ।  
निमन्तिओ य भोगेहिं, तं सब्बं मरिसेहि मे ॥ ५७ ॥

मैंने प्रश्न पूछकर आपके ध्यान में विघ्न किया और भोगों का निमंत्रण दिया, उस सब के लिए आप मुझे क्षमा प्रदान करें ॥ ५७ ॥

I disturbed your meditation by asking questions and invited you to worldly pleasures. Please forgive me for all that. (57)

एवं थुणित्ताण स रायसीहो, अणगारसीहं परमाइ भत्तिए ।  
सओरोहो य सपरियणो य, धम्माणुरत्तो विमलेण चेषसा ॥ ५८ ॥

इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान श्रेणिक राजा अनगार सिंह (अनाथी मुनि) की परम भक्तिपूर्वक स्तुति कर, निर्मल हृदय से अन्तःपुर (रानियों) तथा बान्धवों-परिजन सहित धर्म में अनुरक्त हो गया ॥ ५८ ॥

This way king Shrenik, the lion among kings, eulogized (Anaathi ascetic) with great devotion and embraced (ascetic) religion with pure heart along with his queens and family members. (58)



ऊससिय-रोमकूवो, काऊण य पयाहिणं ।  
अभिवन्दिऊण सिरसा, आइयाओ नराहिवो ॥ ५९ ॥

आनन्द से उल्लासित रोमकूप वाले राजा श्रेणिक ने मुनि की प्रदक्षिणा की, सिर झुकाकर वन्दना की और लौट गया ॥ ५९ ॥

Ecstatic king Shrenik circumambulated the ascetic, paid homage by bowing his head and returned to his palace. (59)

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदण्डविरओ थ ।  
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥ ६० ॥

—त्ति बेमि।

साधु-गुणों से समृद्ध, तीन गुणियों से गुप्त, मन-वचन-काया के तीन दण्डों से विरत, पक्षी के समान सभी प्रतिबन्धों से विप्रमुक्त और मोहरहित होकर (अनाथी) मुनि पृथ्वी पर विचरण करने लगे ॥ ६० ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

(Then) Rich in ascetic-virtues, guarded by three kinds of restraint (*gupti*), abstaining from injury (to living beings) through three means (mind, speech and body), the great ascetic (Anaathi), getting free from all restrictions and attachments like a bird, commenced his wanderings on the earth. (60)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ७—प्राचीन युग में सर्वप्रथम देव एवं पूज्य गुरुजनों को उनके चारों ओर घूमकर प्रदक्षिणा की जाती थी। दाहिनी ओर से घूमना शुरू करते थे, जैसा कि कहा है—“आयाहिण-पायाहिणं करेइ।” प्रदक्षिणा के अनन्तर वन्दन किया जाता है। प्रस्तुत में वन्दन पहले है, प्रदक्षिणा बाद में है। अतः पहले वन्दना करके फिर प्रदक्षिणा का उल्लेख है।

गाथा ९—अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति ‘योग’ है, और प्राप्त वस्तु का संरक्षण क्षेम है।

गाथा २३—‘चतुष्पाद-चिकित्सा’ के चार अंग हैं—वैद्य, औषधि, रोगी और रोगी की शुश्रूषा करने वाले। (वृहद् वृत्ति)

## IMPORTANT NOTES

**Verse 7**—In ancient times first of all circumambulation (*pradakshina*) was done by moving around deities and revered seniors. It was done going clockwise starting from the right (*aayaahinam-paayaahinam karei*). Paying homage by bowing is done after *pradakshina*. But here bowing precedes *pradakshina*.

**Verse 9**—Getting what is not available is *yoga* and preservation of the obtained thing is *kshema*.

**Verse 23**—*Chatushpaad chikitsa* is four limbed treatment. The limbs are — physician (healer), medicine, patient and nurses. (V.V.)



## इक्कीसवाँ अध्यायन : समुद्रपालीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम समुद्रपालीय है। इस नामकरण का कारण यह है कि इसमें समुद्रपाल के जन्म से लेकर उसके निर्वाण तक का सम्पूर्ण जीवन तथा जीवन की विशिष्ट घटनाओं का चित्रण किया गया है।

भगवान महावीर का एक श्रावक-शिष्य था। उसका नाम पालित था। पालित निर्ग्रन्थ प्रवचन का विशिष्ट ज्ञाता था। वह अंग देश की चम्पापुरी नगरी में निवास करता था।

पालित वणिक् था। वह समुद्र-व्यापारी था। जलयानों में अपने देश का माल भरकर विदेशों (समुद्र-जल मार्ग द्वारा पार देशों) में ले जाता और वहाँ पैदा होने वाले माल को जलयानों में भरकर लाता। इस प्रकार उसका क्रय-विक्रय व्यापार (आयात-निर्यात व्यापार) अच्छा चलता था।

एक बार वह पिहुण्ड नगर (समुद्र का तटवर्ती नगर) में पहुँचा। व्यापार के कारण उसे वहाँ अधिक समय तक रुकना पड़ा। उसकी प्रामाणिकता, व्यापार कला और व्यवहारकुशलता आदि से संतुष्ट होकर पिहुण्ड नगर के एक श्रेष्ठी ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

अपनी नव-विवाहिता पत्नी को साथ लेकर जब वह सागर-मार्ग से चम्पानगरी को लौट रहा था, तब समुद्र में—जलयान में ही उसकी पत्नी ने एक सर्वांग सुन्दर तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। समुद्र में उत्पन्न होने के कारण पुत्र का नाम समुद्रपाल रखा गया।

कालक्रमानुसार समुद्रपाल युवा हुआ और ७२ कलाओं में निष्णात हुआ। पिता ने उसका विवाह रूपिणी नाम की एक सुन्दर कन्या के साथ कर दिया। समुद्रपाल अपने भवन में रहता हुआ पत्नी के साथ दोगुन्दक देवों के समान क्रीड़ा करता हुआ सुख भोगने लगा।

एक दिन अपने भवन के गवाक्ष में बैठा हुआ वह नगर की शोभा देख रहा था। तभी राजमार्ग पर जाते हुए एक पुरुष पर उसकी दृष्टि टिक गई।

वह वध्यपुरुष था। उसे राजा की ओर से मृत्युदण्ड मिला था। प्रचलित परम्परा के अनुसार उसे लाल कपड़े पहनाए गये थे, गले में लाल कनेर की माला थी, सम्पूर्ण शरीर पर रक्तचन्दन का लेप था तथा उसके अपराध की घोषणा करते हुए राजसेवक उसे वधस्थान की ओर ले जा रहे थे।

समुद्रपाल तुरन्त समझ गया कि यह व्यक्ति घोर अपराधी है और उसके अपराध का दण्ड इसे दिया जा रहा है। अपने दुष्कर्म का फल यह व्यक्ति भोग रहा है।

अपराध और दण्ड, कर्म और कर्मफल की प्रक्रिया पर समुद्रपाल का चिन्तन गहरा होता चला गया। वह कर्मों के बन्धन को काटने के लिये बेचैन हो उठा। उसने समझ लिया कि विषय-भोगों से तो कर्मबन्धन और भी अधिक सुदृढ़ होते चले जायेंगे। उसके हृदय में संवेग-निर्वेद की भावनाएँ उमड़ने लगीं। श्रमणधर्म-पालन का निर्णय कर लिया और माता-पिता से अनुमति लेकर प्रव्रजित हो गया। शुद्ध श्रमणाचार का पालन करके मुक्त हुआ।

श्रमणाचार के वर्णन से तथा धार्मिक दृष्टि से तो प्रस्तुत अध्ययन महत्वपूर्ण है ही; किन्तु तत्कालीन सामाजिक और प्रचलित परम्पराओं की झाँकी के कारण सामाजिक दृष्टि से भी इसका महत्व है।

प्रस्तुत अध्ययन में २४ गाथाएँ हैं।



## EKAVIMSH ADHYAYAN : SAMUDRAPALIYA

### Foreview

The title of this chapter is Samudrapaliya. The reason for giving this name is that it contains the life sketch of Samudrapaal from birth to nirvana and some important events in his life.

Paalit was a householder disciple of Bhagavan Mahavir. He lived in Champapur city in Anga state and was well versed in Jain doctrine.

Paalit was a sea-faring merchant. He carried merchandise from his country to other countries (beyond the sea) in ships and on return brought back merchandise from other countries. Thus his import-export business was flourishing.

Once he reached Pihund (a sea port). He had to extend his stay due to business activities. Impressed by his honesty, business acumen, good behaviour and other qualities, a local merchant married his daughter to Paalit.

While Paalit was returning to Champa city by sea-route his newly wedded wife gave birth to a beautiful son on the ship itself. As the son was born during a sea (*samudra*) voyage, he was named Samudrapaal.

In due course Samudrapaal became young and acquired knowledge of all 72 arts. His father married him to a beautiful young girl named Rupini. Samudrapaal started enjoying his married life like Dogundak gods in his mansion.

Once he was sitting in the balcony of his house and enjoying the beauty of the city. Suddenly he saw a person under escort moving on the road.

He was a man to be killed. The king had sentenced him to death. According to the prevailing tradition the man was clad in red-dress, with a garland of red *Kaner* (oleander) flowers around his neck and body besmeared with red sandalwood paste. The escorting guards were making announcement of his crime while leading him to the place of punishment.

Samudrapaal at once understood that the person was a hardened criminal and was being punished for his crime. He was suffering the consequences of his evil deeds.

Samudrapaal's train of thoughts on the process of crime and punishment as well as actions and their fruits went deeper and deeper. He became anxious to shear the bondage of *karmas*. He understood that indulgence in mundane pleasures will further strengthen the bondage of *karmas*. Feelings of craving for liberation and detachment started surfacing in his mind. He decided to practice ascetic religion and after taking permission from his parents he got initiated. He observed faultless ascetic conduct and attained liberation.

This chapter is important from religious angle due to its elaborate description of ascetic-conduct but at the same time it is also important from social angle due to vivid narration of the prevailing social norms and traditions.

The chapter has 24 verses.



एकविंशद्वयं अज्झयणं : समुद्रपालीयं  
 एकविंश अध्यायन : समुद्रपालीय  
 Chapter-21 : SAMUDRAPAAL

चम्पाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए।  
 महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥ १ ॥

चम्पानगरी का निवासी पालित व्यवसायी श्रावक था और वह महापुरुष भगवान महावीर का शिष्य (अनुयायी) था ॥ १ ॥

Merchant Paalit, an inhabitant of Champa city, was a *shravak* (a Jain householder). He was a disciple of Bhagavan Mahavir. (1)

निग्गन्थे पावयणो, सावए से विकोविए।  
 पोएण ववहरन्ते, पिहुण्डं नगरमागए ॥ २ ॥

वह पालित श्रावक निर्ग्रन्थ प्रवचन में प्रवीण था। एक बार वह जलयान से व्यापार (समुद्री व्यापार) करता हुआ पिहुण्ड नगर में जा पहुँचा ॥ २ ॥

That Paalit *shravak* was well versed in ascetic doctrine. Once during his business voyage on a ship he reached Pihund city. (2)

पिहुण्डे ववहरन्तस्स, वाणिओ देइ धूयरं।  
 तं ससत्तं पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ॥ ३ ॥

पिहुण्ड नगर में जब वह व्यापार कर रहा था, उस समय किसी वणिक् ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। अपनी उस गर्भवती पत्नी को साथ लेकर पालित अपने देश को चल दिया ॥ ३ ॥

While he was doing business in Pihund city, some merchant married his daughter to him. Paalit left for his country with his pregnant wife. (3)

अह पालियस्स घरणी, समुद्रदंमि पसवई।  
 अह दारए तहिं जाए, 'समुद्रपालि' ति नामए ॥ ४ ॥

सागर-यात्रा के दौरान पालित की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। चूँकि शिशु का जन्म सागर के बीच में हुआ था, इसलिए उस बालक का नाम समुद्रपाल रखा गया ॥ ४ ॥

During the sea voyage his wife gave birth to a son on board ship. As the child was born at sea (*samudra*) he was named Samudrapaal. (4)

खेमेण आगए चम्पं, सावए वाणिए घरं।  
 संवड्ढई घरे तस्स, दारए से सुहोइए ॥ ५ ॥



वह वणिक् श्रावक कुशलतापूर्वक चम्पानगरी में अपने घर आ गया। वह बालक (समुद्रपाल) उसके घर में सुख से रहने लगा ॥ ५ ॥

That merchant *shravak* safely reached his home in Champa city. That child grew comfortably in his house. (5)

बावत्तरिं कलाओ य, सिक्खए नीइकोविए।  
जोव्वणेण य संपन्ने, सुरूवे पियदंसणे ॥ ६ ॥

उस (समुद्रपाल) ने बहत्तर कलाओं की शिक्षा प्राप्त की तथा नीति-निपुण हो गया। युवा होने पर वह सबको सुरूप और प्रिय लगने लगा ॥ ६ ॥

He (Samudrapaal) learned all seventy two arts and became worldly wise. He turned out to be a handsome and attractive youth. (6)

तस्स रूववइं भज्जं, पिया आणेइ रूविणीं।  
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगुन्दओ जहा ॥ ७ ॥

उसके पिता (पालित व्यवसायी) ने रूपिणी नाम की एक सुन्दर कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। अब वह (समुद्रपाल) दोगुन्दक देवों के समान अपने सुन्दर प्रासाद (भवन) में पत्नी के साथ क्रीड़ा-मग्न हो गया ॥ ७ ॥

His father married him to a beautiful girl named Rupini. Now, like Dogundak gods (a class of divine beings that are exclusively devoted to earthly enjoyments), he got engrossed in enjoying his married life with his wife in his beautiful mansion. (7)

अह अन्नया कयाई, पासायालोयणे ठिओ।  
वज्जमण्डणसोभाग, वज्जं पासइ वज्जगं ॥ ८ ॥

किसी समय वह अपने सुरम्य भवन के आलोकन (गवाक्ष) में बैठा था। उसने वध्यं चिन्हों से युक्त एक पुरुष को नगरी से बाहर वध स्थान की ओर (राजसेवकों द्वारा) ले जाते हुए देखा ॥ ८ ॥

Once he was sitting in the balcony of his beautiful mansion. He saw a man dressed for execution being lead to the execution ground (by guards). (8)

तं पासिरुण संविग्गो, समुद्रपालो इणमब्बवी।  
अहोऽसुभाण कम्माणं, निज्जाणं पावगं इमं ॥ ९ ॥

उस पुरुष को देखकर संविग्न समुद्रपाल ने कहा—अहो! यह अशुभ कर्मों का दुःखदायी फल है ॥ ९ ॥

Agitated by this sight, Samudrapaal exclaimed—Oh! It is the dreadful consequence of evil deeds. (9)

संबुद्धो सो तहिं भगवं, परं संवेगमागओ।  
आपुच्छ ऽम्मापियरो, पव्वए अणगारियं ॥ १० ॥

इस प्रकार संविग्न हुआ वह (समुद्रपाल) महात्मा (भगवं) सम्बुद्ध हो गया। माता-पिता से पूछकर, उनकी अनुमति प्राप्त करके उसने श्रमणत्व (अणगारियं) ग्रहण कर लिया ॥ १० ॥



चित्र क्रमांक ५१

ILLUSTRATION No. 51

## समुद्रपाल

पालित सेठ की पत्नी ने समुद्र-यात्रा में ही पुत्र को जन्म दिया, जिस कारण उसका नाम समुद्रपाल रखा। एक बार समुद्रपाल ने राजमार्ग पर एक अपराधी को लाल कपड़े और गले में लाल कणेर की माला पहने वध्य-भूमि की ओर ले जाते देखा। एकाग्र चिन्तन करते हुये उसे पूर्व-जन्म की स्मृति हुई तो जाना, मनुष्य को अच्छे कर्मों से स्वर्ग और बुरे कर्मों से नरक मिलता है।

—अध्ययन 21, सू. 4-9

## SAMUDRAPAAL

The wife of merchant Paalit gave birth to a son during a sea voyage and for that reason the boy was named Samudrapaal. Once Samudrapaal saw a convict, dressed in red clothes and wearing red oleander flower garland, being escorted on the highway to the place of execution. Deep into thoughts he recalled incidents of his past birth and became aware of the fact that good deeds bear fruits of heaven and bad deeds pave the way to hell.

—Chapter 21, Aphorism 4-9







Thus driven by craving for spiritual uplift (*samvigna*) that noble soul (*Samudrapaal*) became enlightened. After getting permission from his parents he became a homeless ascetic. (10)

जहित्तु संगं च महाकिलेसं, महन्तमोहं कसिणं भयावहं।  
परियायधम्मं चऽभिरोगएज्जा, वयाणि सीलाणि परीसहे य ॥ ११ ॥

श्रमणत्व धारण करने के उपरान्त साधु महाक्लेशकारी, महामोह और भयकारी आसक्ति (संग) को त्यागकर साधुता (परियायधर्म) में, व्रत में, शील में और परीषहों को समभावपूर्वक सहन करने में अभिरुचि रखने वाला बने ॥ ११ ॥

Once getting initiated the ascetic should abandon the intense fondness and distress causing obsession with the mundane, and get inclined towards asceticism (*pariyaya dharma*), vows, righteousness and endurance for afflictions with equanimity. (11)

अहिंस सच्चं च अतेणगं च, तत्तो य बम्भं अपरिग्गहं च।  
पडिवज्जिया पंच महव्वयाणि, चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विऊ ॥ १२ ॥

विद्वान् साधु अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-इन पाँच महाव्रतों को स्वीकार करके जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म का आचरण करे ॥ १२ ॥

A learned ascetic should accept the five great vows, namely *ahimsa* (non-violence), truthfulness, non-stealing, celibacy and non-possession, and follow the religious order propagated by the Jina. (12)

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकम्पी, खन्तिक्खमे संजय बम्भयारी।  
सावज्जजोगं परिवज्जयन्तो, चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइन्दिए ॥ १३ ॥

भिक्षु सभी जीवों के प्रति दया-करुणा रखे, क्षमा से दुर्वचनों को सहन करे, संयत हो, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला हो, पापाचार (सावद्ययोग) का परित्याग करे और इन्द्रियों को भली-भाँति संवरण करके विचरण करे ॥ १३ ॥

An ascetic should have compassion for all living beings, be forbearing (towards harsh words), be restrained, observe celibacy, renounce all sinful activities and move about immaculately subduing senses. (13)

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे, बलाबलं जाणिय अप्पणो य।  
सीहो व सद्देण न संतसेज्जा, वयजोग सुच्चा न असम्भमाहु ॥ १४ ॥

अपने बलाबल-शक्ति को जानकर साधु समय के अनुसार राष्ट्रों में विहार करे। सिंह के समान भयभीत करने वाले शब्दों को सुनकर भी संतस्त न हो और दुर्वचन सुनकर भी असभ्य वचन न बोले ॥ १४ ॥

Assessing his weakness and strength, an ascetic should wander around the country according to the demand of time. He should not be frightened by dreadful sounds



like the roar of lion and even on hearing offending words he should not respond ungracefully. (14)

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा, पियमप्पियं सव्व तित्तिव्वएज्जा ।

न सव्व सव्वत्थ ऽभिरोयएज्जा, न यावि पूयं गरहं च संजए ॥ १५ ॥

संयत साधु प्रतिकूलताओं की उपेक्षा करता हुआ प्रिय और अप्रिय (अनुकूलता-प्रतिकूलता)-सबको सहन करे, सर्वत्र सबकी (मनोज्ञ वस्तुओं की) इच्छा न करे और न ही पूजा तथा गर्हा की अभिलाषा करे ॥ १५ ॥

Ignoring adversities, a restrained ascetic should always endure everything pleasant or unpleasant, should never desire everything (coveted) everywhere and never care for respect or blame. (15)

अणेगछन्दा इह माणवेहिं, जे भावओ संपगरेइ भिक्खू ।

भयभेखा तत्थ उड्ढिन्ति भीमा, दिव्वा मणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥ १६ ॥

मानवों के अनेक प्रकार के अभिप्राय (छन्द) होते हैं। भिक्षु अपने मन में उन्हें सम्यक् प्रकार से ग्रहण करे, जाने तथा देवों, मानवों, तिर्यचों कृत भयोत्पादक घोर उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन करे ॥ १६ ॥

Men are victims of innumerable desires and ambitions. An ascetic should rightly know and understand them and should endure with equanimity the fearful and severe torments inflicted by divine beings, humans and animals. (16)

परीसहा दुव्विसहा अणेगे, सीयन्ति जत्था बहुकायरानरा ।

ते तत्थ पत्ते न वहिज्ज भिक्खू, संगामसीसे इव नागराया ॥ १७ ॥

अनेक दुस्सह परीषह उपस्थित होने पर बहुत से कायर व्यक्ति खेद करते हैं किन्तु संग्राम में सबसे आगे रहने वाले हाथी के समान भिक्षु परीषहों से खेदित न हो ॥ १७ ॥

Many cowards are aggrieved when faced with many intolerable afflictions but like an elephant at the head of a battle, an ascetic should not be afraid while facing such afflictions. (17)

सीओसिणा दंसमसा य फासा, आयंका विविहा फुसन्ति देहं ।

अकुक्कुओ तत्थ ऽहियासएज्जा, रयाइं खेवेज्ज पुरेकडाइं ॥ १८ ॥

शीत, उष्ण, दंश-मशक, तृण-स्पर्श तथा अन्य अनेक प्रकार के आतंक जब भिक्षु के शरीर को स्पर्श करें-पीड़ित-कष्टित करें तब वह कुत्सित शब्द न करके उन्हें समभाव से सहे तथा पूर्वकृत कर्मों को क्षीण करे ॥ १८ ॥

When cold, heat, mosquito-bite, pricks of straw and other variety of discomforts afflict the ascetic's body; he should desist from uncouth exclamations and endure them with equanimity in order to shed *karmas* accumulated in the past. (18)



पहाय रागं च तहेव दोसं, मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणो ।

मेरु व्व वाएण अकम्पमाणो, परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ॥ १९ ॥

बुद्धिमान भिक्षु सदा ही राग-द्वेष और मोह का परित्याग करके, वायु (प्रभंजन) से अकम्पित मेरु (पर्वत) के समान आत्मगुप्त रहकर परीषहों को सहे ॥ १९ ॥

Ever renouncing attachment, aversion and fondness, a wise ascetic should endure all afflictions remaining composed with restraints as mountain Meru is in face of a storm. (19)

अणुन्नए नावणाए महेसी, न यावि पूयं गरहं च संजए ।

स उज्जुभावं पडिवज्ज संजए, निव्वाणमगं विरए उवेइ ॥ २० ॥

पूजा और प्रतिष्ठा में गर्वित (उन्नत) और गर्हा में हीनभावना (अवनत) ग्रस्त न होने वाला महर्षि पूजा और गर्हा से अलिप्त रहे। वह विरत संयमी सरलता को स्वीकार करके निर्वाणमार्ग-मोक्षमार्ग को प्राप्त करता है ॥ २० ॥

A great sage should remain untouched by feelings of superiority or inferiority complex on being honoured or blamed. That detached and restrained acetic accepts simplicity and gains the path of liberation. (20)

अरइरइसहे पहीणसंथवे, विरए आयहिए पहाणवं ।

परमट्ठपएहिं चिट्ठई, छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥ २१ ॥

जो अरति और रति को सहता है, संसारी जनों से अति परिचय नहीं रखता है, विरक्त है, आत्म-कल्याण की साधना करता है, प्रधानवान है, शोक और ममत्वरहित है, अकिंचन है, वह सम्यग्ज्ञान आदि परमार्थ पदों में-मोक्ष-प्राप्ति के साधनों में रत रहता है ॥ २१ ॥

He who tolerates pleasure (*rati*) as well as misery (*arati*), cuts off links with worldly people, is detached, works for beatitude of soul, strives for the most important goal, is devoid of sorrow and fondness, is free of possessions, remains occupied with means (right knowledge etc.) of attaining loftiest attainment, the liberation. (21)

विवित्तलयणाई भएज्ज ताई, निरोवलेवाइ असंथडाइं ।

इसीहिं चिण्णाइ महायसेहिं, काएण फासेज्ज परीसहाइं ॥ २२ ॥

प्राणियों की रक्षा करने वाला साधु महान् यशस्वी ऋषियों द्वारा स्वीकृत, लेप आदि कर्म से रहित, बीज आदि से रहित, एकान्त स्थानों का (विविक्त लयणाइ) सेवन करे और परीषहों को सहे ॥ २२ ॥

The ascetic, who is the saviour of all living beings, should use isolated places approved by sages, free of association (belonging to others or prepared for him) and uncontaminated with any form or source of life and endure afflictions. (22)

सन्नाणनाणोवगए महेसी, अणुत्तरं चरिउं धम्मसंचयं ।

अणुत्तरेनाणधरे जसंसी, ओभासई सूरिए वज्जल्लिक्खे ॥ २३ ॥



सद्ज्ञान से ज्ञान को प्राप्त करने वाला महर्षि, अनुत्तर धर्मसंचय का आचरण करके, अनुत्तर ज्ञानधारक यशस्वी धर्मसंघ में उसी प्रकार प्रकाशमान होता है जैसे अन्तरिक्ष में सूर्य ॥ २३ ॥

The great ascetic endowed with unique wisdom through pursuit of right knowledge, and continued practice of the supreme religion, shines amidst the glorious religious organization as the sun scintillates in space. (23)

दुविहं खवेऊण य पुण्णपावं, निरंगणे सब्बओ विप्पमुक्के।  
तरित्ता समुद्धं व महाभवोद्धं, समुद्धपाले अपुण्णगमं गए ॥२४॥

—त्ति बेमि।

समुद्रपाल मुनि पुण्य और पाप-दोनों का क्षय करके निश्चल (निरंगन) और सभी तरह से विप्रमुक्त होकर, संसार के विशाल प्रवाह को तैरकर मोक्ष (अपुणागम) में गये—मुक्त हो गये ॥ २४ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Destroying both merits and demerits, being steadfast (in restraint) and free from all fetters, ascetic Samudrapaal, swam the relentless flow of the ocean of worldly existence (cycles of rebirth) to attain liberation. (24)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ८—वध्यजनोचितमण्डन—प्राचीनकाल में चोरी करने वाले को बहुत कठोर दण्ड दिया जाता था। जिसे वध (मृत्युदण्ड) का दण्ड दिया जाता उसके गले में लाल कणेर के फूलों की माला, शरीर पर लाल कपड़े पहनाये जाते थे और सारे नगर में घुमाते हुए उसके अपराध का उल्लेख करते हुए शमशान की ओर ले जाया जाता था।

## IMPORTANT NOTES

Verse 8—*Vadhyajanochit mandana*—In ancient times thieves were given very harsh punishment. According to the prevailing tradition the thief sentenced to death was clad in red dress, with a garland of red *Kaner* (oleander) flowers round his neck and body smeared with red sandalwood paste. While leading him to the place of execution, the escorting guards took him all around the city making announcement of his crime.



## बाईसवाँ अध्ययन : रथनेमीय

### पूर्वांलोक

प्रस्तुत अध्ययन में यादवकुमार रथनेमि के वर्णन की प्रमुखता के कारण इसका नाम रथनेमीय रखा गया है।

रथनेमि से संबंधित घटना इस प्रकार है—

प्राचीन समय में ब्रजमण्डल के सोरियपुर (वर्तमान सौरीपुर-आगरा नगर के निकट) नगर में यदुवंशी राजा समुद्रविजय राज्य करते थे। ये दस भाई थे, जिनमें सबसे बड़े समुद्रविजय और सबसे छोटे वसुदेव थे। परम पराक्रमी होने के कारण दसों भाई दशार्ह कहलाते थे।

प्राचीन ग्रंथों के अनुसार उस समय सोरियपुर में द्वैध राज्य (दो राजाओं) की परम्परा थी। अन्धक और वृष्णि नामक दो शासक दल थे। समुद्रविजय अन्धकों के नेता थे और वसुदेव वृष्णियों के। इसलिए दोनों ही राजा कहलाते थे।

समुद्रविजय की पटरानी शिवादेवी थी। उसके चार पुत्र थे—अरिष्टनेमि, रथनेमि, सत्यनेमि और दृढ़नेमि।

वसुदेव की दो रानियाँ थीं—रोहिणी और देवकी। रोहिणी के पुत्र बलराम थे और देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण।

श्रीकृष्ण ने मथुरा के राजा और प्रतिवासुदेव जरासन्ध के दामाद कंस का वध किया था। अपने दामाद की मृत्यु के कारण जरासन्ध बौखला उठा। उसने यादवों के मूलोच्छेद का निर्णय कर लिया। उसके आक्रमण के भय के कारण समुद्रविजय आदि सभी यादव ब्रजमण्डल को छोड़कर पश्चिमी तट पर पहुँचे। द्वारिका नगरी बसाई और विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

समुद्रविजय के ज्येष्ठ पुत्र अरिष्टनेमि परम पराक्रमी, अतुल बली, अतिशय शोभा संपन्न, अति सुन्दर थे, किन्तु सांसारिक विषय-भोगों की ओर इनकी बिल्कुल भी रुचि न थी। लेकिन समुद्रविजय और उनकी रानी शिवादेवी अपने पुत्र को विवाहित देखना चाहते थे।

विवाह के लिए श्रीकृष्ण के अत्यधिक आग्रह पर अरिष्टनेमि मौन रह गये। 'मौन सम्मति लक्षण' के अनुसार श्रीकृष्ण ने उनके लिए भोजकुल की अत्यन्त सुन्दर कन्या राजीमती की खोज की और विशाल बारात सजाकर चल दिये।

विवाह-स्थल से कुछ पहले दूल्हा बने, गजारूढ़ अरिष्टनेमि ने पशु-पक्षियों को एक बाड़े में बन्द देखा और उनका आर्त्तनाद सुना तो अपने सारथी से इसका कारण पूछा। सारथी ने बताया-आपकी बारात में आये हुए अनेक व्यक्ति माँसभोजी हैं। उनके भोजन के लिए बाड़े व पिंजरे में बन्द पशु-पक्षियों की हत्या की जायेगी। अपनी मृत्यु से भयभीत ये पशु-पक्षी आर्त्तनाद कर रहे हैं।

'मेरे विवाह के लिए हजारों मूक पशु-पक्षियों का वध किया जायेगा' इस विचार से ही अरिष्टनेमि का हृदय करुणा से द्रवित हो गया। उन्होंने पशुओं को तुरंत मुक्त करवाया और हाथी को वापस अपने



निवास की ओर मोड़ने का आदेश दिया। इस अप्रत्याशित घटना से राजीमती शोक-विह्वल होकर मूर्च्छित हो गई। अरिष्टनेमि ने श्रावण शुक्ला पंचमी के शुभ दिन में दीक्षा ग्रहण कर ली है—इस समाचार से राजीमती का दिल टूट गया। वह शोकमग्न हो गई। उसने अरिष्टनेमि के पथ पर चलने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

रथनेमि ने उसके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा तो उसने स्वयं को अरिष्टनेमि द्वारा त्यक्त बताकर रथनेमि को विरक्त कर दिया। निराश होकर रथनेमि ने प्रब्रज्या ग्रहण कर ली। भगवान् अरिष्टनेमि को केवलज्ञान प्राप्त होने के अनन्तर राजीमती भी अनेक स्त्रियों के साथ प्रव्रजित हो गई।

एक बार अरिष्टनेमि रैवतक पर्वत पर विशाजमान थे। राजीमती अन्य साध्वियों के साथ प्रभु-दर्शन की उत्कट कामना लिए जा रही थी। मार्ग में भयंकर आँधी-तूफान के साथ मूसलाधार वर्षा होने लगी। सभी साध्वियाँ तितर-बितर हो गईं। काले-कजराले बादलों के कारण दिन में भी अन्धकार छा गया।

राजीमती पूरी तरह भोग गई थी। आश्रय की खोज करते-करते उसे एक गुफा दिखाई दे गई। वह उसमें जा पहुँची। यद्यपि वहाँ साधु रथनेमि ध्यानस्थ खड़े थे किन्तु गहन अन्धकार के कारण वे उसे दिखाई न दिये। निपट एकान्त जानकर उसने अपने सभी गीले वस्त्र उतारकर निचोड़े और सूखने के लिए फैला दिये।

तभी कड़क के साथ बिजली चमकी तथा गुफा में प्रकाश हो गया। कड़क की आवाज के कारण रथनेमि का ध्यान टूट गया। उस क्षणिक प्रकाश में रथनेमि और राजीमती ने परस्पर एक-दूसरे को देख लिया।

वस्त्ररहित राजीमती को देखकर साधु रथनेमि का चित्त चंचल हो गया। राजीमती ने अपनी बाहों से अपना वक्षस्थल ढक लिया और अंग संकुचित करके बैठ गई।

चंचल चित्त रथनेमि ने राजीमती से भोग-याचना की और कहा—आयु ढलने पर हम प्रव्रजित होकर संयम साधना कर लेंगे।

लेकिन राजीमती ने कुल गौरव आदि का स्मरण कराया और विषयों के कटुफल बताए। मोहग्रस्त रथनेमि को ऐसी ओजस्वी फटकार लगाई कि रथनेमि का चित्त उसी प्रकार शांत हो गया जैसे अंकुश से मत्त गजराज शांत हो जाता है।

संयम साधना करके रथनेमि और राजीमती-दोनों ने मुक्ति प्राप्त की।

प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु यही राजीमती का उद्बोधन है, जो अत्यधिक तेजस्वी वाणी में दिया गया है। इसकी यह विशेषता भी है कि इसमें नारी की तेजस्विता और दृढ़धर्मिता का पक्ष उजागर किया गया है।

यह उद्बोधन इतना महत्वपूर्ण है कि इसे दशवैकालिकसूत्र, अध्ययन २ में भी संकलित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ५१ गाथाएँ हैं।



## DVAVIMSH ADHYAYAN : RATHANEMIYA

### Foreview

As this chapter mainly narrates the story of the Yadav prince Rathanemi, it is titled Rathanemiya.

The episode from Rathanemi's life narrated in this chapter is as follows—

In ancient times king Samudravijaya of Yadu clan ruled the city of Soriyapur in the Brij area (present day Sauripur, near Agra in U.P.). Samudravijaya was the eldest among ten brothers and Vasudeva was the youngest. All the ten brothers were highly valorous and were popularly called Dasharha as a group.

According to ancient scriptures, at that time Soriyapur had a tradition of two rulers. There were two ruling groups called Andhak and Vrishni. Samudravijaya was the leader of Andhak group and Vasudeva was that of Vrishni group. As such they both were called kings.

The chief queen of Samudravijaya was Shivaadevi. She had four sons—Arishtanemi, Rathanemi, Satyanemi and Dridhanemi.

Vasudeva had two queens—Rohini and Devaki. Rohini's son was Balarama and that of Devaki was Shrikrishna.

Shrikrishna had killed Kamsa, the ruler of Mathura city and son-in-law of Prativaasudeva (a legendary evil king who is antihero as opposed to Vaasudeva) named Jarasandh. This act enraged Jarasandh. He decided to annihilate the Yadav clan. Afraid of his attack all Yadavs, including Samudravijaya, left the Brij area and migrated to the western coast. There they founded Dvaraka city and established a vast empire.

The eldest son of Samudravijaya was Arishtanemi. He was very valorous, extremely strong, handsome and charming. However, he had no interest in mundane indulgences. But Samudravijaya and his queen Shivaadevi wanted their son to get married.

When Shrikrishna insisted for marriage Arishtanemi remained silent. Taking his silence to be consent, Shrikrishna found a very beautiful girl, Raajimati, from the Bhoj clan and took out Arishtanemi in an elaborate marriage procession.

On way to the marriage pavilion Arishtanemi, the groom, riding an elephant, saw many animals and birds in a yard. When he heard the wailing of the encaged animals, Arishtanemi asked the mahout about the reason for that. The mahout informed that many of the guests in the procession were meat-eaters. The encaged animals were to be slaughtered for their food. These animals and birds are screaming and wailing out of fear of death.



'Thousands of moot animals and birds will be slaughtered for my marriage,' this information overwhelmed Arishtanemi with a feeling of compassion. He at once got the poor animals freed and ordered the mahout to turn back the elephant. This unexpected event hit Raajimati with grief and she fainted. Arishtanemi got self-initiated on the auspicious fifth day of the bright half of the month of Shraavan. Hearing this news, Raajimati was heart-broken. Engulfed in grief, she firmly resolved to follow the path taken by Arishtanemi.

Rathanemi proposed for marriage to Raajimati, which she rejected on the pretext that she was deserted by Arishtanemi. Frustrated Rathanemi got initiated. After Bhagavan Arishtanemi attained omniscience, Raajimati also got initiated along with many other women.

Once, Arishtanemi was stationed at Raivatak mountain. Raajimati, accompanied by other *sadhvis*, was going there with an intense desire to pay homage to Arishtanemi. While they were on the move they faced a storm and heavy rains. Dense black clouds turned the day into night. The *sadhvis* ran helter and skelter.

Raajimati was completely drenched. Seeking shelter, she found a cave and entered it. In that cave ascetic Rathanemi was standing in meditation but due to dense darkness she did not see him. Finding the place absolutely lonely she put off all her wet clothes, wrung and spread them for drying.

Just then there was lightning with thunder outside and the cave was filled with a glow. The thunder disturbed Rathanemi's meditation. In that moment of glow Rathanemi and Raajimati saw each other.

Seeing Raajimati naked Rathanemi was excited. Raajimati at once covered her breasts with her arms and sat down shielding her body.

Lustful Rathanemi invited Raajimati for carnal enjoyment saying that once the age of enjoyment was over they will resume their pursuit of ascetic-discipline.

But Raajimati made him recall the glory and virtues of their clan and explained about the bitter fruits of carnal indulgence. She scolded pervert Rathanemi so vigorously that his passion was pacified just like the madness of an elephant is pacified by a goad.

In due course pursuing the path of restraint Raajimati and Rathanemi both attained liberation.

This vigorous inspirational sermon given by Raajimati is the central theme of this chapter. It also expounds the opulent and resolute side of female psyche.

This dialogue between the two is so important that it is also included in the second chapter of *Dashavaikalik Sutra*.

The chapter has 51 verses.





बाइशमं ऋञ्जयणं : रहनेमिज्जं  
द्वाविंश अध्यायन : रथनेमीय  
Chapter-22 : RATHANEMI

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिडिडए।  
वसुदेवे त्ति नामेणं, राय-लक्खण-संजुए ॥ १ ॥

सोरियपुर में राज-चिन्हों से युक्त तथा महान् ऋद्धि से संपन्न वसुदेव नाम का राजा था ॥ १ ॥

There was a king named Vasudeva in Soriyapur city, who was endowed with great fortunes and regal signs. (1)

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तथा।  
तासिं दोण्हं पि दो पुत्ता, इट्ठा य राम-केसवा ॥ २ ॥

उसकी दो पत्नियों थीं—रोहिणी और देवकी। उन दोनों के दो प्रिय पुत्र थे—राम (बलराम) और केशव (कृष्ण) ॥ २ ॥

He had two queens—Rohini and Devaki. They had a loving son each—Rama (Balarama) and Keshav (Shrikrishna) respectively. (2)

सोरियपुरंमि नयरे, आसी राया महिडिडए।  
समुद्रविजए नामं, राय-लक्खण-संजुए ॥ ३ ॥

सोरियपुर नगर में ही राज-लक्षणों से संपन्न और महाऋद्धि से युक्त समुद्रविजय नाम का राजा भी था ॥ ३ ॥

In the same Soriyapur there was another king Samudravijaya, who was also endowed with great fortunes and regal signs. (3)

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो।  
भगवं अरिड्डनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥ ४ ॥

उसकी शिवा नाम की रानी थी, उसका पुत्र महायशस्वी, जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ, लोकनाथ, भगवान् अरिष्टनेमि थे ॥ ४ ॥

He had a queen named Shivaadevi and her son was Bhagavan Arishtanemi, the highly glorious, the supreme among victors of senses and the lord of the world. (4)

सोऽरिड्डनेमि-नामो उ, लक्खणस्सर-संजुओ।  
अट्ट सहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥ ५ ॥

वे अरिष्टनेमि शौर्य, गाम्भीर्य आदि गुणों (लक्षणों) और आदेय एवं आकर्षक स्वर (सुस्वर) से युक्त थे। उनके शरीर में एक हजार आठ शुभ लक्षण (शंख, चक्र आदि) थे। उनका गोत्र गौतम और शरीर श्यामवर्णी था ॥ ५ ॥



Arishtanemi was gifted with virtues including valour and serenity as also with charming voice. On his body there were one thousand eight auspicious signs (conch-shell, wheel etc.). His caste was Gautam and complexion was dark. (5)

वज्जरिसहस्रसंघयणो, समचउरंसो झसोयरो ।  
तस्स राईमइं कनं, भज्जं जायइ केसवो ॥ ६ ॥

उनका वज्रऋषभनाराच संहनन और समचतुरस्त संस्थान था। उनका उदर मछली के समान था। उसकी भार्या राजीमती कन्या बने, इसके लिए केशव (कृष्ण) ने (राजा उग्रसेन से) याचना की ॥ ६ ॥

He was endowed with *vajra-rishabh-narach samhanan* (a specific type of constitution of human body where the joints are perfect and strongest) and *samachaturasra samsthan* (the anatomical structure of a human being where parallel lines drawn from the extremities of a body sitting cross-legged form a square and where all the parts of body above and below the navel are of standard dimensions). His stomach was streamlined like a fish. Keshav (Shrikrishna) sought the king's (Ugrasena's) daughter Raajimati's hand for him. (6)

अह सा रायवर-कत्रा, सुसीलाचारुपेहिणी ।  
सव्वलक्खणसंपन्ना, विज्जुसोयामणिप्यभा ॥ ७ ॥

वह (राजीमती) श्रेष्ठ राजा की पुत्री, सुशील, सुन्दर तथा सर्वशुभ लक्षण-सम्पन्न थी तथा बिजली की प्रभा के समान उसके शरीर की कान्ति थी ॥ ७ ॥

That daughter (Raajimati) of a glorious king was virtuous, beautiful and endowed with all noble signs and a lightning-like glowing complexion. (7)

जहाह जणओ तीसे, वासुदेवं महिड्ढियं ।  
इहागच्छऊ कुमारो, जा से कनं दलाम ज्हं ॥ ८ ॥

उस कन्या के पिता ने महाऋद्धिवान वासुदेव से कहा—यदि कुमार यहाँ आएँ तो मैं अपनी पुत्री उन्हें दे दूँगा ॥ ८ ॥

The father of this girl said to highly opulent Vaasudeva (Shrikrishna)—If the prince comes here I will certainly give him my daughter. (8)

सध्वोसहीहि प्हविओ, कयकोउयमंगलो ।  
दिव्वजुयलपरिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ ॥ ९ ॥

(अरिष्टनेमि को) सभी प्रकार की औषधियों से मिश्रित जल से स्नान कराया गया, कौतुक मंगल किये गये, दिव्य युगल वस्त्रों का परिधान तथा आभूषणों से शृंगारित किया गया ॥ ९ ॥

He (Arishtanemi) was given a bath with water mixed with a variety of beneficial herbs. Auspicious rituals were performed. He was adorned and embellished with divine dress and ornaments. (9)



मत्तं च गन्धहस्तिं, वासुदेवस्स जेदुगं।

आरूढो सोहए अहियं, सिरे चूडामणि जहा ॥ १० ॥

वासुदेव के सर्वश्रेष्ठ मत्त गंधहस्ती पर आरूढ़ हुए अरिष्टनेमि, मस्तक पर चूडामणि के समान बहुत शोभायमान हो रहे थे ॥ १० ॥

Riding the best and spirited king elephant (*Gandhahasti*) belonging to Vaasudeva, Arishtanemi looked beautiful like the jewel on a crown. (10)

अह ऊसिएण छत्तेण, चामराहि य सोहिए।

दसारचक्केण य सो, सव्वओ परिवारिओ ॥ ११ ॥

दशर चक्र (दशों दशार्हों) से घिरे हुए (परिवृत्त) अरिष्टनेमि ऊँचे छत्र और चामरों से शोभित थे ॥ ११ ॥

Arishtanemi was graced by tall umbrellas and whisks (*chaamar*) and surrounded by Dasharhas (the royal Yadav brothers). (11)

चउरंगिणीए सेनाए, रइयाए जहक्कमं।

तुरियाण सन्निराएण, दिव्वेण गगणं फुसे ॥ १२ ॥

यथाक्रम से चतुरंगिणी सेना सजाई गई थी तथा वाद्यों के दिव्य नाद-घोष से आकाश गूँज रहा था ॥ १२ ॥

The four limbed army was ready to march in rank and file and the sky resounded with the divine sound of musical instruments. (12)

एयारिसीए इड्डीए, जुईए उत्तिमाए य।

नियगाओ भवणाओ, निज्जाओ वण्हपुंगवो ॥ १३ ॥

इस प्रकार की उच्च कोटि की ऋद्धि (ठाठ-बाट) और द्युति (चमक-दमक, शान-शौकत) के साथ वृष्णिपुंगव (अरिष्टनेमि-इनका कुल वृष्णि था) अपने भवन से निकले ॥ १३ ॥

Thus, with such rich splendour and grandeur the best of Vrishnis (Arishtanemi) started from his palace. (13)

अह सो तत्थ निज्जन्तो, दिस्स पाणे भयद्दुए।

वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥ १४ ॥

वहाँ से निकलने के उपरान्त उन्होंने (अरिष्टनेमि ने) बाड़ों और पिंजड़ों में बन्द किये गये भयग्रस्त और अति दुःखी प्राणियों (पशु-पक्षियों) को देखा ॥ १४ ॥

On the way he saw birds and animals, encaged and rounded in yards, overcome by panic and misery. (14)

जीवियन्तं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए।

पासेत्ता से महापन्ने, सारहिं इणमव्ववी— ॥ १५ ॥



वे प्राणी जीवन की चरम स्थिति-मृत्यु के निकट थे, माँस के लिए (माँसभक्षियों द्वारा) भक्षण किये जाने वाले थे। उन्हें इस स्थिति में देखकर महाप्रज्ञ अरिष्टनेमि ने अपने सारथी (महावत) से कहा— ॥ १५ ॥

Those beings were almost at the end of their life and were destined to be consumed by meat-eaters. Finding them in this state, sagacious Arishtanemi asked his mahout— (15)

कस्म अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।

वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ? ॥ १६ ॥

ये सभी सुख के इच्छुक प्राणी बाड़ों और पिंजड़ों में किस कारण रोके गये हैं ? ॥ १६ ॥

Why all these joy seeking beings (birds and animals) have been confined to enclosures and cages? (16)

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो ।

तुज्झं विवाहकज्जमि, भोयावेउं बहुं जणं ॥ १७ ॥

तब सारथी ने कहा—ये सभी भद्र प्राणी आपके विवाह कार्य में आये हुए बहुत से लोगों (माँसभोजियों) को खिलाने के लिये पकड़े गये हैं ॥ १७ ॥

The mahout replied—All these gentle (innocent) beings have been caught to be offered, as food, to many flesh-eaters among the guests invited to attend your marriage ceremony. (17)

सोऊण तस्स वयणं, बहुपाणि-विणासणं ।

चिन्तेइ से महापत्रे, साणुक्कोसे जिएहि उ— ॥ १८ ॥

बहुत से प्राणियों के विनाश सम्बन्धी सारथी के कथन को सुनकर महाप्रज्ञ अरिष्टनेमि अपने मन में इस प्रकार विचार करते हैं— ॥ १८ ॥

Having heard these words of the mahout about the impending killing of numerous living beings, sagacious Arishtanemi thought— (18)

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मिहिंति बहू जिया ।

न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सई ॥ १९ ॥

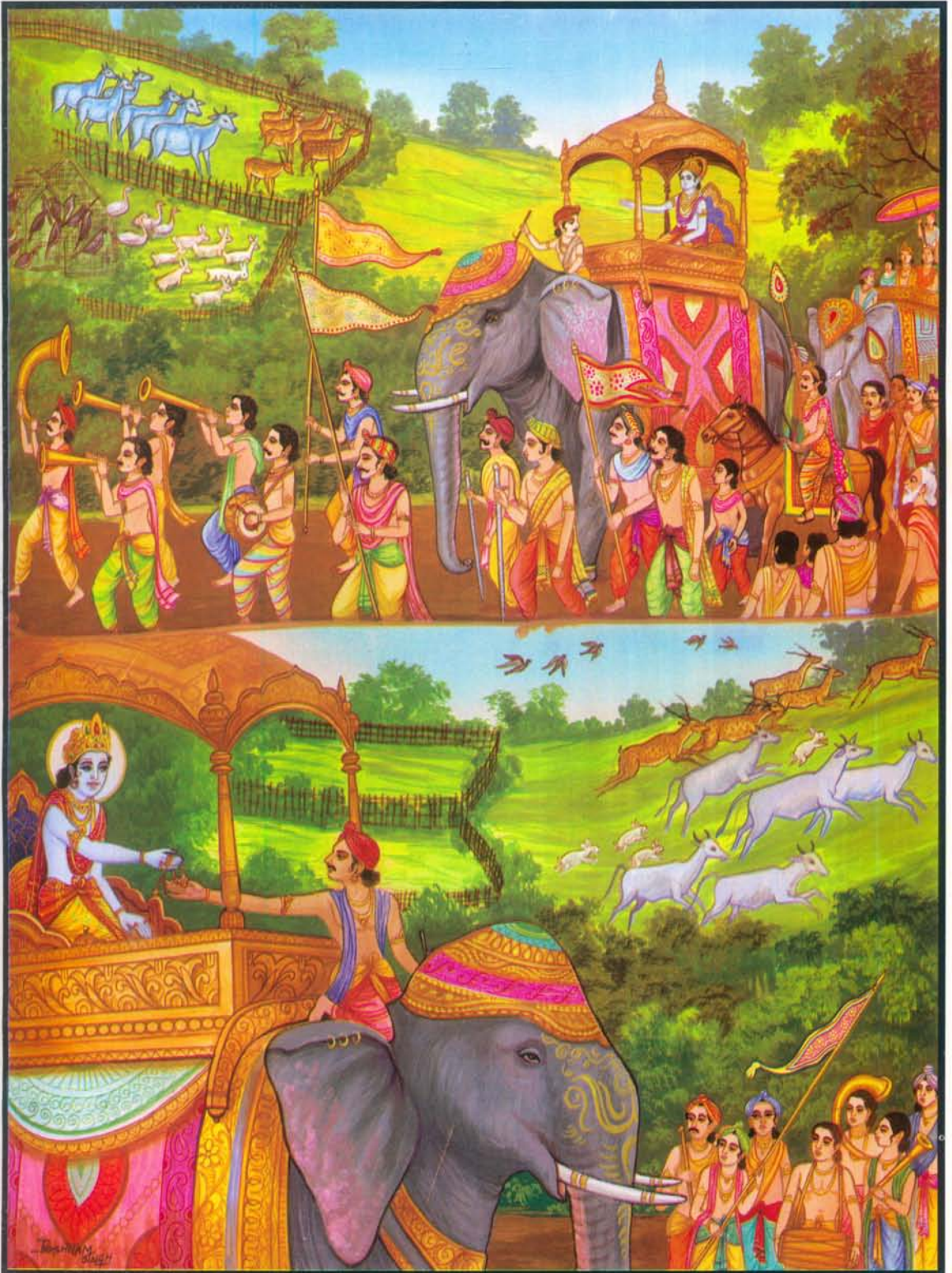
यदि मेरे कारण इन बहुत से प्राणियों का वध किया जाता है तो यह मेरे लिए परलोक में श्रेयस्कर (उचित) नहीं होगा ॥ १९ ॥

If so many living beings are killed for my sake it will not be to my advantage in the next world (future rebirth). (19)

सो कुण्डलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो ।

आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामए ॥ २० ॥

इसलिए उन महायशस्वी ने कुण्डल युगल, सूत्रक तथा अन्य सभी आभूषण उतारकर सारथी को दे दिये ॥ २० ॥



## राजकुमार अरिष्टनेमि की करुणा

- (1) विवाह-मण्डप की ओर बढ़ते हुये राजकुमार अरिष्टनेमि ने बाड़े में बन्द पशु-पक्षियों की करुण चीत्कार सुनी तो हृदय द्रवित हो उठा। सारथि (महावत) से पूछने पर पता चला कि ये सब उसके विवाह-भोज के लिये बन्द हैं।
- (2) अरिष्टनेमि का हृदय करुणा-विगलित हो गया। सारथि को अपने कुण्डल आदि पुरस्कार में देते हुये आज्ञा दी—समस्त पशु-पक्षियों को तत्काल मुक्त कर दिया जाय।

—अध्ययन 22, सू. 14-20

## COMPASSION OF PRINCE ARISHTANEMI

- (1) While moving towards the wedding pavilion prince Arishtanemi heard the heart rending screams of encaged birds and animals, he was moved with compassion. On asking the mahout he came to know that all the innocent birds and animals were herded for his marriage feast.
- (2) Compassion melted Arishtanemi's heart. He awarded the mahout with his earrings and other ornaments and ordered him to release all the birds and animals.

—Chapter 22, Aphorism 14-20





Then that glorious one put off all his ornaments including the pair of earrings and waistband and gave them to the mahout. (20)

मणपरिणामे य कए, देवा य जहोइयं समोइण्णा ।  
सव्वइदीए सपरिसा, निक्खमणं तस्स काउं जे ॥ २१ ॥

हृदय में (दीक्षा के) परिणाम उत्पन्न होते ही उनके यथोचित अभिनिष्क्रमण के लिए देवतागण अपनी ऋद्धि और परिषद् के साथ वहाँ उपस्थित हो गये ॥ २१ ॥

The moment the idea (of renunciation) germinated in his mind, the gods descended (according the established custom), with all their glory and retinue for formal celebration of the event of his renunciation. (21)

देव-मणुस्सपरिवुडो, सीयारयणं तओ समारूढो ।  
निक्खमिय बारगाओ, रेवययंमि ढिओ भगवं ॥ २२ ॥

देवताओं और मनुष्यों से परिवृत्त भगवान् अरिष्टनेमि अत्यन्त श्रेष्ठ शिविका रत्न पर आरूढ़ हुए तथा द्वारिका से चलकर रैवतक गिरि (गिरनार पर्वत) पर अवस्थित हुए ॥ २२ ॥

Bhagavan Arishtanemi sat in an excellent palanquin. Surrounded by gods and men he passed through the city of Dvaraka and ascended Raivatak (Giranar) hill. (22)

उज्जाणं संपत्तो, ओइण्णो उत्तिमाओ सीयाओ ।  
साहस्सीए परिवुडो, अह निक्खमई उ चित्तहिं ॥ २३ ॥

उद्यान में पहुँचे, शिविका से उतरे और एक हजार व्यक्तियों के साथ चित्रा नक्षत्र में भगवान् ने निष्क्रमण किया ॥ २३ ॥

He arrived in a garden, descended from his palanquin and accepted self-initiation with one thousand other persons, when the moon was in Chitra Nakshatra (Asterism). (23)

अह से सुगन्धगन्धिए, तुरियं मउयकुंचिए ।  
सयमेव लुंचई केसे, पंचमुट्टीहिं समाहिओ ॥ २४ ॥

तब समाहित अरिष्टनेमि ने अपने सुगन्धित, घुँघराले और कोमल सिर के केशों का स्वयं अपने हाथ से पंचमुष्टि लोंच किया ॥ २४ ॥

After that, the self-initiated (Arishtanemi) performed the five-fistful plucking out of his curly, perfumed and soft hairs. (24)

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइन्दियं ।  
इच्छियमणोरहे तुरियं, पावेसु तं दमीसरा ॥ २५ ॥

वासुदेव कृष्ण ने केशविहीन और जितेन्द्रिय भगवान् अरिष्टनेमि से कहा—हे दमीश्वर! तुम अपने इच्छित मनोरथ को शीघ्र ही प्राप्त करो ॥ २५ ॥

Then to Bhagavan Arishtanemi, the tonsured and the victor of senses, Vaasudeva (Shrikrishna) said—O lord of ascetics! May you soon attain your desired goal. (25)



नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण तहेव य।  
खन्तीए मुत्तीए, वड्ढमाणो भवाहि य ॥ २६ ॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, क्षमा और निर्लोभता के साथ बढ़ते रहो ॥ २६ ॥

Continue progressing on the path of right knowledge-faith-conduct and ever enhancing forgiveness and non-covetousness. (26)

एवं ते रामकेसवा, दसारा य बहू जणा।  
अरिदुणेमिं वन्दित्ता, अइगया बारगापुरिं ॥ २७ ॥

इस तरह बलराम, कृष्ण, दशार्ह तथा अन्य बहुत से व्यक्ति भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन करके द्वारिकापुरी को वापस लौट गये ॥ २७ ॥

Thus Balarama, Krishna, Dasharhas and many other persons returned to Dvarakapuri after paying homage to Bhagavan Arishtanemi. (27)

सोऊण रायकन्ना, पव्वज्जं सा जिणस्स उ।  
नीहासा य निराणन्दा, सोगेण उ समुत्थया ॥ २८ ॥

भगवान की प्रव्रज्या के विषय में सुनकर राजकन्या राजीमती का हँसना, प्रसन्नता, आनन्द-सब समाप्त हो गये। वह शोक की अधिकता से व्याप्त हो गई। उसे गहरा शोक हुआ ॥ २८ ॥

Hearing the news of initiation of Arishtanemi, the laughter, gaiety and joy of princess Raajimati all vanished. She was overwhelmed with grief. She was in a deep anguish. (28)

राईमई विचिन्तेह, धिरत्थु मम जीवियं।  
जा ज्हं तेण परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम ॥ २९ ॥

राजीमती ने विचार किया—मेरे जीवन को धिक्कार है। चूँकि मैं उनकी परित्यक्ता हूँ, इसलिए मेरा प्रव्रजित होना ही उचित (श्रेष्ठ) है ॥ २९ ॥

Raajimati thought—Shame upon my life that I have been forsaken by him; therefore it is better for me too to get initiated. (29)

अह सा भमरसन्निभे, कुच्च-फणग-घसाहिए।  
सयमेव लुंचई केसे, धिइमन्ता ववस्सिया ॥ ३० ॥

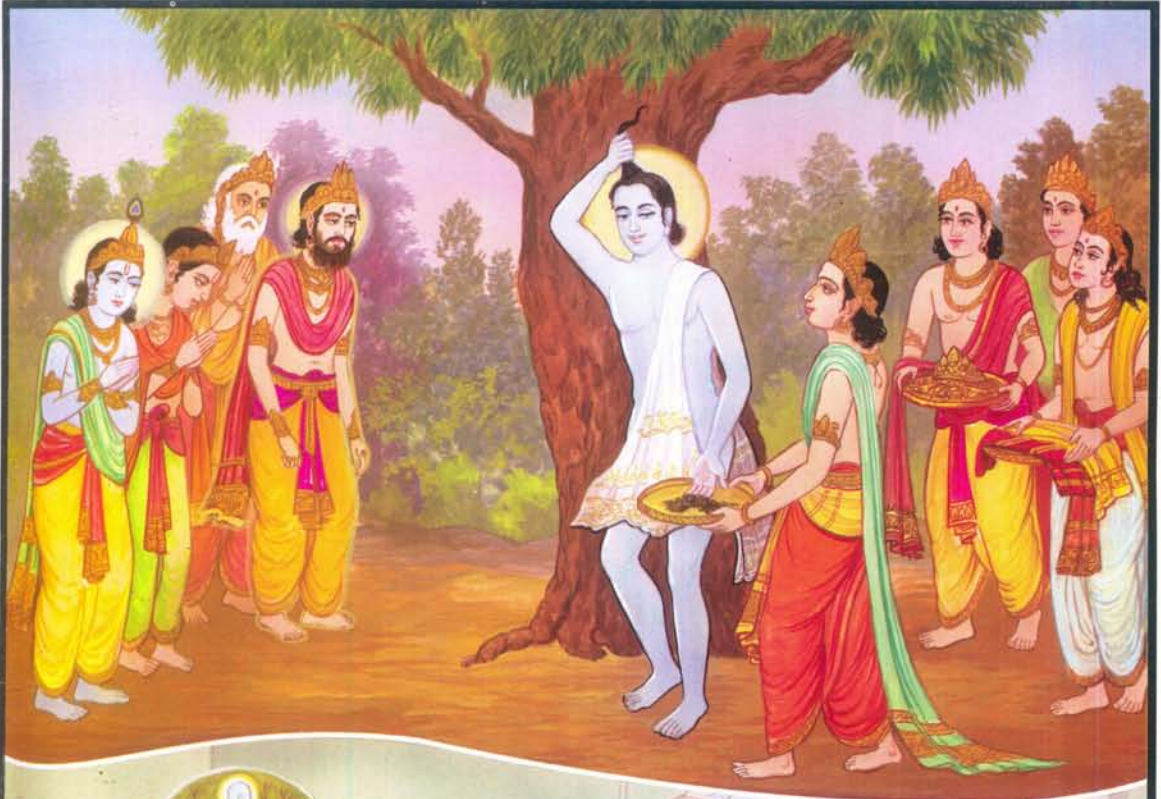
अतः धैर्यशालिनी और दृढ़ निश्चयी राजीमती ने कूँची और कंघी से सँवारे हुए भ्रमर के समान काले केशों का अपने हाथ से लोंच किया ॥ ३० ॥

Hence patient and determined Raajimati plucked her combed and brushed bumblebee-like black hairs with her own hands. (30)

वासुदेवो य णं भणइ, लुत्तकेसं जिइन्दियं।  
संसारसागरं घोरं, तर कन्ने ! लहुं लहुं ॥ ३१ ॥

केशलोंच की हुई व जितेन्द्रिय राजीमती से कृष्ण ने कहा—हे कन्ये! इस घोर संसार-सागर को शीघ्रतिशीघ्र पार करो ॥ ३१ ॥





## कुमार अरिष्टनेमि की प्रव्रज्या

- (1) विरक्तमान अरिष्टनेमि प्रव्रजित हो गये। वसुदेव, समुद्रविजय, बलभद्र एवं वासुदेव श्रीकृष्ण ने उन्हें वन्दना की।
- (2) अरिष्टनेमि के तोरण द्वार से लौटकर प्रव्रजित होने की सूचना मिलते ही दुल्हन बनी राजीमती मूर्च्छित हो गई।

—अध्ययन 22, सू. 25-28

## INITIATION OF PRINCE ARISHTNEMI

- (1) Detached Arishtnemi got self-initiated. Vasudeva, Samudravijaya, Balabhadra and Vaasudeva Shrikrishna paid him homage.
- (2) Hearing the news of return of Arishtanemi from the pavilion gate and getting initiated Rajimati, the bride, became unconscious.

—Chapter 22, Aphorism 25-28





Vaasudeva (Shrikrishna) said to Raajimati, the tonsured and the victor of senses—  
O Lady! Cross this ocean of worldly existence as soon as possible. (31)

सा पव्वइया सन्ती, पव्वावेसी तहिं बहुं ।  
सयणं परियणं चैव, सीलवन्ता बहुस्सुया ॥ ३२ ॥

शीलवती तथा बहुश्रुत राजीमती ने प्रव्रजित होकर अपने साथ बहुत से स्वजनों और परिजनों को दीक्षित (प्रव्रजित) कराया ॥ ३२ ॥

After initiation chaste and learned Raajimati inspired and made many of her relatives and friends to get initiated. (32)

गिरिं रेवययं जन्ती, वासेणुल्ला उ अन्तरा ।  
वासन्ते अन्धयारंमि, अन्तो लयणस्स सा ठिया ॥ ३३ ॥

रैवतक गिरि पर जाती हुई वह (राजीमती) बीच में ही वर्षा से भीग गई, जोरदार वर्षा से अन्धकार छा जाने पर वह आश्रय के लिए एक गुफा के अन्दर प्रविष्ट होकर ठहर गई ॥ ३३ ॥

While ascending Raivatak hill she (Raajimati) got drenched in rain. When it became dark (due to heavy rains) she entered a cave for shelter and stayed there. (33)

चीवराइं विसारन्ती, जहा जाय त्ति पासिया ।  
रहनेमी भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो य तीइ वि ॥ ३४ ॥

अपने गीले वस्त्रों (चीवर) को सुखाने के लिए फैलाती हुई यथाजात (नग्न) रूप में राजीमती को देखकर रथनेमि का चित्त विचलित हो गया । फिर राजीमती ने भी उसे (रथनेमि को) देखा ॥ ३४ ॥

While she took off her dress and was spreading the same for drying up, Rathanemi (meditating in the cave) saw her in her birthday suit (completely nude) and lost his poise. And then Raajimati also saw him (Rathanemi). (34)

भीया य सा तहिं दट्ठुं, एगन्ते संजयं तयं ।  
बाहाहिं काउं संगोफं, वेवमाणी निसीयई ॥ ३५ ॥

वहाँ उस गुफा के एकान्त में समुद्रविजय के पुत्र रथनेमि को देखकर राजीमती भयभीत हो गई । भय से काँपती हुई वह अपनी दोनों बाहुओं से शरीर को संगोपन करके बैठ गई ॥ ३५ ॥

When she saw Rathanemi, Samudravijaya's son, in the lonely cave, Raajimati was frightened. Trembling with fear she sat down covering her body with her arms. (35)

अह सो वि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ ।  
भीयं पवेवियं दट्ठुं, इमं वक्कं उदाहरे— ॥ ३६ ॥

तब समुद्रविजय के अंगजात (आत्मज) राजपुत्र (रथनेमि) ने भयभीत और काँपती हुई राजीमती को देखकर इस प्रकार का वचन कहा— ॥ ३६ ॥

When prince Rathanemi, Samudravijaya's own son, saw her trembling with fear, he uttered these words— (36)



रहनेमी अहं भद्रे!, सुरूवे! चारुभासिणि!  
ममं भयाहि सुयणू!, न ते पीला भविस्सई ॥ ३७ ॥

(रथनेमि—) हे भद्रे! मैं रथनेमि हूँ। हे सुरूवे! हे मधुरभाषिणी! हे सुतनु! मुझे स्वीकार कर ले। तुझे किसी प्रकार की कोई पीड़ा नहीं होगी ॥ ३७ ॥

(Rathanemi—) O Lady! I am Rathanemi. O beauty! O sweetly-speaking! O tender one! Please accept me. You will have no cause of pain or complaint of any kind. (37)

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं।  
भुत्तभोगा तओ पच्छा, जिणमग्गं चरिस्समो ॥ ३८ ॥

आओ, पहले हम भोगों को भोग लें। मनुष्य-जन्म निश्चय ही बहुत दुर्लभ है। भोगों को, भोगने के बाद, भुक्तभोगी बनकर हम जिन-मार्ग का आचरण करेंगे ॥ ३८ ॥

Come, let us enjoy pleasures first; because, to be born as a human being is, indeed, very rare. After having enjoyed pleasures we will take to the path of the Jina. (38)

दट्ठूण रहनेमिं तं, भग्गुज्जोयपराइयं।  
राईमई असम्भन्ता, अप्पाणं संवरे तहिं ॥ ३९ ॥

संयम के प्रति हीन-उत्साह और भोग-वासना से पराजित रथनेमि को देखकर राजीमती घबड़ाई नहीं (असम्भन्ता) उसने वस्त्रों से अपने शरीर को पुनः आवृत्त कर लिया ॥ ३९ ॥

Seeing Rathanemi to be devoid of any enthusiasm for ascetic-discipline and overwhelmed by carnal desires, Raajimati was not afraid. She covered herself again with her clothes. (39)

अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिया नियमव्वए।  
जाई कुलं च सीलं च, रक्खमाणी तयं वए ॥ ४० ॥

तत्पश्चात् नियमों और व्रतों में सम्यक् प्रकार से अविचल (सुस्थित) उस श्रेष्ठ राजकन्या राजीमती ने जाति, कुल और शील की रक्षा करते हुए रथनेमि से कहा— ॥ ४० ॥

Then perfectly unwavering in observation of her codes and vows, that noble princess (Raajimati) protecting her clan, family and honour, said to Rathanemi— (40)

जइ सि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकूबरो।  
तहा वि ते न इच्छामि, जई सि सक्खं पुरन्दरो ॥ ४१ ॥

(राजीमती—) यदि तू रूप में वैश्रमण के समान है, ललितकलाओं में नलकूबर देव जैसा है, यहाँ तक कि तू साक्षात् इन्द्र है तो भी मैं तेरी इच्छा नहीं करती ॥ ४१ ॥

(Raajimati—) Even if you were as beautiful as Vaishraman, as accomplished as Nalakubar in fine arts, so much so that you were the image of the king of gods himself, I would still have no desire for you. (41)



पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।  
नेच्छन्ति वंतयं भोक्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥ ४२ ॥

अगन्धन कुल में उत्पन्न हुए सर्प धूम की ध्वजा वाली जलती हुई दुष्प्रवेश अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, किन्तु वमन किये हुए अपने विष को पुनः पीना नहीं चाहते ॥ ४२ ॥

Serpents of the Agandhan species burn themselves in fire rather than drinking again their vomited venom. (42)

धिरत्थु ते ऽजसोकामी ! जो तं जीवियकारणा।  
वन्तं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥ ४३ ॥

हे अपयश की इच्छा करने वाले ! तुझे धिक्कार है कि तू भोगी जीवन के लिए वमित किये हुए भोगों को पुनः भोगना चाहता है। इससे तो तेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है ॥ ४३ ॥

Shame on you, you covetous for infamy! You wish to enjoy the vomited pleasures in order to lead a life of indulgences. It is better for you to die. (43)

अहं च भोयरायस्स, तं च सि अन्धगवण्हिणो।  
मा कुले गन्धणा होमो, संजमं निहुओ चर ॥ ४४ ॥

मैं भोजराज (भोजवृष्णि) की पौत्री हूँ और तू अन्धकवृष्णि का पौत्र है। कुल में गन्धन सर्प के समान मत हो। स्थिर होकर संयम का आचरण कर ॥ ४४ ॥

I am the grand daughter of Bhoj-raj (Bhoj-vrishni) and you are the grandson of Andhakvrishni. Do not be like a *Gandhana* serpent (who sucks back the vomited poison under spell of mantra) in the family. Follow the ascetic-discipline unwaveringly. (44)

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ।  
वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥ ४५ ॥

यदि तू जिन-जिन स्त्रियों को देखेगा और उन-उन के प्रति इसी प्रकार से रागभाव करेगा तो वायु से प्रेरित हड़ बनस्पति के समान अस्थिर-आत्मा हो जायेगा ॥ ४५ ॥

If you are tempted by every women you see, you will be pliable like a *Hada* plant (a plant that has no stalk) is in the wind. (45)

गोवालो भण्डवालो वा, जहा तद्द्व्वऽणिस्सरो।  
एवं अणिस्सरो तं पि, सामण्णस्स भविस्ससि ॥ ४६ ॥

जिस प्रकार गोपाल और भाण्डपाल उन गायों तथा किराने के सामान के स्वामी नहीं होते, उसी प्रकार तू भी श्रामण्यभाव का स्वामी नहीं हो सकेगा ॥ ४६ ॥

As cowherd and storekeeper are not the owners of cows and groceries, in the same way you will not be able to become the owner of sage-hood. (46)

कोहं माणं निगिण्हत्ता, मायं लोभं च सव्वसो।  
इन्दियाइं वसे काउं, अप्पाणं उवसंहे ॥ ४७ ॥



तू क्रोध, मान, माया, लोभ—इन कषायों को पूर्ण रूप से निग्रह करके तथा इन्द्रियों को वश में करके अपनी आत्मा को असंयम से हटाकर संयम में स्थिर (उवसंहरे) उपसंहार कर ॥ ४७ ॥

Abandoning all four passions—anger, conceit deceit and greed, and controlling the senses, shifting your soul from indiscipline submit it or employ it firmly to the pursuit of ascetic-discipline. (47)

तीसे सो वयणं सोच्चा, संजयाए सुभासियं।  
अंकुसेण जहा नागो, धम्मे संपडिवाइओ ॥ ४८ ॥

उस संयता राजीमती के सुभाषित वचनों को सुनकर रथनेमि सम्यक् प्रकार से धर्म में उसी तरह स्थिर हो गया जिस तरह हाथी अंकुश से वश में हो जाता है ॥ ४८ ॥

Having heard these well-said words of restrained Raajimati, Rathanemi became steady in religion (restraint) as an elephant is steadied by a hook. (48)

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइन्दिओ।  
सामण्णं निच्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥ ४९ ॥

वह (रथनेमि) मन, वचन, काया से गुप्त और जितेन्द्रिय हो गया। दृढ़व्रती बनकर जीवनभर निश्चल रूप से श्रामण्य का पालन करता रहा ॥ ४९ ॥

He (Rathanemi) became restrained in mind, speech and body; he also became a victor of senses. Being firm in observance of vows, he unwaveringly practiced asceticism all his life. (49)

उग्रं तवं चरित्ताणं, जाया दोण्णि वि केवली।  
सव्वं कम्मं खवित्ताणं, सिद्धि पत्ता अणुत्तरं ॥ ५० ॥

उग्र तप का आचरण करके दोनों (रथनेमि और राजीमती) ने ही कैवल्य प्राप्त किया और सम्पूर्ण कर्मों का क्षय करके अनुत्तर सिद्धिगति को प्राप्त हुए ॥ ५० ॥

Practicing rigorous austerities they both (Raajimati and Rathanemi) attained omniscience and after destroying all *karmas* reached the ultimate state of liberation. (50)

एवं करेन्ति संबुद्धा, पण्डिया पवियक्खणा।  
विणियट्टन्ति भोगेसु, जहा सो पुरिसोत्तमो ॥ ५१ ॥

—त्ति बेमि।

सम्बुद्ध, तत्त्ववेत्ता पण्डित और विचक्षण व्यक्ति ऐसा ही करते हैं। पुरुषों में उत्तम रथनेमि के समान वे भोगों से निवृत्त हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Enlightened, sagacious and unique individuals do like that. Like Rathanemi, the noble among man, they turn away from mundane indulgences. (51)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ५—लक्षण—प्रवचनसारेद्वार वृत्ति (पत्र ४१०-११) में बताया गया है कि “शरीर के साथ उत्पन्न होने वाले छत्र, चक्र, अंकुश आदि रेखाजन्य चिह्न लक्षण कहे जाते हैं। साधारण मनुष्यों के शरीर में ३२, बलदेव-वासुदेव के १०८ और चक्रवर्ती तथा तीर्थंकर के शरीर पर १००८ शुभ लक्षण होते हैं।”

गुरुजनों के नाम से पूर्व १०८ या १००८ श्री का प्रयोग इन्हीं लक्षणों का सूचक है।

गाथा ६—संहनन का अर्थ है—बन्धन-हड्डियों के बन्धन। शरीर के सन्धि अंगों की दोनों हड्डियाँ परस्पर आँटी लगाये हुए हों, उन पर तीसरी हड्डी का वेष्टन-लपेट हो और चौथी हड्डी की कील उन तीनों को भेद रही हो, इस प्रकार का वज्र जैसा सुदृढ़ अस्थिबन्धन “वज्र-ऋषभ-नाराच” संहनन है। संहनन के छह प्रकार हैं।

संस्थान—शरीर की आकृति को संस्थान कहते हैं। (प्रज्ञापना २३/२)

पालथी मारकर बैठने पर जिस व्यक्ति के चारों कोण सम हों, वह “समचतुरस्र” नामक सर्वश्रेष्ठ संस्थान है। संस्थान के छह प्रकार हैं। (प्रज्ञापना २३/२)

गाथा ९—कौतुक-मंगल—विवाह के पूर्व वर के ललाट पर मूशल का स्पर्श करवाना आदि कार्य कौतुक हैं। दही, अक्षत, दूध, चन्दन आदि द्रव्य मंगल कहलाते हैं। (वृ. वृ.)

दिव्य-युगल—प्राचीनकाल में अन्तरीय-नीचे पहनने के लिये धोती और उत्तरीय-ऊपर ओढ़ने के लिये चादर, ये दो ही वस्त्र पहने जाते थे। उसी का नाम दिव्य युगल है।

गाथा १०—गन्धहस्ती—सब हाथियों में श्रेष्ठ होता है। इसकी गन्ध से अन्य हाथी हतप्रभ हो जाते हैं, भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं।

गाथा ११—समुद्रविजय, अक्षोभ्य, वसुदेव आदि दस भाई थे। उनके समूह को “दसार् चक्र” कहते थे।

गाथा १३—अन्धक और वृष्णि दो भाई थे। वृष्णि अरिष्टनेमि के पितामह अर्थात् दादा होते थे—इनसे “वृष्णिकुल” का प्रवर्तन हुआ। दशवैकालिक आदि के अनुसार दोनों भाइयों के नाम से “अन्धक वृष्णिकुल” भी प्रसिद्ध था।



## IMPORTANT NOTES

**Verse 5—Lakshan** (signs or marks) – The commentary (*vrutti*) of *Pravachanasaarodhaara* (leaf 410, 411) mentions that the congenital marks, including umbrella, wheel and goad, appearing as outlines on the body are called *lakshan*. It is believed that on the body of an average man a maximum of 32 auspicious marks may be seen; this number could be 108 in case of Baladeva and Vaasudeva and 1008 in case of a Chakravarti and Tirthankar.

The honorific numbers 108 and 1008 added before the names of venerable persons reflects this belief.

**Verse 6—Vajra-rishabh-narach samhanan**—The skeletal constitution of body is called *samhanan* and it is of six kinds based on the perfection of joints. The best among these is this *Vajra-rishabh-narach samhanan*. It has been described as the constitution where the joints conform to perfection of the order—two bones joint as snug and perfect as an infant monkey holds its mother, a third bone joins as a sleeve and a fourth as plug-socket. Such skeletal constitution with most strong and perfect joints is called *Vajra-rishabh-narach samhanan*. All the epoch makers (*Shalaka Purush*) are endowed with this constitution. (*Avashyak Churni*, pp. 129-130)

**Samachaturasra samsthan**—An anatomical structure of a human being where all the parts of body above and below the navel are of standard dimensions. The dimensions increase and decrease proportionately. The height of the body is 108 times the width of a finger (*angul*). When parallel lines drawn from the extremities of a body sitting cross-legged form a square, the anatomical structure is called *Samachaturasra Samsthan*. (Illustrated Anuyogadvar Sutra, 205)

**Verse 9—Kautuk-mangal**—Before the marriage ceremony, touching the bride-groom's forehead with mace and other such rituals are called *kautuk*. Auspicious substances like curd, rice, milk, sandalwood and the like are called *mangal*. (V.V.)

**Divya-yugal** (Divine pair)—In ancient ages the dress in vogue was in pairs. The lower half was called *Antariya* it was generally *dhoti*, a long cloth methodically wrapped around at waist to cover the lower part of the body. The upper half was called *Uttariya* and it was generally a *chaadar*, a large oblong scarf to cover the upper half.

**Verse 10—Gandhahasti**—A bull elephant of the best class, whose very smell is said to frighten common elephants.

**Verse 11—Samudravijaya, Akshobhya, Vasudeva etc.**, were ten brothers heading the Yadav clan. The ten brothers as a group were popularly known as Dashaar Chakra.

**Verse 13—Andhak and Vrishni** were two brothers. Vrishni was Arishtanemi's grandfather. He was the founder of Vrishni clan. According to *Dashavaikalik* and some other scriptures the clan was also popularly known as Andhak-Vrishni clan.





## तेईसवाँ अध्यायन : केशी-गौतमीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम केशी-गौतमीय है। कुमारश्रमण केशी भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के चतुर्थ पट्टधर थे और गौतम गणधर भगवान महावीर के पट्टशिष्य थे। दोनों ही प्रकाण्ड विद्वान् और विशिष्ट ज्ञानी थे। श्रावस्ती नगरी के तिन्दुक उद्यान में दोनों में जो तत्त्वचर्चा हुई उसका इस अध्ययन में रोचक व प्रेरक वर्णन है।

केशीकुमार श्रमण अपने संघ सहित तिन्दुक उद्यान में ठहरे और गौतम गणधर अपने संघ सहित कोष्ठक उद्यान में ठहरे।

दोनों के शिष्य जब गोचरी आदि के लिए जाते तो परस्पर मिलते, विचार-विमर्श भी करते लेकिन दोनों के आचार में भेद होने के कारण दोनों के ही साधु संशय में पड़ गये। अपने-अपने गुरुओं से कहा-जब हमारा लक्ष्य एक है, मुक्ति-प्राप्ति तो फिर यह भेद किसलिए है?

दोनों ने मिलकर इन भेदों को स्पष्ट करने का निर्णय किया। अपने से ज्येष्ठ मानकर विनय मर्यादा का पालन करते हुए गौतम गणधर अपने संघ सहित तिन्दुक उद्यान में पहुँचे। केशीकुमार श्रमण ने उनका यथोचित आदर किया और योग्य आसन दिया।

केशीकुमार श्रमण ने संचेल-अचेल, वेश-भूषा, चातुर्याम, पंचमहाव्रत आदि के सम्बन्ध में प्रश्न किये।

गौतम स्वामी ने बताया-वेश आदि तो लोक-प्रतीति आदि के लिए हैं; मुक्ति के वास्तविक कारण तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप हैं; जिसके विषय में दोनों ही एकमत हैं।

चातुर्याम तथा पंचमहाव्रत के विषय में बताया कि प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ होते हैं और मध्यम २२ तीर्थंकरों के शिष्य ऋजुप्राज्ञ होते हैं; वे जल्दी ही सरलतापूर्वक तत्त्व को समझकर तदनुसार आचरण कर लेते हैं; लेकिन अन्तिम तीर्थंकर के शिष्य वक्रजड़ होते हैं। इसलिये भगवान महावीर ने नियमोपनियमों में युग के अनुरूप व्यावहारिक परिवर्तन किये हैं।

इसके उपरान्त केशीकुमार श्रमण द्वारा प्रस्तुत किये गये शत्रुओं, बन्धनों, लता, दुष्ट अश्व, मार्ग-कुमार्ग, महाद्वीप आदि प्रतीकात्मक प्रश्नों का भी गौतम स्वामी ने समुचित समाधान दिया। केशीकुमार श्रमण के सभी प्रश्न समाहित हो गये और उन्होंने अपने संघ सहित पंचमहाव्रत धर्म स्वीकार किया तथा भगवान महावीर के संघ में सम्मिलित हो गये।

इस अध्ययन की सर्वाधिक शक्तिशाली प्रेरणा यह है कि जिज्ञासाओं और संशयों का निर्णय वार्तालाप द्वारा उदार बुद्धि से किया जाना चाहिये।

दूसरी विशेषता यह है कि मूल को ज्यों की त्यों रखते हुए देश-काल की परिस्थितियों के अनुसार बाह्य परिवर्तनों को स्वीकार करने से धर्म में जीवन्तता बनी रहती है।

प्रस्तुत अध्ययन में ८९ गाथाएँ हैं।



## TRAYOVIMSH ADHYAYAN : KESHI-GAUTAMIYA

### Foreview

The name of this chapter is Keshi-Gautamiya. In Bhagavan Parshvanaath's lineage Kumar-shraman Keshi was the fourth head of the order (*pattadhara*). Gautam Ganadhar was the chief disciple of Bhagavan Mahavir. Both were accomplished scholars and sagacious individuals. This chapter lucidly describes the inspiring dialogue on metaphysics these two had in the Tinduk garden of Shravasti city.

Kumar-shraman Keshi was staying in Tinduk garden with his group of disciples and Gautam Ganadhar in Koshtak garden with his group of disciples.

When the disciples of these two went out to seek alms or to perform some other duty, they used to meet each other and talk. However, due to their mutually variant codes of conduct they soon got confused. Both the groups asked their respective gurus—When our goal is same, liberation, why these differences?

The two leaders decided to meet and clarify these differences. Considering Kumar-shraman Keshi to be the senior and following the protocol of modesty Gautam Ganadhar came to Tinduk garden with his disciples. Kumar-shraman Keshi gave him due respect and offered seat with honour.

Kumar-shraman Keshi put forth his questions regarding many topics including clad and unclad. dress code, four vows and five vows.

Gautam explained that dress is mere social code and only for the convenience of identification by masses. The true pursuit of liberation is through right knowledge, perception/faith, conduct and austerities, on which both the organizations have the same view.

Regarding four vows and five vows Gautam explained that the followers of the first Tirthankar are ignorant but simple, those of the twenty two in-between Tirthankars are simple but wise. They all easily understand the fundamentals and practise accordingly. But the followers of the last Tirthankar are ignorant as well as perverted. Therefore Bhagavan Mahavir made necessary pragmatic amendments in the codes and sub-codes to suit the prevailing conditions.

After that Gautam Ganadhar gave suitable explanations for the metaphoric queries put forth by Kumar-shraman Keshi including those about enemies, bondage, creeper, rogue horse, right and wrong path and continents. All doubts of Kumar-shraman Keshi were removed and consequently he accepted the religion of five great vows to join Bhagavan Mahavir's religious organization (*sangh*).

The most powerful message of this chapter is that all queries and doubts should be removed through open-minded dialogue and deliberation.

The other message is that keeping the basic fundamentals same, acceptance of procedural and formal changes to suit the varying conditions of time and place keeps the religion live and pulsating.

The chapter has 89 verses.



तेविंशद्भ्रमं ब्रह्मयणं : केशिगोयमिज्जं  
त्रयोविंश अध्यायन : केशि-गौतमीय  
Chapter-23 : KESHI AND GAUTAM

जिणे पासे त्ति नामेण, अरहा लोगपूडओ।  
संबुद्धप्पा य सव्वन्नू, धम्मतिथ्यरे जिणे ॥ १ ॥

राग-द्वेष आदि आन्तरिक रिपुओं के विजेता, पार्श्व नाम के लोकपूजित अर्हन् जिन स्वतः सम्बुद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग और धर्मतीर्थ के प्रवर्तक थे ॥ १ ॥

There was a self-enlightened (*svayam-sambuddha*) Jina named Parshva, who was conqueror of all inner enemies, revered by all, omniscient, absolutely detached and founder of the ford of religion. (1)

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे।  
केसीकुमार-समणे, विज्जा-चरण-पारगे ॥ २ ॥

उन लोकप्रदीप भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार श्रमण ज्ञान और चरित्र (विज्जाचरण) के पारगामी थे ॥ २ ॥

Kumar-shraman Keshi, the disciple of the said lamp of wisdom, Bhagavan Parshvanaath, was very famous and a great master of right knowledge and conduct. (2)

ओहिनाण-सुए बुद्धे, सीससंघ-समाउले।  
गामाणुगामं रीयन्ते, सावत्थिं नगरिमागए ॥ ३ ॥

वे अवधिज्ञान और श्रुतज्ञान से प्रबुद्ध (पदार्थों के स्वरूप के ज्ञाता) थे। अपने शिष्य संघ के साथ विहार करते हुए वे श्रावस्ती नगरी में आये ॥ ३ ॥

He was endowed with *Avadhi-jnana* (extrasensory perception of the physical dimension; something akin to clairvoyance) and *Shrut-jnana* (scriptural knowledge). While wandering from one village to another with a group of his disciples, he came to Shravasti city. (3)

तिन्दुयं नाम उज्जाणं, तम्मी नगरमण्डले।  
फासुए सिज्जसंधारे, तथ्य वासमुवागए ॥ ४ ॥

नगरी के समीप तिन्दुक नाम का उद्यान था। वहाँ प्रासुक (निर्दोष) शय्या-संस्तारक उपलब्ध था, अतः वहाँ ठहर गये ॥ ४ ॥

Near that city there was a park named Tinduk. As faultless place of stay and bed were available, he stayed in that park. (4)

अह तेणेव कालेणं, धम्मतिथ्यरे जिणे।  
भगवं वद्धमाणो त्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥ ५ ॥



उसी समय धर्मतीर्थ के प्रवर्तक, जिन, भगवान वरुद्धमान; जो सम्पूर्ण लोक में पूजित और विश्रुत थे ॥ ५ ॥

During the same period there lived Bhagavan Vardhamaan (Mahavir), the founder of the religious ford and Jina, who was renowned and adored by all. (5)

तस्स लोगपईवस्स, आसि सीसे महायसे ।  
भगवं गोयमे नामं, विज्जा—चरणपारगे ॥ ६ ॥

उन लोक-प्रदीप वरुद्धमान के शिष्य भगवान गौतम ज्ञान-चारित्र के पारगामी और महायशस्वी थे ॥ ६ ॥

Bhagavan Gautam, the disciple of the said lamp of wisdom, Bhagavan Vardhamaan, was also very famous and a great master of right knowledge and conduct. (6)

बारसंगविऊ बुद्धे, सीस-संघ-समाउले ।  
गामाणुगामं रीयन्ते, से वि सावत्थिमागए ॥ ७ ॥

बारह अंगों के ज्ञाता प्रबुद्ध गौतम भी अपने शिष्य संघ सहित ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती नगरी में आये ॥ ७ ॥

Enlightened Gautam, an expert of twelve *Angas* (the corpus of the twelve limbed Jain canon), also came to Shravasti city while wandering from one village to another with his disciples. (7)

कोट्टुगं नाम उज्जाणं, तम्पी नयरमण्डले ।  
फासुए सिज्जसंधारे, तत्थ वासमुवागए ॥ ८ ॥

नगरी के निकट कोष्ठक नाम का उद्यान था, वहाँ प्रासुक शय्या-संस्तारक आदि सुलभ थे, अतः वे वहाँ ठहर गये ॥ ८ ॥

Near that city there was a park named Koshthak. As faultless place of stay and bed were available, he stayed in that park. (8)

केशीकुमार—समणे, गोयमे च महायसे ।  
उभओ वि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया ॥ ९ ॥

आत्मलीन (अल्लीणा) और सम्यक् समाधि से युक्त कुमारश्रमण केशी और महान् यशस्वी गौतम-दोनों ही वहाँ (नगरी में) विचरते थे ॥ ९ ॥

Kumar-shraman Keshi and most glorious Gautam both lived in the city engrossed in soul with perfect serenity. (9)

उभओ सीससंघाणं, संजयाणं तवस्सिणं ।  
तत्थ चिन्ता समुप्पन्ना, गुणवन्ताण ताइणं— ॥ १० ॥

संयता, तपस्वी, गुणवान और छह काया के रक्षक दोनों ही शिष्य-संघों में यह चिन्तन समुत्पन्न हुआ— ॥ १० ॥



The disciple-groups of these two, who were restrained, austere, virtuous and protectors of all the six classes of living beings, got preoccupied with these reflections— (10)

केरिसो वा इमो धम्मो ?, इमो धम्मो व केरिसो ?

आचारधम्मपणिही, इमा वा सा व केरिसी? ॥ ११ ॥

यह कैसा धर्म है? और यह कैसा धर्म है? आचार धर्म की व्यवस्था (पणिही) यह कैसी है? और यह कैसी है? ॥ ११ ॥

How is this (our) religion defined? How is that (their) religion defined? How is this (our) code of conduct defined? How is that (their) code of conduct defined? (11)

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खओ ।

देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥ १२ ॥

यह चातुर्याम धर्म है, इसका प्रतिपादन महामुनि पार्श्वनाथ ने किया है और यह पंचशिक्षा रूप धर्म है, इसका उपदेश महामुनि वर्द्धमान ने किया है ॥ १२ ॥

This is the religion of four dimensions (great vows) propogated by great sage Parshvanaath and that is the religion of five edicts (great vows) propogated by great sage Vardhamaan. (12)

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो ।

एगकज्ज—पवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ? ॥ १३ ॥

भगवान वर्द्धमान ने यह अचेलक धर्म (वस्त्ररहित व अल्प वस्त्र वाला) बताया है जबकि भगवान पार्श्वनाथ ने सान्तरोत्तर—(रंग-बिरंगे व मूल्यवान वस्त्रों वाला) धर्म की प्ररूपणा की है। एक ही लक्ष्य के लिए प्रवृत्त साधकों में यह भेद क्यों है? ॥ १३ ॥

Bhagavan Vardhamaan has prescribed this Achelak (sky-clad or meagerly clad) religion; while Bhagavan Parshvanaath has prescribed religion with multi-coloured and costly garbs. Pursuing the same end, why these differences for the aspirants ? (13)

अह ते तत्थ सीसाणं, विन्नाय पवितक्कियं ।

समागमे कयमई, उभओ केसि-गोयमा ॥ १४ ॥

शिष्यों के शंकायुक्त (पवितक्किय) विचार-विमर्श को जानकर केशी और गौतम-दोनों ने ही परस्पर मिलने की इच्छा की ॥ १४ ॥

Knowing about the confusion plaguing the minds of their disciples, both Keshi and Gautam thought of meeting each other. (14)

गोयमे पडिरूवन्नू, सीससंघ—समाउले ।

जेट्टं कुलमवेक्खन्तो, तिन्दुयं वणमागओ ॥ १५ ॥

यथोचित विनय व्यवहार के ज्ञाता गौतम केशीश्रमण के कुल को ज्येष्ठ कुल समझकर अपने शिष्य समूह के साथ तिन्दुक उद्यान में आये ॥ १५ ॥



Well versed with proper courteous behaviour and considering Keshi's school to be senior than his, Gautam went to Tinduk garden along with his disciples. (15)

केसीकुमार—समणे, गोयमं दिस्समागयं ।  
पडिरूवं पडिवत्तिं, सम्मं संपडिवज्जई ॥ १६ ॥

गौतम को आते हुए देखकर केशीकुमार श्रमण ने सम्यक् प्रकार से उनके अनुरूप आदर-सत्कार किया ॥ १६ ॥

When Keshi saw him coming, he greeted Gautam with appropriate honour due to him. (16)

पलालं फासुयं तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ।  
गोयमस्स निसेज्जाए, खिप्पं संपणामए ॥ १७ ॥

गौतम को बैठने के लिए शीघ्र ही उन्होंने प्रासुक पयाल (ब्रीहि आदि चार धानों के घास) और पाँचवाँ कुश-तृण दिया ॥ १७ ॥

Without any delay he offered Gautam seats made of faultless (free of living organism) *palaal* (four kinds of straw, namely *Sali*, *Brihika*, *Kodrava* and *Ralak*) and also a fifth kind, *Kush*. (17)

केसीकुमार—समणे, गोयमे य महायसे ।  
उभओ निसण्णा सोहन्ति, चन्द-सूर-समप्पभा ॥ १८ ॥

वहाँ बैठे हुए केशीकुमार श्रमण और महायशस्वी गौतम-दोनों चन्द्र और सूर्य के समान सुशोभित हो रहे थे ॥ १८ ॥

Sitting there, Kumar-shraman Keshi and renowned Gautam looked scintillating like the moon and the sun. (18)

समागया बहू तत्थ, पासण्डा कोउगा मिगा ।  
गिहत्थाणं अणेगाओ, साहस्सीओ समागया ॥ १९ ॥

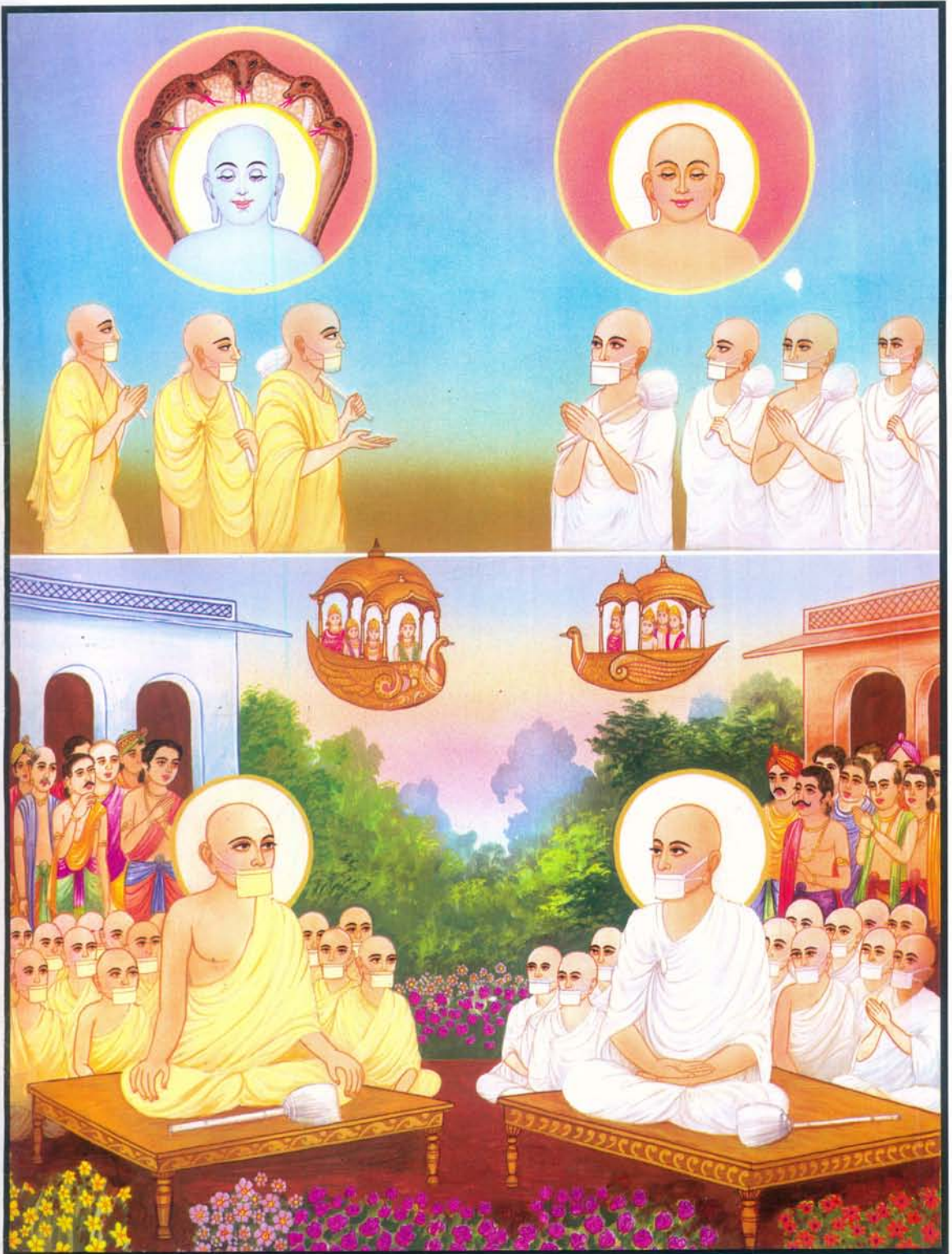
कौतूहल की दृष्टि वाले अन्य सम्प्रदायों के परिव्राजक (पाषण्ड) तथा अनेक सहस्र श्रावक भी आ गये ॥ १९ ॥

Monks of other creeds as well as thousands of lay householders also came out of curiosity and assembled there. (19)

देव-दाणव-गन्धव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा ।  
अदिस्साणं च भूयाणं, आसी तत्थ समागमो ॥ २० ॥

देव-दानव-गन्धर्व, यक्ष-राक्षस-किन्नर तथा अन्य अदृश्य भूतों का वहाँ मेला-सा लग गया था ॥ २० ॥

Divine beings such as *devas*, *danavas*, *gandharvas*, *yakshas*, *raakshasas* and *kinnaras* as well as invisible ghosts too flocked there. (20)



## केशी-गौतम संवाद

- (1) भगवान् पार्श्वनाथ तथा भगवान् महावीर के शिष्य जब परस्पर मिले तो एक-दूसरे से पूछने लगे—हममें यह भेद क्यों?
- (2) श्रावस्ती के उद्यान में केशीकुमार श्रमण तथा इन्द्रभूति गौतम' ने अपने शिष्य-परिवार के साथ मिल-बैठकर परस्पर विचार-चर्चा की। हजारों मनुष्य तथा देव-गंधर्व भी कुतूहलवश यह सन्त-समागम देखने आये।

—अध्ययन 23, सू. 11-20

## KESHI-GAUTAM DIALOGUE

- (1) When disciples of Bhagavan Parshwanath and Bhagavan Mahavir came in contact, they asked one another – Why this difference between us?
- (2) Keshi Kumar Shraman and Ganadhar Gautam assembled in a garden in Shravasti city with their disciples and had a dialogue. Out of curiosity thousands of human and divine beings also came to witness this union of sages.

—Chapter 23, Aphorism 11-20







पुच्छामि ते महाभाग !, केसी गोयममब्बवी ।  
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ २१ ॥

केशी ने गौतम से कहा—हे महाभाग ! मैं आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। केशी के यह कहने पर गौतम ने कहा— ॥ २१ ॥

Keshi said to Gautam—O august one! I want to ask you something. When Keshi said thus, Gautam responded— (21)

पुच्छ भन्ते! जहिच्छं ते, केसिं गोयममब्बवी ।  
तओ केसी अणुन्नाए, गोयमं इणमब्बवी ॥ २२ ॥

भन्ते! आपकी जैसी इच्छा हो, पूछिए। तब अनुमति पाकर केशी ने गौतम से इस प्रकार कहा— ॥ २२ ॥

Bhante! Please go ahead and ask whatever you like. After getting consent, Keshi said to Gautam— (22)

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।  
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥ २३ ॥

(केशीकुमार श्रमण—) यह जो चातुर्याम धर्म है जिसका उपदेश भगवान् पार्श्वनाथ ने दिया है और यह पंचशिक्षा (पंचमहाव्रत) रूप धर्म भगवान् वर्द्धमान द्वारा उपदिष्ट है ॥ २३ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Great sage Parshvanaath has propagated this religion of four dimensions (great vows) and great sage Mahavir has propagated this religion of five edicts (great vows). (23)

एगकज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ?  
धम्मे दुविहे मेहावि !, कहां विप्पच्चओ न ते ? ॥ २४ ॥

हे मेधावी! एक ही कार्य-लक्ष्य में प्रवृत्त हुए हैं तो इस विशेषता—भिन्नता का क्या कारण है? इन दो प्रकार के धर्मों में आपको संदेह (विप्रत्यय) क्यों नहीं होता? ॥ २४ ॥

O prudent one! When both religions (doctrines) pursue the same goal, why this difference? Why you have no misgivings about this duality of doctrine? (24)

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ।  
पन्ना समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छयं ॥ २५ ॥

(गौतम गणधर) केशी के ऐसा कहने पर गौतम ने कहा—तत्त्व का विनिश्चय सम्यक् निर्णय करने वाली प्रज्ञा द्वारा ही धर्मतत्त्व की समीक्षा की जाती है ॥ २५ ॥

When Keshi asked thus, Gautam explained—It is through discerning prudence that religious fundamentals are adjudged and ascertained. (25)

पुरिमा उज्जुजडा उ, वंकजडा य पच्छिमा ।  
मज्झिमा उज्जुपन्ना य, तेण धम्मे दुहा कए ॥ २६ ॥



पूर्व—प्रथम तीर्थंकर के साधु सरल और दुर्बोध्य (ऋजु-जड़) होते हैं तथा पश्चिम (अन्तिम) तीर्थंकर के साधु असरल और दुर्बोध्य (वक्र-जड़) होते हैं और मध्य के बाईस तीर्थंकरों के साधु सरल और प्राज्ञ (ऋजु-प्राज्ञ) होते हैं। इस कारण धर्म के दो प्रकार किये गये हैं ॥ २६ ॥

The followers of the first (Tirthankar) were ignorant but simple, those of the last (Tirthankar) are ignorant and perverted and those of the in-between (twenty two Tirthankars) were simple but wise. That is the reason for the duality of doctrine. (26)

पुरिमाणं दुव्विसोज्झो उ, चरिमाणं दुरणुपालओ ।  
कप्पो मज्झिमगाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥ २७ ॥

प्रथम तीर्थंकर के साधुओं द्वारा आचार मर्यादा (कल्प) शुद्ध रूप में ग्रहण करना (दुव्विसोज्झो) दुष्कर है तथा अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं द्वारा उसका निर्मल रूप से पालन करना कठिन है और मध्य के तीर्थंकरों के साधुओं के लिए आचार (कल्प) का ग्रहण करना और पालन करना सरल है ॥ २७ ॥

It was difficult for the ascetic disciples of the first Tirthankar to understand the code of conduct in its pure form, whereas it is difficult for the ascetic followers of the last Tirthankar to practise it in its pristine form. However, for those of the twenty two Tirthankars it was easy both to understand and practise. (27)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥ २८ ॥

(केशीकुमार श्रमण—) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय मिटा दिया। मेरा एक संशय और है। हे गौतम ! उसके विषय में मुझे कहें, (मेरा सन्देह दूर करें) ॥ २८ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam ! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam ! Please tell me about that also. (28)

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो ।  
देसिओ वद्धमाणेण ; पासेण य महाजसा ॥ २९ ॥

यह अचेलक धर्म वर्द्धमान द्वारा उपदिष्ट है और वर्ण आदि से युक्त तथा मूल्यवान वस्त्र वाला (सन्तरुत्तर) धर्म महायशस्वी पार्श्व ने बताया है ॥ २९ ॥

Famous sage Parshvanaath has propagated this religion of costly and colourful garb and great sage Mahavir has propagated this religion of freedom from garb. (29)

एगकज्जपवन्नाणं, विसेसे किं नु कारणं ?  
लिंगे दुविहे मेहावि ! कहं विप्पच्चओ न ते ? ॥ ३० ॥

एक ही कार्य-लक्ष्य में प्रवृत्त दोनों में इस विशेषता-भिन्नता का कारण क्या है? हे मेधावी ! इन दो प्रकार के लिंगों से क्या तुम्हें संशय नहीं होता ? ॥ ३० ॥



O prudent one! When both religions (doctrines) pursue the same goal, why this difference? Why you have no misgivings about this duality of doctrine? (30)

केसिमेवं बुवाणं तु, गोयमो इणमब्बवी।  
विन्नाणेण समागम्म, धम्मसाहणमिच्छियं ॥ ३१ ॥

(गौतम गणधर) केशी के यह कहने पर गौतम ने इस प्रकार कहा—विज्ञान (विशिष्ट प्रकार के ज्ञान) से जानकर ही धर्म-साधनों की अनुज्ञा दी गई ॥ ३१ ॥

To these words of Keshi, Gautam replied—It is through specialized knowledge (*vijnana*) that the instruments of religion have been determined. (31)

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणविहविगप्पणं।  
जत्तत्थं गहणत्थं च, लोगे लिंगप्पओयणं ॥ ३२ ॥

अनेक प्रकार के उपकरणों की परिकल्पना लोगों की प्रतीति के लिए है। संयम यात्रा के निर्वाह हेतु और 'मैं साधु हूँ' इस प्रकार का बोध रहने के लिए लिंग का प्रयोजन है ॥ ३२ ॥

The concept of variety of visible accessories is aimed at recognition by people. The purpose of distinguishing marks is their usefulness in facilitating the pursuit of ascetic discipline besides the constant refreshing of the awareness that 'I am an ascetic'. (32)

अह भवे पइन्ना उ, मोक्खसब्भूयसाहणे।  
नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं चेव निच्छए ॥ ३३ ॥

यथार्थतः (दोनों तीर्थंकरों की) प्रतिज्ञा-सिद्धान्त एक ही है कि मोक्ष के सद्भूत निश्चित वास्तविक कारण तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र ही हैं ॥ ३३ ॥

In fact, the basic principle (of both Tirthankars) is same and that is right knowledge, perception/faith and conduct are the true and proven causes of liberation. (33)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ३४ ॥

(केशीकुमार श्रमण—) हे गौतम! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय तो समाप्त कर दिया। अब मेरा एक संशय है। हे गौतम! उस विषय में भी मुझे बताएँ ॥ ३४ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (34)

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा!  
ते य ते अहिगच्छन्ति, कहां ते निज्जिया तुमे ? ॥ ३५ ॥

हे गौतम ! तुम अनेक सहस्र शत्रुओं के बीच में खड़े हो और वे तुम्हें जीतने के लिए तुम्हारे सम्मुख आ रहे हैं। तुमने उन शत्रुओं को किस प्रकार विजित कर लिया है ? ॥ ३५ ॥



O Gautam! Suppose you stand amidst thousands of enemies and they are advancing to conquer you. How do you vanquish them? (35)

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस ।  
दसहा उ जिणित्ताणं, सब्बसत्तू जिणामहं ॥ ३६ ॥

(गौतम—) एक को जीतने से पाँच जीत लिए गये और पाँच को जीतने से दस पर विजय प्राप्त हो गई। दसों को जीतकर मैंने सभी शत्रुओं को जीत लिया ॥ ३६ ॥

(Gautam—) By defeating one, five have been conquered and by conquering five ten have been won. By winning ten, I vanquish all the foes. (36)

सत्तू य इइ के वुत्ते ?, केशी गोयममब्बवी ।  
तओ केशिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ३७ ॥

(केशी) केशी ने गौतम से कहा—वे शत्रु कौन से कहे जाते हैं? केशी के यह कहने पर गौतम ने इस प्रकार कहा— ॥ ३७ ॥

Keshi said to Gautam—Whom do you call foes? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (37)

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य ।  
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ॥ ३८ ॥

(गौतम—) हे मुने ! अविजित एक अपना आत्मा ही शत्रु है। चार कषाय और पाँच इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं। इनको जीतकर मैं यथान्याय-नीतिपूर्वक विचरण करता हूँ ॥ ३८ ॥

O sage! The first foe is one's own unconquered soul; (add to this) four passions (anger, conceit, deceit and greed) and five senses (touch, taste, smell, sight and hearing) that too are foes. Vanquishing all these (ten) I move about righteously. (38)

साहु गायेम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ३९ ॥

(केशी—) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। मेरा यह संशय मिट गया लेकिन मेरा एक संशय और भी है। हे गौतम! मुझे उसके विषय में कहें—बतावें ॥ ३९ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (39)

दीसन्ति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो ।  
मुक्कपासो लहुब्भूओ, कह तं विहरसी मुणी ? ॥ ४० ॥

इस लोक में बहुत से शरीरधारी जीव पाश से आबद्ध दिखाई देते हैं। हे मुने! तुम किस प्रकार पाशबन्धन में मुक्त और लघुभूत-हल्के होकर प्रतिबन्धरहित विचरण करते हो ? ॥ ४० ॥

Many corporeal beings in this world are seen caught in a trap. O sage! How do you move about light and free from snares? (40)



ते पासे सव्वसो छित्ता, निहन्तूण उवायओ ।  
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी ॥ ४१ ॥

(गौतम—) हे मुनिवर ! विशिष्ट उपाय से उन सब पाश बन्धनों को सर्व प्रकार से काटकर तथा नष्ट कर मैं पाशमुक्त और लघुभूत होकर विचरण करता हूँ ॥ ४१ ॥

(Gautam -) O sage! After cutting and destroying all those bonds through special measures, I wander light and free from snares. (41)

पासा य इइ के वुत्ता?, केसी गोयममब्बवी ।  
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ४२ ॥

(केशी) केशी ने गौतम से पूछा—हे गौतम ! वे बन्धन कौन से हैं ? केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा— ॥ ४२ ॥

Keshi asked Gautam—O Gautam! What are those snares? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (42)

रागद्वेषादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा ।  
ते छिन्दित्तु जहानायं, विहरामि जहक्कमं ॥ ४३ ॥

(गौतम—) तीव्र राग-द्वेष और स्नेह भयंकर पाश बन्धन हैं। उन्हें काटकर न्याय-नीतिपूर्वक मैं विचरण करता हूँ ॥ ४३ ॥

Intense attachment-aversion and love are dreadful snares. Shattering them, I move about righteously. (43)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ४४ ॥

(केशी—) गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय दूर कर दिया। मेरा एक और भी संशय है, उसके विषय में मुझे कहो-बताओ ॥ ४४ ॥

(Kumar-shraman Keshi-) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (44)

अन्तोहियय—संभूया, लया चिडुइ गोयमा !  
फलेइ विसभक्खीणि, सा उ उद्धरिया कहं ? ॥ ४५ ॥

हे गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न एक लता रहती है, वह विष के समान फल देती है। उस विषलता को तुमने कैसे उखाड़ा ? ॥ ४५ ॥

O Gautam! Within the heart a creeper grows and exists. It gives poisonous fruits. How did you uproot that creeper? (45)

तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं ।  
विहरामि जहानायं, मुक्को मि विसभक्खणं ॥ ४६ ॥



(गौतम—) मैंने उस लता को सर्वथा काटकर एवं मूल सहित उखाड़कर फेंक दिया है। अतः मैं विषफलों से बचा रहकर यथान्याय विचरण करता हूँ ॥ ४६ ॥

(Gautam—) I have completely cut that creeper, rooted it out and thrown it away. As such, remaining safe from poisonous fruits, I move about righteously. (46)

लया य इइ का वुत्ता ?, केसी गोयममब्बवी।

केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ४७ ॥

(केशी—) केशी ने गौतम से पूछा—वह लता कौन-सी कही गई है? केशी के यह पूछने पर गौतम ने बताया— ॥ ४७ ॥

Keshi said to Gautam—What that creeper is said to be? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (47)

भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।

तमुद्धरित्तु जहानायं, विहरामि महामुणी ! ॥ ४८ ॥

(गौतम—) हे महामुनि ! भवतृष्णा ही भयंकर लता है, उसमें भयानक परिपाक वाले फल लगते हैं। उसे जड़ से उखाड़कर मैं न्याय-नीति से विचरण करता हूँ ॥ ४८ ॥

O great ascetic! Eager desire of existence (life) is the name of that tendril which brings forth the dreadful fruits. Clipping that tendril from root, I wander pleasantly. (48)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।

अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ४९ ॥

(केशी—) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरे इस संशय का समाधान कर दिया। मेरा एक और भी संशय है, उसके सम्बन्ध में भी मुझे कहें ॥ ४९ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (49)

संपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा !

जे डहन्ति सरीरत्था, कहं विज्झाविया तुमे ? ॥ ५० ॥

हे गौतम ! घोर प्रचण्ड अग्नियाँ प्रज्वलित हो रही हैं जो शरीर में स्थित जीवों को जलाती हैं। तुमने उन अग्नियों को कैसे बुझाया ? ॥ ५० ॥

Gautam! Monstrous fires are blazing and burning embodied beings. How did you extinguish those fires? (50)

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तमं।

सिंचामि सययं देहं, सित्ता नो व डहन्ति मे ॥ ५१ ॥



(गौतम—) महामेघ से उत्पन्न उत्तम जल लेकर मैं निरन्तर उन अग्नियों को सिंचित करता रहता हूँ। अतः सिंचित की हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलाती ॥ ५१ ॥

(Gautam—) Taking superfine water produced by gigantic clouds, I keep on sprinkling it on those fires, thus pacified by sprinkling those fires do not scald me. (51)

अग्नी य इड के वुत्ता ? केशी गोयममब्बवी ।

केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणामब्बवी ॥ ५२ ॥

(केशी—) वे अग्नियाँ कौन-सी कही गई हैं? केशी ने गौतम से कहा। केशी के कहने (पूछने) पर गौतम ने इस प्रकार कहा— ॥ ५२ ॥

Keshi said to Gautam—What those fires are said to be? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (52)

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय-शील-तवो जलं ।

सुयधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहन्ति मे ॥ ५३ ॥

(गौतम—) कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) को अग्नियाँ कहा गया है तथा श्रुत, शील और तप उत्तम जल है। श्रुत-शील-तप की जलधारा से बुझी हुई तथा नष्ट हुई अग्नियाँ मुझे नहीं जलाती हैं ॥ ५३ ॥

Passions (anger, conceit, deceit and greed) are said to be fires and scriptural knowledge, uprightness and austerities are said to be superfine water. Fires extinguished and destroyed by stream of the water of knowledge, uprightness and austerities fail to burn me. (53)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।

अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ५४ ॥

(केशी—) हे गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी दूर कर दिया। मेरा एक और संशय है। उसके विषय में भी मुझे कुछ कहें ॥ ५४ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam ! Please tell me about that also. (54)

अयं साहसिओ भीमो, दुटुस्सो परिधावई ।

जंसि गोयम ! आरूढो, कहं तेण न हीरसि ? ॥ ५५ ॥

यह साहसिक, भयंकर और दुष्ट अश्व दौड़ रहा है। गौतम! तुम उस पर सवार हो। वह तुम्हें उन्मार्ग पर कैसे नहीं ले जाता ? ॥ ५५ ॥

This daring, dreadful and rogue horse is galloping. Gautam! You are sitting on its back. Why does it not carry you to the wrong path? (55)



पधावन्तं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं ।  
न मे गच्छइ उम्मगं, मगं व पडिवज्जई ॥ ५६ ॥

(गौतम—) दौड़ते हुए घोड़े को मैं श्रुत रश्मि (श्रुतज्ञान की रस्सी-लगाव) से वश में रखता हूँ। अतः मेरे अधीन हुआ वह अश्व उन्मार्ग में नहीं जाता अपितु सन्मार्ग पर ही चलता है ॥ ५६ ॥

(Gautam—) I control this galloping horse with the rein of knowledge. Therefore this horse under my command does not carry me to the wrong path, instead, it moves on the right path only. (56)

अस्से य इइ के वुत्ते ?, केसी गोयममब्बवी ।  
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ५७ ॥

(केशी—) अश्व किसे कहा जाता है? केशी ने गौतम से कहा—पूछ। केशी के यह पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा— ॥ ५७ ॥

Keshi said to Gautam—What is said to be this horse? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (57)

मणो साहसिओ भीमो, दुट्टस्सो परिधावई ।  
तं सम्मं निगिण्हामि, धम्मसिक्खाए कन्थगं ॥ ५८ ॥

(गौतम—) मन ही साहसिक, भयंकर और दुष्ट अश्व है जो चारों ओर इधर-उधर दौड़ता रहता है। उसका मैं धर्मशिक्षा द्वारा भली-भाँति निग्रह करता हूँ। अतः वह उत्तम जाति का कन्थक अश्व बन गया है ॥ ५८ ॥

Mind is this daring, dreadful and rogue horse that keeps on racing in all directions at random. I control it through religious instructions. That is why it has become a well trained horse of the best breed, Kanthak. (58)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ५९ ॥

(केशी—) गौतम! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी मिटा दिया। मेरा एक और संशय है। उसके सम्बन्ध में भी मुझे कुछ कहें ॥ ५९ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (59)

कुप्पहा बहवो लोए, जेहिं नासन्ति जंतवो ।  
अद्धाणे कह वट्टन्ते, तं न नस्ससि ? गोयमा ! ॥ ६० ॥

हे गौतम! संसार में बहुत से कुमार्ग हैं, जिनके कारण जीव (सन्मार्ग से) भ्रष्ट हो जाते हैं, भटक जाते हैं। उस मार्ग पर चलते हुए तुम क्यों नहीं भटकते हो? ॥ ६० ॥





O Gautam! There are many unrighteous paths in this world, which lead living beings astray (away from the right path). Treading those paths why have you not gone astray? (60)

जे य मग्गेण गच्छन्ति, जे य उम्मग्गपट्टिया।  
ते सब्बे विइया मज्झं, तो न नस्सामहं मुणी ! ॥ ६१ ॥

(गौतम—) जो सन्मार्ग पर चलते हैं और जो उन्मार्ग पर चलते हैं, उन सब को मैं जानता हूँ। इसी कारण हे मुने! मैं सन्मार्ग से नहीं भटकता हूँ ॥ ६१ ॥

(Gautam—) I know all those who move on right path or the wrong path. That is why, O sage! I do not go astray from the right path. (61)

मग्गे य इइ के वुत्ता ?, केसी गोयममब्बवी।  
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ६२ ॥

(केशी—) मार्ग किसे कहा जाता है? केशी ने गौतम से कहा। केशी के यह पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा— ॥ ६२ ॥

Keshi said to Gautam—What is said to be this path? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (62)

कुप्पववण—पासण्डी, सब्बे उम्मग्गपट्टिया।  
सम्मग्गं तु जिणक्खायं, एस मग्गे हि उत्तमे ॥ ६३ ॥

(गौतम—) कुप्रवचन को मानने वाले सभी पाखंडी-व्रतधारी लोग उन्मार्ग पर प्रयाण करते हैं। सन्मार्ग तो जिनेन्द्र द्वारा कथित है और यही मार्ग उत्तम है ॥ ६३ ॥

(Gautam—) All the heretics who believe in ignoble sermon choose the wrong path. Right path is that propagated by Jinas and that, indeed, is the most exalted path. (63)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ६४ ॥

(केशी—) गौतम! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी दूर कर दिया। मेरा एक और भी संशय है। उसके सम्बन्ध में मुझे कुछ कहो ॥ ६४ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (64)

महाउदग-वेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं।  
सरणं गई पइट्ठया, दीवं कं मन्नसी मुणी ? ॥ ६५ ॥

हे मुने! महान् जल-प्रवाह के वेग में बहते-डूबते प्राणियों के लिए शरण, गति, प्रतिष्ठा और द्वीप तुम किसे मानते हो? ॥ ६५ ॥



O sage! What do you consider to be the shelter, refuge, firm ground and island for creatures being swept and drowned by a devastating deluge of water? (65)

अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ।  
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ न विज्जई ॥ ६६ ॥

(गौतम—) जल के मध्य में एक विशाल महाद्वीप है। वहाँ महान् जल-प्रवाह के वेग की गति नहीं होती है—वहाँ जल नहीं पहुँचता ॥ ६६ ॥

(Gautam—) There is a vast continent in the middle of the expanse of water where the devastating deluge of water has no movement. (66)

दीवे य इइ के वुत्ते ?, केसी गोयममब्बवी।  
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ६७ ॥

(केशी) केशी ने गौतम से कहा—वह महाद्वीप कौन-सा कहा जाता है? केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा— ॥ ६७ ॥

Keshi said to Gautam—What is said to be this continent? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (67)

जरा-मरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिणं।  
धम्मो दीवो पइड्ढा य, गई सरणपुत्तमं ॥ ६८ ॥

(गौतम—) जरा (वृद्धावस्था) और मरण (मृत्यु) के महावेग से बहते-डूबते प्राणियों के लिए धर्म ही द्वीप, प्रतिष्ठा, गति और उत्तम शरण है ॥ ६८ ॥

Religion (*dharma*) is the lone shelter, refuge, firm ground and island for creatures being swept and drowned by a devastating deluge of water that is dotage and death. (68)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥ ६९ ॥

(केशी—) गौतम ! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी छिन्न कर दिया। मेरा एक संशय और है, उसके बारे में भी मुझे कहो-बताओ ॥ ६९ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (69)

अण्णवंसि महोहंसि, नावा विपरिधावई।  
जंसि गोयममारूढो, कहं पारं गमिस्ससि ? ॥ ७० ॥

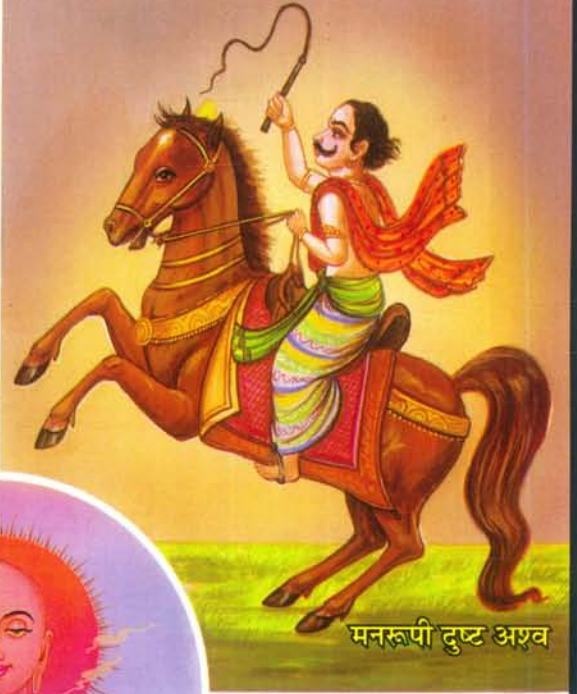
महाप्रवाह वाले सागर में नौका (नाव) विपरीत रूप से इधर-उधर भाग रही है (विपरिधावई) है गौतम ! तुम उसमें बैठे हो। किस प्रकार पार (सागर के तट तक) जा सकोगे ? ॥ ७० ॥

On the ocean with many huge currents there is a boat adrift directionless and you are on board, how would you go across? (70)

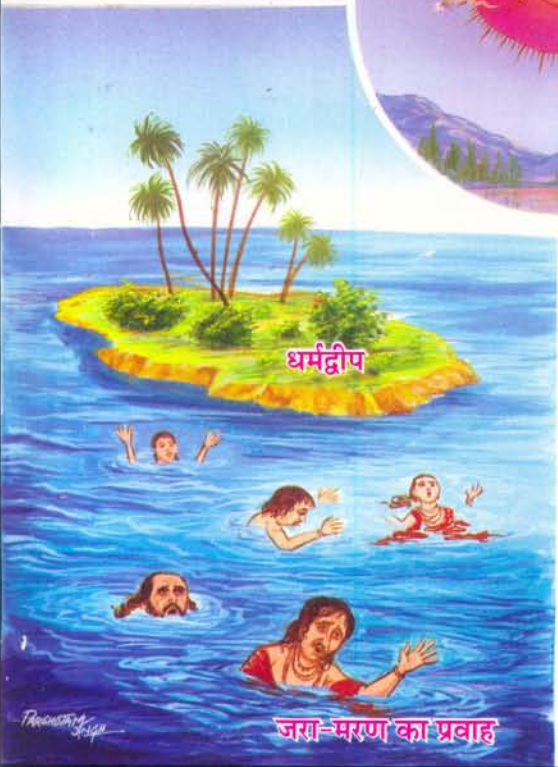
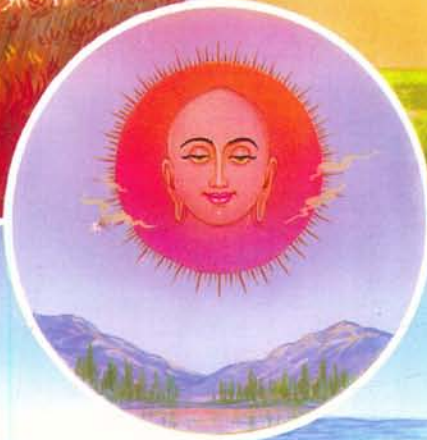
श्रुत-शील-तप



कषायाग्नि



मनरूपी दुष्ट अश्व



धर्मद्वीप

जरा-मरण का प्रवाह



संसार समुद्र

## श्रमण केशीकुमार के प्रश्न, गौतम स्वामी का समाधान

केशीकुमार श्रमण के विभिन्न प्रश्नों का उत्तर देते हुये गणधर गौतम ने बताया—

- (१) मैं कषायों की अग्नि को श्रुत-शील और तप के जल से शान्त कर लेता हूँ।
- (२) मनरूपी दुष्ट अश्व को ज्ञान की लगाम से वश में कर लेता हूँ।
- (३) जरा-मरणरूपी जल-प्रवाह में धर्म ही एक द्वीप है।
- (४) शरीररूपी नौका से संसार-समुद्र को महर्षि जन तैर जाते हैं।
- (५) गहन अंधकार में ज्ञानरूपी भास्कर (भगवान महावीर) उदित हो चुका है।

—अध्ययन 23, सू. 53, 56, 68, 73

### GAUTAM SWAMI ANSWERS QUESTIONS BY SHRAMAN KESHI KUMAR

Answering various questions of Keshi Kumar Shraman Ganadhar Gautam explained —

- (1) I quench the fire of passions by the water of scriptural knowledge, conduct and penance.
- (2) I control the rogue horse of mind with the bridle of knowledge.
- (3) In the deluge of dotage and death religion is the only island.
- (4) Great sages cross the ocean of worldly existence with the help of the boat of the body.
- (5) The sun of knowledge (Bhagavan Mahavir) has dawned to dispel the dense darkness of ignorance.

—Chapter 23, Aphorism 53, 56, 68, 73



जा उ अस्साविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी ।  
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥ ७१ ॥

(गौतम—) जो नौका छिद्रयुक्त होती है, वह पार ले जाने वाली नहीं होती अपितु जो नाव छिद्ररहित होती है, वही पार ले जाने वाली होती है ॥ ७१ ॥

(Gautam—) A boat with holes is not the one that can take one across, only a boat without holes is capable of taking one across. (71)

नावा य इइ का वुत्ता ?, केसी गोयममब्बवी ।  
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ७२ ॥

(केशी—) वह नाव कौन-सी कही गई है? केशी ने गौतम से पूछा। केशी के पूछने पर गौतम ने इस प्रकार कहा— ॥ ७२ ॥

Keshi said to Gautam—What is said to be this boat? Hearing these words of Keshi, Gautam replied – (72)

सरीरमाहु नाव त्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ ।  
संसारो अण्णवो वुत्तो, जं तरन्ति महेसिणो ॥ ७३ ॥

(गौतम—) शरीर को नौका कहा गया है और जीव को नाविक (मल्लाह) कहा जाता है तथा संसार को समुद्र कहा गया है; जिसे महर्षि तैरकर पार कर जाते हैं ॥ ७३ ॥

Body is said to be the boat and soul the sailor. Worldly existence (*samsar*) is the ocean and great sages swim it across. (73)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ७४ ॥

(केशी—) गौतम! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय मिटा दिया। मेरा और भी एक संशय है। हे गौतम ! उसके सम्बन्ध में भी मुझे कहो ॥ ७४ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (74)

अन्धयारे तमे घोरे, चिडुन्ति पाणिणो बहू ।  
को करिस्सइ उज्जोयं, सब्वलोगंमि पाणिणं ? ॥ ७५ ॥

भयंकर, घने अन्धकार में बहुत से प्राणी अवस्थित हैं, रह रहे हैं। सम्पूर्ण लोक के प्राणियों के लिए कौन उद्योत-प्रकाश करेगा ? ॥ ७५ ॥

Innumerable beings live in awfully dense darkness. Who will bring light to the beings of the whole universe? (75)



उगओ विमलो भाणू, सव्वलोगप्पभंकरो ।  
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगमि पाणिणं ॥ ७६ ॥

(गौतम—) सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करने वाला निर्मल सूर्य उदित हो चुका है। वह लोक के सभी प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ॥ ७६ ॥

(Gautam—) The veil-less sun with brilliance to illuminate the whole universe has dawned. It will spread light for the benefit of all beings. (76)

भाणू य इइ के वुत्ते ?, केसी गोयममव्ववी ।  
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमव्ववी ॥ ७७ ॥

(केशी—) वह सूर्य कौन-सा कहा जाता है? केशी ने गौतम से कहा। केशी के पूछने पर गौतम ने कहा— ॥ ७७ ॥

Keshi said to Gautam—What is said to be this sun? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (77)

उगओ खीणसंसारो, सव्वन्नू जिणभव्वखरो ।  
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोयमि पाणिणं ॥ ७८ ॥

(गौतम—) जिसका संसार क्षीण हो चुका है, जो सर्वज्ञ है, ऐसा जिन-भास्कर उदित हो चुका है। वह सम्पूर्ण लोक में प्राणियों के लिए प्रकाश करेगा ॥ ७८ ॥

He whose cycles of rebirths have come to an end and who is omniscient, such sun-like Jina has been born. He will bring light for all the beings of the universe. (78)

साहु गोयम ! पत्ता ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।  
अन्नो वि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥ ७९ ॥

(केशी—) गौतम! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। तुमने मेरा यह संशय भी दूर कर दिया। मेरा एक संशय और है। उसके सम्बन्ध में भी मुझे कहो-बतलाओ ॥ ७९ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam ! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. I have another doubt. Gautam! Please tell me about that also. (79)

सारीर-माणसे दुक्खे, बज्झमाणण पाणिणं ।  
खेमं सिवमणाबाहं, ठाणं किं मन्नसी मुणी ? ॥ ८० ॥

हे मुने! शारीरिक और मानसिक दुःखों से पीड़ित प्राणियों के लिए क्षेमंकर, शिवकर और बाधारहित स्थान तुम किसे मानते हो ? ॥ ८० ॥

O sage ! What place you believe is beneficial, beatific and trouble free for living beings tormented by physical and mental miseries? (80)



अत्थि एगं ध्रुवं ठाणं, लोगगंमि दुरारुहं।  
जत्थ नत्थि जरा मच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥ ८१ ॥

(गौतम—) लोक के अग्र भाग में एक ध्रुव-शाश्वत स्थान है; जहाँ जरा, मृत्यु, व्याधियाँ तथा वेदनाएँ नहीं हैं किन्तु उस स्थान पर पहुँचना दुष्कर है ॥ ८१ ॥

(Gautam—) At the edge of the universe there is an imperishable place, which is free of old age, death, disease and pain; but it is very difficult to reach that place. (81)

ठाणे य इइ के वुत्ते ?, केसी गोयममब्बवी।  
केसिमेवं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ८२ ॥

(केशी—) वह स्थान कौन-सा है? केशी ने गौतम से पूछा। केशी के पूछने पर गौतम ने यह कहा—८२ ॥

Keshi said to Gautam—What is said to be this place? Hearing these words of Keshi, Gautam replied— (82)

निव्वाणं ति अबाहं ति, सिद्धि लोगगमेव य।  
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरन्ति महेसिणो ॥ ८३ ॥

(गौतम—) जिस स्थान को महर्षि प्राप्त करते हैं, वह स्थान निर्वाण है, अबाध है, सिद्धि है, लोकाग्र है; क्षेम, शिव और अनाबाध है ॥ ८३ ॥

The place that great sages attain is called nirvana; it is obstacle free; it is the state of perfection and it is at the edge of the universe. Yes, it is beneficial, beatific and trouble free. (83)

तं ठाणं सासयं वासं, लोगगंमि दुरारुहं।  
जं संपत्ता न सोयन्ति, भवोहन्तकरा मुणी ॥ ८४ ॥

भव-प्रवाह (जन्म-मरण) का अन्त करने वाले मुनि जिसे संप्राप्त करके शोक से मुक्त हो जाते हैं, वह स्थान लोक के अग्र-भाग में शाश्वत निवास-स्थान है; किन्तु वहाँ पहुँचना दुष्कर है ॥ ८४ ॥

The place reaching where the sages, who have ended the cyclic flow of birth and death, become free from all grief is located at the edge of the universe and is imperishable; but to reach there is difficult. (84)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।  
नमो ते संसयाईय, सव्वसुत्तमहोयही ! ॥ ८५ ॥

(केशी—) हे गौतम! तुम्हारी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। मेरा यह संशय भी नष्ट हो गया। हे संशयातीत! सर्वश्रुत के महासागर! तुम्हें मेरा नमस्कार है ॥ ८५ ॥

(Kumar-shraman Keshi—) Gautam! You are endowed with excellent wisdom. You have removed my doubt. O unequivocal one! Ocean of scriptural knowledge! My salutations to you. (85)



एवं तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमे।  
अभिवन्दिता सिरसा, गोयमं तु महायसं॥ ८६॥

इस प्रकार सभी संशयों के नष्ट होने पर घोर पराक्रमी केशी ने महायशस्वी गौतम को शिर से वन्दना कर-सिर झुकाकर— ॥ ८६ ॥

Thus when all doubts were removed, unwaveringly resolute Keshi bowed down his head to pay homage to widely famed Gautam. (86)

पंचमहव्वयधम्मं, पडिवज्जइ भावओ।  
पुरिमस्स पच्छिमंमी, मग्गे तत्थ सुहावहे॥ ८७॥

प्रथम और अन्तिम जिनों द्वारा उपदेशित एवं सुखकारी पंचमहाव्रत रूप धर्म को भाव सहित स्वीकार किया ॥ ८७ ॥

He then accepted, with heartfelt devotion, the beatific religion of five-vows as propagated by the first and the last Jinas. (87)

केसी गोयमओ निच्चं, तम्मि आसि समागमे।  
सुय-शीलसमुक्करिसो, महत्थऽत्थविणिच्छओ॥ ८८॥

तिन्दुक उद्यान में केशी और गौतम-दोनों के सतत समागम (मिलन) में श्रुत और शील का उत्कर्ष तथा महान् तत्त्वों का विनिश्चय हुआ ॥ ८८ ॥

In the continued meetings in exchanges of Keshi and Gautam in Tinduk garden scriptural knowledge and righteousness were brought to eminence and many great doctrines were affirmed. (88)

तोसिया परिसा सब्वा, सम्मग्गं समुवट्टिया।  
संधुया ते पसीयन्तु, भयवं केसिगोयमे॥ ८९॥

—त्ति बेपि।

सम्पूर्ण परिषद् प्रस्तुत धर्मचर्चा से सन्तुष्ट हुई और सन्मार्ग में समुद्यत हुई तथा सभी ने उन दोनों की स्तुति की कि केशीकुमार श्रमण और गणधर गौतम-दोनों हम पर प्रसन्न हों ॥ ८९ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

The whole assembly was satisfied with this religious dialogue and primed itself to accept the right path. They eulogized them both—May the venerable Kumar-shraman Keshi and Ganadhar Gautam bless us with their favour. (89)

—So I say.





## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १२—चातुर्याम—जैन परम्परा के अनुसार प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों का उपदेश दिया था। दूसरे अजित जिन से लेकर तेईसवें पार्व जिन तक चातुर्याम धर्म का उपदेश रहा। इसमें ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को “बहिद्धादाणाओ वेरमणं”—बहिस्ताद् आदानं विरमणं (बाह्य वस्तुओं के ग्रहण का त्याग) में समाहित कर दिया गया था।

प्रस्तुत अध्ययन में पार्श्वनाथ परम्परा के चार महाव्रतों को “याम” शब्द से और वर्धमान महावीर परम्परा के पाँच महाव्रतों को “शिक्षा” शब्द से सूचित किया है।

भगवान पार्श्वनाथ ने मैथुन को परिग्रह के अन्तर्गत माना था। स्त्री को परिगृहीत किये बिना मैथुन नहीं होगा। इसीलिये पत्नी के लिये “परिग्रह” शब्द भी प्रचलित रहा है।

गाथा १३—“अचेल” के दो अर्थ हैं—बिल्कुल ही वस्त्र न रखना, अथवा अल्प मूल्य वाले साधारण श्वेत वस्त्र रखना। “अ” का अभाव अर्थ भी है, और अल्प भी। (वृ. वृ.)

## IMPORTANT NOTES

**Verse 12—Chaaturyaama**—According to Jain tradition, first Tirthankar Bhagavan Rishabhadeva propagated five great vows Ahimsa, Truth, Non-stealing, Celibacy and Non-possession. From the second, Ajit Jina, to twenty-third, Parshva Jina, four vows were propagated. In this tradition celibacy and non-possession both were amalgamated in one, i.e., *bahiddhaadaanaao veramanam* (renouncement of accepting any outside thing).

In this chapter the four great vows of Parshvanaath's tradition have been presented as *Yaam* or dimension and five great vows of Bhagavan Mahavir's tradition as *Shiksha* or instruction.

Bhagavan Parshvanaath considered sex act within the ambit of possession (*parigraha*) because without possessing a woman one cannot copulate. For this reason the term *parigraha* was also in popular use for “wife” in those days.

**Verse 13**—There are two interpretations of the word “*achela*” – totally unclad and clad in few and ordinary clothes. The prefix “*a*” denotes both total absence and meagerness. (V.V.)



## चौबीसवाँ अध्ययन : प्रवचन-माता

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम प्रवचन-माता (पवयण-माया) है। समवायांगसूत्र में इसका नाम 'समिद्धो' समित्तियों दिया गया है। मूल में पाँच समित्तियों और तीन गुप्तियों को सम्मिलित रूप से आठ समित्तियों कहा है। अतः समित्तियों नाम भी अभीष्ट अर्थ को द्योतित करता है।

समिति-गुप्तियों को प्रवचन-माता कहने के दो कारण सम्भव हैं—(१) ऐसा माना जाता है कि समस्त प्रवचन (धर्मशासन) इन्हीं से उद्भूत हुआ है अथवा यह समस्त प्रवचन (द्वादशांग) का सार है। (२) समिति-गुप्तियाँ साधु के अहिंसा आदि महाव्रतों की माता के समान परिपालना-देखभाल करती हैं।

माता की इच्छा यही रहती है कि उसका पुत्र सन्मार्ग पर चले, उन्मार्ग को छोड़े। वह पुत्र के संरक्षण और चरित्र-निर्माण के लिए सतत प्रयत्नशील रहती है।

इसी प्रकार ये आठों प्रवचन-माताएँ साधक को सम्यक् प्रवृत्ति की ओर बढ़ने की प्रेरणा देती हैं, उन्मार्ग पर जाने तथा दुष्प्रवृत्ति से रोकती हैं, उसके चरित्र धर्म का विकास करती हैं, शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति कराती हैं।

सम्यक् प्रवृत्ति समिति है और अशुभ से निवृत्ति गुप्ति है। संक्षेप में कहा जाय तो समिति प्रवृत्तिरूप है और गुप्ति निवृत्तिरूप है।

समिति पाँच हैं—(१) ईर्या, (२) भाषा, (३) एषणा, (४) आदान-निक्षेपणा और (५) परिष्ठापनिका।

चलने में, बोलने में, आहार-पानी तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं की खोज तथा ग्रहण में, उपाधियों को उठाने-रखने में तथा त्याज्य वस्तुओं—मल-मूत्र आदि के विसर्जन में सदैव सावधानी, उपयोगयुक्तता, सम्यक् रूप से प्रवृत्ति करना समिति है।

मन, वचन, काय को अशुभ प्रवृत्ति से रोकना गुप्ति है।

मन, वचन, काय योग के सत्य, असत्य, सत्यामृषा और असत्यामृषा (व्यवहार) ये चार-चार भेद करके समझाया है कि साधक केवल सत्य और व्यवहार भाषा का प्रयोग करे; असत्य और सत्यामृषा भाषा न बोले। इसी प्रकार मन के चिन्तन और काय योग को भी नियंत्रित रखे।

इन समिति-गुप्तियों का मापदण्ड अहिंसा है। इसीलिए साधक सावधकारी कोई भी प्रवृत्ति न करे और न मन में ही ऐसा चिन्तन करे।

इस प्रकार आठों प्रवचन-माताओं का सर्वांग पूर्ण चिन्तन इस अध्ययन में हुआ है और दर्शाया है कि इनकी सम्यक् परिपालना से साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

प्रस्तुत अध्ययन में २७ गाथाएँ हैं।



## CHATURVIMSH ADHYAYAN : PRAVACHANA-MAATAA

### Foreview

This chapter is titled Pravachana-maataa or Mother Discourse. In *Samvayanga Sutra* it is called Sami-io or Samitis (circumspections). In the original text five circumspections (*samitis*) and three restraints (*guptis*) have been jointly called eight *samitis*; as such the title Samitis also conveys the desired meaning.

There are two reasons for *samitis* and *guptis* being addressed as *Pravachana-maataa* (Mother Discourse)—1. It is believed that all discourse (*pravachana*) forming the core of religious order has originated from this; in other words this is the sum and substances of the corpus of discourses (the twelve *Angas*). 2. Like mother, the circumspections and restraints nurture and take care of the great vows of an ascetic.

Mother's only desire is that her offspring takes the right path and leaves the wrong one. She is always busy protecting her son and building his character.

In the same way these eight mothers of discourse inspire the aspirant to move towards noble pursuits, check him from taking to the wrong path and ignoble pursuits, develop his right-conduct, guide him towards indulgence in good and avoid that in evil.

Circumspection (*samiti*) ensures indulgence in the right and restraint (*gupti*) ensures abstaining from indulgence in the wrong. In short, circumspection is indulgence (in auspicious) and restraint is non-indulgence (in inauspicious).

Circumspections are five—1. in movement (*irya samiti*), 2. in speech (*bhasha samiti*), 3. in exploring alms (*eshana samiti*), 4. in taking and keeping (*aadaan-nikshepana samiti*), and 5. in disposal (*parishthapanika samiti*).

Care and right attitude in all activities including movement, speech, exploring for food and other necessities, taking and keeping things, disposal of excreta etc., is *samiti*.

To check ignoble indulgences of mind, speech and body is restraint.

By making four-sub-divisions of activities of mind, speech and body, namely—true, false, true-false and neither true nor false (courteous and social), it has been explained that an ascetic should always use true and courteous language, he should never use false and true-false language. He should also follow the same rule for the activities of mind and body.

The yardstick of these circumspections and restraints is ahimsa. Therefore an aspirant should not indulge in any sinful activity that harms any living being. He should avoid even thinking on that line.

This way the chapter contains detailed description of the eight mothers of discourse and conveys that with right observation of these an aspirant attains his goal.

The chapter contains 27 verses.



चतुर्विंशइमं ब्रह्मज्ञयणं : पवयण-माया  
चतुर्विंश अध्ययन : प्रवचन-माता  
Chapter-24 : MOTHER SERMON

अद्दु पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।  
पंचेव य समिईओ, तओ गुत्तीओ आहिया ॥ १ ॥

समिति और गुप्ति-मिलकर आठ प्रवचन-माताएँ हैं। समितियाँ पाँच हैं और गुप्तियाँ तीन हैं ॥ १ ॥

There are eight *pravachana-maatas* (mothers of sermon) that include *samitis* (circumspections) and *guptis* (restraints). There are five circumspections and three restraints. (1)

इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय।  
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अद्दुमा ॥ २ ॥

ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेपणा समिति और उच्चार-प्रस्रवण (परिष्ठापनिका) —ये पाँच समिति तथा मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और आठवीं कायगुप्ति है ॥ २ ॥

Five circumspections — that in movement (*irya samiti*), that in speech (*bhasha samiti*), that in exploring alms (*eshana samiti*), that in taking and keeping (*aadaan-nikshepana samiti*) and that in disposal (*parishthapanika samiti*) along with three restraints—mental restraint (*manogupti*), vocal restraint (*vachangupti*) and physical restraint (*kayagupti*) make these eight. (2)

एयाओ अद्दु समिईओ, समासेण वियाहिया।  
दुवालसंगं जिणक्खायं, मायं जत्थ उ पवयणं ॥ ३ ॥

संक्षेप में ये आठ समितियाँ कही गई हैं। इनमें जिनेन्द्र-कथित द्वादशांग रूप समग्र प्रवचन समाहित हो जाता है ॥ ३ ॥

These are also called eight circumspections. They envelope the whole sermon given by the Jina in the form of the corpus of twelve Angas. (3)

१—ईर्या समिति

आलम्बणेण कालेण, मग्गेण जयणाइ य।  
चउकारणपरिसुद्धं, संजए इरियं रिए ॥ ४ ॥  
तत्थ आलंबणं नाणं, दंसणं चरणं तहा।  
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पहवज्जिए ॥ ५ ॥



द्व्यओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा ।  
 जयणा चउव्विहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥ ६ ॥  
 द्व्यओ चक्खुसा पेहे, जुगमित्तं च खेत्तओ ।  
 कालओ जाव रीएज्जा, उवउत्ते य भावओ ॥ ७ ॥  
 इन्दियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पंचहा ।  
 तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते इरियं रिए ॥ ८ ॥

संयत (संयमी साधक) आलम्बन से, काल से, मार्ग से और यतना से—इन चार कारणों से परिशुद्ध ईर्या समिति से विचरण करे ॥ ४ ॥

ईर्या समिति का आलम्बन ज्ञान, दर्शन और चरित्र है। काल दिवस (दिन का समय) है। मार्ग उत्पथ का वर्जन है ॥ ५ ॥

द्रव्यतः क्षेत्रतः काल और भाव की अपेक्षा से यतना चार प्रकार की कही गई है। उसे मैं कहता हूँ, सुनो ॥ ६ ॥

द्रव्य से—आँखों से देखे (देखकर चले)। क्षेत्र से—युगमात्र (चार हाथ प्रमाण) भूमि को देखे। काल से—जब तक चलता रहे तब तक देखे। भाव से—उपयोग सहित चले (गमन करे) ॥ ७ ॥

इन्द्रियों के पाँच प्रकार के विषय और पाँच प्रकार के स्वाध्याय को छोड़कर मात्र गमन क्रिया में ही तन्मय हो और उसी को प्रधानता देकर उपयोग सहित गमन करे ॥ ८ ॥

### 1. Circumspection in movement (*irya samiti*)

Restrained aspirant should move with circumspection in movement purified in four respects—support or cause (*aalamban*), time (*kaal*), path (*marg*) and care (*yatana*). (4)

The cause is right knowledge, faith and conduct. The time is day-time. The path is to exclude wrong path. (5)

In context of substance, place, time and mind care is of four kinds. Listen to what I say about that. (6)

With regard to substance—should see with eyes (see carefully while moving). With regard to place—should see ground up to a distance of four cubits. With regard to time—should see till the movement lasts. With regard to state of mind—walk with sincere attention. (7)

Giving no heed to objects of five senses as well as five types of self-study, he should move giving full importance and attention to the act of moving. (8)

### २—भाषा समिति

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया ।  
 हासे भए मोहरिए, विगहासु दहेव य ॥ ९ ॥



एषाईं अट्ट ठाणाईं, परिवज्जित्तु संजए।  
असावज्जं मियं काले, भासं भासेज्ज पन्नवं ॥ १० ॥

क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, वाचालता तथा विकथाओं में सतत उपयोगयुक्तता— ॥ ९ ॥  
प्रज्ञावान् संयती साधक इन (उपर्युक्त) आठ स्थानों का परित्याग करके अवसर के अनुसार निरवद्य (दोषरहित) और परिमित भाषा बोले ॥ १० ॥

### 2. Circumspection in speech (*bhasha samiti*)

Continued indulgence in anger, conceit, deceit, greed, laughter, fear, gossip and slandering— (9)

A wise and restrained aspirant should avoid aforesaid eight activities and speak faultless language with brevity and at proper time. (10)

### ३—एषणा समिति

गवेषणाए गहणे य, परिभोगेसणा य जा।  
आहारोवहि-सेज्जाए, एए तिन्नि विसोहए ॥ ११ ॥  
उग्गमुप्पायणं पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं।  
परिभोयंमि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई ॥ १२ ॥

गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा से आहार, उपधि और शय्या—इन तीनों का परिशोधन करे ॥ ११ ॥

यतनाशील यति प्रथम एषणा (आहारादि की गवेषणा) में उद्गम और उत्पादन दोषों का शोधन करे। दूसरी ग्रहणैषणा में आहार आदि ग्रहण करने से सम्बन्धित दोषों का शोधन करे और तीसरी परिभोगैषणा में संयोजना आदि दोष चतुष्क का शोधन करे ॥ १२ ॥

### 3. Circumspection in exploring alms (*eshana samiti*)

He should ensure purity (avoiding faults) of all the three—food, equipment and bed—through care in search, collection and use. (11)

A careful ascetic should avoid the faults of source (*udgami*) and production (*utpadan*) in the first (search), faults related to collection or acceptance in the second (collection) and the fault-quartet including that of arrangement (*samyojana*) in the third (use). (12)

### ४—आदाव-निक्षेपणा समिति

ओहोवहोचग्गहियं, भण्डगं दुविहं मुणी।  
गिण्हन्तो निक्खवन्तो य, पउंजेज्ज इमं विहिं ॥ १३ ॥  
चक्खुसा पडिलेहिता, पमज्जेज्ज जयं जई।  
आइए निक्खवेज्जा वा, दुहओ वि समिए सया ॥ १४ ॥



मुनि ओघ उपधि ( सामान्य उपकरण ) और औपग्रहिक उपधि ( विशेष स्थिति के उपकरण ) दोनों प्रकार के भाण्डोपकरणों को ग्रहण करने, लेने-उठाने और रखने में इस विधि का प्रयोग करे ॥ १३ ॥

यतनापूर्वक प्रवृत्ति करने वाला यति दोनों तरह के उपकरणों को आँखों से देखकर-प्रतिलेखन और प्रमार्जन करके सदा समितियुक्त होकर ग्रहण करे-लेवे तथा रखे ॥ १४ ॥

#### 4. Circumspection in taking and keeping (*aadaan-nikshepana samiti*)

An ascetic should use the following procedure in accepting, picking and putting his common and special equipments including bowls. (13)

A careful ascetic should accept, pick up and put down both aforesaid type of equipment after seeing with his own eyes, inspecting and wiping, ever observing the code of circumspection. (14)

#### ५-परिष्ठापनिका समिति

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण-जल्लियं ।  
 आहारं उवहिं देहं, अन्नं वावि तहाविहं ॥ १५ ॥  
 अणावायमसंलोए, अणावाए चेव होइ संलोए ।  
 आवायमसंलोए, आवाए चेय संलोए ॥ १६ ॥  
 अणावायमसंलोए, परस्सणुवघाइए ।  
 समे अज्झसिरे यावि, अचिरकालकयंमि य ॥ १७ ॥

उच्चार-मल, प्रस्रवण-मूत्र, श्लेष्म-कफ, सिंघानक-नाक का मैल, जल्ल-शरीर का मैल, आहार, उपधि, शरीर तथा अन्य भी किसी विसर्जन योग्य वस्तु का विवेकपूर्वक स्थण्डिल भूमि में परिष्ठापन करे ॥ १५ ॥

स्थण्डिल भूमि चार तरह की होती है—(१) अनापात असंलोक—जहाँ लोग न आते-जाते हों और न दूर से ही दिखते हों। (२) अनापात संलोक—लोग जहाँ आते-जाते तो न हों किन्तु दूर से दिखाई देते हों। (३) आपात असंलोक—लोग आते-जाते हों किन्तु दूर से दिखते न हों। (४) आपात संलोक—लोग आते-जाते भी हों और दिखाई भी देते हों ॥ १६ ॥

जो भूमि अनापात-असंलोक हो, परोपघात से रहित हो, सम हो, पोली न हो, कुछ समय पहले ही अचित्त (निर्जीव) हुई हो— ॥ १७ ॥

#### 5. Circumspection in disposal (*parishthapanika samiti*)

He should dispose stool (*uchchaar*), urine (*prasravan*), mucus (*shleshma*), slime from his nose (*singhaanak*), body-dirt (*jalla*), food (leftover), waste things, even his own body (when he is about to die) and any other thing to be disposed with due care at a suitable place for disposal. (15)



A place suitable for disposal can be of four kinds—1. That which is neither frequented by people nor is visible to people from a distance. 2. That which is not frequented by people but is visible to people from a distance. 3. That which is frequented by people but not visible to people from a distance. 4. That which is frequented by people and also visible to people from a distance. (16)

At a place that is neither frequented by people nor is visible to people, which does not disturb self-control, which is level land, which is not hollow, which has been made lifeless— (17)

विस्थिण्णे दूरमोगाढे, नासन्ने बिलवज्जिए।  
तसपाण-बीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥ १८ ॥

विस्तृत हो, गाँव से दूर हो, बहुत नीचे तक अचित्त हो, बिल तथा त्रस प्राणी और बीजों से रहित हो—ऐसी भूमि में मल आदि का व्युत्सर्ग करना चाहिए ॥ १८ ॥

Which is spacious, which is far from habitation, which is lifeless to a considerable depth, which is free from holes, mobile creatures and seeds, disposal of excreta etc. should be done at such a place. (18)

एयाओ पंच समिईओ, समासेण वियाहिया।  
एत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो ॥ १९ ॥

ये पाँच समितियाँ संक्षेप में बताई गई हैं। अब यहाँ से आगे अनुक्रम से तीन गुप्तियाँ कहूँगा ॥ १९ ॥

Here I have briefly explained these five circumspections. Now I will tell about the restraints in due order. (19)

### १—मनोगुप्ति

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य।  
चउत्थी असच्चमोसा, मणगुत्ती चउव्विहा ॥ २० ॥  
संरम्भ-समारम्भे तु, आरम्भे य तहेव य।  
मणं पवत्तमाणं तु, नियतेज्ज जयं जई ॥ २१ ॥

(१) सत्या (सच), (२) मृषा (झूठ), (३) सत्यामृषा (सत्य और झूठ मिश्रित), (४) असत्यामृषा (न सच, न झूठ—लोक व्यवहार) मनोगुप्ति के चार भेद हैं ॥ २० ॥

यतनायुक्त यति संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त होते हुए मन का निवर्तन—निरोध करे ॥ २१ ॥

### 1. Mental restraint (*manogupti*)

1. Truth, 2. untruth, 3. truth and untruth mixed, and 4. neither truth nor untruth (courteous and social behaviour)—these are four kinds of mental restraint. (20)

A careful ascetic should prevent his mind from wishing misfortune for, from thoughts of causing misery to and thoughts of causing destruction of other living beings. (21)





### २-वचनगुप्ति

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चामोसा तहेव य।  
चउत्थी असच्चमोसा, वङ्गुत्ती चउत्थिहा ॥ २२ ॥  
संरम्भ-समारम्भे, आरम्भे य तहेव य।  
वयं पवत्तमाणं तु, नियतेज्ज जयं जई ॥ २३ ॥

(१) सत्या, (२) मृषा, (३) सत्यामृषा, (४) असत्यामृषा-वचनगुप्ति के ये चार प्रकार हैं ॥ २२ ॥  
यतनायुक्त यति संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ में प्रवृत्त होते हुए वचन का निवर्तन-निग्रह करे ॥ २३ ॥

### 2. Vocal restraint (vachangupti)

1. Truth, 2. untruth, 3. truth and untruth mixed, and 4. neither truth nor untruth (courteous and social behaviour)—these are four kinds of vocal restraint. (22)

A careful ascetic should prevent his speech conveying wish of misfortune for, thoughts of causing misery to and thoughts of causing destruction of other living beings. (23)

### ३-कायगुप्ति

ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे।  
उल्लंघण-पल्लंघणे, इन्दियाण य जुंजणे ॥ २४ ॥  
संरम्भ-समारम्भे, आरम्भम्मि तहेव य।  
कायं पवत्तमाणं तु, नियतेज्ज जयं जई ॥ २५ ॥

खड़े रहने में, बैठने में, लेटने में या करवट बदलने में, गड्ढे आदि को लाँघने में, साधारण रूप से चलने में और इन्द्रियों के प्रयोग में— ॥ २४ ॥

संरम्भ, समारम्भ, आरम्भ में प्रवृत्त होती हुई काया (शरीर) को यतना सम्पन्न यति यतनापूर्वक निवर्तमान-निवृत्त करे ॥ २५ ॥

### 3. Physical restraint (kayagupti)

In acts of standing, sitting, lying, turning, jumping to cross a ditch, walking normally and application of sense organs— (24)

A careful ascetic should carefully prevent his body from activities directed at misfortune for, causing misery to and causing destruction of other living beings. (25)

एयाओ पंच समिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।  
गुत्ती नियत्तणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥ २६ ॥

ये पाँच समितियाँ चारित्र में प्रवृत्ति के लिए और तीन गुप्तरियाँ सभी अशुभ अर्थों-भावों-विषयों से सर्वथा निवृत्ति के लिए कही गई हैं ॥ २६ ॥



These five *samitis* have been prescribed for indulgence in right conduct and three *guptis* for complete prevention from indulgence in all ignoble and evil intentions and actions. (26)

एया पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी।  
से खिप्पं सव्वसंसारा, विप्पमुच्चइ पण्डइ ॥ २७ ॥

—त्ति बेमि।

जो पण्डित (तत्त्ववेत्ता) मुनि इन प्रवचन-माताओं का सम्यक् रूप से आचरण करता है वह समस्त संसार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥ २७ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

The sagacious ascetic, who immaculately practices these mothers of sermon, soon gets liberated from this worldly existence. (27)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ३—यहाँ पाँच समिति और तीन गुप्ति-इन आठों को ही समिति कहा है। प्रश्न है, ऐसा क्यों? शांत्याचार्य ने समाधान प्रस्तुत किया है कि गुप्तियाँ एकान्त निवृत्तिरूप ही नहीं, प्रवृत्तिरूप भी होती हैं, अतः प्रवृत्ति अंश की अपेक्षा से उन्हें भी समिति कह दिया है। समिति में नियमतः गुप्ति होती है, क्योंकि उसमें शुभ में प्रवृत्ति के साथ जो अशुभ से निवृत्तिरूप अंश है, वह नियमतः गुप्ति अंश ही है। गुप्ति में प्रवृत्तिप्रधान समिति की भजना है। (वृहद्वृत्ति)।

## IMPORTANT NOTES

Verse 3—Here the five *samitis* (circumspections) and three *guptis* (restraints), all the eight have been called *samitis*. Question is, why so? Shantyaacharya has explained that restraints are not exclusively negative, they have a positive component or nuance too. Therefore, due to their positive component they have been included in *samitis*. *Samiti* includes *gupti* as a rule because indulgence in noble essentially includes restrain from indulgence in ignoble. Similarly in restrain too circumspection is inherent.



## पच्चीसवाँ अध्ययन : यज्ञीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम यज्ञीय है। इस अध्ययन में प्रमुख रूप से यज्ञों का वर्णन हुआ है।

भारत में ब्राह्मण अथवा वैदिक संस्कृति का प्रादुर्भाव ही बहुदेववाद तथा यज्ञों से हुआ है। अग्नि, यम, वरुण आदि देवताओं को प्रसन्न करने के लिए तथा अपनी मनोकामनाओं को पूर्ण करने के लिए यज्ञ किये जाते थे। पुत्रकामो यजेत, स्वर्गकामो यजेत आदि वैदिक परम्परानुयायी ऋषियों और ब्राह्मणों के उद्घोष थे।

भगवान महावीर के काल में इन यज्ञों का बोलबाला था। विशाल यज्ञ किये जाते थे और उनमें सैकड़ों हजारों मूक पशुओं को जीवित ही अग्नि की ज्वालाओं में स्वाहा कर दिया जाता था। ब्राह्मण यायाजी (यज्ञकर्त्ता) होने में गौरव अनुभव करते थे।

ऐसे ही यायाजी दो भाई वाणारसी में रहते थे। उनके नाम जयघोष तथा विजयघोष थे। दोनों भाई वेदों के विद्वान् और यज्ञों के ज्ञाता-याज्ञिक थे।

एक बार जयघोष गंगा नदी में स्नान करने गया। गंगा-तट पर उसने बड़ा ही बीभत्स और कारुणिक दृश्य देखा। एक सर्प ने मुँह में एक मेढ़क को दबा रखा था, वह उसे निगलने की चेष्टा कर रहा था; और उस सर्प को एक कुरुर पक्षी निगलने की चेष्टा में रत था। ज्यों-ज्यों कुरुर सर्प को निगलता त्यों-त्यों सर्प के दवाब से मेढ़क की पीड़ा बढ़ती जाती, वह बुरी तरह तड़पता।

इस बीभत्स दृश्य से जयघोष के हृदय में करुणा की तरंगें तरंगित हो उठीं, उसे हिंसा से ग्लानि हो गई। साथ ही संसार में बड़ा जीव छोटे जीव का भोजन करता है, इस दृश्य से उसका मन उद्विग्न हो उठा। उसने किसी जैन श्रमण के पास जाकर श्रमणी दीक्षा ग्रहण कर ली। उग्र तप करने लगा। दीर्घकालीन तपस्या से उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए जयघोष मुनि पुनः वाराणसी पधारे। उस समय विजयघोष एक विशाल यज्ञ कर रहा था। मासोपवासी मुनि भिक्षा हेतु उसकी यज्ञशाला में पहुँचे। विजयघोष उन्हें न पहचान सका और भिक्षा देने से साफ इन्कार कर दिया।

भिक्षा न मिलने से समभावी मुनि जयघोष को कोई विषाद नहीं हुआ; किन्तु विजयघोष को प्रतिबोध देने हेतु उससे पूछा-यज्ञ, नक्षत्र, धर्म का मुख क्या है? विजयघोष इन प्रश्नों का उत्तर न दे सका। तब जयघोष मुनि ने इनका यथार्थ स्वरूप बताया तथा ब्राह्मण आदि का स्वरूप भी बताया। मुनि, श्रमण, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्णों का कारण तथा स्वरूप कहा।

तदनन्तर उसे कर्मबन्धन से दूर रहने की प्रेरणा दी। वह भी प्रतिबुद्ध होकर श्रमण बन गया तथा जयघोष-विजयघोष—दोनों संयम साधना करके मुक्त हुए।

प्रस्तुत अध्ययन में यज्ञ, ब्राह्मण आदि का स्वरूप आध्यात्मिक दृष्टि से वर्णित हुआ है, यही इसकी विशेषता है।

भगवान महावीर की तत्कालीन वाणी का प्रतिघोष इस अध्ययन में मुखरित हुआ है।

प्रस्तुत अध्ययन में ४५ गाथाएँ हैं।



## PANCHVIMSH ADHYAYAN : YAJNIYA

### Foreview

The title of this chapter is Yajniya or True Sacrifice. This chapter mainly deals with the description of *yajnas* (ritual offerings or sacrifices).

Brahmin or Vedic culture in India has its origin in polytheism and *yajna* (ritual sacrifice or offering). *Yajnas* were performed in order to appease gods, including those of fire, water and death, as well as to fulfill one's wishes. Brahmins and sages of Vedic tradition habitually made these pronouncements—'Want a son, perform *yajna*', 'wish to reach heaven, perform *yajna*'.

During the period of Bhagavan Mahavir such *yajnas* were frequent and wide spread. Elaborate *yajnas* were performed and thousands of animals were burnt alive in sacrificial fires. Brahmins felt proud becoming a *yayaaji* (*yajna* performer).

Two such brothers lived in Varanasi. Their names were Jayaghosh and Vijayaghosh. Both were well-versed in Vedas and sacrificial offerings.

Once, Jayaghosh went to river Ganges for a bath. On the bank he saw a very brutal and touching scene. A snake had caught a frog in its mouth and was trying to swallow it, and a vulture (*kurar*) was trying to swallow that snake. As the vulture swallowed the snake bit by bit, the snake pressed the frog, its agony increased and it shuddered with pain.

At this pathetic scene waves of compassion engulfed his heart and Jayaghosh was filled with revulsion for violence. He was disturbed watching the reality that stronger creatures of this world consumed the weaker ones. He approached a Jain ascetic and got initiated as a *shraman*. He started observing rigorous austerities and in due course the extended austerities emaciated his body.

Wandering from one village to another, ascetic Jayaghosh came to Varanasi. At that time Vijayaghosh was performing a great *yajna*. After a month long fast ascetic Jayaghosh came to the *yajna* pavilion to seek alms. Vijayaghosh could not recognize him and outrightly refused to offer any alms.

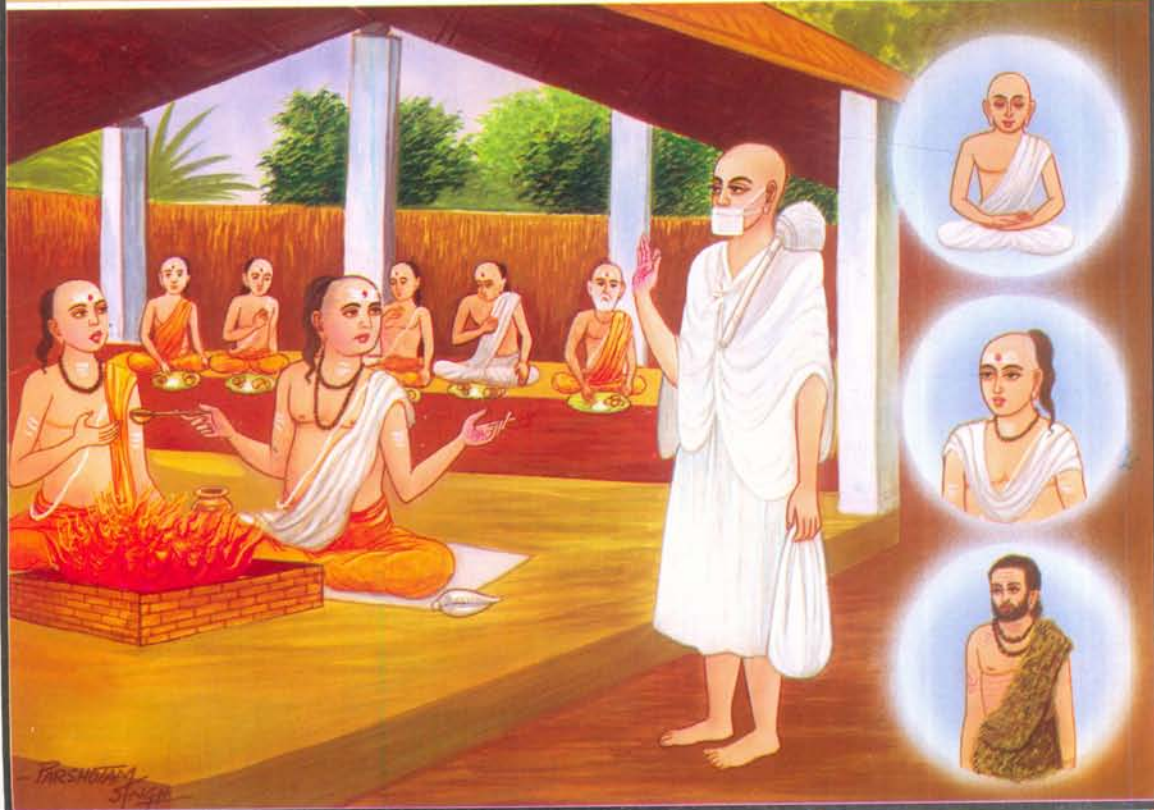
Getting no alms did not disturb the equanimous sage. However, in order to enlighten Vijayaghosh, the ascetic asked him—What is the mouth of *yajna*, *Nakshatra* (Asterism) and religion. Vijayaghosh failed to reply these questions. Then Jayaghosh explained the true meaning of these along with the cause and formation of Brahmin and other groups. He also explained the concepts of sage, *shraman* and caste system.

After that he inspired him to be away from acquiring *karmic*-bondage. Vijayaghosh was enlightened and became an ascetic. The two brothers practiced asceticism and attained liberation.

The special feature of this chapter is that *yajna*, Brahmin and related subjects have been spiritually dealt.

This chapter echoes the original thoughts of Bhagavan Mahavir as he might have presented at that time.

The chapter has 45 verses.



## जयघोष का तत्त्वज्ञान

गंगा-स्नान करते हुये जयघोष ने देखा-मेंढक को सर्प और सर्प को कुरर पक्षी निगल रहा है। यह दृश्य देखकर जयघोष को वैराग्य हो गया और वे मुनि बन गये (पूर्वलोक)। भिक्षार्थ भ्रमण करते हुये विजयघोष के यज्ञ-मण्डप में पहुँचने पर तत्त्व बताते हुये जयघोष मुनि ने कहा-कोई सिर मुंडाने मात्र से श्रमण, ॐकार जपने मात्र से ब्राह्मण और कुश-चीवर धारण करने मात्र से तापस नहीं होता।

—अध्ययन 25, सू. 31

## JAYAGHOSH'S KNOWLEDGE OF FUNDAMENTALS

Bathing in the Ganges Jayaghosh saw that a serpent is swallowing a frog and a Kurar bird is swallowing that serpent. Jayaghosh got detached and became a sage. Wandering to seek alms, when he came to the Yajna pavilion of Vijayaghosh he explained the fundamentals in these words – Just by tonsuring one does not become a sage. Just by chanting the syllable Om one does not become a Brahmin. And just by wearing Kush-grass one does not become a hermit.

—Chapter 25, Aphorism 31





पंचविंशइमं ब्रह्मयज्ञः : जज्ञइज्जं  
 पंचविंश अध्ययन : यज्ञीय  
 Chapter-25 : THE TRUE SACRIFICE

माहणकुलसंभूओ, आसि विष्णो महायसो।  
 जायाई जमजत्रमि, जयघोसे त्ति नामओ ॥ १ ॥

ब्राह्मण कुल में उत्पन्न जयघोष नाम का महायशस्वी विप्र था; जो हिंसक यज्ञ करने वाला यायाजी था ॥ १ ॥

Born in a Brahmin family there was a renowned Brahmin named Jayaghosh. He was a priest involved in performing violent *yajnas* (ritual sacrifices). (1)

इन्द्रियगामनिग्गाही, मग्गामी महामुणी।  
 गामाणुगामं रीयन्ते, पत्तो वाराणसिं पुरिं ॥ २ ॥

वह इन्द्रियसमूह का निग्रह करने वाला, मार्गामी महामुनि बन गया था। एक बार ग्रामानुग्राम विहार करता हुआ, वाराणसी पहुँच गया ॥ २ ॥

Later he became a great ascetic, victor of the set of sense organs and follower of the right path. Wandering from one village to another, he once arrived in Varanasi city. (2)

वाराणसीए बहिया, उज्जाणंमि मणोरमे।  
 फासुए सेज्जसंधारे, तत्थ वासमुवागए ॥ ३ ॥

वाराणसी के बाह्य भाग में एक मनोरम उद्यान था। वहाँ प्रासुक शय्या, संस्तारक, पीठ, फलक, आसन आदि लेकर ठहर गया ॥ ३ ॥

In the outskirts of Varanasi city there was a beautiful garden. Collecting faultless bed, mattress, plank, seat and other ascetic-equipment, he stayed there. (3)

अह तेणेव कालेणं, पुरीए तत्थ माहणे।  
 विजयघोसे त्ति नामेण, जत्रं जयइ वेयवी ॥ ४ ॥

उसी समय वाराणसी पुरी-नगरी में वेदों का ज्ञाता विजयघोष नामक ब्राह्मण यज्ञ कर रहा था ॥ ४ ॥

During the same period in Varanasi city a Brahmin named Vijayaghosh, who was a scholar of Vedas, was performing a *yajna*. (4)

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमणपारणे।  
 विजयघोसस्स जत्रंमि, भिक्खस्सऽट्ठा उवट्ठिए ॥ ५ ॥

एक मास की तपस्या के पारणे हेतु जयघोष अनगार, भिक्षा के लिए विजयघोष के यज्ञ में उपस्थित हुआ-पहुँचा ॥ ५ ॥



Homeless ascetic Jayaghosh came to the *yajna* (ritual sacrifice) pavilion seeking alms for breaking his month long fast. (5)

समुवद्वियं तहिं सन्तं, जायगो पडिसेहए ।  
न हु दाहामि ते भिक्खं, भिक्खू ! जायाहि अन्नओ ॥ ६ ॥

(विजयघोष) आये हुए संत (जयघोष मुनि) को देखकर यज्ञकर्त्ता (विजयघोष) ने उसे निषेध किया और कहा—हे भिक्षु ! मैं तुम्हें भिक्षा नहीं दूँगा, तुम किसी अन्य स्थान पर जाकर याचना करो ॥ ६ ॥

Seeing the approaching sage (ascetic Jayaghosh) the priest of the *yajna* (Vijayaghosh) stopped him and said —O ascetic! I will not give you alms, go and beg at some other place. (6)

जे य वेयविऊ विप्पा, जन्नद्धा य जे दिया ।  
जोइसंगविऊ जे य, जे य धम्माण पारगा ॥ ७ ॥

जो वेदों के ज्ञाता विप्र हैं, यज्ञ करने वाले द्विज (ब्राह्मण) हैं, ज्योतिष के अंगों (वेदों में वर्णित ज्योतिषांग) के ज्ञाता हैं तथा जो धर्म (धर्मशास्त्रों) के पारगामी हैं— ॥ ७ ॥

Those Brahmins who are well versed in *Vedas*, performers of *yajna*, scholars of astrology (as detailed in the *Vedas*) and experts of religion (scriptures)— (7)

जे समत्था समुद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य ।  
तेसिं अन्नमिणं देयं, भो भिक्खू ! सव्वकामियं ॥ ८ ॥

जो स्वयं अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं। हे भिक्षु ! यह सभी रसों से युक्त (सर्वकामिक) भोजन (अन्न) उन्हीं को देना है ॥ ८ ॥

Who are capable of saving their own soul and those of others? O ascetic! This food, enriched with all condiments, is to be given only to them. (8)

सो एवं तत्थ पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ।  
न वि रुद्धो न वि तुट्ठो, उत्तमट्ठ-गवेसओ ॥ ९ ॥

इस प्रकार यज्ञकर्त्ता द्वारा प्रतिषेध-इन्कार किये जाने पर उत्तम अर्थ की खोज करने वाला महामुनि (जयघोष) न रुष्ट हुआ है न तुष्ट-प्रसन्न हुआ ॥ ९ ॥

This way when the *yajna* priest refused the great sage, the seeker of the ultimate good, was neither annoyed nor pleased. (9)

नऽन्नट्ठं पाणहेउं वा, न वि निव्वाहणाय वा ।  
तेसिं विमोक्खणद्धाए, इमं वयणमब्बवी ॥ १० ॥

मुनि ने इस प्रकार के वचन न तो अन्न (भोजन) के लिए, न पान (जल) के लिए और न जीवन-निर्वाह के लिए अपितु उन (यज्ञकर्त्ताओं) की मुक्ति (विमोक्षण) के लिए कहे ॥ १० ॥





Neither for food nor for water or for subsistence, but only with the wish of their (performers of *yajna*) liberation, the sage uttered these words. (10)

न वि जाणासि वेद्यमुहं, न वि जन्नाण जं मुहं।  
नक्खत्ताण मुहं जं च, जं च धम्माण वा मुहं ॥ ११ ॥

(जयघोष मुनि—) तुम वेद के मुख (प्रधान तत्त्व) को नहीं जानते और यज्ञों का जो मुख (उपाय) है, उसे भी नहीं जानते। नक्षत्रों का जो मुख (प्रधान) है, उसे भी नहीं जानते और जो धर्मों का मुख (उपाय) है, उसे भी नहीं जानते ॥ ११ ॥

You do not know the mouth (basic theme) of *Vedas* and you also do not know the mouth (real performer) of *yajnas* (ritual offerings). You do not know the mouth of *Nakshatras* (most important among asterisms) and you do not also know the mouth (the source) of religions. (11)

जे समत्था समुद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य।  
न ते तुमं वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥ १२ ॥

जो अपनी और दूसरों की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं, उन्हें भी तुम नहीं जानते। यदि जानते हो तो बताओ ॥ १२ ॥

You even do not know those who are capable of saving their own soul as well as those of the others. However, if you know just tell me. (12)

तस्सऽक्खेवपमोक्खं च, अचयन्तो तहिं दिओ।  
सपरिसो पंजली होउं, पुच्छई तं महामुणिं— ॥ १३ ॥

उसके (जयघोष मुनि के) आक्षेपों-प्रश्नों के उत्तर (प्रमोक्ष) देने में असमर्थ उस ब्राह्मण (विजयघोष) ने अपनी सम्पूर्ण परिषद् के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि से पूछा— ॥ १३ ॥

When the *yajna* priest failed to reply these questions, he and all the assembled devotees asked the great sage with joined palms— (13)

वेथाणं च मुहं बूहि, बूहि जन्नाण जं मुहं।  
नक्खत्ताण मुहं बूहि, बूहि धम्माण वा मुहं ॥ १४ ॥

(विजयघोष—) आप ही बताइये-वेदों का मुख क्या है? यज्ञों का जो मुख है, वह भी कहो। नक्षत्रों का जो मुख है, वह भी कहिए और धर्मों का जो मुख है, वह भी बताइये ॥ १४ ॥

(Vijayaghosh—) You alone can tell us what is the mouth (basic theme) of the *Vedas*, the mouth (real performer) of *yajnas* (ritual offerings), the mouth of *Nakshatras* (most important among asterisms) and the mouth (the source) of religions. Kindly do that. (14)

जे समत्था समुद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य।  
एयं मे संसयं सव्वं, साहू ! कहसु पुच्छओ ॥ १५ ॥



जो अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हैं, उन्हें भी बताइये। ये सब मेरे संशय हैं। हे साधु! मैं आपसे पूछता हूँ, आप बताइये ॥ १५ ॥

Please also tell that who are capable of saving their own souls and those of others. All these are my doubts. O ascetic ! I beseech you to tell me. (15)

अग्निहोत्तमुहा वेया, जन्नद्वी वेयसां मुहं।  
नखत्ताण मुहं चन्दो, धम्माणं कासवो मुहं ॥ १६ ॥

(जयघोष मुनि—) वेदों का मुख अग्निहोत्र (अग्निकारिका अध्यात्म) है, यज्ञों का मुख यज्ञार्थी (बहिर्मुख इन्द्रियों और मन को संयम में केन्द्रित करने वाला आत्मसाधक) है, नक्षत्रों का मुख चन्द्र है और धर्मों का मुख काश्यप (ऋषभदेव) है ॥ १६ ॥

(Ascetic Jayaghosh—) The mouth (basic theme) of the *Vedas* is *agnihotra* (evoking the spiritual fire), the mouth (real performer) of *yajnas* (ritual offerings) is *yajnarthi* (the spiritual aspirant who focuses the extrovert sensual organs and mind into restraint), the mouth of *Nakshatras* (most important among asterisms) is the moon and the mouth (the source) of religions is *Kaashyap* (Rishabhadev). (16)

जहा चंदं गहाईया, चिद्वन्ती पंजलीउडा।  
वन्दमाणा नमंसन्ता, उत्तमं मणहारिणो ॥ १७ ॥

जिस प्रकार चन्द्रमा के सम्मुख मनोहर ग्रहादि हाथ जोड़े हुए वन्दना-नमस्कार करते हुए रहते हैं उसी प्रकार देवता, इन्द्र आदि उत्तम पुरुष भगवान ऋषभदेव के सम्मुख रहते हैं ॥ १७ ॥

All the resplendent stars and planets remain before the moon paying homage with joined palms; all great persons including gods and kings of gods remain before Bhagavan Rishabhadev in the same way. (17)

अजाणगा अन्नवाई, विज्जा माहणसंपया।  
गूढा सज्झायतवसा, भासच्छन्ना इवऽग्निणो ॥ १८ ॥

ब्राह्मण की संपदा विद्या है लेकिन यज्ञवादी इससे अनभिज्ञ हैं। वे बाहर में स्वाध्याय और तप से उसी प्रकार ढँके हुए हैं जिस प्रकार राख से अग्नि आच्छादित रहती है ॥ १८ ॥

The believers in *yajna* are unaware of the fact that the true wealth of a Brahmin is learning. They merely enshroud themselves with study and austerity as fire is covered by ash. (18)

जे लोए बम्भणो वुत्तो, अग्गी वा महिओ जहा।  
सया कुसलसंदिट्ठु, तं वयं बूम माहणं ॥ १९ ॥

जिसे संसार में कुशल पुरुषों ने ब्राह्मण कहा है तथा जो अग्नि के समान पूजित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ १९ ॥



We call that person a Brahmin who is worshipped like fire and is called Brahmin by the worthy. (19)

जो न सज्जड़ आगन्तुं, पव्वयन्तो न सोयई।  
रमए अज्जवयणांमि, तं वयं बूम माहणं ॥ २० ॥

जो स्वजन आदि प्रियजनों के आने पर आसक्त (प्रसन्न) नहीं होता और उनके चले जाने पर शोक नहीं करता, आर्य वचनों में (अर्हद्वाणी में) रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २० ॥

One who is neither elated when dear ones arrive nor sad when they depart and takes delight in noble words (of *Arhats*) we call him a Brahmin. (20)

जायरूवं जहामट्ठं, निद्धन्तमलपावगं।  
राग-द्वेष-भयाईयं, तं वयं बूम माहणं ॥ २१ ॥

कसौटी पर कसे हुए और अग्नि में तपाकर शुद्ध किये हुए स्वर्ण के समान जो निर्मल और तेजस्वी है तथा राग, द्वेष और भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २१ ॥

One who is pure and shining like the gold tested by touchstone and purified by melting in fire and is free from attachment, aversion and fear, we call him a Brahmin. (21)

तवस्सियं किसं दन्तं, अवच्चियमंस-सोणियं।  
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥ २२ ॥

जो तपस्वी होने से कृश है, जितेन्द्रिय है, जिसके शरीर का रक्त और माँस तपस्या के कारण कम हो गया है, जो सुव्रती है, शांत है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २२ ॥

One who is lean due to austerities, victor of senses, whose flesh and blood has been toned down by austerities, observer of noble vows and serene, we call him a Brahmin. (22)

तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे।  
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं ॥ २३ ॥

जो त्रस और स्थावर प्राणियों को भली प्रकार जानकर मन-वचन-काय से उनकी हिंसा नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २३ ॥

One who does not intentionally hurt mobile and immobile beings through mind, speech and body, we call him a Brahmin. (23)

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया।  
मुसं न वयई जो उ, तं वयं बूम माहणं ॥ २४ ॥

जो क्रोध से, हास्य से, लोभ से अथवा भय से मृषा (झूठ) नहीं बोलता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २४ ॥



One who does not indulge in uttering untruth out of anger, mirth, greed and fear; we call him a Brahmin. (24)

चित्तमन्तमचित्तं वा, अप्यं वा जई वा बहुं।  
न गेणहइ अदत्तं जे, तं वयं बूम माहणं ॥ २५ ॥

जो सचित्त या अचित्त, थोड़ा अथवा बहुत कोई भी पदार्थ बिना दिये नहीं लेता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २५ ॥

One who does not take any thing without being given, may it be living or lifeless or more or less, we call him a Brahmin. (25)

दिव्व-माणुस-तेरिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं।  
मणसा काय-वक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥ २६ ॥

जो देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सम्बन्धी मैथुन (अब्रह्मचर्य) का मन, वचन, काय से सेवन नहीं करता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २६ ॥

One who does not indulge in any sexual activity associated with divine beings, humans or animals through mind, speech and body, we call him a Brahmin. (26)

जहा पोमं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा।  
एवं अलित्तो कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥ २७ ॥

जैसे जल में उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार जो कामभोगों से अलिप्त रहता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २७ ॥

One who is not defiled by sensual pleasures, just like a lotus, though growing in water, is not wetted by it, we call him a Brahmin. (27)

अलोलुयं मुहाजीवी, अणगारं अकिंचणं।  
असंसत्तं गिहत्थेसु, तं वयं बूम माहणं ॥ २८ ॥

जो रस आदि में लोलुप नहीं है, स्वादविजयी है, मुधाजीवी-निर्दोष भिक्षा से जीवन-निर्वाह करता है, गृहत्यागी-अनगार है, अकिंचन है, गृहस्थों से अधिक परिचय नहीं रखता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २८ ॥

One who is not obsessed with gratifying taste-buds and the like or a victor of taste-buds, subsists on faultless alms, a homeless ascetic, has no possessions and not closely acquainted with householders, we call him a Brahmin. (28)

जहित्ता पुव्वसंजोगं, नाइसंगे य बन्धवे।  
जो न सज्जइ एएहिं, तं वयं बूम माहणं ॥ २९ ॥

जो पूर्व संयोगों को, ज्ञातिजनों और बन्धुजनों को छोड़कर फिर उनमें आसक्त नहीं होता, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ २९ ॥



One who does not get drawn to past contacts, kin and relatives once having abandoned them, we call him a Brahmin. (29)

पशुबन्धा सव्ववेया, सट्ठं च पावकम्मुणा ।  
न तं तायन्ति दुस्सीलं, कम्माणि बलवन्ति ह ॥ ३० ॥

पशुबन्ध (यज्ञ में आहुति देने के लिए पशुओं को बाँधना) के हेतु, सभी वेद और पापकर्मों से किये गये यज्ञ, उस दुःशील की रक्षा नहीं कर सकते-क्योंकि कर्म बलवान हैं ॥ ३० ॥

Binding of beasts to the sacrificial pole, all the *Vedas* and the sinful *yajnas* (ritual sacrifices) cannot protect that sinner because the *karmas* are very powerful. (30)

न वि मुण्डिण्ण समणो, न ओंकारेण बम्भणो ।  
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ॥ ३१ ॥

केवल सिर मुँडा लेने से कोई श्रमण नहीं होता, ॐ का जप करने से ब्राह्मण नहीं होता, वन में रहने से मुनि नहीं होता और कुश निर्मित चीवर (वस्त्र) धारण करने मात्र से कोई तपस्वी नहीं होता ॥ ३१ ॥

One cannot become an ascetic (*Shraman*) only by tonsuring his head, a Brahmin by mere chanting of 'Om', a sage (*muni*) just by living in a forest or a hermit (*taapas*) simply by wearing dress made of grass. (31)

समयाए समणो होइ, बम्भचरेण बम्भणो ।  
नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥ ३२ ॥

समभाव रखने से श्रमण होता है, ब्रह्मचर्य का पालन करने से ब्राह्मण होता है, ज्ञान से मुनि होता है और तप करने से तपस्वी होता है ॥ ३२ ॥

One becomes an ascetic (*Shraman*) by equanimity, a Brahmin by celibacy (*brahmacharya*), a sage (*muni*) by knowledge and a hermit by penance. (32)

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।  
वइस्से कम्मुणा होइ, सुद्धो हवइ कम्मुणा ॥ ३३ ॥

कर्म से ब्राह्मण होता है, कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है ॥ ३३ ॥

It is by his action (not by birth) that one becomes a Brahmin (learned or priestly class), a *Kshatriya* (warrior or ruling class), a *Vaishya* (business class) or *Shudra* (working class). (33)

एए पाउकरे बुद्धे, जेहिं होइ सिणायओ ।  
सव्वकम्मविनिम्मुक्कं, तं वयं बूम माहणं ॥ ३४ ॥

इन तत्त्वों का प्ररूपण अर्हत् ने किया है। इनके द्वारा जो साधक स्नातक-पूर्ण होता है, सर्वकर्मों से मुक्त-विनिमुक्त होता है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं ॥ ३४ ॥



The Enlightened ones (*Arhats*) have ordained these fundamentals. The aspirant who graduates by pursuing these becomes free from all *karmic*-bondage and we call him a Brahman. (34)

एवं गुणसमाउत्ता, जे भवन्ति दिउत्तमा ।  
ते समत्था उ उद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य ॥ ३५ ॥

जो गुण-सम्पन्न द्विजोत्तम-उत्तम ब्राह्मण होते हैं, वे ही अपना और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ होते हैं ॥ ३५ ॥

Only the best of the twice-born (Brahmins) endowed with virtues are capable of emancipating themselves as well as others. (35)

एवं तु संसए छिन्ने, विजयघोसे य माहणे ।  
समुदाय तयं तं तु, जयघोसं महामुणिं ॥ ३६ ॥

इस तरह संशय दूर हो जाने पर विजयघोष ब्राह्मण ने महामुनि जयघोष के वचनों को सम्यक् रूप से स्वीकार किया ॥ ३६ ॥

This way when all doubts were removed, Brahmin Vijayaghosh thoroughly and sincerely accepted the words of ascetic Jayaghosh. (36)

तुट्ठे य विजयघोसे, इणमुदाहु कयंजली ।  
माहणत्तं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ॥ ३७ ॥

संतुष्ट हुए विजयघोष ने हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—आपने मुझे यथार्थ ब्राह्मणत्व का बहुत ही सुन्दर उपदेश दिया है ॥ ३७ ॥

Contented Vijayaghosh submitted with joined palms—You have bestowed me with a highly lucid discourse about true Brahmanism. (37)

तुब्भे जइया जन्नाणं, दुब्भे वेयविऊ विऊ ।  
जोइसंगविऊ तुब्भे, तुब्भे धम्माण पारगा ॥ ३८ ॥

(विजयघोष ब्राह्मण—) आप यज्ञों के यष्टा-यज्ञकर्ता हो, वेदों के ज्ञाता विद्वान् हो, आप ही ज्योतिष के अंगों के जानकार और धर्मों के पारगामी हो ॥ ३८ ॥

You are a true *yajna* priest, a scholar of *Vedas*, an expert of all limbs of astrology and a profound savant of religions. (38)

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं, परं अप्पाणमेव य ।  
तमणुगगहं करेहण्हं, भिक्खेण भिक्खु उत्तमा ॥ ३९ ॥

आप ही अपने और दूसरों का उद्धार करने में समर्थ हो। इसलिए हे उत्तम भिक्षु ! भिक्षा स्वीकार करके हम पर अनुग्रह करो ॥ ३९ ॥

You alone are capable of emancipating yourself and others. Therefore, O excellent ascetic! Kindly oblige us by accepting alms. (39)



न कज्जं मज्झ भिक्खेण, खिप्पं निक्खमसू दिया ।

मा भमिहिसि भयावट्टे, घोरे संसारसागरे ॥ ४० ॥

(जयघोष मुनि—) मुझे भिक्षा से कोई कार्य (प्रयोजन) नहीं है। लेकिन हे द्विज! तुम शीघ्र ही अभिनिष्क्रमण करो यानी भ्रमण दीक्षा स्वीकार करो; जिससे कि तुम्हें भव के आवर्तों वाले इस घोर संसार-सागर में भ्रमण न करना पड़े ॥ ४० ॥

(Ascetic Jayaghosh—) I am not concerned at all with alms. But you should soon renounce the world (get initiated as a *shraman*) so that you may not have to drift on this dreadful ocean of worldly existence abounding in eddies of rebirths. (40)

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई ।

भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चई ॥ ४१ ॥

भोगों से कर्मों का उपलेप होता है, अभोगी कर्मों से लिप्त नहीं होता। भोगी संसार में भ्रमण करता है, अभोगी उससे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

Mundane indulgences smear the soul with layers of *karmas*, but he who is non-indulgent is not soiled. The indulgent drifts along and the non-indulgent gets liberated. (41)

उल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया ।

दो वि आवडिया कुड्डे, जो उल्लो सो तत्थ लग्गई ॥ ४२ ॥

गीले और सूखे मिट्टी के दो गोले फेंके गये। वे दोनों ही दीवार पर गिरे। गीला गोला वहीं (दीवार पर) चिपक गया ॥ ४२ ॥

Two clods of clay, one wet and one dry, were thrown on a wall. Both hit the wall. The wet clod stuck to the wall. (42)

एवं लग्गन्ति दुम्मोहा, जे नरा कामलालसा ।

विरत्ता उ न लग्गन्ति, जहा सुक्को उ गोलओ ॥ ४३ ॥

इसी तरह जो मनुष्य दुर्बुद्धि हैं और कामभोगों की लालसा से युक्त हैं वे विषयों में चिपक जाते हैं तथा जो कामभोगों से विरक्त हैं वे सूखे गोले के समान नहीं चिपकते ॥ ४३ ॥

In the same way, the evil minded who are obsessed with mundane pleasures get stuck to the mundane and those who are detached from these pleasures do not stick, just like the dry clod of clay. (43)

एवं से विजयघोसे, जयघोसस्स अन्तिए ।

अणगारस्स निक्खन्तो, धम्मं सोच्चा अणुत्तरं ॥ ४४ ॥

इस प्रकार विजयघोष ब्राह्मण जयघोष अनगर से अनुत्तर धर्म को सुनकर दीक्षित हो गया ॥ ४४ ॥

Thus listening to the supreme religion from ascetic Jayaghosh, Brahmin Vijayaghosh got initiated. (44)



खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।  
जयघोस-विजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥ ४५ ॥

—त्ति बेमि।

जयघोष और विजयघोष-दोनों ने तप और संयम के द्वारा पूर्व संचित कर्मों को सर्वथा क्षय करके सिद्धि प्राप्त की ॥ ४५ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Both Jayaghosh and Vijayaghosh shed all *karmas* accumulated in the past through austerities and restraint and attained the state of perfection (*Siddhi*) or liberation. (45)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १६—पूछे गये चार प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) वेदों का मुख अर्थात् प्रधान तत्त्व सारभूत क्या है? इसका उत्तर जयघोष ने दिया है—अग्निहोत्र है। अग्निहोत्र का हवन आदि प्रचलित अर्थ तो विजयघोष जानता ही था। किन्तु वह जयघोष मुनि से मालूम करना चाहता था कि उनके मत में अग्निहोत्र क्या है? मुनि का अग्निहोत्र एक अध्यात्म भाव है, जिसमें तप, संयम, स्वाध्याय, धृति, सत्य और अहिंसा आदि दस प्रकार के मुनिधर्म का समावेश होता है। यह 'भाव अग्निहोत्र' ही जयघोष मुनि ने विजयघोष को समझाया है। इसी अग्निहोत्र (आत्म-यज्ञ) में मन के विकार स्वाहा होते हैं।

(२) दूसरा प्रश्न है—यज्ञ का मुख-उपाय (प्रवृत्ति हेतु) क्या है? इसके उत्तर में यज्ञ का मुख अर्थात् उपाय यज्ञार्थी बताया है। मुनि ने आत्म-यज्ञ के सन्दर्भ में अपने बहिर्मुख इन्द्रिय और मन को असंयम से हटाकर संयम में केन्द्रित करने वाले आत्म-साधक को ही सच्चा यज्ञार्थी (याज्ञक) बताया है।

(३) तीसरा प्रश्न कालज्ञान से सम्बन्धित है। स्वाध्याय आदि समयोजित कर्तव्य के लिये काल का ज्ञान उस समय में आवश्यक था। और वह ज्ञान स्पष्टतः नक्षत्रों की गति-गणना से होता था। चन्द्र की हानि-वृद्धि से तिथियों का बोध अच्छी तरह हो जाता था। इस दृष्टि से ही मुनि ने उत्तर दिया है कि नक्षत्रों में मुख्य चन्द्रमा है। इस उत्तर की तुलना गीता (१०/२१) से की जा सकती है—“नक्षत्राणामहं शशी।”

(४) चौथा प्रश्न था-धर्मों का मुख अर्थात् उपाय (आदि कारण) क्या है? धर्म का प्रकाश किससे हुआ? उत्तर में जयघोष मुनि ने कहा है—धर्मों का मुख (आदि कारण) काश्यप है। वर्तमान काल-चक्र में आदि काश्यप ऋषभदेव ही धर्म के आदि प्ररूपक, आदि उपदेष्टा हैं। सूत्रकृतांग (१/२/३/२) में तो स्पष्ट ही कहा है कि सब तीर्थंकर काश्यप के द्वारा प्ररूपित धर्म का ही अनुसरण करते रहे हैं—“कासवस्स अणुधम्मचारिणो।” (शान्त्याचार्य वृहद्वृत्ति)।





## IMPORTANT NOTES

**Verse 16**—Answers to the four questions asked are as follows—

1. First question is—What is the mouth (basic theme) of the *Vedas*? The reply by Jayaghosh is—*Agnihotra*. Vijayaghosh knew the conventional meaning, fire-sacrifice and other accompanying rituals but he wanted to know ascetic Jayaghosh's interpretation of *agnihotra*. For an ascetic *agnihotra* is a spiritual concept, which encompasses the ten ascetic codes including austerities, restraint, self-study, patience, truth and ahimsa. Ascetic Jayaghosh explains this inner *agnihotra* to Vijayaghosh. In this inner sacrificial fire (*agnihotra*) perversions of mind are sacrificed and burnt.

2. Second question is—What is the mouth (real performer) of *yajnas* (ritual offerings)? The answer is—the performing priest. According to the ascetic in the spiritual *yajna* the aspirant who shifts his extrovert sense organs and mind from indiscipline and focuses on restraint is the real performer of *yajna*.

3. Third question is—What is the mouth of *Nakshatras* (most important among asterisms). It is related to time. In those days the knowledge of time was essential for routine timely duties including self-study; and that was dependent on the calculation of the motion of stars, constellations and Asterism. Knowledge of the changing dates of the lunar month was acquired easily with the waxing and waning of the moon visible to the naked eye. With this view the ascetic answered that the moon is central to Asterisms. This reply has affirmation in *Gita* also—*Nakshtraanaamaham shashi*. (10/21)

4. Fourth question is—What is the mouth (the source) of religions? Who gave the light of religion first of all? Ascetic Jayaghosh replied—It is *Kaashyap*. In the present cycle of time the first *Kaashyap* Bhagavan Rishabhadev is the first propagator and preceptor of religion. It is explicitly mentioned in *Sutrakritanga* (1/2/3/2) that all Tirthankars follow the religion propagated by *Kaashyap* (*Kaasavassa anudhammachaarino*). (*Vrihad Vritti* by Shantyaacharya)



## छब्बीसवाँ अध्यायन : सामाचारी

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम सामाचारी है। सामाचारी का अर्थ होता है—'सम्यक् आचार व्यवस्था' अर्थात् साधु के समस्त आचार, पारस्परिक कर्तव्य और व्यवहार। इनसे संबंधित नियमोपनियमों का—व्यवस्थाओं का प्रस्तुत अध्ययन में वर्णन हुआ है।

संघ को सुव्यवस्थित रखने के लिए समुचित व्यवहार होना आवश्यक है। न तो दूसरों के प्रति उदासीनता, रूक्षता, उपेक्षा, अनुत्तरदायिता ही होनी चाहिए और न अत्यधिक आसक्ति ही। किसी के प्रति लगाव और किसी के प्रति लापरवाही भी विखण्डन का कारण बन सकती है। उच्छृंखलता, निष्प्रयोजन आवागमन, हठाग्रह आदि भी संघ व्यवस्था को विशृंखलित करते हैं।

इन्हीं कारणों से श्रमण के आचार के दो रूप बताये गये हैं—व्रतात्मक आचार और व्यवहारात्मक आचार।

सामाचारी के भी दो प्रकार हैं—(१) ओघ सामाचारी, (२) पद-विभाग सामाचारी।

प्रस्तुत अध्ययन में दोनों प्रकार की सामाचारी का वर्णन है।

सामाचारी के दस भेद हैं—(१) आवश्यकी, (२) नैषेधिकी, (३) आपृच्छना, (४) प्रतिपृच्छना, (५) छन्दना, (६) इच्छकार, (७) मिथ्याकार, (८) तथाकार, (९) अभ्युत्थान, और (१०) उपसम्पदा (इसे आसेवना-शिक्षा भी कहते हैं)।

इन सभी का सर्वांगपूर्ण वर्णन प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

तदुपरान्त दिन और रात की औत्सर्गिक चर्या का वर्णन है।

दिन और रात्रि के आठ प्रहर होते हैं। दिन के चार प्रहर और रात्रि के भी चार प्रहर।

दिन के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचर्या और चौथे में स्वाध्याय।

इसी प्रकार रात्रि के प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान, तीसरे में शयन-निद्रा और चौथे में स्वाध्याय।

इस प्रकार दिन-रात के आठ प्रहरों में चार प्रहर स्वाध्याय के लिए, दो प्रहर ध्यान के लिये, एक प्रहर भिक्षाचर्या आदि शारीरिक कार्यों के लिए तथा एक प्रहर निद्रा के लिए नियत है।

सामाचारी की यह विशेषता है कि यह सामाजिक तथा पारिवारिक बंधनों के समान नहीं है अपितु इसका स्वेच्छया स्वीकरण होता है। यह तो अन्तर्हृदय का वह उत्स है जो सहजतया प्रवाहित होकर साधक-जीवन की आध्यात्मिक प्रगति में सहायक बनता है। साथ ही उसकी व्यवहारकुशलता भी बढ़ाता है। साधक के जीवन को संपूर्णता, सरलता, सहजता प्रदान करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में ५३ गाथाएँ हैं।



## SHADVIMSH ADHYAYAN : SAMAACHAARI

### Foreview

The name of this chapter is Samaachaari (ascetic-praxis) or The Right System of Ascetic Behaviour. This system includes complete conduct, duties and behaviour of an ascetic. This chapter describes the codes, rules, sub-rules and other procedures related to ascetic-praxis.

In order to keep the religious organization well managed proper interactive behaviour is essential. There should neither be excessive fondness nor apathy, harshness, neglect, or irresponsibility in dealings with others. Indifference for one and attachment for another may cause disintegration in the organization. Impertinence, purposeless moving around and haughtiness may also disrupt the management of the *sangh* (religious organization).

Keeping these causes in mind the ascetic-conduct is said to have two components—conduct related to vows and that related to social behaviour.

Ascetic-praxis too has two limbs—1. *Ogha Samaachaari* (general code of ascetic-praxis), and 2. *Padavibhaag Samaachaari* (protocol related codes of ascetic-praxis).

This chapter details both types of *Samaachaaris*.

There are ten divisions of *Samaachaari*—1. *Avashyaki*, 2. *Naishedhiki*, 3. *Aaprichchhana*, 4. *Pratiprichchhana*, 5. *Chhandana*, 6. *Ichchhaakaara*, 7. *Mithyaakaara*, 8. *Tathaakaara*, 9. *Abhyutthana*, and 10. *Upsampada* (*aasevana-shiksha*).

Complete and detailed description of all these has been included in this chapter.

After that the *autsargika charya* (procedure of dissociation) related to day and night is described.

There are eight *prahars* (period of three hours) in a day and night—four *prahars* (quarters) of day and four of night.

The first quarter of the day is assigned to studies, the second to meditation, the third to alms-seeking and the fourth again to studies.

In the same way the first quarter of the day is assigned to studies, the second to meditation, the third to sleeping and the fourth again to studies.

Thus out of the eight quarters of day and night four quarters are reserved for studies, two for meditation, one for alms-seeking and other bodily needs and one for sleep.

The special characteristic of *Samaachaari* is that it is not like forced social and family compulsions but is accepted voluntarily. It is the culmination of the inner desire that flows naturally and becomes helpful in the spiritual progress of an aspirant. It also enhances behavioural adroitness. It manifests in perfection, simplicity and spontaneity to the aspirants ascetic life.

The chapter has 53 verses.



छबीसइमं श्रज्जयणं : सामायारी  
षड्विंश अध्यायन : सामाचारी  
Chapter-26 : THE RIGHT SYSTEM OF  
ASCETIC BEHAVIOUR

सामायारिं पवक्खामि, सव्वदुक्खविमोक्खणिं।  
जं चरित्ताणं निगन्था, तिण्णा संसारसागरं ॥ १ ॥

मैं उस सामाचारी का कथन करता हूँ जो सभी दुःखों से मुक्त कराने वाली है और जिसका आचरण करके अनेक निर्ग्रन्थ संसार-सागर को तैर गये हैं ॥ १ ॥

I state the right system of ascetic behaviour (*samaachari*), which leads to freedom from all misery and following which many ascetics have gone across the ocean of worldly existence.

पढमा आवस्सिया नाम, बिइया य निसीहिया।  
आपुच्छणा य तइया, चउत्थी पडिपुच्छणा ॥ २ ॥  
पंचमा छन्दणा नाम, इच्छाकारो य छट्ठओ।  
सत्तमो मिच्छकारो य, तहक्कारो य अट्ठमो ॥ ३ ॥  
अब्भुट्ठाणं नवमं, दसमा उवसंपदा।  
एसा दसंगा साहूणं, सामायारी पवेइया ॥ ४ ॥

दश सामाचारी

(१) आवश्यकी, (२) नैषेधिकी, (३) आपृच्छना, (४) प्रतिपृच्छना ॥ २ ॥

(५) छन्दना, (६) इच्छाकार, (७) मिथ्याकार, (८) तथाकार ॥ ३ ॥

(९) अभ्युत्थान, (१०) उपसम्पदा। इस प्रकार यह दश अंगों वाली साधुओं की सामाचारी प्रतिपादित की गई है ॥ ४ ॥

Ten limbed *samaachari*

1. *Avashyaki*, 2. *Naishedhiki*, 3. *Aaprichchhana*, 4. *Pratiprichchhna* (2)

5. *Chhandana*, 6. *Ichchhaakaara*, 7. *Mithyaakaara*, 8. *Tathaakaara* (3)

9. *Abhyutthaana*, and 10. *Upsampada* (*aasevana-shiksha*)—This ten-limbed correct system of behaviour has been prescribed for ascetics. (4)

गमणे आवस्सियं कुज्जा, ठाणे कुज्जा निसीहियं।

आपुच्छणा सयंकरणे, परकरणे पडिपुच्छणा ॥ ५ ॥

(१) उपाश्रय अथवा अपने स्थान से बाहर निकलते—जाते समय 'आवस्सिय' का उच्चारण करना आवश्यकी सामाचारी है।



(२) उपाश्रय में प्रवेश करते समय 'निसीहियं' शब्द का उच्चारण करना नैषेधिकी सामाचारी है।

(३) अपने कार्य के लिए गुरु से आज्ञा लेना आपृच्छना सामाचारी है।

(४) दूसरों के कार्य के लिए गुरु से आज्ञा लेना प्रतिपृच्छना सामाचारी है ॥ ५ ॥

1. To utter the word 'Aavassiya' while going out of the room (lodging place) is *Aavashyaki Samaachaari*.

2. To utter the word 'Nisihyam' while entering the lodging place is *Naishedhiki Samaachaari*.

3. To seek permission for himself for any and all acts from the guru is *Aaprichchhana Samaachaari*.

4. To seek permission for others for any and all acts from the guru is *Pratiprichchhana Samaachaari*. (5)

छन्दणा दव्वजाएणं, इच्छाकारो य सारणे।

मिच्छाकारो य निन्दाए, तहक्कारो य पडिस्सुए ॥ ६ ॥

(५) पूर्व में ग्रहण किये हुए द्रव्यों के लिए गुरु आदि को आमन्त्रित करना छन्दना सामाचारी है।

(६) दूसरों का कार्य अपनी सहज रुचि से करना तथा अपना कार्य करने के लिए अन्यो को उनकी इच्छानुसार नम्र निवेदन करना (सारणा) इच्छाकार सामाचारी है।

(७) दोष की निवृत्ति के लिए आत्म-निन्दा, गर्हा करना मिथ्याकार सामाचारी है।

(८) गुरुजनों के उपदेश को तथारूप में स्वीकार करना तथाकार सामाचारी है ॥ ६ ॥

5. To invite the guru and others for sharing things already acquired is *Chhandana Samaachaari*.

6. To do work of others voluntarily and to humbly request others for one's own work if they wish to do so is *Ichchhaakaar Samaachaari*.

7. To indulge in self-criticism for faults committed is *Mithyaakaar Samaachaari*.

8. To accept the preaching of seniors the way they have conveyed is *Tuthaakaar Samaachaari*. (6)

अब्भुट्ठाणं गुरुपूया, अच्छणे उवसंपदा।

एवं दु-पंच-संजुत्ता, सामायारी पवेइया ॥ ७ ॥

(९) गुरुजनों के सत्कार के लिए अपने आसन से उठकर खड़े हो जाना अभ्युत्थान सामाचारी है।

(१०) किसी विशेष प्रयोजन से किसी अन्य आचार्य के पास रहना उपसम्पदा सामाचारी है।

इस तरह दश प्रकार की सामाचारी का प्रतिपादन किया गया है ॥ ७ ॥



9. To stand up from one's seat in honour of seniors is *Abhyutthaan Samaachaari*.

10. To place oneself under the command of some other *acharya* (preceptor) for some specific purpose is *Upsampada Samaachaari*.

The ten limbed right system of behaviour (*Samaachaari*) has been described thus. (7)

पुव्विल्लमि चउम्भाए, आइच्चमि समुट्ठिए।  
भण्डयं पडिलेहिता, वन्दित्ता य तओ गुरुं— ॥ ८ ॥

**औत्सर्गिक दिनकृत्य—ओघ सामाचारी**

सूर्य के ऊपर उठने पर दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भण्डोपकरणों की प्रतिलेखना करे और उसके पश्चात् गुरु को वन्दन करके— ॥ ८ ॥

**Ogha samaachaari (general code of ascetic-praxis)**

At sunrise in the first quarter of first *prahar* (quarter) of the day one should inspect and clean his ascetic-equipment. After that he should pay homage to the guru and— (8)

पुच्छेज्जा पंजलिउडो, किं कायव्वं माए इहं ?  
इच्छं निओइउं भन्ते !, वेयावच्चे व सज्झाए ॥ ९ ॥

हाथ जोड़कर पूछे कि भगवन्! मुझे इस समय क्या करना चाहिए? मेरी इच्छा है कि आप मुझे स्वाध्याय में नियुक्त करें अथवा वैयावृत्य में ॥ ९ ॥

Ask with joined palms—*Bhante!* What should I do now ? I submit that please assign me to the task of studying or serving others. (9)

वेयावच्चे निउत्तेणं, कायव्वं अगिलायओ।  
सज्झाए वा निउत्तेणं, सव्वदुक्खविमोक्खणे ॥ १० ॥

वैयावृत्य में नियुक्त कर दिये जाने पर अग्लान होकर सेवा करे अथवा सर्वदुःखों से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त किये जाने पर प्रसन्न मन से स्वाध्याय करे ॥ १० ॥

If assigned to serve then he should serve tirelessly and sincerely. If assigned to study he should happily and whole-heartedly indulge in studying, which leads to emancipation from all miseries. (10)

दिवसस्स चउरो भागे, कुज्जा भिक्खू वियक्खणो।  
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, दिणभागेसु चउसु वि ॥ ११ ॥

विचक्षण भिक्षु दिन के चार भाग करे। तत्पश्चात् इन चार भागों में उत्तरगुणों की विधिवत् आराधना करे ॥ ११ ॥

A prudent ascetic should divide the time of the day in four parts and then devote himself to properly perform his subsidiary duties (*uttar-gunas*; other than *mool-guna* or the primary duty of observing the five great vows) during all the four parts. (11)



पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं ज्ञाणं ज्ञियायई।

तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीए सज्झायं ॥ १२ ॥

प्रथम पौरुषी (प्रहर) में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में ध्यान, तीसरे में भिक्षाचरी और पुनः चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे ॥ १२ ॥

He should indulge in studies during the first *paurushi* (*prahar* or quarter of the day), meditation during the second, alms-seeking during the third and studies again during the fourth. (12)

आसाढे मासे दुपया, पोसे मासे चउप्यया।

चित्तासोएसु मासेसु, तिपया हवइ पोरिसी ॥ १३ ॥

### पौरुषी परिज्ञान

आषाढ मास में दो पैर (द्विपदा) पौरुषी होती है। पौष मास में चतुष्पदा तथा चैत्र और आश्विन मास में त्रिपदा पौरुषी होती है ॥ १३ ॥

### Knowledge of paurushi

In the lunar month of Ashadha there is two limbed (*paad*) *paurushi* (quarter of the night); in the month of Paush it is four limbed and in the months of Chaitra and Ashwin it is three limbed. (13)

अंगुलं सत्तरत्तेणं, पक्खेण य दुअंगुलं।

वड्ढए हायए वावी, मासेणं चउरंगुलं ॥ १४ ॥

सात अहोरात्र में एक अंगुल, एक पक्ष (पन्द्रह दिन-रात) में दो अंगुल और एक मास में चार अंगुल (प्रमाण छाया दक्षिणायन में श्रावण से पौष मास तक) बढ़ती है और (उत्तरायन में माघ मास से आषाढ मास तक) घटती है ॥ १४ ॥

It (*paurushi*) increases (from lunar months of Shravan to Paush during winter solstice) and decreases (from Maagh to Ashadha when the sun is in summer solstice respectively) by one Angul (width of a finger; digit; five minutes) in seven day-nights, two Anguls in a fortnight and four Anguls in a lunar month. (14)

आंसाढबहुलपक्खे, भद्वए कत्तिए य पोसे य।

फग्गुण—वइसाहेसु य, नायव्वा ओमरत्ताओ ॥ १५ ॥

आषाढ, भाद्रपद, कार्तिक, पौष, फाल्गुन और वैशाख मास के कृष्ण पक्ष में एक-एक अहोरात्र की न्यूनता जाननी चाहिए। यानी १४ दिन का पक्ष होता है ॥ १५ ॥

The dark fortnights of lunar months of Ashadh, Bhaadrapad, Kartik, Paush, Falgun and Vaishakha are known as *avamaraatra* (one day-night less than the normal; i.e., 14 day-nights). (15)

जेड्डामूले आसाढ-सावणे, छहिं अंगुलेहिं पडिलेहा।

अट्टहिं बीय-तियंमी, तइए दस अट्टहिं चउत्थे ॥ १६ ॥



ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण-इस प्रथम त्रिक में छह अंगुल; भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक-इस द्वितीय त्रिक में आठ अंगुल; मृगशिर, पौष और माघ-इस तृतीय त्रिक में दस अंगुल; फाल्गुन, चैत्र और वैशाख इस चतुर्थ त्रिक में आठ अंगुल की वृद्धि करने से प्रतिलेखन का पौरुषी समय होता है ॥ १६ ॥

In the quarter of the year comprising the three months of Jyesth, Ashadh and Shravan the inspection and cleaning increases by six Anguls. It increases by eight Anguls in the following quarter of months of Bhaadrapad, Ashwin and Kartik; by ten Anguls in the following quarter of months of Mrigashir, Paush and Maagh; and by eight Anguls in the following quarter of the months of Falgun, Chaitra and Vaishakh. (16)

रत्तिं पि चउरो भागे, भिक्खू कुज्जा वियक्खणो ।  
तओ उत्तरगुणे कुज्जा, राइभाएसु चउसु वि ॥ १७ ॥

### औत्सर्गिक रात्रि कृत्य

विचक्षण-मेधावी भिक्षु रात्रि के भी चार विभाग करे तथा उसके पश्चात् रात्रि के चारों ही विभागों में उत्तरगुणों की आराधना करे ॥ १७ ॥

### Renunciatory duties of the night

A prudent ascetic should divide the night in four parts and then devote himself to properly perform his subsidiary duties (*uttar-gunas*; other than *mool-guna* or the primary duty of observing the five great vows) during all the four parts. (17)

पढमं पोरिसि सज्जायं, बीयं ज्ञाणं ज्ञियायई ।  
तइयाए निहमोक्खं तु, चउत्थी भुज्जो वि सज्जायं ॥ १८ ॥

प्रथम प्रहर में स्वाध्याय, दूसरे में ध्यान करे, तीसरे प्रहर में निद्रा ले और चौथे प्रहर में पुनः स्वाध्याय करे ॥ १८ ॥

He should indulge in studies during the first *paurushi* (*prahar* or quarter of the day), meditation during the second, alms-seeking during the third and studies again during the fourth. (18)

जं नेइ जया रत्तिं, नक्खत्तं तमि नहचउब्भाए ।  
संपत्ते विरमेज्जा, सज्जायं पओसकालम्मि ॥ १९ ॥

जो नक्षत्र जिस रात्रि की पूर्ति करता हो, वह जब आकाश के प्रथम चतुर्थ भाग में आ जाता है यानी रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त होता है तब वह प्रदोषकाल होता है, उस काल में स्वाध्याय से निवृत्त हो जाय ॥ १९ ॥

When the *nakshatra* (constellation) that leads the night comes in the first quarter of the sky, which indicates the end of the first quarter of the night, it is called *pradosh kaal* (inauspicious period). He should conclude studies. (19)

तम्मेव य नक्खत्ते, गयणचउब्भागसावसेसंमि ।  
वेरत्तियं पि कालं, पडिलेहिता मुणी कुज्जा ॥ २० ॥





वही नक्षत्र जब आकाश के अन्तिम चतुर्थ भाग में आ जाता है—रात्रि का अन्तिम चतुर्थ प्रहर प्रारम्भ हो जाता है तब उसे वैरात्रिक काल समझकर मुनि स्वाध्याय आदि आवश्यक क्रियाओं में प्रवृत्त हो जाय ॥ २० ॥

When the same *nakshatra* reaches the last quarter of the sky, which indicates the beginning of the fourth quarter of the night, considering it to be the post-sleep period (*vairaatrik kaal*), he should resume his studies and other essential duties. (20)

पुव्विल्लंमि चउब्भाए, पडिलेहित्ताण भण्डयं।

गुरुं वन्दित्तु सज्जायं, कुज्जा दुक्खविमोक्खणं ॥ २१ ॥

विशेष दिनकृत्य

दिन के प्रथम प्रहर के प्रथम चतुर्थ भाग में भण्डोपकरणों की प्रतिलेखना करे, तदुपरान्त गुरु को वन्दना करके सभी दुःखों से मुक्त कराने वाला स्वाध्याय करे ॥ २१ ॥

Special day time acts

During the first quarter of the first *prahar* (quarter) of the day he should inspect and clean his ascetic-equipment. After that he should pay homage to the guru and indulge in studying, which leads to emancipation from all miseries. (21)

पोरिसीए चउब्भाए, वन्दित्ताण तओ गुरुं।

अपडिक्कमित्ता कालस्स, भायणं पडिलेहए ॥ २२ ॥

तदनन्तर प्रथम पौरुषी का चतुर्थ भाग शेष रहे यानी पौन (३/४) पौरुषी व्यतीत हो जाय तब गुरु को वन्दन करके और काल का प्रतिक्रमण (कायोत्सर्ग) किये बिना ही पात्र (भाजन) आदि की प्रतिलेखना करे ॥ २२ ॥

After that in the last quarter of the first *paarushi* he should again pay homage to the guru and without performing critical review for that period he should inspect and clean the bowls and other things. (22)

मुहपोत्तियं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं।

गोच्छगलइयंगुलियो, वत्थाइं पडिलेहए ॥ २३ ॥

प्रतिलेखना की विधि

मुँहपत्ति (मुखवस्त्रिका) की प्रतिलेखना करके गोच्छग का प्रतिलेखन करे। अंगुलियों से गोच्छग को पकड़कर वस्त्रों की प्रतिलेखना करे ॥ २३ ॥

Method of inspection

He should first inspect (and clean) mouth-cover and then his ascetic-broom. After that, holding the broom with fingers, he should inspect and clean his garb. (23)

उद्धं थिरं अत्तरियं, पुव्वं ता वत्थमेव पडिलेहे।

तो बिइयं पप्फोडे, तइयं च पुणो पमज्जेज्जा ॥ २४ ॥



प्रथमतः उकडू आसन से बैठे, वस्त्र को ऊँचा व स्थिर रखे और शीघ्रता न करते हुए उसका प्रतिलेखन करे—आँखों से देखे। दूसरे में यतना से वस्त्र को धीरे से झटकावे-प्रस्फोटना करे। तीसरे में पुनः प्रमार्जना करे ॥ २४ ॥

First he should sit in squatting posture, spread the cloth holding it high and still and inspect it visually without haste. Then he should shake it gently. At last he should wipe it clean. (24)

अणच्चावियं अवलियं, अणाणुबन्धिं अमोसलिं चैव ।

छप्पुरिमा नव खोडा, पाणीपाणविसोहणं ॥ २५ ॥

### प्रतिलेखना के दोष

प्रतिलेखना करते समय शरीर को या वस्त्र को नचावे नहीं (१), या वस्त्र को मरोड़े (मोड़े) नहीं (२), वस्त्र को दृष्टि से अलक्षित न करे (३), दीवार आदि से वस्त्र का स्पर्श न होने दे (४), वस्त्र के छह पूर्व और नौ खोटक (प्रस्फोट) करे (५), यदि कोई प्राणी (वस्त्र पर) हो तो उसका विशोधन करे (६) ॥ २५ ॥

### Faults of inspection

While inspecting he should not shake his body or the cloth (1); not twist the cloth (2); not move the cloth away from his vision (3); and not allow the cloth to touch wall or other things (4). He should fold it up six times in breadth and nine times in length (5); and then wipe it clean with palms to gently remove if there are any insects. (25)

आरभडा सम्मदा, वज्जेयच्चा य मोसली तइया ।

पप्फोडणा चउत्थी, विक्खित्ता वेइया छट्ठा ॥ २६ ॥

(१) आरभटा—निर्दिष्ट विधि से विपरीत प्रतिलेखन करना अथवा एक वस्त्र का पूरी तरह प्रतिलेखन किये बिना ही दूसरे वस्त्र का प्रतिलेखन करने लग जाना ।

(२) सम्मर्दा—वस्त्रों को जोर से दबाकर-मसल देना अथवा वस्त्रादि उपधि पर बैठ जाना ।

(३) मोसली—वस्त्र को ऊपर-नीचे, इधर-उधर किसी अन्य वस्त्र अथवा वस्तु से संघटित करते रहना ।

(४) प्रस्फोटना—धूल-धूसरित वस्त्र को जोर से झटकना ।

(५) विक्षिप्ता—वस्त्रों को इधर-उधर फैला देना अथवा प्रतिलेखित वस्त्रों को अप्रतिलेखित वस्त्रों में मिला देना ।

(६) वेदिका—प्रतिलेखना करते समय घुटनों के ऊपर, नीचे या बीच में दोनों हाथ रखना या दोनों भुजाओं के बीच में घुटनों को रखना अथवा एक घुटना भुजाओं में और दूसरा बाहर रखना ॥ २६ ॥

1. *Aarbhata*—To inspect garbs contrary to the prescribed method or to start inspecting another cloth before properly inspecting the first.

2. *Sammarda*—To press and rub cloth with force or to sit upon garb or other possessions.



3. *Mosali*—To keep on touching the cloth to any other thing in any direction.

4. *Prasfotana*—To violently shake a dirt-filled cloth.

5. *Vikshipta*—To scatter the clothes or to mix the inspected clothes with non-inspected ones.

6. *Vedikaa*—To keep both the hands over, under or in the middle of knees, or keep both the arms around the knees or one knee within the folded arms and one free while inspecting. (26)

पसिद्धिल-पलम्ब-लोला, एगामोसा अणेरूवधुणा ।

कुणइ पमाणि पमायं, संकिए गणणोवगं कुज्जा ॥ २७ ॥

(७) प्रशिथिल—वस्त्र को ढीला पकड़ना ।

(८) प्रलम्ब—वस्त्र को इस तरह पकड़ना कि उसके कोने नीचे लटकते रहें ।

(९) लोल—प्रतिलेखित किये जा रहे वस्त्र का भूमि या हाथ से संघर्षण करना ।

(१०) एकामर्शा—वस्त्र को बीच से पकड़कर एक दृष्टि से ही पूरे वस्त्र को देख जाना ।

(११) अनेकरूप धुनना—अनेक तरह से अथवा अनेक बार (तीन बार से अधिक) वस्त्र को धुनना, हिलाना या झटकना । अथवा कई वस्त्रों को एक साथ एक बार ही झटकना ।

(१२) प्रमाण-प्रमाद—प्रस्फोटन और प्रमार्जन का प्रमाण जो नौ-नौ बार बताया है उसमें प्रमाद करना ।

(१३) गणनोपगणना में शंका—प्रस्फोटन और प्रमार्जन के प्रमाण में शंका होने पर हाथ की अंगुलियों के पोरुओं (पर्व रेखाओं) से गणना करना ॥ २७ ॥

7. *Prashūthil*—To hold the cloth loosely.

8. *Pralamba*—To hold the cloth in a manner that its corners dangle.

9. *Lola*—To allow the cloth being inspected to rub with hands or ground.

10. *Ekaamarsha*—To hold the cloth at the center and inspect it just by a glance.

11. *Anekarupa dhunana*—To shake the cloth many ways or many times (more than three times) to shake many clothes together.

12. *Praamaan Pramaad*—To commit mistake in counting folds and its wiping (9 times).

13. *Doubt in counting*—To count on the fingers if there is doubt in the said counting. (27)

अणूणाइरिक्तपडिलेहा, अविवच्चासा तहेव य ।

पढमं पयं पसत्थं, सेसाणि उ अप्पसत्थाइं ॥ २८ ॥

प्रस्फोटन और प्रमार्जन के प्रमाण से (क) अन्यून (कम नहीं), (ख) अनतिरिक्त (न कम, न ज्यादा), तथा (ग) अविपरीत प्रतिलेखना ही शुद्ध होती है। उक्त तीन विकल्पों के आठ भेद होते हैं, उनमें से प्रथम भेद (अन्यून-अनतिरिक्त-अविपरीत) ही शुद्ध है और शेष भेद अशुद्ध हैं ॥ २८ ॥



The number of folds and shakes should be (a) neither less, (b) nor more or less and (c) nor contrary. Only such inspection is faultless. There are eight combinations of these three alternatives; of them only the first one (neither less, nor more, nor contrary) is faultless and the remaining are faulty. (28)

पडिलेहणं कुणन्तो, मिहोकहं कुणइ जणवयकहं वा ।  
देइ व पच्चक्खाणं, वाएइ सयं पडिच्छइ वा— ॥ २९ ॥

प्रतिलेखन करता हुआ जो परस्पर वार्तालाप करता है, जनपद की कथा करता है, किसी को प्रत्याख्यान देता है, वाचना देता है, स्वयं किसी से वाचना लेता है— ॥ २९ ॥

While inspecting, one who talks to others, tells stories about people, formalizes renunciatory vows, gives or takes lessons; — (29)

पुढवीआउक्काए, तेऊवाऊवणस्सइतसाण ।  
पडिलेहणापमत्तो, छण्हं पि विराहओ होइ ॥ ३० ॥

ऐसा प्रतिलेखना में प्रमाद करने वाला साधक पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय—इन छहों कार्यों के जीवों का विराधक होता है ॥ ३० ॥

An aspirant who is thus careless about inspection is harmer of six life forms—earth-bodied, fire-bodied, water-bodied, air-bodied, plant-bodied and mobile beings. (30)

पुढवी-आउक्काए, तेऊ-वाऊ-वणस्सइ-तसाणं ।  
पडिलेहणआउत्तो, छण्हं आराहओ होइ ॥ ३१ ॥

प्रतिलेखना में उपयोगयुक्त साधक पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय—इन छहों कार्यों के जीवों का संरक्षक होता है ॥ ३१ ॥

An aspirant who is careful about inspection is protector of six life forms—earth-bodied, fire-bodied, water-bodied, air-bodied, plant-bodied and mobile beings. (31)

तइयाए पोरिसीए, भत्तं पाणं गवेसए ।  
छण्हं अन्नयरागम्मि, कारणंमि समुट्टिए ॥ ३२ ॥

**तृतीय पौरुषी के दिनकृत्य**

छह कारणों में से किसी एक कारण के समुपस्थित होने पर साधक दिन के तीसरे प्रहर (पौरुषी) में भक्त-पान की गवेषणा-अन्वेषणा करे ॥ ३२ ॥

**Activities of the third quarter of the day**

An aspirant should go for alms-seeking (food and water) during the third quarter (*prahar* or *paurushi*) of the day for any of the six following reasons. (32)

वेयण—वेयावच्चे, इरियट्टाए य संजमट्टाए ।  
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिन्ताए ॥ ३३ ॥



वे छह कारण हैं—(१) क्षुधावेदना की शांति के लिए, (२) वैयावृत्य के लिए, (३) ईर्या समिति के पालन के लिए, (४) संयम पालन के लिए, (५) प्राणों की रक्षा के लिए, और (६) धर्मचिन्तन के लिए ॥ ३३ ॥

The six reasons are—1. In order to pacify the pain of hunger, 2. In order to serve fellow ascetics, 3. In order to observe movement related circumspection (*iryā samiti*), (4) In order to observe self-control, (5) In order to save his own life, 6. In order to perform religious contemplation. (33)

निगन्थो धिङ्मन्तो, निगन्थी वि न करेज्ज छहिं चेव ।

ठाणेहिं उ इमेहिं, अणइक्कमणां य से होइ ॥ ३४ ॥

धृतिमान् निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनी इन (आगे कहे जाने वाले) छह कारणों से (आहार-पानी की गवेषणा) न करे तो ही (संयम का) अतिक्रमण नहीं होता ॥ ३४ ॥

If a devout ascetic (male or female) does not explore for food and water for (following) six reasons, then it is not considered transgression (of ascetic-discipline). (34)

आयंके उवसग्गे, तित्तिक्खया बम्भचेरगुत्तीसु ।

पाणिदया तवहेउं, सरीर-वोच्छेयणद्वाए ॥ ३५ ॥

(१) आतंक रोग उत्पन्न होने पर, (२) उपसर्ग आने पर, (३) ब्रह्मचर्य गुप्ति की रक्षा के लिए, (४) प्राणियों की दया के लिए, (५) तप के लिए, और (६) शरीर-व्युच्छेद के लिए। (इन कारणों के समुपस्थित होने पर साधु-साध्वीवर्ग भक्त-पान की गवेषणा न करे।) ॥ ३५ ॥

1. Due to serious ailment, 2. due to other afflictions, 3. for protection of vow of celibacy, 4. to facilitate compassion for living beings, 5. to facilitate austerities, and 6. to abandon earthly body. (35)

अवसेसं भण्डगं गिज्जा, चक्खुसा पडिलेहए ।

परमद्धजोयणाओ, विहारं विहरए मुणी ॥ ३६ ॥

सभी उपकरणों का आँखों से प्रतिलेखन करे और यदि आवश्यक हो तो उन्हें लेकर मुनि अधिक से अधिक आधे योजन (दो कोस-तीन माइल-पाँच किलोमीटर) की दूरी तक भिक्षा हेतु जाए ॥ ३६ ॥

He should visually inspect his whole outfit and go to seek alms up to a distance of half Yojan (five kilometers) according to the need. (36)

चउत्थीए पोरिसीए, निक्खवित्ताण भायणं ।

सज्जायं तओ कुज्जा, सब्बभावविभावणं ॥ ३७ ॥

चतुर्थ पौरुषी

दिन के चतुर्थ प्रहर में भली-भाँति प्रतिलेखना कर सभी पात्रों को बाँधकर रख दे। तदुपरान्त सभी भावों-तत्त्वों का प्रकाशक स्वाध्याय करे ॥ ३७ ॥



#### Fourth Quarter

In the fourth quarter of the day he should put away his bowls properly after due inspection. Then he should settle down for studies that reveal all fundamentals. (37)

पोरिसीए चउब्भाए, वन्दित्ताण तओ गुरुं।

पडिक्कमित्ता कालस्स, सेज्जं तु पडिलेहए ॥ ३८ ॥

पौरुषी के चतुर्थ भाग में गुरु को वन्दना करके काल का प्रतिक्रमण (कायोत्सर्ग) कर शय्या का प्रतिलेखन करे ॥ ३८ ॥

During the last quarter of the fourth *paurushi* of the day he should pay homage to the guru, perform the periodic critical-review (*pratikraman*) and then inspect the bed. (38)

पासवणुच्चारभूमिं च, पडिलेहिज्ज जयं जई।

काउस्सगं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥ ३९ ॥

#### दैवसिक प्रतिक्रमण

यतनाशील यति प्रस्रवण और उच्चार भूमि का प्रतिलेखन करे। तदुपरान्त सर्व दुःखों का अन्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ॥ ३९ ॥

#### Day-pratikraman

A zealous ascetic should inspect the area for disposal of excreta. After that he should perform *kayotsarg* (meditation) that ends all miseries. (39)

देसियं च अईयारं, चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो।

नाणे य दंसणे चेव, चरित्तम्मि तहेव य ॥ ४० ॥

(कायोत्सर्ग में) ज्ञान-दर्शन-चारित्र में लगे दिवस-सम्बन्धी अतिचारों का चिन्तन करे ॥ ४० ॥

He should review and reflect (while meditating) on the transgressions related to knowledge-faith-conduct committed during the day. (40)

पारियकाउस्सगो, वन्दित्ताण तओ गुरुं।

देसियं तु अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥ ४१ ॥

कायोत्सर्ग को पूर्ण कर गुरु को वन्दन करे। तदुपरान्त दिवस सम्बन्धी अतिचारों की अनुक्रम से आलोचना करे ॥ ४१ ॥

After concluding meditation, he should pay homage to the guru and then perform critical review of transgressions of the day in proper sequence. (41)

पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वन्दित्ताण तओ गुरुं।

काउस्सगं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥ ४२ ॥

प्रतिक्रमण करके, शल्यरहित होकर गुरु को वन्दन करे, तत्पश्चात् सभी दुःखों से मुक्त कराने वाला कायोत्सर्ग करे ॥ ४२ ॥



After thus performing sequential expiation (*pratikraman*) and becoming free of internal thorns, he should pay homage to the guru and then again perform *kayotsarg* (meditation) that ends all miseries. (42)

पारियकाउस्सग्गो, वन्दित्ताण तओ गुरुं।  
शुङ्गमंगलं च काउण, कालं संपडिलेहए ॥ ४३ ॥

कायोत्सर्ग को पारित (पूर्ण) करके फिर गुरु को वन्दन करे तथा स्तुति-मंगल (सिद्धस्तव) करके काल की सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखना करे ॥ ४३ ॥

On concluding meditation, he should again pay homage to the guru and after singing panegyrics (*Siddhastav*) perform the timely inspection. (43)

पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं ज्ञाणं ज्ञियायई।  
तइयाए निददमोक्खं तु, सज्झायं तु चउत्थिए ॥ ४४ ॥

#### रात्रिक कृत्य एवं प्रतिक्रमण

(रात्रि की) प्रथम पौरुषी-प्रहर में स्वाध्याय करे, दूसरे प्रहर में ध्यान करे, तीसरे प्रहर में शयन करे-निद्रा ले और चौथे प्रहर में स्वाध्याय करे ॥ ४४ ॥

#### Activities of the night

He should indulge in studies during the first *paurushi* (*prahar* or quarter of the night), meditation during the second, sleeping during the third and studies again during the fourth. (44)

पोरिसीए चउत्थीए, कालं तु पडिलेहिया।  
सज्झायं तओ कुज्जा, अबोहेन्तो असंजए ॥ ४५ ॥

किन्तु चौथी पौरुषी-प्रहर में काल की प्रतिलेखना करके तदनन्तर असंयमी लोगों को न जगाता हुआ स्वाध्याय करे ॥ ४५ ॥

But in the fourth quarter after performing timely inspection, he should commence studies ensuring not to awake undisciplined people. (45)

पोरिसीए चउब्भाए, वन्दिऊण तओ गुरुं।  
पडिक्कमित्तु कालस्स, कालं तु पडिलेहए ॥ ४६ ॥

चतुर्थ पौरुषी के चौथे भाग में गुरु को वन्दना करके काल का प्रतिक्रमण करके काल का प्रतिलेखन करे ॥ ४६ ॥

During the fourth quarter of the fourth *paurushi* he should perform periodic inspection after paying homage to the guru and doing period related critical review (*pratikraman*). (46)

आगए कायवोस्सग्गो, सव्वदुक्खविमोक्खणे।  
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥ ४७ ॥



सभी दुःखों से मुक्त कराने वाले कायोत्सर्ग का समय आने पर सब दुःखों से मुक्त कराने वाला कायोत्सर्ग करे ॥ ४७ ॥

When it is time to perform meditation (*kayotsarg*) that ends all miseries he should perform meditation (*kayotsarg*) that ends all miseries. (47)

राइयं च अईयारं, चिन्तिज्ज अणुपुव्वसो ।  
नाणंमि दंसणंमी, चरित्तंमि तवमि य ॥ ४८ ॥

ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य से सम्बन्धित रात्रि सम्बन्धी अतिचारों का अनुक्रम से चिन्तन करे ॥ ४८ ॥

He should review and reflect (while meditating) on the transgressions related to knowledge-faith-conduct committed during the night. (48)

पारियकाउस्सग्गो, वन्दित्ताण तओ गुरुं ।  
राइयं तु अईयारं, आलोएज्ज जहक्कमं ॥ ४९ ॥

कायोत्सर्ग को पूर्ण करके फिर गुरु को वन्दना कर रात्रि-सम्बन्धी अतिचारों की अनुक्रम से आलोचना करे ॥ ४९ ॥

After concluding meditation, he should pay homage to the guru and then perform critical review of transgressions of the night in proper sequence. (49)

पडिक्कमित्तु निस्सल्लो, वन्दित्ताण तओ गुरुं ।  
काउस्सग्गं तओ कुज्जा, सव्वदुक्खविमोक्खणं ॥ ५० ॥

इसके पश्चात् प्रतिक्रमण करके, शल्यरहित होकर, गुरु को वन्दना करके सर्व दुःखों से मुक्त करने वाला कायोत्सर्ग करे ॥ ५० ॥

After thus performing sequential expiation (*pratikraman*) and becoming free of internal thorns, he should pay homage to the guru and then again perform *kayotsarg* (meditation) that ends all miseries. (50)

किं तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिन्तए ।  
काउस्सग्गं तु पारित्ता, वन्दई य तओ गुरुं ॥ ५१ ॥

उस कायोत्सर्ग में चिन्तन करे कि आज मैं किस तप का आचरण करूँ? कायोत्सर्ग को पारित कर गुरु को वन्दन करे ॥ ५१ ॥

During that meditation he should contemplate on what austerity he should observe this day. On concluding meditation he should pay homage to the guru. (51)

पारियकाउस्सग्गो, वन्दित्ताण तओ गुरुं ।  
तवं संपडिवज्जेत्ता, करेज्ज सिद्धाण संधवं ॥ ५२ ॥

कायोत्सर्ग पूरा होने पर गुरु को वन्दना करे। उसके उपरान्त यथोचित तप को स्वीकार कर सिद्धों की स्तुति-संस्तव करे ॥ ५२ ॥





After thus concluding meditation and paying homage to the guru he should resolve to observe the desired austerity and then sing panegyrics for perfected souls (Siddhas). (52)

एसा सामाचारी, समासेण वियाहिया।  
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं ॥ ५३ ॥

—त्ति बेमि।

यह सामाचारी संक्षेप में कही गई है। इसका आचरण कर बहुत से जीव संसार-सागर को तैर गये हैं ॥ ५३ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

This *Samaachaari* has been mentioned in brief. Practicing it, many souls have gone across the ocean of worldly existence. (53)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १३-१६—“पुरुष” शब्द से “पौरुषी” शब्द का निर्माण हुआ। पुरुष के द्वारा जिस काल का माप हो, वह पौरुषी, अर्थात् प्रहर है। पुरुष शब्द के दो अर्थ हैं—पुरुष शरीर और शंकु। शंकु २४ अंगुल प्रमाण एक नाप होता है। पैर से जानु (घुटने) तक का प्रमाण भी २४ अंगुल ही होता है। जिस दिन किसी भी वस्तु की छाया वस्तु के प्रमाण के अनुसार होती है, वह दिन दक्षिणायन का प्रथम दिन होता है, युग के प्रथम वर्ष (सूर्यवर्ष) के श्रावण कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को शंकु एवं जानु की छाया अपने ही प्रमाण के अनुसार २४ अंगुल पड़ती है। १२ अंगुल का एक पाद-पैर होने से शंकु एवं जानु की २४ अंगुल छाया को दो पाद माना है।

एक वर्ष में दो अयन होते हैं—दक्षिणायन और उत्तरायन। दक्षिणायन श्रावण मास में प्रारम्भ होता है और उत्तरायन माघ मास में। दक्षिणायन में छाया बढ़ती है और उत्तरायन में घटती है।

गाथा १९-२०—रात्रि के चार भाग होते हैं—(१) प्रादोषिक अर्थात् रात्रि का मुख भाग, (२) अर्ध-रात्रिक, (३) वैरात्रिक, और (४) प्राभातिक। प्रादोषिक और प्राभातिक इन दो प्रहरों में स्वाध्याय किया जाता है। अर्ध-रात्रि में ध्यान और वैरात्रिक में शयनक्रिया-निद्रा। (ओष नि., गा. ६५८)



## IMPORTANT NOTES

**Verse 13-16**—The word *paushhi* is derived from *purush* (man). The time which is measured by *purush* is *paushhi* or *prahar*. The word *purush* has two meanings—human body and *shanku* (a linear measure equal to 24 Anguls or breadth of a finger). Measurement from foot to knee is also 24 Anguls. On the day the length of the shadow of a thing is equal to the thing, it is the day of summer solstice. On the first solar year of the Yuga (decade) the first day of the dark fortnight of the lunar month of Shravan, the shadow of Shanku measures 24 Anguls. The foot (*paad*), being of 12 Anguls the shadow of *shanku* is standardized as two *paad* (feet).

There are two *ayans* in a year *Dakshinayan* (when the sun appears to shift southwards) and *Uttarayan* (when the sun appears to shift northwards). *Dakshinayan* period begins from the month of Shravan (sometime in July) and *Uttarayan* from the month of Maagh (sometime in February). The shadow increases during the southward shift and decreases during the northward shift.

**Verse 19-20**—There are four parts of the night—1. *Praadoshik* (evening), 2. *Ardharatrik* (midnight), 3. *Vairatrik* (third quarter), and 4. *Praabhaatik* (morning). Studies are done during the two quarters (*prahars*) *Praadoshik* and *Praabhaatik*, meditation during the *Ardharatrik* and sleep during *Vairatrik*. (*Ogha Nirukti*, 658)





## सत्ताईसवाँ अध्यायन : खलुंकीय

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम खलुंकीय है। 'खलुंक' शब्द का अर्थ-दुष्ट बैल, दंशमशक (कष्टदायक), जलौका (गुरु-दोषदर्शी), वृश्चिक (बिच्छू वचनरूपी डंक से पीड़ित करने वाले) आदि हैं।

शारपेण्टियर के मतानुसार यह शब्द (खलुंक) खल से सम्बन्धित रहा हो, 'खल' का अर्थ ही वक्र और दुष्ट है।

'खल' का यह अर्थ आज भी प्रचलित है।

अनुमानतः यह शब्द (खलुंक) खलौक्ष का निकटवर्ती रहा है। जैसे खल विहग दुष्ट पक्षी के लिए प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार खल-उक्ष दुष्ट बैल के लिए प्रयुक्त हुआ हो।

प्रस्तुत अध्ययन में खलुंक शब्द दुष्ट बैल के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा उसकी उपमा उद्दण्ड और अविनीत शिष्य से दी गई है। साथ ही ऐसे शिष्य की दुर्विनीतता, वक्रता, उच्छृंखलता और उद्दण्डता का चित्रण किया गया है।

साधक जीवन के दो महत्वपूर्ण अनिवार्य अंग हैं—विनय और अनुशासन। जिस साधक के जीवन में ये दोनों अथवा दोनों में से एक भी नहीं होता; वह स्वच्छन्द होकर साधक-जीवन से भ्रष्ट हो जाता है।

जिस प्रकार दुष्ट बैल शकट (गाड़ी), जूआ तथा समिला को तोड़कर मालिक (गाड़ीवान) को दुःखी और पीड़ित करता है, उसी प्रकार दुष्ट शिष्य धर्मशकट (धर्मसंघ) को तोड़कर आचार्य-अनुशास्ता को दुःखी व पीड़ित करता है, उनकी चित्त समाधि और शांति को भंग कर देता है।

शिष्य और सहयोगियों का कर्त्तव्य होता है कि वे सुख-साता पहुँचाये, धर्मसाधना में सहयोगी बने; किन्तु घोर स्वार्थी और धृष्ट एवं दुष्ट प्रकृति वाले मानव एवं शिष्य इसके विपरीत आचरण ही करते हैं; वे चित्त-पीड़क एवं दुःखदायक होते हैं।

गार्ग्याचार्य अपने समय के विशिष्ट तत्त्ववेत्ता थे। वे स्थविर और अनुपम ज्ञान के धारक थे। वे संयम के गुणों से विभूषित थे। किन्तु, दुर्भाग्य से उनके सभी शिष्य उद्दण्ड, अविनीत, उच्छृंखल और अनुशासनविहीन थे। आचार्य ने उनको सुधारने का बहुत प्रयास किया; बहुत समय तक उनकी उद्दण्डताओं को सहन किया; किन्तु उनके सुधार की जब कोई आशा शेष न रही तब एक दिन आत्मभाव से प्रेरित हो, वे अपने सभी शिष्यों को छोड़कर अकेले ही चल दिये।

आत्म-समाधि के इच्छुक श्रमण का यही कर्त्तव्य है कि यदि समूह (शिष्य-वर्ग, साथी श्रमण, भक्त-श्रावकों, दुष्ट व्यक्तियों आदि) से आत्मसाधना-समाधि भंग होती हो और यदि कोई निपुण प्रज्ञावान साथी या सहायक न मिले तो संयम की रक्षा करता हुआ मुनि एकाकी रहकर धर्म-साधना करे।

यही गार्ग्याचार्य ने किया और यही इस अध्ययन की प्रेरणा है।

प्रस्तुत अध्ययन में १७ गाथाएँ हैं।



## SAPTAVIMSH ADHYAYAN : KHALUNKIYA

### Foreview

The title of this chapter is Khalunkiya or Rogue Bullocks. The term *khalunk* means rogue bullock, stinger (cause of pain), leech (fault-finder), scorpion (causing pain by stinging words) etc.

According to Sharpentier this word appears to have been derived from the root *khal*, which means crooked and roguish.

This meaning of *khal* still prevails.

The term *khalunk* seems to be a variant of *khalauksha*. As *khal-vihag* is used for a crooked bird, *khalauksha* (or *khalunk*) might have been used for crooked bullock.

In this chapter the word *khalunk* has been used for crooked or rogue bullocks and it is used as a metaphor for impertinent and immodest disciple. Also included is the description of immodesty, crookedness, indiscipline and impertinence of such pupil.

There are two important essentials in an aspirant's life—modesty and discipline. Devoid of both or even one of these an aspirant becomes footloose and drifts away from the spiritual path.

As a rogue bullock causes pain and suffering to his master (cart driver) by breaking the cart, yoke and rein, in the same way a rogue disciple breaks the cart of religion (discipline of the order), disturbs the mental peace and serenity of the *acharya* (head of the order), thereby causing pain and suffering to him.

It is the duty of disciples and other associates to ensure mutual comforts and facilitate spiritual practices; but extremely selfish, arrogant and roguish individuals act contrary to this. They cause mental agony and misery.

Gargyacharya was an accomplished religious scholar of his time. He was a senior ascetic with profound wisdom. He was endowed with the virtues of restraint. But unfortunately all his disciples were impertinent, immodest, footloose and undisciplined. The *acharya* tried his best to reform them. He tolerated their misconduct for a long time, but in the end when all hopes of their reform were lost, drawn by his spiritual goal, he one day left all his disciples and went into isolation.

It is the duty of an ascetic seeking spiritual serenity that if the group activity (with disciples, associate sages, devotees and other disturbing elements) impedes his spiritual pursuits and he does not get an able and qualified associate, then guarding his restraint he should pursue his spiritual goal in isolation.

This is what Gargyacharya did and that is the theme of this chapter.

The chapter has 17 verses.



सत्तावीशइमं ब्रज्जयणं : खलुंकिज्जं  
सप्तविंश अध्यायन : खलुंकीय  
Chapter-27 : ROGUE BULLOCKS

थेरे गणहरे गग्गे, मुणी आसि विसारए।  
आइण्णे गणिभावमि, समाहिं पडिसंधए ॥ १ ॥

स्थविर, गणधर (गच्छाचार्य) गर्ग गोत्रीय गार्ग्य मुनि शास्त्र विशारद थे। वे आचार्य के गुणों से ओत-प्रोत, गणिभावों में स्थित और समाधि में स्वयं को जोड़े हुए थे ॥ १ ॥

Senior ascetic and head of the organization Gargya of Garg clan was a scholar of scriptures. He was highly endowed with virtues of a preceptor (*acharya*), mature in qualities of a sect-leader and associated with meditation. (1)

वहणे वहमाणस्स, कन्तारं अइवत्तई।  
जोए वहमाणस्स, संसारो अइवत्तई ॥ २ ॥

शकट आदि वाहन में जोता हुआ अच्छा बैल जैसे महावन से सुखपूर्वक पार हो जाता है उसी प्रकार संयम-योग में भली-भाँति प्रवृत्त साधक भी संसार से (सुखपूर्वक) पार हो जाता है ॥ २ ॥

(He said-) With a good bull yoked to a cart one crosses vast wilderness with ease; in the same way an aspirant zealously indulging in ascetic-discipline crosses the ocean of worldly existence (with ease). (2)

खलुंके जो उ जोएइ, विहम्माणो किलिस्सई।  
असमाहिं च वेएइ, तोत्तओ य से भज्जई ॥ ३ ॥

जो दुष्ट बैलों (खलुंक) को (वाहन में) जोतता है, वह उन्हें मारता हुआ स्वयं क्लेश पाता है, असमाधि का अनुभव करता है और अन्ततः उसका चाबुक भी टूट जाता है ॥ ३ ॥

One who yokes bad bullocks to a cart gets disturbed and distressed by beating them and in the end his whip also breaks down. (3)

एगं डसइ पुच्छंमि, एगं विन्धइऽभिकखणं।  
एगो भंजइ समिलं, एगो उप्पहपट्ठओ ॥ ४ ॥

क्षुब्ध हुआ वाहक (गाड़ीवान) किसी (बैल) की पूँछ में दंश देता है तो किसी एक को लगातार बाँधता है और (उन दुष्ट बैलों में से) कोई एक जूए की कील को तोड़ देता है तो कोई एक उन्मार्ग पर चल पड़ता है ॥ ४ ॥

(Out of annoyance the driver/bad ox) sometimes bites the tail of one and sometimes wounds the other. One (bad ox) sometimes breaks the pin of the yoke and sometimes drifts to a wrong path. (4)



एगो पडइ पासेणं, निवेसइ निवज्जई।  
उक्कुदइ उप्फिडई, सडे बालगवी वए ॥ ५ ॥

कोई मार्ग के एक ओर पार्श्व में गिर जाता है तो कोई बैठ जाता है और कोई लम्बा लेट जाता है। कोई कूदता है, कोई उछलता है तो कोई तरुण गाय (बालगवी) के पीछ भाग जाता है ॥ ५ ॥

Sometimes some falls on the side of the path, or sits down or stretches on the ground. Sometimes some jumps, or stomps or chases a young cow. (5)

माई मुद्धेण पडई, कुद्धे गच्छइ पडिप्पहं।  
मयलक्खेण चिट्ठई, वेगेण य पहावई ॥ ६ ॥

कोई मायावी (धूर्त बैल) सिर को निढाल बनाकर-सिर के बल भूमि पर लुढ़क-गिर जाता है। कोई क्रोधित होकर उन्मार्ग (प्रतिपथ) में अथवा उल्टे पैरों पीछे की ओर चल पड़ता है। कोई मृतक के समान पड़ा रहता है तो कोई वेग से दौड़ने लगता है ॥ ६ ॥

Some deceptive one sometimes drops down with stretched head. Some angrily goes the wrong way or starts back-tracking. Some falls flat as if dead and some dashes headlong at top speed. (6)

छिन्नाले छिन्दई सेल्लिं, दुददन्तो भंजए जुगं।  
से वि य सुस्सुयाइत्ता, उज्जाहिन्ता पलायए ॥ ७ ॥

कोई दुष्ट बैल (छिन्नाल) रास (रस्सी) को छिन्न-भिन्न कर देता है, तोड़ देता है, दुर्दान्त होकर जूए को तोड़ देता है और सूँ-सूँ की ध्वनि निकालता हुआ वाहन को छोड़कर पलायन कर जाता है ॥ ७ ॥

Some rogue one shatters the rope and getting unruly breaks the yoke. Making whistling sound some runs away abandoning the cart. (7)

खलुंका जारिसा जोज्जा, दुस्सीसा वि हु तारिसा।  
जोइया धम्मजाणम्मि, भज्जन्ति धिइदुब्बला ॥ ८ ॥

जैसे वाहन में जोते हुए दुष्ट बैल वाहन को तोड़ देते हैं उसी प्रकार धृति-दुर्बल (धैर्य में कमजोर) शिष्यों को धर्मयान में जोतने पर वे भी उसे तोड़ देते हैं ॥ ८ ॥

As the wicked bulls yoked in a cart break the vehicle, so the disciples wanting in patience and enthusiasm, yoked to the chariot of religion break it down. (8)

इड्ढीगारविए एगे, एगेऽत्थ रसगारवे।  
सायागारविए एगे, एगे सुचिरकोहणे ॥ ९ ॥

(उन शिष्यों में) कोई ऋद्धि-ऐश्वर्य का गौरव (अहंकार) करता है, कोई रस का गौरव करता है, कोई साता-सुख का गौरव करता है तो कोई दीर्घकाल तक क्रोध करता रहता है ॥ ९ ॥

(Among those disciples) Some is maligned with pride of prosperity, some of taste and some of happiness; some revels in anger for a long time. (9)

भिक्खालसिए एगे, एगे ओमाणभीरुए थद्धे।  
एगं च अणुसासम्मी, हेऊहिं कारणेहिं य ॥ १० ॥



कोई भिक्षाचरी में (भिक्षा हेतु जाने में) आलस्य करता है, तो कोई अपमान से डरता है तो कोई सव्य ढीठ होता है। हेतु और कारणों से गुरु किसी को अनुशासित करते हैं तो— ॥ १० ॥

Some is lethargic in (going for) seeking alms, some is apprehensive of insult and some is obstinate. When the guru disciplines some one with cause and reason then— (10)

सो वि अन्तरभासिल्लो, दोसमेव पकुवई।

आयरियाणं तं वयणं, पडिकूलेइ अभिक्खणं ॥ ११ ॥

वह बीच में ही बोलने लगता है। गुरु (आचार्य) के वचनों में दोष निकालने लगता है। इतना ही नहीं बार-बार आचार्य के वचन के प्रतिकूल आचरण करता है ॥ ११ ॥

He (wicked disciple) interferes and finds fault with the guru's statements. Not only this, he frequently acts contrary to the instructions of the guru. (11)

न सा ममं वियाणाइ, न वि सा मज्झ दाहिई।

निगया होहिई मने, साहू अन्नोऽत्थ वच्चउ ॥ १२ ॥

भिक्षा लाने के समय कोई शिष्य गृहस्वामिनी के सम्बन्ध में कहता है—वह मुझे नहीं जानती है, वह मुझे कुछ नहीं देगी। मैं समझता हूँ, वह घर से बाहर निकल गई होगी। अतः इसके लिए अच्छा होगा कि कोई दूसरा साधु चला जाये ॥ १२ ॥

(When asked to go for alms some disciple makes lame excuses about the donor lady—) She does not know me; she will give me nothing; I think she must have gone out of her home; therefore it is better that some other ascetic goes for begging. (12)

प्रेसिया पलिउंचन्ति, ते परियन्ति समन्तओ।

रायवेदिंठ व मन्नन्ता, करेन्ति भिउडिं मुहे ॥ १३ ॥

किसी कार्य से भेजने पर बिना कार्य किये लौट आते हैं और अपलाप करते हैं। इधर-उधर घूमते हैं। गुरु की आज्ञा को राजा द्वारा ली जाने वाली बेगार (वेडि-वेष्टि) मानकर मुँह पर भृकुटि चढ़ा लेते हैं ॥ १३ ॥

If sent on an errand, they return without performing the assigned task and feed wrong information. They stroll about aimlessly. They treat the order of guru like forced labour sought by a ruler, and knit their brows. (13)

वाइया संगहिया चेव, भत्तपाणे य पोसिया।

जायपक्खा जहा हंसा, पक्कमन्ति दिसोदिसिं ॥ १४ ॥

जैसे पंख आने पर हंस दशों दिशाओं-विभिन्न दिशाओं में उड़ जाते हैं उसी प्रकार शिक्षित-दीक्षित एवं भक्त-पान से पोषित किये गये कुशिष्य भी स्वेच्छाचारी बनकर इधर-उधर घूमते हैं ॥ १४ ॥

The wicked disciples, even after being well taught, initiated and nourished with food and drink, move around footloose like swans that fly away in all directions when their wings grow. (14)

अह सारही विचिन्तेइ, खलुंकेहिं समागओ।

किं मज्झ दुट्ठीसीसेहिं, अप्पा मे अवसीयई ॥ १५ ॥



अविनीत शिष्यों से खिन्न होकर धर्मयान के सारथी गार्ग्याचार्य सोचते हैं—मुझे इन दुष्ट शिष्यों से क्या लाभ है? इनसे तो मेरी आत्मा अवसन्न-व्याकुल ही होती है ॥ १५ ॥

Distressed by immodest disciples, Gargyacharya, the driver of the religious chariot, thinks—What benefit do I have from such wicked disciples? They simply are a detriment to my soul. (15)

जारिसा मम सीसाउ, तारिसा गलिगद्दहा ।

गलिगद्दहे चइत्ताणं, दढं परिगिण्हइ तवं ॥ १६ ॥

जैसे गलि गर्दभ आलसी निकम्मे गधे होते हैं, वैसे ही ये मेरे शिष्य हैं। यह सोचकर गार्ग्याचार्य ने उन गलि-गर्दभरूप शिष्यों को छोड़ दिया और दृढ़ तपश्चरण स्वीकार किया ॥ १६ ॥

As the donkeys of street are lazy and useless, so are these disciples of mine. Thinking thus Gargyacharya abandoned all those aforesaid disciples and accepted life of rigorous austerities. (16)

मिउ—मद्दवसंपन्ने, गम्भीरे सुसमाहिए ।

विहरइ महिं महप्पा, सीलभूएण अप्पणा ॥ १७ ॥

—त्ति बेमि ।

मृदु और मार्दव गुण से संपन्न, गम्भीर, सम्यक् समाधि में लीन अपने चारित्रमय आत्मा से युक्त होकर वे महात्मा गार्ग्याचार्य पृथ्वी पर विचरण करने लगे ॥ १७ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ ।

Endowed with virtues of amity and compassion, indulgent in serene and profound contemplation Gargyacharya, the great soul enriched with right conduct, commenced his itinerant life on this earth. (17)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १—“गणधर” शब्द के अर्थ दो होते हैं—(१) तीर्थंकर भगवान के प्रमुख शिष्य, जैसे कि भगवान महावीर के गौतम आदि गणधर। (२) अनुपम ज्ञान आदि गुणों के धारक आचार्य। यहाँ पर दूसरा अर्थ ही अभीष्ट है। (वृ. वृ. शान्त्याचार्य)

कर्मोदय से अथवा शिष्यों द्वारा तोड़ी गई ज्ञानादि रूप भावसमाधि का पुनः अपने आप में जोड़ना, प्रतिसन्धान है। (वृहद्वृत्ति)

## IMPORTANT NOTES

Verse 1—The term *Ganadhar* has two meanings—1. a chief disciple of a Tirthankar, like Bhagavan Mahavir's chief disciples including Gautam Ganadhar; 2. an acharya (preceptor; head of a religious organization) endowed with extraordinary virtues including knowledge. Here the second meaning is relevant. (V.V. of *Shantiyacharya*)

*Pratisandhan* is to regain the inner serenity in the form of contemplation, disturbed by fruition of *karmas* or unruly disciples.





## अष्टाईसवाँ अध्ययन : मोक्ष-मार्ग-गति

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम मोक्ष-मार्ग-गति है।

निर्ग्रन्थ श्रमण के लिए मोक्ष साध्य है—प्राप्य है; उस प्राप्य की प्राप्ति के लिए सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप समन्वित रूप से मार्ग-उपाय है और साध्य की ओर गति साधक का पुरुषार्थ-पराक्रम है।

साध्य की प्राप्ति के लिए साधनों का आलम्बन अनिवार्य है। साध्य अथवा प्राप्तव्य को जान लिया जाये किन्तु उसकी प्राप्ति के साधनों का अवलम्बन न लिया जाय तो साध्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। साधन भी उपलब्ध हो जायें फिर भी साध्य की ओर साधक गति न करे, परिश्रम व पुरुषार्थ न करे तो भी उसके लिए साध्य की प्राप्ति असम्भव ही है। इसलिए मोक्ष-प्राप्ति हेतु साधन और उन साधनों में पराक्रम आवश्यक है।

मोक्ष-प्राप्ति के चार साधन हैं—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। इनमें प्रथम साधन ज्ञान-सम्यक्ज्ञान है। ज्ञान से ही आत्मा जिनकथित तत्त्वों-पुद्गल कर्म तथा आत्मा को जानता है, छह द्रव्यों के स्वरूप से परिचित होता है, उन्हें समझता है।

दर्शन से ज्ञान द्वारा जाने हुए नौ तत्त्वों—(१) जीव, (२) अजीव, (३) पुण्य, (४) पाप, (५) आस्रव, (६) संवर, (७) बन्ध, (८) निर्जरा, और (९) मोक्ष—इन पर श्रद्धा-अटूट और निश्चल विश्वास करता है।

श्रद्धा की सहयोगिनी दश प्रकार की रुचियाँ हैं, जो सम्यक्त्व-सम्यग्दर्शन को पुष्ट करती हैं। रागादि विभावों, विषयों, कषाओं का निग्रह सम्यक्चारित्र है जो कर्मों से आत्मा को रिक्त करता है। "चयरिक्तकरं चारित्तं।"

आत्मोन्मुखी तपनरूप क्रिया तप है जो पूर्व संचित कर्मों को जलाकर एकदेश से भस्म कर देता है। करोड़ों जन्मों के संचित कर्म समूह की निर्जरा कर देता है।

सम्पूर्ण कर्मों का क्षय होने पर साधक को मुक्ति प्राप्त होती है और तब उसके समस्त आत्म-गुणों का पूर्ण विकास (निर्वाण) होता है।

इस सम्पूर्ण निरूपण का आधार व्यवहार की अपेक्षा से है। निश्चय अथवा वास्तविक दृष्टि से विचार करने पर तो आत्मा के शुद्ध स्वभाव की दृढ़ प्रतीति ही सम्यग्दर्शन है, आत्मा के शुद्ध स्वरूप का बोध ही सम्यक्ज्ञान है और आत्म-स्वरूप में लीनता ही सम्यक्चारित्र है और यही मोक्ष-मार्ग-गति है।

प्रस्तुत अध्ययन की प्रथम १४ गाथाओं में सम्यक्ज्ञान का, १५ से ३१ गाथाओं में सम्यग्दर्शन का, ३२-३३ दो गाथाओं में सम्यक्चारित्र का, ३४वीं गाथा में सम्यक्त्प का और ३५वीं गाथा में चारों ही साधनों की उपयोगिता का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार इस अध्ययन में साधक को मोक्ष-प्राप्ति की प्रक्रिया बताई गई है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३६ गाथाएँ हैं।



## ASHTAVIMSH ADHYAYAN : MOKSHA-MAARG-GATI

### Foreview

The name of this chapter is—Moksha-maarg-gati or Endeavour on the Path of Liberation.

*Moksha* or liberation is the goal for a knotless ascetic. *Marg* or path or means to attain that is the combination of right knowledge, right faith, right conduct and right austerity. *Gati* is the endeavour or the persistent pursuit by the aspirant.

It is essential to use means to attain goal. If the goal is understood but the means to attain it are not used, the goal cannot be attained. Even when the means are in hand and still the aspirant does not move towards the goal and endeavour to attain it, reaching the goal is still impossible. Therefore, in order to gain liberation it is essential to have the means as well as the efforts to employ them.

There are four means to attain liberation—knowledge, perception/faith, conduct and austerities. Among these the first means is knowledge, right knowledge. The soul cognizes the fundamentals defined by the Jina—soul and matter (*karmas*). Through the same means it becomes aware and understands the form of six substances.

By means of perception/faith it develops unwavering faith and belief in the nine fundamentals recognized by means of knowledge—(1) *jiva* or soul, (2) *ajiva* or non-soul (matter), (3) *punya* or merit, (4) *paap* or demerit, (5) *asrava* or *karmic*-inflow, (6) *samvar* or blocking of *karmic*-inflow, (7) *bandh* or *karmic*-bondage, (8) *nirjara* or shedding of *karmas*, and (9) *moksha* or liberation.

There are ten sentiments (intents) that enrich righteousness or right perception/faith. Right conduct is to cleanse the soul of the malignancy of *karmas* by means of restraining the maligning factors including attachment and aversion as well as sensual indulgences and passions (*chayarittakaram chaarittam*).

Austerity is the act of introvert scalding that partially burns the *karmas* accumulated in the past. It helps shedding of *karmas* accumulated during the extended series of millions of rebirths.

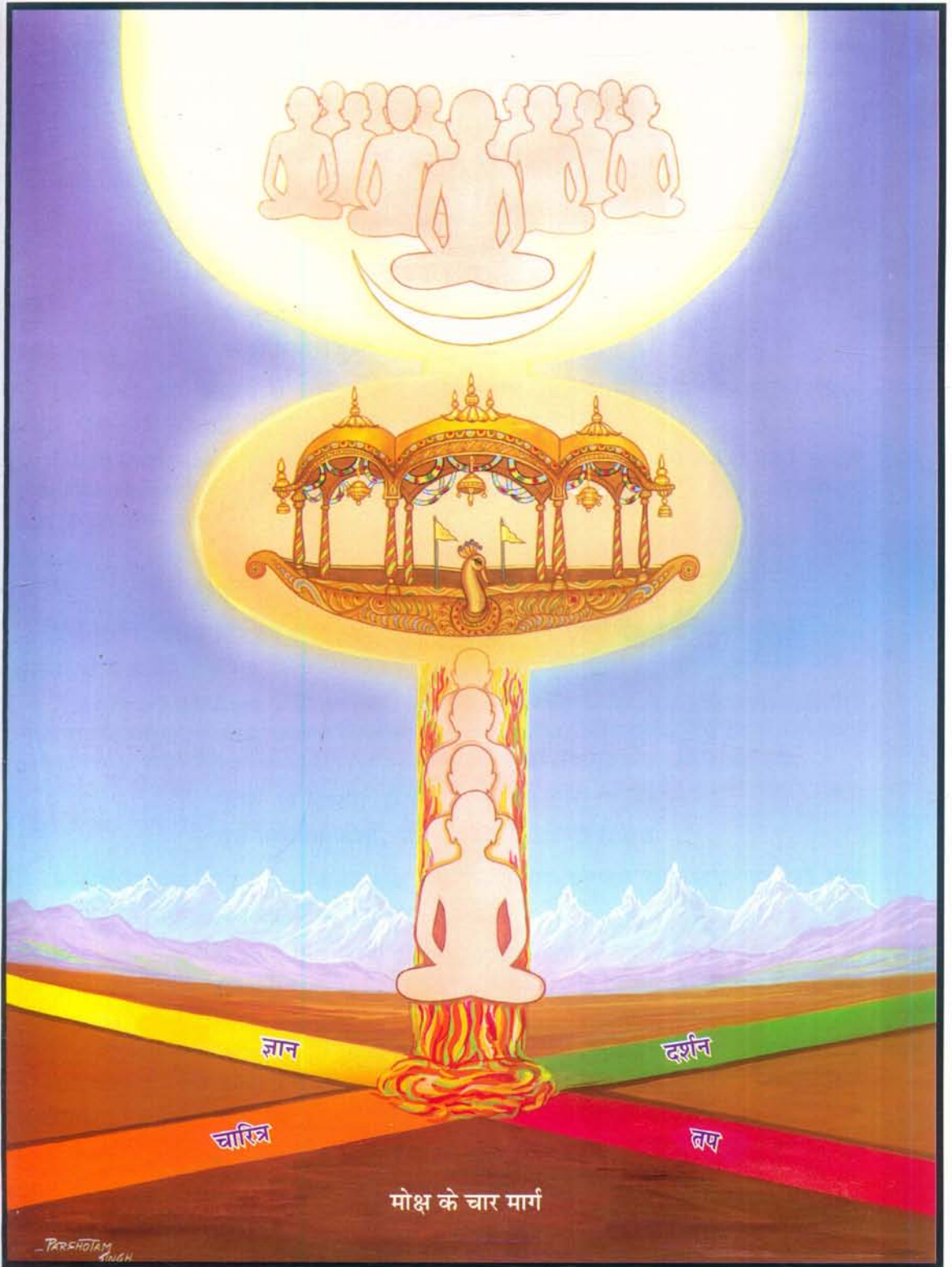
When all *karmas* are destroyed all the intrinsic virtues of the aspirant are in full bloom and he attains liberation.

All this description is based on conventional viewpoint. Considered from the non-conventional or real viewpoint the firm awareness and belief in pristine nature of soul is right perception/faith, cognition of pristine form of soul is right knowledge and to remain engrossed in attributes of soul is right conduct and that is the path of liberation.

Right knowledge is described in the first 14 verses of this chapter; right faith in verses 15 to 31, right conduct in verses 32 and 33, right austerities in verse 34, and the usefulness of all the four means is described in verse 35.

Thus the process of attaining liberation by an aspirant is described in this chapter.

The chapter has 36 verses.



ज्ञान

दर्शन

चरित्र

तप

मोक्ष के चार मार्ग

- PIRAFHODAM  
SINGH

## मोक्ष के चार मार्ग

सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप के सम्मिलित मार्ग पर आरूढ़ आत्मा सदगति को प्राप्त करता हुआ क्रमशः मोक्ष गति को प्राप्त कर लेता है।

—अध्ययन 28, सू. 3

AAAA

Advancing on the joint path of right knowledge-faith-conduct-penance, the soul gains noble existences and finally attains liberation.

—Chapter 28, Aphorism 3





ब्रह्मवीशद्वयं ब्रह्मज्ञयणं : मोक्षमग्गगई  
 अष्टाविंश अध्यायन : मोक्ष-मार्ग-गति  
 Chapter-28 : ENDEAVOUR ON THE  
 PATH OF LIBERATION

मोक्खमग्गगईं तच्चं, सुणेह जिणभासियं।  
 चउकारणसंजुत्तं, नाण-दंसणलक्खणं ॥ १ ॥

ज्ञान आदि चार कारणों से संयुक्त, ज्ञान-दर्शन लक्षण-स्वरूप, जिनभाषित तथ्यपरक यथार्थ सम्यक् मोक्ष-मार्ग की गति को सुनो ॥ १ ॥

Listen to the real, true and right endeavour on the path of liberation as told by the Jina and associated with four causes including knowledge, characterized by knowledge and perception/faith. (1)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तथा।  
 एस मग्गो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं ॥ २ ॥

ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप (ये चारों मिलकर) मोक्ष-मार्ग हैं, ऐसा केवलज्ञानी-केवलदर्शी-सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेवों ने बताया है ॥ २ ॥

It is (the combination of these four) *jnana* (knowledge), *darshan* (perception/faith), *chaaritra* (conduct) and *tap* (austerities) that form the path of liberation. The Jinas endowed with ultimate knowledge, ultimate perception and omniscience have said thus. (2)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तथा।  
 एयं मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छन्ति सोग्गइं ॥ ३ ॥

ज्ञान-दर्शन तथा इसी प्रकार चारित्र और तप-इस कारण-चतुष्टय युक्त मोक्ष-मार्ग को प्राप्त करने वाले जीव सद्गति को जाते हैं—प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥

The beings, who gain this path of liberation formed by this cause-quartet of knowledge-perception/faith-conduct-austerities, are sure to be blessed with noble end (rebirth). (3)

तत्थ पंचविहं नाणं, सुयं आभिणिबोहियं।  
 ओहीनाणं तइयं, मणनाणं च केवलं ॥ ४ ॥

सम्यग्ज्ञान

उन चारों में ज्ञान के पाँच प्रकार हैं—(१) श्रुतज्ञान, (२) आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मनःज्ञान (मनःपर्यवज्ञान), और (५) केवलज्ञान ॥ ४ ॥

**Right knowledge**

Of these four, knowledge is of five kinds—1. *Shruta-jnana* (scriptural knowledge), 2. *Aabhinibodhik* or *Mati-jnana* (sensory knowledge or to know the apparent form of



things appearing before the soul by means of five sense organs and the mind), 3. *Avadhi-jnana* (extrasensory perception of the physical dimension; something akin to clairvoyance), 4. *Manahparyav-jnana* (extrasensory perception and knowledge of thought process and thought-forms of other beings, something akin to telepathy), and 5. *Kewal-jnana* (ultimate knowledge or omniscience). (4)

एयं पंचविहं नाणं, दव्वाण य गुणाण य।  
पज्जवाणं च सव्वेसिं, नाणं नाणीहि देसियं ॥ ५ ॥

यह पाँच प्रकार का ज्ञान सर्वद्रव्य, गुण, पर्यायों का अवबोधक है—जानने वाला है—ऐसा ज्ञानियों ने कहा है ॥ ५ ॥

The wise have said that this five-fold knowledge is instrumental in revealing all attributes and modes of all substances. (5)

गुणाणमासओ दव्वं, एगदव्वस्सिया गुणा।  
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ॥ ६ ॥

गुणों का आश्रय-आधार द्रव्य है। द्रव्य के आश्रित रहने वाले गुण हैं। द्रव्य और गुण-दोनों के आश्रित रहना, पर्यायों का लक्षण है ॥ ६ ॥

Substance is the basis of attributes. Attributes are dependant on substance. To be dependent on substance and attributes both is the nature or characteristic of modes. (6)

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल-जन्तवो।  
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणोहिं वरदसिहिं ॥ ७ ॥

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव-ये छह द्रव्य हैं, इनसे युक्त द्रव्यात्मक लोक है—ऐसा वरदशीं-प्रत्यक्षदर्शी जिनवरों ने कहा है ॥ ७ ॥

*Dharma* (motion), *Adharma* (inertia), *Akaash* (space), *Kaal* (time), *Pudgal* (matter) and *Jiva* (soul)—these are six substances (entities) that constitute the *Lok* (occupied space or the universe), as said by the Jinas endowed with direct perception. (7)

धम्मो अहम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं।  
अणन्ताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल-जन्तवो ॥ ८ ॥

धर्म, अधर्म और आकाश-ये तीनों द्रव्य संख्या में एक-एक हैं। काल, पुद्गल और जीव-ये तीनों द्रव्य संख्या में अनन्त-अनन्त हैं ॥ ८ ॥

Motion-entity (*Dharmastikaya*), Inertia-entity (*Adharmastikaya*) and Space-entity (*Akaashastikaya*), these three are singular in nature. Time-entity (*Kaal*), Matter-entity (*Pudgalastikaya*) and Soul-entity (*Jivaastikaya*), these three are plural in nature and each one infinite in number. (8)

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।  
भायणं सव्वदव्वाणं, न्हं ओगाहलक्खणं ॥ ९ ॥



गति (गमन क्रिया में उदासीन हेतुता) धर्मद्रव्य का लक्षण है, स्थिति (उहरने में उदासीन हेतुत्व) अधर्मद्रव्य का लक्षण है, सभी द्रव्यों का आधार (भाजन) बनना-अवगाह देना आकाशद्रव्य का लक्षण है ॥ ९ ॥

The characteristic of Motion-entity is movement (unprompted cause or facilitating factor of movement), that of Inertia-entity is rest (unprompted cause or facilitating factor of rest), and that of Space-entity is to be base of all entities or to provide space to be occupied by all substances. (9)

वृत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओगलक्खणो ।

नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण य दुहेण य ॥ १० ॥

वर्तना (परिवर्तन) कालद्रव्य का लक्षण है। उपयोग (चेतना) जीवद्रव्य का लक्षण है जो ज्ञान (विशेष अवबोध), दर्शन (सामान्य अवबोध) तथा सुख और दुःख की अनुभूति से पहचाना जाता है ॥ १० ॥

The characteristic of Time-entity is to flow (provide yardstick of change); that of Soul-entity is conation or consciousness that is recognized by knowledge, awareness and experiencing pleasure and pain. (10)

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।

वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥ ११ ॥

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग-ये जीव के लक्षण हैं ॥ ११ ॥

Knowledge, perception/faith, conduct, austerities, potency and conation (consciousness) are the characteristics of Soul-entity. (11)

सहऽन्धयार-उज्जोओ, पहा छायाऽऽत्ते इ वा ।

वण्ण-रस-गन्ध-फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥ १२ ॥

शब्द, अन्धकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप आदि तथा वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श-ये पुद्गल के लक्षण हैं ॥ १२ ॥

The characteristics of Matter-entity include sound, darkness, light, glow, shadow and heat as also properties including colour, taste, smell and touch. (12)

एगत्तं च पुहत्तं च, संखा संठाणमेव य ।

संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ॥ १३ ॥

एकत्व, पृथक्त्व, संख्या, संस्थान-आकार, संयोग और विभाग-ये सब पर्यायों के लक्षण हैं ॥ १३ ॥

The characteristics of modes are unity (sameness), diversity (variety), number, form or shape, assimilation and division. (13)

जीवाजीवा य बन्धो य, पुण्णं पावासवो तहा ।

संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्तेए तहिया नव ॥ १४ ॥



जीव, अजीव, बन्ध (जीव और कर्मों का एकक्षेत्रावगाह), पुण्य (शुभत्व), पाप (अशुभत्व), आस्रव (शुभाशुभ कर्मबन्ध के हेतु राग-द्वेष आदि), संवर (आस्रवनिरोध), निर्जरा (पूर्वबद्ध कर्मों का एकदेश क्षय) और मोक्ष (कर्मों का सपूर्ण क्षय)—ये नौ तत्त्व हैं ॥ १४ ॥

*Jiva* (soul), *ajiva* (non-soul or matter), *bandh* (*karmic-bondage*), *punya* (merit), *paap* (demerit), *asrava* (*karmic-inflow*), *samvar* (blocking of *karmic-inflow*), *nirjara* (shedding of *karmas*), and *moksha* (liberation)—these are nine fundamentals. (14)

तहियाणं तु भावाणं, सञ्भावे उवएसणं।  
भावेणं सहहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहियं ॥ १५ ॥

### सम्यग्दर्शन

इन तथ्यभूत भावों के सद्भाव (अस्तित्व) के उपदेश-निरूपण में जो भावपूर्वक श्रद्धा होती है, उसे सम्यक्त्व अथवा सम्यग्दर्शन कहा गया है ॥ १५ ॥

### Righteousness

The devout belief in the sermon propagating the existence of these authenticated concepts is called righteousness or right perception/faith. (15)

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त-बीयरुइमेव।  
अभिगम-वित्थाररुई, किरिया-संखेव-धम्मरुई ॥ १६ ॥

(रुचि की अपेक्षा वह सम्यक्त्व दस प्रकार का है) (१) निसर्ग रुचि, (२) उपदेश रुचि, (३) आज्ञा रुचि, (४) सूत्र रुचि, (५) बीज रुचि, (६) अभिगम रुचि, (७) विस्तार रुचि, (८) क्रिया रुचि, (९) संक्षेप रुचि, और (१०) धर्म रुचि ॥ १६ ॥

(Righteousness is of ten kinds in context of interest; in other words righteousness is gained through interest in the following—) 1. Natural or innate righteousness, 2. By interest in instruction, 3. By interest in command, 4. By interest in scriptures, 5. By seed (dissemination), 6. By interest in comprehension (of the meaning of sacred texts), 7. By interest in elaboration (enveloping the complete course), 8. By interest in action (rituals and practices), 9. By interest in brevity (of exposition), 10. By interest in doctrine. (16)

भूयत्थेणाहियया, जीवाजीवा य पुण्णपावं च।  
सहसम्मुइयासवसंवरो य, रोएइ उ निसग्गो ॥ १७ ॥

१. निसर्ग रुचि—किसी अन्य के उपदेश बिना स्वयं अपनी ही मति से हुए यथार्थ बोध से अवगत जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर आदि तत्त्वों के प्रति जो सहज-नैसर्गिक रुचि होती है, वह निसर्ग रुचि है ॥ १७ ॥

1. Interest by nature—The spontaneous natural interest in fundamentals including *jiva* (soul), *ajiva* (non-soul or matter), *punya* (merit), *paap* (demerit), *asrava* (*karmic-inflow*), *samvar* (blocking of *karmic-inflow*) known through one's own wisdom and true realization, without any preaching by others, is called interest by nature. (17)





जो जिणदिट्ठे भावे, चउव्विहे सहहाइ सयमेव ।

एमेव नऽन्ह त्ति य, निसगुरुई त्ति नायव्वो ॥ १८ ॥

जिनेन्द्र भगवान द्वारा देखे गये और उपदेश दिये गये भावों में तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से विशिष्ट पदार्थों के विषय में कि यह ऐसा ही है अन्यथा नहीं है, इस प्रकार की जो स्वतः स्फूर्त श्रद्धा है, उसे निसर्ग रुचि जानना चाहिए ॥ १८ ॥

The spontaneous belief in the realities seen and told by the Jinas and in things unique in terms of matter, space, time and mode, that they are such and not otherwise, is known as interest by nature. (18)

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सहहई ।

छउमत्थेण जिणेण व, उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥ १९ ॥

२. उपदेश रुचि—जो जिनेन्द्र भगवान अथवा अन्य छद्मस्थों के उपदेश से जीवादि भावों में श्रद्धा करता है, वह उपदेश रुचि जाननी चाहिए ॥ १९ ॥

2. Interest in instruction—The belief in fundamentals including soul inspired by preaching of Jinas or other *Chhadmasthas* (one who is just short of omniscience due to residual *karmic* bondage), is known as interest in instructions. (19)

रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ ।

आणाए रोयंतो, सो खलु आणारुई नाम ॥ २० ॥

३. आज्ञा रुचि—जिसके राग, द्वेष, मोह और अज्ञान नष्ट हो गये हैं, उसकी आज्ञा में रुचि रखना, आज्ञा रुचि है ॥ २० ॥

3. Interest in command—To have interest in the command of those whose attachment, aversion, fondness and ignorance have been destroyed is interest in command. (20)

जो सुत्तमहिज्जन्तो, सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं ।

अंगेण बाहिरेण व, सो सुत्तरुइ त्ति नायव्वो ॥ २१ ॥

४. सूत्र रुचि—जो अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य श्रुत का अवगाहन करता हुआ, श्रुत द्वारा सम्यक्त्व का उपार्जन करता है, वह सूत्र रुचि है ॥ २१ ॥

4. Interest in scriptures—The righteousness earned while studying *Anga-pravishta* (the twelve limbed corpus of Jain canon) and *Anga-baahya* (other than the *Anga* canon) scriptures is said to be obtained through interest in scriptures. (21)

एगेण अणेगाइं, पयाइं जो पसरई उ सम्मत्तं ।

उदए व्व तेल्लबिन्दू, सो बीयरुइ त्ति नायव्वो ॥ २२ ॥

५. बीज रुचि—जिस प्रकार पानी में तेल की बूँद फैल जाती है, उसी प्रकार जो सम्यक्त्व एक पद से अनेक पदों में प्रसरित होता है, वह बीज रुचि है ॥ २२ ॥



**5. By seed (dissemination)**—As a drop of oil spreads over the surface of water, in the same way righteousness of one level too disseminates to all levels. This is known as interest by seed. (22)

सो होइ अभिगमरुई, सुयनाणं जेण अत्थओ दिट्ठं।  
एक्कारस अंगाइं, पइण्णगं दिट्ठिवाओ य ॥ २३ ॥

**६. अभिगम रुचि**—जिसने ११ अंग, प्रकीर्णक, दृष्टिवाद आदि श्रुतज्ञान अर्थसहित प्राप्त किया है, वह अभिगम रुचि है ॥ २३ ॥

**6. Interest in comprehension**—Comprehending the text and meaning of scriptures including the eleven *Angas*, *Prakirnakas* and *Drishtivaada*, is said to be interest in comprehension. (23)

दव्वाण सव्वभावा, सव्वपमाणेहिं जस्स उवलब्धा।  
सव्वाहि नयविहीहि य, वित्थाररुइ त्ति नायव्वो ॥ २४ ॥

**७. विस्तार रुचि**—सभी प्रमाणों और सभी नयविधियों से द्रव्यों के सभी भाव जिसे उपलब्ध-ज्ञात हो गये हैं, उसे विस्तार रुचि जानना चाहिए ॥ २४ ॥

**7. Interest in elaboration (enveloping the complete course)**—Acquiring the knowledge of all modes of all substances through all validations and stand points is called interest in elaboration. (24)

दंसण-नाण-चरित्ते, तव-विणए सच्च-समिइ-गुत्तीसु।  
जो किरियाभावरुई, सो खलु किरियारुई नाम ॥ २५ ॥

**८. क्रिया रुचि**—दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति तथा गुप्तियों में जो क्रियाभाव रुचि है, वह निश्चय ही क्रिया रुचि है ॥ २५ ॥

**8. Interest in action (rituals and practices)**—The active interest in pursuing rituals and practices related to right perception/faith, knowledge, conduct, austerities, modesty, truth, circumspections (*samitis*) and restraints (*guptis*) is said to be interest in action. (25)

अणभिग्गहिय—कुदिट्ठी, संखेवरुइ त्ति होइ नायव्वो।  
अविसारओ पवयणे, अणभिग्गहिओ य सेसेसु ॥ २६ ॥

**९. संक्षेप रुचि**—जो वीतराग-प्रवचन में विशारद नहीं है और शेष अन्य मतों पर भी जिसकी गृहीत बुद्धि नहीं है, जिसने कुदृष्टि भी ग्रहण नहीं की है, वह संक्षेप रुचि होता है, ऐसा समझना चाहिए ॥ २६ ॥

**9. Interest in brevity (of exposition)**—He who is not well-versed in sacred doctrines of the Jinās, is ignorant enough not to get acquainted with other creeds and has not acquired pervert bias, that one should be known as having been inspired by interest in brevity. (26)

जो अत्थिकायधम्मं, सुयधम्मं खलु चरित्तधम्मं च।  
सइहइ जिणाभिहियं, सो धम्मरुइ त्ति नायव्वो ॥ २७ ॥



१०. धर्म रुचि—जो जिनेन्द्र-कथित अस्तिकायधर्म, श्रुतधर्म और चारित्रधर्म पर श्रद्धान् करता है, वह निश्चय ही धर्मरुचि होता है, ऐसा जानना चाहिए ॥ २७ ॥

10. Interest in doctrine—Faith and belief in the doctrine of *Astikaya* (six entities), doctrine of scriptures and doctrine of right conduct as propagated by the Jina is known as interest in doctrine. (27)

परमत्थसंथवो वा, सुदिदुपरमत्थसेवणा वा वि।

वावण्णकुदंसणवज्जणा, य सम्पत्तसद्दहणा ॥ २८ ॥

(१) परमार्थ को जानना, उसका चिन्तन करना; (२) सुदृष्टिवान परमार्थ के तत्त्वद्रष्टाओं के गुणगान तथा उनकी सेवा करना; (३) सम्यक्त्वभ्रष्ट और कुदर्शनी (मिथ्यात्वी) का वर्जन करना, उनसे दूर रहना, यह सम्यक्त्व का श्रद्धान् है। (इन तीन गुणों से सम्यक्त्वी पहचाना जा सकता है) ॥ २८ ॥

1. To know and ponder over the ultimate truth; 2. to praise and serve great sages endowed with knowledge of the ultimate truth and fundamentals; and 3. to defy and avoid unrighteous and heretics; these three are the signs of righteousness (*samyaktva*). (In other words the righteous can be recognized through these three virtues.) (28)

नत्थि चरित्तं सम्पत्तविहूणं, दंसणे उ भइयव्वं।

सम्पत्त-चरित्ताइं, जुगवं पुव्वं व सम्पत्तं ॥ २९ ॥

सम्यक्त्व के बिना चारित्र नहीं होता किन्तु सम्यक्त्व बिना चारित्र के हो सकता है। सम्यक्त्व और चारित्र एक साथ (युगपत्) भी हो सकते हैं किन्तु चारित्र से पहले सम्यक्त्व होना अनिवार्य है ॥ २९ ॥

Right conduct cannot be without righteousness (*samyaktva*) but righteousness can come without right conduct. Righteousness and conduct may coexist but righteousness must always precede right conduct. (29)

नादंसणिस्स नाणं, नाणेण विणा न हुन्ति चरणगुणा।

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं ॥ ३० ॥

सम्यक्त्व के बिना ज्ञान नहीं होता, ज्ञान के बिना चारित्र गुण नहीं होता, चारित्र गुण के बिना मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के बिना निर्वाण (अनन्त चिदानन्द) नहीं होता ॥ ३० ॥

There is no (right-) knowledge without righteousness and without (right-) knowledge (right-) conduct is not possible. Without (right-) conduct there is no liberation and without liberation the state of nirvana (eternal bliss) cannot be attained. (30)

निस्संकिंय निक्कांखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी य।

उववूह थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठु ॥ ३१ ॥

(१) निःशंका, (२) निष्कांक्षा, (३) निर्विचिकित्सा (धर्म फल के प्रति सन्देह न होना), (४) अमूढदृष्टि, (५) उपबृंहण (गुणीजनों की प्रशंसा से गुणों का वर्धन करना), (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य, और (८) प्रभावना—ये आठ सम्यक्त्व के अंग हैं ॥ ३१ ॥



There are eight limbs of righteousness—1. Absence of doubt in tenets (*nihshanka*), 2. Absence of desire for heretic doctrines (*nishkaanksha*), 3. No suspicion about fruits of righteousness (*nirvichikitsa*), 4. Unambiguous view (*amoodh-drishti*), 5. Praising the wise in order to enhance virtues (*upabrimhan*), 6. Stabilizing the wavering ones (*sthirikaran*), 7. Providing love and support to co-religionist (*vaatsalya*), 8. Promoting the doctrine. (31)

सामाज्यत्थ पढमं, छेओवड्डाणं भवे बीयं।

परिहारविसुद्धीयं, सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३२ ॥

### सम्यक्चारित्र

चारित्र पाँच प्रकार का है—(१) सामायिक, (२) छेदोपस्थापनीय, (३) परिहारविशुद्धि, (४) सूक्ष्मसंपराय, और ॥ ३२ ॥

### Right conduct

(Right-) Conduct is of five kinds—1. *Saamaayik* (equanimous conduct), 2. *Chhedopasthaapaniya* (conduct of re-initiation after rectifying faults), 3. *Parihaaravishuddhi* (destroying *karma* through special austerities), 4. *Sukshma-samparaaya* (discipline with residual subtle passions), and (32)

अकसायं अहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा।

एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं ॥ ३३ ॥

(५) यथाख्यातचारित्र, यह सर्वथा कषायरहित होता है तथा यह छद्यस्थ और केवली—दोनों को होता है। ये चारित्र कर्म के संचय को रिक्त (खाली) करते हैं, इसीलिए इन्हें चारित्र कहा गया है ॥ ३३ ॥

5. *Yathaakhyata* (conduct conforming to perfect purity). This conduct is completely devoid of passions. This state is attained by both *Chhadmasth* (one who is just short of omniscience due to residual karmic bondage) and *Kevali* (omniscient). As activities prescribed under these heads free (*rikta*) the soul of the accumulated *karmas*, these are called conduct (*chaaritra*). (33)

तवो य दुविहो वुत्तो, बाहिरऽब्भन्तरो तहा।

बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भन्तरो तवो ॥ ३४ ॥

### सम्यक्तप—

तप दो प्रकार का कहा गया है—(१) बाह्य, और (२) आभ्यन्तर। बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है और आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का ही है ॥ ३४ ॥

### Right austerity

Austerity (*tap*) is said to be of two kinds—1. external, and 2. internal. External austerity is of six types and internal austerity is also of six types. (34)



नाणेण जाणई भावे, दंसणेण य सदहे।  
चरित्तेण निगिणहाइ, तवेण परिसुज्झई ॥ ३५ ॥

आत्मा ज्ञान से जीवादि भावों को जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है, चारित्र से कर्म-आस्रवों का निरोध करता है और तप से परिशुद्ध होता है ॥ ३५ ॥

Through (right-) knowledge soul cognizes fundamentals including soul, through (right-) perception/faith it develops belief in the same, through (right-) conduct it checks the inflow of *karmas* and through (right-) austerities it gets purified. (35)

खवेत्ता पुक्कम्पाइं, संजमेण तवेण य।  
सव्वदुक्खप्पहीणद्वा, पक्कमन्ति महेसिणो ॥ ३६ ॥

—त्ति वेमि।

सभी दुःखों से मुक्त होने के लिए महर्षि संयम और तप के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों का सम्पूर्ण क्षय करके मोक्ष (निर्वाण) प्राप्त करते हैं ॥ ३६ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

In order to be free from all miseries, great sages completely destroy all *karmas* accumulated in the past through restraint and austerities and attain liberation (nirvana). (36)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १—मोक्ष का मार्ग (उपाय, साधन, कारण) ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप हैं। उससे सिद्धि-गमन रूप जो गति है, वह मोक्ष-मार्ग-गति है।

गाथा २—प्रस्तुत में ज्ञान को पहले रखा है, दर्शन को बाद में। लगता है, यह व्यवहार में अध्ययन, जानकारी आदि से सम्बन्धित ज्ञान है, जो सम्यक्दर्शन से पूर्व वास्तव में अज्ञान ही रहता है। सम्यक्दर्शन होने पर ही ज्ञान सम्यक्ज्ञान होता है। इसीलिए प्रस्तुत अध्ययन के उपसंहार (गा. ३०) “नादंसणिसस नाणं” कहा है।

यहाँ दर्शन से सम्यक्दर्शन अभिप्रेत है, सामान्य बोधरूप चक्षु-अचक्षु आदि दर्शन नहीं। तप भी चारित्र का ही एक रूप है।

सम्यक्ज्ञान आदि तीनों या चारों सम्मिलित रूप से मोक्ष के कारण-साधन हैं, पृथक्-पृथक् नहीं हैं। अतः “एय मग्गमणुपत्ता” में मार्ग के लिये एक वचन प्रयुक्त है।

गाथा ४—प्रस्तुत में श्रुतज्ञान का पहले उल्लेख है। टीकाकारों की दृष्टि में यह इसलिये है कि मति आदि अन्य सभी ज्ञानों का स्वरूपज्ञान श्रुतज्ञान से होता है। अतः व्यवहार में श्रुत की प्रधानता है।

“आभिनिबोधिक” मतिज्ञान का ही दूसरा नाम है। इन्द्रिय और मन का अपने-अपने शब्दादि विषयों का बोध अभिमुखतारूप से नियत होने के कारण इसे आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं।



गाथा ६—गुणों का आश्रय-आधार द्रव्य है। जीव में ज्ञानादि अनन्त गुण हैं। अजीव पुद्गल में रूप, रस आदि अनन्त गुण हैं। धर्मास्तिकाय आदि में भी गतिहेतुता आदि अनन्त गुण हैं। द्रव्य का लक्षण सत् है। सत् का लक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य है। पर्याय दृष्टि से द्रव्य प्रतिक्षण उत्पन्न विनष्ट होता रहता है, और ध्रौव्यत्व गुण की दृष्टि से वह मूल स्वरूपतः त्रिकालावस्थायी है, शाश्वत है।

एक द्रव्य के आश्रित गुण होते हैं। अर्थात् जो द्रव्य के सम्पूर्ण भावों में और उसकी सम्पूर्ण अवस्थाओं में अनादि अनन्त रूप से सदाकाल रहते हैं, वे गुण हैं। द्रव्य कभी निर्गुण नहीं होता। गुण स्वयं निर्गुण होते हैं। अर्थात् गुणों में अन्य गुण नहीं होते।

गुणों के दो भेद हैं—सामान्य एवं विशेष। अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व और अगुरुलघुत्व—ये छह सामान्य गुण हैं, जो सामान्य रूप से प्रत्येक जीव-अजीव द्रव्यों में पाये जाते हैं। जीव में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख आदि विशेष गुण हैं, जो अजीव द्रव्य में नहीं होते। पुद्गल अजीव में रूप, रस, गन्ध आदि विशेष गुण हैं, जो जीव द्रव्य में नहीं होते। प्रतिनियत गुण विशेष होते हैं जिसके १६ भेद हैं।

सहभावी गुण होते हैं और क्रमभावी पर्याय। एक समय में एक गुण की एक पर्याय ही होती है। एक साथ अनेक पर्याय कभी नहीं होतीं। वैसे अनन्त गुणों की दृष्टि से एक-एक पर्याय मिलकर एक साथ अनन्त पर्याय हो सकती हैं। क्रमभाविता एक गुण की अपेक्षा से है।

पर्याय के मुख्य रूप से दो भेद हैं—व्यंजन पर्याय (द्रव्य के प्रदेशत्व गुण का परिणमन, विशेष कार्य) और अर्थ पर्याय (प्रवेशत्व गुण के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण गुणों का परिणमन)। इनके दो भेद हैं—स्वभाव और विभाव। पर के निमित्त के बिना जो परिणमन होता है, वह स्वभाव पर्याय है और पर के निमित्त से जो होता है, वह विभाव पर्याय है।

गाथा १०—काल का लक्षण वर्तना है। जीव और अजीव सभी द्रव्यों में जो परिणमन होता है उसका उपादान स्वयं वे द्रव्य होते हैं और उनका निमित्त कारण काल को माना है। काल के अपने परिणमन में भी स्वयं काल ही निमित्त है।

काल द्रव्य है, अस्तिकाय नहीं है; चूँकि वह एक समय रूप है; प्रदेशों का समूह रूप नहीं है। भगवतीसूत्र (१३/१४) में काल को जीव-अजीव की पर्याय कहा है। काल के समय (अविभाज्य रूप सर्वाधिक सूक्ष्म अंश) अनन्त हैं।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार दिन, रात्रि आदि रूप व्यवहार काल मनुष्य क्षेत्र (ढाई द्वीप) प्रमाण है। दिग्म्बर परम्परा के अनुसार काल लोकव्यापी तथा अणुरूप है। रत्नों की राशि के रूप में लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित है।

गाथा ३२-३३—कर्मों के आस्रव को रोकना संवर रूप चारित्र है। कर्मों के पूर्वबद्ध चय को तप से रिक्त करना, क्षय करना निर्जरा रूप चारित्र है। प्रस्तुत अध्ययन में चारित्र की उक्त दोनों व्याख्यायें हैं। एक है—“चयरिक्तकरं चारित्तं”—(गाथा ३३) और दूसरी है—“चरित्तेण निगिणहाई तयेण परिमुज्झइ” (गाथा ३५)। अन्तिम शुद्धि तप रूप चारित्र से ही होती है।



## IMPORTANT NOTES

**Verse 1**—The path (means, cause) of liberation is knowledge, perception/faith, conduct and austerities. The movement that leads to liberation through this path is the movement on the path of liberation (*moksha-marg-gati*).

**Verse 2**—Here the *jnana* (knowledge) is placed before *darshan* (perception/faith). It seems that this term conveys 'the information acquired through conventional means of study. This *jnana*, in fact, remains ignorance prior to gaining *samyak-darshan* (right perception/faith). It is only after attaining right perception/faith that *jnana* (knowledge) turns into *samyak-jana* (right knowledge). That is why in verse 30 it is clearly mentioned that *Naadamsanissa Naanam* (without right perception/faith there is no right knowledge).

Here the term *darshan* conveys right perception/faith and not simple sensual perception. Austerity is also a form of conduct.

All the said means including right-knowledge are means of liberation only in assimilated application and not individually. This is indicated by the use of singular number for path (in '*eya maggamanupatta*').

**Verse 4**—Here *shrut-jnana* (scriptural knowledge) is mentioned first. According to the commentators this is because the formal awareness of sensual and other knowledge comes through scriptural knowledge. Therefore in terms of application scriptural knowledge gets priority.

*Aabhinibodhika* is just another name for *mati-jnana* (sensual knowledge). As the sensual knowledge is directionally associated (*abhimukh*) with the specific sense organ and mind it is called *Aabhinibodhika jnana* or sensual knowledge.

**Verse 6**—Attributes are associated with substance. Soul has infinite attributes including knowledge. Matter too has infinite attributes including form and taste. Likewise *Dharmastikaya* also has infinite attributes like force of movement. The characteristic of substance is existence. The characteristic of existence is creation, destruction and stability. From the modal viewpoint substance gets created and destroyed every moment and from the viewpoint of stability it has existence in past, present and future in its basic form; it is eternal.

Properties invariably associated with a substance are its attributes. In other words the properties that define a substance in all modes and all conditions since beginning of time and its end are called attributes. Substance can never be without attributes. However, attributes have no other attributes of their own.

Attributes are of two types—common and distinguishing attributes. Common attributes that are commonly associated with every living and non-living substance include existence (*astitva*), tangibility (*vastutva*), substantiality (*dravyatva*), conceptuality (*prameyatva*), sectionality (*pradeshatva*) and eternity (*aguru-laghutva*). The distinguishing attributes that define soul include knowledge, perception/faith, conduct and bliss; they are absent in the non-living or matter. The distinguishing attributes that define the non-living or matter include form, taste and smell, which are absent in soul. Assigned attributes to a substance are called special attributes and they are of sixteen kinds.



Attributes always co-exist and modes (*paryaaya*) continue to change. One attribute has only one mode at a time; many modes at once are impossible. However, there can be infinite modes in a substance if we count one mode each of infinite attributes. The continuity of change is in context of a single attribute.

Modes (*paryaaya*) are mainly of two kinds—*Vyanjana paryaaya* (physical modes)—these are changes or special activity of sectional attributes of a substance; and *Arth paryaaya* (qualitative modes)—changes in all attributes other than sectional attributes of a substance. The said change or transformation is of two kinds—innate (*svabhaava*) and triggered (*vibhaava*). The innate change occurs without any external influence and triggered change occurs due to external influence.

**Verse 10**—The characteristic of time (*kaal*) is to flow. The material cause of transformations that take place in every substance including soul and matter is that substance itself but the motive cause is believed to be time. In case of transformation in time too, it is its own motive cause.

*Kaal* (time) is a substance; but not an *Astikaaya*, because it is unitary and not an aggregate of sections. Time is described as a mode of soul and matter in *Bhagavati Sutra* (13/14). There are said to be infinite *Samayas* (ultimate fractional unit) of time.

According to the Shwetambar tradition the conventional time units like day, night etc., are confined to area inhabited by humans (*Adhai Dveep*). According to Digambar tradition it envelopes the *Lok* (occupied space) and is in particle form. Like a heap of gems, on every section (*pradesh*) of *Lokakaash* (occupied space) one particle of time (*kaalaunu*) rests.

**Verse 32-33**—To obstruct the inflow of *karmas* is *samvar chaaritra* (conduct that blocks inflow of *karmas*). Shedding off or destroying the accumulated *karmas* through austerities is *nirjara chaaritra* (conduct that destroys *karmas*). Both these definitions of conduct are available in this chapter. But the ultimate purification is done by austerity only—*chayarittakaram chaarittam* (Verse 33) and *charittena niginhaai tayena parisujhai* (Verse 35).







## उन्तीसवाँ अध्ययन : सम्यक्त्व पराक्रम

### पूर्वांलोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम सम्यक्त्व पराक्रम है। इस अध्ययन द्वारा सम्यक्त्व में पराक्रम करने के लिए एक दिशा प्राप्त होती है। कुछ आचार्यों ने इस अध्ययन का नाम 'अप्रमादश्रुत' दिया है तो कुछ ने 'वीतरागश्रुत'। लेकिन प्रस्तुत अध्ययन की विषय-वस्तु पर गंभीर विचार करने से 'सम्यक्त्व पराक्रम' नाम ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

पिछले मोक्ष-मार्ग-गति अध्ययन में मोक्ष-प्राप्ति के चार साधन बताये गये थे। उनमें से एक दर्शन-सम्यग्दर्शन अथवा सम्यक्त्व भी था तथा इसमें पराक्रम करने की प्रेरणा भी दी गई थी।

प्रस्तुत अध्ययन 'सम्यक्त्व पराक्रम' में एक दिशा-निर्देश किया गया है कि सम्यक्त्व में पराक्रम किस प्रकार किया जाय।

साधक के मन-मस्तिष्क में ये प्रश्न उठने स्वाभाविक हैं कि संवेग, निर्वेद, श्रद्धा (धर्म-श्रद्धा), शुश्रूषा-सेवा, वैयावृत्य, आलोचना, निन्दा, गर्हा तथा अन्य ऐसी विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ जो साधक जीवन में की जाती हैं—करने का निर्देश गुरुजनों द्वारा दिया जाता है, उन क्रियाओं का कुछ फल होता भी है या नहीं? और यदि होता है तो क्या और किस रूप में होता है? साधक की आत्मा को क्या लाभ होता है—क्या विशिष्ट उपलब्धि होती है इनसे?

इस अध्ययन में ऐसे ही ७३ प्रश्न संकलित हैं और उनके समाधान दिये गये हैं।

प्रश्न छोटे-छोटे हैं और उत्तर भी संक्षिप्त हैं; किन्तु संक्षिप्त उत्तरों में गहरा रहस्य भरा है।

हम पहले ही प्रश्न संवेग को लें। इसके उत्तर में धर्म-श्रद्धा से लेकर तीसरे जन्म में मोक्ष-प्राप्ति तक का फल बताया गया है। इसी प्रकार अन्य प्रश्नों के उत्तर भी हैं।

छोटे प्रश्नों के समाधान में भी परिपूर्णता दृष्टिगोचर होती है।

प्रश्न और उनके उत्तरों का क्रम सर्वथा व्यवस्थित है। प्रश्नों का प्रारम्भ संवेग-मोक्षाभिलाषा से होता है। यानी प्रथम प्रश्न में मोक्ष की अभिलाषा है और अन्तिम प्रश्न में अकर्मता सिद्धि (मुक्ति) की प्ररूपणा है। साधक जीवन का प्रारम्भ भी मोक्षाभिरुचि-मोक्षाभिलाषा से होता है और उसका चरम लक्ष्य सिद्धि ही है।

यह अध्ययन प्रश्नोत्तर शैली में रचित है। संपूर्ण उत्तराध्ययनसूत्र में जितने विषयों का वर्णन हुआ है, उन सब से सम्बन्धित प्रश्नों का इस अध्ययन में समाधान प्रस्तुत हुआ है। इसी कारण इस अध्ययन को सम्पूर्ण उत्तराध्ययनसूत्र का हार्द कहा गया है।

सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर साधक की समस्त आध्यात्मिक जिज्ञासाओं का समाधान प्रस्तुत अध्ययन में सम्प्राप्त है।

प्रस्तुत अध्ययन में ७३ प्रश्न और उनके समाधान तथा ७४ सूत्र हैं।



## EKONATRIMSH ADHYAYAN : SAMYAKTVA PARAKRAM

### Foreview

This chapter is named Samyaktva Parakram or Fortitude in Righteousness. It provides an inspiration to endeavour towards righteousness. Some *acharyas* call it Apramaadashrut (Lesson of Non-stupor) and others name it as Vitaragashrut (Lesson of Detachment). But after a serious thought on the subject-matter of this chapter we find that the title Samyaktva Parakram or Fortitude in Righteousness is most appropriate.

In the preceding chapter four means of attaining liberation are described. One of them is righteousness. It also gave inspiration to make efforts in that direction.

This chapter contains directions as to how endeavour towards and fortitude in righteousness is achieved.

It is natural that questions arise in the mind of an aspirant about craving for liberation, disgust for the mundane, faith in religion, providing service and care to others, critical review, self-criticism, censure and other such activities, which are done by an aspirant under instructions from seniors. The questions could be—Do those activities bear any fruits or not? And if they do, then what and how? What are the spiritual benefits to the aspirant? What special virtues he attains?

Seventy three such questions are compiled in this chapter along with their answers.

The questions are brief and so are the answers; but they are pregnant with great secrets.

For example we may take the first question. It is about *samvega* or craving for liberation? In its reply fruits starting from gaining faith in religion up to attaining liberation in third rebirth have been mentioned. Other questions have also been answered in the same style.

Answers of even simple questions are all enveloping.

The order of questions and answers is well organized. The questions begin with craving for liberation and end with defining complete absence of *karmas* or the state of liberation. Aspirant's life also begins with liking and craving for liberation and his ultimate goal is emancipation.

This chapter is presented in question-answer style. Questions related to all topics discussed in *Uttaradhyayan Sutra* find answers in this chapter. That is the reason this chapter is called the heart of *Uttaradhyayan Sutra*.

Critical assessment reveals that this chapter provides solution to all the spiritual queries of an aspirant.

The chapter contains 73 questions and their answers in 74 maxims.



एगुणतीशइमं अज्झयणं : सम्मत्तपरक्कमे  
 एकोनत्रिंश अध्ययन : सम्यक्त्व-पराक्रम  
 Chapter-29 : FORTITUDE IN RIGHTEOUSNESS

सूत्र १—सुयं मे आउसं ! तेण भगवया एवमक्खायं-इह खलु सम्मत्तपरक्कमे नाम अज्झयणे समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइए, जं सम्मं सद्वहिता, पत्तियाइत्ता, रोयइत्ता, फासइत्ता, पालइत्ता, तीरइत्ता, किट्टइत्ता, सोहइत्ता, आराहइत्ता, आणाए अणुपालइत्ता बहवे जीवा सिज्झन्ति, बुज्झन्ति, मुच्चन्ति, परिनिव्वायन्ति, सव्वदुक्खाणमन्तं करेन्ति।

तस्स णं अयमट्ठे एवमाहिज्जइ,

तं जहा—

- |                           |                          |
|---------------------------|--------------------------|
| १. संवेगे                 | २२. अणुप्पेहा            |
| २. निव्वेए                | २३. धम्मकहा              |
| ३. धम्मसद्धा              | २४. सुयस्स आराहणया       |
| ४. गुरुसाहम्मियसुस्सूसणया | २५. एगगमणसंनिवेशणया      |
| ५. आलोचणया                | २६. संजमे                |
| ६. निन्दणया               | २७. तवे                  |
| ७. गरहणया                 | २८. वोदाणे               |
| ८. सामाइए                 | २९. सुहसाए               |
| ९. चउव्वीसत्थाए           | ३०. अप्पडिबद्धया         |
| १०. वन्दणए                | ३१. विवित्तसयणासणसेवणाया |
| ११. पडिक्कमणे             | ३२. विणियट्ठणया          |
| १२. काउस्सग्गे            | ३३. संभोगपच्चक्खाणे      |
| १३. पच्चक्खाणे            | ३४. उवहिपच्चक्खाणे       |
| १४. थवथुइमंगले            | ३५. आहारपच्चक्खाणे       |
| १५. कालपडिलेहणया          | ३६. कसायपच्चक्खाणे       |
| १६. पायच्छित्तकरणे        | ३७. जोगपच्चक्खाणे        |
| १७. खमावणया               | ३८. सरीरपच्चक्खाणे       |
| १८. सज्झाए                | ३९. सहायपच्चक्खाणे       |
| १९. वायणया                | ४०. भत्तपच्चक्खाणे       |
| २०. पडिपुच्छणया           | ४१. सव्भावपच्चक्खाणे     |
| २१. परियट्ठणया            | ४२. पडिरूवया             |



४३. वेयावच्चे	५९. नाणसंपन्नया
४४. सब्वगुणसंपण्णया	६०. दंसणसंपन्नया
४५. वीयरागया	६१. चरित्तसंपन्नया
४६. खन्ती	६२. सोइन्दियनिग्गहे
४७. मुत्ती	६३. चक्खिन्दियनिग्गहे
४८. अज्जवे	६४. घाणिन्दियनिग्गहे
४९. मद्दवे	६५. जिब्भिन्दियनिग्गहे
५०. भावसच्चे	६६. फासिन्दियनिग्गहे
५१. करणसच्चे	६७. कोहविजए
५२. जोगसच्चे	६८. माणविजए
५३. मणगुत्तया	६९. मायाविजए
५४. वयगुत्तया	७०. लोहविजए
५५. कायगुत्तया	७१. पेज्जदोसमिच्छादंसणविजए
५६. मणसमाधारणया	७२. सेलेसी
५७. वयसमाधारणया	७३. अकम्मया
५८. कायसमाधारणया	

सूत्र १—हे आयुष्यन् ! मैंने सुना है, उन भगवान ने इस प्रकार कहा है—

इसी जिन प्रवचन में काश्यप गोत्रीय श्रमण भगवान महावीर ने सम्यक्त्व पराक्रम नामक अध्ययन का प्रतिपादन किया है, जिसका सम्यक् श्रद्धान् करके, प्रतीति करके, रुचि करके, स्पर्श करके, पालन करके, पार करके, कीर्तन करके, शुद्ध करके, आराधना करके, गुरु-आज्ञा के अनुसार अनुपालन करके बहुत से जीव सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं और सम्पूर्ण दुःखों का अन्त करते हैं।

उसका यह अर्थ है जो इस प्रकार कहा जाता है। जैसे कि—

१. संवेग	१०. वन्दना
२. निर्वेद	११. प्रतिक्रमण
३. धर्मश्रद्धा	१२. कायोत्सर्ग
४. गुरु तथा साधर्मिक की शुश्रूषा	१३. प्रत्याख्यान
५. आलोचना	१४. स्तव-स्तुति मंगल
६. निन्दा (निन्दना)	१५. काल प्रतिलेखना
७. गर्हा (गर्हणा)	१६. प्रायश्चित्त
८. सामायिक	१७. क्षामणा-क्षमापना
९. चतुर्विंशति स्तव	१८. स्वाध्याय



- |                         |                                  |
|-------------------------|----------------------------------|
| १९. वाचना               | ४७. निर्लोभता                    |
| २०. प्रतिप्रच्छना       | ४८. आर्जव-ऋजुता                  |
| २१. परावर्तना           | ४९. मार्दव-मृदुता                |
| २२. अनुप्रेक्षा         | ५०. भाव-सत्य                     |
| २३. धर्मकथा             | ५१. करण-सत्य                     |
| २४. श्रुताराधना         | ५२. योग-सत्य                     |
| २५. मन की एकाग्रता      | ५३. मनोगुप्ति                    |
| २६. संयम                | ५४. वचनगुप्ति                    |
| २७. तप                  | ५५. कायगुप्ति                    |
| २८. व्यवदान-विशुद्धि    | ५६. मनःसमाधारणता                 |
| २९. सुखशात              | ५७. वाक्-समाधारणता               |
| ३०. अप्रतिबद्धता        | ५८. काय-समाधारणता                |
| ३१. विविक्त शयनासन सेवन | ५९. ज्ञानसंपन्नता                |
| ३२. विनिवर्तना          | ६०. दर्शनसंपन्नता                |
| ३३. संभोग-प्रत्याख्यान  | ६१. चारित्रसंपन्नता              |
| ३४. उपधि-प्रत्याख्यान   | ६२. श्रोत्र-इन्द्रिय-निग्रह      |
| ३५. आहार-प्रत्याख्यान   | ६३. चक्षु-इन्द्रिय-निग्रह        |
| ३६. कषाय-प्रत्याख्यान   | ६४. घ्राण-इन्द्रिय-निग्रह        |
| ३७. योग-प्रत्याख्यान    | ६५. जिह्वा-इन्द्रिय-निग्रह       |
| ३८. शरीर-प्रत्याख्यान   | ६६. स्पर्श-इन्द्रिय-निग्रह       |
| ३९. सहाय-प्रत्याख्यान   | ६७. क्रोधविजय                    |
| ४०. भक्त-प्रत्याख्यान   | ६८. मानविजय                      |
| ४१. सद्भाव-प्रत्याख्यान | ६९. मायाविजय                     |
| ४२. प्रतिरूपता          | ७०. लोभविजय                      |
| ४३. वैवावृत्य           | ७१. प्रेय-द्वेष-मिथ्यादर्शन विजय |
| ४४. सर्वगुणसंपन्नता     | ७२. शैलेशी                       |
| ४५. वीतरागता            | ७३. अकर्मता                      |
| ४६. क्षान्ति ( क्षमा )  |                                  |

**Maxim 1**—(Sudharma Swami says to Jambu Swami—) O Long-lived one! I have heard that Bhagavan (Mahavir) has said thus—

In this Jina sermon Shraman Bhagavan Mahavir, of Kashyap lineage, has preached the chapter titled Fortitude in Righteousness. By having right faith in it, giving credence to it, liking it, accepting it, practicing it, concluding it, chanting it, correctly understanding



it, propitiating it and duly following it according to the command of the guru, many persons (souls) attain perfection, enlightenment, liberation, nirvana and end all miseries.

Its meaning and import have been elaborated thus (the topics discussed in this are listed as)—

1. Craving for liberation (*samveg*)
2. Disgust for the mundane (*nirved*)
3. Faith in the religion (*dharmashriddha*)
4. Care of the guru and co-religionists (*guru-sadharmik sushrusa*)
5. Criticize faults committed (*aalochana*)
6. Deplore faults committed (*ninda*)
7. Censure faults committed (*garha*)
8. Equanimity (*samayik*)
9. Chant Panegyrics of 24 Tirthankars (*chaturvimshati stava*)
10. To pay homage (*vandana*)
11. Critical review and expiation of sins (*pratikraman*)
12. Dissociation from the body (*kayotsarg*)
13. Formal renunciation (*pratyakhyan*)
14. Singing panegyrics, hymns and auspicious songs (*stava, stuti, mangal*)
15. Review of routine (*kaal pratilekhana*)
16. Atonement (*prayashchit*)
17. Forgiving and seeking forgiveness (*kshaamana/kshamaapana*)
18. Study of scriptures (*swadhyaya*)
19. Recital of scriptures (*vaachana*)
20. Questioning to remove doubts (*pratiprachchhana*)
21. Repetition of learnt knowledge (*paraavartana*)
22. Pondering over learnt knowledge (*anupreksha*)
23. Religious discourse (*dharmakatha*)
24. Perfecting scriptural knowledge (*shrut-aradhana*)
25. Concentration of mind (*ekagrata*)
26. Restraint (*samyam*)
27. Austerities (*tap*)
28. Purification by shedding accumulated *karmas* (*vyavadaan*)
29. Renouncing craving of pleasures (*sukhashaat*)
30. Freedom from obsession (*apratibaddhata*)
31. Use of unfrequented lodging and bed (*viviktashayanasan-sevan*)
32. Apathy from the mundane (*vinivartana*)
33. Renouncing carnal enjoyments (*sambhog-pratyakhyan*)



34. Renouncing equipment (*upadhi-pratyakhyan*)
35. Renouncing food intake (*ahaar-pratyakhyan*)
36. Renouncing passions (*kashaya-pratyakhyan*)
37. Renouncing association (*yoga-pratyakhyan*)
38. Renouncing body (*sharira-pratyakhyan*)
39. Renouncing help (*sahaya-pratyakhyan*)
40. Renouncing meal (*bhakt-pratyakhyan*)
41. Final renunciation (*sadbhaava-pratyakhyan*)
42. Conforming to the standard (*pratiroopata*)
43. Rendering service to others (*vaiyavriya*)
44. Acquisition of all virtues (*sarvaguna-sampannata*)
45. Detached state (*vitaraagata*)
46. Forgiveness (*kshanti*)
47. Absence of greed (*nirlobhata*)
48. Simplicity (*arjava*)
49. Modesty (*mriduta*)
50. Probity of thought (*bhaava-satya*)
51. Probity of action (*karan-satya*)
52. Probity of association (*yoga-satya*)
53. Restraint of mind (*manogupti*)
54. Restraint of speech (*vachan-gupti*)
55. Restraint of body (*kaayagupti*)
56. Discipline of mind (*manah-samadharanata*)
57. Discipline of speech (*vachan-samadharanata*)
58. Discipline of body (*kaaya-samadharanata*)
59. Possession of right-knowledge (*jnana-sampannata*)
60. Possession of right-perception/faith (*darshan-sampannata*)
61. Possession of right-conduct (*chaaritra-sampannata*)
62. Subduing the sense-organ of hearing (*shrotra-indriya-nigraha*)
63. Subduing the sense-organ of sight (*chakshu-indriya-nigraha*)
64. Subduing the sense-organ of smell (*ghraan-indriya-nigraha*)
65. Subduing the sense-organ of taste (*jihva-indriya-nigraha*)
66. Subduing the sense-organ of touch (*sparsh-indriya-nigraha*)
67. Conquering anger (*krodh-vijaya*)
68. Conquering conceit (*maan-vijaya*)
69. Conquering deceit (*maya-vijaya*)
70. Conquering greed (*lobh-vijaya*)



71. Conquering love-aversion-wrong belief (*preya-dvesh-mithyadarshan-vijaya*)
72. Rock-like stability (*shaileshi*)
73. Freedom from *karmas* (*akarmata*)

सूत्र २—संवेगेण भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संवेगेण अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ। अणुत्तराए धम्मसद्धाए संवेगं हव्वमागच्छइ। अणन्ताणुबन्धिकोह-माण-माया-लोभे खवेइ। नवं च कम्मं न बन्धइ। तप्पच्चइयं च णं मिच्छत्त-विसोहिं काऊण दंसणाराहए भवइ। दंसणविसोहीए य णं विसुद्धाए अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्जइ। सोहीए य णं विसुद्धाए तच्चं पुणो भवग्गहणं नाइक्कमइ ॥

सूत्र २—(प्रश्न) भगवन् ! संवेग (मोक्षाभिरुचि-मोक्षाभिलाषा) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) संवेग से जीव अनुत्तर धर्म-श्रद्धा प्राप्त करता है। अनुत्तर धर्म-श्रद्धा से संवेग शीघ्र ही आता है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ का क्षय करता है। नये कर्मों (मिथ्यात्व जनित कर्मों) का बन्ध नहीं होता है। उस (अनन्तानुबन्धी कषाय-क्षय) के निमित्त से मिथ्यात्व विशुद्धि करके दर्शन का आराधक हो जाता है। दर्शन-विशुद्धि से विशुद्ध होकर कितने ही (जिन्होंने उत्कृष्ट दर्शन-विशुद्धि की है।) जीव उसी भव (जन्म) से सिद्ध हो जाते हैं और कितने ही जीव दर्शन-विशुद्धि से विशुद्धि होने पर तीसरे जन्म का अतिक्रमण नहीं करते। (तीसरे जन्म में तो निश्चित ही सिद्ध हो जाते हैं।)

**Maxim 2 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by craving for liberation (*samvega*)?

(A). The craving for liberation gives a living being unprecedented religious faith. Through this unprecedented religious faith he gains craving for liberation fast. He destroys extreme anger, conceit, deceit and greed that cause infinitely repetitive bondage of *karmas*. He does not attract bondage of new *karmas* (that entail wrong belief). With the help of that (destruction of extreme passions) the being cleanses himself of the wrong belief to become aspirant of righteousness. Gaining purity through cleansing of perception/faith many beings (who have attained pristine purity) get liberated in the same birth and many others gaining the same purity do not get reborn after third rebirth (they definitely attain liberation in third rebirth).

सूत्र ३—निव्वेएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

निव्वेएणं दिव्व-माणुस-तेरिच्छिएसु कामभोगेसु निव्वेयं हव्वमागच्छइ। सव्वविसएसु विरज्जइ। सव्वविसएसु विरज्जमाणे आरम्भ-परिच्चायं करेइ। आरम्भपरिच्चायं करेमाणे संसारमग्गं वोच्छिन्दइ, सिद्धिमग्गे पडिवन्ने य भवइ ॥

सूत्र ३—(प्रश्न) भगवन् ! निर्वेद (भव वैराग्य) से जीव को क्या प्राप्ति होती है ?

(उत्तर) निर्वेद से जीव देव-मनुष्य-तिर्यच सम्बन्धी कामभोगों से शीघ्र वैराग्य-विरक्ति (निर्वेद) को प्राप्त करता है। सभी प्रकार के विषयों से विरक्त होता है। सभी विषयों से विरक्त होकर आरम्भ





का परित्याग करता है। आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसार-मार्ग का विच्छेद करता है तथा सिद्धि-मार्ग को प्राप्त करता है।

**Maxim 3 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by disgust for the mundane (*nirved*)?

(A). Through disgust for the mundane a being soon develops apathy for carnal pleasures related to divine, human and animal beings. He becomes apathetic to all sensual indulgence. On being apathetic to all sensual indulgence he avoids all sinful activities. While renouncing sinful activities he shears the path of worldly existence through cyclic rebirths (*samsar*) and embraces the path of liberation.

सूत्र ४—धम्मसद्धाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

धम्मसद्धाए णं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ। अगारधम्मं च णं चयइ। अणगारे णं जीवे सारीर-माणसाणं दुक्खाणं छेयण-भेयण-संजोगाईणं वोच्छेयं करेइ, अब्वाबाहं च सुहं निव्वेत्तइ ॥

सूत्र ४—(प्रश्न) भगवन् ! धर्म-श्रद्धा से जीव को क्या उपलब्ध होता है ?

(उत्तर) धर्म-श्रद्धा से जीव (साता वेदनीय कर्म से प्राप्त) साता-सुखों की आसक्ति से विरक्त होता है। अगर धर्म (गृहस्थ धर्म) का त्याग करता है। अनगर बनकर जीव छेदन-भेदन आदि शारीरिक तथा संयोग आदि मानसिक दुःखों का विच्छेद (विनाश) कर देता है और अव्याबाध सुख को प्राप्त करता है।

**Maxim 4 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by faith in religion (*dharmashriddha*)?

(A). By putting faith in religion, a being becomes indifferent to fondness for earthly pleasures (gained due to pleasant-feeling-evoking *karmas*). He renounces the duties of a householder. By becoming a homeless ascetic, he ends physical and mental miseries, including those from cutting, piercing and association (with unpleasant things) to attain unrestricted bliss.

सूत्र ५—गुरु-साहम्मियसुस्सूणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

गुरु-साहम्मियसुस्सूणयाए णं विणयपडिवत्तिं जणयइ। विणयपडिवत्ते य णं जीवे अणच्चासायणसीले नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देव-दोग्गईओ निरुम्भइ। वण्ण-संजलण भन्ति-बहुमाणयाए मणुस्स-देवसोग्गईओ निबन्धइ, सिद्धिं सोग्गइं च विसोहेइ।

पसत्थाइं च णं विणयमूलाइं सव्वकज्जाइं साहेइ। अन्ने य बहवे जीवे विणइत्ता भवइ ॥

सूत्र ५—(प्रश्न) भगवन् ! गुरु तथा साधर्मिक की शुश्रूषा से जीव क्या (फल) प्राप्त करता है ?

(उत्तर) गुरु तथा साधर्मिक की शुश्रूषा (सेवा) करने से जीव विनय प्रतिपत्ति को प्राप्त करता है। विनयप्रतिपन्न व्यक्ति गुरु की परिवाद आदि रूप आशातना नहीं करता। इससे वह नरक, तिर्यच योनि और देव-मनुष्य संबंधी दुर्गति का निरोध कर देता है। वर्ण (श्लाघा), संज्वलन (गुणों का प्रकाशन), भक्ति और बहुमान से मनुष्य और देव सम्बन्धी सुगति का बन्ध करता है और श्रेष्ठ गति



स्वरूप सिद्धि को विशुद्ध करता है। विनयमूलक सभी प्रशस्त (उत्तम) कार्यो को साधता (करता) है। बहुत से अन्य जीवों को भी विनयवान बनाने वाला होता है।

**Maxim 5 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) attain by taking care of the guru and co-religionists (*guru-sadharmik sushrusa*)?

(A). By taking care of the guru and co-religionists a being obtains modest disposition. A person with modest disposition avoids disrespect to teachers by misconduct. As a result he avoids ignoble rebirth in infernal, animal, divine and human realms. By praising, exposing virtues, devotion and honour of the guru he acquires bondage of noble rebirth in human and divine realms, and enhances purity leading to the exalted state of perfection (*siddhi*). He performs all noble acts based on modesty and inspires many others to be modest.

सूत्र ६—आलोचनाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

आलोचनाए णं माया-नियाण-मिच्छादंसणसल्लाणं मोक्खमग्गविग्घाणं अणन्त संसारवद्धणाणं उद्धरणं करेई। उज्जुभावं च जणयइ। उज्जुभावपडिवन्ने य णं जीवे अमाई इत्थीवेय-नपुंसगवेयं च न बन्धइ। पुव्वबद्धं च णं निज्जरेइ॥

सूत्र ६—(प्रश्न) भगवन् ! आलोचना (गुरुजनों के समक्ष अपने दोष स्पष्ट स्वर में व्यक्त करना) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) आलोचना से मोक्ष-मार्ग में विघ्न करने वाले तथा अनन्त संसार की वृद्धि करने वाले माया (छल-कपट), निदान (तप आदि की विषय भोग-सम्बन्धी-फल भोगाकांक्षा) और मिथ्यादर्शन शल्य (काँटों) को निकालकर फेंक देता है (उखाड़ देता है)। ऋजुभाव (सरलता) को प्राप्त होता है। ऋजुभाव प्रतिपन्न जीव मायारहित होता है। वह स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का बन्ध नहीं करता और पूर्वबद्ध की निर्जरा करता है।

**Maxim 6 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) attain by criticizing faults committed (*aalochana*) (candid confession of his faults before the guru)?

(A). By criticizing faults committed, a being uproots the thorns of deceit, expectation (desire for mundane pleasures as fruits of austerities and other practices) and wrong perception/faith, which multiply the cycles of rebirth (*samsar*) and obstruct the path of liberation. He gains simplicity. By gaining simplicity he becomes devoid of deceit. He does not attract bondage of the *karmas* responsible for feminine and neuter genders and sheds those accumulated in the past.

सूत्र ७—निन्दणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

निन्दणयाए णं पच्छाणुतावं जणयइ। पच्छाणुतावेणं विरज्जमाणे करणगुणसेट्ठिं पडिवज्जइ। करणगुणसेट्ठिं पडिवन्ने य णं अणगारे मोह्णिज्जं कम्मं उग्घाएइ॥

सूत्र ७—(प्रश्न) भगवन् ! निन्दना (स्वयं के दोषों का पश्चात्ताप) से जीव को क्या (फल) प्राप्त होता है ?



(उत्तर) निन्दना (निन्दा) से पश्चात्ताप होता है और पश्चात्ताप द्वारा होने वाली विरक्ति से करण-गुणश्रेणि प्राप्त करता है। करण-गुणश्रेणि प्राप्त अनगार (साधु) मोहनीय कर्म को नष्ट करता है।

**Maxim 7 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by deploring faults committed (*ninda*)?

(A). By deploring faults committed, a being gains feeling of remorse and through the detachment gained by remorse he arrives at the ascending scale of spiritual action (*karangunashreni*). The ascetic reaching this ascending scale of spiritual action destroys deluding *karmas*.

सूत्र ८—गरहणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

गरहणयाए णं अपुरक्कारं जणयइ। अपुरक्कारगए णं जीवे अप्पसत्थेहिंतो जोगेहिंतो नियत्तेइ। पसत्थजोग-पडिवन्ने य णं अणगारे अणन्तघाइपज्जवे खवेइ ॥

सूत्र ८—(प्रश्न) भगवन् ! गर्हा-गर्हणा (दूसरे के सामने दोषों का प्रकाशन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) गर्हा (गर्हणा) से जीव को अपुरस्कार (गौरव का अभाव) प्राप्त होता है। अपुरस्कृत होने से जीव अप्रशस्त योगों (कार्यों) से निवृत्त होता है (प्रशस्त योगों-कार्यों से युक्त होता है)। प्रशस्त योगों से प्रतिपन्न अनगार आत्मा के गुणों का घात करने वाले (ज्ञानावरण, मोहनीय आदि) कर्मों की अनन्त पर्यायों को क्षय करता है।

**Maxim 8 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by censuring (before others) faults committed (*garha*)?

(A). By censuring faults committed a being obtains humility. Through this humility he avoids ignoble associations (and embraces noble associations). An ascetic embracing noble associations (activities) destroys infinite modes of vitiating *karmas* (such as knowledge-obstructing and deluding *karmas*).

सूत्र ९—सामाइए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सामाइएणं सावज्जजोगविरइं जणयइ ॥

सूत्र ९—(प्रश्न) भगवन् ! सामायिक (समभाव) से जीव को क्या उपलब्धि प्राप्त होती है ?

(उत्तर) सामायिक द्वारा जीव सावद्योगों (पापकारी प्रवृत्तियों) से विरक्ति को प्राप्त करता है।

**Maxim 9 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) gain by practice of equanimity (*samayik*)?

(A). By practice of equanimity soul gains apathy for sinful activities.

सूत्र १०—चउब्बीसत्थएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

चउब्बीसत्थएणं दंसणविसोहिं जणयइ ॥

सूत्र १०—(प्रश्न) भगवन् ! चतुर्विंशति-स्तव से जीव को क्या (लाभ) प्राप्त होता है ?

(उत्तर) चतुर्विंशति-स्तव (चौबीस तीर्थकरों की स्तुति-स्तवन) से जीव दर्शनविशुद्धि प्राप्त करता है।



**Maxim 10 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by chanting panegyrics of twenty four Tirthankars?

(A). By singing praise of twenty four Tirthankars the soul attains purity of perception/faith.

सूत्र ११—वन्दणएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वन्दणएणं नीयागोयं कम्मं खवेइ। उच्चागोयं निबन्धइ। सोहगं च णं अप्पडिहयं आणाफलं निव्वत्तेइ, दाहिणभावं च णं जणयइ ॥

सूत्र ११—(प्रश्न) भगवन् ! वन्दना से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) वन्दना से जीव नीच गोत्र कर्म का क्षय करता है। उच्च गोत्र कर्म का बन्ध करता है। अप्रतिहत सौभाग्य को प्राप्त कर सर्वजनप्रिय होता है। उसकी आज्ञा सर्वत्र स्वीकार की जाती है। वह लोगों से दाक्षिण्य-लोकप्रियता प्राप्त करता है।

**Maxim 11 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by paying homage (*vandana*)?

(A). By paying homage a being destroys the *karma* responsible for lower status (*neech gotra karma*) and attracts bondage of *karma* responsible for higher status (*uchcha gotra karma*). He begets undiminished good fortune to gain mass popularity. His authority is accepted everywhere and he gains general goodwill.

सूत्र १२—पडिक्कमणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पडिक्कमणेणं वयच्छिदाइं पिहेइ। पिहियवयच्छिहे पुण जीवे निरुद्धासवे, असबलचरित्ते, अट्टसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिण् विहरइ ॥

सूत्र १२—(प्रश्न) भगवन् ! प्रतिक्रमण से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) प्रतिक्रमण से जीव अपने ग्रहण किये हुए व्रतों के छिद्रों (स्खलनाओं-दोषों-अतिचारों) को बन्द कर देता है। व्रतों के छिद्रों को बन्द करने वाला जीव आस्रवों का निरोध कर देता है, निर्दोष (अशबल) चारित्र का पालन करता है, समिति-गुप्तिरूप आठ प्रवचन-माताओं के पालन में सदा उपयोगयुक्त रहता है। चारित्र में एकरूप (अपुहत्त) होकर संयम में सम्यकरूप से प्रणिहित-समाहित-चित्त होकर विचरण करता है।

**Maxim 12 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by critical review and expiation of sins (*pratikraman*)?

(A). By critical review and expiation of sins a being closes the wholes (slips, faults and transgressions) in vows accepted by him. By closing the holes in vows he blocks the *karmic*-influx, practices pure conduct, always remains attentive in practicing the eight *pravachana-maata* (five circumspections and three restraints) and moves about with uniformity of conduct and complete sincerity in restraints.

सूत्र १३—काउस्सगणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?



काउस्सगणेणं ऽतीय-पडुप्पन्नं पायच्छित्तं विसोहेइ । विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निव्वुयहियए ओहरियभारो व्व भारवहे, पसत्थज्झाणोवगए, सुहंसुहेणं विहरइ ॥

सूत्र १३—(प्रश्न) भगवन् ! कायोत्सर्ग (शरीर के प्रति ममत्व त्याग) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) कायोत्सर्ग से जीव अतीत (भूतकाल) और वर्तमान के प्रायश्चित्त योग्य अतिचारों का विशोधन करता है और प्रायश्चित्त से विशुद्ध हुआ जीव भार को उतार (हटा) देने वाले भारवाहक के समान शान्त चिन्तामुक्त होकर प्रशस्त (शुभ) ध्यान में लीन हो जाता है तथा सुखपूर्वक विचरण करता है ।

**Maxim 13 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) get by dissociation from the body (*kayotsarg*)?

(A). By dissociation from the body (*kayotsarg*) a being rectifies atonable transgressions of past and present. Thus the soul purified by atonement becomes free of the load of worries (tranquil) like a porter, who has taken off his load and moves about happily engrossed in noble meditation.

सूत्र १४—पच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुम्भइ ।

सूत्र १४—(प्रश्न) भगवन् ! प्रत्याख्यान (संसार संबंधी विषयों के त्याग) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) प्रत्याख्यान से जीव आसवद्वारों (कर्मबन्ध के हेतुओं) का निरोध कर देता है ।

**Maxim 14 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by formal renunciation (*pratyakhyan*)?

(A). By formal renunciation a being blocks the channels of *karmic*-influx.

सूत्र १५—थव-थुइमंगलेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

थवथुइमंगलेणं नाण-दंसण-चरित्त बोहिलाभं जणयइ । नाण-दंसण-चरित्त-बोहिलाभसंपन्ने य णं जीवे अन्तकिरियं कप्पविमाणोववत्तिगं आराहणं आराहेइ ॥

सूत्र १५—(प्रश्न) भगवन् ! स्तव-स्तुति-मंगल से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) स्तव-स्तुति-मंगल से जीव को ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप बोधि (रत्नत्रय) की प्राप्ति होती है । ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप बोधिलाभ संपन्न जीव अन्तःक्रिया (मुक्ति) अथवा कल्पविमानों (वैमानिक देवों) में उत्पन्न होने के योग्य आराधना का आराधन करता है ।

**Maxim 15 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by singing panegyrics, hymns and auspicious songs (*stava, stuti, mangal*)?

(A). By singing panegyrics, hymns and auspicious songs (*stava, stuti, mangal*) a being gains enlightenment (three gems) in the form of right knowledge-perception/faith-



conduct. The being endowed with right knowledge-perception/faith-conduct indulges in spiritual practices leading to termination of birth cycles (liberation) or rebirth in celestial vehicles (*Kalp-vimaan*).

सूत्र १६—कालपडिलेहणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कालपडिलेहणयाए णं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

सूत्र १६—(प्रश्न) भगवन् ! काल की प्रतिलेखना (निरीक्षण) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) काल की प्रतिलेखना से (स्वाध्याय आदि धर्मक्रियाओं के लिए उपयुक्त समय का ध्यान रखने से) जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है।

**Maxim 16 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) get by review of routine (*kaal pratilekhana*) ?

(A). By review of routine (following the timely routine of religious duties) a being destroys knowledge obscuring *karma*.

सूत्र १७—पायच्छित्तकरणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पायच्छित्तकरणेणं पावकम्मविसोहिं जणयइ, निरइयारे यावि भवइ ! सम्मं च णं पायच्छित्तं पडिवज्जमाणे मग्गं च मग्गफलं च विसोहेइ । आयारं च आयारफलं च आराहेइ ॥

सूत्र १७—(प्रश्न) भगवन् ! प्रायश्चित्त (पापों का विशोधन) करने से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) प्रायश्चित्त करने से जीव पापकर्मों का विशोधन करके निरतिचार बनाता है। सम्यक् रूप से प्रायश्चित्त को स्वीकार करता हुआ साधक मार्ग (सम्यग्दर्शन) और मार्गफल (सम्यग्ज्ञान) को विशुद्ध करता है तथा आचार (चारित्र्य) और आचारफल (मोक्ष) की आराधना करता है।

**Maxim 17 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by atonement (*prayashchit*)?

(A). By atonement (*prayashchit*) a being cleanses the soul of demeritorious *karmas* to become faultless. While undergoing atonement the aspirant purifies the path (right perception/faith) and fruit of the path (right knowledge) and devotes himself to the pursuit of ascetic-praxis (right conduct) and the fruit of ascetic-praxis (liberation).

सूत्र १८—खमावणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

खमावणयाए णं पल्हायणभावं जणयइ । पल्हायणभावमुवगए य सव्वपाण-भूय-जीवसत्तेसु मित्तीभावमुप्याएइ । मित्तीभावमुवगए यावि जीवे भावविसोहिं काउण निब्भए भवइ ॥

सूत्र १८—(प्रश्न) भगवन् ! क्षमापना से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) क्षमापना से जीव को प्रह्लाद भाव (चित्त की प्रसन्नता) प्राप्त होता है। प्रह्लाद भाव को प्राप्त जीव सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों के प्रति मैत्रीभाव उत्पन्न करता है। मैत्रीभाव को प्राप्त जीव (अपने) भावों की विशुद्धि करके निर्भय हो जाता है।



**Maxim 18 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by forgiving and seeking forgiveness (*kshaamana/kshamaapana*)?

(A). By forgiving and seeking forgiveness a being gains mental happiness. The being endowed with mental happiness evokes feelings of friendship towards all beings (*praan*), organisms (*bhoot*), souls (*jiva*) and entities (*sattva*). With this feeling of universal fraternity he purifies his sentiments and gains freedom from fear.

सूत्र १९—सज्जाएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सज्जाएणं नाणावरणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

सूत्र १९—(प्रश्न) भगवन् ! स्वाध्याय से जीव को क्या (लाभ) प्राप्त होता है ?

(उत्तर) स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है।

**Maxim 19 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by study of scriptures (*swadhyaya*)?

(A). By study of scriptures a being destroys the knowledge obscuring *karma*.

सूत्र २०—वायणाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वायणाए णं निज्जरं जणयइ। सुयस्स य अणासायणाए वट्टए। सुयस्स अणासायणाए वट्टमाणे तित्थधम्मं अवलम्बइ। तित्थधम्मं अवलम्बमाणे महानिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ ॥

सूत्र २०—(प्रश्न) भगवन् ! वाचना से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) वाचना से जीव कर्मों की निर्जरा करता है। श्रुत के अनुवर्तन (सतत पठन-पाठन) से (श्रुत की) अनाशातना में प्रवर्तमान जीव तीर्थधर्म का अवलंबन (आश्रय) लेता है। तीर्थधर्म का अवलंबन लेता हुआ साधक कर्मों की महानिर्जरा और महापर्यवसान (कर्मों का सर्वथा अन्त) करने वाला होता है।

**Maxim 20 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by recitation of scriptures (*vaachana*) ?

(A). By reciting (teaching) scriptures a being sheds *karmas*. By continued reading and teaching scriptures a being ensures avoiding desecrating scriptural knowledge and takes refuge with the ford-making religion. With the support of the ford-making religion he becomes thorough shedder and destroyer of *karmas*.

सूत्र २१—पडिपुच्छणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पडिपुच्छणयाए णं सुत्तइत्थ तदुभयाइं विसोहेइ। कंखामोहणिज्जं कम्मं वोच्छिन्दह ॥

सूत्र २१—(प्रश्न) भगवन् ! प्रतिप्रच्छना (पूर्व पठित शास्त्र के विषय में शंका निवारण के लिये प्रश्न करना) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) प्रतिप्रच्छना से जीव सूत्र, अर्थ और तदुभय (दोनों के तात्पर्य) को विशुद्ध कर लेता है तथा कांक्षा-मोहनीय कर्म को विच्छिन्न कर देता है।



**Maxim 21 (Q).** *Bhante!* What fruit does a *jiva* (soul/living being) obtain by questioning to remove doubts (*pratiprachchhana*)?

(A). By questioning to remove doubts a being corrects the text, the meaning and both. He then destroys the deluding *karma* responsible for desire (*kanksha-mohaniya karma*).

सूत्र २२—परियट्टणाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

परियट्टणाए णं वंजणाइं जणयइ, वंजणलद्धिं च उप्पाएइ ॥

सूत्र २२—(प्रश्न) भगवन् ! परावर्तना (पठित पाठ का पुनरावर्तन) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) परावर्तना से जीव व्यंजन (शब्द पाठ) को प्राप्त कर व्यंजन लब्धि-पदानुसारिणी आदि लब्धि को प्राप्त कर लेता है।

**Maxim 22 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by repetition of learnt knowledge (*paraavartana*)?

(A). By repetition of learnt knowledge a being gains mastery over syllables (words and meanings) and gets endowed with related special powers (such as reciting full line by hearing just one word).

सूत्र २३—अणुप्पेहाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अणुप्पेहाए णं आउयवज्जाओ सत्तकम्मप्पगडीओ घणियबन्धणबद्धाओ सिद्धिलबन्धण-बद्धाओ पकरेइ। दीहकालट्टिइयाओ हस्सकालट्टिइयाओ पकरेइ। तिब्वाणुभावाओ मन्दाणुभावाओ पकरेइ। बहुपएसग्गाओ अप्पएसग्गाओ पकरेइ। आउयं च णं कम्मं सिय बन्धइ, सिय नो बन्धइ। असायावेयणिज्जं च णं कम्मं नो भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ। अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरन्तं संसारकन्तारं खिप्पामेव वीइवयइ ॥

सूत्र २३—(प्रश्न) भगवन् ! अनुप्रेक्षा (सूत्र और उसके चिन्तन-मनन) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) अनुप्रेक्षा से जीव आयु कर्म को छोड़कर (शेष) सात कर्म प्रकृतियों के प्रगाढ़ बन्धन को शिथिल बन्धन में परिणत कर देता है—शिथिल करता है। उनकी दीर्घकालीन स्थिति को अल्पकालीन कर देता है। तीव्र अनुभाव (अनुभाग) को मन्द अनुभाव कर देता है। बहुल-प्रदेशाग्रों को अल्प-प्रदेशाग्रों में परिणत करता है। आयु कर्म का कदाचित् बन्ध करता है, कदाचित् बन्ध नहीं भी करता है। असाता वेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता। अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसाररूपी वन को शीघ्र ही पार (वीयवयइ-व्यतिक्रम) कर लेता है।

**Maxim 23 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by pondering over learnt knowledge (*anupreksha*)?

(A). By pondering over learnt knowledge a being turns the rigid bondage of seven *karmas* other than life-span determining *karma*, into loose bonds. He reduces their long duration to short duration, turns their intense potency to low and diminishes their sections





from numerous to a few. He may or may not attract bondage of life-span determining *karmas*. He does not repeatedly accumulate bondage of *karmas* responsible for feeling of pain. He crosses quickly the forest of cycles of rebirth in the form of four genuses having a long path without a beginning or an end.

सूत्र २४—धम्मकहाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

धम्मकहाए णं निज्जरं जणयइ। धम्मकहाए णं पवयणं पभावेइ। पवयणपभावे णं जीवे आगमिस्स भदत्ताए कम्मं निबन्धइ ॥

सूत्र २४—(प्रश्न) भगवन् ! धर्मकथा से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) धर्मकथा (धर्मोपदेश) से जीव कर्मों की निर्जरा करता है तथा प्रवचन (शासन तथा सिद्धान्त) की प्रभावना करता है। प्रवचन-प्रभावना से जीव भविष्य में शुभ फल प्रदान करने वाले कर्मों का बन्ध करता है।

**Maxim 24 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by religious discourse (*dharmakatha*)?

(A). By religious discourse a being sheds *karmas* and spreads the sermon (influence of religious order and doctrine). By spreading the sermon he attracts the bondage of *karmas* that bestow noble fruits in future.

सूत्र २५—सुयस्य आराहणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सुयस्स आराहणयाएणं अन्नाणं खवेइ, न य संकिलिस्सइ ॥

सूत्र २५—(प्रश्न) भगवन् ! श्रुत (सूत्र-सिद्धान्त) की आराधना से जीव को क्या उपलब्धि होती है ?

(उत्तर) श्रुत की आराधना-सम्यक् आसेवना से जीव अज्ञान (ज्ञान की न्यूनता अथवा मिथ्याज्ञान) का नाश (क्षय) करता है तथा संक्लेश नहीं पाता।

**Maxim 25 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by perfecting scriptural knowledge (*shrut-aradhana*)?

(A). By perfecting scriptural knowledge a being destroys ignorance (wrong knowledge or lack of knowledge) and experiences no misery.

सूत्र २६—एगग्गमणसंनिवेशणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

एगग्गमणसंनिवेशणाए णं चित्तनिरोहं करेइ ॥

सूत्र २६—(प्रश्न) भगवन् ! मन को एकाग्रता में संनिवेश (स्थापित-स्थिर) करने से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) मन को एकाग्रता में संनिवेश करने से चित्त (वृत्तियों) का निरोध करता है।

**Maxim 26 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by concentration of mind (*ekagrata*)?

(A). By concentration of mind a being subdues mind (unbridled activities).



सूत्र २७—संजमेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संजमेणं अणणहयत्तं जणयइ ॥

सूत्र २७—(प्रश्न) भगवन् ! संयम से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) संयम (पालन करने) से जीव अनास्रवत्व (आते हुए नवीन कर्मों के निरोध) को प्राप्त करता है।

**Maxim 27 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by restraint (*samyam*)?

(A). By (practicing) restraint a being accomplishes blockage of inflow of new *karmas*.

सूत्र २८—तवेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

तवेणं वोदाणं जणयइ ॥

सूत्र २८—(प्रश्न) भगवन् ! तप से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) तप से जीव (पूर्वसंचित कर्मों की निर्जरा करके) व्यवदान (विशुद्धि) को प्राप्त करता है।

**Maxim 28 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by austerities (*tap*)?

(A). By austerities a being (sheds *karmas* accumulated in the past and thereby) attains spiritual purity.

सूत्र २९—वोदाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वोदाणेणं अकिरियं जणयइ । अकिरियाए भवित्ता तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाइए, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सूत्र २९—(प्रश्न) भगवन् ! व्यवदान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) व्यवदान से जीव को अक्रियता (मन-वचन-काय योगों की प्रवृत्ति से रहितता) प्राप्त होती है। अक्रियता होने के उपरान्त वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सम्पूर्ण दुःखों का अन्त (विनाश) कर देता है।

**Maxim 29 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by purification through shedding accumulated *karmas* (*vyavadaan*)?

(A). By purification through shedding accumulated *karmas* a being gains inaction (absence of indulgence through association of mind, speech and body). After becoming inactive thus he becomes perfect (*Siddha*), enlightened (*Buddha*), liberated (*mukta*), gains nirvana and ends all miseries.

सूत्र ३०—सुहसाएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सुहसाएणं अणुस्सुयत्तं जणयइ । अणुस्सुयाए णं जीवे अणुकम्पए, अणुब्भडे, विगयसोगे, चरित्तमोहणिज्जं कम्मं खवेइ ॥

सूत्र ३०—(प्रश्न) भगवन् ! सुख-शात से जीव क्या प्राप्त करता है ?



(उत्तर) सुख-शात (वैषयिक सुखों की स्पृहा के शातन-निवारण-उपशान्तता) से (विषयों के प्रति) अनुत्सुकता होती है, अनुत्सुकता से जीव अनुकम्पाशील, अनुद्धत (अणुब्भड) तथा विगतशोक-शोकरहित होकर चारित्रमोहनीय कर्म का क्षय करता है।

**Maxim 30 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by renouncing craving of pleasures (*sukhashaat*)?

(A). By renouncing craving of (sensual) pleasures a being becomes uncurious (about subjects of sense organs). Thereby he becomes compassionate, serene (*anuddhat*) and free of grief. As a consequence he destroys the conduct-deluding *karma* (*Charitramohaniya karma*).

सूत्र ३१—अप्यडिबद्धयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अप्यडिबद्धयाए णं निस्संगत्तं जणयइ । निस्संगत्तेणं जीवे एगे, एगगच्चित्ते, दिया य राओ य असज्जमाणे, अप्यडिबद्धे यावि विहरइ ॥

सूत्र ३१—(प्रश्न) भगवन् ! अप्रतिबद्धता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) अप्रतिबद्धता (आसक्तिरहितता) से जीव निस्संग होता है। निस्संगता से वह एकाकी-अकेला (आत्मनिष्ठ) एकाग्र चित्त वाला होकर दिन और रात-सदा सर्वत्र विरक्त और अप्रतिबद्ध होकर विचरण करता है।

**Maxim 31 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by freedom from obsession (*apratibaddhata*)?

(A). By freedom from obsession a being becomes free of company. This freedom from company makes him solitary (introvert) and mentally focused. Then he wanders day and night, always and everywhere detached and unbridled.

सूत्र ३२—विवित्तसयणासणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

विवित्तसयणासणयाए णं चरित्तगुत्तिं जणयइ । चरित्तगुत्ते य णं जीवे विवित्ताहारे, दढचरित्ते, एगन्तरए, मोक्खभावपडिवत्ते अट्टविहकम्मगंठिं निज्जरेइ ॥

सूत्र ३२—(प्रश्न) भगवन् ! विविक्त शयनासन से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) विविक्त शयनासन (जन-कोलाहल तथा स्त्री-पशु-नपुंसक से असंसक्त, एकान्त, शान्त स्थान) के सेवन से जीव चारित्र गुप्ति-चारित्र की रक्षा करता है। चारित्र की रक्षा करने वाला विविक्ताहारी (पौष्टिक भोजन का त्याग करने वाला) दृढ़ चारित्री, एकान्तप्रिय, मोक्षभाव-प्रतिपन्न जीव आठ प्रकार के कर्मों की ग्रन्थि की निर्जरा करता है।

**Maxim 32 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by using unfrequented lodging and bed (*viviktashayanasan-sevan*)?

(A). By using unfrequented lodging and bed (free of noise and uninhabited by women, eunuchs and animals, lonely and peaceful) a being accomplishes restraint of conduct. A being with restraint of conduct survives on bland food (discarding rich food), loves solitude and is overwhelmed with desire for liberation; thereby he sheds the bondage of eight types of *karmas*.



सूत्र ३३—विणियदृणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

विणियदृणयाए णं पावकम्माणं अकरणयाए अब्भुदुइ। पुव्वबद्धाण य निज्जरणयाए तं नियत्तेइ, तओ पच्छा चाउरन्तं संसारकन्तारं वीइवयइ ॥

सूत्र ३३—(प्रश्न) भगवन् ! विनिवर्तना (मन और इन्द्रियों की विषय-वासना से निवृत्ति पराङ्मुखता) से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) विनिवर्तना से जीव पापकर्मों को न करने के लिये उद्यत रहता है और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करके कर्मों से निवृत्त हो जाता है। तदुपरान्त चतुर्गति रूप संसार वन का अतिक्रमण—(पार) कर जाता है।

**Maxim 33 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by apathy for the mundane (*vinivartana*)?

(A). By apathy for the mundane a being acquires the readiness to desist from sinful deeds and becomes free of accumulated *karmas* by shedding them. After that he crosses the wilderness of cycles of rebirth (*samsar*) world in the form of four realms.

सूत्र ३४—संभोगपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

संभोग पच्चक्खाणेणं आलम्बणाइं खवेइ। निरालम्बणास्स य आययद्विया जोगा भवन्ति। सएणं लाभेणं संतुस्सइ, परलाभं नो आसाएइ, नो तक्केइ, नो पीहेइ, नो पत्थेइ, नो अभिसलइ। परलाभं अणासायमाणे, अतक्केमाणे, अपीहेमाणे, अपत्थेमाणे, अणभिलसमाणे दुच्चं सुहसेज्जं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

सूत्र ३४—(प्रश्न) भगवन् ! संभोग-प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) सम्भोग (परस्पर सहभोजन-मण्डली भोजन आदि सम्पर्क) प्रत्याख्यान (त्याग) से जीव परावलम्बन को समाप्त करके निरावलम्बन (स्वावलम्बन) को प्राप्त करता है। निरावलम्बन (स्वावलम्बी होने) से उसके सम्पूर्ण योग (मन-वचन-काया के योग-प्रयत्न) आत्मस्थित आयतार्थ (मोक्षार्थ) हो जाते हैं। वह स्वयं के (अपने) लाभ से संतुष्ट रहता है, दूसरे के लाभ का आस्वादन (उपभोग) नहीं करता, तकता (कल्पना भी) नहीं, उसकी स्पृहा (इच्छा) भी नहीं करता, प्रार्थना (याचना) भी नहीं करता, अभिलाषा भी नहीं करता। दूसरों के लाभ का आस्वादन, कल्पना, स्पृहा, प्रार्थना तथा अभिलाषा न करता हुआ साधक दूसरी सुख शय्या को प्राप्त करके विचरण करता है।

**Maxim 34 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by renouncing eating in company (*sambhog-pratyakhyan*)?

(A). By renouncing eating in company (eating together or in a group) a being ends dependence and gains independence (self-reliance). Being self-reliant all his associations (through mind, speech and body) are directed towards self and liberation. He remains contented with his own gains and is not concerned with gains of others. He does not even watch, expect, beg or desire to share what others have. Doing so, he moves about with comfort seeking a separate lodge and bed.



सूत्र ३५—उवहियच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

उवहियच्चक्खाणेणं अपलिमन्थं जणयइ। निरुवहिए णं जीवे निक्कंखे, उवहिमन्तरेण य न संकिलिस्सई।

सूत्र ३५—(प्रश्न) भगवन् ! उपधि (उपकरणों) के प्रत्याख्यान से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) उपधि के प्रत्याख्यान से जीव अपरिमन्थ-स्वाध्याय-ध्यान में निर्विघ्नता प्राप्त करता है। उपधिरहित जीव आकांक्षा से मुक्त होकर उपधि के अभाव में संक्लेश नहीं पाता है।

**Maxim 35 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by renouncing equipment (*upadhi-pratyakhyan*)?

(A). By renouncing equipment a being accomplishes unobstructed study and meditation. A being not possessing equipment becomes free of desire and does not feel distressed in absence of equipment.

सूत्र ३६—आहारपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

आहारपच्चक्खाणेणं जीवियासंसप्पओगं वोच्छिन्दइ। जीवियासंसप्पओगं वोच्छिन्दिता जीवे आहारमन्तरेणं न संकिलिस्सइ ॥

सूत्र ३६—(प्रश्न) भगवन् ! आहार के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) आहार के प्रत्याख्यान से जीव जीवित रहने की लालसा को विच्छिन्न कर देता है। जीवन की आशंसा (कामना) को तोड़ देने से वह आहार के अभाव में भी संक्लेशित नहीं होता।

**Maxim 36 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by renouncing food intake (*ahaar-pratyakhyan*)?

(A). By renouncing food intake a being shatters the lust for life. By loosing hope for life he becomes immune to grief even when food is not available.

सूत्र ३७—कसायपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कसायपच्चक्खाणेणं वीयरगभावं जणयइ। वीयरगभावपडिवन्ने वि य णं जीवे समसुहदुक्खे भवइ ॥

सूत्र ३७—(प्रश्न) भगवन् ! कषाय के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) कषाय के प्रत्याख्यान से जीव को वीतरागभाव की प्राप्ति होती है। वीतरागभाव से संपन्न जीव सुख-दुःख में सम-समभाव वाला हो जाता है।

**Maxim 37 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by renouncing passions (*kashaya-pratyakhyan*)?

(A). By renouncing passions a being attains the state of non-attachment. A being endowed with state of non-attachment remains equanimous in happiness and misery.

सूत्र ३८—जोगपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?



जोगपच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ। अजोगी णं जीवे नवं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ३८—(प्रश्न) भगवन् ! योग के प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) योग (मन-वचन-काय योगों के व्यापारों) के प्रत्याख्यान से अयोगत्व की प्राप्ति होती है। अयोगी जीव नए कर्मों का बन्धन नहीं करता, पूर्व में बँधे हुए कर्मों की निर्जरा करता है।

**Maxim 38 (Q).** *Bhante ! What does a jiva (soul/living being) obtain by renouncing association (yoga-pratyakhyan)?*

(A). By renouncing association (of mind, speech and body) a being attains state of dissociation (from activities associated with mind, speech and body). A being so dissociated does not acquire fresh *karmic*-bondage but sheds formerly accumulated *karmas*.

सूत्र ३९—सरीरपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सरीरपच्चक्खाणेणं सिद्धाइसयगुणत्तणं निव्वत्तेइ। सिद्धाइसयगुणसंपन्ने य णं जीवे लोगगमुवगए परमसुही भवइ ॥

सूत्र ३९—(प्रश्न) भगवन् ! शरीर-प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) शरीर के प्रत्याख्यान से जीव सिद्धों के अतिशय गुणत्व (गुणों) को प्राप्त कर लेता है। सिद्धों के अतिशय गुणों से संपन्न जीव लोक के अग्र भाव में पहुँचकर परम सुखी हो जाता है।

**Maxim 39 (Q).** *Bhante ! What does a jiva (soul/living being) obtain by renouncing body (sharira-pratyakhyan)?*

(A). By renouncing body a being (soul) acquires superlative virtues of the Perfect ones (*Siddhas*). Endowed with superlative virtues of the Perfect ones, the soul reaches the edge of universe (*Lokagra*) to attain the ultimate bliss.

सूत्र ४०—सहायपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सहायपच्चक्खाणेणं एगीभावं जणयइ। एगीभावभूए वि य णं जीवे एगगं भावेमाणे अप्पसहे, अप्पझंझे, अप्पकलहे, अप्पकसाए, अप्पतुमंतुमे, संजमबहुले, संवरबहुले, समाहिए यावि भवइ ॥

सूत्र ४०—(प्रश्न) भगवन् ! सहाय (सहायक तथा सहायता के) प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) सहाय-प्रत्याख्यान से जीव एकीभाव को प्राप्त करता है। एकीभाव को प्राप्त साधक एकत्व की भावना करता हुआ अल्प शब्द वाला, वाक् कलह से रहित, झगड़े-टंटे से दूर, अल्प कषाय वाला, अल्प तू-तू, मैं-मैं वाला होकर संवर-बहुल तथा समाधियुक्त होता है।

**Maxim 40 (Q).** *Bhant ! What does a jiva (soul/living being) obtain by renouncing help (sahaya-pratyakhyan)?*



(A). By renouncing help, a being attains the state of solitariness. On attaining the state of solitariness the being continues to enhance the feeling and becomes reticent, avoids verbal disputation, remains far from quarrels, reduces passions and squabbling to raise his level of blockage of influx of *karmas*, restraint and serenity (meditation).

सूत्र ४१—भक्तपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

भक्तपच्चक्खाणेणं अणेगाइं भवसयाइं निरुम्भइ ।

सूत्र ४१—(प्रश्न) भगवन् ! भक्त-प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) भक्त-प्रत्याख्यान ( भक्त परिज्ञा रूप आमरण अनशन-संधारा ) से जीव अनेकों भवों को रोक देता है ।

**Maxim 41 (Q).** *Bhante!* What does a *jivā* (soul/living being) obtain by renouncing all meals (*bhakt-pratyakhyana*)?

(A). By renouncing all meals (fasting till death; the ultimate vow of *santhara* or *sallekhana*) prevents his numerous rebirths.

सूत्र ४२—सम्भावपच्चक्खाणेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सम्भावपच्चक्खाणेणं अनियट्ठिं जणयइ । अनियट्ठिपडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ । तं जहा-वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोयं । तओ पच्छा सिज्जइ, बुज्जइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सूत्र ४२—(प्रश्न) भगवन् ! सद्भाव (सर्व संवर रूप शैलेशी भाव) प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) सद्भाव प्रत्याख्यान से जीव अनिवृत्ति (शुक्लध्यान का चतुर्थ-अन्तिम भेद) को प्राप्त करता है । अनिवृत्ति-प्रतिपन्न अनगार केवली कर्माश (केवली के शेष रहे हुए) वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र कर्मों के अंशों (इन भवोपग्राही कर्मों) का क्षय करता है । तत्पश्चात् वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सभी दुःखों का अन्त करता है ।

**Maxim 42 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by perfect renunciation (*sadbhaava-pratyakhyana*)?

(A). By perfect renunciation a being attains the state of no return (*anivritti*; the fourth level of pure meditation or *shukladhyana*). Attaining the state of no return an ascetic destroys the remnants of *karmas* clinging even to an omniscient. These remaining portions of *karmas* include those of *Vedaniya* (*karma* that causes feelings of happiness or misery), *Ayushya* (*karma* that determines the span of a given lifetime), *Naam* (*karma* that determines the destinies and body types), and *Gotra* (*karma* responsible for the higher or lower status of a being). After that he becomes perfect (*Siddha*), enlightened (*Buddha*), liberated (*mukta*), gains nirvana and ends all miseries.

सूत्र ४३—पडिरूवयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?



पडिरूवयाए णं लाघवियं जणयइ। लहुभूए णं जीवे अप्पमत्ते, पागडलिंगे, पसत्थलिंगे, विसुद्धसम्मत्ते, सत्तसमिइसमत्ते, सव्वपाणभूयजीवसत्तेसु वीससणिज्जरूवे, अप्पडिलेहे, जिइन्दिए, विउलतवसमिइसमन्नागए यावि भवइ ॥

सूत्र ४३—(प्रश्न) भगवन् ! प्रतिरूपता (जिनकल्प जैसे आचार-पालन) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) प्रतिरूपता से जीव लघुता प्राप्त करता है। लघुभूत होकर जीव प्रमादरहित, प्रकट लिंग (वेष) वाला, प्रशस्त लिंग वाला, विशुद्ध सम्यक्त्वी, धैर्य (सत्त्व) और समितियों से परिपूर्ण, सभी प्राण-भूत-जीव-सत्त्वों के लिए विश्वसनीय, अल्प प्रतिलेखना वाला, जितेन्द्रिय, विपुल तप और समितियों से सम्पन्न होता है।

**Maxim 43 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by conforming to the standard (*pratiropata*)?

(A). By conforming to the standard (of *Jinakalpa*, the highest level of ascetic conduct) a being gains simplicity and humility. After gaining simplicity he becomes stupor-less, naturally clad, sky-clad, perfectly righteous and accomplished in patience and circumspection. He inspires trust in all beings (*praan*), organisms (*bhoot*), souls (*jiva*), and entities (*sattva*). He requires very limited inspection (as he owns almost nothing). He conquers his senses and indulges in very high level of austerity and circumspection.

सूत्र ४४—वेयावच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वेयावच्चेणं तिस्थयरनामगोत्तं कम्मं निबन्धइ ॥

सूत्र ४४—(प्रश्न) भगवन् ! वैयावृत्य से जीव को क्या उपलब्ध होता है ?

(उत्तर) वैयावृत्य से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्र कर्म का बन्धन (उपार्जन) करता है।

**Maxim 44 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by rendering service to others (*vaiyavritiya*)?

(A). By rendering service to others a being acquires bondage of *Tirthankar naamgotra karma* (*karma* that determines destiny, body and status of a Tirthankar).

सूत्र ४५—सव्वगुणसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सव्वगुणसंपन्नयाए णं अपुणरावत्तिं जणयइ। अपुणरावत्तिं पत्ताए य णं जीवे सारीमाणसाणं दुक्खाणं नो भागी भवइ ॥

सूत्र ४५—(प्रश्न) भगवन् ! सर्वगुणसम्पन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) सर्वगुणसम्पन्नता से जीव अपुनरावृत्ति (मोक्ष) को प्राप्त करता है। अपुनरावृत्ति को प्राप्त जीव शारीरिक और मानसिक दुःखों का भागी नहीं होता।

**Maxim 45 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by acquisition of all virtues (*sarvagunasampannata*)?





(A). By acquisition of all virtues a being gains non-rebirth (liberation). After gaining non-rebirth a being (soul) remains untouched by physical and mental miseries.

सूत्र ४६—वीयरागयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वीयरागयाए णं नेहाणुबन्धणाणि, तण्हाणुबन्धणाणि य वोच्छिन्दइ । मणुत्तेसु सदद-फरिस-रस-रूव-गन्धेसु चेव विरज्जइ ॥

सूत्र ४६—(प्रश्न) भगवन् ! वीतरागता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) वीतरागता से जीव स्नेह और तृष्णा के अनुबन्धनों को तोड़ देता है—विच्छिन्न कर देता है। मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गन्ध से भी विरक्त हो जाता है।

**Maxim 46 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by detached state (*vitāragata*)?

(A). By detached state a being shatters the ties of affection and craving and becomes apathetic even to pleasant sound, touch, taste, appearance and smell.

सूत्र ४७—खन्तीए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

खन्तीए णं परीसहे जिणइ ॥

सूत्र ४७—(प्रश्न) भगवन् ! क्षान्ति (क्षमा) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) क्षान्ति (क्षमा-तितिक्षा) से जीव परीषहों को जीतता है।

**Maxim 47 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by forgiveness (*kshanti*)?

(A). By forgiveness, a being wins over afflictions.

सूत्र ४८—मुत्तीए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मुत्तीए णं अकिंचणं जणयइ । अकिंचणे य जीवे अत्थलोलाणं अपत्थणिज्जो भवइ ॥

सूत्र ४८—(प्रश्न) भगवन् ! मुक्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) मुक्ति (निर्लोभता) से जीव अकिंचनता (निष्परिग्रहता) को प्राप्त करता है। अकिंचन जीव अर्थलोलुपी व्यक्तियों के द्वारा अप्रार्थनीय हो जाता है।

**Maxim 48 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by absence of greed (*nirlobhata*)?

(A). By absence of greed a being becomes non-possessive. Due to this non-possessiveness he becomes unsought for by the covetous.

सूत्र ४९—अज्जवयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

अज्जवयाए णं काउज्जुययं, भावुज्जुययं, भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ । अविसंवायण-संपन्नयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ ॥

सूत्र ४९—(प्रश्न) भगवन् ! ऋजुता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?



(उत्तर) ऋजुता (सरलता) से जीव काय की सरलता, भाव (मन) की सरलता, भाषा की सरलता और अविस्वादा (अवंचकता) को प्राप्त होता है। अविस्वादा-सम्पन्न जीव धर्म का आराधक होता है।

**Maxim 49 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by simplicity (*arjava*)?

(A). By simplicity a being gains simplicity of body, simplicity of mind, simplicity of speech and becomes free of deceit. A being without deceit is a sincere follower of religion.

सूत्र ५०—महवयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

महवयाए णं अणुस्सियत्तं जणयइ। अणुस्सियत्ते णं जीवे मिउमहवसंपन्ने अट्टु मयट्ठाणाइं निट्ठवेइ ॥

सूत्र ५०—(प्रश्न) भगवन् ! मृदुता से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) मृदुता से जीव अनुद्धत भाव (निरभिमानता) को प्राप्त करता है। अनुद्धत जीव मृदु-मार्दवभाव से संपन्न होता है तथा आठ मदस्थानों को विनष्ट कर देता है।

**Maxim 50 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) attain by modesty (*mriduta*)?

(A). By modesty a being gains freedom from conceit. A being free of conceit is endowed with sweetness and humility. He destroys eight kinds of conceit.

सूत्र ५१—भावसच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

भावसच्चेणं भावविसोहिं जणयइ। भावविसोहीए वट्टमाणे जीवे अरहन्तपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ। अरहन्तपन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठित्ता परलोग-धम्मस्स आराहए हवइ ॥

सूत्र ५१—(प्रश्न) भगवन् ! भाव-सत्य से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) भाव-सत्य (अन्तरात्मा की सत्यता) से जीव भाव-विशुद्धि को प्राप्त करता है। भाव-शुद्धि में प्रवर्तमान जीव अरिहन्त प्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उद्यत होता है। अरिहन्त प्रज्ञप्त धर्म की आराधना के लिए उद्यत व्यक्ति परलोक धर्म का भी आराधक होता है।

**Maxim 51 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by probity of thought (*bhaava-satya*)?

(A). By probity of thought (truthfulness of conscience) a being gains purity of thoughts. A being with purity of thoughts exerts himself to practice the religion propagated by the Arihant (omniscient). By doing so he ensures that even in his next birth he exerts himself to the practice of the religion propagated by the omniscient.

सूत्र ५२—करणसच्चेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

करणसच्चेणं करणसत्तिं जणयइ। करणसच्चे वट्टमाणे जीवे जहावाईं तहाकारी यावि भवइ ॥



सूत्र ५२—(प्रश्न) भगवन् ! करण-सत्य से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) करण-सत्य (कार्य अथवा क्रिया की सत्यता) से जीव को कार्य शक्ति (प्राप्त कार्य को भली-भाँति संपन्न करने की क्षमता) प्राप्त होती है। करण-सत्य में प्रवर्तमान जीव यथावादी तथाकारी (जैसा कहना, वैसा करना) होता है।

**Maxim 52 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by probity of action (*karan-satya*)?

(A). By probity of action a being acquires strength for action (ability to do the work in hand properly and efficiently). Endowed with this proficiency of action a being acts as he says.

सूत्र ५३—जोगसच्च्रेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

जोगसच्च्रेणं जोगं विसोहेइ ॥

सूत्र ५३—(प्रश्न) भगवन् ! योग-सत्य (योगों की सत्यता) से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) योग-सत्य (मन-वचन-काया के योगों की सत्यता) से जीव योगों को विशुद्ध कर लेता है।

**Maxim 53 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by probity of association (*yoga-satya*)?

(A): By probity of association (through mind, speech and body) a being purifies the media of association (mind, speech and body).

सूत्र ५४—मणगुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मणगुत्तयाए णं जीवे एगगं जणयइ । एकगचित्ते णं जीवे मणगुत्ते संजमाराहए भवइ ॥

सूत्र ५४—(प्रश्न) भगवन् ! मनोगुप्ति से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) मनोगुप्ति से जीव एकाग्रता प्राप्त करता है। एकाग्रचित्त वाला जीव अशुभ विकल्पों से मन की रक्षा करता हुआ संयम का आराधक होता है।

**Maxim 54 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by restraint of mind (*manogupti*)?

(A). By restraint of mind a being gains concentration of mind. A being with concentration of mind protects his mind from ambiguities and practices restraint.

सूत्र ५५—वयगुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वयगुत्तयाए णं निव्वियारं जणयइ । निव्वियारे णं जीवे वइगुत्ते अज्झाप्यजोगज्झाणगुत्ते यावि भवइ ॥

सूत्र ५५—(प्रश्न) भगवन् ! वचनगुप्ति से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) वचनगुप्ति से जीव निर्विकार (अथवा निर्विचार) भाव को प्राप्त करता है। निर्विकार (अथवा निर्विचार) जीव वचन से गुप्त (मौन) रहकर अध्यात्म योग के साधनभूत ध्यान से भी युक्त हो जाता है।



**Maxim 55 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) attain by restraint of speech (*vachan-gupti*)?

(A). By restraint of speech a being attains the state of indifference (absence of thoughts). A being with this indifference restrains speech (observes silence) and gets engrossed in meditation, the means of spiritual pursuit.

सूत्र ५६—कायगुत्तयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कायगुत्तयाए णं संवरं जणयइ। संवरेणं कायगुत्ते पुणो पावासवनिरोहं करेइ ॥

सूत्र ५६—(प्रश्न) भगवन् ! कायगुप्ति से जीव क्या प्राप्त करता है ?

(उत्तर) कायगुप्ति से जीव आस्रवनिरोध रूप संवर को प्राप्त करता है। संवर के द्वारा कायगुप्त साधक फिर से होने वाले (पुणो) पापास्रव का निरोध कर देता है।

**Maxim 56 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by restraint of body (*kaayagupti*)?

(A). By restraint of body a being stops the inflow of *karmas*. Thereby the aspirant with restraint of body blocks further inflow of demerit-*karmas*.

सूत्र ५७—मणसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

मणसमाहारणयाए णं एगगं जणयइ। एगगं जणइत्ता नाणपज्जवे जणयइ। नाणपज्जवे जणइत्ता सम्पत्तं विसोहेइ, मिच्छत्तं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ५७—(प्रश्न) भगवन् ! मन की समाधारणता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) मनःसमाधारणता (मन को आगमोक्त विधि के अनुसार समाधि में अथवा आगमभ्रवों के चिन्तन-मनन में संलग्न रखना) से जीव एकग्रता को प्राप्त करता है। एकाग्रता को प्राप्त करके ज्ञानपर्यवों- ज्ञान के विविध तत्त्वबोध प्रकारों को प्राप्त करता है। ज्ञानपर्यवों को प्राप्त करके सम्यक्त्व को विशुद्ध करता है और मिथ्यात्व की निर्जरा करता है।

**Maxim 57 (Q).** *Bhante !* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by discipline of mind (*manah-samadharanata*) ?

(A). By discipline of mind (to keep the mind busy in meditation as prescribed in Agamas or in contemplation of Agamic concepts) a being attains concentration. Having attained concentration the being grasps various components of knowledge (different interpretations of fundamentals). With this knowledge he sublimates righteousness and sheds unrighteousness.

सूत्र ५८—वयसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

वयसमाहारणयाए णं वयसाहारणदंसणपज्जवे विसोहेइ। वयसाहारणदंसणपज्जवे विसोहेत्ता सुलहबोहियत्तं निव्वत्तेइ, दुल्लहबोहियत्तं निज्जरेइ ॥

सूत्र ५८—(प्रश्न) भगवन् ! वचन (वाक्) समाधारणता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) वचन समाधारणता (वाणी को सम्यक् प्रकार से सतत स्वाधाय में लगाये रखना) से जीव वाणी के विषयभूत साधारण दर्शन (सम्यक्त्व) पर्यवों को विशुद्ध करता है। वाणी के विषयभूत



(कथन योग्य) साधारण दर्शन (सम्यक्त्व) पर्यवों को विशुद्ध करके वह सुलभबोधिता को प्राप्त करता है और दुर्लभबोधिता की निर्जरा करता है।

**Maxim 58 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by discipline of speech (*vachan-samadharanata*)?

(A). By discipline of speech (to employ speech regularly in study of scriptures) a being perfects components of simple perception/faith that are subjects of speech. After perfecting the components of simple perception/faith (righteousness), which can be conveyed by speech, he attains ease of understanding and removes difficulty of understanding.

सूत्र ५९—कायसमाहारणयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कायसमाहारणयाए णं चरित्तपज्जवे विसोहेइ। चरित्तपज्जवे विसोहेत्ता अहक्खायचरित्तं विसोहेइ। अहक्खायचरित्तं विसोहेत्ता चत्तारि केवलिकम्मंसे खवेइ। तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

सूत्र ५९—(प्रश्न) भगवन् ! काय समाधारणता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) काय समाधारणता (संयम की शुभ प्रवृत्तियों में काया को भली-भाँति संलग्न रखना) से जीव चारित्र के पर्यवों (विविध प्रकारों) को विशुद्ध करता है। चारित्र के पर्यवों को विशुद्ध करके यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध करता है। यथाख्यात चारित्र को विशुद्ध करके केवली कर्माशों-वेदनीय आदि कर्मों का क्षय करता है। तत्पश्चात् सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है, सभी दुःखों का अन्त करता है।

**Maxim 59 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by discipline of body (*kaaya-samadharanata*)?

(A). By discipline of body (to properly engage body in noble activities of ascetic-discipline) a being purifies the components of conduct. After purifying the components of conduct he purifies *yathaakhyata chaaritra* (conduct conforming to perfect purity). Doing that he destroys the remnants of *karmas* clinging even to an omniscient (*karmas* including *Vedaniya*). After that he becomes perfect (*Siddha*), enlightened (*Buddha*), liberated (*mukta*), gains nirvana and ends all miseries.

सूत्र ६०—नाणसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

नाणसंपन्नयाए णं जीवे सव्वभावाहिगमं जणयइ। नाणसंपन्ने णं जीवे चाउरन्ते संसारकन्तारे न विणस्सइ ॥

जहा सूई ससुत्ता, पडिया वि न विणस्सइ।

तहा जीवे ससुत्ते, संसारे न विणस्सइ ॥

नाण-विणय-तव-चरित्तजोगे संपाउणइ, ससमय-परसमयसंधायणिज्जे भवइ ॥

सूत्र ६०—(प्रश्न) भगवन् ! ज्ञान-संपन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?



(उत्तर) ज्ञान-संपन्नता से जीव सब भावों को जानता है। ज्ञान-सम्पन्न जीव चतुर्गति रूप संसार-वन में विनष्ट नहीं होता-रुलता नहीं।

जिस प्रकार धागा सहित सुई गिर जाने पर भी विनष्ट-गुम नहीं होती, उसी प्रकार श्रुत ज्ञान-संपन्न जीव भी संसार में विनष्ट नहीं होता-भ्रमण नहीं करता।

ज्ञान-विनय-तप-चारित्र के योगों को प्राप्त करके जीव स्वसमय-परसमय (स्वमत-परमत) की विवेचना में प्रामाणिक (संघातनीय) माना जाता है।

**Maxim 60 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by possessing right-knowledge (*jnana-sampannata*)?

(A). By possessing right-knowledge a being knows all concepts (*bhaava*). A being endowed with right-knowledge does not get lost and wasted in the wilderness of cycles of rebirths in four realms (*samsaar*).

As a needle with thread (*sutra*) does not get lost when dropped, in the same way a being endowed with scriptural knowledge (*sutra*) does not get lost in the cycles of rebirth.

Gaining association with knowledge, modesty, austerity and conduct a being is considered authentic in analysis of his own doctrine and those of others.

सूत्र ६१—दंसणसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

दंसणसंपन्नयाए णं भवमिच्छत्त-छेयणं करेइ, परं न विज्झायइ। अणुत्तरेण नाणदंसणेणं अप्पाणं संजोएमाणे, सम्मं भावेमाणे विहरइ ॥

सूत्र ६१—(प्रश्न) भगवन् ! दर्शन-संपन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) दर्शन (सम्यग्दर्शन) सम्पन्नता से जीव संसार के कारण मिथ्यात्व का छेदन करता है। उसके बाद (सम्यक्त्व का प्रकाश) बुद्धता नहीं। फिर वह अनुत्तर (श्रेष्ठ) ज्ञान-दर्शन से आत्मा को संयोजित करता हुआ और सम्यक् रूप से भावित करता हुआ विचरण करता है।

**Maxim 61 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by possessing right perception/faith (*darshan-sampannata*)?

(A). By possessing right perception/faith a being pierces unrighteousness. After that light of righteousness is never extinguished. Then he moves about rightly infusing and enkindling the soul with exalted knowledge and perception/faith.

सूत्र ६२—चरित्तसंपन्नयाए णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

चरित्तसंपन्नयाए णं सेलेसीभावं जणयइ। सेलेसिं पडिवन्ने य अणगारे चत्तारि केवलिकम्मसे खवेइ। तओ पच्छा सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सब्बदुक्खाणमंतं करेइ ॥

सूत्र ६२—(प्रश्न) भगवन् ! चारित्र-सम्पन्नता से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) चारित्र-संपन्नता से जीव शैलेशी भाव (मेरु के समान सर्वथा निष्कम्प दशा) को प्राप्त करता है। शैलेषी दशा को प्राप्त अनगार केवली में रहने वाले चार अघाती कर्माशों का क्षय कर देता है। तदनन्तर वह सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सर्वदुःखों का अन्त कर देता है।



**Maxim 62 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by possessing right-conduct (*chaaritra-sampannata*)?

(A). By possessing right-conduct a being attains the rock-like state of stability (*shaileshi bhaava*). Reaching this state the ascetic destroys the remnants of *karmas* clinging even to an omniscient. After that he becomes perfect (*Siddha*), enlightened (*Buddha*), liberated (*mukta*), gains nirvana and ends all miseries.

सूत्र ६३—सोइन्द्रियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

सोइन्द्रियनिग्गहेणं मणुत्तामणुत्तेसु सहेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६३—(प्रश्न) भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) श्रोत्रेन्द्रिय के निग्रह से जीव मनोज्ञ (कर्णप्रिय) अमनोज्ञ (कर्ण कटु) शब्दों पर राग-द्वेष का निग्रह कर लेता है। फिर वह तन्निमित्तक-शब्दों से होने वाले कर्मों का बन्ध नहीं करता अपितु पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

**Maxim 63 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by subduing the sense-organ of hearing (*Shrotra-indriya-nigraha*)?

(A). By subduing the sense-organ of hearing a being subdues the attachment and aversion for pleasant and unpleasant sounds. Then he stops acquiring bondage of *karmas* caused by that and sheds the *karmas* accumulated in the past.

सूत्र ६४—चक्खिन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

चक्खिन्दिय निग्गहेणं मणुत्तामणुत्तेसु रूवेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६४—(प्रश्न) भगवन् ! चक्षु इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) चक्षु इन्द्रिय के निग्रह (निरोध) से जीव के मनोज्ञ और अमनोज्ञ (सुन्दर और असुन्दर) रूपों के प्रति होने वाले राग-द्वेष का निग्रह हो जाता है और वह तन्निमित्तक कर्म-रूपों से होने वाले कर्मों का बन्ध नहीं करता अपितु पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

**Maxim 64 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by subduing the sense-organ of sight (*chakshu-indriya-nigraha*)?

(A). By subduing the sense-organ of sight a being subdues the attachment and aversion for pleasant and unpleasant appearances. Then he stops acquiring bondage of *karmas* caused by that and sheds the *karmas* accumulated in the past.

सूत्र ६५—घाणिन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

घाणिन्दियनिग्गहेणं मणुत्तामणुत्तेसु गन्धेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६५—(प्रश्न) भगवन् ! घ्राण इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ?



(उत्तर) घ्राण इन्द्रिय के निग्रह से मनोज्ञ और अमनोज्ञ गन्धों (सुगन्ध और दुर्गन्ध) पर होने वाले राग-द्वेष का निग्रह हो जाता है और फिर वह तन्निमित्तक (गंध से होने वाले) कर्मों को नहीं बाँधता, पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

**Maxim 65 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by subduing the sense-organ of smell (*ghraan-indriya-nigraha*)?

(A). By subduing the sense-organ of smell a being subdues the attachment and aversion for pleasant and unpleasant smells. Then he stops acquiring bondage of *karmas* caused by that and sheds the *karmas* accumulated in the past.

सूत्र ६६—जिब्भिन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

जिब्भिन्दियनिग्गहेणं मणुत्तामणुत्तेसु रसेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६६—(प्रश्न) भगवन् ! जिह्वा इन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) जिह्वा इन्द्रिय के निग्रह से मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसों में होने वाले राग-द्वेष का निग्रह हो जाता है और फिर वह तन्निमित्तक (रसों के प्रति होने वाले राग-द्वेष के कारण) कर्मों का बन्ध नहीं करता तथा पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

**Maxim 66 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by subduing the sense-organ of taste (*jihva-indriya-nigraha*)?

(A). By subduing the sense-organ of taste a being subdues the attachment and aversion for pleasant and unpleasant tastes. Then he stops acquiring bondage of *karmas* caused by that and sheds the *karmas* accumulated in the past.

सूत्र ६७—फासिन्दियनिग्गहेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

फासिन्दियनिग्गहेणं मणुत्तामणुत्तेसु फासेसु रागदोसनिग्गहं जणयइ, तप्पच्चइयं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६७—(प्रश्न) भगवन् ! स्पर्शेन्द्रिय के निग्रह से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) स्पर्शेन्द्रिय के निग्रह से मनोज्ञ और अमनोज्ञ (सुखद और दुःखद) स्पर्शों पर होने वाले राग-द्वेष का निग्रह होता है और फिर वह तन्निमित्तक कर्मों का बन्धन नहीं करता; पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

**Maxim 67 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by subduing the sense-organ of touch (*sparsh-indriya-nigraha*)?

(A). By subduing the sense-organ of touch a being subdues the attachment and aversion for pleasant and unpleasant touch. Then he stops acquiring bondage of *karmas* caused by that and sheds the *karmas* accumulated in the past.

सूत्र ६८—कोहविजएणं णं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

कोहविजएणं खन्तिं जणयइ, कोहवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

सूत्र ६८—(प्रश्न) भगवन् ! क्रोधविजय से जीव को क्या प्राप्त होता है ?





(उत्तर) क्रोध-विजय से जीव को क्षान्ति (क्षमाभाव) की प्राप्ति होती है। क्रोध-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्म की निर्जरा हो जाती है।

**Maxim 68 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by conquering anger (*krodh-vijaya*)?

(A). By conquering anger a being attains forgiveness. He does not acquire bondage of *karmas* responsible for experiencing pain due to anger (*krodh-vedaniya karma*) and sheds such *karmas* accumulated in the past.

**सूत्र ६९—माणविजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?**

माणविजएणं महवं जणयइ, माणवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

**सूत्र ६९—(प्रश्न) भगवन् ! मान-विजय से जीव को क्या प्राप्त होता है ?**

(उत्तर) मान-विजय से जीव मृदुता (कोमलता-नम्रता) को प्राप्त करता है। मान-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा करता है।

**Maxim 69 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by conquering conceit (*maan-vijaya*)?

(A). By conquering conceit a being attains sweetness (modesty). He does not acquire bondage of *karmas* responsible for experiencing pain due to conceit (*maan-vedaniya karma*) and sheds such *karmas* accumulated in the past.

**सूत्र ७०—मायाविजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?**

मायाविजएणं उज्जुभावं जणयइ, मायावेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

**सूत्र ७०—(प्रश्न) भगवन् ! माया-विजय से जीव को क्या प्राप्त होता है ?**

(उत्तर) माया-विजय से जीव को ऋजुभाव (सरलता) की प्राप्ति होती है। माया-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं होता और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

**Maxim 70 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by conquering deceit (*maya-vijaya*)?

(A). By conquering deceit a being attains simplicity. He does not acquire bondage of *karmas* responsible for experiencing pain due to deceit (*maaya-vedaniya karma*) and sheds such *karmas* accumulated in the past.

**सूत्र ७१—लोभविजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?**

लोभविजएणं संतोसीभावं जणयइ, लोभवेयणिज्जं कम्मं न बन्धइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ ॥

**सूत्र ७१—(प्रश्न) भगवन् ! लोभ-विजय से जीव को क्या प्राप्त होता है ?**

(उत्तर) लोभ-विजय से जीव को संतोष-भाव प्राप्त होता है। लोभ-वेदनीय कर्म नहीं बँधता और पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा होती है।

**Maxim 71 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by conquering greed (*lobh-vijaya*)?



(A). By conquering greed a being attains contentment. He does not acquire bondage of *karmas* responsible for experiencing pain due to greed (*lobha-vedaniya karma*) and sheds such *karmas* accumulated in the past.

सूत्र ७२—पेज्ज-दोस-मिच्छादंसण-विजएणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?

पेज्ज-दोस-मिच्छादंसणविजएणं नाण-दंसण-चरित्ताराहणयाए अब्भुट्ठेइ। अट्ठविहस्स कम्मस्स कम्मगण्ठिविमोयणयाए तप्पढमयाए जहाणुपुव्विं अट्ठवीसइविहं मोहणिज्जं कम्मं उग्घाएइ, पंचविहं नाणावरणिज्जं, नवविहं दंसणावरणिज्जं, पंचविहं अन्तरायं-एए तित्ति वि कम्मसे जुगवं खवेइ। तओ पच्छा अणुत्तरं, अणंतं, कसिणं, पडिपुण्णं, निरावरणं, वित्तिमिरं, विसुद्धं, लोगालोगप्पभावगं, केवल-वरनाणदंसणं समुप्पाडेइ।

जाव सजोगी भवइ ताव य इरियावहियं कम्मं बन्धइ सुहफरिसं, दुसमयठिइयं। तं पढमसमए बद्धं, बिइयसमए वेइयं, तइयसमए निज्जिण्णं।

तं बद्धं, पुट्ठं, उदीरियं, वेइयं, निज्जिण्णं सेयाले य अकम्मं चावि भवइ ॥

सूत्र ७२—(प्रश्न) भगवन् ! प्रेय (राग), द्वेष और मिथ्यादर्शन पर विजय पाने से जीव को क्या प्राप्त होता है ?

(उत्तर) प्रेय, द्वेष और मिथ्यादर्शन पर विजय प्राप्त करने से जीव ज्ञान-दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए उद्यत होता है। आठ प्रकार के कर्मों की कर्मग्रन्थी को खोलने (विमोचन करने) के लिए उनमें से सर्वप्रथम अनुक्रम से अट्ठाईस प्रकार के मोहनीय कर्म का घात (क्षय) करता है एवं पाँच प्रकार के ज्ञानावरणीय कर्म का, नौ प्रकार के दर्शनावरणीय कर्म का, पाँच प्रकार के अन्तराय कर्म का—इन तीनों कर्मों के अंश (कर्मांशों) का एक साथ (युगपत्) क्षय कर देता है। तदनन्तर अनुत्तर (प्रधान-सर्वश्रेष्ठ), अनन्त, सर्ववस्तु को विषय करने वाला, संपूर्ण (कसिणं), प्रतिपूर्ण, निरावरण (आवरणरहित), अन्धकार (अज्ञान अन्धकार) से रहित (वित्तिमिरं), विशुद्ध, लोकालोक प्रकाशक केवल (सहायरहित) एवं श्रेष्ठ (वर) ज्ञानदर्शन को प्राप्त कर लेता है।

जब तक वह सयोगी (मन-वचन-काय योग सहित) रहता है तब तक ईर्ष्यापथिक कर्म-क्रिया का बन्ध करता है (परन्तु उस कर्मबन्ध का) स्पर्श सुख (सातावेदनीय रूप शुभ कर्म) रूप होता है, उसकी स्थिति दो समय की होती है। वह प्रथम समय में बँधता है, द्वितीय समय में वेदन किया जाता है—उसका उदय होता है और तृतीय समय में उसकी निर्जरा हो जाती है।

वह कर्म (क्रमशः) बद्ध होता है, स्पष्ट होता है, उदय में आता है, वेदन किया (भोगा) जाता है और निर्जरित हो जाता है फिर आगामी काल में (अन्त में) अकर्म हो जाता है।

**Maxim 72 (Q).** *Bhante!* What does a *jiva* (soul/living being) obtain by conquering love-aversion-wrong belief (*preya-dvesh-mithyadarshan-vijaya*)?

(A). By conquering love (attachment), aversion and wrong belief, a being exerts to gain right knowledge-faith-conduct. In order to open the knots of eight types of *karmas* he proceeds to destroy them in proper sequence. First of all he destroys twenty eight types of deluding *karma* (*mohaniya karma*). He then proceeds to destroy in one go all



sections of the three following *karmas*—five types of knowledge obscuring *karma* (*jnanavaraniya karma*), nine types of perception/faith obstructing *karma* (*darshanavaraniya karma*) and five types of power hindering *karma* (*antaraya karma*). After that he attains the supreme knowledge and perception/faith which is infinite, all knowing, complete, exhaustive, unveiled, absolutely devoid of darkness (of ignorance), pristine, universally revealing (revealer of Lok and Alok) and autonomous (keval).

While he is still associated (*sayogi*) with activity (of mind, speech and body) he only binds the *karmas* of the activity of careful movement (*iryapathik karma*) but that is in the form of fleeting (*sparsh*) and pleasure causing noble *karma* that lasts just for two Samayas (the ultimate fractional unit of time). It is bound in the first Samaya, comes to fruition in the second Samaya and is shed in the third Samaya.

This *karma* follows this sequence—it is bound, touched, comes to fruition, experienced and shed and then in the next Samaya it becomes non-*karma*.

सूत्र ७३—अहाउयं पालइत्ता अन्तो-मुहुत्तद्धावसेसाउए जोगनिरोहं करेमाणे सुहुमकिरियं अप्पडिवाइ सुक्कज्झाणं झायमाणे, तप्पढमयाए मणजोगं निरुम्भइ, मणजोगं निरुम्भइत्ता वइजोगं निरुम्भइ, वइजोगं निरुम्भइत्ता कायजोगं निरुम्भइ, कायजोगं निरुम्भइत्ता आणापाणुनिरोहं करेइ, आणापाणुनिरोहं करेइत्ता ईसि पंचरहस्सक्खरुच्चारद्धाए य णं अणगारे समुच्छिन्नकिरियं अनियट्टिसुक्कज्झाणं झियायमाणे वेयणिज्जं, आउयं, नामं, गोत्तं च एए चत्तारि वि कम्मंसे जुगवं खवेइ ॥

सूत्र ७३—केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद शेष आयु को भोगता हुआ (केवली अनगार) जब अन्तर्मुहूर्त आयु शेष रहती है तब वह योगों का निरोध करता है। तब सूक्ष्म-क्रिय-अप्रतिपाती नाम के शुक्लध्यान के तृतीय भेद को ध्याता हुआ प्रथम मनोयोग का निरोध करता है। मनोयोग का निरोध करके वचन योग का निरोध करता है। वचनयोग का निरोध करके काययोग का निरोध करता है। काययोग का निरोध करके आनापान (आण-प्राण-श्वासोच्छ्वास) का निरोध करता है। आनापान का निरोध करके पंच ह्रस्व अक्षरों (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के मध्यम गति से उच्चारण काल तक वह अनगार (केवली) शुक्लध्यान के चतुर्थ भेद समुच्छिन्न क्रिय-अनिवृत्ति को ध्याता हुआ वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र-इन चार कर्मांशों का एक ही साथ क्षय कर देता है।

**Maxim 73.** After attaining omniscience and spending the remaining life-span, when the omniscient reaches the point when the end of life-span is just less than 48 minutes (*Antarmuhurt*) he starts terminating associations (*yoga*). He gets engrossed in the third level of pure meditation called *sukshmakriya apratipati dhyana* and first of all terminates the association with mind (*manoyoga*). Concluding that, he terminates the association with speech (*vachan-yoga*). Having done that, he terminates the association with body (*kaayayoga*). After that he stops respiration (exhaling and inhaling). Once that is done the Omniscient ascetic indulges in the fourth level of pure meditation—*Samuchchhinna kriya anivritti dhyana*—only for the duration taken in uttering at medium speed the five



short vowels (*a, i, u, ri* and *lri*) and at once destroys the remaining fractions of all the four *karmas*—*vedaniya, aayu, naam* and *gotra*, still clinging to his soul.

सूत्र ७४—तओ ओरालियकम्माइं च सव्वाहिं विप्पजहणाहिं विप्पजहिता उज्जुसेट्ठिपत्ते, अफुसमाणगई, उडुं एगसमएणं अविग्गहेणं तत्थ गन्ता, सागारोवउत्ते सिज्झइ, बुज्झइ, मुच्चइ, परिनिव्वाएइ, सव्वदुक्खाणमन्तं करेइ ॥

एस खलु सम्पत्तपरक्कमस्स अज्झयणस्स अट्टे समणेणं भगवया महावीरेणं आघविए, पन्नविए, परूविए, दंसिए, उवदंसिए ॥

—त्ति बेमि।

सूत्र ७४—तब (तओ) वह औदारिक (तैजस् शरीर भी) और कर्मण को सर्व प्रकार से—सदा के लिए सर्वथा छोड़कर ऋजुश्रेणी को प्राप्त हुआ अस्पृशद् रूप, ऊर्ध्व, अविग्रह (बिना मोड़ वाली) गति (गमन क्रिया-वेग) से एक समय में लोकाग्र में जाकर साकारोपयोग (ज्ञानोपयोग अथवा अपने शरीर की अवगाहना के २/३-दो-तिहाई परिमाण आकाश-प्रदेशों में) ज्ञानोपयोग से सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, परिनिर्वाण को प्राप्त होता है और सभी दुःखों का अन्त करता है।

यह निश्चय रूप से सम्यक्त्व पराक्रम अध्ययन का अर्थ श्रमण भगवान् महावीर ने आख्यायित-प्रतिपादित किया है, प्रज्ञापित किया है, प्ररूपित किया है, दिखलाया है, दृष्टान्त के द्वारा वर्णित किया है, उपदेश दिया है।

—ऐसा मैं कहता हूँ।

**Maxim 74.** Then having abandoned the gross and *kaarman* bodies in all respects, that soul, untouched by anything, stretches itself into a straight line and takes its upward course without any turn and with great speed reaches the edge of the universe and taking its pristine form (two-third of the space sections occupied by its physical body) becomes perfect (*Siddha*), enlightened (*Buddha*), liberated (*mukta*), gains nirvana and ends all miseries.

This, indeed, is the meaning of the chapter titled Fortitude in Righteousness, which Shraman Bhagavan Mahavir has delivered, declared, proved, demonstrated and demonstrated well.

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ७—“करणगुणश्रेणि” एक आध्यात्मिक विकास का दिग्दर्शक शब्द है। अपूर्वकरण से होने वाली गुणहेतुक कर्मनिर्जरा की श्रेणि को “करण गुण श्रेणि” कहते हैं। करण का अर्थ आत्मा का विशुद्ध परिणाम है। अध्यात्म विकास की आठवीं भूमिका (गुणस्थान) का नाम अपूर्वकरण गुणस्थान है। यहाँ परिणामों की धारा इतनी विशुद्ध होती है, जो पहले कभी नहीं होने के कारण अपूर्व कहलाती है। आगामी क्षणों में उदित होने वाले मोहनीय कर्म के अनन्त प्रदेशों दलिकों को उदयकालीन प्राथमिक क्षण में लाकर क्षय कर देना, भाव विशुद्धि की एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है। प्रथम समय से दूसरे क्षण में असंख्यात गुण अधिक कर्मपुद्गलों का क्षय होता है, दूसरे से तीसरे में असंख्यात गुण अधिक और तीसरे से चौथे में असंख्यात गुण अधिक। इस प्रकार कर्मनिर्जरा की यह तीव्र गति प्रत्येक समय से अगले समय में असंख्यात गुण अधिक होती जाती है और यह कर्मनिर्जरा की धारा असंख्यात समयात्मक एक मुहूर्त तक चलती है।

इसे क्षपक श्रेणी भी कहते हैं। क्षपक श्रेणी आठवें गुणस्थान से प्रारम्भ होती है।

मोहनाश की दो प्रक्रियायें हैं जिसमें मोह का क्रम से उपशम होते-होते अन्त में वह सर्वथा उपशान्त हो जाता है, अन्तर्मुहूर्त के लिये उसका उदय में आना बंद हो जाता है, उसे उपशम श्रेणि कहते हैं और जिसमें मोह क्षीण होते-होते अन्त में सर्वथा क्षीण हो जाता है, मोह का एक दलिक भी आत्मा पर शेष नहीं रहता, वह क्षपक श्रेणि है। क्षपक श्रेणि से ही कैवल्य प्राप्त होता है।

संक्षेप में आठवें गुणस्थान से जो क्षपक श्रेणि प्राप्त होती है, उसे ही लक्ष्य करके करण गुण श्रेणि कहा है।

सूत्र १५—एक, दो या तीन श्लोक से होने वाली गुणकीर्तना स्तुति होती है और तीन से अधिक श्लोकों वाली स्तुति को स्तव कहते हैं। वैसे दोनों का भावार्थ एक ही है—भक्तिपूर्वक-गुणकीर्तन।

सूत्र ७१—कषायभाव में ही कर्म का स्थितिबन्ध होता है। केवल मन, वचन, काय के कषायरहित व्यापार रूप योग से तो दीवार पर लगे सूखे गीले की तरह ज्यों ही कर्म लगता है, लगते ही झड़ जाता है। क्योंकि उसमें राग-द्वेषजन्य स्निग्धता नहीं है। केवलज्ञानी को भी जब तक वे सयोगी रहते हैं, चलते-फिरते, उठते-बैठते हर क्षण योगनिमित्तक दो समय की स्थिति का सुखस्पर्श रूप कर्म बँधता रहता है। अयोगी होने पर वह भी नहीं।

सूत्र ७३—अ, इ, उ, ऋ, लृ—ये पाँच ह्रस्व अक्षर हैं। इतना काल १४वें अयोगी गुणस्थान की भूमिका का होता है। तदनन्तर आत्मा देहमुक्त होकर सिद्ध हो जाता है।

शुक्लध्यान का अर्थ है—समुच्छ्रित क्रिया वाला एवं पूर्ण कर्म क्षय करने से पहले निवृत्त नहीं होने वाला पूर्ण निर्मल शुक्लध्यान। यह शैलेशी—अर्थात् शैलेश मेरु पर्वत के समान सर्वथा अकम्प, अचल आत्म-स्थिति है। इसे समुच्छ्रित क्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यान कहते हैं।

सूत्र ७४—गति दो प्रकार की होती है—(१) ऋजु गति, (२) वक्र गति।

मुक्त आत्मा का ऊर्ध्वगमन ऋजु श्रेणी अर्थात् समश्रेणी से होता है। यह एक समय में सम्पन्न होती है।

गति के अनेक भेद हैं—स्पृशद् गति, अस्पृशद् गति आदि। जीव जब परमाणु पुद्गलों व स्कन्धों को स्पर्श करता हुआ गति करता है, उस गति को स्पृशद् गति कहते हैं।

मुक्त जीव अस्पृशद् गति के ऊपर जाते हैं।

अस्पृशद् गति के अनेक अर्थ हैं—

वृहद्वृत्ति के अनुसार अर्थ है—“जितने आकाश-प्रदेशों को जीव यहाँ अवगाहित किये रहता है, उतने ही प्रदेशों को स्पर्श करता हुआ गति करता है, उसके अतिरिक्त एक भी आकाश-प्रदेश को नहीं छूता है। अस्पृशद् गति का यह अर्थ नहीं कि मुक्त आत्मा आकाश-प्रदेशों को स्पर्श ही नहीं करता।”



आचार्य अभयदेव के (औपपातिक वृत्ति) अनुसार अस्पृशद् गति का अर्थ है—“अन्तरालवर्ती आकाश-प्रदेशों का स्पर्श किये बिना यहाँ से ऊर्ध्व मोक्ष स्थान तक पहुँचना।” उनका कहना है कि मुक्त जीव आकाश-प्रदेशों का स्पर्श किये बिना ही ऊपर चला जाता है। यदि वह अन्तरालवर्ती आकाश-प्रदेशों को स्पर्श करता जाये तो एक समय जैसे अल्पकाल में मोक्ष तक कैसे पहुँच सकता है? नहीं पहुँच सकता।

आवश्यक चूर्ण के अनुसार अस्पृशद् गति का अर्थ है—मुक्त जीव एक समय में ही मोक्ष में पहुँच जाता है। वह अपने ऊर्ध्वगमनकाल में दूसरे समय को स्पर्श नहीं करता। मुक्तात्मा की यह समश्रेणि रूप सहज गति है। इसमें मोड़ नहीं लेना होता। अतः दूसरे समय की अपेक्षा नहीं है।

(उत्तराध्ययनसूत्र टिप्पण; साध्वी चन्दना जी)

## IMPORTANT NOTES

**Maxim 7**—*Karan-guna-shreni* (upward sequence of spiritual levels) is a term depicting spiritual development. The post *apurvakaran* (doing hitherto not done; a process of meditation at eighth *Gunasthan*) sequence of shedding of *karmas*, which causes enhancement of virtues, is called *Karan-guna-shreni*. *Karan* means pure intent and activity of soul. The eighth level of spiritual development (*Gunasthan*) is called *Nivritti Badar Samparaya Gunasthan* or *Apurvakaran Gunasthan*. At this level the intent and activity of soul are pure as had never been before; as such it is called *apurvakaran*. Drawing aggregates of infinite ultimate particles of deluding *karma*, destined to come to fruition soon, into the first *Samaya* and shedding them is a spiritual process. In the second *Samaya* innumerable times more *karma* particles than those of the first moment are destroyed. This process continues in progression multiplying every passing *Samaya*. The fast pace of shedding *karmas* goes on for one *Muhurt* (48 minutes) comprising of infinite number of *Samayas*.

This is also called *Kshapak Shreni* (sequence of destruction of *karmas*). The process begins at the eighth *gunasthan*.

There are two processes for subduing of deluding *karma*. The process of pacification where gradual pacification of deluding *karmas* leads to complete pacification and there is no fruition for one *Antarmuhurt*. It is called *upshama shreni* (sequence of pacification of *karmas*). The second process is that of destruction where gradual destruction of deluding *karmas* leads to complete destruction, and there is no particle of *karma* adhering to the soul. It is called *kshapaka shreni* (sequence of destruction of *karmas*). It is this sequence of destruction of *karmas* that leads to omniscience (*kaivalya*).

The mention of *Guna Shreni* here points at this *kshapaka shreni* attained at the eighth *Gunasthan*.

**Maxim 15**—Basically the terms *stuti* and *stava* have the same meaning—praise of virtues with devotion. Traditionally a *stuti* has a maximum of three couplets. Any verse that has more than three couplets is a *stava*.

**Maxim 17**—The *sthati bandha* (duration bondage) occurs only with feelings of passions. In association with passionless activities of mind, speech and body the dust of *karma* particles is removed as soon as it touches, just like dry sand ball thrown on a wall. This is because it does not have adhesive quality imparted by attachment and aversion. Even an omniscient acquires bondage of *karmas* every moment of his movement as long as he is in the state of association (*sayogi*). But



this bondage is like a pleasant touch and just for the duration of two Samaya. However, when he is free of any association (*ayogi*) even that bondage does not occur.

**Maxim 73**—The five short vowels are—*a, i, u, ri* and *lri*. The time taken in uttering these with medium speed is the period for which the soul stays at the fourteenth *Gunasthan* (*ayogi kevali gunasthaana*). After that the soul gets liberated from the body to become perfected (*Siddha*).

*Shukla dhyaan* here means the absolutely pure meditation of *samucchinna kriya*, which is not concluded till all *karmas* are not shed. This is the Meru mountain like state of perfect stability. It is called *samuchchhinna kriya-anivritti shukla dhyaan*.

**Maxim 74**—Motion is of two kinds—1. straight motion and 2. oblique motion.

The upward movement of *karma*-free soul takes place in straight line and it concludes in one Samaya.

There are many kinds of motion including *sprishadgati* (touching things during movement) and *asprishadgati* (not touching things during movement). When during its movement the soul touches matter particles or aggregates it is called *sprishadgati*.

The liberated soul goes upward with *asprishadgati* (not touching things during movement).

There are varying interpretations of *asprishadgati* (not touching things during movement)—

The interpretation according to Vrihad Vritti is—“While moving the soul touches only that number of space-points which it occupied originally; it does not touch even a single extra space-point. *Asprishadgati* does not mean that a liberated soul does not touch space-points at all.”

The interpretation according to Acharya Abhayadeva (*Aupapatik Vritti*)—“Starting from here, to reach the destination (edge of the universe) without touching the intervening space-points. According to him a liberated soul goes up without touching space-points at all. If it has to touch the intervening space-points, how could it reach the edge of the universe in the short span of one Samaya? Not at all.”

The interpretation according to Aavashyak *Churni*—A liberated soul reaches the edge of the universe in one Samaya. It does not exceed even one Samaya. This is the natural linear movement of a liberated soul without a scope of any turn. And as such there is no need of an extra Samaya.

(Comments on Uttaradhyayan Sutra by Sadhvi Chandana ji)





## तीसवाँ अध्ययन : तपो-मार्ग-गति

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम तपो-मार्ग-गति है। इस अध्ययन का वर्ण्य-विषय है—तप के मार्ग की ओर गति-पुरुषार्थ करना।

तप कर्मनिर्जरा, आत्म-विशुद्धि और मोक्ष-प्राप्ति का अमोघ साधन है। यह एक ऐसा विशिष्ट रसायन है जो शरीर और आत्मा के एकात्मभाव-देहासक्ति को समाप्त कर आत्मा को अपने निज स्वभाव में स्थापित करता है, उसके स्वभाव को प्रगट करता है। कर्ममल को तपाकर आत्मा को विशुद्ध करता है। लेकिन यह आवश्यक है कि तप, मात्र तप होना चाहिए, इसका ध्येय कर्मनिर्जरा और आत्म-विशुद्धि होना आवश्यक है। यही सम्यक् तप है।

इसके विपरीत यदि तप के साथ सांसारिक विषय-भोगों की इच्छा, नामना, कामना, प्रसिद्धि, यश आदि का संयोग हो गया तो वह मिथ्या-तप अथवा बाल-तप हो जाता है, जो देह दण्ड से अधिक कुछ नहीं होता। ऐसा तप, 'तप' न रहकर 'ताप' बन जाता है, जो आत्मा के संताप का ही कारण बनता है। ऐसा तप कर्मों को नहीं तपाता अपितु आत्मा को ही तपाता है, चतुर्गतिक संसार में आत्मा के भ्रमण का हेतु बनता है। अतः आत्म-हित की दृष्टि से तप सम्यक् ही होना चाहिए।

पिछले २८वें अध्ययन में मोक्ष-प्राप्ति के चार कारण बताये थे, उनमें तप अन्तिम और अमोघ साधन है। किन्तु वहाँ तपों का नामोल्लेख मात्र किया गया था; जबकि इस अध्ययन में विस्तृत विवेचन किया गया है।

तप के प्रमुख दो भेद हैं—(१) बाह्य, और (२) आभ्यन्तर। पुनः प्रत्येक के छह-छह भेद किये गये हैं।

बाह्य तप के भेद हैं—(१) अनशन, (२) अवमौदर्य (ऊनोदरी), (३) रस-परित्याग, (४) भिक्षाचर्या (वृत्ति परिसंख्यान), (५) कायक्लेश, और (६) प्रतिसंलीनता।

अनशन आदि के अवान्तर भेद भी अनेक हैं।

बाह्य तप का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इनके आचरण से देहासक्ति, स्वाद-लोलुपता, खान-पान की लालसा, सुखसीलियापन आदि छूट जाते हैं। लेकिन बाह्य तपों के लिए आवश्यक है कि वे आभ्यन्तर तपों के सहायक बनें।

आभ्यन्तर तप हैं—(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, और (६) व्युत्सर्ग।

प्रायश्चित्त से दोषों का परिमार्जन, विनय से नम्रता, वैयावृत्य से सेवाभाव, स्वाध्याय से ज्ञानोपार्जन, ध्यान से एकाग्रचित्तता और व्युत्सर्ग से ममत्व त्याग-इन तपों के ये विशिष्ट लाभ हैं और सबसे बड़ा लाभ है—मुक्ति-प्राप्ति।

यह सम्पूर्ण विषय प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार से विवेचित किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में ३७ गाथाएँ हैं।





## TRIMSH ADHYAYAN : TAPOMARGAGATI

### Foreview

The title of this chapter is Tapomargagati or 'Endeavour on the Path of Austerity'. The theme discussed is to move or to endeavour on the path of austerity.

Austerity is the infallible means of shedding *karmas*, purification of soul and attaining liberation. It is such a special chemical that ends the feeling of oneness of soul and body and establishes soul in its pristine state revealing its intrinsic nature. It purifies the soul by heating and evaporating the filth of *karmas*. But it is necessary that austerity is in its right direction. It is imperative that it is aimed at shedding of *karmas* to gain purity of soul. Only that is right austerity.

Contrary to this, if austerity is associated with desire for mundane pleasures and comforts, name, ambition, fame, glory and the like, then it becomes pseudo-austerity or ignorant austerity and is nothing more than mortification of the body. Such austerity is not austerity, it is mere heat and that is the cause of misery to the soul. Such austerity does not temper *karmas*; it only distresses the soul and becomes the cause of transmigrating of the soul in cycles of rebirth in four realms. Therefore from the angle of benefit of soul, it ought to be right austerity only.

In the preceding twenty-eighth chapter the four causes for attaining liberation were described. Among them austerity was the last and infallible cause. There only names of austerities were mentioned; while in this chapter they have been elaborated in detail.

Primarily the austerities are of two kinds—1. external, and 2. internal. Each of these is further sub-divided into six types.

The six sub-categories of external austerity are—1. fasting, 2. eating less than full meal, 3. renouncing of taste (dainty food), 4. alms-seeking, 5. mortification of body, and 6. reclusive living.

There are many other categories of fasting and other austerities.

The greatest benefit of external austerities is that by practicing these one gets rid of obsession for the body, taste and eating as well as desire for comforts. But it is necessary for the external austerity to be of help in internal austerities.

Internal austerities are—1. atonement, 2. modesty, 3. service to others, 4. self-study, 5. meditation, and 6. dissociation (from the mundane).

Some of the benefits of these austerities are—cleansing of faults by atonement, politeness by modesty, feeling of altruism by service to others, knowledge by self-study, concentration of mind by meditation, freedom from fondness for self by dissociation. The ultimate benefit is liberation.

This whole theme has been elaborately discussed in this chapter.

The chapter has 37 verses.



तीसइमं अज्झयणं : तवमग्गणई  
त्रिंश अध्ययन : तपो-मार्ग-गति  
Chapter-30 : ENDEAVOUR ON THE  
PATH OF AUSTERITY

जहा उ पावगं कम्मं, राग-दोससमज्जियं।

खवेइ तवसा भिक्खू, तमेगगमणो सुण ॥ १ ॥

राग और द्वेष से अर्जित पापकर्मों का भिक्षु जिस प्रकार क्षय करता है, उसे (उस प्रक्रिया को) एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १ ॥

Listen attentively to the process through which an ascetic destroys the demerit-*karmas* acquired due to attachment and aversion. (1)

पाणवह-मुसावाया, अदत्त-मेहुण-परिग्गहा विरओ।

राईभोयणविरओ, जीवो भवइ अणासवो ॥ २ ॥

प्राणि-वध (हिंसा), मृषावाद (असत्त्व), अदत्त (अदत्तादान-स्तेय), मैथुन (अब्रह्मचर्य), परिग्रह और रात्रि-भोजन की विरति से जीव अनास्रव (आस्रवरहित) होता है ॥ २ ॥

By abstaining from violence, falsehood, stealing, sex act (non-celibacy), covetousness and food intake during night a *jiva* (soul/living being) becomes free from in-flux of *karmas*. (2)

पंचसमिओ तिगुत्तो, अकसाओ जिइन्दिओ।

अगारवो य निस्सल्लो, जीवो होइ अणासवो ॥ ३ ॥

पाँच समितियों से समित और तीन गुप्तियों से गुप्त, कषायरहित, जितेन्द्रिय, गौरव-गर्व से रहित और निःशल्य जीव अनास्रव (आस्रवरहित) होता है ॥ ३ ॥

A being circumspect with five *samitis* (circumspections), restrained by three *guptis* (restraints), passionless, victor of senses, conceit-free and free from spiritual thorns is without influx of *karmas*. (3)

एसिं तु विवच्चासे, राग-दोससमज्जियं।

जहा खवयइ भिक्खू, तं मे एगमणो सुण ॥ ४ ॥

पूर्वोक्त गुणों (धर्म साधना) से विपर्यास (विपरीत आचरण करने) पर राग-द्वेष से अर्जित कर्मों को भिक्षु जिस प्रकार क्षय करता है वह एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुनो ॥ ४ ॥

How an ascetic destroys the *karmas* acquired through attachment and aversion when acting contrary to the aforesaid virtues (religious practices), hear attentively from me. (4)

जहा महातलायस्स, सन्निरुद्धे जलागमे।

उत्तिंसचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥ ५ ॥



जिस प्रकार कोई महासरोवर के जल आने के मार्गों को रोक देने और पूर्व संचित जल को उलीचने तथा सूर्य ताप के कारण से सूख जाता है— ॥ ५ ॥

As a great lake dries up due to heat of sunrays when all sources of inflow of water are blocked and water already collected earlier is drained out— (5)

एवं तु संजयस्सावि, पावकम्मनिरासवे ।  
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जई ॥ ६ ॥

उसी प्रकार संयत के भी पापकर्मों को निरास्रव (नये कर्मों का आगमन द्वार बन्द) कर देने से करोड़ों जन्मों के संचित कर्म तप से निर्जरित (नष्ट) हो जाते हैं ॥ ६ ॥

In the same way by blocking the inflow of *karmas*, the already accumulated *karmas* from millions of rebirths are destroyed by heat of austerities of a restrained ascetic. (6)

सो तवो दुविहो वुत्तो, बाहिरब्भन्तरो तहा ।  
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भन्तरो तवो ॥ ७ ॥

वह तप दो प्रकार का कहा गया है—(१) बाह्य, और (२) आभ्यन्तर। बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है। इसी प्रकार आभ्यन्तर तप भी छह प्रकार का ही है ॥ ७ ॥

That austerity is of two kinds—1. external (*baahya*), and 2. internal (*abhyantar*). External austerity is of six types and internal austerity is also of six types. (7)

अणसणमूणोयरिया, भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ।  
कायकिलेसो संलीणया, य बज्झो तवो होइ ॥ ८ ॥

(१) अनशन, (२) ऊनोदरी, (३) भिक्षाचर्या, (४) रस-परित्याग, (५) कायक्लेश, और (६) संलीनता—ये छह बाह्य तप हैं ॥ ८ ॥

1. Fasting (*anashan*), 2. eating less than full meal (*unodari*), 3. alms-seeking (*bhikshacharya*), 4. renouncing of taste (dainty food; *rasa-parityag*), 5. mortification of body (*kayaklesh*), and 6. reclusive living (*samlinata*)—these are six external austerities. (8)

इत्तरिया मरणकाले, दुविहा अणसणा भवे ।  
इत्तरिया सावकंखा, निरवकंखा बिइज्जिया ॥ ९ ॥

(१) इत्वरिक, और (२) मरणकाल—ये अनशन तप के दो प्रकार हैं। इत्वरिक तप सावकांक्ष (अनशन के निर्धारित समय के बाद भोजन की आकांक्षा सहित) होता है और मरणकाल अनशन निरवकांक्ष (भोजन की आकांक्षा (इच्छा) से सर्वथारहित) होता है ॥ ९ ॥

Austerity of fasting is of two types—1. *itvarik* (temporary fasting for a specific period), and 2. *Maran-kaal* (fasting till death). Temporary austerity is with a desire (for food after the determined period is over) and fasting till death is desire-free (no desire for food at all). (9)

जो सो इत्तरियतवो, सो समासेण छव्विहो ।  
सेद्धितवो पयरतवो, घणो य तह होइ वग्गो य ॥ १० ॥



संक्षेप से इत्वरिक तप छह प्रकार का है—(१) श्रेणि तप, (२) प्रतर तप, (३) घन तप, (४) वर्ग तप, (५) वर्ग-वर्ग तप, और (६) प्रकीर्ण तप ॥ १० ॥

Briefly speaking, temporary fasting austerity is of six kinds—1. in the form of numerical arrangement of a chain or line (*shreni-tap*), 2. in the form of square (*pratara-tap*), 3. in the form of cube or third power (*ghan-tap*), 4. in the form of square of cube or sixth power (*varg-tap*), 5. in the form of square of the preceding or twelfth power (*varg-varg-tap*), and 6. of any other numerical arrangement (*prakirna tap*). (10)

ततो य वगवगो उ, पंचमो छट्ठओ पइण्णतवो ।

मणइच्छिय-चित्तथो, नायव्वो होइ इत्तरिओ ॥ ११ ॥

इस प्रकार मनवांछित विचित्र (स्वर्ग-अपवर्ग आदि अनेक) प्रकार के फल देने वाला इत्वरिक (अनशन) तप होता है, यह जानना चाहिए ॥ ११ ॥

Know that the aforesaid austerity of temporary fasting bestows various strange boons (like rise to heavens and liberation). (11)

जा सा अणसणा मरणे, दुविहा सा वियाहिया ।

सवियार-अवियारा, कायचित्ठं पई भवे ॥ १२ ॥

जो मृत्यु समय में अनशन होता है, वह काय चेष्टा के आधार पर दो प्रकार का कहा गया है—(१) सविचार (करवट बदलने आदि काय चेष्टाओं सहित), और (२) अविचार (काय चेष्टारहित) ॥ १२ ॥

The austerity of fasting till death is of two kinds (with respect to movement of body to take a different position)—1. with change (*savichaar*), and 2. without change (*avichaar*). (12)

अहवा सपरिकम्मा, अपरिकम्मा य आहिया ।

नीहारिमणीहारी, आहारच्छेओ य दोसु वि ॥ १३ ॥

अथवा मरणकाल अनशन के (१) सपरिकर्म, और (२) अपरिकर्म—ये दो भेद हैं। अविचार अनशन के (१) निर्हारी, और (२) अनिर्हारी—ये दो भेद भी होते हैं। लेकिन इन दोनों में ही आहार का त्याग होता है ॥ १३ ॥

Also, austerity of fasting till death is of two kinds—1. admitting relief by taking service from others (*saparikarma*), and 2. without relief (*aparikarma*). Without change (of body position) austerity is also of two kinds—1. change of place (*nirhaari*), and 2. no change of place (*anirhaari*). However, in both the cases food cannot be taken. (13)

ओमोयरियं पंचहा, समासेण वियाहियं ।

दव्वओ खेत्त-कालेणं, भावेणं पज्जवेहि य ॥ १४ ॥

अवमौदर्य (ऊनोदरी) संक्षेप में पाँच प्रकार का बताया गया है (यह)—(१) द्रव्य, (२) क्षेत्र, (३) काल, (४) भाव, (५) पर्यायों की अपेक्षा से पाँच प्रकार का है ॥ १४ ॥



In brief the austerity of eating less than appetite (abstinence) is of five kinds with respect to—1. substance (*dravya*), 2. place (*kshetra*), 3. time (*kaal*), 4. sentiment or resolve (*bhaava*), and 5. modes (*paryaaya*). (14)

जो जस्स उ आहारो, तत्तो ओमं तु जो करे।

जहनेणेगसित्थाई, एवं दब्बेण ऊ भवे ॥ १५ ॥

जिसका जितना आहार है; उससे कम-से-कम (जघन्य) एक सिक्थ (एक कण अथवा एक ग्रास) कम भोजन करना, द्रव्य से अवमौदर्य-ऊनोदरी तप है ॥ १५ ॥

To take at least one grain or morsel less than one's full meal or appetite is austerity of eating less than appetite in context of substance. (15)

गामे नगरे तह रायहाणि, निगमे च आगरे पल्ली।

खेडे कब्बड-दोणमुह, पट्टण-मडम्ब-संवाहे ॥ १६ ॥

ग्राम, नगर, राजधानी, निगम, आकर, पल्ली, खेड, कर्बट, द्रोणमुख, पत्तन, मडंब (मण्डप) संवाध— ॥ १६ ॥

(From places like —) village (*gram*), city (*nagar*), capital (*rajadhani*), trade center (*nigam*), settlement near a mine (*aakar*), village of thieves (*palli*), kraal (*khet*), market (*karbat*), hamlet (*dronmukh*), harbour (*pattan*), borough (*madamb*), settlement in a valley (*samvah*), — (16)

आसमपए विहारे, सन्निवेशे समाय-घोसे च।

थंलि-सेणाखन्धारे, सत्थे संवट्ट कोट्टे च ॥ १७ ॥

आश्रम पद, विहार, सन्निवेश, समाज, घोष, स्थली, सेना का शिविर, सार्थ, संवर्त, कोट— ॥ १७ ॥

Hermitage (*ashram*), hostel (*vihaar*), temporary settlement (*sannivesh*), assembly (*samaaj*), settlement of cowherds (*ghos*), settlement on high ground (*sthali*), army camp (*sainya-shivir*), caravan (*saarth*), relief camp (*samvart*), fortified place (*koat*) — (17)

वाडेसु व रच्छासु व, घरेसु वा एवमित्थियं खेत्तं।

कप्पइ उ एवमाई, एवं खेत्तेण ऊ भवे ॥ १८ ॥

वाड, रथ्या (गली) और घर-इन क्षेत्रों में तथा इस प्रकार के दूसरे क्षेत्रों में निर्धारित (कल्पित) क्षेत्र प्रमाण के अनुसार भिक्षा के लिए जाना क्षेत्र से 'ऊनोदरी' तप होता है ॥ १८ ॥

Fence (*vaad*), lanes (*rathya*), house (*ghar*), to select one or more places and go to seek alms from places so predetermined is austerity of eating less than appetite in context of place. (18)

पेडा च अद्धपेडा, गोमुत्ति पयंगवीहिया चेव।

सम्बुक्कावट्टा ऽऽययगन्तुं, पच्चागया छट्ठा ॥ १९ ॥

अथवा (१) पेटा, (२) अर्द्ध-पेटा, (३) गोमूत्रिका, (४) पतंगवीथिका, (५) शम्बूकावर्ता, और (६) आयतंगत्वा-(प्रत्यागता)- यह छह प्रकार का क्षेत्र से ऊनोदरी तप है ॥ १९ ॥



Also, any of these six patterns of movement to seek alms—1. *peta* (box), 2. *ardhapeta* (half box), 3. *gomutrika* (zig-zag line), 4. *patangavithika* (cricket's walk), 5. *shambukaavarta* (conch-like spiral), and 6. *aayatamgatva-pratyagatu* (going in a straight line and retracing it)—is austerity of eating less than appetite in context of place. (19)

दिवसस्स पोरुसीणं, चउण्हं पि उ जत्तिओ भवे कालो ।

एवं चरमाणो खलु, कालोमाणं मुणेयव्वो ॥ २० ॥

दिन की चार पौरुषियों (प्रहरों) में से जितना काल (समय) (अभिग्रह रूप में) रखा हो, उसी काल (समय) में भिक्षा के लिए विचरण करना अवश्य ही काल सम्बन्धी ऊनोदरी तप है, ऐसा जानना चाहिए ॥ २० ॥

Know this that to move about for seeking alms only during a predetermined slot of time out of the four quarters of the day is austerity of eating less than appetite in context of time for sure. (20)

अहवा तइयाए पोरिसीए, ऊणाइ घासमेसन्तो ।

चउभागूणाए वा, एवं कालेण ऊ भवे ॥ २१ ॥

अथवा तीसरी पौरुषी (प्रहर) में कुछ कम या चतुर्थ भाग कम में भिक्षा की गवेषणा करना, काल सम्बन्धी ऊनोदरी तप होता है ॥ २१ ॥

Also, to explore for food during the third quarter of the day only for duration of slightly less than a quarter or a quarter of a quarter is austerity of eating less than appetite in context of time. (21)

इत्थी वा पुरिसो वा, अलंकिओ वाऽणलंकिओ वा वि ।

अन्नयरवयत्थो वा, अन्नयरेणं व वत्थेणं ॥ २२ ॥

स्त्री अथवा पुरुष, अलंकृत (अलंकारयुक्त) या अनलंकृत (अलंकाररहित) हो अथवा अमुक आयु अथवा अमुक वस्त्र वाले (धारण किये हुए) हों— ॥ २२ ॥

(I will accept alms only from —) Woman or man, embellished or not, of this age or with this garb— (22)

अन्नेण विसेसेणं, वण्णेणं भावमणुमुयन्ते उ ।

एवं चरमाणो खलु, भावोमाणं मुणेयव्वो ॥ २३ ॥

अथवा अमुक विशिष्ट वर्ण या भाव (हर्षादि हार्दिक भावों) से युक्त दाता से भिक्षा लूँगा (इस प्रकार के अभिग्रह से युक्त) भिक्षा के लिए विचरण करते हुए साधु को भाव से ऊनोदरी तप मानना चाहिये ॥ २३ ॥

Of this complexion or with this sentiment (joy, grimness etc.). An ascetic moving about for alms (with such resolve) should be known as the one observing the austerity of eating less than appetite in context of sentiment or resolve. (23)



द्रव्ये खेत्ते काले, भावमि य आहिया उ जे भावा ।

एएहि ओमचरओ, पज्जवचरओ भवे भिक्खू ॥ २४ ॥

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में जो भाव (पर्याय) कहे गये हैं, उन सब भावों (पर्यायों) से भिक्षाचर्या करने वाले भिक्षु के पर्याय ऊनोदरी तप (पज्जवचर) होता है ॥ २४ ॥

An ascetic who follows all the aforesaid modes of substance, place, time and sentiment should be known as the one observing the austerity of eating less than appetite in context of modes. (24)

अट्टविहगोयरग्गं तु, तहा सत्तेव एसणा ।

अभिग्गहा य जे अन्ने, भिक्खायरियमाहिया ॥ २५ ॥

आठ प्रकार के गोचराग्र, सात प्रकार की एषणाएँ तथा अन्य अनेक प्रकार के अभिग्रह भिक्षाचर्या तप कहे गये हैं ॥ २५ ॥

Eight kinds of principal ways of alms collection (*gocharaagra*), seven types of explorations for alms (*eshana*) and many other resolves are said to be included in austerity of alms-seeking. (25)

खीर-दहि-सप्पिमाई, पणीयं पाणभोयणं ।

परिवज्जणं रसाणं तु, भणियं रसविवज्जणं ॥ २६ ॥

दूध, दही, घी तथा प्रणीत (पौष्टिक) पान-भोजन (आहार) एवं रसों का वर्जन (परित्याग) रस-परित्याग तप कहा गया है ॥ २६ ॥

Renouncing intake of milk, curd, butter-oil (*ghee*) and other nourishing and tasty food is called austerity of renouncing taste (dainty food). (26)

ठाणा वीरासणाईया, जीवस्स उ सुहावहा ।

उग्गा जहा धरिज्जन्ति, कायकिलेसं तमाहियं ॥ २७ ॥

आत्मा के लिए सुखकारी वीरासन आदि उग्र आसनों को धारण करने को-अभ्यास करने को काय-क्लेश तप कहा गया है ॥ २७ ॥

Practice of different difficult postures, including *Virasana*, that are beneficial for soul is called austerity of body-mortification. (27)

एगन्तमणावाए, इत्थी पसुविवज्जिए ।

सयणासणसेवणया, विवित्तसयणासणं ॥ २८ ॥

एकान्त, अनापात (लोगों के आवागमन से रहित) और स्त्री तथा पशु (नपुंसक भी) आदि से विवर्जित (रहित) शयन एवं आसन का आसेवन (ग्रहण) करना, विवित्त शयन-आसन (प्रतिसंलीनता) तप है ॥ २८ ॥

Accepting use of lonely, unfrequented by people and free of women and animals (eunuchs also) bed and seats (lodgings) is austerity of reclusive living (*samlinata*). (28)

एसो बाहिरंगं तवो, समासेण वियाहिओ ।

अब्भिन्तरं तवं एत्तो, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ २९ ॥



संक्षेप में बहिरंग (बाह्य) तपों को कहा गया है। अब क्रमशः आभ्यन्तर तपों को कहूँगा ॥ २९ ॥

Briefly, these are external austerities. Now I will describe internal austerities in due order. (29)

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।

झाणं च विउस्सगो, एसो अब्भिन्तरो तवो ॥ ३० ॥

(१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) वैयावृत्य, (४) स्वाध्याय, (५) ध्यान, और (६) व्युत्सर्ग—ये छह आभ्यन्तर तप हैं ॥ ३० ॥

1. Atonement (*prayashchitta*), 2. modesty (*vinaya*), 3. service to others (*vaiyavritya*), 4. self-study (*swadhyaya*), 5. meditation (*dhyana*), and 6. dissociation (from the mundane; *vyutsarga*) – these six are internal austerities. (30)

आलोयणारिहाईयं, पायच्छित्तं तु दसविहं ।

जे भिक्खू वहई सम्मं, पायच्छित्तं तमाहियं ॥ ३१ ॥

आलोचनार्ह (आलोचना के योग्य) आदि दस प्रकार का प्रायश्चित्त तप है, जिसका भिक्षु सम्यक् रूप से वहन (पालन) करता है, वह प्रायश्चित्त तप कहा जाता है ॥ ३१ ॥

The austerity of atonement (matters needing atonement) is of ten types, which an ascetic observes immaculately. This observation is called austerity of atonement. (31)

अब्भुट्ठाणं अंजलिकरणं, तहेवासणदायणं ।

गुरुभत्ति-भावसुस्सूसा, विणओ एस वियाहिओ ॥ ३२ ॥

खड़े होना, हाथ जोड़ना, आसन देना, गुरुजनों की भक्ति तथा भाव सहित शुश्रूषा (सेवा करना) विनय तप है ॥ ३२ ॥

To get up from seat, join palms, offer seat, to serve seniors sincerely with devotion is austerity of modesty. (32)

आयरियमाइयम्मि य, वेयावच्चम्मि दसविहे ।

आसेवणं जहाथामं, वेयावच्चं तमाहियं ॥ ३३ ॥

आचार्य आदि से सम्बन्धित दस प्रकार का वैयावृत्य है। उसका यथाशक्ति (अपनी शक्ति के अनुसार) आसेवन (आचरण) करना वैयावृत्य तप है ॥ ३३ ॥

There are ten kinds of services to others aimed at *acharya* (preceptor and head of the order) and other members of the group. To perform them to the best of one's ability is austerity of service to others. (33)

वायणा पुच्छणा चेव, तहेव परियट्ठणा ।

अणुप्पेहा धम्मकहा, सज्झाओ पंचहा भवे ॥ ३४ ॥

(१) वाचना, (२) पृच्छना, (३) परिवर्तना, (४) अनुप्रेक्षा, और (५) धर्मकक्षा—यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय तप है ॥ ३४ ॥





1. Giving or taking lessons (*vaachana*), 2. questioning the teacher (*prichchhana*), 3. revision or repetition (*parivartana*), 4. pondering or ruminating (*anupreksha*), and 5. religious discourse (*dharmakatha*)—these are five limbs of austerity of self-study (*swadhyaya*). (34)

अदुरुद्दाणि वज्जिता, झाएज्जा सुसमाहिए।  
धम्मसुक्काइं झाणाइं, झाणं तं तु बुहा वए ॥ ३५ ॥

आर्त और रौद्र (ध्यान) को वर्जित कर (छोड़कर) सुसमाहित साधु धर्म और शुक्लध्यान को ध्याता है, वह बुद्धिमानों द्वारा ध्यान तप कहा जाता है ॥ ३५ ॥

A disciplined ascetic abandons mental states of anxiety (*aart-dhyan*) and malice (*raudra-dhyan*) embraces mental states of piety (*dharmadhyana*) and purity (*shukladhyana*). The wise call it austerity of meditation (*dhyan*). (35)

सयणासण-ठाणे वा, जे उ भिक्खू न वावरे।  
कायस्स विउस्सग्गो, छट्ठो सो परिकित्तिओ ॥ ३६ ॥

शयन (सोने), बैठने तथा खड़े होने में जो भिक्षु व्यर्थ का काय-व्यापार (काय-चेष्टा) नहीं करता; वह शरीर का व्युत्सर्ग-व्युत्सर्ग नाम का छठ (आभ्यन्तर) तप कहा गया है ॥ ३६ ॥

While sleeping (lying), sitting and standing, the ascetic who avoids any extraneous movement of the body is said to be observing the sixth (internal) austerity of dissociation (*vyutsarg*). (36)

एयं तवं तु दुविहं, जे सम्मं आयरे मुणी।  
से खिण्णं सव्वसंसारा, विण्णमुच्चइ पण्डिए ॥ ३७ ॥

—त्ति बेमि।

जो पण्डित (तत्त्ववेत्ता-मेधावी) मुनि, इन दोनों प्रकार के तपों का सम्यक्तया आचरण करता है, वह शीघ्र ही सर्व संसार (द्रव्य और भाव संसार) से विमुक्त हो जाता है ॥ ३७ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

The wise and talented ascetic, who immaculately practices the two aforesaid kinds of austerities, soon gets liberated from this whole world (material and emotional). (37)

—So I say.



## विशेष स्पष्टीकरण

**गाथा ७—बाह्य तप—**निम्न कारणों से इसे बाह्य तप कहा जाता है—(१) अनशन आदि मुक्ति की प्राप्ति में बहिरंग निमित्त है। (२) शरीर आदि बाह्य द्रव्य पर आधारित हैं। (३) यह अन्तरंग तप के माध्यम से ही मुक्ति का कारण है, स्वयं साक्षात् कारण नहीं।

**अन्तरंग तप—**इसके विपरीत जो शरीर आदि बाह्य साधनों पर आधारित नहीं है, अन्तःकरण से स्वयं स्फूर्त है, जो विशिष्ट विवेकी साधकों द्वारा ही समाचारित है, वह ध्यान आदि अन्तरंग तप है।

**गाथा १०-११—**इत्वरिक अनशन तप देश, काल, परिस्थिति आदि को ध्यान में रखते हुए अपनी शक्ति के अनुसार एक अमुक समय विशेष की सीमा बाँधकर किया जाता है। भगवान महावीर के शासन में दो घड़ी से लेकर उत्कृष्ट छह मास तक की सीमा है। संक्षेप में इसके छह भेद होते हैं—

(१) **श्रेणि तप—**उपवास से लेकर छह मास तक क्रमपूर्वक जो तप किया जाता है, वह श्रेणि तप है। इसकी अनेक श्रेणियाँ हैं। जैसे—उपवास, बेला-यह दो पदों का श्रेणि तप है। उपवास, बेला, तेला, चौला-यह चार पदों का श्रेणि तप है।

(२) **प्रतर तप—**एक श्रेणि तप को जितने क्रम अर्थात् प्रकारों से किया जा सकता है, उन सब क्रमों को मिलाने से प्रतर तप होता है। उदाहरणस्वरूप—१, २, ३, ४ संख्यक उपवासों से चार प्रकार बनते हैं। स्थापना इस प्रकार है—

क्रम	१	२	३	४
१	उपवास	बेला	तेला	चौला
२	बेला	तेला	चौला	उपवास
३	तेला	चौला	उपवास	बेला
४	चौला	उपवास	बेला	तेला

यह प्रतर तप है। इसमें कुल पदों की संख्या १६ है। इस तरह यह तप श्रेणि पदों को श्रेणि पदों से गुणा करने से बनता है। चार को चार से गुणित करने पर १६ की संख्या उपलब्ध होती है। यह आयाम और विस्तार दोनों में समान है।

(३) **घन तप—**जितने पदों की श्रेणि हो, प्रतर तप को उतने पदों से गुणित करने पर घन तप बनता है। जैसे कि ऊपर में चार पदों की श्रेणि है, अतः उपर्युक्त षोडशपदात्मक तप को चतुष्टयात्मक श्रेणि से गुणा करने पर अर्थात् प्रतर तप को चार बार करने से घन तप होता है। इस प्रकार घन तप के ६४ पद होते हैं।

(४) **वर्ग तप—**घन को घन से गुणित करने पर वर्ग तप बनता है। अर्थात् घन तप को ६४ बार गुणा करने से वर्ग तप बनता है। इस प्रकार वर्ग तप के  $६४ \times ६४ = ४,०९६$  पद अर्थात् चार हजार छियाणवे पद हैं।

(५) **वर्ग-वर्ग तप—**वर्ग को वर्ग से गुणित करने पर वर्ग-वर्ग तप होता है। अर्थात् वर्ग तप को ४,०९६ बार गुणा करने से १ करोड़ ६७ लाख ७७ हजार २१६ पद होते हैं। उक्त पद अंकों में इस प्रकार है— $४,०९६ \times ४,०९६ = १,६७,७७,२१६$

यह श्रेणि तप के चार पदों की भावना है। इसी प्रकार पाँच, छह, सात आदि पदों की भावना भी की जा सकती है।



(६) प्रकीर्ण तप—यह तप श्रेणि आदि निश्चित पदों की रचना किये बिना ही अपनी शक्ति और इच्छा के अनुसार किया जा सकता है। नौकारसी से लेकर यवमध्य, वज्रमध्य, चन्द्रप्रतिमा से लेकर १५ तक बढ़ाना और फिर क्रमशः घटाते हुए एक उपवास पर आ जाना आदि प्रकीर्ण तप है।

गाथा १२—मरणकाल का आमरणान्त अनशन संथारा कहा जाता है। वह सविचार और अविचार भेद से दो प्रकार का है। सविचार में उद्वर्तन-परिवर्तन (करवट बदलने) आदि की हरकत होती है, अविचार में नहीं।

भक्त प्रत्याख्यान और इङ्गिनीमरण सविचार होते हैं। भक्त प्रत्याख्यान में साधक स्वयं भी करवट आदि बदल सकता है, दूसरों से भी इस प्रकार की सेवा ले सकता है। यह संथारा दूसरे भिक्षुओं के साथ रहते हुए भी हो सकता है। यह इच्छानुसार त्रिविधाहार अथवा चतुर्विधाहार के प्रत्याख्यान से किया जा सकता है।

इङ्गिनीमरण संथारा में अनशनकारी एकान्त में एकाकी रहता है। यथाशक्ति स्वयं तो करवट आदि बदलने की क्रियायें कर सकता है, किन्तु इसके लिये दूसरों से सेवा नहीं ले सकता।

गिरिकन्दरा आदि शून्य स्थानों में किया जाने वाला पादपोषगमन संथारा अविचार ही होता है। जैसे वृक्ष जिस स्थिति में गिर जाता है उसी स्थिति में पड़ा रहता है, उसी प्रकार पादपोषगमन में भी प्रारंभ में साधक जिस आसन का उपयोग करता है अन्त तक उसी आसन में रहता है, आसन आदि बदलने की कोई भी चेष्टा नहीं करता है।

गाथा १३—अथवा यह मरणकालीन अनशन सपरिकर्म (बैठना, उठना, करवट बदलना आदि परिकर्म सहित) और अपरिकर्म भेद से दो प्रकार का है। भक्त प्रत्याख्यान और इङ्गिनी सपरिकर्म होते हैं और पादपोषगमन अपरिकर्म ही होता है। अथवा संलेखना के परिकर्म से सहित और उससे रहित को भी क्रमशः सपरिकर्म और अपरिकर्म कहा जाता है। वर्ष आदि पूर्वकाल से ही अनशनादि तप करते हुए शरीर को, साथ ही इच्छाओं, कषायों और विकारों को निरन्तर क्षीण करना संलेखना है, अन्तिम मरणकालीन क्षण की पहले से ही तैयारी करना है।

गाँव से बाहर जाकर जो संथारा किया जाता है वह निर्हारिम है, और गाँव में ही किया जाता है वह अनिर्हारिम है। अथवा जिसके शरीर का मरणोत्तर अग्नि-संस्कार आदि होता है वह निर्हारिम है और जो गिरिकन्दरा आदि शून्य स्थानों में संथारा किया जाता है, फलतः जिसका अग्नि-संस्कार आदि नहीं होता है वह अनिर्हारिम है। विस्तार के लिये लिखे देखें—शान्त्याचार्य कृत बृहद् वृत्ति (औपपातिकसूत्र तथा उत्तराध्ययन-साध्वी चन्दना जी)

गाथा १६-१७-१८—जहाँ कर लगते हों वह ग्राम है और जहाँ कर न लगते हों, वह नगर है, अर्थात् न कर। निगम—व्यापार की मण्डी। आकर—सोने आदि की खान। पल्ली—वन में साधारण लोगों की या चोरों की बस्ती। खेट—धूल-मिट्टी के कोट वाला ग्राम। कर्बट—छोटा नगर। द्रोणमुख—जिसके आने-जाने के जल और स्थल दोनों मार्ग हों। पत्तन—जहाँ सभी ओर से लोग आते हों। मंडब—जिसके पास सब ओर अड़ाई योजन तक कोई दूसरा गाँव न हो। सम्बाध—ब्राह्मण आदि चारों वर्ण के लोगों का जहाँ प्रचुरता से निवास हो। आश्रमपद—तापस आदि के आश्रम। विहार—देव-मन्दिर। सनिवेश—यात्री लोगों के ठहरने का स्थान अर्थात् पड़ाव। समाज—सभा और परिषद्। घोष—गोकुल। स्थली—ऊँची जगह, टीला आदि। सेना और स्कन्धावार (छावनी) प्रसिद्ध है। सार्थ—सार्थवाहों के साथ चलने वाला जनसमूह। संवर्त—जहाँ के लोग भयत्रस्त हों। कोट्ट—प्राकार, किला आदि। वाड—जिन घरों के चारों ओर काँटों की बाड़ या तार आदि का घेरा हो। रथ्या—गाँव और नगर की गलियाँ (बृहद्वृत्ति)।



गाथा १९—भिक्षाचरी के छह भेद इस प्रकार हैं—

(१) पेटा—अर्थात् पेटिका। पेटिका चतुष्कोण होती है। इस प्रकार बीच के घरों को छोड़कर चारों श्रेणियों में भिक्षा लेना।

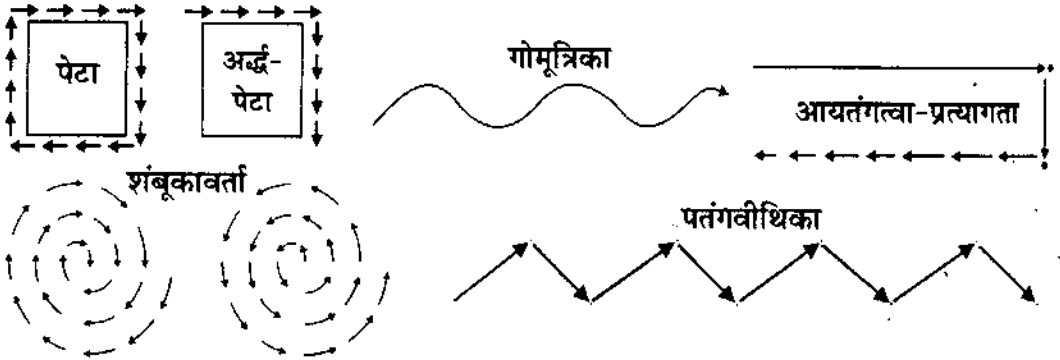
(२) अर्ध-पेटा—इसमें केवल दो श्रेणियों से भिक्षा ली जाती है।

(३) गोमूत्रिका—वक्र अर्थात् टेढ़े-मेढ़े भ्रमण से भिक्षा लेना गोमूत्रिका है। जैसे—चलते बैल के मूत्र की रेखा टेढ़ी-मेढ़ी होती है।

(४) पतंगवीथिका—पतंग जैसे उड़ता हुआ बीच में कहीं-कहीं चमकता है, इसी प्रकार बीच-बीच में घरों को छोड़ते हुए भिक्षा लेना।

(५) शम्बूकावर्ता—शंख के आवर्तों की तरह गाँव के बाहरी भाग से भिक्षा लेते हुए अन्दर में जाना अथवा गाँव के अन्दर से भिक्षा लेते हुए बाहर की ओर आना। शम्बूकावर्ता के ये दो प्रकार हैं।

(६) आयतंगत्या-प्रत्यागता—गाँव की सीधी सरल गली में अन्तिम घर तक जाकर फिर लौटते हुए भिक्षा लेना। इसके भी दो भेद हैं—जाते समय गली की एक पंक्ति से और आते समय दूसरी पंक्ति से भिक्षा लेना। अथवा एक ही पंक्ति से भिक्षा लेना, दूसरी पंक्ति से नहीं।



गाथा ३१—प्रायश्चित्त के १० भेद इस प्रकार हैं—

(१) आलोचनाह—गुरु के समक्ष अपने दोषों को प्रकट करना आलोचना है।

(२) प्रतिक्रमणह—कृत पापों से निवृत्त होने के लिये “मिच्छामि दुक्कडं” कहना।

(३) तदुभयार्ह—पापनिवृत्ति के लिये आलोचना और प्रतिक्रमण—दोनों करना।

(४) विवेकाह—लाये हुए अशुद्ध आहार आदि का परित्याग करना।

(५) व्युत्सर्गाह—चौबीस तीर्थकरों की स्तुति के साथ कायोत्सर्ग करना।

(६) तपार्ह—उपवास आदि तप करना।

(७) छेदाह—संयमकाल को छेदकर कम करना, दीक्षा काट देना।

(८) मूलाह—फिर से महाव्रतों में आरोपित करना, नई दीक्षा देना।

(९) अनवस्थापनाह—तपस्यापूर्वक नई दीक्षा देना।



(१०) पारंचिकाहं—भयंकर दोष लगने पर काफी समय तक भर्त्सना एवं अवहेलना करने के अनन्तर नई दीक्षा देना। (स्थानांग १०)

गाथा ३३—वैयावृत्य तप के दस प्रकार हैं—(१) आचार्य, (२) उपाध्याय, (३) स्थविर-वृद्ध गुरुजन, (४) तपस्वी, (५) ग्लान-रोगी, (६) शैक्ष-नवदीक्षित, (७) कुल-गच्छों का समुदाय, (८) गण-कुलों का समुदाय, (९) संघ-गणों का समुदाय, (१०) साधर्मिक-समानधर्मा, साधु-साध्वी।

गाथा ३६—यहाँ व्युत्सर्ग तप में कायोत्सर्ग की ही गणना की है। प्रावरण एवं पात्र आदि उपधि का विसर्जन भी व्युत्सर्ग तप है। कषाय का व्युत्सर्ग भी व्युत्सर्ग तप में गिना गया है। काय मुख्य है। अतः काय के व्युत्सर्ग में सभी उत्सर्गों का समावेश हो जाता है।

## IMPORTANT NOTES

**Verse 7—External austerity**—For following reasons it is called external austerity—1. Fast and the like are external causes for liberation. 2. It is associated with external things like body. 3. It is the cause of liberation only through internal austerities and not a direct cause on its own.

**Internal austerity**—As against this the austerity that is not dependent on external means like body and the like, naturally inspired by mind and practiced only by highly sagacious aspirants, is internal austerity (meditation etc.).

**Verse 10-11**—Temporary fasting austerity is observed according to place, time, circumstances and capacity of the individual for a predetermined limit of time. In the period of Bhagavan Mahavir's influence this limit varies from a minimum of 48 minutes (2 *ghadis*) to a maximum of six months. Briefly it is of six types—

1. *Shreni tap* (Fasting for group of days in linear numerical arrangement of a simple chain) — Beginning with a one day fast increasing the number of days in simple progression up to six months is called *Shreni tap*. For example, combination of one day fast and two day fast is two-step *Shreni tap*; that of one-two-three-four day fasts is a four step *Shreni tap*.

2. *Pratar tap* (in the form of square)—The permutations of various combinations of *shreni tap* is called *Pratar tap*. For example the four step *shreni tap* (1, 2, 3, 4 days) can have 4 different combinations totaling to 16 sets of fasts as follows —

S. No.	1	2	3	4
1.	1 day	2 days	3 days	4 days
2.	2 days	3 days	4 days	1 day
3.	3 days	4 days	1 day	2 days
4.	4 days	1 day	2 days	3 days

This is *pratar tap*. There are sixteen sets of fasts in it. This is arrived at by multiplying rows and columns of *shrenis*. In other words the square of four sets comes to sixteen ( $4^2$ ). It is equal in length and breadth (a square).

3. *Ghana tap* (in the form of cube or third power) — The number of sets in a square multiplied by the number of sets in a line gives *Ghana tap*. For example the aforesaid number of sets of fasting in the *pratar tap* (16) multiplied by the number of sets in the basic *shreni tap* (4) gives *Ghana tap* making a total of 64 (cube of four or  $4^3$ ) sets of fasting.



4. *Varg tap* (in the form of square of cube or sixth power)—Multiplying the number of sets in *Ghana tap* by the same number gives *Varg tap*. For example 64 sets of the aforesaid *Ghana tap* multiplied by 64 gives *varg tap* for this combination. Thus the total number of sets of fasting in this case is  $64 \times 64 = 4,096$  (four to the power of six or  $4^6$ ).

5. *Varg-varg tap* (in the form of square of the preceding or twelfth power)—Square multiplied by square is *Varg-varg tap*. For example multiplying 4,096 by 4,096 gives *varg-varg tap* for this combination. Thus the total number of sets of fasting in this case is  $4,096 \times 4,096 = 1,67,77,216$  (four to the power of twelve or  $4^{12}$ ).

These are the sets of fasting for a combination of sets of one to four day fasting. In the same way the number of sets of fasting for combinations of sets of one to 5, 6, 7 or more day fasting can be calculated.

6. *Prakirna tap* (of any other numerical arrangement)—This austerity can be observed according to one's own will and capacity without resolving for any specific pattern of aforesaid combinations of fasting. Beginning from *Naukarsi*, *yavamadhya*, *vajramadhya*, *chandrapratima* and increasing in progression to fifteen days and then gradually decreasing to one day fast and other such irregular designs of number of fasting is *Prakirna tap*.

**Verse 12**—The austerity of fasting till death is called *santhara*. It is of two kinds—With change (*savichaar*) and without change (*avichaar*). This change is with respect to body-posture. In the first, one can make body movements including turning over, but in the second, one cannot.

*Bhakta-pratyaakhyaan* and *Inginimarān* both are with change. In *bhaktipratyaakhyaan* the aspirant can make body movements including turning over himself or with the help of others. This *santhara* can be observed while living with other ascetics and by renouncing three or four kinds of intake.

In *Inginimarān santhara*, the ascetic remains alone in complete solitude. He can make body movements according to his ability but cannot take help from others for this purpose.

*Paadapopagaman santhara* is always without change. It is observed at forlorn places like caves. When a branch of tree falls down on ground it remains in the same position; in the same way in *Paadapopagaman santhara* the ascetic remains in the same posture, in which he commenced the practice, till end of life. He does not even make a try to change that posture.

**Verse 13**—The austerity of fasting till death is also of two other kinds—*Saparikarma* or with change (body-movements like sitting, getting up, or turning over) and *aparikarma* or without change (body movements). *Bhakta pratyaakhyaan* and *Inginimarān* are with change and *Paadapopugaman* is without change. *Samlekhana* with and without change (body movement) is also called *saparikarma* and *aparikarma*. *Samlekhana* is the process of advance preparation for the moment of death by continually removing desires, passions and perversions along with emaciating the body through observing austerities including fasting.

The *santhara* observed by going outside the village is known as *nirhaarim* and that which is observed in village is called *anirhaarim*. In other words the *santhara* followed by funeral is *nirhaarim*, and that where funeral is not possible, as it observed in cave-like forlorn place, is called *anirhaarim*. For details refer to *Vrihad Vritti* by Shantyaacharya; *Aupapatik Sutra* and *Uttaraadhyayana* by Sadhvi Chandana ji.

**Verses 16, 17, 18**—Where taxes are levied that is *Gram* (village). Where taxes are not levied that is *Nagar* (na = no, kar = tax). *Nigam*—business center. *Aakara*—mines of gold etc., or a settlement near a mine. *Palli*—a village of ordinary people or thieves. *Kheta*—a village bound by sand wall. *Karbata*—small town. *Dronamukha*—a town having land and water approach both. *Pattan*—where people can come from all directions. *Madamba*—isolated settlement having no habitation up to 2.5 yojan in all



directions. *Sambaadha*—where large number of people of all the four castes dwell. *Aashrampada*—hermitage. *Vihaara*—temple of deities. *Sannivesh*—resting place for travellers. *Samaaja*—assembly. *Ghosh*—village of cowherds. *Sthali*—village at high places like hills. *Saarth*—caravan. *Samvarta*—place of refuge for frightened people. *Kotta*—fortified place. *Vaad*—houses with fencing. *Rathya*—streets of village or town. (*Vrihad Vritti*)

**Verse 19**—Six patterns of movement for collecting alms—

(i) *Peta* (box)—A box has four sides, as such to move in a group of houses tracing a rectangle leaving the houses in the middle.

(ii) *Aardhapeta* (half box)—To move tracing only two sides of a rectangle in a group of houses.

(iii) *Gomutrika* (zigzag line)—To move in a zig-zag line in a group of houses.

(iv) *Patangavithika* (moth's flight)—To move like a moth's flight with random stoppage in a group of houses.

(v) *Shambukaavart* (conch-like spiral)—To trace a spiral path starting from outside or inside a group of houses.

(vi) *Aayatamgatyapratyaagata* (going in a straight line and retracing it)—To go in a straight line and retracing it on a straight road in a group of houses. There are two alternatives for this—to collect from houses on one side while going and from the other side while returning or to collect only from one side.

**Verse 31**—There are ten kinds of atonement austerity—

1. *Aalocanaarha*—To express one's faults before the guru.

2. *Pratikaramanaarha*—To utter '*michchhaami dukkadam*' in order to get rid of sins.

3. *Tadubhayaanarha*—To perform both these to get rid of sins.

4. *Vivekaarha*—To reject any faulty food brought forth.

5. *Vyutsargaarha*—To observe dissociation-meditation (*kaayotsarg*) while chanting panegyrics to twenty four Tirthankars.

6. *Tapaarha*—To observe fast and other austerities.

7. *Chhedaarha*—To extend the appointed time of initiation. (Curtailing the total expected time of ascetic life.)

8. *Mulaarha*—To reinstall great vows or perform re-initiation.

9. *Anavasthaapanaarha*—To perform re-initiation with specified austerities.

10. *Paarancikaarha*—To perform re-initiation only after punishment of ignoring and censuring for a long period (this is prescribed only in case of severe faults. (*Sthananga Sutra*, 10)

**Verse 33**—There are ten categories of austerity of serving others—1. to *acharya* (head of the order, 2. to *upadhyaya* (teacher of the canon), 3. to *sthavira* (senior ascetic), 4. to *tapasvi* (austerity performer), 5. to *glaan* (ailing), 6. to *shaiksha* (neo- initiate), 7. to *Kula* (group of *gachchhas* or a group of ascetics following a specific praxis), 8. to *Gana* (group of *Kulas*), 9. to *Sangh* (group of *Ganas*), and 10. to *Saadharmik* (co-religionists).

**Verse 36**—Although the term *Vyutsarg* means any kind of dissociation including that from ascetic-equipment (*upadhi*) as well as passions, *kayotsarg* is most important and it envelopes all other dissociations. As such here only *kayotsarga* is included in *vyutsarga* austerity.



## इकतीसवाँ अध्ययन : चरण-विधि

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम चरण-विधि है। चरण-विधि का अर्थ है चारित्र-विधि। चारित्र का ज्ञान करके, भली-भाँति समझकर उसे विवेकपूर्वक धारण करना, उसका आचरण करना।

यह अध्ययन संख्या-प्रधान है। स्थानांग और समवायांगसूत्र के समान संख्या को माध्यम बनाया गया है। १ से ३३ तक की संख्याओं के माध्यम से श्रमण के चारित्र के विविध गुणों/पक्षों का वर्णन किया गया है। ज्ञान से संबंधित भी कुछ बातें बताई गई हैं; पर प्रमुखता चारित्र की है।

चारित्र साधु-साध्वियों के लिए मेरुदण्ड है। इसी कारण प्रस्तुत अध्ययन में साधक द्वारा हेय-ज्ञेय-उपादेय से चारित्रवर्द्धक गुणों और क्रिया-प्रवृत्ति को चयन करने की विधि का वर्णन किया गया है।

चारित्र का प्रारम्भ ही संयम से होता है। अतः असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति ही चारित्र-विधि है। सम्यक् प्रवृत्ति ही अन्त में अप्रवृत्ति के रूप में प्रतिफलित होती है।

पंच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दशविध श्रमण धर्म, सम्यक्त्प, कषाय विजय आदि सब चारित्र के ही अंग हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में साधक को पग-पग पर सावधान किया है कि वह संयम में आगे बढ़कर पुनः पीछे न हटे। इसी दृष्टि से राग-द्वेष, विराधना, अशुभ लेश्या, क्रियास्थान, कषाय, पाँच अशुभ क्रियाएँ, असमाधि स्थान, शबल दोष, महामोह स्थान आदि विघ्नों पर दृष्टिपात करके उनसे बचने की प्रेरणा भी दी गई है।

मूल में असंयम से निवृत्ति और संयम में प्रवृत्ति का सन्देश मुखरित है। किन्तु साधक फूलों के साथ शूलों को भी अपनी झोली में न भर ले, इसी कारण दोषों की ओर भी संकेत किया गया है तथा उनको विवेचित भी किया गया है।

साधक को चाहिए कि रागात्मक प्रवृत्तियों से दूर रहे। किसी भी कारण से चित्त में उद्वेग उत्पन्न न होने दे। आम्रव हेतुओं का वर्जन करे। आत्म-संलीनता-समाधि में रहे और असमाधि स्थानों से दूर रहे।

संक्षेप में दुष्प्रवृत्तियों से दूर रहकर सत्प्रवृत्तियों में साधक सतत प्रयत्नशील रहे।

यही इस अध्ययन का सन्देश और प्रेरणा-बिन्दु है।

इसकी (चरण-विधि की) फलश्रुति भी अन्त में मोक्ष-प्राप्ति बताई गई है।

प्रस्तुत अध्ययन में २१ गाथाएँ हैं।





## EKATRIMSH ADHYAYAN : CHARAN-VIDHI

### Foreview

The title of this chapter is *Charan-vidhi* or Mode of Conduct. *Charan-vidhi* means modus operandi of conduct (*chaaritra*). To know, understand and sincerely accept the code of conduct and then to act accordingly is *Charan-vidhi*.

This chapter is numerically oriented. Like *Sthananga* and *Samavayanga Sutras* this chapter uses numbers as classifying instruments. Various facets/virtues of ascetic-conduct have been described in numerical arrangement from one to thirty-three. Though some topics are related to knowledge but conduct gets the importance.

Conduct is like backbone for ascetics (male and female both). For this reason, this chapter describes the process of selecting activities promoting codes of conduct and virtues by aspirant by categorizing as meant for rejecting, knowing and following.

The beginning of following conduct is through restraint alone. Therefore avoiding indiscipline and indulging in restraint is the mode of conduct. Right indulgence ultimately leads to non-indulgence.

Five great vows, five circumspections, three restraints, ten fold ascetic religion, right austerities, victory over passions, all these are parts of conduct.

In this chapter the aspirant is warned at every step that once advancing on the path of restraint he should not retract. With this view he has been inspired to keep an eye on and protect himself from obstacles including attachment-aversion, transgression, ignoble soul-complexion (*leshya*), passions, five evil activities, non-serenity, great faults and intense obsession.

Basically the emphasis is on the message of avoiding indiscipline and practising restraint. But the aspirant may not fill his bag with thorns of faults along with the flowers of virtues; the faults have also been pointed out and elaborated.

Aspirant should remain away from attachment inducing indulgences. He should not allow anything to disturb his mind and avoid the causes of inflow of *karmas*. He should be serenely introvert and avoid transgressions in the code.

In brief an aspirant should always avoid ignoble indulgences and exert in noble indulgences.

This is the message and inspiring theme of this chapter.

In the end the culmination of this mode of conduct is said to be in gaining liberation.

The chapter has 21 verses.



एगतीशङ्गमं श्रुज्जयणं : चरणविधि  
एकत्रिंश अध्ययन : चरण-विधि  
Chapter-31 : MODE OF CONDUCT

चरणविहिं पवक्खामि, जीवस्स उ सुहावहं।  
जं चरित्ता बहू जीवा, तिण्णा संसारसागरं ॥ १ ॥

जीव (प्राणियों) के लिए सुखकारी चरण-विधि को मैं कहता हूँ, जिसका आचरण करके बहुत से जीव संसार-सागर को तर गये हैं ॥ १ ॥

I describe the mode of conduct, which bestows happiness to souls (living beings) and practicing which innumerable souls have crossed the worldly ocean. (1)

एगओ विरइं कुज्जा, एगओ य पवत्तणं।  
असंजमे नियत्तिं च, संजमे य पवत्तणं ॥ २ ॥

(साधक) एक ओर से विरति (निवृत्ति) करे और एक ओर प्रवृत्ति करे; असंयम से निवृत्ति करे और संयम में प्रवृत्ति करे ॥ २ ॥

An aspirant should desist from one and indulge in the other; he should desist from indiscipline and practise restrain. (2)

रागहोसे य दो पावे, पावकम्मपवत्तणे।  
जे भिक्खू रुम्भई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ ३ ॥

पापकर्म में प्रवृत्त करने वाले राग और द्वेष हैं। जो भिक्षु इन दोनों को सदा-नित्य रोकता है—निरोध करता है, वह मण्डल (जन्म-मरण रूप संसार) में नहीं रहता ॥ ३ ॥

Attachment and aversion push towards sinful activity. The ascetic who always resists the two does not stay in the cycle (the cycles of rebirths and deaths in this world). (3)

दण्डाणं गारवाणं च, सल्लाणं च तियं तियं।  
जे भिक्खू चयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ ४ ॥

जो भिक्षु तीन प्रकार के दण्डों, तीन प्रकार के गौरवों और तीन प्रकार के शल्यों का सदा त्याग करता है, वह मण्डल (संसार) में नहीं रहता ॥ ४ ॥

The ascetic, who always renounces the three sets of—three types of self-inflictions (*dand*), three types of conceits (*gaurava*) and three types of internal thorns (*shalya*)—does not stay in the cycle. (4)

दिव्वे य जे उवसग्गे, तहा तेरिच्छ-माणुसे।  
जे भिक्खू सहई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ ५ ॥



जो भिक्षु दिव्य (देवकृत), मनुष्यकृत, तिर्यचकृत उपसर्गों को सदा समभाव से सहता है, वह मण्डल (संसार) में नहीं रहता ॥ ५ ॥

The ascetic, who endures afflictions caused by divine beings, humans and animals with equanimity, does not stay in the cycle. (5)

विगहा-कसाय-सन्नाणं, ज्ञाणाणं च दुयं तथा।  
जे भिक्खू वज्जई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ ६ ॥

जो भिक्षु चार प्रकार की विकथाओं, चार कषायों, चार संज्ञा और दो दुर्ध्यानों (आर्त-रौद्र ध्यान) का सदा वर्जन-त्याग करता है, वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता-नहीं रहता ॥ ६ ॥

The ascetic who renounces four types of opprobrium (*vikatha*), four passions, four types of obsessions (*sanjna*) and two ignoble mental states (*durdhyan*), does not stay in the cycle. (6)

वाएसु इन्दियत्थेसु, समिईसु किरियासु य।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ ७ ॥

जो भिक्षु व्रतों (पाँच महाव्रतों) तथा पाँच समितियों के पालन में और पंचेन्द्रिय विषयों तथा (बन्धनकारी) क्रियाओं के परिहार में सदा यतनाशील रहता है, वह संसार में नहीं रहता ॥ ७ ॥

The ascetic who is always careful in observing vows (five great vows), circumspections (five) and in renouncing subjects and activities of five senses (pleasures that cause bondage), does not stay in the cycle. (7)

लेसासु छसु काएसु, छक्के आहारकारणे।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ ८ ॥

जो भिक्षु छह प्रकार की लेश्याओं में, छह काया (पृथ्वी आदि छह काय के जीव) तथा आहार (ग्रहण करने-न करने) के छह कारणों में सदा यतना का पालन करता है, वह संसार में नहीं रहता ॥ ८ ॥

The ascetic, who is always careful about six types of soul-complexions (*leshyas*), six bodies (six kinds of bodied beings including earth-bodied beings), six reasons for food (to be or not to be taken) does not stay in the cycle. (8)

पिण्डोगहपडिमासु, भयद्वाणे सु सत्तसु।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ ९ ॥

जो भिक्षु (सात) पिण्ड (एषणाओं), (सात) अवग्रह प्रतिमाओं और सात भयस्थानों में सदा यतनाशील (उपयोगयुक्त) रहता है, वह संसार में नहीं ठहरता-परिभ्रमण नहीं करता ॥ ९ ॥

The ascetic who is always careful (in observing) about seven codes of collecting food, seven codes of resolution and seven sources of fear does not stay (transmigrate) in the cycle. (9)

मयेसु बभ्भगुत्तीसु, भिक्खुधम्ममि दसविहे।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १० ॥



जो भिक्षु (आठ) मदस्थानों में, (नौ प्रकार की) ब्रह्मचर्य गुप्तियों में और दस प्रकार के भिक्षु धर्मों (श्रमण धर्मों) से सदा यतनाशील (उपयोगयुक्त) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥ १० ॥

The ascetic who is always careful (in exerting) about (eight types of) conceits, (nine types of) celibacy related restraints, and ten types of ascetic-codes does not stay in the cycle.

उवासगाणं पडिमासु, भिक्खूणं पडिमासु य।

जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ ११ ॥

जो भिक्षु उपासकों (श्रमणोपासकों) की (ग्यारह) प्रतिमाओं और भिक्षु (साधु की बारह) प्रतिमाओं में सदा (उपयोगवान) यतनाशील रहता है, वह संसार में नहीं रहता ॥ ११ ॥

The ascetic who is always careful (in observing) about householder's special practices (eleven *shravak-pratimas*), special practices of ascetics (twelve *bhikshu-pratimas*) does not stay in the cycle. (11)

किरियासु भूयगामेसु, परमाहम्मिएसु य।

जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १२ ॥

जो भिक्षु (तेरह) क्रियाओं में, (चौदह प्रकार के) भूतग्रामों (जीव समूहों) और (पन्द्रह प्रकार के) परमाधार्मिक देवों में सदा यतनाशील (उपयोगवान) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥ १२ ॥

The ascetic who is always careful about thirteen types of activities, fourteen kinds of groups of living beings and fifteen kinds of extremely irreligious deities does not stay in the cycle. (12)

गाहासोलसएहिं, तहा असंजमम्मि य।

जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १३ ॥

जो भिक्षु गाथा षोडशक (सूत्रकृतांग के सोलह अध्ययन) और (सत्रह प्रकार के) असंयम में सदा (उपयोगयुक्त) यतनावान रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥ १३ ॥

The ascetic who is always careful about the sixteen chapters (the set of 16 chapters of *Sutrakritanga Sutra* about ascetics) and indiscipline (seventeen kinds) does not stay in the cycle. (13)

बम्भम्मि नायज्झयणेसु, ठाणेसु य ऽसमाहिण।

जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १४ ॥

जो भिक्षु (अठारह प्रकार के) ब्रह्मचर्य, (उन्नीस प्रकार के) ज्ञातासूत्र के अध्ययन तथा (बीस प्रकार के) असमाधिस्थानों में सदा यतनाशील (उपयोगवान) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥ १४ ॥

The ascetic who is always careful about celibacy (eighteen types), chapters of *Jnata Sutra* (nineteen) and causes of non-serenity (twenty) does not stay in the cycle. (14)

एगवीसाए सबलेसु, बावीसाए परीसहे।

जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १५ ॥



इक्कीस शबल दोषों और बाईस परीषहों में जो भिक्षु सदा यतना (उपयोगवान) रखता है, वह संसार में प्ररिभ्रमण नहीं करता ॥ १५ ॥

The ascetic who is always careful about twenty-one blemishes (faults in conduct) and twenty-two afflictions does not stay in the cycle. (15)

तेवीसइ सूयगडे, रूवाहिएसु सुरेसु अ।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १६ ॥

जो भिक्षु सूत्रकृतांगसूत्र के तेईस अध्ययनों और (चौबीस प्रकार के) अत्यन्त सुन्दर रूप वाले देवों में उपयोगवान (यतनाशील) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥ १६ ॥

The ascetic who is always careful about twenty-three chapters of *Sutrakritanga Sutra* and twenty-four types of powerful divine beings does not stay in the cycle. (16)

पणवीस-भावणाहिं, उद्देसेसु दसाइणं।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १७ ॥

जो भिक्षु (पाँच महाव्रतों की) पच्चीस भावनाओं और दशाश्रुतस्कन्ध आदि के (छब्बीस) उद्देशकों में सदा यतनावान (उपयोगयुक्त) रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥ १७ ॥

The ascetic who is always careful about twenty-five supporting sentiments (of five great vows) and chapters of *Dashashrutaskandha* etc. (twenty-six) does not stay in the cycle. (17)

अणगारगुणेहिं च, पकप्पम्मि तहेव य।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १८ ॥

जो भिक्षु (सत्ताईस प्रकार के) अनगार गुणों में और प्रकल्प (आचार-प्रकल्प-आचारांग के अट्ठाईस अध्ययन) में सदा उपयोगयुक्त-यतनाशील रहता है, वह संसार में नहीं रुकता ॥ १८ ॥

The ascetic who is always careful about the virtues of an ascetic (twenty-seven) and *Prakalp* (twenty-eight chapters of *Achaar-Prakalp* or *Acharanga Sutra*) does not stay in the cycle. (18)

पावसुयपसंगेसु, मोहट्टाणेसु चेव य।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ १९ ॥

जो भिक्षु (उन्तीस प्रकार के) पापश्रुत प्रसंगों और मोहस्थानों (तीस प्रकार के महामोहनीय कर्मबन्ध के स्थानों) में सदा यतनाशील रहता है, वह संसार में नहीं ठहरता ॥ १९ ॥

The ascetic who is always careful about incidents from sinful scriptures (twenty-nine) and sources of delusion (thirty causes of bondage of intensely deluding *karmas*) does not stay in the cycle. (19)

सिद्धाइगुणजोगेसु, तेत्तीसासायणासु य।  
जे भिक्खू जयई निच्चं, से न अच्छइ मण्डले ॥ २० ॥



जो भिक्षु सिद्धों के (इकतीस प्रकार के) गुणों, (बत्तीस प्रकार के) योग संग्रहों तथा तेतीस प्रकार की आशातना में सदैव यतनावान रहता है, वह संसार में नहीं रहता ॥ २० ॥

The ascetic who is always careful about virtues of the perfected ones (thirty-one), noble associations (thirty-two kinds of noble associations of mind-speech-body) and thirty-three types of transgressions (*ashaatana*) does not stay in the cycle. (20)

इइ एएसु ठाणोसु, जे भिक्खू जयई सया।  
खिण्णं से सव्वसंसारा, विण्णमुच्चइ पण्डओ ॥ २१ ॥

—त्ति बेमि।

इस प्रकार जो पण्डित (तत्त्ववेत्ता-सद्सद्विवेकी) भिक्षु इन स्थानों में सदा यतना रखता है, वह शीघ्र ही सर्व संसार से विमुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Thus the sagacious ascetic who is always careful about the aforesaid themes soon gets liberated from the whole cycle of rebirths (*samsaar*). (21)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

**तीन दण्ड**—दुष्प्रवृत्ति में संलग्न मन, वचन और काया-तीनों दण्ड हैं। इनसे चारित्ररूप ऐश्वर्य का तिरस्कार होता है, आत्मा दण्डित होता है।

**तीन गौरव**—(१) ऋद्धि गौरव-ऐश्वर्य का अभिमान, (२) रस गौरव-रसों का अभिमान, (३) सात गौरव-सुखों का अभिमान।

गौरव अभिमान से उत्तप्त हुए चित्त की एक विकृत स्थिति है।

**तीन शल्य**—(१) माया, (२) निदान-ऐहिक तथा पारलौकिक भौतिक सुख की प्राप्ति के लिये धर्म का विनिमय, (३) मिथ्यादर्शन-आत्मा का तत्त्वों के प्रति मिथ्यारूप दृष्टिकोण।

शल्य काँटे या शस्त्र की नोंक को कहते हैं। जैसे वह पीड़ा देता है, उसी प्रकार साधक को ये शल्य भी निरन्तर उत्पीड़ित करते हैं। (वृहद्वृत्ति)

**चार विकथा**—(१) स्त्री कथा-स्त्री के रूप, लावण्य आदि का वर्णन करना, (२) भक्त कथा-नाना प्रकार के भोजन की कथा, (३) देश कथा-नाना देशों के रहन-सहन आदि की कथा, (४) राज कथा-राजाओं के ऐश्वर्य तथा भोगविलास का वर्णन। (स्थानांग ४)

**चार संज्ञा**—संज्ञा का अर्थ है—आसक्ति और मूर्च्छना। (स्थानांग ४)

(१) आहार संज्ञा, (२) भय संज्ञा, (३) मैथुन संज्ञा, और (४) लोभ संज्ञा।

**पाँच व्रत**—अहिंसा आदि पाँच व्रत हैं।

**पाँच इन्द्रियाँ**—शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श-ये पाँच इन्द्रियों के विषय हैं।



पाँच क्रियायें—(१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी-शस्त्रादि अधिकरण से सम्बन्धित, (३) प्राद्वेषिकी-द्वेष रूप, (४) पारितापनिकी, (५) प्राणातिपात-प्राणिहिंसा।

सात पिण्ड और अवग्रह की प्रतिमायें—

पिण्ड का अर्थ आहार है।

अवग्रह (स्थान) आहार ग्रहण करने में स्थान सम्बन्धी अभिग्रह (संकल्प) करना।

इनका वर्णन स्थानांगसूत्र ७ में देखें।

सात भय—

१. इहलोक भय—अपनी ही जाति के प्राणी से डरना, इहलोक भय है। जैसे मनुष्य का मनुष्य से, तिर्यच का तिर्यच आदि से डरना।

२. परलोक भय—दूसरी जाति वाले प्राणी से डरना, परलोक भय है। जैसे मनुष्य का देव से या तिर्यच आदि से डरना।

३. आदान भय—अपनी वस्तु की रक्षा के लिये चोर आदि से डरना।

४. अकस्मात् भय—किसी बाह्य निमित्त के बिना अपने आप ही सशंक होकर रात्रि आदि में अचानक डरने लगना।

५. आजीव भय—दुर्भिक्ष आदि में जीवन यात्रा के लिये भोजन आदि की अप्राप्ति के दुर्विकल्प से डरना।

६. मरण भय—मृत्यु से डरना।

७. अश्लोक भय—अपयश की आशंका से डरना। (स्थानांग ७)

आठ मद स्थान—

१. जाति मद—ऊँची और श्रेष्ठ जाति का अभिमान।

२. कुल मद—ऊँचे कुल का अभिमान।

३. बल मद—अपने बल का घमण्ड।

४. रूप मद—अपने रूप, सौन्दर्य का गर्व।

५. तप मद—उग्र तपस्वी होने का अभिमान।

६. श्रुत मद—शास्त्राभ्यास अर्थात् पाण्डित्य का अभिमान।

७. लाभ मद—अभीष्ट वस्तु के मिल जाने पर अपने लाभ का अहंकार।

८. ऐश्वर्य मद—अपने ऐश्वर्य अर्थात् प्रभुत्व का अहंकार। (स्थानांग ८)

नौ ब्रह्मचर्य गुप्ति—

इनके लिये इसी सूत्र का १६वाँ अध्ययन देखें।

दस श्रमण धर्म—

१. क्षान्ति—क्रोध न करना।

२. मार्दव—मृदु भाव रखना। जाति, कुल आदि का अहंकार न करना।

३. आर्जव—ऋजुभाव-सरलता रखना, माया न करना।

४. मुक्ति—निर्लोभता रखना, लोभ न करना।



५. तप—अनशन आदि बारह प्रकार का तप करना।
६. संयम—हिंसा आदि आस्रवों का निरोध करना।
७. सत्य—सत्य भाषण करना, झूठ न बोलना।
८. शौच—संयम में दूषण न लगाना, संयम के प्रति निरुपलेपता-पवित्रता रखना।
९. आकिंचन्य—परिग्रह न रखना।
१०. ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य का पालन करना।

ग्यारह उपासक प्रतिमायें—(देखें समवायांग ११)

बारह भिक्षु प्रतिमायें—(देखें समवायांग १२)

तेरह क्रियास्थान—(देखें समवायांग १३)

चौदह भूतग्राम—जीवसमूह

(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय, (२) बादर एकेन्द्रिय, (३) द्वीन्द्रिय, (४) त्रीन्द्रिय, (५) चतुरिन्द्रिय, (६) असंज्ञी पंचेन्द्रिय, और (७) संज्ञी पंचेन्द्रिय। इन सातों के पर्याप्त और अपर्याप्त-कुल चौदह भेद होते हैं। इनकी विराधना करना, किसी भी प्रकार की पीड़ा देना वर्जित है। (समवायांगसूत्र)

पंद्रह परमाधार्मिक—परम-आधार्मिक अर्थात् पापचारी क्रूर एवं निर्दय असुर जाति के देव हैं। इनके हिंसाकर्मों का अनुमोदन नहीं करना।

गाथा षोडशक—

(सूत्रकृतांगसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध के १६ अध्ययन)

सत्रह प्रकार का असंयम—

१-९. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय—उक्त नौ प्रकार के जीवों की हिंसा करना, कराना, अनुमोदन करना।

१०. अजीव असंयम—अजीव होने पर भी जिन वस्तुओं के द्वारा असंयम होता हो, उन बहुमूल्य वस्त्र-पात्र आदि का ग्रहण करना अजीव असंयम है।

११. प्रेक्षा असंयम—जीवसहित स्थान में उठना, बैठना, सोना आदि।

१२. उपेक्षा असंयम—गृहस्थ के पापकर्मों का अनुमोदन करना।

१३. अपहृत्य असंयम—अवधि से किसी अनुपयोगी वस्तु का परठना। इसे परिष्ठापना असंयम भी कहते हैं।

१४. प्रमार्जना असंयम—वस्त्र-पात्र आदि की प्रमार्जना न करना।

१५. मनः असंयम—मन में दुर्भाव रखना।

१६. वचन असंयम—कुवचन या असत्य बोलना।

१७. काय असंयम—गमनागमनादि क्रियाओं में असावधान रहना। (समवायांग १७)

अठारह अब्रह्मचर्य—

देव-सम्बन्धी भोगों का मन, वचन और काय से स्वयं सेवन करना, दूसरों से करवाना तथा करते हुए को भला जानना—इस प्रकार नौ भेद वैक्रिय शरीर सम्बन्धी होते हैं। मनुष्य तथा तिर्यच सम्बन्धी औदारिक भोगों के भी इसी तरह नौ भेद समझ लेने चाहिये। कुल मिलाकर अठारह भेद होते हैं। (समवायांग १८)





ज्ञाताधर्मकथा के १९ अध्ययन—(देखें ज्ञातासूत्र)

बीस असमाधिस्थान—(देखें समवायांग २०)

इक्कीस शबल दोष—(दशाश्रुतस्कन्ध, दशा २)

बाईस परीषह—(देखिये, उत्तराध्ययन का दूसरा परीषह अध्ययन)

गाथा १६—सूत्रकृतांगसूत्र के २३ अध्ययन—

उक्त तेईस अध्ययनों के कथानानुसार संयमी जीवन न होना, दोष है।

**चौबीस देव**—यहाँ रूप का अर्थ एक है। अतः पूर्वोक्त तेईस संख्या में एक अधिक मिलाने से रूपाधिक का अर्थ २४ होता है। चौबीस प्रकार के देव १० असुरकुमार आदि दशभवनपति, ८ भूत-यक्ष आदि आठ व्यन्तर, ५ सूर्य-चन्द्र आदि पाँच ज्योतिष्क और एक वैमानिक देव-इस प्रकार कुल चौबीस जाति के देव हैं। इनकी प्रशंसा करना भोग-जीवन की प्रशंसा करना है और निन्दा करना द्वेषभाव है। अतः मुमुक्षु को तटस्थ भाव ही रखना चाहिये।

समवायांग में २४ देवों से २४ तीर्थकरों को ग्रहण किया गया है।

**पाँच महाव्रतों की २५ भावनायें**—(विस्तार के लिये देखें भावना योग आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी)

**दशाश्रुत आदि तीनों सूत्रों के २६ उद्देशन काल**—

दशाश्रुतस्कन्धसूत्र के दश उद्देश, बृहत्कल्प के छह उद्देश और व्यवहारसूत्र के दश उद्देश—इस प्रकार तीनों के छब्बीस उद्देश होते हैं।

जिस श्रुतस्कन्ध या अध्ययन के जितने उद्देश होते हैं उतने ही वहाँ उद्देशन काल अर्थात् श्रुतोपचार रूप उद्देशावसर होते हैं। एक दिन में जितने श्रुत की वाचना (अध्यापन) दी जाती है उसे एक उद्देशन काल कहा जाता है।

**सत्ताईस अनगार के गुण**—(देखें समवायांग २७)

(१-५) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाँच महाव्रतों का सम्यक् पालन करना। (६) रात्रि-भोजन का त्याग करना, (७-११) पाँचों इन्द्रियों को वश में रखना, (१२) भाव सत्य-अन्तःकरण की शुद्धि, (१३) कारण सत्य-वस्त्र पात्र आदि की भली-भाँति प्रतिलेखना करना, (१४) क्षमा, (१५) विरागता-लोभनिग्रह, (१६) मन की शुभ प्रवृत्ति, (१७) वचन की शुभ प्रवृत्ति, (१८) काय की शुभ प्रवृत्ति, (१९-२४) छह काय के जीवों की रक्षा, (२५) संयम-योगयुक्तता, (२६) वेदनाऽभिसहन-तितिक्षा अर्थात् शीत आदि से सम्बन्धित कष्टसहिष्णुता, (२७) मारणान्तिकाऽभिसहन-मारणान्तिक कष्ट को भी समभाव से सहना। उक्त गुण आचार्य हरिभद्र ने आवश्यकसूत्र की शिष्यहिता वृत्ति में बताये हैं। समवायांगसूत्र में कुछ भिन्नता है।

**गाथा १८—अट्ठाईस आचार प्रकल्प**—

(आचारांगसूत्र के २५ अध्ययन तथा निशीथ के तीन अध्ययन)

**गाथा १९—पापश्रुत के २९ भेद**—

(१) भौम-भूमिकम्प आदि का फल बताने वाला शास्त्र, (२) उत्पात-रुधिर वृष्टि, दिशाओं का लाल होना इत्यादि का शुभाशुभ फल बताने वाला निमित्त शास्त्र, (३) स्वप्नशास्त्र, (४) अन्तरिक्ष-आकाश में होने वाले ग्रहवेध आदि का वर्णन करने वाला शास्त्र, (५) अंग शास्त्र-शरीर के स्पन्दन आदि का फल



कहने वाला शास्त्र, (६) स्वर शास्त्र, (७) व्यंजन शास्त्र-तिल, मष आदि का वर्णन करने वाला शास्त्र, (८) लक्षण शास्त्र-स्त्री-पुरुषों के लक्षणों का शुभाशुभ फल बताने वाला शास्त्र।

ये आठों ही सूत्र, वृत्ति और उनकी वार्तिक के भेद से चौबीस शास्त्र हो जाते हैं।

(२५) विकथानुयोग-अर्थ और काम के उपायों को बताने वाले शास्त्र, जैसे वात्स्यायनकृत कामसूत्र आदि, (२६) विद्यानुयोग-रोहिणी आदि विद्याओं की सिद्धि के उपाय बताने वाले शास्त्र, (२७) मन्त्रानुयोग-मन्त्र आदि के द्वारा कार्य सिद्धि बताने वाले शास्त्र, (२८) योगानुयोग-वशीकरण आदि योग बताने वाले शास्त्र, (२९) अन्यतीर्थिकानुयोग-अन्यतीर्थिकों द्वारा प्रवर्तित एवं अभिमत हिंसा-प्रधान आचारशास्त्र।

गाथा १९—महामोहनीय के ३० स्थान—(देखें दशाश्रुतस्कन्ध एवं समवायांगसूत्र)

सिद्धों के ३१ अतिशायी गुण—(देखें समवायांग ३१)

बत्तीस योग संग्रह—

मन, वचन, काया के प्रशस्त योगों का एकत्रीकरण योग संग्रह है।

१. गुरुजनों के पास दोषों की आलोचना करना, २. किसी के दोषों की आलोचना सुनकर अन्य के पास न कहना, ३. संकट पड़ने पर भी धर्म में दृढ़ रहना, ४. आसक्तिरहित तप करना, ५. सूत्रार्थग्रहणरूप ग्रहण शिक्षा एवं प्रतिलेखना आदिरूप आसेवना-आचार शिक्षा का अभ्यास करना, ६. शोभा-शृंगार नहीं करना, ७. पूजा-प्रतिष्ठा का मोह त्यागकर अज्ञात तप करना, ८. लोभ का त्याग, ९. तितिक्षा, १०. आर्जव-सरलता, ११. शुचि-संयम एवं सत्य की पवित्रता, १२. सम्यक्त्व शुद्धि, १३. समाधि-प्रसन्नचित्ता, १४. आचार पालन में माया न करना, १५. विनय, १६. धैर्य, १७. संवेग-सांसारिक भोगों से भय अथवा मोक्षाभिलाषा, १८. माया न करना, १९. सदनुष्ठान, २०. संवर-पापास्रव को रोकना, २१. दोषों की शुद्धि करना, २२. कामभोगों से विरक्ति करना, २३. मूलगुणों का शुद्ध पालन, २४. उत्तरगुणों का शुद्ध पालन, २५. व्युत्सर्ग करना, २६. प्रमाद न करना, २७. प्रतिक्षण संयम यात्रा में सावधानी रखना, २८. शुभ ध्यान, २९. मारणान्तिक वेदना होने पर भी अधीर न होना, ३०. संग का परित्याग करना, ३१. प्रायश्चित्त ग्रहण करना, ३२. अन्त समय में संलेखना करके आराधक बनना। (समवायांग ३२)

तेतीस आशातना—

देखें दशाश्रुतस्कन्ध, दशा ३ तथा समवायांग ३३ एवं श्रमणसूत्र-उपाध्याय श्री अमर मुनि।

## IMPORTANT NOTES

**Three self-inflictions (dand)**—They are mental, vocal and physical indulgence in evil tendencies. They insult the glory of right conduct and inflict the soul.

**Three conceits**—(1) Conceit of wealth and grandeur, (2) Conceit of tastes, and (3) Conceit of pleasures.

Gaurava (conceit) is perverted state of mind caused by bloated ego.

**Three internal thorns (shalya)**—(1) Deceit, (2) Nidaan or desire of gaining mundane pleasures in this and the next birth in exchange of performed religious rituals, (3) Unrighteousness or belief in false fundamentals or reality.



*Shalya* is thorn or a point of a weapon. As this gives pain, so the internal thorns also torment the aspirant.

**Four opprobrium (*vikatha*)**—(1) Talk of women or describing the beauty and charm and the like of women; (2) Talk of food or describing variety foods; (3) Talk of country or describing ways of life in various countries; and (4) Talk of kings or describing grandeur and enjoyments of kings. (*Sthananga*, 4)

**Four *Sanjnas***—*Sanjna* means obsession and delusion. (*Sthananga*, 4).

It is of four kinds, related to (1) food, (2) fear, (3) cohabitation, and (4) greed.

**Five vows**—They are five great vows including ahimsa.

**Five sense organs**—sound, form, smell, taste and touch are the subjects of five sense organs.

**Five activities**—(1) *Kaayiki*—bodily or physical activity; (2) *Aadhikaraniki*—activity involving tools or weapons; (3) *Pradveshiki*—hostile action inspired by aversion; (4) *Paaritapaniki*—punitive action of inflicting punishment and pain on others; and (5) *Pranatipatiki*—act of harming or destroying life.

**Seven *pratimas* of *pind* and *avagraha***—

*Pind* means food.

Special resolution (*avagraha*) pertaining to place for seeking and accepting food.

Refer to *Sthananga*, 7 for detailed description.

**Seven fears**—

1. *Ihaloka bhaya*—Fear from beings of own species. For example fear of man from other man, fear of animal from other animal etc.

2. *Paraloka bhaya*—Fear from beings of alien species. For example fear of man from divine beings and animals.

3. *Aadaana bhaya*—Fear from thieves, bandits etc. for protecting own possessions.

4. *Akasmaata bhaya*—Fear without any external cause. For instance, to be apprehensive suddenly during the night.

5. *Aajiva bhaya*—Fear due to apprehension of not getting food and other necessities for subsistence during adverse conditions like a famine.

6. *Marana bhaya*—Fear of death.

7. *Ashloka bhaya*—Fear due to expected defamation. (*Sthananga*, 7)

**Eight conceits**—

1. Conceit of caste—Conceit of high and superior caste.

2. Conceit of lineage—Conceit of higher family.

3. Conceit of power—Conceit of own strength.

4. Conceit of beauty—Conceit of own appearance and beauty.

5. Conceit of austerity—Conceit of being an observer of rigorous austerities.

6. Conceit of knowledge—Conceit of intelligence and scholarship of scriptures.

7. Conceit of gain—Conceit of gain on getting a desired thing.

8. Conceit of wealth—Conceit of grandeur and authority.

**Nine restraints of celibacy**—

Refer to 16<sup>th</sup> chapter of this book for these.



**Ten ascetic-codes—**

1. *Kshaanti*—to renounce anger.
2. *Maardava*—to be modest; to avoid conceit of caste, family and the like.
3. *Aarjava*—to be unassuming; to avoid deceit.
4. *Mukti*—to avoid greed.
5. *Tapa*—to observe twelve types of austerities including fasting.
6. *Samyam*—to block inflow of *karmas* due to violence and the like.
7. *Satya*—to speak truth; to avoid telling lies.
8. *Shaucha*—to avoid flaws in restraint; to observe purity in restrain.
9. *Aakinchanya*—to renounce possessions.
10. *Brahmacharya*—to practise celibacy.

**Eleven special practices of householders (*shravak-pratimas*)—**

(For these see *Samavayanga Sutra*, 11)

**Twelve special practices of ascetics (*bhikshu-pratimas*)—**

(For these see *Samavayanga Sutra*, 12)

**Thirteen activities (*kriyasthan*)—**

(For these see *Samavayanga Sutra*, 13)

**Fourteen groups of living beings (*Bhutagram*)—**

(1) Minute one-sensed beings, (2) Gross one-sensed living beings, (3) Two-sensed beings, (4) Three-sensed beings, (5) Four-sensed beings, (6) Five-sensed non-sentient (*asanjni*) beings, (7) Five-sensed sentient (*sanjni*) beings. All these have of two types each—fully developed (*paryaapta*) and under developed (*aparyaapta*) making a total of fourteen. Harming or causing pain to any of these in any way is prohibited. (*Samavayanga Sutra*)

**Fifteen most irreligious deities—**

These are most irreligious, atrocious and unkind deities of Asura class. Not to attest their sinful deeds.

**Sixteen chapters—**

To study the set of 16 chapters of the first part of *Sutrakritanga Sutra* (about ascetics).

**Seventeen types of non-restrain (*asamyam*)—**

1-9. *Jiva asamyam*—To harm, cause to harm and consent harming any of the following nine kinds of living beings—earth-bodied, water-bodied, fire-bodied, air-bodied, plant-bodied, two-sensed, three-sensed, four sensed and five-sensed.

10. *Ajiva asamyam*—To acquire costly garb, alms-bowls and the like that inspire non-restraint although they are lifeless.

11. *Preksha Asamyam*—To stand, sit, or recline at a place infested with living beings.

12. *Upeksha Asamyam*—To approve sinful deeds of householders.

13. *Apahritya Asamyam*—To throw any useless thing improperly. It is also called *parishthaapana asamyam*.

14. *Praamarjana Asamyam*—Not to clean garb and pots.

15. *Manah Asamyam*—To have evil thoughts.

16. *Vachan Asamyam*—To use bad and false statements.

17. *Kaaya Asamyam*—To be careless in movement or physical activities.



### **Eighteen types of non-celibacy—**

Nine types of celibacy includes mental, vocal and physical indulgence in, causing such indulgence in and approving of such indulgence in carnal enjoyments related to divine beings. These nine types are with regard to transmutable body (*vaikriya sharira*). The same goes for gross physical body making a total of eighteen.

### **Nineteen chapters of *Jnata Sutra*—**

(For this see *Jnata Sutra*)

### **Twenty causes of non-serenity (*Asamaadhi sthaan*)—**

(For these see *Samavayanga Sutra*, 20)

### **Twenty-one blemishes (*Shabala Dosha*)—**

(For these faults in conduct see *Dashashrutaskandh*, 2)

### **Twenty-two afflictions—**

(For these see second chapter of this book)

### **Twenty-three chapters of *Sutrakritanga*—**

For these see *Sutrakritanga Sutra*. It is a fault not to lead a life of restraints as stated in these twenty-three chapters.

### **Twenty-four powerful divine beings—**

Here the word *rupa* stands for one. Therefore adding one (*rupa-adhik*) to the preceding number (twenty-three) makes it twenty-four. Twenty-four types of divine beings include – 10 types of Bhavanpati (abode dwelling) gods including Asura Kumars, 8 types of Vyantara (interstitial) gods including Bhoot and Yaksha, 5 types of Jyotishka (stellar) gods including the sun and the moon and one type of Vaimanik (celestial vehicle dwelling) gods. Their praise is praise of joyous mundane life or attachment and to criticize them is aversion. As such, an aspirant should remain impartial.

In *Samavayanga* the interpretation is twenty-four Tirthankaras instead of divine beings.

### **Twenty-five supporting sentiments of five great vows—**

For details of these refer to *Bhavana Yoga* by Acharya Shri Anand Rishi ji.

### **Twenty-six chapters of *Dashashrutaskandha* etc.—**

This is about the extant of teaching (*Uddeshana kaal*) in a day. *Dashashrutaskandha* has ten chapters (*uddesha*), *Brihatkalp* six and *Vyavahara Sutra* ten making a total of twenty-six *uddeshas*. This indicates that one chapter each day should be devoted for teaching these 26 chapters of the three scriptures.

### **Twenty-seven virtues of an ascetic—**

(For these see *Samavayanga*, 27)

These virtues of ascetic are described by Acharya Haribhadra. He has listed these virtues with some variation in his *Shishyahita vritti of Aavashyaka Sutra* –

(1-5) Right practise of five great vows—non-violence, truth, non-stealing, celibacy, non-possession; (6) renouncing food intake after sunset; (7-11) disciplining five sense organs; (12) true sentiments (*bhaava satya*)—purifying mind; (13) true means (*karan satya*)—proper inspection of garb and equipment; (14) forgiveness; (15) detachment or renouncing greed; (16) noble indulgence of mind; (17) noble indulgence of speech; (18) noble indulgence of body; (19-24) protection of six kinds of life forms; (25) association with restraint; (26) enduring pain and discomfort including that of cold; (27) enduring death-like afflictions with equanimity.



**Twenty-eight Prakalp—**

For this see twenty-five chapters of *Achaar-Prakalp* or *Acharanga Sutra* and three chapters of *Nishitha Sutra*.

**Twenty-nine sinful scriptures—**

24 Books of text (*Sutra*), commentary (*Vritti*) and elaboration (*Vartik*) of the following eight books of subjects of augury—(1) *Bhauma* (predictions based on earthquake and other natural calamities), (2) *Utpaata* (interpreting red rain, reddening of horizon in all directions etc.), (3) *Svapna Shastra* (dream divining), (4) *Anatariksha* (divining based on strange events in the sky including comets), (5) *Anga Shastra* (interpreting throbbing or other unusual activities of the body), (6) *Svar Shastra* (divining based on breath movement), (7) *Vyanjan Shastra* (interpreting body marks like moles, and (8) *Lakshan Shastra* (interpreting physical attributes of man and woman).

(25) *Vikathanuyoga*—books describing methods of enhancing economic and sexual prowess, like *Kamasutra* of Vatsyayana, (26) *Vidyanuyoga*—scriptures describing the practices for attaining special powers like *Rohini* etc., (27) *Mantranuyoga*—books detailing success through mantra chanting, (28) *Yoganuyoga*—scriptures dealing with methods of subjugating people, like hypnotism, mesmerism and the like, (29) *Anyatirthikanuyoga*—heretic scriptures promoting code of violence.

**Thirty sources of intense delusion or causes of bondage of intensely deluding karmas (Mahamohaniya karma)—**

For these see *Dashashrutaskandha Sutra* and *Samavayanga Sutra*.

**Thirty-one unique virtues of the perfected ones (Siddhas)—**

For these see *Samavayanga Sutra*, 31.

**Thirty-two kinds of noble associations (yoga samgraha)—**

Counting together of associations of mind, speech, body is *yoga samgraha*, they are -

(1) To criticize own faults before seniors, (2) Not to share confession of faults by others with anyone, (3) To remain steady in conduct even when in trouble, (4) To observe austerity without any mundane desires, (5) To practise study of religion (understanding text and meaning) and that of praxis (inspection etc.), (6) To avoid embellishments, (7) To observe austerities without publicity and desire for respect and honour, (8) To renounce greed, (9) Tolerance, (10) Simplicity, (11) Purity of restraint and truth, (12) Purity of righteousness, (13) Attitude of happiness, (14) To avoid deceit in practicing conduct, (15) Modesty, (16) Patience, (17) Craving for liberation and fear of mundane pleasures, (18) To avoid deceit, (19) To perform noble deeds, (20) To block inflow of *karmas*, (21) Mending faults, (22) Cultivate apathy for pleasures and comforts, (23) Immaculate practice of basic virtues (great vows), (24) Immaculate practise of secondary virtues (uttara guna), (25) To practice dissociation, (26) To avoid stupor, (27) To be alert and careful every moment in ascetic life, (28) Noble meditation, (29) To remain composed even in face of death-like affliction, (30) To renounce company, (31) To accept expiation, (32) To be true aspirant by accepting ultimate vow (*samlekhana*) when the end is near. (*Samavayanga Sutra*, 32)

**Thirty-three types of transgressions (ashaatana)—**

For these see *Dashashrutaskandha*, 3; *Samavayanga Sutra*, 33; and *Shraman Sutra* by Upadhyaya Shri Amar Muni.



## बत्तीसवाँ अध्ययन : प्रमाद-स्थान

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम 'प्रमाद-स्थान' है। इसमें साधक की साधना के प्रमुख विघ्न प्रमाद के कारणों का वर्णन करके साधक को उनसे दूर रहने की—निवारण की प्रेरणा दी गई है।

प्रमाद के भेद-प्रभेद अनेक प्रकार से बताये गये हैं—

प्रमाद के प्रमुख भेद ५ हैं—(१) मद्य (मद), (२) विषय, (३) कषाय, (४) विकथा, और (५) निद्रा-निन्दा अथवा निद्रा। इन्हीं के पन्द्रह अवान्तर भेद हो जाते हैं; क्योंकि विषय (इन्द्रियविषय) ५ प्रकार के हैं, कषाय और विकथा-दोनों के चार-चार भेद हैं।

अन्य अपेक्षा से प्रमाद के ८ भेद भी बताये गये हैं—(१) अज्ञान, (२) संशय, (३) मिथ्याज्ञान, (४) राग, (५) द्वेष, (६) स्मृतिभ्रंश, (७) धर्म के प्रति अनादर, और (८) मन-वचन-काया का दुष्प्रणिधान। (प्रवचनसारोद्धार, द्वार २०७, गाथा १२२-१२३)

सामान्य शब्दों में प्रमाद का अभिप्राय है—अजागृति, असावधानी, आलस्य, अविवेक, आत्म-लक्ष्य के प्रति स्मृति न रहना (Negligence) आदि।

यह सत्य है कि संयम यात्रा के लिए साधक को भी कुछ अपरिहार्य साधनों की आवश्यकता होती है। साधनों के बिना उसका जीवन यापन संभव ही नहीं है।

लेकिन साधन अपने आप में न शुभ हैं, न अशुभ; न अच्छे हैं, न बुरे। उनकी शुभता-अशुभता उपयोक्ता के भाव, मनोदशाएँ, वृत्ति-प्रवृत्तियाँ, राग-द्वेष आदि निर्धारित करते हैं।

भोजन शरीर-रक्षा के लिए अत्यावश्यक है। किन्तु यदि भोजन सिर्फ भोजन के लिए किया जाय, स्वादिष्ट पकवानों को अधिक मात्रा में खा लिया जाय तो वही भोजन उदर-व्याधियों और अनेक रोगों का कारण बनकर साधना में विघ्न बन जाता है।

शयन और आसन भी साधक के लिए आवश्यक हैं, किन्तु यदि वे स्त्री-नपुंसक से संसक्त हों तो काम विकारवर्द्धक बन जाते हैं, साधक अपने मन पर नियन्त्रण न रख पायेगा और उसकी साधना में विघ्न खड़ा हो जायेगा।

यही बात अन्य साधनों के विषय में भी सत्य है।

साधक का कर्तव्य है, साधनों को मात्र साधन समझे और इसी दृष्टि से उनका उपयोग करे, उनके प्रति मोह-ममत्व-मूर्च्छा के भाव मन में न आने दे।

राग-द्वेष, आसक्ति, मिथ्या-दर्शन, मोहादि का त्याग संसार के दुःखों से मुक्ति और एकान्त आत्मिक सुख की प्राप्ति के लिए अनिवार्य है।

प्रमाद में शिष्यैषणा भी सम्मिलित है। अपने शरीर की सेवा तथा सुख-सुविधा के लिए साधक को शिष्य बनाना उचित नहीं है। यद्यपि साधक को सहायक की आवश्यकता होती है, वह सहायक साथी मुनि भी हो सकता है और शिष्य भी। लेकिन आवश्यक है कि वह धर्म में प्रवीण और साधना में सहायक हो। यदि ऐसा सहायक न मिले तो साधक ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य से युक्त होकर एकाकी विचरण करे।

प्रमाद-स्थानों से बचकर वीतराग के मार्ग पर चलना चाहिए। वीतरागी साधक ही मुक्ति प्राप्त करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में १११ गाथाएँ हैं।



**DVATRIMSH ADHYAYAN :  
PRAMAAD-STHAAN**

**Foreview**

The title of this chapter is Pramaad-sthaan or The Areas of Stupor. It describes the causes of stupor, the main impediment to an aspirant's practices and inspires him to avoid them or remove them.

There are many ways the types and sub-types of stupor have been listed —

The primary types of stupor (*pramaad*) are five—(1) pride (*madya or mad*), (2) sensual indulgence (*vishaya*), (3) passions (*kashaya*), (4) opprobrium (*vikatha*), and (5) sleep (*nidra*) or slander (*ninda*). With their sub-types they add up to fifteen; this is because sensual indulgence is of five types (five sense organs), and passion and opprobrium have four types each.

From another viewpoint there are said to be eight types of stupor—(1) ignorance, (2) doubt, (3) false knowledge, (4) attachment, (5) aversion, (6) memory loss, (7) disrespect for religion, and (8) ignoble application of mind, speech and body (*Pravachanasaroddharu*, 207, verses 122-123).

Generally speaking stupor denotes – absence of awareness, negligence, lethargy, lack of discretion, forgetfulness about one's true goal etc.

It is true that even for an ascetic way of life an aspirant requires some essential means. Without these means it is not possible to sustain the chosen way of life.

By themselves means are neither noble nor ignoble; neither good nor bad. Their nature is determined by the thoughts, mental conditions, tendencies, intentions and feelings of attachment and aversion of the subject.

Food is very much essential for sustaining body. But if food is taken for the fun of it and delicious dishes are consumed in excessive quantity, then the same food turns into source of gastro-intestinal and many other ailments and in turn an impediment to spiritual practices.

Bed and seat are also necessary for an aspirant but if they are spoiled due to contact with females and neuters, then they become cause of sexual excitement. The aspirant would not be able to control his mind and his mental state would not be conducive to spiritual practices.

The same is applicable to other means as well.





It is the duty of the aspirant to consider means as just that only and utilize them only with this angle. He should not allow feelings of fondness, possession and craving for them to arise in his mind.

Renouncing attachment-aversion, infatuation, unrighteousness, fondness and other such sentiments is essential for liberation from worldly miseries and gaining exclusive spiritual bliss.

Stupor also includes desire of having disciples. It is not proper for an aspirant to make disciples for providing physical comforts, facilities and other personal services. Although an aspirant needs assistants, they could be chosen from his colleague ascetics and disciples. But it is necessary for the assistant to be competent in codes of conduct and capable of assisting in spiritual practices. If such assistant is not available, an aspirant should embrace knowledge-faith-conduct and move about alone.

Avoiding the areas of stupor an aspirant should move on the path of detachment. Only a detached aspirant attains liberation.

The chapter has 111 verses.





बत्तीसइमं अज्झयणं : पमायट्ठाणं  
द्वत्रिंश अध्ययन : प्रमाद-स्थान  
Chapter-32 : THE AREAS OF STUPOR

अच्चन्तकालस्स समूलगस्स, सव्वस्स दुक्खस्स उ जो पमोक्खो ।  
तं भासओ मे पडिपुण्णचित्ता, सुणेह एगंतहियं हियत्थं ॥ १ ॥

अत्यन्त (अनन्त तथा अनादि) काल के सभी दुःखों तथा उनके मूल कारणों से जो प्रमोक्ष (मुक्त) करने वाला है उसको मैं कहता हूँ, प्रतिपूर्ण (पूरे) मन से सुनो; (क्योंकि यह) एकान्त (पूर्ण रूप से) हित रूप है और कल्याण के लिए (कल्याणकारी) है ॥ १ ॥

Listen with complete attention what I say about that which liberates from all miseries of all times (endless and without beginning) and their root causes; for it is exclusively beneficial and meant for beatitude. (1)

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए, अत्राण-मोहस्स विवज्जणाए ।  
रागस्स दोसस्स य संखएणं, एगन्तसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥ २ ॥

सम्पूर्ण ज्ञान के प्रगट होने से, अज्ञान-मोह के विवर्जन (परिहार) से तथा राग और द्वेष के सर्वथा क्षय (नष्ट होने) से जीव एकान्त सुख रूप (सुख स्थान) मोक्ष को प्राप्त करता है ॥ २ ॥

The soul (living being) attains liberation that is the abode of ultimate bliss through manifestation of all encompassing (right) knowledge, removal of ignorance (delusion) and complete destruction of attachment and aversion. (2)

तस्सेस मग्गो गुरु-विद्धसेवा, विवज्जणा बालजणस्स दूरा ।  
सज्झाय-एगन्तनिसेवणा य, सुत्तन्त्यसंचिन्तणया धिई य ॥ ३ ॥

उस (दुःखों से मुक्ति और सुख-प्राप्ति) का यह मार्ग है—(१) गुरुजनों और वृद्धों की सेवा-शुश्रूषा करना, (२) बाल (अज्ञानी) जनों से दूर रहना, (३) स्वाध्याय तथा एकान्त सेवन, (४) सूत्र और उसके अर्थ का चिन्तन तथा धैर्य धारण किये रहना ॥ ३ ॥

For that (freedom from miseries and attaining bliss) this is the way—1. to serve the seniors and the elderly, 2. to keep a distance from ignorant people, 3. to undertake self-study and to revel in solitude, and 4. to ponder over the text (scriptures) and its meaning and be patient (in this pursuit). (3)

आहारमिच्छे मियमेसणिज्जं, सहायमिच्छे निउणत्थबुद्धिं ।  
निकेयमिच्छेज्ज विवेगजोगं, समाहिकामे समणे तवस्सी ॥ ४ ॥

समाधि की कामना (इच्छा) करने वाला तपस्वी श्रमण परिमित और एषणीय आहार की इच्छा करे, अर्थ (तत्त्व और अर्थ) में निपुण बुद्धि वाले सहायक की इच्छा करे और स्त्री-पशु-नपुंसक से विविकतरहित-एकान्त योग (वियोग-जोगं) स्थान में रहने की इच्छा करे ॥ ४ ॥



An austerity practicing Shraman, desirous of serenity, should wish for limited and allowed food, seek for a knowledgeable and wise assistant and look for lonely place; unfrequented by women, animals and neuters (or hermaphrodites, or) for living. (4)

न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा।  
एक्को वि पावाइ विवज्जयन्तो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ ५ ॥

यदि निपुण सहायक, अपने से अधिक गुणों वाला अथवा समान गुण वाला सहायक न प्राप्त हो सके तो पाषों को वर्जित करता हुआ और कामभोगों में अनासक्त रहता हुआ अकेला-एकाकी ही विचरण करे ॥ ५ ॥

If an expert assistant or a better or equally virtuous one is not available then he should wander alone avoiding sins and getting detached from worldly pleasures. (5)

जहा य अण्डप्यभवा बलागा, अण्डं बलागप्यभवं जहा य।  
एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयन्ति ॥ ६ ॥

जैसे बगुली (बलाका) अण्डे से उत्पन्न होती है और अण्डा बगुली से उत्पन्न होता है, वैसे ही मोह का आयतन (घर-जन्मस्थान) तृष्णा है और तृष्णा का आयतन (घर-जन्मस्थान) मोह को कहा गया है ॥ ६ ॥

As a crane is produced from egg and egg is produced from crane, in the same way the origin of delusion is said to be craving and that of craving is said to be delusion. (6)

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्यभवं वयन्ति।  
कम्मं च जाई-मरणस्स मूलं, दुक्खं च जाई-मरणं वयन्ति ॥ ७ ॥

राग और द्वेष ये दोनों कर्म के बीज हैं और कर्म को मोह से उत्पन्न हुआ कहा गया है तथा कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण को ही दुःख कहा गया है ॥ ७ ॥

Attachment and aversion both are the seeds of *karmas* and *karma* is said to have its origin in delusion (*moha*); also *karma* alone is at the root of (cycles of) birth and death, and birth and death are said to be misery. (7)

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो, मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।  
तण्हा हया जस्स न होइ लोहो, लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥ ८ ॥

जिसको मोह नहीं होता उसका दुःख नष्ट हो जाता है, जिसको तृष्णा नहीं होती उसका मोह नष्ट हो जाता है, तृष्णा के समाप्त हो जाने पर लोभ विनष्ट हो जाता है और जिसका लोभ नष्ट हो जाता है उसके पास कुछ नहीं रहता, वह अकिंचन हो जाता है ॥ ८ ॥

One who is free of delusion gets rid of misery; one who is free of cravings gets rid of delusion; when craving ends greed is destroyed; and one who is rid of greed has nothing left; he becomes free of possessions. (8)

रागं च दोसं च तहेव मोहं, उद्धत्तुकामेण समूलजालं।  
जे जे उवाया पडिवज्जियव्वा, ते कित्तइस्सामि अहाणुपुत्विं ॥ ९ ॥



जो राग और द्वेष तथा उसी प्रकार मोह को मूल सहित उखाड़ने की इच्छा करने वाला है उसे जिस-जिस प्रकार के उपाय करने-अपनाने चाहिये उन (उपायों) का मैं अनुक्रम से (क्रमशः) कथन करूँगा ॥ ९ ॥

For him who wants to uproot attachment, aversion as well as delusion, I shall explain in due order all those means that he must adopt. (9)

रसा पगामं न निसेवियन्वा, पायं रसा दित्तिकरा नराणां।

दित्तं च कामा समभिद्वन्ति, दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥ १० ॥

रसों का अधिक सेवन न करें; क्योंकि रस प्रायः उन्माद बढ़ाने वाले अथवा कामोद्दीपन करने वाले होते हैं और (उद्दीप्त मानव को) विषय-भोग (काम) उसी प्रकार उत्पीड़ित करते हैं जिस प्रकार स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष को पक्षी करते हैं ॥ १० ॥

He should not take tasty food in excessive quantity; because tasty food generally increases excitement or lust, and a lustful person is tormented by carnal desires exactly like a tree laden with tasty fruits is assaulted by birds. (10)

जहा दवग्गी पउरिन्धणे वणे, समारुओ नोवसमं उवेइ।

एविन्दियग्गी वि पगामभोइणो, न बम्भयारिस्स हियाय कस्सई ॥ ११ ॥

जिस प्रकार प्रचुर ईंधन वाले जंगल में प्रचण्ड पवन के साथ लगी हुई दावाग्नि किसी उपाय से शान्त नहीं होती उसी प्रकार अति मात्रा में अथवा अपनी इच्छानुकूल भोजन करने वाले (पगामं भोजी) की इन्द्रियाग्नि (इन्द्रियों में उत्पन्न हुई काम-वासना की अग्नि) भी किसी भी उपाय से शान्त नहीं होती, अतः ब्रह्मचारी के लिए (प्रकाम भोजन) किसी भी प्रकार से हितकारी नहीं होता ॥ ११ ॥

As a conflagration fanned by strong wind in a dense forest having abundant fuel cannot be extinguished by any means, in the same way the fire of senses (senses caught in fire of lust) in a person who eats food in excess and as much he desires, cannot be extinguished by any means. Therefore excess of tasty food in no way benefits a celibate. (11)

विवित्तसेज्जासणजन्तियाणं, ओमासणाणं दमिइन्दियाणं।

न रागसत्तु धरिसेइ चित्तं, पराइओ बाहिरिवोसहेहिं ॥ १२ ॥

जो विविक्त (स्त्री-पशु-नपुंसक से रहित) शय्या और आसन से नियंत्रित (नियमबद्ध) है, जो अल्प आहार करने वाला है, जिसने अपनी इन्द्रियों का दमन कर लिया है, उसके चित्त को राग-द्वेष रूपी शत्रु उसी प्रकार पराभूत नहीं कर सकते जिस प्रकार औषधियों से पराजित (समाप्त) की हुई व्याधि पुनः रोगी को आक्रान्त नहीं कर सकती ॥ १२ ॥

One who is bound by the code of using unspoiled bed and seat (lodging unfrequented by women, neuters and beasts), who takes little or limited food, and who has subdued his senses; his mind cannot be subjugated by foes that are attachment and aversion in the same way as an ailment cured by medicines cannot torment a patient again. (12)

जहा बिरालावसहस्स मूले, न मूसगाणं वसही पसत्था।

एमेव इत्थीनिलयस्स मज्जे, न बम्भयारिस्स खमो निवासो ॥ १३ ॥



जिस प्रकार बिडाल (बिल्लियों) के निवास स्थान के समीप (मूले) मूषकों (चूहों) का निवास प्रशस्त (अच्छ) नहीं होता उसी प्रकार स्त्रियों के निवास स्थान के अति निकट अथवा मध्य में (इत्थीनिलयस्स मण्झे) ब्रह्मचारी का निवास (रहना) क्षम्य (उचित) नहीं है ॥ १३ ॥

As it is not safe for mice to live near the dwelling of cats, in the same way it is not proper for a celibate to live very near or in the middle of houses inhabited by women. (13)

न रूव-लावण्य-विलास-हासं, न जंपियं इंगिय-पेहियं वा ।

इत्थीण चित्तसि निवेसइत्ता, दटुं ववस्से समणे तवस्सी ॥ १४ ॥

स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास, प्रिय भाषण, इंगित चेष्टा (अंग-भंगिमा) आदि को (अपने) हृदय में स्थान देकर तपस्वी श्रमण उनको देखने का प्रयास न करे ॥ १४ ॥

An austerity observing ascetic should have no place in his mind for beauty, charm, laughter, sweet talks, gestures and the like of women; he should also not make any effort to look at them. (14)

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिन्तणं चेव अकित्तणं च ।

इत्थीजणस्सारियझाणजोगं, हियं सया बम्भवए रयाणं ॥ १५ ॥

ब्रह्मव्रत (ब्रह्मचर्य) में सदा रत (लीन) रहने वाले पुरुष (साधक) के लिए स्त्रियों को न देखना, उनकी प्रार्थना (अभिलाषा) न करना, उनका चिन्तन (विचार) भी न करना और उनका कीर्तन (कथन-वर्णन) भी न करना हितकारी है तथा आर्य (सम्यक्) ध्यान (साधना) के लिए योग्य (उचित) है ॥ १५ ॥

Not to look at women, not to long for them, not even to think of them or praise them is beneficial for the aspirant always engrossed in the vow of celibacy and it is also proper for practicing noble meditation. (15)

कामं तु देवीहि विभूसियाहिं, न चाइया खोभइउं तिगुत्ता ।

तह्ण वि एगन्तहियं ति नच्चा, विवित्तवासो मुणिणं पसत्थो ॥ १६ ॥

यद्यपि (मानं तु—माना कि) तीन गुप्तियों (मन-वचन-काय) से गुप्त मुनि को (वस्त्रालंकारों से) विभूषित देवियाँ भी सुभित—(उनकी साधना से विचलित) नहीं कर सकती तथापि (तब भी) एकान्त हित को जानकर मुनि के लिए विविक्त (स्त्री-पशु-नपुंसक से रहित) वास ही प्रशस्त है ॥ १६ ॥

Though even well adorned (with lustrous costumes and ornaments) the goddesses cannot disturb the ascetic disciplined by three restraints (of mind, speech and body), but considering the ultimate benefit only a solitary lodge (devoid of women, animals and neuters) is best for an ascetic. (16)

मोक्खाभिकंखिस्स वि माणवस्स, संसारभीरुस्स ठियस्स धम्मे ।

नेयारिसं दुत्तरमत्थि लोए, जह्णित्थिओ बालमणोहराओ ॥ १७ ॥

मोक्ष की आकांक्षा वाले, संसार से भयभीत और धर्म में स्थित मनुष्य के लिए संसार में इतना दुस्तर कार्य और कोई नहीं है जितनी कि अज्ञानियों (बाल) के मन (हृदय) के हरण करने वाली स्त्रियाँ (दुस्तर) हैं ॥ १७ ॥



To a man, who longs for liberation, is frightened from the cycles of rebirth (*samsar*) and stable in religion, there is nothing more difficult than women capable of deluding the mind of an ignorant. (17)

ए ए य संगे समइक्कमित्ता, सुहत्तरा जेव भवन्ति सेसा।  
जहा महासागरमुत्तरित्ता, नई भवे अवि गंगासमाणा ॥ १८ ॥

इन (उपर्युक्त स्त्री-सम्बन्धी) संपर्कों को सम्यक् (भली प्रकार) अतिक्रमण (पार) कर लेने पर शेष सभी संसर्ग सुख से पार करने योग्य हो जाते हैं जिस प्रकार कि महासागर को तैरकर पार कर लेने के बाद गंगा जैसी नदियों को पार कर लेना सुकर-सरल हो जाता है ॥ १८ ॥

After properly overcoming the aforesaid affinities (relating to women) all other affinities become easy to overcome in the same way as after crossing the ocean it becomes easy to cross rivers like Ganges. (18)

कामाणुगिद्धिप्यभवं खु दुक्खं, सव्वस्स लोगस्स सदेवगस्स।  
जं काइयं माणसियं च किच्चि, तस्सऽन्तगं गच्छइ वीयरगो ॥ १९ ॥

देवताओं सहित सम्पूर्ण लोक के (प्राणियों के) जितने भी शारीरिक तथा मानसिक दुःख हैं वे सब काम (कामना-वासना) की अनुगृद्धि (अतिशय आसक्ति) से उत्पन्न होते हैं। इन दुःखों का अन्त (समाप्ति) केवली वीतरागी ही कर पाते हैं ॥ १९ ॥

All the physical and mental miseries of living beings of the universe along with divine beings have their origin in intense obsession of lust. Only the detached omniscient is able to put an end to all miseries. (19)

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुज्जमाणा।  
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे ॥ २० ॥

जिस प्रकार किम्पाग फल रस, रूप और खाने में मनोरम-चित्ताकर्षक लगते हैं, किन्तु परिणाम में जीवन का अन्त कर देते हैं। इसी प्रकार कामगुण भी विपाक (परिणाम) में विनाशकारी होते हैं ॥ २० ॥

As the fruits of poisonous tree (*Kimpaak*) are attractive and tasty to look and eat, but their consequence is the end life. In the same way lust is destructive in consequence. (20)

जे इन्दियाणं विसया मणुत्रा, न तेसु भावं निसिरे कयाइ।  
न याऽमणुत्रेसु मणं पि कुज्जा, समाहिकामे समणे तवस्सी ॥ २१ ॥

समाधि की इच्छा वाला तपस्वी श्रमण इन्द्रियों के मनोज्ञ विषयों में कदापि रागभाव न करे और अमनोज्ञ विषयों में मन से भी द्वेष (द्वेषभाव) न करे ॥ २१ ॥

An austerity observing ascetic seeker of serenity must never have attachment for objects enticing to sense organs; he should also not have aversion for those unattractive to sense organs. (21)

चक्खुस्स रूवं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुत्रमाहु।  
तं दोसहेउं अमणुत्रमाहु, समो य जो तेसु स वीयरगो ॥ २२ ॥



चक्षु (नेत्रों) का ग्रहण करने योग्य विषय रूप कहा जाता है। यदि वह मनोज्ञ होता है तो राग का कारण (हेतु) बनता है और यदि वह अमनोज्ञ होता है तो द्वेष का हेतु बन जाता है। इन दोनों (मनोज्ञ-अमनोज्ञ) स्थितियों में जो सम (राग-द्वेषातीत) रहता है, वह वीतरागी होता है ॥ २२ ॥

That which perceives form is called eye. If it (form) is pleasant then it becomes the cause of attachment and if it is unpleasant it becomes the cause of aversion. He who remains equanimous (beyond attachment and aversion) in both the conditions is detached. (22)

रूवस्स चक्खुं गहणं वयन्ति, चक्खुस्स रूवं गहणं वयन्ति ।  
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ २३ ॥

रूप का ग्रहण करने वाला चक्षु कहा जाता है और चक्षु का ग्राह्य विषय रूप कहलाता है। राग के हेतु को मनोज्ञ कहा है और द्वेष का हेतु (कारण) अमनोज्ञ है ॥ २३ ॥

That which perceives form is called eye and the object of perception by eye is called form: The cause of attachment is called pleasant and the cause of aversion is unpleasant. (23)

रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।  
रागाउरे से जहवा पयंगे, आलोयलोले समुवेइ मच्चुं ॥ २४ ॥

जो (मनोज्ञ) रूप में तीव्र गृद्धि (आसक्ति) रखता है, वह राग में आतुर होकर अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है, विनष्ट हो जाता है जिस प्रकार प्रकाश-लोलुप पतंगा मृत्यु को प्राप्त होता है, मर जाता है ॥ २४ ॥

One who is infatuated with pleasant appearance is plagued by attachment to end up in untimely ruin, just as a moth, obsessed by light, is drawn into death. (24)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।  
दुदन्तदोसेण सएण जन्तू, न किञ्चि रूवं अवरज्झई से ॥ २५ ॥

(इसके विपरीत) जो (अमनोज्ञ रूप के प्रति) तीव्र द्वेष करता है वह प्राणी उसी क्षण अपने स्वयं के दुर्दान्त (दुर्दमनीय) द्वेष के कारण दुःख ही प्राप्त करता है। इसमें (मनोज्ञ और अमनोज्ञ) रूप का कुछ भी अपराध (दोष) नहीं है ॥ २५ ॥

Contrary to this, he who is intensely averse (to unpleasant appearance) instantly suffers pain due to his own insurmountable aversion. There is no fault of appearance (pleasant or unpleasant) in this. (25)

एगन्तरत्ते रुइरंसि रूवे, अतालिसे से कुणई पओसं ।  
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ २६ ॥

जो रुचिर (सुन्दर) रूप में एकान्ततः अत्यधिक अनुरक्त होता है वह अतादृश-कुरूप में प्रद्वेष करता है, वह अज्ञानी दुःख की पीड़ा (कष्ट) को पाता है। किन्तु विरागी मुनि उनमें (मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपों में) लिप्त नहीं होता, राग-द्वेष नहीं करता ॥ २६ ॥



He who gets exclusively and excessively infatuated with beautiful appearance is averse to repulsive appearance. That ignorant suffers pain. But the detached ascetic does not get involved in them (pleasant and unpleasant appearance), does not have attachment or aversion for them. (26)

रूवाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणुगेरूवे ।  
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तड्वगुरू किलिट्ठे ॥ २७ ॥

मनोज्ञ रूप की आशा-लालसा का अनुगमन करने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार से चर-अचर (त्रस-स्थावर) जीवों की हिंसा करता है, एक मात्र अपने स्वार्थ को ही प्रमुखता देने वाला, राग-द्वेष से क्लिष्ट अज्ञानी जीव विविध प्रकार से उन्हें (चराचर जीवों को) पीड़ित करता है ॥ २७ ॥

A person hankering for pleasant appearance indulges in violence towards mobile and immobile beings many ways. Giving importance to his self-interest and tarnished with attachment and aversion, an ignorant being torments those beings various ways. (27)

रूवाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।  
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥ २८ ॥

रूप में अनुपात-अनुराग और परिग्रह-ममत्व के कारण रूप के उत्पादन, संरक्षण और सन्नियोग (व्यापार-विनिमय) तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ (प्राप्त होता है)? संभोग-उपभोग के समय भी उसे अतृप्ति ही प्राप्त होती है, तृप्ति का अनुभव नहीं होता ॥ २८ ॥

How can a man derive happiness on account of love and fondness for (pleasant) appearance while he creates, protects, associates (trades and exchanges), expends and loses the same (things that enhance beauty)? Even when he enjoys them he feels unsatisfied, does not ever experience satiety. (28)

रूवे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं ।  
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ २९ ॥

रूप में अतृप्त तथा परिग्रह (परिग्रहण) में आसक्त उवसक्त (अत्यधिक आसक्त) व्यक्ति को तृप्ति-सन्तुष्टि नहीं प्राप्त होती। अतृष्टि के दोष से दुःखी तथा लोभ से आविल (व्याकुल-कलुषित) व्यक्ति दूसरों की वस्तु को उनके द्वारा बिना दिये ही ले लेता है—चुराता है ॥ २९ ॥

A person, not satiated with (pleasant) appearances and intensely obsessed with acquiring them, never gains satisfaction. Aggrieved with the drawback of discontent and overwrought by greed, such person takes belongings of others without being given (steals). (29)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रूवे अतित्तस्स परिग्गहे य ।  
माया-मुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थाऽवि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ३० ॥

तृष्णा से अभिभूत, दूसरे की वस्तुओं को हरण करने वाला-चुराने वाला, रूप और परिग्रह से अतृप्त व्यक्ति के लोभ दोष के कारण उसके कपट और झूठ बढ़ते जाते हैं फिर भी (कपट और झूठ का प्रयोग करने पर भी) वह दुःखों से विमुक्त नहीं हो पाता ॥ ३० ॥





Overwhelmed by craving, the thief of others' belongings not satiated with appearance and possessions finds that his deceit and lies continue to multiply due to his vice of greed; however, he still (in spite of employing deceit and lie) fails to be emancipated from miseries. (30)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते।  
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, रूवे अत्तित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ३१ ॥

झूठ बोलने से पहले और बाद में तथा असत्य का प्रयोग (बोलते) करते समय भी वह दुःखी होता है और उसका परिणाम (अन्त) भी दुःखमय होता है। इस प्रकार अदत्तादान (चोरी) का आचरण करता हुआ तथा रूप से अतृप्त व्यक्ति दुःखी और अनाश्रित (आश्रयविहीन-निराधार) हो जाता है ॥ ३१ ॥

He becomes sorrowful before, after and even while telling a lie and the consequences of the act too are painful. Thus the person indulging in theft and also dissatisfied with appearance, becomes miserable and without refuge. (31)

रूवाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?  
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ३२ ॥

इस प्रकार रूप में अनुरक्त-आसक्त पुरुष को कहाँ, कब और कितना सुख प्राप्त हो सकता है? जिसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य इतना दुःख-कष्ट सहता है। उसके उपभोग में भी क्लेश और दुःख का ही अनुभव होता है ॥ ३२ ॥

Thus when, where and how much happiness can a person, infatuated with appearances gain? For gaining that he suffers so much misery and even while enjoying the same he again suffers only pain and misery. (32)

एमेव रूवम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।  
पदुद्धचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ३३ ॥

इसी तरह रूप के प्रति प्रद्वेष करने वाला भी अनेक प्रकार की दुःख परम्पराओं को प्राप्त करता है और वह प्रद्वेषयुक्त चित्त वाला होकर जिन कर्मों का संचय करता है वे कर्म भी विपाक-फल प्रदान करते समय दुःखरूप ही होते हैं ॥ ३३ ॥

In the same way one who hates appearances also suffers a variety of miseries in succession; and the *karmas* he accumulates due to aversion-filled mind also come to fruition as pain. (33)

रूवे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।  
न लिप्पए भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥ ३४ ॥

(किन्तु) रूप से विरक्त (राग-द्वेषहीन) व्यक्ति को शोक नहीं होता, वह इन दुःखों की परम्पराओं से मुक्त रहता है। जिस प्रकार जलाशय में पुष्करिणी में रहता हुआ कमल का पत्ता जल से निर्लिप्त रहता है उसी तरह वह मनुष्य भी संसार में रहता हुआ भी (रूप के प्रति राग-द्वेष से) लिप्त नहीं होता ॥ ३४ ॥



(But) a person apathetic to appearances is not aggrieved; he remains free from these sequences of misery. As a lotus leaf, though in a pond, remains unaffected by water, in the same way that person remains unaffected (by attachment and aversion for appearances), though living in the world. (34)

सोयस्स सहं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।  
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरगो ॥ ३५ ॥

श्रोत्र (कर्णेन्द्रिय) के विषय को शब्द कहा गया है। जो शब्द राग का हेतु है उसे मनोज्ञ कहा है और अमनोज्ञ को द्वेष का कारण बताया गया है लेकिन जो इन दोनों (मनोज्ञ और अमनोज्ञ) में सम-समभाव रखता है, वह वीतराग है ॥ ३५ ॥

That which perceives (hears) sound is called ear. If it (sound) is pleasant then it becomes the cause of attachment and if it is unpleasant it becomes the cause of aversion. He who remains equanimous (beyond attachment and aversion) in both the conditions is detached. (35)

सहस्स सोयं गहणं वयन्ति, सोयस्स सहं गहणं वयन्ति।  
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ३६ ॥

शब्द को ग्रहण करने वाला श्रोत्र कहा गया है और शब्द को श्रोत्र का ग्राहक (ग्रहण करने योग्य विषय) बताया गया है। उसमें जो शब्द राग का हेतु होता है उसे समनोज्ञ और द्वेष के हेतु को अमनोज्ञ कहा गया है ॥ ३६ ॥

That which hears sound is called ear and the object of hearing by ear is called sound. The cause of attachment is called pleasant and the cause of aversion is unpleasant. (36)

सहेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।  
रागाउरे हरिणमिगे व मुद्धे, सहे अत्तिसे समुवेइ मच्चुं ॥ ३७ ॥

जो (मनोज्ञ) शब्दों में तीव्र गृद्धि-आसक्ति रखता है वह राग में आतुर व्यक्ति अकाल में ही विनष्ट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह शब्द में अत्यासक्त मूढ़ बना हुआ हरिण (मृग-पशु) मृत्यु को प्राप्त करता है, मर जाता है ॥ ३७ ॥

One who is infatuated with pleasant sound is plagued by attachment to end up in untimely ruin, just as a deer, obsessed by sound (music), is drawn into death. (37)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं।  
दुहन्तदोसेण सएण जन्तु, न किंचि सहं अवरज्झई से ॥ ३८ ॥

और जो (अमनोज्ञ) शब्द के प्रति तीव्र द्वेष करता है वह प्राणी उसी क्षण अपने दुर्दान्त द्वेष के कारण दुःख का उपार्जन करता है। इसमें शब्द का किंचित् भी अपराध (दोष) नहीं होता ॥ ३८ ॥

Contrary to this, he who is intensely averse (to unpleasant sound) instantly suffers pain due to his own insurmountable aversion. There is no fault of sound (pleasant or unpleasant) in this. (38)



एगन्तरत्ते रुडरंसि सद्दे, अतालसे से कुणई पओसं।  
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ ३९ ॥

जो रुचिर (प्रिय) शब्दों में एकान्त रूप से अत्यधिक आसक्त होता है और अतादृश (प्रतिकूल) शब्द में प्रद्वेष करता है वह अज्ञानी दुःख के समूह से पीड़ा प्राप्त करता है। लेकिन विरागी मुनि उसमें लिप्त नहीं होता (निलिप्त रहता है) ॥ ३९ ॥

He who gets exclusively and excessively infatuated with enchanting sound is averse to repulsive sound. That ignorant suffers pain. But the detached ascetic does not get involved in them (pleasant and unpleasant sound), does not have attachment or aversion for them. (39)

सद्दाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे।  
चिच्चेहि ते परियावेइ बाले, पीलेइ अत्तडुगुरू किलिडु ॥ ४० ॥

(मनोज्ञ) शब्द की इच्छा करने वाला अनेक प्रकार से चराचर-त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है। अपने ही स्वार्थ को प्रधानता देने वाला क्लिष्ट अज्ञानी व्यक्ति उन्हें (उन जीवों को) विभिन्न प्रकार से परित्यापित और पीड़ित करता है ॥ ४० ॥

A person hankering for pleasant sound indulges in violence towards mobile and immobile beings many ways. Giving importance to his self-interest and tarnished with attachment and aversion, an ignorant being torments those beings various ways. (40)

सद्दाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खण-सन्निओगे।  
वए विओगे-य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिताभे ॥ ४१ ॥

शब्द के प्रति अधिक अनुराग और ममत्व (परिग्रह) के कारण उसके उत्पादन (उत्पन्न करने) एवं रक्षा करने, सन्नियोग में तथा व्यय और वियोग में सुख कहाँ है? उसके उपभोग समय में भी अतृप्ति ही मिलती है, तृप्ति प्राप्त नहीं होती ॥ ४१ ॥

How can a man derive happiness on account of love and fondness for (pleasant) sound while he creates, protects, associates (trades and exchanges), expends and loses the same (things that enhance sweetness of sound)? Even when he enjoys them he feels unsatisfied, does not ever experience satiety. (41)

सद्दे अत्तिसे य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुड्ढिं।  
अतुट्ठिदोसेण दुह्ही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ४२ ॥

शब्द में अतृप्त और परिग्रह में प्रगाढ़ आसक्त व्यक्ति को तृप्ति प्राप्त नहीं होती। असंतुष्टि के दुःख से दुःखी तथा लोभ से व्याकुल व्यक्ति दूसरों की अदत्त वस्तुओं को ले लेता है—चोरी करता है ॥ ४२ ॥

A person, not satiated with (pleasant) sounds and intensely obsessed with acquiring them, never gains satisfaction. Aggrieved with the drawback of discontentment and overwrought by greed, such person takes belongings of others without being given (steals). (42)



तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, सद्दे अतित्तस्स परिग्गहे य।  
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ४३ ॥

तृष्णा से अभिभूत, अदत्त वस्तुओं को ग्रहण करने—हरण करने—चुराने वाला, शब्द और परिग्रह से अतृप्त होने वाले व्यक्ति का उसके लोभ जनित दोष के कारण कपट और झूठ बढ़ता जाता है। लेकिन कपट और झूठ के प्रयोग से भी उसका दुःख नहीं मिटता ॥ ४३ ॥

Overwhelmed by craving, the thief of others' belongings, not satiated with sound and possessions finds that his deceit and lies continue to multiply due to his vice of greed; however, he still (in spite of employing deceit and lie) fails to be emancipated from miseries. (43)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते।  
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, सद्दे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ४४ ॥

मृषा (झूठ) बोलने से पहले, बोलने के पश्चात् और बोलते समय भी वह दुःखी होता है और उसका अन्त-परिणाम भी दुःखरूप होता है। इस तरह शब्द में अतृप्त (व्यक्ति) अदत्तादान-चोरियाँ करता हुआ दुःखी तथा अनाश्रित हो जाता है ॥ ४४ ॥

He becomes sorrowful before, after and even while telling a lie and the consequences of the act too are painful. Thus the person indulging in theft and also not satiated with sound, becomes miserable and without refuge. (44)

सद्दाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?  
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ४५ ॥

इस तरह शब्द में अनुरक्त-आसक्त मनुष्य को कहाँ, कब और कितने सुख की प्राप्ति हो सकती है? जिसके लिए वह इतने क्लेश और कष्ट सहन करता है तथा उसके (उस सुख के) उपभोग में भी उसे क्लेश और कष्ट का ही अनुभव होता है ॥ ४५ ॥

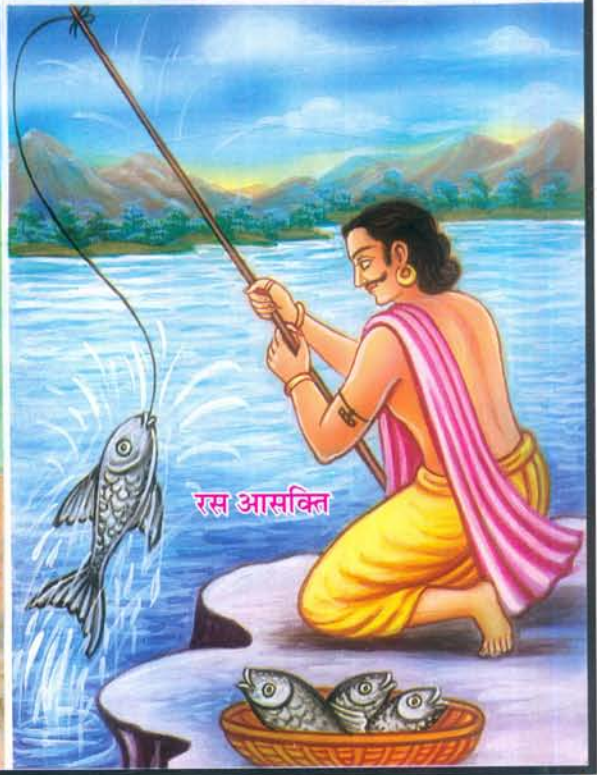
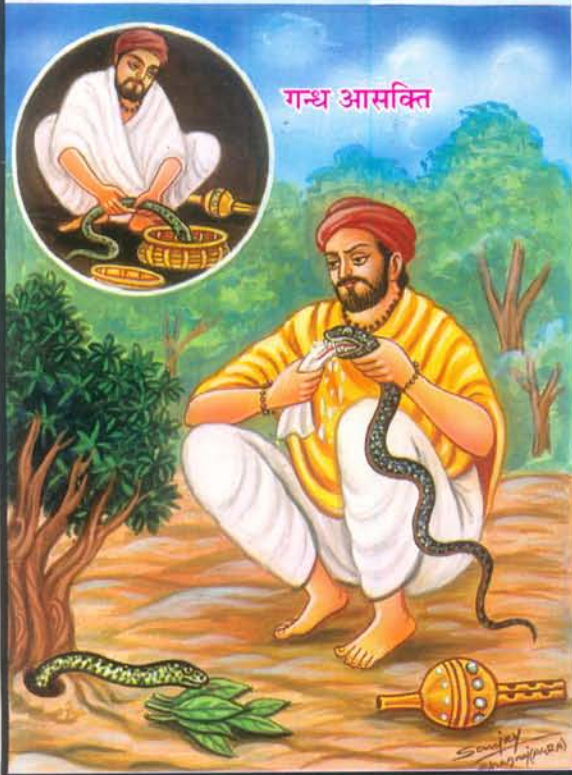
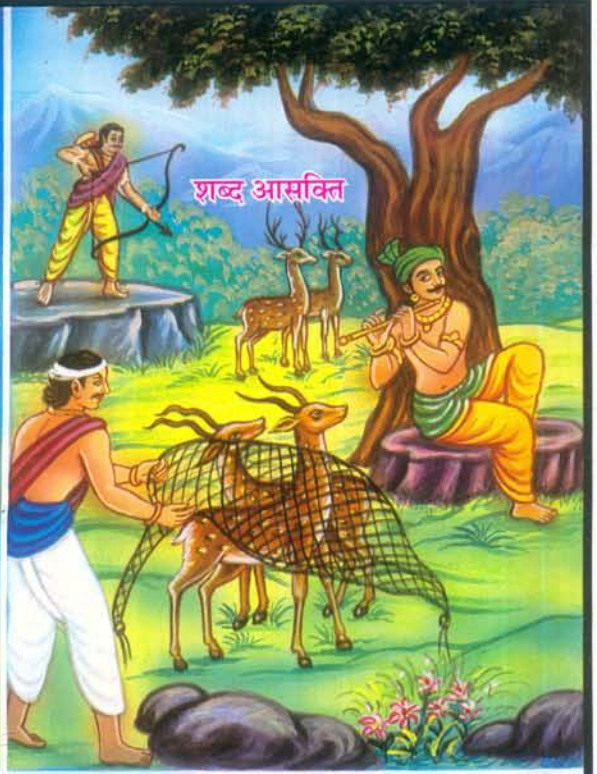
Thus when, where and how much happiness can a person, infatuated with sounds gain? For gaining that he suffers so much misery and even while enjoying the same he again suffers only pain and misery. (45)

एमेव सद्दम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।  
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ४६ ॥

इसी तरह जो अमनोज्ञ-अप्रिय शब्दों में प्रद्वेष करता है वह भी अनेक प्रकार की दुःख परम्पराओं-परिपाटियों को उत्पन्न करता है और प्रदुष्टचित्त से वह जिन कर्मों का संचय करता है वही पुनः विपाक-फलप्रदान के समय दुःखरूप ही होते हैं ॥ ४६ ॥

In the same way one who hates sounds also suffers a variety of miseries in succession; and the *karmas* he accumulates due to aversion-filled mind also come to fruition as pain. (46)

सद्दे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।  
न लिप्पए भवमज्जे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥ ४७ ॥



## विषयों की आसक्ति का कटु फल - 1

रूप में आसक्त पतंगा, शब्द में आसक्त मुग्ध हरिण, गंध में आसक्त सर्प और रस में आसक्त मत्स्य जिस प्रकार विनाश को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार इन विषयों में आसक्त अज्ञानी प्राणी दुःखी होता है।

—अध्ययन 32, सू. 24, 37, 50, 63

## BITTER CONSEQUENCE OF OBSESSION WITH SENSUAL PLEASURES -1

As a moth obsessed with appearance (colour), a deer obsessed with sound, a serpent obsessed with fragrance, and a fish obsessed with taste get destroyed, in the same way the ignorant obsessed with these sensual pleasures end up in misery.

—Chapter 32, Aphorism 24, 37, 50, 63





शब्द (मनोज्ञ तथा अमनोज्ञ दोनों प्रकार के शब्द) से विरक्त-उदासीन व्यक्ति को शोक-अवसाद नहीं होता और वह इस प्रकार की दुःख परम्पराओं-शृंखलाओं से भी दूर रहता है तथा जिस प्रकार जल में रहता हुआ भी कमल-पत्र जल से निर्लिप्त रहता है उसी प्रकार मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्दों से विरक्त व्यक्ति भी संसार में रहता हुआ भी उन शब्दों में लिप्त नहीं होता ॥ ४७ ॥

(But) a person apathetic to sounds is not aggrieved; he remains free from these sequences of misery. As a lotus leaf, though in a pond, remains unaffected by water, in the same way that person remains unaffected (by attachment and aversion for sounds), though living in the world. (47)

घ्राणस्स गन्धं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।  
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरारो ॥ ४८ ॥

घ्राण (घ्राणेन्द्रिय-नासिका) के ग्राह्य विषय को गंध कहा जाता है। राग के हेतु गन्ध को मनोज्ञ (सुगन्ध) कहा जाता है और जो द्वेष का हेतु बनती है वह अमनोज्ञ (दुर्गन्ध) कहलाती है। जो गन्ध में सम रहता है, वह वीतराग है ॥ ४८ ॥

That which perceives smell is called nose. If it (smell) is pleasant then it becomes the cause of attachment and if it is unpleasant it becomes the cause of aversion. He who remains equanimous (beyond attachment and aversion) in both the conditions is detached. (48)

गन्धस्स घ्राणं गहणं वयन्ति, घ्राणस्स गन्धं गहणं वयन्ति।  
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ४९ ॥

गन्ध को ग्रहण करने वाला घ्राण है और घ्राण का ग्राह्य विषय गन्ध कही जाती है। राग को उत्पन्न करने वाली-कारणभूत समनोज्ञ गन्ध है और द्वेष की कारणभूत अमनोज्ञ गन्ध है ॥ ४९ ॥

That which sniffs smell is called nose and the object of sniffing by nose is called smell. The cause of attachment is called pleasant and the cause of aversion is unpleasant. (49)

गन्धेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।  
रागाउरे ओसहिगन्धगिद्धे, सप्पे बिलाओ विव निक्खमन्ते ॥ ५० ॥

जो (मनोज्ञ) गन्ध में तीव्र रूप से आसक्त रहता है वह अकाल (असमय) में विनष्ट हो जाता है। जिस प्रकार औषधियों की गन्ध में गृद्ध राग से आतुर बना हुआ सर्प बिल से बाहर निकलते ही विनष्ट हो जाता है ॥ ५० ॥

One who is infatuated with pleasant smell is plagued by attachment to end up in untimely ruin, just as a snake, obsessed by smell (fragrance of herbs), is drawn into death the moment it is out of its hole. (50)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं।  
दुहन्तदोसेण सएण जन्तू, न किंचि गन्धं अवरज्झई से ॥ ५१ ॥

जो अमनोज्ञ गन्ध में अत्यधिक तीव्र द्वेष करता है, वह उसी क्षण अपने दुर्दमनीय द्वेष के कारण दुःखी हो जाता है। इसमें गन्ध का कोई दोष नहीं है ॥ ५१ ॥



Contrary to this, he who is intensely averse (to unpleasant smell) instantly suffers pain due to his own insurmountable aversion. There is no fault of smell (pleasant or unpleasant) in this. (51)

एगन्तरत्ते रुइरसि गन्धे, अतालिसे से कुणई पओसं।  
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ ५२ ॥

जो रुचिर (प्रिय-मनोज्ञ) सुगन्ध में अत्यधिक गूढ़ रहता है और अतादृश (अप्रिय-अमनोज्ञ) गन्ध में प्रद्वेष करता है वह अज्ञानी जीव दुःख के समूह को प्राप्त करता है। लेकिन विरागी मुनि उससे (प्रिय-अप्रिय गंध में राग-द्वेष न करके) लिप्त नहीं होता ॥ ५२ ॥

He who gets exclusively and excessively infatuated with enchanting fragrance is averse to repulsive smell. That ignorant suffers pain. But the detached ascetic does not get involved in them (pleasant and unpleasant smell), does not have attachment or aversion for them. (52)

गन्धाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणेगरूवे।  
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तडुगुरू किलिट्ठे ॥ ५३ ॥

प्रिय सुगन्ध की आशा के पीछे दौड़ता हुआ जीव चराचर-त्रस-स्थावर जीवों की अनेक रूप से हिंसा करता है। अपने ही स्वार्थ को प्रमुखता देने वाला क्लिष्ट अज्ञानी उन्हें-उन जीवों को विचित्र-विचित्र प्रकार से परितापित और पीड़ित करता है ॥ ५३ ॥

A person hankering for pleasant smell indulges in violence towards mobile and immobile beings many ways. Giving importance to his self-interest and tarnished with attachment and aversion, an ignorant being torments those beings various ways. (53)

गन्धाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे।  
वए विओगे य कर्हि सुहं से?, संभोगकाले य अतित्तिताभे ॥ ५४ ॥

गंध (प्रिय सुगन्ध) के प्रति अत्यधिक राग और परिग्रह-ममत्व के कारण गंध को उत्पन्न करने, उसकी रक्षा करने और सन्नियोजन, व्यय तथा वियोग में सुख कहाँ है और उपभोग के समय भी अतृप्ति ही प्राप्त होती है (यह भी दुःख ही है) ॥ ५४ ॥

How can a man derive happiness on account of love and fondness for fragrance while he creates, protects, associates (trades and exchanges), expends and loses the same (things that enhance fragrance)? Even when he enjoys them he feels unsatisfied, does not ever experience satiety. (54)

गन्धे अत्तिते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।  
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ५५ ॥

गंध में अतृप्त (असंतुष्ट) और उसके (गन्ध के) परिग्रहण में अत्यधिक आसक्त व्यक्ति को तृप्ति प्राप्त नहीं होती। वह अतृप्ति से दुःखी और लोभ की व्याकुलता-अधिकता के कारण दूसरों की न दी हुई वस्तु को ग्रहण कर लेता है, अदत्तादान-चोरी करता है ॥ ५५ ॥





A person, not satiated with fragrances and intensely obsessed with acquiring them, never gains satisfaction. Aggrieved with the drawback of discontentment and overwrought by greed, such person takes belongings of others without being given (steals). (55)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, गन्धे अतित्तस्स परिग्गहे य।  
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ५६ ॥

तृष्णा से अभिभूत तथा गन्ध और परिग्रह में अतृप्त, दूसरों की वस्तुओं को चुराने वाले के लोभ की बुराई से कपट और झूठ बढ़ जाते हैं। कपट और झूठ का प्रयोग करने पर भी उसका दुःख समाप्त नहीं होता, दुःख से मुक्ति नहीं मिलती ॥ ५६ ॥

Overwhelmed by craving, the thief of others' belongings, not satiated with smell and possessions finds that his deceit and lies continue to multiply due to his vice of greed; however, he still (in spite of employing deceit and lie) fails to be emancipated from miseries. (56)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ च, पओगकाले य दुही दुरन्ते।  
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, गन्धे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ५७ ॥

असत्य-प्रयोग-मिथ्या बोलने से पहले, उसके पश्चात् और झूठ बोलते समय भी वह दुःखी होता है और उसका अन्त भी दुःखपूर्ण ही होता है। इस प्रकार गन्ध में अतृप्त, सुगन्धित वस्तुओं की चोरियाँ करने वाला व्यक्ति दुःखी और अनाश्रित हो जाता है ॥ ५७ ॥

He becomes sorrowful before, after and even while telling a lie and the consequences of the act too are painful. Thus the person indulging in theft and also not satiated with fragrance, becomes miserable and without refuge. (57)

गन्धाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?  
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ५८ ॥

इस तरह गंध में आसक्त मानव को कदापि और कुछ भी सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? जिसके लिए वह दुःख सहन करता है, उसके उपभोग में भी उसे क्लेश और दुःख की ही प्राप्ति होती है ॥ ५८ ॥

Thus when, where and how much happiness can a person, infatuated with fragrance gain? For gaining that he suffers so much misery and even while enjoying the same he again suffers only pain and misery. (58)

एमेव गन्धम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।  
पदुड्ढचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ५९ ॥

इसी तरह जो (अप्रिय-अमनोज्ञ) गन्ध में प्रद्वेष करता है, उसे दुःख समूह की परंपराएँ प्राप्त होती हैं। वह द्वेषयुक्त हृदय से जिन कर्मों का संचय करता है वही कर्म फलभोग के समय दुःखदायी बन जाते हैं ॥ ५९ ॥

In the same way one who hates stink also suffers a variety of miseries in succession; and the *karmas* he accumulates due to aversion-filled mind also come to fruition as pain. (59)



गन्धे विरक्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।  
न लिप्पई भवमज्जे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणी-पलासं ॥ ६० ॥

गंध (मनोज्ञ और अमनोज्ञ) से विरक्त मनुष्य को अवसाद (शोक) नहीं होता, वह संसार में रहता हुआ भी दुःख परम्पराओं से उसी प्रकार लिप्त नहीं होता जिस प्रकार जल में रहता हुआ भी कमलपत्र जल से निर्लिप्त रहता है ॥ ६० ॥

(But) A person apathetic to smells is not aggrieved; he remains free from these sequences of misery. As a lotus leaf, though in a pond, remains unaffected by water, in the same way that person remains unaffected (by attachment and aversion for smells), though living in the world. (60)

जिब्भाए रसं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।  
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरगो ॥ ६१ ॥

जिह्वा का ग्राह्य विषय रस (स्वाद) है। जो रस राग का हेतु बनता है उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जो रस द्वेष उत्पन्न करने वाला होता है, वह अमनोज्ञ कहलाता है तथा जो रस में सम-समभाव रखता है, वह वीतरागी होता है ॥ ६१ ॥

That which perceives taste is called tongue. If it (taste) is pleasant then it becomes the cause of attachment and if it is unpleasant it becomes the cause of aversion. He who remains equanimous (beyond attachment and aversion) in both the conditions is detached. (61)

रसस्स जिब्भं गहणं वयन्ति, जिब्भाए रसं गहणं वयन्ति ।  
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ६२ ॥

जिह्वा को रस की ग्रहण करने वाली और रस को जिह्वा का ग्राह्य विषय कहा जाता है। राग के हेतु रस को समनोज्ञ और द्वेष के कारणभूत रस को अमनोज्ञ कहा गया है ॥ ६२ ॥

That which savours taste is called tongue and the object of savouring by tongue is called taste. The cause of attachment is called pleasant and the cause of aversion is unpleasant. (62)

रसेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।  
रागाउरे वडिसविभिन्नकाए, मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे ॥ ६३ ॥

जो व्यक्ति (मनोज्ञ) रसों में अत्यन्त मृद्ध होता है वह अकाल में उसी तरह विनाश को पाता है जिस प्रकार माँस-भोजन के लुब्धक रागातुर मत्स्य का शरीर (गला-कंठ) लोहे के काँटे से बिंध जाता है (और उसकी मृत्यु हो जाती है) ॥ ६३ ॥

One who is infatuated with pleasant taste is plagued by attachment to end up in untimely ruin, just as a fish, obsessed by taste (taste of a shred of meat), is hooked to death on swallowing the bait. (63)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।  
दुहन्तदोसेण सएण जन्तू, रसं न किंचि अवरज्जई से ॥ ६४ ॥



जो अमनोज्ञ रस के प्रति तीव्र-अत्यन्त उग्र द्वेष करता है वह प्राणी उसी क्षण (तत्काल) अपने दुर्दम्य द्वेष-दोष के फलस्वरूप दुःख पाता है। इस (दुःख) में रस का बिल्कुल भी अपराध अथवा दोष नहीं है ॥ ६४ ॥

Contrary to this, he who is intensely averse (to unpleasant taste) instantly suffers pain due to his own insurmountable aversion. There is no fault of taste (pleasant or unpleasant) in this. (64)

एगन्तरत्ते रुद्धे रसम्मि, अतालिसे से कुणई पओसं।  
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ ६५ ॥

जो व्यक्ति रुचिर (रुचिकर-स्वाद) रस में अत्यधिक रक्त हो जाता है और उसके प्रतिकूल (अरुचिकर-रस-स्वाद) रस में द्वेष करता है वह अज्ञानी दुःखजन्य पीड़ा (कष्ट) को पाता है। लेकिन विरक्त मुनि (मनोज्ञ-अमनोज्ञ रस-सम्बन्धी राग-द्वेष में) लिप्त नहीं होता ॥ ६५ ॥

He who gets exclusively and excessively infatuated with delicious taste is averse to repulsive taste. That ignorant suffers pain. But the detached ascetic does not get involved in them (pleasant and unpleasant taste), does not have attachment or aversion for them. (65)

रसाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽपेगुरूवे।  
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्टगुरू किलिट्ठे ॥ ६६ ॥

रस की आशा करता हुआ जीव अनेक प्रकार से चराचर (त्रस-स्थावर) जीवों की हिंसा करता है। अपने स्वार्थ को ही सर्वोपरि मानने वाला क्लिष्ट अज्ञानी उन (चराचर) जीवों को विचित्र-विचित्र प्रकार से अनुतापित और पीड़ित करता है ॥ ६६ ॥

A person hankering for pleasant taste indulges in violence towards mobile and immobile beings many ways. Giving importance to his self-interest and tarnished with attachment and aversion, an ignorant being torments those beings various ways. (66)

रसाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे।  
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥ ६७ ॥

(मनोज्ञ) रस में अधिक राग और परिग्रह में ममत्व होने से उस (रस) को उत्पन्न करने, उसकी भली-भाँति रक्षा करने, सन्नियोग तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कैसे मिल सकता है? और उस मनोज्ञ रस का उपभोग करते समय भी अतृप्ति का ही दुःख होता है, तृप्ति नहीं होती ॥ ६७ ॥

How can a man derive happiness on account of love and fondness for delicious taste while he creates, protects, associates (trades and exchanges), expends and loses the same (things that enhance delicious taste)? Even when he enjoys them he feels unsatisfied, does not ever experience satiety. (67)

रसे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं।  
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ६८ ॥



रस में अतृप्त और उसके परिग्रह में अत्यधिक आसक्त—रचे-पचे रहने वाले (सत्त्वोवसत्तो) व्यक्ति को तुष्टि की प्राप्ति नहीं हो पाती, वह अपने असंतुष्टि दोष से दुःखी और लोभाविष्ट होकर दूसरों के पदार्थ (रसयुक्त पदार्थ) उनके बिना दिये ही, अदत्त रूप से ले लेता है, चुरा लेता है ॥ ६८ ॥

A person, not satiated with delicious taste and intensely obsessed with acquiring that, never gains satisfaction. Aggrieved with the drawback of discontentment and overwrought by greed, such person takes belongings of others without being given (steals). (68)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, रसे अतित्तस्स परिग्गहे य।  
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ६९ ॥

तृष्णा से अभिभूत (पराजित), रस और परिग्रह से अतृप्त, दूसरों के रसयुक्त पदार्थों का अपहरण करने वाले के लोभ-दोष के कारण कपट और मृषा (असत्य) बढ़ जाते हैं। किन्तु इन (कपट और असत्य) का प्रयोग करने पर भी उसका दुःख नहीं मिटता ॥ ६९ ॥

Overwhelmed by craving, the thief of others' belongings, not satiated with delicious taste and possessions finds that his deceit and lies continue to multiply due to his vice of greed; however, he still (in spite of employing deceit and lie) fails to be emancipated from miseries. (69)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते।  
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, रसे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ७० ॥

मिथ्या भाषण करने से पहले, उसके बाद तथा मिथ्या बोलते समय भी वह दुःखी होता है और उसका अन्त भी दुःखपूर्ण होता है। इस प्रकार रस में अतृप्त होकर, चोरी करता हुआ वह दुःखित और निराश्रित हो जाता ॥ ७० ॥

He becomes sorrowful before, after and even while telling a lie and the consequences of the act too are painful. Thus the person indulging in theft and also not satiated with delicious taste, becomes miserable and without refuge. (70)

रसाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?  
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ७१ ॥

इस तरह रस (स्वाद) में अधिक आसक्त मानव को कदाचित् भी सुख कहाँ से प्राप्त हो सकता है? जिसको प्राप्त करने के लिए वह इतने दुःख उठाता है, उसके उपभोग में भी दुःख और क्लेश ही होता है ॥ ७१ ॥

Thus when, where and how much happiness can a person, infatuated with delicious taste gain? For gaining that he suffers so much misery and even while enjoying the same he again suffers only pain and misery. (71)

एमेव रसम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।  
पदुट्ठचित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ७२ ॥



इसी तरह (अमनोज्ञ) रस में द्वेष करने वाला व्यक्ति भी दुःख की परम्पराएँ प्राप्त करता है। प्रदुष्ट चित्त से जिन कर्मों का संचय करता है वही पुनः विपाक के समय दुःख रूप हो जाते हैं ॥ ७२ ॥

In the same way one who hates repulsive taste also suffers a variety of miseries in succession; and the *karmas* he accumulates due to aversion-filled mind also come to fruition as pain. (72)

रसे विरक्तो मणुओ विसोगो, एण दुक्खोहपरंपरेण।  
न लिप्पई भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥ ७३ ॥

रस में रक्त न होने वाला मनुष्य अवसाद नहीं करता। जिस प्रकार जल में रहता हुआ कमल-पत्र जल से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार संसार में रहता हुआ भी वह मानव इस दुःख संपात की परंपरा से लिप्त नहीं होता ॥ ७३ ॥

(But) A person apathetic to taste is not aggrieved; he remains free from these sequences of misery. As a lotus leaf, though in a pond, remains unaffected by water, in the same way that person remains unaffected (by attachment and aversion for taste), though living in the world. (73)

कायस्स फासं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु।  
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरगो ॥ ७४ ॥

स्पर्श को काय (शरीर) का ग्राह्य विषय कहा जाता है। जो स्पर्श राग का हेतु होता है उसे मनोज्ञ कहा जाता है और जिस स्पर्श के कारण द्वेष उत्पन्न होता है, वह अमनोज्ञ कहलाता है तथा जो इन दोनों में सम (समभावयुक्त) रहता है, वह वीतरागी है ॥ ७४ ॥

That which perceives touch is called body. If it (touch) is pleasant then it becomes the cause of attachment and if it is unpleasant it becomes the cause of aversion. He who remains equanimous (beyond attachment and aversion) in both the conditions is detached. (74)

फासस्स कायं गहणं वयन्ति, कायस्स फासं गहणं वयन्ति।  
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ७५ ॥

काय को स्पर्श का ग्राहक और स्पर्श को काय का ग्राह्य विषय कहा जाता है। जो स्पर्श राग का हेतु है वह समनोज्ञ कहा जाता है और द्वेष का हेतु-कारण स्पर्श अमनोज्ञ कहा जाता है ॥ ७५ ॥

That which experiences touch is called body and what is experienced by body is called touch. The cause of attachment is called pleasant and the cause of aversion is unpleasant. (75)

फासेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।  
रागाउरे सीयजलावसन्ने, गाहगहीए महिसे व उरन्ने ॥ ७६ ॥

जो (मनोज्ञ) स्पर्श में तीव्रतापूर्वक गुद्ध है, वह अकाल में ही विनाश को प्राप्त होता है उसी प्रकार जैसे वन में शीतल जल के स्पर्श में आतुर बना हुआ भैंसा मगर (ग्राह) द्वारा पकड़ लिया जाता है ॥ ७६ ॥



One who is infatuated with pleasant touch is plagued by attachment to end up in untimely ruin, just as a buffalo, obsessed by touch (touch of cold water), is caught by a crocodile. (76)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।  
दुइन्तदोसेण सएण जन्तू, न किंचि फासं अवरज्झई से ॥ ७७ ॥

जो अमनोज्ञ स्पर्श में तीव्र द्वेष करता है वह प्राणी तत्काल उसी क्षण अपने ही दुर्दमनीय दोष के कारण दुःख पाता है। इसमें स्पर्श का कुछ भी अपराध या दोष नहीं है ॥ ७७ ॥

Contrary to this, he who is intensely averse (to unpleasant touch) instantly suffers pain due to his own insurmountable aversion. There is no fault of touch (pleasant or unpleasant) in this. (77)

एगन्तरत्ते रुइरंसि फासे, अतालिसे से कुणई पओसं ।  
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ ७८ ॥

जो रुचिर (सुखद रुचिकर) स्पर्श में अत्यधिक आसक्त होता है तथा इसके विपरीत अरुचिकर-असुखद स्पर्श के प्रति प्रद्वेष (विशेष द्वेष) रखता है, वह अज्ञानी दुःखजनित पीड़ा को प्राप्त करता है तथा विरागी मुनि (सुखद और दुःखद दोनों प्रकार के स्पर्शों में राग-द्वेष न करके) उनमें लिप्त नहीं होता ॥ ७८ ॥

He who gets exclusively and excessively infatuated with pleasant touch is averse to repulsive touch. That ignorant suffers pain. But the detached ascetic does not get involved in them (pleasant and unpleasant touch), does not have attachment or aversion for them. (78)

फासाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ उणेगरूवे ।  
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तट्ठगुरू किलिट्ठे ॥ ७९ ॥

(मनोज्ञ) स्पर्श की प्राप्ति की आशा का अनुगमन करने वाला अनेक प्रकार के चर-अचर (त्रस-स्थावर) जीवों की हिंसा करता है। अपने स्वार्थ को गुरुतर (सर्व प्रमुख) मानने वाला वह राग-द्वेष से पीड़ित-क्लिष्ट अज्ञानी विविध प्रकार से उन जीवों को परिताप देता है और पीड़ित करता है ॥ ७९ ॥

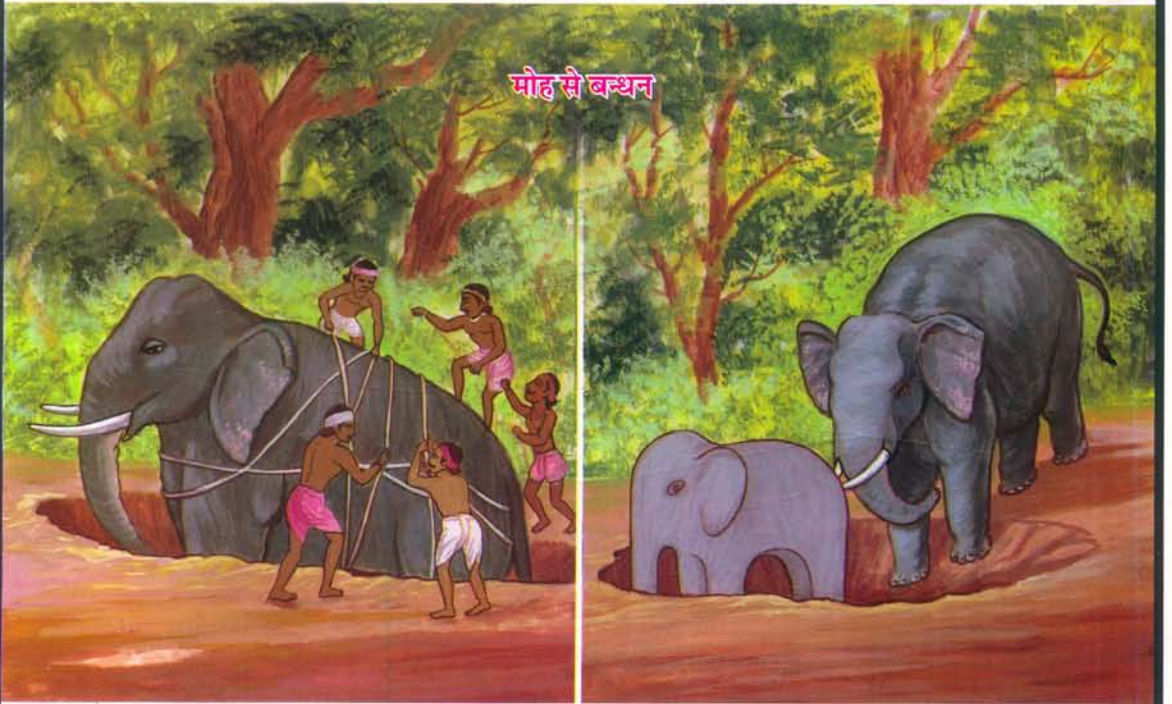
A person hankering for pleasant touch indulges in violence towards mobile and immobile beings many ways. Giving importance to his self-interest and tarnished with attachment and aversion, an ignorant being torments those beings various ways. (79)

फासाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे ।  
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्तिलाभे ॥ ८० ॥

मनोज्ञ स्पर्श के प्रति अनुरक्ति और परिग्रह के प्रति ममत्व होने से उसके उत्पादन, सुरक्षा और व्यवस्था (सन्नियोग) में तथा व्यय और वियोग में उसे सुख कहाँ? तथा उपभोग करते समय भी तृप्ति का लाभ नहीं होता ॥ ८० ॥



स्पर्श आसक्ति



मोह से बन्धन



वीतराग दशा

## विषयों की आसक्ति का कटु फल - 2

- (1) शीतल जल का लोभी भैंसा और हथिनी के मोह में अन्धा हाथी-रागभाव के कारण विनाश को प्राप्त होते हैं।
- (2) जल में कमल की भाँति निर्लेप वीतराग पुरुष सदा शान्त एवं प्रसन्न रहते हैं।

—अध्ययन 32, सू. 76-79, 99

## BITTER CONSEQUENCE OF OBSESSION WITH SENSUAL PLEASURES -2

- (1) A buffalo obsessed with cool water and a bull-elephant blind with the lust for she-elephant embrace disaster.
- (2) Like a lotus unaffected by water a detached person is always serene and blissful.

—Chapter 32, Aphorism 76-79, 99







How can a man derive happiness on account of love and fondness for pleasant touch while he creates, protects, associates (trades and exchanges), expends and loses the same (things that enhance pleasant touch). Even when he enjoys them he feels unsatisfied, does not ever experience satiety. (80)

फासे अतित्ते य परिग्रहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुड्ढिं।  
अतुड्ढिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ८१ ॥

स्पर्श में अतृप्त तथा परिग्रह में प्रगाढ़ रूप से आसक्त को संतुष्टि प्राप्त नहीं होती। असन्तुष्टि के दोष से दुःखित और लोभाविष्ट होकर वह दूसरों की बिना दी हुई (अदत्त) वस्तु को चुरा (ग्रहण कर) लेता है ॥ ८१ ॥

A person, not satiated with pleasant touch and intensely obsessed with acquiring that, never gains satisfaction. Aggrieved with the drawback of discontentment and overwrought by greed, such person takes belongings of others without being given (steals). (81)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, फासे अतित्तस्स परिग्रहे य।  
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ८२ ॥

तृष्णा से अभिभूत तथा अदत्त का हरण करने वाला एवं स्पर्श में और परिग्रह में अतृप्त व्यक्ति के लोभ दोष के कारण छल-कपट तथा मृषावाद-झूठ बढ़ जाते हैं लेकिन छल करने और झूठ बोलने से भी उसका दुःख नहीं मिटता ॥ ८२ ॥

Overwhelmed by craving, the thief of others' belongings, not satiated with pleasant touch and possessions finds that his deceit and lies continue to multiply due to his vice of greed; however, he still (in spite of employing deceit and lie) fails to be emancipated from miseries. (82)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते।  
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, फासे अतित्तो दुहिओ अणिस्सो ॥ ८३ ॥

मिथ्या बोलने से पहले, उसके पश्चात् तथा मिथ्या बोलते समय भी वह दुःखी होता है और उसका अन्त (परिणाम) भी दुःखपूर्ण होता है। इस प्रकार अदत्त ग्रहण का आचरण करता हुआ वह स्पर्श में अतृप्त दुःखी और निराश्रित हो जाता है ॥ ८३ ॥

He becomes sorrowful before, after and even while telling a lie and the consequences of the act too are painful. Thus the person indulging in theft and also not satiated with pleasant touch, becomes miserable and without refuge. (83)

फासाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?  
तत्थोवभोगे वि किलेस दुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ८४ ॥

इस प्रकार स्पर्श में अनुरक्त (सदैव रचे-पचे रहने वाले) व्यक्ति को किंचित् मात्र, कभी भी, कैसे सुख की प्राप्ति हो सकती है? जिसके लिए दुःख सहा जाता है उसका उपभोग करते समय भी दुःख और क्लेश (का अनुभव) ही होता है ॥ ८४ ॥



Thus when, where and how much happiness can a person, infatuated with pleasant touch gain? For gaining that he suffers so much misery and even while enjoying the same he again suffers only pain and misery. (84)

एमेव फासम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ ।  
पहुदुच्चित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से पुणो होइ दुहं विवागे ॥ ८५ ॥

इसी तरह जो (अमनोज्ञ) स्पर्श के प्रति अधिक द्वेष करता है, वह भी दुःख परम्पराओं को प्राप्त करता है और द्वेष से आपूर्ण हृदय वाला वह जिस प्रकार के कर्मों का संचय (उपार्जन) करता है वही कर्मदलित विपाक के समय दुःख रूप हो जाते हैं ॥ ८५ ॥

In the same way one who hates repulsive touch also suffers a variety of miseries in succession; and the *karmas* he accumulates due to aversion-filled mind also come to fruition as pain. (85)

फासे विरत्तो मणुओ विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण ।  
न लिप्पई भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥ ८६ ॥

स्पर्श में आसक्त नहीं होने वाला मनुष्य अवसादग्रस्त नहीं होता। जिस प्रकार जल में रहता हुआ कमल-पत्र जल में लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार संसार में रहता हुआ वह मानव इस दुःख-संताप की परम्परा में लिप्त नहीं होता ॥ ८६ ॥

(But) A person apathetic to touch is not aggrieved; he remains free from these sequences of misery. As a lotus leaf, though in a pond, remains unaffected by water, in the same way that person remains unaffected (by attachment and aversion for touch), though living in the world. (86)

मणस्स भावं गहणं वयन्ति, तं रागहेउं तु मणुन्नमाहु ।  
तं दोसहेउं अमणुन्नमाहु, समो य जो तेसु स वीयरारो ॥ ८७ ॥

भाव (विचार, चिन्तन, अभिप्राय) को मन का ग्रहण करने योग्य विषय कहा जाता है। जो भाव राग का हेतु होता है वह मनोज्ञ कहा जाता है और जो द्वेष का कारण बनता है वह अमनोज्ञ कहा गया है। जो उसमें सम रहता है वह वीतरागी है ॥ ८७ ॥

That which perceives feeling (thought, contemplation, purport) is called mind. If it (feeling) is pleasant then it becomes the cause of attachment and if it is unpleasant it becomes the cause of aversion. He who remains equanimous (beyond attachment and aversion) in both the conditions is detached. (87)

भावस्स मणं गहणं वयन्ति, मणस्स भावं गहणं वयन्ति ।  
रागस्स हेउं समणुन्नमाहु, दोसस्स हेउं अमणुन्नमाहु ॥ ८८ ॥

मन को भाव का ग्राहक (ग्रहण) ग्रहण करने वाला कहते हैं और भाव को मन का ग्राह्य (जो ग्रहण किया जाता है) कहते हैं। राग का हेतु समनोज्ञ भाव कहा जाता है और अमनोज्ञ को द्वेष का कारण कहा है ॥ ८८ ॥



That which experiences feeling is called mind and what is experienced by mind is called feeling. The cause of attachment is called pleasant and the cause of aversion is unpleasant. (88)

भावेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं ।  
रागाउरे कामगुणोसु गिद्धे, करेणुमग्गावहिए व नागे ॥ ८९ ॥

जो भावों में अत्यधिक गृद्धि करता है, वह उसी प्रकार अकाल (असमय) में विनष्ट हो जाता है जिस प्रकार हथिनी के प्रति आकृष्ट और कामगुणों में गृद्ध, राग में आतुर बना हुआ हाथी विनाश को प्राप्त हो जाता है ॥ ८९ ॥

One who is infatuated with pleasant feelings is plagued by attachment to end up in untimely ruin, just as an elephant, obsessed by feeling (feeling lust for a she elephant) meets his end. (89)

जे यावि दोसं समुवेइ तिव्वं, तंसिक्खणे से उ उवेइ दुक्खं ।  
दुद्धन्तदोसेण सएण जन्तू, न किंचि भावं अवरज्झई से ॥ ९० ॥

जो अमनोज्ञ-अप्रिय भाव के प्रति तीव्र द्वेष करता है, उसी क्षण वह प्राणी स्वयं अपने ही दुर्दान्त दोष के कारण दुःख पाता है। इसमें भाव का किंचित् भी अपराध अथवा दोष नहीं है ॥ ९० ॥

Contrary to this, he who is intensely averse (to unpleasant feelings) instantly suffers pain due to his own insurmountable aversion. There is no fault of feelings (pleasant or unpleasant) in this. (90)

एगन्तरत्ते रुइरंसि भावे, अतालिसे से कुणई पओसं ।  
दुक्खस्स संपीलमुवेइ बाले, न लिप्पई तेण मुणी विरागो ॥ ९१ ॥

जो व्यक्ति रुचिर (प्रिय अथवा रुचिकर) भाव में एकान्त-अत्यधिक रूप से गृद्ध (रक्त) होता है तथा उसके प्रतिकूल अप्रिय-अरुचिकर भाव के प्रति प्रद्वेष करता है वह व्यक्ति दुःखजन्य पीड़ा को प्राप्त करता है लेकिन विरक्त (राग-द्वेष से विरत) मुनि उसमें (प्रिय-अप्रिय भावों में) लिप्त नहीं होता ॥ ९१ ॥

He who gets exclusively and excessively infatuated with pleasant feelings is averse to unpleasant feelings. That ignorant suffers pain. But the detached ascetic does not get involved in them (pleasant and unpleasant feelings), does not have attachment or aversion for them. (91)

भावाणुगासाणुगए य जीवे, चराचरे हिंसइ ऽणोरूवे ।  
चित्तेहि ते परितावेइ बाले, पीलेइ अत्तडुगुरू किलिट्ठे ॥ ९२ ॥

(प्रिय) भावों की आशा का अनुगमन करने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार के चराचर जीवों की हिंसा करता है। अपने स्वार्थ के ही सर्वोच्च महत्व देने वाला, राग-द्वेष संपीडित-क्लिष्ट अज्ञानी जीव उन (त्रस-स्थावर) जीवों को भिन्न-भिन्न प्रकार से परितापित और पीड़ित करता है ॥ ९२ ॥

A person hankering for pleasant feelings indulges in violence towards mobile and immobile beings many ways. Giving importance to his self-interest and tarnished with attachment and aversion, an ignorant being torments those beings various ways. (92)



भावाणुवाएण परिग्गहेण, उप्पायणे रक्खणसन्निओगे।  
वए विओगे य कहिं सुहं से ?, संभोगकाले य अतित्थिलाभे ॥ ९३ ॥

(प्रिय) भावों में अनुरक्ति और परिग्रहण में ममत्व होने के कारण मानव उनका उत्पादन, रक्षण और सन्नियोग करता है किन्तु उनका व्यय और वियोग भी होता है। इन सब में सुख कहाँ है? उनका उपभोग करते समय भी उसे अतृप्ति ही प्राप्त होती है ॥ ९३ ॥

How can a man derive happiness on account of love and fondness for pleasant feelings while he creates, protects, associates (trades and exchanges), expends and loses the same (things that enhance pleasant feelings). Even when he enjoys them he feels unsatisfied, does not ever experience satiety. (93)

भावे अत्तित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेई तुट्ठिं।  
अत्तुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययई अदत्तं ॥ ९४ ॥

भाव में अतृप्त और परिग्रह में अत्यधिक आसक्त व्यक्ति को संतुष्टि नहीं होती। असंतुष्टि के दोष से दुःखी और लोभग्रस्त होकर वह दूसरे का बिना दिया हुआ पदार्थ ग्रहण कर लेता है, अदत्तादान का आचरण करता है ॥ ९४ ॥

A person, not satiated with pleasant feelings and intensely obsessed with acquiring that, never gains satisfaction. Aggrieved with the drawback of discontentment and overwrought by greed, such person takes belongings of others without being given (steals). (94)

तण्हाभिभूयस्स अदत्तहारिणो, भावे अत्तित्तस्स परिग्गहे य।  
मायामुसं वड्ढइ लोभदोसा, तत्थावि दुक्खा न विमुच्चई से ॥ ९५ ॥

वह तृष्णा से अभिभूत (पराजित) होकर चोरी करता है और भाव-परिग्रहण में अतृप्त होता है। अतृप्ति-लोभ दोष के कारण उसका माया-मृषा (छल सहित झूठ बोलने की प्रवृत्ति) बढ़ जाता है; (किन्तु) माया-मृषा से भी उसकी दुःख से मुक्ति नहीं होती-दुःख नहीं मिटता ॥ ९५ ॥

Overwhelmed by craving, the thief of others' belongings, not satiated with pleasant feelings and possessions finds that his deceit and lies continue to multiply due to his vice of greed; however, he still (in spite of employing deceit and lie) fails to be emancipated from miseries. (95)

मोसस्स पच्छा य पुरत्थओ य, पओगकाले य दुही दुरन्ते।  
एवं अदत्ताणि समाययन्तो, भावे अत्तित्तो दुहिणो अणिस्सो ॥ ९६ ॥

झूठ बोलने के बाद, बोलने से पहले और बोलते समय भी वह दुःखी होता है। उसका पर्यवसान भी दुःखपूर्ण होता है। इस तरह भाव में अतृप्त होकर चोरी करता हुआ वह दुःखी और अनाश्रित हो जाता है ॥ ९६ ॥

He becomes sorrowful before, after and even while telling a lie and the consequences of the act too are painful. Thus the person indulging in theft and also not satiated with pleasant feelings, becomes miserable and without refuge. (96)



भावाणुरत्तस्स नरस्स एवं, कत्तो सुहं होज्ज कयाइ किंचि?  
तत्थोवभोगे वि किलेसदुक्खं, निव्वत्तई जस्स कएण दुक्खं ॥ ९७ ॥

भाव में अनुरक्त मनुष्य को कदाचित्, किंचित् सुख भी कहाँ हो सकता है? जिस उपभोग के लिए वह दुःख सहता है, उस उपभोग में भी क्लेश-दुःख बना रहता है ॥ ९७ ॥

Thus when, where and how much happiness can a person, infatuated with pleasant feelings gain? For gaining that he suffers so much misery and even while enjoying the same he again suffers only pain and misery. (97)

एमेव भावम्मि गओ पओसं, उवेइ दुक्खोहपरंपराओ।  
पदुदुच्चित्तो य चिणाइ कम्मं, जं से गुणो होइ दुहं विवागे ॥ ९८ ॥

इसी प्रकार जो (अप्रिय-असुखकर) भाव के प्रति द्वेष करता है, वह अनेक दुःखों की परम्पराओं को पाता है। प्रदुष्ट (द्वेष से क्लिष्ट) हृदय वाला व्यक्ति जिन कर्मों का संचय करता है, वही कर्म विपाक काल में उसके लिए दुःख के हेतु बनते हैं ॥ ९८ ॥

In the same way one who hates repulsive feelings also suffers a variety of miseries in succession; and the *karmas* he accumulates due to aversion-filled mind also come to fruition as pain. (98)

भावे विरत्तो विसोगो, एएण दुक्खोहपरंपरेण।  
न लिप्पई भवमज्झे वि सन्तो, जलेण वा पोक्खरिणीपलासं ॥ ९९ ॥

भाव से विरक्त मानव शोक-मुक्त बन जाता है। जिस प्रकार कमलिनी का पत्र (पत्ता) जल में रहता हुआ भी जल से लिप्त नहीं होता उसी प्रकार वह मानव संसार में रहता हुआ भी अनेक दुःख परम्पराओं से लिप्त नहीं होता ॥ ९९ ॥

(But) A person apathetic to feelings is not aggrieved; he remains free from these sequences of misery. As a lotus leaf, though in a pond, remains unaffected by water, in the same way that person remains unaffected (by attachment and aversion for feelings), though living in the world. (99)

एविन्दियत्था य मणस्स अत्था, दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो।  
ते चेव थोवं पि कयाइ दुक्खं, न वीयरगस्स करेन्ति किंचि ॥ १०० ॥

इस प्रकार जो इन्द्रियों और मन के विषय हैं, वे रागी मनुष्य के लिए दुःख के कारण हैं। वे ही विषय वीतराग के लिए कदापि और किंचित् भी दुःखरूप नहीं बनते हैं ॥ १०० ॥

Thus the objects of senses and mind are causes of pain for a person with attachment. However, the same never cause even slightest pain to the detached one. (100)

न कामभोगा समयं उवेन्ति, न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।  
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ ॥ १०१ ॥

कामभोग (अपने आप में) न तो समता-समभाव उत्पन्न करते हैं और न ही वे भोग विकृति पैदा करते हैं। जो उनके प्रति प्रद्वेष और परिग्रह (ममत्व-राग) रखता है वह उनमें मोह के कारण विकृति को प्राप्त करता है ॥ १०१ ॥



Sensual pleasures and comforts do not induce equanimity on their own nor do they generate perversion of lustful indulgence. One who has aversion and attachment for them gets perverted out of his own fondness (infatuation) for them. (101)

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोहं दुगुंछं अरइं रइं च।  
हासं भयं सोगपुमिस्थिवेयं, नपुंसवेयं विविहे य भावे ॥ १०२ ॥

क्रोध, मान, माया, लोभ, जुगुप्सा, अरति, रति, हास्य, भय, शोक, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद तथा अन्य विविध भावों को— ॥ १०२ ॥

Anger, conceit, deceit, greed, disgust, non-indulgence in restraint, indulgence in sensual pleasures, mirth, fear, grief, male, female and neutral gender awareness and various other sentiments— (102)

आवज्जई एवमणेगरूवे, एवविहे कामगुणेसु सत्तो।  
अने य एयप्पभवे विसेसे, कारुण्णदीणे हिरिमे वइस्से ॥ १०३ ॥

इसी तरह अनेक प्रकार के विकारों को कामगुणों में आसक्त जीव प्राप्त करता है तथा इन भावों से प्राप्त होने वाले नरकादि दुःखों को पाता है तथा वह करुणास्पद, हीन, लज्जित और द्वेष का पात्र बन जाता है ॥ १०३ ॥

And likewise numerous other perversions plague the person who is infatuated with carnal pleasures and as a consequence suffers torments including rebirth in hell; thereby he becomes pitiable, lowly, shameful and an object of aversion. (103)

कप्पं न इच्छिज्ज सहायलिच्छू, पच्छाणुतावेय तवप्पभावं।  
एवं वियारे अमियप्पयारे, आवज्जई इन्दियचोरवस्से ॥ १०४ ॥

(नीतराग के पथ का पथिक साधु) अपने शरीर की सेवा सहायता की लिप्सा से योग्य शिष्य की इच्छा न करे, दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् पश्चात्ताप करके अथवा अनुत्पन्न होकर तप के प्रभाव की भी इच्छा न करे; क्योंकि इस प्रकार की इच्छाओं से साधक इन्द्रिय चोरों के वश में होकर अनेक प्रकार के विकारों-दोषों से ग्रस्त हो जाता है, उनको प्राप्त कर लेता है ॥ १०४ ॥

(An ascetic following the path of detachment) should not wish for an able disciple with a yearning for service and help of his own body. After accepting initiation he should also not desire for fruits of his austerities out of remorse or anger. This is because due to such desires the aspirant comes under influence of thief-like senses and is gripped by many perversions and faults. (104)

तओ से जायन्ति पओयणाइं, निमज्जिउं मोहमहण्णवप्पि।  
सुहेसिणो दुक्खविणोयणट्ठा, तप्पच्चयं उज्जमए य रागी ॥ १०५ ॥

तब (कषायों, नोकषायों, विकारों से ग्रस्त होने के पश्चात्) उस सुखाभिलाषी साधक अथवा व्यक्ति को मोहरूपी महासागर में डुबोने के लिए, दुःखों के निवारण के लिए (आरम्भ, परिग्रह, आदि रूप) अनेक प्रजोजन उत्पन्न-उपस्थित होते हैं, वह रागी (द्वेषी तथा मोही भी) व्यक्ति उन कल्पित दुःखों से मुक्त होने का प्रयास-उद्यम करता है ॥ १०५ ॥



Then (after being gripped by passions, auxiliary passions and perversions) that joy seeking aspirant comes across many occasions (in the form of indulgence in sins and acquisitions) of getting submerged in the ocean of delusion and removal of miseries, and that covetous (as well as hateful and deluded) person exerts himself to get free of those imaginary miseries. (105)

विरज्जमाणस्स य इन्द्रियत्था, सहाइया तावइयप्पगारा।  
न तस्स सव्वे वि मणुन्नयं वा, निव्वत्तयन्ती अमणुन्नयं वा ॥ १०६ ॥

शब्द आदि जितने भी इन्द्रियों के विषय हैं, वे विरक्त चित्त वाले व्यक्ति के मन में अमनोज्ञता अथवा मनोज्ञता का भाव उत्पन्न नहीं करते हैं ॥ १०६ ॥

All the objects of senses, including sound, do not generate pleasant or unpleasant feelings in the mind of a person with attitude of detachment. (106)

एवं संसंकप्पविकप्पणासुं, संजायई समयमुवट्ठियस्स।  
अत्थे य संकप्पयओ तओ से, पहीयए कामगुणेसु तण्हा ॥ १०७ ॥

मेरे अपने ही संकल्प-राग-द्वेष, मोह रूप अध्यवसाय तथा विकल्प-मनोज्ञ-अमनोज्ञ की कल्पनाएँ ही सभी प्रकार के दोषों का कारण हैं, जो इस प्रकार के चिन्तन में उद्यत होता है तथा इन्द्रिय विषय दुःखों के मूल नहीं हैं—जो इस प्रकार का संकल्प करता है। उसके मन में समता उत्पन्न होती है और उससे काम गुणों में होने वाली तृष्णा क्षीण हो जाती है ॥ १०७ ॥

One who indulges in contemplation that his own desires (attachment, aversion and delusion) and ambiguities (thoughts of pleasant and unpleasant) are the cause of all faults and the objects of senses are not at the root miseries, he gains equanimity and thereby his craving for sensual pleasures diminishes and gets destroyed. (107)

स वीयरगो कयसव्वकिच्चो, खवेइ नाणावरणं खणेणं।  
तहेव जं दंसणमावरेइ, जं चऽन्तरायं पकरेइ कम्मं ॥ १०८ ॥

वह कृतकृत्य बना हुआ वीतराग आत्मा क्षणभर में (अल्प समय में) ज्ञानावरण कर्म को क्षीण करता है तथा दर्शन का आवरण करने वाले दर्शनावरण कर्म एवं अन्तराय कर्म को नष्ट कर देता है ॥ १०८ ॥

That accomplished detached soul destroys the knowledge obstructing *karma* within a moment (very soon) and then he destroys the perception/faith obstructing *karma* followed by power hindering *karma*. (108)

सव्वं तओ जाणइ पासए य, अमोहणे होइ निरन्तराए।  
अणासवे ज्ञाणसमाहिजुत्ते, आउक्खए मोक्खमुवेइसुद्धे ॥ १०९ ॥

तत्पश्चात् वह संसार के सभी भावों को जानता-देखता है। मोहनीय और अन्तराय कर्म से रहित होकर आस्रवरहित (अनास्रव) हो जाता है। (तदनन्तर) वह ज्ञान समाधि से युक्त हुआ, आयुक्षय होने पर, शुद्ध होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ॥ १०९ ॥



After that he sees and knows all the constituents (and modes) of the universe. Getting free of deluding and power hindering *karmas*, he blocks the inflow of *karmas*. Then being endowed with spiritual serenity he attains absolute purity and liberation at the end of his life-span. (109)

सो तस्स सव्वस्स दुहस्स मुक्को, जं बाहई सययं जन्तुमेयं।  
दीहामयविप्पमुक्को पसत्थो, तो होइ अच्चन्तसुही कयत्थो ॥ ११० ॥

वह उन सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है जो इस जीव को सतत बाधित (पीड़ित) करते रहते हैं। दीर्घकालिक (जन्म-मरण, कर्म) रोगों से विमुक्त, प्रशस्त, कृतार्थ एवं अत्यन्त सुखी हो जाता है ॥ ११० ॥

He becomes free from all miseries that always plague this soul. He gets emancipated from all chronic ailments (birth-death, *karma*), grand, accomplished and contentedly blissful. (110)

अणाइकालप्पभवस्स एसो, सव्वस्स दुक्खस्स पमोक्खमग्गो।  
वियाहिओ जं समुविच्च सत्ता, कमेण अच्चन्तसुही भवन्ति ॥ १११ ॥

—त्ति बेमि।

अनादिकाल से उत्पन्न होते आये, समस्त दुःखों से मुक्ति का यह मार्ग कहा गया है, जिसे सम्यक् प्रकार से अपनाकर जीव क्रम से अत्यन्त सुखी (अनन्त सुख-सम्पन्न) हो जाते हैं ॥ १११ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

This is said to be the path of liberation from all miseries sprouting since time immemorial, rightly taking which souls, in due course, attain ultimate and eternal bliss. (111)

— So I say.







## तेतीसवाँ अध्ययन : कर्म-प्रकृति

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम कर्म-प्रकृति है। नाम से ही स्पष्ट है कि इस अध्ययन में कर्म-प्रकृतियों का वर्णन किया गया है।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कर्म क्या हैं? वे आत्मा से कैसे चिपकते हैं? आत्मा तथा कर्म का बन्धन क्यों होता है? आदि.....

कर्म पुद्गल द्रव्य (Matter) हैं। पुद्गल की कई वर्गणाएँ हैं उनमें से एक कर्म (कार्मण) वर्गणा भी है। चतुःस्पर्शी असंख्य पुद्गल परमाणुओं का समूह कार्मण वर्गणा है। जीव के राग-द्वेष-मोहयुक्त भावों से आकृष्ट होकर ये कर्म-वर्गणाएँ जीव के साथ नीर-क्षीर के समान एक क्षेत्रावगाह-एकमेक हो जाती हैं। यही बन्ध है।

बन्ध का प्रारम्भ कब हुआ? जीव पहली बार कर्मों से कब बैधा? इसका उत्तर है अनादिकाल से; क्योंकि संसारी जीव की कभी अबन्ध दशा थी ही नहीं। वह सदा ही विभाव में रहा। लेकिन स्वभाव की साधना करके वह अबन्ध हो सकता है और तब वह सिद्ध अथवा परमात्मा बन जाता है।

कर्म आठ हैं—(१) ज्ञानावरण—ज्ञान अथवा विशिष्ट बोध का आवरक।

(२) दर्शनावरण—सामान्य सत्ता के अवलोकन-दर्शन, देखने की शक्ति का आवरक।

(३) वेदनीय—सुख-दुःख की अनुभूति (वेदना) कराने वाला।

(४) मोहनीय—जीव के आत्मा के प्रति सम्यक् (सत्य) दृष्टि और तदनुरूप सम्यक् आचरण में विकार उत्पन्न कराने वाला।

(५) आयु—किसी एक गति-योन में जीवित रहने की समय-सीमा निर्धारण में हेतुभूत।

(६) नाम—शरीर-रचना में हेतुभूत।

(७) गोत्र—उच्च-नीच कुल में जीव को उत्पन्न होने में हेतुभूत।

(८) अन्तराय—जीव की उपलब्धियों में विघ्नकारक।

इन आठ कर्मों की उत्तर-प्रकृतियाँ १४८ हैं—ज्ञानावरण की ५, दर्शनावरण की ९, वेदनीय की २, मोहनीय की २८, आयु की ४, नाम की ९३, गोत्र की २ और अन्तराय की ५।

बन्ध की चार दशाएँ हैं—(१) प्रकृति, (२) प्रदेश, (३) स्थिति, और (४) अनुभाग-फल प्रदान शक्ति।

कर्म का बन्ध जीव के राग-द्वेष आदि अध्यवसायों से होता है। तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, मन्द, मन्दतर, मन्दतम आदि अध्यवसायों की अनेक तरतमताएँ हैं, इसी कारण कर्मों की अनेक तरतमताएँ हो जाती हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में इन सभी बातों का संक्षिप्त किन्तु सम्पूर्ण विवेचन किया गया है।

इस अध्ययन में २५ गाथाएँ हैं।



## TRAYASTRIMSH ADHYAYAN : KARMA PRAKRITI

### Foreview

The title of this chapter is *Karma Prakriti* or The Nature of *Karmas*. The very name conveys that this chapter describes the nature or characteristics of *karmas*.

Most important question is—What is *karma*? This follows many other questions like—‘How it adheres to soul?’ ‘Why the bonding of *karma* with soul takes place?’, and so on.....

*Karma* is matter. There are numerous classifications of matter and one among them is the *karmic* class (*karman-vargana*). Aggregates of innumerable ultimate particles of matter (*paramanu*), having the attribute of four dimensional touch, are classified as *karmic* class of matter. Drawn by passions (sentiments of attachment, aversion, fondness and the like) these *karmic* class of matter-aggregates fuse with the soul just like assimilation of water with milk. This process is called bondage.

When did this bondage start? When did the soul enter into *karmic* bondage for the first time? The answer to these questions is—since time immemorial. This is because the worldly soul (as a living being) was never unfettered of *karmas*. It always remains in this unnatural state (*vibhaava*). However, by striving for and exerting towards the natural state (*svabhaava*) it can free itself to become a perfected supreme-soul.

### There are eight basic *karmas*—

1. *Jnanavaraniya* (knowledge obscuring)—*karma* that veils right knowledge or enlightenment.
2. *Darshanavaraniya* (perception/faith obscuring *karma*)—*karma* that veils true perception.
3. *Vedaniya* (emotion evoking *karma*)—*karma* responsible for evoking emotions of pain and pleasure.
4. *Mohaniya* (deluding *karma*)—the *karma* that tempts soul towards fondness for the mundane and away from the true nature of soul.
5. *Ayushya* (life-span determining *karma*)—*karma* responsible for defining life-span in any specific existence as a living being.
6. *Naam* (body type determining *karma*)—*karma* responsible for the destiny and body type.



7. *Gotra* (status determining *karma*)—*karma* responsible for the higher or lower status of a being.

8. *Antaraya* (power hindering *karma*)—*karma* that acts as an impediment to a man's pursuits including realization of his human, moral and spiritual goals.

These eight classes of *karmas* are further divided into 148 sub-classes (*uttara prakritis*) including 5 of *Jnanavaraniya*, 9 of *Darshanavaraniya*, 2 of *Vedaniya*, 28 of *Mohaniya*, 4 of *Ayushya*, 93 of *Naam*, 2 of *Gotra* and 5 of *Antaraya*.

*Karmic* bondage has four dimensions—1. *prakriti bandha* (qualitative bondage), 2. *pradesh bandha* (space-point or sectional bondage), 3. *sthiti bandha* (duration bondage), and 4. *anubhaga bandha* (potency bondage).

Bondage of *karma* takes place due to intents or passions including attachment and aversion. There are many levels of intents including intense, more intense, most intense, mild, milder and mildest making that many levels of *karmas* as well.

All these are described in this chapter in brief but complete.

The chapter has 25 verses.





तेत्तीसइमं ब्रज्जयणं : कम्मपयडी  
 त्रयस्त्रिंश अध्ययन : कर्म-प्रकृति  
 Chapter-33 : THE NATURE OF KARMAS

अद्दु कम्माइं वोच्छामि, आणुपुव्विं जहक्कमं ।

जेहिं बद्धो अयं जीवो, संसारे परिवत्तए ॥ १ ॥

मैं आनुपूर्वी और यथाक्रम से आठ कर्मों का प्रतिपादन करता हूँ, जिन (कर्मों) से बँधा हुआ यह जीव (चतुर्गतिरूप) संसार में पर्यटन करता है ॥ १ ॥

I now explain in sequential order eight types of *karmas*, tethered by which this soul wanders in this world of cycles of rebirth (in four realms). (1)

कर्मों की मूल प्रकृतियाँ

नाणस्सावरणिज्जं, दंसणावरणं तहा ।

वेयणिज्जं तहा मोहं, आउकम्मं तहेव य ॥ २ ॥

नामकम्मं च गोयं च, अन्तरायं तहेव य ।

एवमेयाइ कम्माइं, अट्टेव उ समासओ ॥ ३ ॥

ज्ञान को आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय तथा दर्शनावरणीय और वेदनीय कर्म तथा मोहनीय कर्म, इसी प्रकार आयुकर्म— ॥ २ ॥

नाम कर्म, गोत्र कर्म तथा अन्तराय कर्म—इस प्रकार ये कर्म संक्षेप में आठ ही हैं ॥ ३ ॥

**The primary divisions (*mula prakritis*) of *karmas***

*Inanavaraniya* (knowledge obscuring), *Darshanavaraniya* (perception/faith obscuring *karma*), *Vedaniya* (emotion evoking *karma*), *Mohaniya* (deluding *karma*), *Ayushya* (life-span determining *karma*), - (2)

*Naam* (body type determining *karma*), *Gotra* (status determining *karma*) and *Antaraya* (power hindering *karma*). Briefly these are eight *karmas* (main division of *karmas*). Thus in brief these are the eight classes of *karmas*. (3)

आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ

नाणावरणं पंचविहं, सुयं आभिणिबोहियं ।

ओहिनाणं तइयं, मणनाणं च केवलं ॥ ४ ॥

ज्ञानावरणीय कर्म पाँच प्रकार का है—(१) श्रुतज्ञानावरणीय, (२) आभिनिबोधिक ज्ञानावरणीय (मतिज्ञानावरणीय), (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनोज्ञानावरणीय (मनःपर्यव ज्ञानावरणीय), और (५) केवलज्ञानावरणीय ॥ ४ ॥





**Sub-classes (*uttara prakritis*) of *karmas***

Knowledge obscuring *karma* is of five kinds – (i) *shruta jnanavaraniya* (scriptural knowledge obscuring), (ii) *abhinibodhik jnanavaraniya or mati-jnanavaraniya* (sensory knowledge obscuring), (iii) *avadhi-jnanavaraniya* (obscuring extrasensory perception of the physical dimension), (iv) *manahparyav jnanavaraniya* (obscuring extrasensory perception and knowledge of thought process and thought-forms of other beings), and (v) *keval-jnanavaraniya* (omniscience obscuring). (4)

निद्रा तहेव पयला, निद्रानिद्रा य पयलपयला य।  
तत्तो य श्रीणगिद्धी उ, पंचमा होइ नायव्वा ॥ ५ ॥  
चक्खुमचक्खु-ओहिस्स, दंसणे केवले य आवरणे।  
एवं तु नवविगप्पं, नायव्वं दंसणावरणं ॥ ६ ॥

(१) निद्रा, (२) प्रचला, (३) निद्रा-निद्रा, (४) प्रचला-प्रचला, तथा (५) स्त्यानगृद्धि (स्त्यानर्द्धि) - ॥ ५ ॥

(६) चक्षुदर्शनावरणीय, (७) अचक्षुदर्शनावरणीय, (८) अवधिदर्शनावरणीय, और (९) केवलदर्शनावरणीय, ये ९ विकल्प (भेद) दर्शनावरणीय कर्म के जानने चाहिये ॥ ६ ॥

Perception obscuring *karma* is of nine kinds—(i) *nidra* (sleep), (ii) *prachala* (dozing while sitting), (iii) *nidra-nidra* (deep sleep), (iv) *prachala-prachala* (sleeping even while walking), and (v) *styaangriddhi* (very deep sleep conducive to sleep walking),— (5)

(vi) *chakshu-darshanavaraniya* (visual perception obscuring), (vii) *achakshu-darshanavaraniya* (non-visual perception obscuring), (viii) *avadhi-darshanavaraniya* (extra-sensory perception obscuring), and (ix) *keval-darshanavaraniya* (ultimate perception obscuring). (6)

वेद्यणीयं पि य दुविहं, सायमसायं च आहियं।  
सायस्स उ बहू भेया, एमेव असायस्स वि ॥ ७ ॥

वेदनीय कर्म दो प्रकार का है—(१) सात (साता) वेदनीय, और (२) असात-असाता वेदनीय। सातवेदनीय के बहुत भेद हैं और उसी प्रकार असातवेदनीय के भी बहुत भेद हैं ॥ ७ ॥

Emotion evoking *karma* is of two kinds—(i) evoking emotion of pleasure, and (ii) evoking emotion of pain. There are many sub-classes of both. (7)

मोहणिज्जं पि दुविहं, दंसणे चरणे तथा।  
दंसणं तिविहं वुत्तं, चरणे दुविहं भवे ॥ ८ ॥

मोहनीय कर्म भी दो प्रकार का है—(१) दर्शनमोहनीय, और (२) चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय के तीन भेद कहे गये हैं और चारित्रमोहनीय दो प्रकार का होता है ॥ ८ ॥

Deluding *karma* is of two kinds—(i) perception/faith deluding, and (ii) conduct deluding. Faith deluding *karma* is sub-divided into three classes and conduct deluding into two. (8)



सम्पत्तं चैव मिच्छत्तं, सम्पामिच्छत्तमेव य।  
एयाओ तित्ति पयडीओ, मोहणिज्जस्स दंसणे ॥ ९ ॥

(१) सम्यक्त्व, (२) मिथ्यात्व, और (३) सम्यक्त्व मिथ्यात्व-ये तीन प्रकृतियाँ दर्शनमोहनीय कर्म की हैं ॥ ९ ॥

The three sub-classes of perception/faith deluding *karma* are—(i) right perception/faith deluding, (ii) wrong perception/faith, and (iii) right-wrong (mixed) perception/faith deluding. (9)

चरित्तमोहणं कम्मं, दुविहं तु वियाहियं।  
कसायमोहणिज्जं तु, नोकसायं तहेव य ॥ १० ॥

चारित्रमोहनीय कर्म के दो भेद कहे गये हैं—(१) कषायमोहनीय, और (२) नोकषायमोहनीय ॥ १० ॥

There are two sub-divisions of conduct deluding *karma*— (i) passion (*kashaya*) deluding, and (ii) auxiliary passion (*no-kashaya*) deluding. (10)

सोलसविहभेएणं, कम्मं तु कसायजं।  
सत्तविहं नवविहं वा, कम्मं नोकसायजं ॥ ११ ॥

कषाय मोहनीय कर्म के सोलह भेद हैं। सात अथवा नौ प्रकार का नोकषाय मोहनीय कर्म है ॥ ११ ॥

Passion deluding *karma* has sixteen sub-classes and auxiliary passion deluding *karma* has seven or nine types. (11)

नेरइय-तिरिक्खाउ, मणुस्साउ तहेव य।  
देवाउयं चउत्थं तु, आउकम्मं चउत्विहं ॥ १२ ॥

(१) नैरयिक आयु, (२) तिर्यग् आयु, (३) मनुष्य आयु, और (४) देव आयु-इस तरह आयुकर्म चार प्रकार का है ॥ १२ ॥

Life-span determining *karma* has four classes—(i) infernal life-span, (ii) animal life-span, (iii) human life-span, and (iv) divine life-span. (12)

नामं कम्मं तु दुविहं, सुहमसुहं च आहियं।  
सुहस्स उ बहू भेया, एमेव असुहस्स वि ॥ १३ ॥

नामकर्म दो प्रकार का है—(१) शुभ नामकर्म, और (२) अशुभ नामकर्म। शुभ नामकर्म के बहुत भेद हैं, इसी तरह अशुभ नामकर्म के भी बहुत भेद हैं ॥ १३ ॥

Body type determining *karma* is of two kinds—(i) noble, and (ii) ignoble. Both these have several sub-classes. (13)

गोयं कम्मं दुविहं, उच्चं नीयं च आहियं।  
उच्चं अदुविहं होइ, एवं नीयं पि आहियं ॥ १४ ॥

गोत्रकर्म दो प्रकार का है—(१) उच्च गोत्रकर्म, और (२) नीच गोत्रकर्म। उच्च गोत्रकर्म आठ प्रकार का है, इसी तरह नीच गोत्रकर्म भी आठ प्रकार का बताया गया है ॥ १४ ॥



Status determining *karma* is of two types—(i) high, and (ii) low. The two have eight sub-classes each. (14)

दाणे लाभे य भोगे य, उवभोगे वीरिए तहा ।  
पंचविहमन्तरायं, समासेण वियाहियं ॥ १५ ॥

(१) दानान्तराय, (२) लाभान्तराय, (३) भोगान्तराय, (४) उपभोगान्तराय, और (५) वीर्यान्तराय-संक्षेप से अन्तराय कर्म के ये पाँच प्रकार बताये गये हैं ॥ १५ ॥

Power hindering *karma* is said to be of five kinds—(i) charity hindering, (ii) gain hindering, (iii) momentary enjoyment hindering, (iv) continued enjoyment hindering, and (v) potency hindering. (15)

कर्मों के प्रदेशाय (द्रव्य), क्षेत्र, काल और भाव

एयाओ मूलपयडीओ, उत्तराओ य आहिया ।  
पएसगं खेत्तकाले य, भावं चादुत्तरं सुण ॥ १६ ॥

कर्मों की ये मूल और उत्तर प्रकृतियाँ बताई गई हैं। (अब) उनके प्रदेशाय (द्रव्य), क्षेत्र, काल, भाव भी सुनो ॥ १६ ॥

These are said to be the primary and auxiliary divisions (characteristics) of *karmas*. Now listen to their matter (*dravya*) or particle (*pradeshagra*), area (*kshetra*), time (*kaal*) and mode (*baahva*) related aspects. (16)

सव्वेसिं चेव कम्माणं, पएसगमणन्तगं ।  
गण्ठय-सत्ताईयं, अन्तो सिद्धाण आहियं ॥ १७ ॥

एक समय में (एक आत्मा द्वारा बद्ध-ग्राह्य होने वाले) सभी कर्मों के प्रदेशाय (कर्म-परमाणु पुद्गल दलिक का परिमाण) अनन्त है। (यह अनन्त परिमाण) ग्रन्थिक सत्वातीत (जिन्होंने ग्रन्थि भेद नहीं किया है ऐसे अभव्य जीवों) से अनन्त गुणा अधिक तथा सिद्धों के अन्तर्वर्ती-अनन्तर्वे भाग जितने कहे गये हैं ॥ १७ ॥

The number of ultimate particles (*paramanus*) of all *karmas* (bound by one soul) in one Samaya (the ultimate fraction of time) is infinite. This (infinite number) is infinite times more than the number of souls that are beyond breaking the bondage (the ignoble souls that are never to be liberated; *abhavya*), and infinite fraction of the number of the liberated souls (Siddhas). (17)

सव्वजीवाण कम्मं तु, संगहे छहिसागयं ।  
सव्वेसु वि पएसेसु, सव्वं सव्वेण बद्धगं ॥ १८ ॥

सभी जीव छह दिशाओं में रहे कर्मों (कार्मण वर्गणा के पुद्गलों) का संग्रहण करते हैं। वे सभी कर्म पुद्गल आत्मा के सभी प्रदेशों के साथ सर्व प्रकार से बद्ध-आश्लिष्ट हो जाते हैं ॥ १८ ॥

All the souls acquire *karmas* (ultimate particles of *karmic* class) existing in six cardinal directions around them. All these *karmas* assimilate or fuse with all the sections (*pradeshas*) in every possible way. (18)





उदहीसरिसनामाणं, तीसई कोडिकोडिओ ।  
उक्कोसिया ठिई होइ, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १९ ॥

उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुत्त की होती है ॥ १९ ॥

The maximum duration (of this bondage) is of thirty Koda-kodi Sagaropam (a metaphoric unit of time); and the minimum duration is one Antarmuhurt (slightly less than forty-eight minutes). (19)

आवरणिज्जाण दुण्हंपि, वेयणिज्जे तहेव य ।  
अन्तराए य कम्मम्मि, ठिई एसा वियाहिया ॥ २० ॥

यह (पूर्व गाथा में वर्णित) स्थिति दोनों आवरणीय (ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय) कर्मों की तथा वेदनीय और अन्तराय कर्म की बताई गई है ॥ २० ॥

The duration (aforesaid) is with regard to the two obscuring *karmas* (knowledge obscuring and perception/faith obscuring) as well as emotion evoking and power hindering *karmas*. (20)

उदहीसरिसनामाणं, सत्तरिं कोडिकोडिओ ।  
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ २१ ॥

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरोपम की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुत्त की बताई गई है ॥ २१ ॥

The maximum duration (of this bondage) with regard to deluding *karma* is of seventy Koda-kodi Sagaropam (a metaphoric unit of time) and the minimum is one Antarmuhurt (slightly less than forty-eight minutes). (21)

तेत्तीस सागरोवमा, उक्कोसेण वियाहिया ।  
ठिई उ आउकम्मस्स, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ २२ ॥

आयुर्कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहुत्त प्रमाण है ॥ २२ ॥

The maximum duration (of this bondage) with regard to life-span determining *karma* is of thirty three Sagaropam (a metaphoric unit of time) and the minimum is one Antarmuhurt (slightly less than forty-eight minutes). (22)

उदहीसरिसनामाणं, बीसई कोडिकोडिओ ।  
नामगोत्ताण उक्कोसा, अट्टमुहुत्ता जहन्निया ॥ २३ ॥

नाम और गोत्रकर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम की है और जघन्य स्थिति आठ मुहुत्त की है ॥ २३ ॥

The maximum duration (of this bondage) with regard to body-type and status determining *karmas* is of twenty Koda-kodi Sagaropam (a metaphoric unit of time) and the minimum is eight Muhurt (one Muhurt is forty-eight minutes). (23)

सिद्धाणऽणन्तभागो य, अणुभागा हवन्ति उ ।  
सव्वेसु वि पएसग्गं, सव्वजीवेसुऽइच्छियं ॥ २४ ॥



कर्मों के रस-विशेष-अनुभाग सिद्धों के अनन्तवें भाग जितने होते हैं और सभी अनुभागों में प्रदेशों के अग्र-परमाणुओं का परिमाण सभी ( भव्य-अभव्य जीवों से भी) से अधिक है ॥ २४ ॥

The number of potency defining clusters of *karmic* particles (*anubhaag*) of a specific *karma* is infinite fraction of the number of perfected souls (Siddhas) and the number of ultimate particles in all such potency defining clusters is more than all the worldly souls (destined to be liberated or not; *bhavyya-abhavyya*). (24)

तम्हा एसि कम्माणं, अणुभागे वियाणिया।  
एसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहे ॥ २५ ॥

—त्ति बेमि।

इसलिए इन कर्मों के अनुभागों को जानकर बुद्धिमान-तत्त्वज्ञानी साधक इन कर्मों के संवर और क्षय करने में प्रयासरत बने ॥ २५ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Therefore knowing all these potency defining clusters of *karmic* particles a wise aspirant should exert to stop their inflow and destroy them. (25)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ३—समास का अर्थ संक्षेप है। संक्षेप में आठ कर्म हैं, इसका अभिप्राय है कि वैसे तो जितने प्राणी हैं, उतने ही कर्म हैं, अर्थात् कर्म अनन्त हैं। यहाँ विशेष स्वरूप की विवक्षा से आठ भेद हैं।

गाथा ६—सहज रूप में आने वाली निद्रा है। गहरी और कठिनाई से टूटने वाली निद्रा-निद्रा है। बैठे-बैठे सो जाना प्रचला निद्रा है। चलते हुए भी सो जाना प्रचला-प्रचला निद्रा है।

स्त्यानद्धि का अर्थ है—जिसमें सबसे अधिक ऋद्धि अर्थात् गृद्धि का स्त्यान है, उपचय है, वह निद्रा। इसमें वासुदेव का आधा बल आ जाता है, प्रबल राग-द्वेष वाला प्राणी इस निद्रा में बड़े-बड़े असंभव जैसे कार्य कर लेता है और उसे भान ही नहीं होता कि मैंने क्या किया है?

गाथा ९—सम्यक्त्वमोहनीय शुद्धदलिकरूप है, अतः उसके उदय में भी तत्त्वरुचिरूप सम्यक्त्व हो जाता है। पर, उसमें शंका आदि अतिचारों की मलिनता बनी रहती है। मिथ्यात्व अशुद्धदलिकरूप है, उसके कारण तत्व में अतत्त्व रुचि और अतत्त्व में तत्व रुचि होती है। सम्यक्मिथ्यात्व के दलिक शुद्धाशुद्ध अर्थात् मिश्र हैं।

गाथा १०—“नोकषाय” में प्रयुक्त “नो” का अर्थ “सदृश” है। जो कषाय के समान हैं, कषाय के सहवर्ती हैं, वे हास्य आदि नोकषाय हैं।

गाथा ११—एक बार उपयोग में आने वाले जल, आहार आदि भोग हैं। बार-बार उपयोग में आने वाले वस्त्र, अलंकार, मकान आदि उपभोग हैं।



दान देने वाला भी है, देय वस्तु भी है, दान के फल को भी जानता है, फिर भी दान में प्रवृत्ति न होना, दानान्तराय है।

उदार दाता के होने पर भी याचना निपुण याचक कुछ भी न पा सके, यह लाभान्तराय है।

धन वैभव और अन्य वस्तु के होने पर भी तिनका तोड़ने जैसी भी क्षमता-शक्ति का न होना वीर्यान्तराय है।

इनके जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट आदि अनेक भेद हैं।

गाथा १७—एक समय में बँधने वाले कर्मों का प्रदेशाग्र (कर्मपुद्गलों के परमाणुओं का परिमाण) अनन्त है। अर्थात् आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर एक समय में अनन्तानन्त परमाणुओं से निष्पन्न कर्मवर्गणायें श्लिष्ट होती हैं।

ये अनन्त कर्मवर्गणायें अनन्तानन्त अभव्य जीवों से अनन्तगुणा अधिक और अनन्तसंख्यक सिद्धों के अनन्तवें भाग होती हैं। अर्थात् एक समय में बद्ध अनन्त कर्मवर्गणायें से सिद्ध अनन्तगुणा अधिक हैं।

ग्रन्थिकसत्त्व का अर्थ है अभव्य जीव। अभव्यों की राग-द्वेषरूप ग्रन्थि अभेद्य होती है, अतः उन्हें ग्रन्थिक अथवा ग्रन्थिकसत्त्व (जीव) कहा है।

गाथा १८—पूर्व आदि चार, और ऊर्ध्व एवं अधः ये छह दिशायें हैं। जिस आकाश क्षेत्र में जीव अवगाढ़ है, रह रहा है वहीं के कर्मपुद्गल रागादि भावरूप स्नेह के योग से आत्मा में बद्ध हो जाते हैं। भिन्न क्षेत्र में रहे हुए कर्मपुद्गल वहाँ से आकर आत्मा को नहीं लगते।

ईशान आदि विदिशाओं के भी कर्मपुद्गल बँधते हैं पर विदिशायें दिशाओं में गृहीत हो जाने से यहाँ अविवक्षित हैं।

यह छह दिशाओं का कर्मबन्ध सम्बन्धी नियम द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीवों को लक्ष्य में रखकर बताया गया है। एकेन्द्रिय जीवों के लिये तो कभी तीन, कभी चार, कभी पाँच और कभी छह दिशाओं का उल्लेख है।

ज्ञानावरणादि सभी कर्म आत्मा के सभी असंख्यात प्रदेशों से बँधते हैं, अमुक प्रदेशों पर ही नहीं। आत्मा के प्रदेश बुद्धिपरिकल्पित हैं, पुद्गल की तरह मिलने-बिछुड़ने वाले परमाणु जैसे नहीं।

गाथा १९-२०—प्रस्तुत में वेदनीय कर्म की जघन्य स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त ही बतायी गई है, जबकि अन्यत्र १२ मुहूर्त का उल्लेख है। टीकाकार कहते हैं, इसका क्या अभिप्राय है, हम नहीं जानते। "तदभिप्रायं न विद्मः।"

(सन्दर्भ—उत्तराध्ययनसूत्र : साध्वी चन्दना जी)



## IMPORTANT NOTES

**Verse 3**—The meaning of the word *samaas* is brief. In brief there are eight *karmas*. This statement conveys that generally speaking the total number of *karmas* is equal to the number of living beings, which is infinite. However, from the angle of classification they have been divided into eight classes.

**Verse 6**—The natural slumber is *nidra* (sleep). The deep sleep that is broken only with effort is *nidra-nidra*. To doze while sitting is *prachala*. To sleep while walking is *prachala-prachala*.

*Styaanardhi* is the deep sleep that is accompanied by sentiments of covetousness. Such sleep, it is said, gives half the strength of Vaasudeva; and the person, driven by intense attachment or aversion, performs impossible tasks without being aware.

**Verse 9**—The righteousness deluding *karmas* are clusters of pure ultimate particles; as such on fruition they impart righteousness in the form of interest in fundamentals but it entails transgressions including skepticism and doubt. The unrighteousness deluding *karmas* are clusters of impure ultimate particles and they impart misplaced interest in fundamentals (considering unreal to be real and real to be unreal). The righteousness-cum-unrighteousness deluding *karmas* are clusters of pure and impure ultimate particles, a mixture of pure and impure.

**Verse 10**—The prefix 'no' in the word *nokashaaya* means alike. Similar to or associated with passions (*kashaya*) are or auxiliary passions (*nokashaaya*), like mirth.

**Verse 11**—Indulgence in things or consumables that can be used only once is called *bhoga*, such as eating food, water and the like. That in things or durables that can be used repeatedly is called *upabhoga*, such as dress, ornaments, house and the like. Failure to indulge in these is called the effect of momentary enjoyment and continued enjoyment hindering *karmas*.

Not to indulge in charity even when there is intent, material and awareness of the benefits is called the effect of charity-hindering *karma*.

Inability to get charity even when the seeker is experienced and donor is generous is called the effect of gain-hindering *karma*.

Inability to break even a straw when there is enough strength and means including wealth and grandeur is called the effect of power-hindering *karma*.

From minimum to maximum, there are numerous sub-classes of all these *karmas*.

**Verse 17**—The number of ultimate particles of *karma* fusing with soul in one Samaya is infinite. This means that at each and every section (*pradesha*) of soul clusters made up of infinite ultimate particles of various characteristics (*karma-varganas*) get fused in one Samaya.

This (infinite number) is infinite times more than the number of souls that are never to be liberated) and infinite fraction of the number of the liberated souls (Siddhas). This means that liberated souls are infinite times more than the infinite *karma-varganas* that fuse in one Samaya.

The word *granthika-satva* means the soul unworthy of being liberated. The knot of attachment-aversion of the unworthy is indestructible. That is why the name *granthika* or *granthika-satva* (soul).



**Verse 18**—The four cardinal directions, zenith and nadir are the six directions. The *karmic* particles existing in the surrounding space, where the soul dwells, stick to it due to the adhesive property of feelings of attachment and the like. The *karmic* particles of other areas never come and stick to that soul.

The *karmic* particles from diagonal directions also stick to souls but as these are included in the cardinal directions, they are not mentioned separately.

This rule about *karmic* bondage from six directions is in context of two to five-sensed living beings. As regards one-sensed beings there are mentions of three, four, five and some times six directions.

All the *karmas* including knowledge obscuring are bound to all the innumerable sections of soul and not to some specific sections. The sections of soul are only imaginary they are not clusters that can be separated like particles of matter.

**Verse 19-20**—Here the minimum duration of emotion evoking *karma* is mentioned as one Antarmuhurt while at other places it is mentioned as 12 Muhurt. The commentators say—‘What is the purport of this, we do not know.’

(Uttaraadhyayana Sutra by Sadhvi Chandana ji)





## चौंतीसवाँ अध्ययन : लेश्याध्ययन

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम लेश्याध्ययन है। नाम से ही स्पष्ट है कि इसका वर्ण्य-विषय लेश्या है। लेश्या क्या है? इसका किस प्रकार का प्रभाव होता है आदि विषयों को समझना आवश्यक है। शास्त्रों में लेश्याओं को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

- (१) कषाय से अनुरंजित जीव-परिणाम (भाव),
- (२) कषायोदय से रंजित मन-वचन-काययोगों की प्रवृत्ति,
- (३) कर्म के साथ आत्मा को संश्लिष्ट करके कर्मबंध की निर्माणक,
- (४) कर्म विधायिका।

लेश्या के दो भेद हैं—(१) द्रव्य लेश्या, और (२) भाव लेश्या।

भाव लेश्या आत्मा के क्रोधादि कषायों से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति है तथा द्रव्य लेश्या पुद्गलों से निर्मित है। लेश्या के जो वर्ण, गन्ध, रस आदि बताये गये हैं, वे द्रव्य लेश्या से सम्बन्धित हैं।

यद्यपि यह सत्य है कि आत्मा के परिणाम (भाव, विचार, चिन्तन) पुद्गल को प्रभावित करते हैं और पुद्गल परमाणु आत्मा के भावों को।

लेकिन शास्त्रों में यह भी बताया गया है कि द्रव्य लेश्या शरीर से सम्बन्धित है; शरीर रचना करने वाले नामकर्म की शरीर-निर्माण नाम की एक उत्तर प्रकृति का सीधा सम्बन्ध द्रव्य लेश्या से बताया गया है। निष्कर्षतः यह निश्चित किया गया है कि द्रव्य लेश्या (शरीर का वर्ण आदि) जीवनभर स्थायी रहती है और भाव लेश्या आत्म-परिणामों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। तभी तो काले शरीर वाले व्यक्ति की शुक्ल (श्वेत वर्ण की) और श्वेतवर्णी शरीरधारी व्यक्ति की कृष्ण (काले रंग की) भाव लेश्या होना संभव है।

आधुनिक विज्ञान ने ऐसे कैमरों का निर्माण कर लिया है जिससे वे आत्मा के क्रोधादि कषाय रंजित परिणामों द्वारा प्रादुर्भूत रंगों का चित्र लेने में सक्षम हो सके हैं।

इस पौद्गलिक लेश्या को आचार्यों ने आणविक-आभा, प्रभा, छाया आदि नामों से निरूपित किया है।

लेश्या ६ हैं—कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल। इनमें से प्रथम तीन अधर्म लेश्याएँ हैं और अन्तिम तीन धर्म लेश्याएँ हैं। इनके मन्दतम, मन्दतर, मन्द, तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम-परिणामों के अनुसार अनेक विकल्प हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में इन छहों लेश्याओं का—(१) नामद्वार, (२) वर्णद्वार, (३) रसद्वार, (४) गन्धद्वार, (५) स्पर्शद्वार, (६) परिणामद्वार, (७) लक्षणद्वार, (८) स्थानद्वार, (९) स्थितिद्वार, (१०) गतिद्वार, और (११) आयुद्वार—इन ग्यारह द्वारों द्वारा व्यवस्थित वर्णन हुआ है।

लेश्या के लक्षण, परिणाम तथा वर्ण, गन्ध, स्पर्श आदि को दो रंगीन चित्रों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

इस अध्ययन में ६१ गाथाएँ हैं।



## CHATUSTRIMSH ADHYAYAN : LESHYADHYAYAN

### Foreview

The title of this chapter is Leshyadhyayan or Study of Soul-complexions. The name itself makes it clear that the topic of discussion is 'soul-complexion' (*leshya*).

It is necessary to know what soul-complexion is and how does it influence? These and other relevant themes must be thoroughly understood.

In scriptures soul-complexions have been defined as follows—

1. Passion tainted inclinations of soul.
2. Activities associated with mind, speech and body tainted by rise of passions.
3. Factors instrumental in *karmic*-bondage through fusion of *karmas* with soul.
4. Guiding principles of *karmas*.

Soul-complexions are divided into two kinds—(1) *dravya leshya* or physical (manifestation of) soul-complexions, and (2) *bhaava leshya* or mental (manifestation of) soul-complexions.

The mental manifestation of soul-complexion is evident in passion tainted sentiments guiding mental, vocal and physical activities. The physical manifestation of soul-complexion is made up of matter particles. The attributes of colour, smell and taste mentioned here are associated with this *dravya leshya*.

It is true that the inclinations of soul (sentiments, feelings and thoughts) influence matter and matter particles in turn influence soul.

However, it is also mentioned in scriptures that *dravya leshya* is related to body. Body creating *karma*, a sub-class of *naam-karma* (*karma* responsible for body type), is said to be directly related to *dravya leshya*. Conclusively it has been accepted that *dravya leshya* (body complexion and other physical attributes) remains unchanged throughout life and *bhaava leshya* keeps on changing according to inclinations of soul. That is why a man with black complexion can have white soul-complexion (*shukla leshya*) and that with fair complexion can have black soul-complexion (*krishna leshya*).

Modern science claims to have developed such sensitive cameras that are capable of photographing the hues of sentiments influenced by passion (anger etc.) tinged inclinations of soul.

*Acharyas* have given various names to this *dravya leshya* including material-complexion, atomic glow, sheen and hue.



There are six soul-complexions—black, blue, pigeon-blue, fiery-red, lotus-yellow and white. Of these, the first three are ignoble soul-complexions and last three are noble. They have many intensity based categories including faintest, fainter, faint, bright, brighter and brightest.

This chapter gives a systematic description of these six soul-complexions based on eleven attributes—(1) *Naam dvāra* (name), (2) *Varna dvāra* (colour), (3) *Rasa dvāra* (taste), (4) *Gandha dvāra* (smell), (5) *Sparsh dvāra* (touch), (6) *Parinaam dvāra* (degree of intensity), (7) *Lakshan dvāra* (symptom), (8) *Stihaan dvāra* (variety), (9) *Sthiti dvāra* (duration), (10) *Gati dvāra* (result), and (11) *Aayu dvāra* (life-span).

We have tried to further simplify the characters, degrees of intensity, colour, smell and other attributes of *leshyas* by two illustrations.

The chapter has 61 verses.

॥





**चतुस्त्रिंशद्वयं : लेशज्झयणं**  
**चतुस्त्रिंश अध्ययन : लेश्याध्ययन**  
**Chapter-34 : STUDY OF SOUL-COMPLEXIONS**

लेसज्झयणं पवक्खामि, आणुपुत्विं जहक्कमं ।

छण्ह पि कम्मलेसाणं, अणुभावे सुणेह मे ॥ १ ॥

मैं आनुपूर्वी के क्रमानुसार-यथाक्रम से लेश्याओं के प्रतिपादक अध्ययन का कथन करूँगा ।  
 कर्म (की स्थिति विधायक) छह लेश्याओं के रस-विशेष-अनुभावों को मुझसे सुनो ॥ १ ॥

I will recite in sequential order the chapter defining *leshyas* or soul-complexions. Hear from me the unique characteristics of six soul-complexions conveying the existence of *karmas*. (1)

नामाइं वण्ण-रस-गन्ध, फास-परिणाम-लक्खणं ।

ठाणं ठिइं गइं चाइं, लेसाणं तु सुणेह मे ॥ २ ॥

नाम, वर्ण (रंग), रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान, स्थिति, गति और आयु-इन द्वारा  
 के माध्यम से लेश्याओं के विषय में मुझसे सुनो ॥ २ ॥

Hear from me about soul-complexions on the basis of these (eleven) attributes (*dvaras*)—*Naam* (name), *Varna* (colour), *Rasa* (taste), *Gandha* (smell), *Sparsh* (touch), *Parinaam* (degree of intensity), *Lakshan* (symptom), *Sthuan* (variety), *Sthiti* (duration), *Gati* (result) and *Aayu* (life-span). (2)

(१) नामद्वार—

किण्हा नीला य काऊ य, तेऊ पम्हा तहेव य ।

सुक्कलेसा य छट्ठा उ, नामाइं तु जहक्कमं ॥ ३ ॥

(१) कृष्ण, (२) नील, (३) कापोत, (४) तेजस, (५) पद्म, और (६) शुक्ल-इन छह लेश्याओं  
 के ये नाम यथाक्रम से-क्रमानुसार हैं ॥ ३ ॥

(1) *Naam dvara* (name)—

The names of these six soul-complexions (*leshyas*) in due order are—(1) Black (*krishna*), (2) Blue (*neel*), (3) Pigeon-blue (*kaapot*), (4) Fiery-red (*tejas*), (5) Lotus-yellow (*padma*), and (6) White (*shukla*). (3)

(२) वर्णद्वार—

जीमूयनिद्धसंकासा, गवलऽरिट्ठगसन्निभा ।

खंजणंजण-नयणनिभा, किण्हलेसा उ वण्णओ ॥ ४ ॥

स्निग्ध (सजल) काले मेघ के समान, भैंस के सींग और अरिष्टक (काले रीठे, द्रोण काक) के  
 सदृश, खंजन (गाड़ी के कीट अथवा खंजन पक्षी), अंजन (काजल या सुरमा अथवा आँखों की  
 पुतली) जैसा काला रंग (वर्ण) कृष्णलेश्या का वर्ण है ॥ ४ ॥



(2) *Varna dvara* (colour)—

The colour of black soul-complexion (*Krishna leshya*) is black like – rain bearing black cloud, buffalo-horn, soap-nut seed (*arishtak; Sapindus detergens*), *khanjan* (cart-grease or eye of wagtail) or *anjan* (collyrium or pupil of eye). (4)

नीला-ऽसोगसंकासा, चासपिच्छसमप्पभा ।  
वेरुलियनिद्धसंकासा, नीललेसा उ वण्णओ ॥ ५ ॥

नीले अशोक वृक्ष जैसा, चास पक्षी के पंख की प्रभा जैसा, स्निग्ध वैडूर्य रत्न के समान (अतिनील) — नीललेश्या का रंग है ॥ ५ ॥

The colour of blue soul-complexion (*Neel leshya*) is deep blue like—blue Ashoka tree (*Jonesia Asoka*), glow of feathers of blue jay (*Chaash; Corarias indica*) or polished Lapis-lazuli. (5)

अयसीपुष्पसंकासा, कोइलच्छदसन्निभा ।  
पारेवयगीवनिभा, काउलेसा उ वण्णओ ॥ ६ ॥

अलसी के पुष्प, कोयल के पंख के समान, कबूतर की ग्रीवा (गर्दन) (कुछ नीला और कुछ लाल) जैसा रंग कापोतलेश्या का है ॥ ६ ॥

The colour of pigeon-blue (*Kaapot*) soul-complexion is reddish-blue like—linseed flowers, feathers of cuckoo or neck of pigeon (red mixed blue). (6)

हिंगुलुयधाउसंकासा, तरुणाइच्चसन्निभा ।  
सुयतुण्ड-पईवनिभा, तेउलेसा उ वण्णओ ॥ ७ ॥

हिंगुल, धातु-गेरू के समान, तरुण (उदय होते हुए) सूर्य के सदृश, तोते की चोंच, प्रज्वलित दीपक की प्रभा जैसा लाल—तेजोलेश्या का वर्ण होता है ॥ ७ ॥

The colour of fiery-red (*Tejas*) soul-complexion is red like—vermilion, red ochre, rising sun, beak of a parrot and glow of a lamp. (7)

हरियालभेयसंकाया, हलिद्वाभेयसन्निभा ।  
सणासणकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥ ८ ॥

हरिताल (हड़ताल) के टुकड़े जैसा, हल्दी के टुकड़े के समान, सन और असन के पुष्प के समान पीला रंग पद्मलेश्या का होता है ॥ ८ ॥

The colour of lotus-yellow (*Padma*) soul-complexion is yellow like—a piece of orpiment, a piece of turmeric and flowers of *San* (Indian hemp; *Crotolaria juncea*) and those of *Asan* (*Vijayasar; Terminalia tomentosa*). (8)

संखंककुन्दसंकासा, खीरपूरसमप्पभा ।  
रययहारसंकासा, सुक्कलेसा उ वण्णओ ॥ ९ ॥

शंख अंकरत्न (स्फटिक मणि के समान एक विशेष रत्न), कुन्द के पुष्प जैसा, दूध की धारा जैसा और चाँदी के हार के समान श्वेत वर्ण शुक्तलेश्या का होता है ॥ ९ ॥



The colour of white (*Shukla*) soul-complexion is white like—conch-shell, *Anka* gem (rock-crystal-like gem), *Kund* flower (*Bela; Mogara; Jasminum pubescens*), stream of milk and silver necklace. (9)

(३) रसद्वार—

जह कडुयतुम्बगरसो, निम्बरसो कडुयरोहिणिरसो वा ।

एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ किण्हाए नायव्वो ॥ १० ॥

जिस प्रकार कड़वे तुम्बे का रस, नीम का रस, कड़वी रोहिणी (नीम गिलोय) का रस जितना कड़वा होता है, उससे भी अनन्तगुणा अधिक कड़वा रस (स्वाद) कृष्णलेश्या का जानना चाहिये ॥ १० ॥

(3) *Rasa dvara* (taste)—

The taste of black soul-complexion (*Krishna leshya*) is infinitely more bitter than that of bitter gourd (*Tumbak*) juice, margossa juice and bitter *Rohini* (a creeper popularly known as *Neem Giloya; Mallotus philippensis*). (10)

जह तिगडुयस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए ।

एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ नीलाए नायव्वो ॥ ११ ॥

जैसा त्रिकटुक (त्रिकुटा-सोंठ, पिप्पल, कालीमिर्च) का रस, गज पीपल का रस जितना तीखा (चरपरा) होता है उससे भी अनन्तगुणा तीखा रस (स्वाद) नीललेश्या का जानो ॥ ११ ॥

The taste of blue soul-complexion (*Neel leshya*) is infinitely more pungent than that of *Trikatuk* (mixture of black pepper, long pepper and dry ginger) and *Hastipippal* (*Scindapsus officinalis*). (11)

जह तरुणअम्बगरसो, तुवरकविट्टुस्स वावि जारिसओ ।

एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ काऊए नायव्वो ॥ १२ ॥

जैसे कच्चे आम का रस, कच्चे कपित्थ फल (कवीठ) का रस जितना कषैला होता है, उससे भी अनन्तगुणा कषैला रस (स्वाद) कापोतलेश्या का जानना चाहिये ॥ १२ ॥

The taste of pigeon-blue (*Kaapot*) soul-complexion is infinitely more astringent than juice of unripe mango and unripe fruit of *Kapittha* (*kaith; wood-apple; Feronia limonia*). (12)

जह परिणयम्बगरसो, पक्ककविट्टुस्स वावि जारिसओ ।

एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ तेऊए नायव्वो ॥ १३ ॥

जैसे पके हुए आम का रस, पके हुए कपित्थ का रस जितना खट्टा-मीठा होता है उससे भी अनन्तगुणा खट्टा-मीठा रस तेजोलेश्या का जानो ॥ १३ ॥

The taste of fiery-red (*Tejas*) soul-complexion is infinitely more sour and sweet than the juice of ripe mango and *Kapittha* fruit. (13)

वरवारुणीए व रसो, विविहाण व आसवाण जारिसओ ।

महु-मेरगस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएणं ॥ १४ ॥



उत्तम मदिरा का जैसा रस होता है तथा विविध प्रकार के आस्रवों का रस और मधु (विशेष प्रकार की मदिरा) सिरके, मैरैयक का रस (कुछ खट्टा कुछ कसैला) होता है उससे भी अनन्तगुणा ज्यादा कुछ खट्टा-कुछ कसैला रस पद्मलेश्या का होता है ॥ १४ ॥

The taste of lotus-yellow (*Padma*) soul-complexion is infinitely more sour and astringent than that of wine, various types of liquors including *Madhu* and *Maireyaka*. (14)

खज्जूर-मुद्दियरसो, खीररसो खण्ड-सक्कररसो वा ।

एत्तो वि अणन्तगुणो, रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥ १५ ॥

खजूर और द्राक्षा, दूध, खांड-शक्कर का जैसा रस (स्वाद) होता है उससे भी अनन्तगुणा अधिक मीठा रस शुक्ललेश्या का होता है ॥ १५ ॥

The taste of white (*Shukla*) soul-complexion is infinitely sweeter than that of dates, grapes, milk and candied and pounded sugar. (15)

(४) गन्धद्वार—

जह गोमडस्स गन्धो, सुणगमडगस्स व जहा अहिमडस्स ।

एत्तो वि अणन्तगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥ १६ ॥

मृत गाय की, मरे हुए कुत्ते की, मरे हुए सर्प की जैसी गंध (दुर्गन्ध) होती है उससे भी अनन्तगुणी अधिक दुर्गन्ध तीन अप्रशस्त (कृष्ण, नील, कापोत) लेश्याओं की होती है ॥ १६ ॥

(4) *Gandha dvāra* (smell)—

The smell of three ignoble soul-complexions (black, blue and pigeon-blue) is infinitely more obnoxious than the stink of corpses of cow, dog and serpent. (16)

जह सुरहिकुसुमगन्धो, गन्धवासाण पिस्समाणाणं ।

एत्तो वि अणन्तगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥ १७ ॥

सुरभित कुसुमों की गंध, पीसे जाते हुए सुगन्धित गन्ध द्रव्यों की जैसी गन्ध (सुगन्ध) होती है उससे भी अनन्तगुणी अधिक सुगन्ध तीन प्रशस्त (तेजस्, पद्म और शुक्ल) लेश्याओं की होती है ॥ १७ ॥

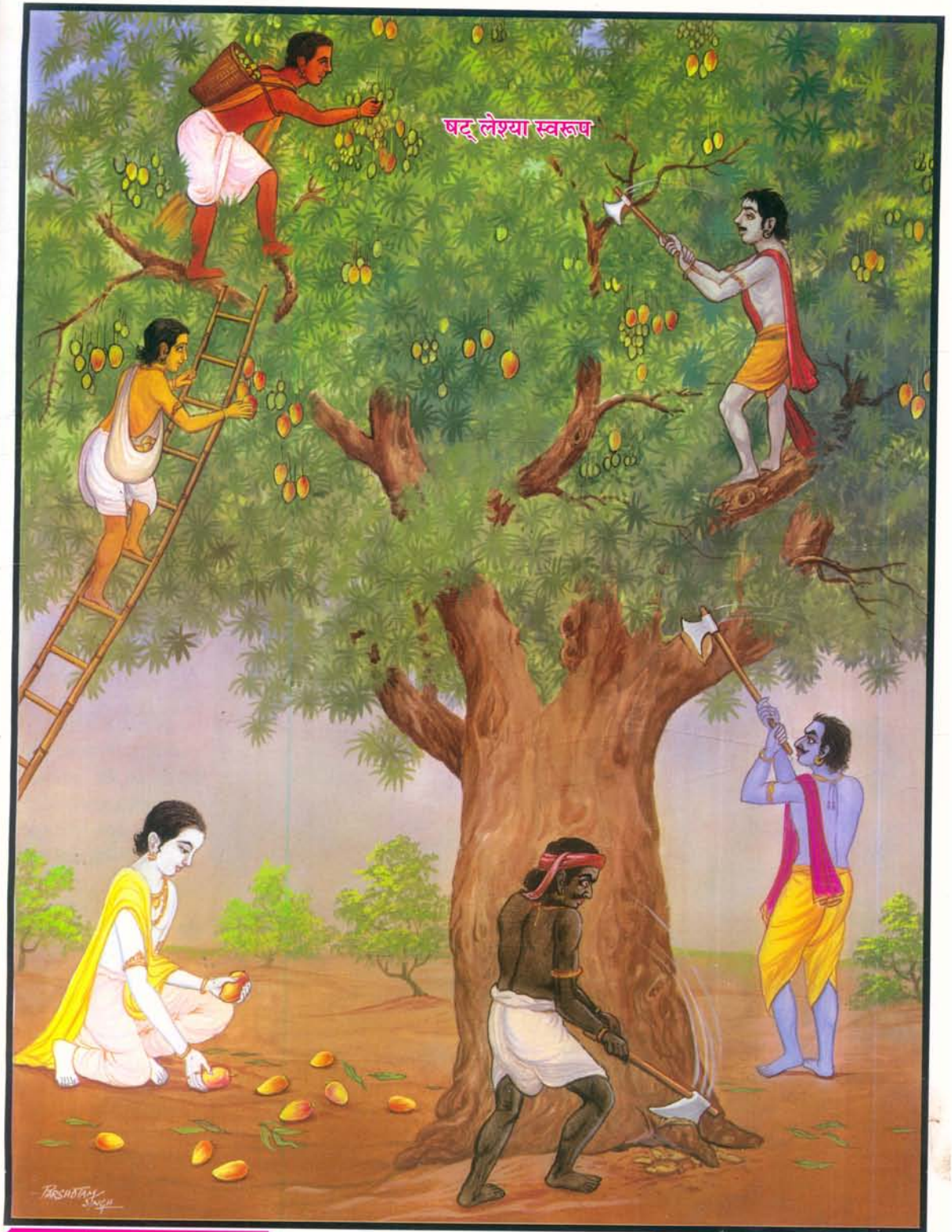
The smell of three noble soul-complexions (red, yellow and white) is infinitely more pleasant than that of fragrant flowers and herbs when they are crushed and grinded. (17)

(५) स्पर्शद्वार—

जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए व सागपत्ताणं ।

एत्तो वि अणन्तगुणो, लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥ १८ ॥

करवत (करौत) का, गाय की जीभ का, शाक नामक वनस्पति के पत्तों का जैसा कर्कश स्पर्श होता है उससे भी अनन्तगुणा अधिक कर्कश स्पर्श तीनों अप्रशस्त (कृष्ण, नील, कापोत) लेश्याओं का होता है ॥ १८ ॥



## षट् लेश्या स्वरूप

इस चित्र में प्रस्तुत सूत्रानुसार छहों लेश्याओं के वर्ण, रस, गंध, स्पर्श और भाव (लक्षण) को उदाहरणों के माध्यम से समझाया गया है। स्पष्टीकरण हेतु गाथा 4 से 30 तक का भाव देखें।

—अध्ययन 34, सू. 4-30

## THE SIX SOUL-COMPLEXIONS (LESHYA)

In this illustrations the colour, taste, smell, touch and symptom of each of the six soul-complexions (leshya), as mentioned in this book, have been explained with the help of examples. For more clarification refer to verse 4-30.

—Chapter 34, Aphorism 4-30



# षट् लेश्या स्वरूप

वर्ण रस गंध स्पर्श लक्षण

## कृष्ण लेश्या

वर्ण—कौए के समान काला  
रस—नीम के समान कड़वा  
गंध—मृत पशु के तुल्य, अत्यन्त दुर्गन्धमय  
स्पर्श—करोत की धार के समान तीक्ष्ण  
भाव—अत्यन्त रौद्र



## नील लेश्या

वर्ण—मोर व ध्रमर के समान नीला,  
रस—मिर्च के समान तीखा,  
गंध—कृत्ते के कलेवर की गंध से भी भयानक  
स्पर्श—गाय की जीभ के समान खुरदरा,  
भाव—ईर्ष्या व लोभप्रधान।



## कापोत लेश्या

वर्ण—कबूतर की गर्दन जैसा,  
रस—कच्चे आम जैसा कषैला,  
गंध—मृत सर्प जैसी।  
स्पर्श—तीक्ष्ण धारदार पत्ते जैसा।  
भाव—भायाप्रधान।



## तेजो लेश्या

वर्ण—तोते की चोंच सा लाल।  
रस—खट्टा, मीठा, पके आम जैसा।  
गंध—घिसे चन्दन के समान,  
स्पर्श—कोमल रुई के समान,  
भाव—विनम्र प्रियधर्मी।



## पद्म लेश्या

वर्ण—पीला, सूर्यमुखी फूल जैसा  
रस—अंगूर जैसा मीठा  
गंध—गुलाब के फूल व इतर जैसा  
स्पर्श—कोमल नवनीत  
भाव—भद्र परिणामी, संयम प्रधान



## शुक्ल लेश्या

वर्ण—श्वेत कन्दपुष्प समान।  
रस—मीठा-खीर के समान।  
गंध—फूलों के इतर के तुल्य,  
स्पर्श—कोमल, सिरीष पुष्प वत,  
भाव—अत्यन्त प्रशस्त शुभ ध्यानी।



## षट् लेश्या परिणाम

लेश्या-परिणामों की तरतमता का दृष्टान्त—

संक्लिष्ट क्रूरतम भावना वाला कृष्णलेशयी व्यक्ति फल के लिये वृक्ष को जड़मूल से काटने वाले के समान है। फिर उससे कुछ कम विल्लष्ट परिणाम वाला व्यक्ति क्रमशः शाखा काटने वाले (नीललेशयी), टहनी काटने वाले (कापोतलेशयी), कच्चे-पके फल मात्र तोड़ने वाले (तेजोलेशयी) तथा सिर्फ पके फल तोड़ने वाले कोमल परिणामी (पद्मलेशयी) एवं आवश्यकतानुसार मात्र पके फल बीनने वाले कोमलतम भद्र परिणामी (शुक्ललेशयी) के प्रतीक हैं। (टीका अनुसार)

—अध्ययन 34

## THE MANIFESTATIONS OF SIX SOUL-COMPLEXIONS (LESHYA)

Analogy of the grading of leshya manifestation—

Possessing the cruelest feelings a person with black soul-complexion is like a man who wants to uproot a tree to get its fruits. Persons having gradually lesser cruel feelings are—one who cuts main branches is with blue soul-complexion; one who cuts small branches is with pigeon-blue soul-complexion; one who plucks ripe and unripe fruits is with fiery soul-complexion; one who plucks only ripe fruits is with yellow soul-complexion; and one who picks only needed fruits fallen on the ground is with white soul-complexion. (according to the commentary).

—Chapter 34





(5) *Sparsh dvara* (touch)—

The touch of three ignoble soul-complexions is infinitely harsher than that of saw, tongue of a cow and the leaf of *Shaak* vegetable (akin to teak leaf). (18)

जह बूरस्स व फासो, नवणीयस्स व सिरीसकुसुमाणं ।  
एत्तो वि अणन्तगुणो, पसत्थलेसाण तिण्हं पि ॥ १९ ॥

बूर (एक विशेष वनस्पति), नवनीत (मक्खन) शरीष के पुष्पों का जैसा मृदुल-कोमल स्पर्श होता है, उससे भी अनन्तगुणा कोमल स्पर्श तीन प्रशस्त (तेजस, पद्म और शुक्ल) लेश्याओं का होता है ॥ १९ ॥

The touch of three noble soul-complexions is infinitely more smooth and pleasant than that of *Bura* vegetable, cotton, butter and the flowers of *Shireesh* (*Albizzia lebeck Benth*). (19)

## (६) परिणामद्वार—

तिविहो व नवविहो वा, सत्तावीसइविहेक्कसीओ वा ।  
दुसओ तेयालो वा, लेसाणं होइ परिणामो ॥ २० ॥

तीन (३) प्रकार का, नौ (९) प्रकार का, सत्ताईस (२७) प्रकार का, इक्यासी (८१) प्रकार का, दो सौ तेतालीस (२४३) प्रकार का लेश्याओं का परिणाम होता है ॥ २० ॥

(6) *Parindam dvara* (degree of intensity)—

The degrees of intensity (*Parinaam*) of soul-complexions can be of three, nine, twenty-seven, eighty-one and two hundred forty-three types. (20)

## (७) लक्षणद्वार—

पंचासवप्पवत्तो, तीहिं अगुत्तो छमुंअविरओ य ।  
तिव्वारम्भपरिणओ, खुददो साहसिओ नरो ॥ २१ ॥

जो मानव पाँच प्रकार के आसवों में प्रवृत्त है, तीन गुप्तियों से अगुप्त है (मन-वचन-काय का गोपन नहीं करता), छह काया के जीवों (की हिंसा) से अविरत है, तीव्र आरम्भ (हिंसा आदि) में परिणत-रचा-पचा है, क्षुद्र है, साहसिक (दुःसाहसी-बुरे कामों को करने में निडर) है— ॥ २१ ॥

(7) *Lakshan dvara* (symptom)—

A man, who is engaged in drawing five kinds of inflow of *karmas*, is not employing three restraints (of mind, speech and body), does not refrain from violence towards six classes of bodied beings, indulges in intensely sinful activities, indulges brazenly in wicked activity,— (21)

निद्धन्धसपरिणामो, निस्संसो अजिइन्दिओ ।  
एयजोगसमाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणामे ॥ २२ ॥

निःशंक परिणाम (परिणाम-फल के विचार से शून्य) वाला है, नृशंस (क्रूर) है, अजितेन्द्रिय (इन्द्रियों को अपने वश में न रखने वाला)—जो इन योगों (लक्षणों) से युक्त है वह कृष्णलेश्या में परिणत होता है (वह कृष्णलेश्या वाला कहलाता है) ॥ २२ ॥



Is immune to consequences, is ferocious and does not subdue his senses, – a man having these symptoms (attributes and habits) is said to have been turned into one having black soul-complexion. (22)

इस्सा-अमरिस-अतवो, अविज्ज-माया अहीरिया य।  
गेद्धी पओसे य सढे, पमत्ते रसलोलुए सायगवेसए य ॥ २३ ॥

जो ईर्ष्या करने वाला है, अमर्ष (हठाग्रही-कदाग्रही-असहिष्णु) है, अतपस्वी (अथवा अनुशासनहीन) है, अवधियुक्त (अज्ञानी अथवा मिथ्यात्वी) है, मायावी है, निर्लज्ज है, विषयों में गृह्य है, प्रद्वेषी है, प्रमादी (असावधान, आलसी) है, शठ अथवा धूर्त है, रस का लोलुपी है, सुख का गवेषक (सिर्फ अपनी ही सुख-सुविधा का अभिलाषी) है— ॥ २३ ॥

A man, who is envious, haughty (dogmatic, prejudiced, intolerant), non-austere (undisciplined), ill educated (ignorant or unrighteous), deceitful, shameless, obsessed with sensual pleasures, hateful, under stupor (careless and lethargic), stupid or fraudulent, infatuated with taste, selfish pleasure seeker— (23)

आरम्भाओ अविरओ, खुद्धो साहस्सिओ नरो।  
एयजोगसमाउत्तो, नीललेसं तु परिणमे ॥ २४ ॥

आरम्भ (हिंसा आदि) से अविरत है, क्षुद्र है, दुःसाहसी है—इन योगों (लक्षणों) से युक्त मनुष्य नीललेश्या में परिणत होता है (नीललेश्या के परिणाम वाला होता है) ॥ २४ ॥

Does not avoid sinful activities (including violence), mean or niggardly and arrogant— a man having these symptoms (attributes and habits) is said to have been turned into one having blue soul-complexion. (24)

वंके वंकसमायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए।  
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारिए ॥ २५ ॥

जो मनुष्य वक्र है (मन-वचन से वक्र है), वक्रता का आचरण करता है, कुटिल-कपटी है, सरल नहीं है, प्रतिकुंचक (अपने दोषों को छिपाने वाला) है, औपधिक (छल-छद्म का प्रयोग करने वाला) है, मिथ्यादृष्टि है, अनार्य है— ॥ २५ ॥

A man, who is crooked (dishonest in mind and words), has wily conduct, is deceitfully cunning, not simple, conceals his own faults, is disguiseful, unrighteous, ignoble— (25)

उप्फालग-दुडुवाई य, तेणे यावि य मच्छरी।  
एयजोगसमाउत्तो, काउलेसं तु परिणमे ॥ २६ ॥

उत्प्रासक (अश्लील मजाक करने वाला) है, दुष्ट वचन बोलने वाला है, चोर है और मत्सर (डाह करने वाला) है—इन योगों (लक्षण) से युक्त जीव कापोत लेश्या में परिणत होता है ॥ २६ ॥

Indulges in erotic sarcasm, uses harsh speech, is a thief and is jealous— a man having these symptoms (attributes and habits) is said to have been turned into one having reddish blue soul-complexion. (26)



नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुहले।  
विणीयविणए दन्ते, जोगवं उवहाणवं ॥ २७ ॥

जिसकी वृत्ति नम्र है, जो अचपल है, माया (कपट) से रहित है, कौतूहल नहीं करता है, विनय में विनीत है, दान्त (अपनी इन्द्रियों का दमन करने वाला) है, योगवान-उपधानवान (स्वाध्याय से समाधि सम्पन्न और विहित तप करने वाला) है— ॥ २७ ॥

A person, who is modest, steady, free of deceit, is not inquisitive, well behaved, sincerely humble, victor of his sense organs, has noble association and is attentive to his duties,— (27)

प्रियधम्मे दृढधम्मे, वज्जभीरू हिएसए।  
एयजोगसमाउत्तो, तेउलेसं तु परिणमे ॥ २८ ॥

प्रियधर्मी है, दृढधर्मी है, पापभीरु है, हितैषी (आत्मार्थी) है—इन योगों (लक्षणों) से युक्त मानव तेजोलेश्या में परिणत होता है (परिणमन करता है) ॥ २८ ॥

Loves religion, is steadfastly religious, afraid of sins and strives for beatitude – a man having these symptoms (attributes and habits) is said to have been turned into one having fiery red soul-complexion. (28)

पयणुक्कोह-माणे य, माया-लोभे य पयणुए।  
पसन्तचित्ते दन्तप्पा, जोगवं उवहाणवं ॥ २९ ॥

जिसके क्रोध, मान, माया, लोभ पतले (मन्द) हो गये हैं, प्रशान्तचित्त है, जिसने अपनी आत्मा का दमन कर लिया है, जो योगवान और उपधानवान है (योग और उपधान करने वाला है)— ॥ २९ ॥

A man, whose anger, conceit, deceit and greed have become mild, who has gained mental serenity, who has subjugated his own soul, has noble association and is attentive to his duties (including study and austerities) – (29)

तहा पयणुवाई य, उवसन्ते जिइन्दिए।  
एयजोगसमाउत्ते, पम्हलेसं तु परिणमे ॥ ३० ॥

जो अल्पभाषी (कम बोलने वाला) है, उपशान्त है, जितेन्द्रिय है—इन योगों (लक्षणों) से युक्त मानव पद्मलेश्या वाला होता है ॥ ३० ॥

Who speaks very little, is peaceful and has conquered his senses—a man having these symptoms (attributes and habits) is said to have been turned into one having yellow soul-complexion. (30)

अट्टरुद्दाणि वज्जित्ता, धम्मसुक्काणि झायए।  
पसन्तचित्ते दन्तप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिहिं ॥ ३१ ॥

जो आर्त्त-रौद्र ध्यान को वर्जित करके (छोड़कर) धर्म और शुक्लध्यान ध्याता है, (एकाग्रचित्त होता है) जिसका चित्त (हृदय, मन, मस्तिष्क) प्रशांत है, जो अपनी आत्मा का दमन करता है, पाँच समितियों से समित है और तीन गुप्तियों से गुप्त है— ॥ ३१ ॥



A person who abandons the grim and agitated states of mind, indulges in pious and pure meditation, has attained serenity (of sentiment, mind and psyche), subjugates the self, is alert with five circumspections and restrained with three restraints,— (31)

सरागे वीयरगो वा, उवसन्ते जिइन्दिए ।  
एयजोग-समाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे ॥ ३२ ॥

ऐसा मानव चाहे सरागी हो अथवा वीतरागी हो (लेकिन) जो उपशांत हो, जितेन्द्रिय हो-इन योगों (लक्षणों) से युक्त मानव शुक्ललेश्या में परिणत होता है ॥ ३२ ॥

Is tranquil and victorious over senses, irrespective of having attachment or not, — a man having these symptoms (attributes and habits) is said to have been turned into one having white soul-complexion. (32)

(८) स्थानद्वार—

असंखिज्जाणोसप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया ।  
संखाईया लोगा, लेसाण हुन्ति ठणाइं ॥ ३३ ॥

असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी कालों के जितने समय होते हैं तथा संख्यातीत (अगणित) लोकों के जितने आकाश-प्रदेश होते हैं, लेश्याओं के उतने ही स्थान होते हैं ॥ ३३ ॥

(8) *Sthaan dvara* (variety)—

There are as many varieties of soul-complexions as there are Samayas (ultimate fraction of time) in innumerable *Avasarpinis* and *Utsarpinis* (regressive and progressive cycles of time) and as there are space points in innumerable *Loks* (universes). (33)

(९) स्थितिद्वार—

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तऽहिया ।  
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा किणहलेसाए ॥ ३४ ॥

कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति मुहूर्तार्ध (अन्तर्मुहूर्त) होती है और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागर प्रमाण जाननी चाहिए ॥ ३४ ॥

(9) *Sthiti dvara* (duration)—

Know that the minimum duration of black soul-complexion is Muhurtaardh (less than 48 minutes; Antarmuhurt) and maximum duration is one Antarmuhurt more than thirty-three Sagaropam. (34)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस उदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।  
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए ॥ ३५ ॥

नीललेश्या की जघन्य (कम से कम) स्थिति मुहूर्तार्ध (अन्तर्मुहूर्त) होती है और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर की जाननी चाहिए ॥ ३५ ॥

The minimum duration of blue soul-complexion is Muhurtaardh (less than 48 minutes; Antarmuhurt) and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than ten Sagaropam. (35)



मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तिष्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।  
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा काउलेसाए ॥ ३६ ॥

कापोतलेश्या की जघन्य स्थिति मुहूर्तार्ध (अन्तर्मुहूर्त) और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर की है ॥ ३६ ॥

The minimum duration of reddish-grey soul-complexion is less than 48 minutes (Antarmuhurt) and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than three Sagaropam. (36)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोउदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।  
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा तेउलेसाए ॥ ३७ ॥

तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति अर्द्धमुहूर्त (अन्तर्मुहूर्त) और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर की होती है ॥ ३७ ॥

The minimum duration of red soul-complexion is less than 48 minutes (Antarmuhurt) and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than two Sagaropam. (37)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दस ह्येन्ति सागरा मुहुत्तऽहिया ।  
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए ॥ ३८ ॥

पद्मलेश्या की जघन्य स्थिति अर्द्धमुहूर्त (अन्तर्मुहूर्त) और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दस सागर की जाननी चाहिये ॥ ३८ ॥

The minimum duration of yellow soul-complexion is less than 48 minutes (Antarmuhurt) and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than ten Sagaropam. (38)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तऽहिया ।  
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥ ३९ ॥

शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति अर्धमुहूर्त (अन्तर्मुहूर्त) और उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागर की जाननी चाहिए ॥ ३९ ॥

The minimum duration of white soul-complexion is less than 48 minutes (Antarmuhurt) and maximum duration is one Muhurt more than thirty-three Sagaropam. (39)

गति की अपेक्षा लेश्याओं की स्थिति—

एसा खलुं लेसाणं, ओहेण ठिई उ वणिणया होई ।  
चउसु वि गईसु एत्तो, लेसाण ठिई तु वोच्छामि ॥ ४० ॥

यह (पूर्वोक्त) लेश्याओं की स्थिति का वर्णन औघिक (सामान्य) रूप से किया गया। अब (यहाँ से आगे) चारों गतियों में लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूँगा ॥ ४० ॥



**Duration in realms—**

The aforesaid is general description of duration of soul-complexions. Now I will describe the duration of soul-complexions in the four realms of rebirth or worldly existence. (40)

दस वाससहस्साइं, काऊए ठिई जहन्निया होइ।  
तिण्णुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ॥ ४१ ॥

कापोतलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर की होती है ॥ ४१ ॥

The minimum duration of reddish-blue soul-complexion is ten thousand years and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than three Sagaropam. (41)

तिण्णुदही पलियम, संखभागं जहन्नेण नीलठिई।  
दस उदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ॥ ४२ ॥

नीललेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक तीन सागर और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर की है ॥ ४२ ॥

The minimum duration of blue soul-complexion is uncountable fraction of one Palyopam more than three Sagaropam and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than ten Sagaropam. (42)

दस उदही पलियम, संखभागं जहन्निया होइ।  
तेत्तीससागराइं, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥ ४३ ॥

कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दस सागर और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागर की होती है ॥ ४३ ॥

The minimum duration of blue soul-complexion is uncountable fraction of one Palyopam more than ten Sagaropam and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than thirty-three Sagaropam. (43)

एसा नेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ।  
तेण परं वोच्छामि, तिरिय-मणुस्साण देवाणं ॥ ४४ ॥

यह नैरयिक जीवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन किया गया है। इससे आगे तिर्यच, मनुष्य और देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूँगा ॥ ४४ ॥

This is the description of duration of soul-complexions of infernal beings. Now I will describe the duration of soul-complexions of animals, humans and divine beings. (44)

अन्तोमुहुत्तमद्धं, लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ।  
तिरियाण नराणं वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ॥ ४५ ॥

केवल शुक्ललेश्या को छोड़कर (वर्जित करके) तिर्यचों अथवा मनुष्यों की जहाँ-जहाँ, जो-जो हैं, उनकी लेश्याओं की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त काल की होती है ॥ ४५ ॥



Leaving aside white, the maximum and minimum duration of other soul-complexions of all animals and humans, wherever they are, is just one Antarmuhurt. (45)

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, उक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।  
नवहि वरिसेहि ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥ ४६ ॥

शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त काल की और उत्कृष्ट स्थिति नौ वर्ष कम एक करोड़ पूर्व की समझनी चाहिए ॥ ४६ ॥

The minimum duration of white soul-complexion is one Antarmuhurt and the maximum duration is nine years less one Crore (ten million) Purvas. (46)

एसा तिरिय-नराणं, लेसाण ठिई उ वणिणया होइ।  
तेण परं वोच्छमि, लेसाण ठिई उ देवाणं ॥ ४७ ॥

यह तिर्यचों और मनुष्यों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन हुआ। इससे आगे देवों की लेश्याओं की स्थिति का वर्णन करूंगा ॥ ४७ ॥

This concludes the description of duration of soul-complexions of humans and animals. Now I will describe the duration of soul-complexions of divine beings. (47)

दस वाससहस्साइं, किण्हाए ठिई जहन्निया होइ।  
पलियमसंखिज्जइमो, उक्कोसा होइ किण्हाइ ॥ ४८ ॥

(भवनपति और वाणव्यन्तर देवों की) कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की होती है और कृष्णलेश्या की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग की होती है ॥ ४८ ॥

(Bhavanapati and Vaanavyantara gods) The minimum duration of black soul-complexion is ten thousand years and the maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam. (48)

जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।  
जहन्नेणं नीलाए, पलियमसंखं तु उक्कोसा ॥ ४९ ॥

कृष्णलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति है, वही एक समय अधिक नीललेश्या की जघन्य स्थिति है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग (प्रमाण) है ॥ ४९ ॥

The minimum duration of blue soul-complexion is one Samaya more than the maximum duration of black soul-complexion and the maximum duration of blue soul-complexion is uncountable fraction of one Palyopam. (49)

जा नीलाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।  
जहन्नेणं काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा ॥ ५० ॥

जो नीललेश्या की उत्कृष्ट स्थिति है, वही एक समय अधिक कापोतलेश्या की जघन्य स्थिति है तथा उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है ॥ ५० ॥

The minimum duration of reddish-blue soul-complexion is one Samaya more than that of maximum duration of blue soul-complexion and the maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam. (50)



तेण परं वोच्छामि, तेउलेसा जहा सुरगणाणं ।  
भवणवइ—वाणमन्तर—, जोइस—वेमाणियाणं च ॥ ५१ ॥

इससे आगे भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक देवों की जिस प्रकार की तेजोलेश्या (की स्थिति) होती है, उसका कथन करूँगा ॥ ५१ ॥

Now I will tell about the duration of red soul-complexion of Bhavanapati (abode-dwelling gods), Vanavyantar (interstitial gods), Jyotishk (stellar gods) and Vaimanik (celestial vehicular gods) gods. (51)

पलिओवमं जहन्ना, उक्कोसा सागरा दुण्हइहिया ।  
पलियमसंखेज्जेणं, होई भागेण तेऊए ॥ ५२ ॥

तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति एक पल्योपम है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर की होती है ॥ ५२ ॥

The minimum duration of red soul-complexion is one Palyopam and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than two Sagaropams. (52)

दस वाससहस्साइं, तेऊए ठिई जहन्निया होइ ।  
दुण्णुदही पलिओवम, असंखभागं च उक्कोसा ॥ ५३ ॥

(भवनपति और व्यन्तर देवों की अपेक्षा से) तेजोलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की होती है और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर की होती है ॥ ५३ ॥

(Bhavanapati and Vyantar gods) The minimum duration of red soul-complexion is ten thousand years and maximum duration is uncountable fraction of one Palyopam more than two Sagaropams. (53)

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमभहिया ।  
जहन्नेणं पम्हाए दस उ, मुहुत्तइहियाइं च उक्कोसा ॥ ५४ ॥

तेजोलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति कही गई है, वही तथा उससे एक समय अधिक शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति होती है और उत्कृष्ट एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की है ॥ ५४ ॥

The minimum duration of yellow soul-complexion is one Samaya more than the maximum duration of red soul-complexion. Its maximum duration is one Muhurt more than ten Sagaropams. (54)

जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमभहिया ।  
जहन्नेणं सुक्काए, तेत्तीस—मुहुत्तमभहिया ॥ ५५ ॥

पद्मलेश्या की जो उत्कृष्ट स्थिति कही गई है, वही तथा उससे एक समय अधिक शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति होती है और उत्कृष्ट एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागरोपम की है ॥ ५५ ॥

The minimum duration of white soul-complexion is one Samaya more than the maximum duration of yellow soul-complexion. Its maximum duration is one Muhurt more than thirty-three Sagaropams. (55)





## (१०) गतिद्वार—

किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ ।  
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइ उववज्जई बहुसो ॥ ५६ ॥

कृष्ण, नील, कापोत—ये तीनों ही अधर्मलेश्याएँ हैं। इन तीनों के कारण जीव बहुत बार दुर्गति में भी उत्पन्न होता है ॥ ५६ ॥

(10) *Gati dvara* (result)—

Black, blue and grey—all three are ignoble or irreligious soul-complexions. On account of these, many times, a soul takes re-birth also in lower realms. (56)

तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ ।  
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइ उववज्जई बहुसो ॥ ५७ ॥

तेजसु, पद्म, शुक्ल—ये तीनों ही धर्मलेश्याएँ हैं। इन तीनों के कारण जीव बहुत बार सुगति में भी उत्पन्न होता है ॥ ५७ ॥

Red, yellow and white—all these three are noble or religious soul-complexions. On account of these, many times, a soul takes re-birth also in higher realms. (57)

## (११) आयुद्वार—

लेसाहिं सव्वाहिं, पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।  
न वि कस्सवि उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स ॥ ५८ ॥

प्रथम समय में परिणत हुई सभी लेश्याओं से किसी भी जीव की परभव (दूसरे जन्म) में उत्पत्ति नहीं होती ॥ ५८ ॥

(11) *Aayu dvara* (life-span)—

No soul takes rebirth due to any of these soul-complexions at the first Samaya of its manifestation (association with soul). (58)

लेसाहिं सव्वाहिं, चरमे समयम्मि परिणयाहिं तु ।  
न वि कस्सवि उववाओ, परे भवे अत्थि जीवस्स ॥ ५९ ॥

चरम (अन्तिम) समय में परिणत हुई सभी लेश्याओं से भी किसी भी जीव की परभव (अगले जन्म) में उत्पत्ति नहीं होती ॥ ५९ ॥

No soul takes rebirth due to any of these soul-complexions at the last Samaya of its manifestation (association with soul). (59)

अन्तमुहुत्तम्मि गए, अन्तमुहुत्तम्मि सेसए चेव ।  
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवा गच्छन्ति परलोयं ॥ ६० ॥

लेश्याओं के परिणत होने से अन्तर्मुहूर्त व्यतीत हो जाने पर और अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जीव परलोक (अगले जन्म) में जाते हैं ॥ ६० ॥



The rebirth of souls is guided by soul-complexions only during the intervening period between one Antarmuhurt after the beginning and one Antarmuhurt before the end of their said manifestation (association with soul). (60)

तम्हा एयाण लेसाणं, अणुभागे वियाणिया।  
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता, पसत्थाओ अहिद्वेज्जासि ॥ ६१ ॥

—त्ति बेमि।

इसीलिए (विवेकी व्यक्ति) इन लेश्याओं के अनुभाग (विपाक-रस-विशेष) को जानकर इनमें से अप्रशस्त (कृष्ण, नील, कापोत) लेश्याओं को वर्जित-परित्याग करके प्रशस्त (तेजो, पद्म, शुक्ल) लेश्याओं में अधिष्ठित-स्थिर हो जाए ॥ ६१ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Therefore a wise man should know about the duration-bondage (of various classes) of these soul-complexions, avoid the ignoble ones (black, blue and grey) and establish himself firmly in noble ones (red, yellow and white). (61)

—So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा १—कर्मलेश्या का अर्थ है—कर्मबन्ध के हेतु रागादि भाव। लेश्यायें भाव और द्रव्य के भेद से दो प्रकार की हैं। कुछ आचार्य कषायानुरंजित योग प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। इस दृष्टि से यह छद्मस्थ व्यक्ति को ही हो सकती हैं। किन्तु शुक्ललेश्या १३वें गुणस्थानवर्ती केवली को भी है, अयोगीकेवली को नहीं। अतः योग की प्रवृत्ति ही लेश्या है। कषाय तो केवल उसमें तीव्रता आदि का संनिवेश करती है। आवश्यकचूर्ण में जिनदास महत्तर ने कहा—

“लेश्याभिरात्मनि कर्माणि संश्लिष्यन्ते। योगपरिणामो लेश्या। जम्हा अयोगिकेवली अलेस्सो।”

गाथा ११—त्रिकटुक से अभिप्राय सूँठ, मिरच और पिप्पल के एक संयुक्त योग से है।

गाथा २०—जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट के भेद से सर्वप्रथम लेश्या के तीन प्रकार हैं। जघन्य आदि तीनों के फिर जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट के भेद से तीन-तीन प्रकार होने से नौ भेद होते हैं। फिर इसी प्रकार क्रम से त्रिक की गुणन प्रक्रिया से २७, ८१ और २४३ भेद होते हैं। यह एक संख्या की वृद्धि का स्थूल प्रकार है। वैसे तारतम्य की दृष्टि से संख्या का नियम नहीं है। स्वयं उक्त अध्ययन (गा. ३३) में प्रकर्षापकर्ष की दृष्टि से लोकाकाश प्रदेशों में परिमाण के अनुसार असंख्य स्थान बताये हैं। अशुभ लेश्याओं के संक्लेशरूप परिणाम हैं और शुभ के विशुद्ध परिणाम हैं।

गाथा ३४—मुहूर्तार्थ शब्द से एक समय से ऊपर और पूर्ण मुहूर्त से नीचे के सभी छोटे-बड़े अंश विवक्षित हैं। इस दृष्टि से मुहूर्तार्थ का अर्थ अन्तर्मुहूर्त है।

गाथा ३८—यहाँ पद्मलेश्या की एक मुहूर्त अधिक दस सागर की स्थिति जो बताई है, उसमें मुहूर्त से पूर्व एवं उत्तरभव से सम्बन्धित दो अन्तर्मुहूर्त विवक्षित हैं।



नीललेश्या आदि के स्थिति वर्णन में जो पल्पोपम का असंख्येय भाग बताया है उसमें भी पूर्वोत्तर भव सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्तद्वय प्रक्षिप्त हैं। फिर भी सामान्यतः असंख्येय भाग कहने से कोई हानि नहीं है क्योंकि असंख्येय के भी असंख्येय भेद होते हैं।

गाथा ४५-४६—तिर्यच और मनुष्यों में जघन्य और उत्कृष्ट दोनों ही रूप से लेश्याओं की स्थिति अन्तर्मुहूर्त है। यह भावलेश्या की दृष्टि से कथन है। छद्मस्थ व्यक्ति के भाव अन्तर्मुहूर्त से अधिक एक स्थिति में नहीं रहते।

परन्तु यहाँ केवला अर्थात् शुद्ध शुक्ललेश्या को छोड़ दिया है, क्योंकि सयोगीकेवली की उत्कृष्ट केवला पर्याय नौ वर्ष कम पूर्वकोटि है और सयोगीकेवली को एक जैसे अवस्थित भाव होने से उनकी शुक्ललेश्या की स्थिति भी नववर्षन्यून पूर्वकोटि की है।

गाथा ५२—मूल पाठ में गाथाओं का व्यत्यय जान पड़ता है। ५२ के स्थान पर ५३वीं और ५३ के स्थान पर ५२वीं गाथा होनी चाहिये। क्योंकि ५१वीं गाथा में आगमकार ने भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक सभी देवों की तेजोलेश्या के कथन की प्रतिज्ञा की है। किन्तु ५२वीं गाथा में केवल वैमानिक देवों की ही तेजोलेश्या निरूपित की है, जबकि ५३वीं गाथा में प्रतिपादित लेश्या का कथन चारों ही प्रकार के देवों की अपेक्षा से है। टीकाकारों ने भी इस विसंगति का उल्लेख किया है।

गाथा ५८-५९—प्रतिपत्तिकाल की अपेक्षा से छहों ही लेश्याओं के प्रथम समय में जीव का परभव में जन्म नहीं होता है और न अन्तिम समय में ही। लेश्या की प्राप्ति के बाद अन्तर्मुहूर्त बीत जाने पर और अन्तर्मुहूर्त ही शेष रहने पर जीव परलोक में जन्म लेते हैं।

भाव यह है कि मृत्युकाल में आगामी भव की और उत्पत्तिकाल में अतीत भव की लेश्या का अन्तर्मुहूर्त काल तक होना आवश्यक है। देवलोक और नरक में उत्पन्न होने वाले मनुष्य और तिर्यचों को मृत्युकाल में अन्तर्मुहूर्त काल तक अग्रिम भव की लेश्या का सद्भाव होता है। मनुष्य और तिर्यचगति में उत्पन्न होने वाले देव व नारकों को भी मरणानन्तर अपने पहले भव की लेश्या अन्तर्मुहूर्त काल तक रहती है। अतएव आगम में देव और नारकों की लेश्या का पहले और पिछले भव के लेश्या सम्बन्धी दो अन्तर्मुहूर्त के साथ स्थितिकाल बताया गया है।

प्रज्ञापनासूत्र में कहा है—“जल्लेसाइं दव्वाइं आयइत्ता कालं करेई, तल्लेसेसु उववज्जइ।”

(सन्दर्भ : उत्तराध्ययनसूत्र-साध्वी श्री चन्दना जी)

## IMPORTANT NOTES

**Verse 1**—The meaning of *karma-leshya* is the feelings (*bhaava*) of attachment and the like, which are causes of *karmic*-bondage. The *leshyas* (soul-complexions) are of two types—mental and physical. Some *acharyas* opine that *leshya* is the passion flavoured tendency to associate with activities. From this angle it can exist only in man who is unrighteous (*chhadmasth*). But the white soul-complexion exists in Kevali (omniscient) too, who is at the thirteenth *Gunasthan*. Only the omniscient who has completely dissociated himself from association (*yoga*) with activities is devoid of soul-complexions. Therefore it is the tendency of association (*yoga*) that is soul-complexion. Passions merely account for attributes like intensity. (*Leshyaabhiraatmaani karmaani samshlishyante. Yoga Parinaamo leshya. Jamhaa ayogikevali alessa. - Aavashyaka Churni* by Jinadas Mahattar)



**Verse 11**—*Trikatuk* is mixture of black pepper, long pepper and dried ginger.

**Verse 20**—First of all there are three types of soul-complexion by degree – minimum, medium and maximum. Each of these further divided by same three degrees of minimum, medium and maximum make a total of nine types. Extending these divisions further makes them 27, 81 and 243. This is a gross increment of numbers. But there is no numerical rule in gradation. In this very chapter (verse 33) the maximum and minimum places are said to be innumerable according to the number of space-points of the universe (*Lok-akash*). The ignoble soul-complexions result in anguish and the noble ones in purity.

**Verse 34**—The term *Muhurtardha* denotes all the fractions of a Muhurt that are more than one Samaya and less than a full Muhurt. In other words *Muhurtardha* is synonym of *Antarmuhurt*.

**Verse 38**—In this verse the duration of yellow soul-complexion is shown as ten Sagaropam plus one Muhurt. Here Muhurt denotes two Muhurts, one of this birth and one of next birth.

In the description of duration of blue soul-complexion the uncountable fraction of *Palyopam* also includes two *Antarmuhurts* of pre and past birth as aforesaid. However, generally speaking use of uncountable fraction is not wrong because even uncountable has uncountable fractions.

**Verse 45-46**—The minimum and maximum duration of soul-complexions of humans and animals is mentioned as *Antarmuhurt*. This is with regard to mental manifestation of soul-complexions because the thoughts of unrighteous person cannot remain in one state for more than one *Antarmuhurt*.

But here the omniscient with pure white soul-complexion is not included. This is because the maximum span of omniscient state of a *Kevali* with association (*sayogi*) is nine years less *Purva koti* and the thoughts of a *Kevali* remains always in the same state; as such the duration of their white soul-complexion is also nine years less than *Purva koti*.

**Verse 52**—There seems to be some discrepancy in the order of these two verses. Their order should be reversed. 53<sup>rd</sup> verse should precede 52<sup>nd</sup>. This is because the preceptor has declared in 51<sup>st</sup> verse to describe red soul-complexion of all classes of gods, viz. *Bhavanpati*, *Vanavyantar*, *Jyotishk* and *Vaimanik*; but 52<sup>nd</sup> verse mentions red soul-complexion of *Vaimanik* gods only, while in 53<sup>rd</sup> verse the description is related to all the four kinds of gods. Commentators have also mentioned this discrepancy.

**Verse 58-59**—With regard to period of transformation of all the six soul-complexions the soul does not take rebirth either in first *Samaya* or in the last *Samaya* of its manifestation. The rebirth takes place only during the intervening period between one *Antarmuhurt* after the beginning and one *Antarmuhurt* before the end of their said manifestation (association with soul).

The purport is that at the time of death, it is necessary that the same soul-complexion exists for one *Antarmuhurt* for it to continue in the next birth. The souls from animal and human realms taking rebirth in divine or infernal realms get the soul-complexion of next birth for one *Antarmuhurt* at the time of death. The souls from divine and infernal realms taking rebirth in human and animal realms have the soul complexion of last birth for one *Antarmuhurt*. Therefore in *Agams* the duration of two *Antarmuhurts* of soul complexion of divine and infernal beings is mentioned in context of rebirth or present and next life.

*Prajnaapana Sutra* mentions—*Jallesaaim davvaaim aayaittau kaalam karei, tallesesu uvavajjai*. The soul takes rebirth in the same soul-complexion in next existence, in which it dies. (*Uttaradhyayana Sutra* by *Sadhvi Candana ji*)



## पैंतीसवाँ अध्ययन : अनगार-मार्ग-गति

### पूर्वालोक

प्रस्तुत अध्ययन का नाम अनगार-मार्ग-गति है। इसका वर्ण्य-विषय है कि अनगार अपने मार्ग-मोक्ष-मार्ग में तीव्रतापूर्वक गति किस प्रकार करे ?

यद्यपि इसी उत्तराध्ययनसूत्र के २८वें अध्ययन मोक्ष-मार्ग-गति में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-यह चतुर्विध मार्ग बताये गये हैं।

लेकिन रत्नत्रय की आराधना और चतुर्विध मार्ग की साधना गृहस्थ और अनगार-दोनों के लिए सामान्य (Common) है।

गृहस्थ भी सम्यक्त्वी होता है, आगमों को पढ़कर अथवा श्रमणों के प्रवचन सुनकर सम्यक् ज्ञान भी प्राप्त कर लेता है, अहिंसा आदि श्रावक व्रतों के रूप में आंशिक रूप से ही सही चारित्र का भी पालन करता है और अनशन, ऊनोदरी, स्वाध्याय आदि तप भी कर लेता है।

किन्तु गृहस्थ अगार और श्रमण-अनगार की साधना में मन्दता और तीव्रता, अपूर्णता और समग्रता का मूलभूत अन्तर है। यद्यपि मोक्ष-प्राप्ति की दिशा में दोनों ही अग्रसर होते हैं लेकिन अगार की गति मन्द होती है; जबकि अनगार की गति तीव्र होती है।

अगार की गति मंद होने के कारण हैं—संग, संयोग, पारिवारिक जनों के प्रति मोह, सामाजिक-पारिवारिक कर्तव्यों के पालन का उत्तरदायित्व, जीवनयापन हेतु धनोपार्जन संचय-संग्रह-परिग्रह, भोजन के पचन-पाचन आदि अन्य कारणों से जीव-हिंसा से पूर्णतः विरक्त होने की अशक्यता।

जबकि अनगार इन सब से मुक्त होता है, इसी कारण मोक्ष-प्राप्ति की ओर उसकी गति तीव्र होती है।

यद्यपि सामान्यतः गृहत्यागी को अनगार माना जाता है किन्तु सिर्फ गृहत्याग ही अनगार बनने के लिए काफी नहीं है; उसे कुछ और भी करना अनिवार्य होता है।

सर्वप्रथम उसे घर, कुटुम्ब आदि के त्याग के साथ ही उनके प्रति मोह, आसक्ति आदि का भी त्याग कर देना चाहिए। सर्वसंगत्यागी बन जाना उसके लिए आवश्यक है।

तदुपरान्त पापास्रवों का त्याग, शयन-आसन-सम्बन्धी विवेक, समारम्भ वर्जन, स्वाद-त्याग, मृत्यु पर्यन्त श्रमण-धर्म पालन आदि भी अनिवार्य है।

उसकी इन्हीं प्रवृत्तियों से उसकी गति में तीव्रता एवं समग्र-त्याग वृत्ति आती है और वह शीघ्र मोक्ष प्राप्त करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में अनगार-धर्म सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं का विवेचन किया गया है और इन सूत्रों के यथार्थतः पालन की फलश्रुति मोक्ष-प्राप्ति बताई गई है।

इस अध्ययन में २१ गाथाएँ हैं।



## PANCHASTRIMSH ADHYAYAN : ANAGARA-MARG-GATI

### Foreview

The title of this chapter is Anagara-Marg-Gati or Endeavour on the Path of Homeless-Asceticism. Its theme is—how an ascetic may endeavour to move fast, on his chosen path of liberation ?

In the twenty-eighth chapter of this work, Endeavour on the Path of Liberation, the stated path is the four limbed path of right knowledge-faith-conduct-austerity.

However, the practice of three jewels (right knowledge-faith-conduct) or fourfold path (right knowledge-faith-conduct-austerity) is same for both a householder and a homeless ascetic.

Householder also possesses righteousness (*samyaktva*) and gains right knowledge as well by reading scriptures or listening to discourses by ascetics. He also practices right conduct, may be partially, by observing householder's vows including non-violence and also observes austerities including fasting, limited food intake and self-study.

But there is a basic difference of slow and rapid approach, partial and complete observation of codes, in the practices of a householder and a homeless ascetic. Although both of them move in the direction of attaining liberation, the speed of a householder is slow while that of an ascetic is fast.

There are reasons for this slow speed of a householder—company, circumstances, fondness for family members, responsibility to perform social and family duties, earning livelihood, acquiring, accumulating and hoarding wealth and possessions and inability of complete abstinence from violence due to worldly needs including arranging for and cooking food.

But as the homeless ascetic is free from all these, his speed in the direction of attaining liberation is faster.

Generally speaking, one who renounces household is regarded as an ascetic. But just renouncing household is not enough to become an ascetic; there are other essentials for him to perform.

First of all, he should renounce the affection, attachment and infatuation for home, family, and all what he has renounced. It is mandatory for him to break all social and worldly connections.

After that come the essentials like abandoning of all sources of inflow of demerits, employing discretion about bed and lodge, abandoning all sinful activities, develop apathy for taste and practice of ascetic code for life.

All these sentiments practiced by him accelerate his speed and inspire attitude of absolute renunciation leading to faster attainment of liberation.

Some important points regarding ascetic code have been discussed in this chapter. The result of right and proper following of these points is said to be attaining liberation.

This chapter has 21 verses.



पणतीसइमं अज्झयणं : अणगारमग्गगई  
 पंचत्रिंश अध्यायन : अनगार-मार्ग-गति  
 Chapter-35 : ENDEAVOUR ON THE PATH OF  
 HOMELESS-ASCETICISM

सुणेह मेगगमणा, मग्गं बुद्धेहि देसियं।  
 जमायरन्तो भिक्खू, दुक्खाणऽन्तकरो भवे ॥ १ ॥

मन (चित्त) को एकाग्र करके, बुद्धों (तीर्थकरों) द्वारा उपदिष्ट मार्ग को मुझसे सुनो; जिसका आचरण करने वाला भिक्षु दुःखों का अन्त करने वाला होता है ॥ १ ॥

Hear attentively from me the path propagated by the enlightened ones (Tirthankars).  
 The ascetic who follows that path puts an end to all his miseries. (1)

(१) प्रथम सूत्र : सर्वसंग परित्याग

गिहवासं परिच्चज्ज, पवज्जंअस्सिओ मुणी।  
 इमे संगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जन्ति माणवा ॥ २ ॥

गृहवास का परित्याग करके प्रब्रज्या के आश्रित हुआ (मुनि धर्म स्वीकार किया हुआ) मुनि इन संगों को भली प्रकार जान ले, जिनमें मानव आसक्त होते हैं ॥ २ ॥

1. First point : Renounce all affiliations

The ascetic who has renounced household and got initiated into ascetic order should know well (and renounce) the affiliations to which men is deeply attached. (2)

(२) द्वितीय सूत्र : पापास्रवों का सम्पूर्ण त्याग

तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अबम्भसेवणं।  
 इच्छाकामं च लोभं च, संजओ परिवज्जए ॥ ३ ॥

इसी तरह संयमी सांभक हिंसा, अलीक-असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य का सेवन-मैथुन, इच्छाकाम (अप्राप्त वस्तु की इच्छा) और लोभ (प्राप्त वस्तु के प्रति ममता-गृद्धि) का परित्याग करे ॥ ३ ॥

2. Second point : Renounce completely the sources of demerits

In the same way a restrained ascetic should renounce violence, untruth (*aleek*), stealing, non-celibacy (carnal pleasures), desire for possessions (*ichchhakama*) and greed. (3)

(३) द्वितीय सूत्र : स्थान-विवेक

मणोहरं चित्तहरं, मल्लधूवेण वासियं।  
 सकवाडं पण्डुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥ ४ ॥



मनोहर (चित्त को आकर्षित करने वाला), चित्रधर (स्त्रियों के चित्रों से युक्त घर-मकान), पुष्पमालाओं और धूप आदि सुगन्धित वस्तुओं से वासित, कपाट (किवाड़ों) से युक्त, सफेद चंदाबो (पर्दे आदि से सुसज्जित) गृह की मन से भी प्रार्थना-आकांक्षा न करे ॥ ४ ॥

### 3. Third point : Discipline of place

Even in his thoughts, an ascetic should not long for a lodge that is attractive decorated with paintings of women redolent with flower-garlands, incense and other aromatic things provided with doors and decorated with white canopies and curtains. (4)

इन्दियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए ।

दुक्कराइं निवारेउं, कामरागविवड्डणे ॥ ५ ॥

(क्योंकि) काम-राग की वृद्धि करने वाले उपाश्रय-निवास स्थान में भिक्षु के लिए इन्द्रियों का निवारण करना-रोकना दुष्कर है ॥ ५ ॥

(This is because -) It is very difficult for an ascetic to control his senses in a lust enhancing dwelling (*upashraya*). (5)

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व एगओ ।

पडरिक्के परकडे वा, वासं तत्थऽभिरोयए ॥ ६ ॥

(अतः) भिक्षु एकाकी होकर श्मशान में, सूने (एकान्त) घर में, वृक्ष के मूल में, परकृत (दूसरों द्वारा निर्मित मकान) मकान में, खाली स्थानों में निवास करने की अभिरुचि (इच्छा) करे ॥ ६ ॥

Therefore an ascetic should think of a forlorn dwelling like cremation ground, deserted (lonely) house, hollow tree trunk, houses constructed by others or other isolated places. (6)

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिदुए ।

तत्थ संकप्पए वासं, भिक्खू परमसंजए ॥ ७ ॥

परम संयमी भिक्षु प्रासुक, बाधारहित, स्त्रियों के उपद्रव से रहित स्थान में निवास करने का संकल्प करे ॥ ७ ॥

A highly restrained ascetic should resolve to live at a place that is free of faults, obstacles and disturbance by women. (7)

### (४) चतुर्थ सूत्र : गृह समारम्भ-निषेध

न सयं गिहाइं कुज्जा, णेव अन्नेहिं कारए ।

गिहकम्मसमारम्भे, भूयाणं दीसईं वहो ॥ ८ ॥

(संयमी साधक) न स्वयं गृह आदि का निर्माण करे और न किसी दूसरे से करवाये, क्योंकि गृह कर्म (निर्माण) के समारम्भ में भूतों (प्राणियों) की हिंसा देखी जाती है ॥ ८ ॥

### 4. Fourth point : Negation of dwelling related violence

He (a disciplined ascetic) should neither construct a house and the like by himself nor should he get it constructed by someone else because in the sinful activity of construction violence towards living beings is evident. (8)





तसाणं श्रावराणं च, सुहुमाण बायराण य।  
तम्हा गिहसमारम्भं, संजओ परिवज्जए ॥ ९ ॥

(गृह-निर्माण में) त्रस और स्थावर जीवों का तथा सूक्ष्म और बादर (स्थूल) जीवों का वध होता है इसलिए संयमी साधक गृह-निर्माण (समारम्भ) का सर्वथा परित्याग कर दे ॥ ९ ॥

In construction of a house mobile and immobile beings as well as minute and gross living beings are killed. Therefore, a restrained ascetic should completely renounce (the sinful act of) construction of a house. (9)

(५) पंचम सूत्र : आहार पचन-पाचन निषेध

तहेव भत्तपाणोसु, पयण-पयावणोसु य।  
पाण-भूयदयट्ठाए, न पये न पयावए ॥ १० ॥

इसी प्रकार भक्त और पान (आहार तथा जल) के पकाने और पकवाने के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये कि इसमें भी जीवों की हिंसा होती है। अतः प्राणी और भूतों की दया के लिए (भिक्षु) न स्वयं (भक्त-पान) पकाये और न किसी दूसरे से पकवाये ॥ १० ॥

**5. Fifth point : Negation of cooking food**

In the same way it should be known about cooking and getting cooked food and water that this also involves violence towards living beings. Therefore, out of compassion for living beings, an ascetic should neither cook by himself nor should cause others to cook for him. (10)

जल-धन्ननिस्सिया जीवा, पुढवी-कट्टुनिस्सिया।  
हम्मन्ति भत्तपाणोसु, तम्हा भिक्खू न पायए ॥ ११ ॥

जल, धान्य, पृथ्वी और काष्ठ (ईंधन) के आश्रित बहुत से जीव होते हैं उनका हनन (हिंसा) हो जाता है, इस कारण भिक्षु न स्वयं पकाये और न दूसरे से पकवाये ॥ ११ ॥

There are innumerable beings in water, grain, earth and wood (fuel), and they are killed (while cooking). Therefore an ascetic should neither cook nor cause others to cook. (11)

विसप्ये सव्वओधारे, बहुपाणविणासणे।  
नंत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं न दीवए ॥ १२ ॥

अग्नि के समान दूसरा कोई शस्त्र नहीं है। यह सभी ओर फैल जाता है तथा तीक्ष्ण धार वाला है, बहुत जीवों का विनाशक-प्राणघातक है, इसलिए अग्नि (ज्योति) दीपित-प्रज्वलित न करे ॥ १२ ॥

There is no (other dangerous) weapon like fire. It spreads in all directions, is sharp edged and destroyer of many living beings; therefore he (ascetic) should not light fire. (12)

(६) छठा सूत्र : क्रय-विक्रय वृत्ति-निषेध, भिक्षावृत्ति का विधान

हिरण्णं जायरूवं य, मणसा वि न पत्थए।  
समलेट्ठुकंचणे भिक्खू, विरए कयविककए ॥ १३ ॥



सोने और मिट्टी के ढेले को समान समझने वाला भिक्षु सुवर्ण और रजत (चाँदी) की मन से भी इच्छा न करे और सभी प्रकार की वस्तुओं के क्रय-विक्रय से विरक्त रहे ॥ १३ ॥

#### 6. Sixth point : Negation of trading and code of alms-seeking

An ascetic, who finds gold and lump of clay alike, should not even think of having gold and silver, and should be apathetic to buying and selling. (13)

किणन्तो कड़ओ होइ, विक्किणन्तो य वाणिओ।  
कयविककयम्मि वट्टन्तो, भिक्खू न भवइ तारिसो ॥ १४ ॥

वस्तु को खरीदने वाला क्रयिक (ग्राहक) और बेचने वाला (विक्रय करने वाला) वणिक् (व्यापारी) होता है। क्रय-विक्रय में प्रवृत्त भिक्षु तो (भिक्षु के लक्षणों से युक्त) भिक्षु ही नहीं होता ॥ १४ ॥

The seller and buyer of a thing is a merchant. An ascetic indulging in buying and selling is not an ascetic at all. (14)

भिविक्खयव्वं न केयव्वं, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा।  
कयविककओ महादोसो, भिक्खावत्ती सुहावहा ॥ १५ ॥

भिक्षु को भिक्षावृत्ति से भिक्षा करनी चाहिए। क्रय (विक्रय) नहीं करना चाहिए; क्योंकि क्रय-विक्रय महादोष है और भिक्षावृत्ति सुखावह (सुखदायी) है ॥ १५ ॥

An ascetic should beg alms according to the code of alms seeking. He should not purchase or sell anything, because purchasing and selling is a great fault and to live on alms leads to happiness. (15)

समुयाणं उंछमेसिज्जा, जहासुत्तमणिन्दियं।  
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिण्डवायं चरे मुणी ॥ १६ ॥

मुनि सूत्र (में बताई गई) विधि से अनिन्दित सामुदायिक अनेक घरों से थोड़ी-थोड़ी भिक्षा की एषणा (खोज) करे और लाभ-अलाभ में सन्तुष्ट रहकर भिक्षा के लिए पर्यटन (पिण्डपात) करे ॥ १६ ॥

Following the prescribed code, an ascetic should look for alms in small quantities from many faultless houses of a colony. He should move about seeking alms and be contented irrespective of getting or not getting alms. (16)

#### (७) सातवाँ सूत्र : स्वाद-वृत्ति निषेध

अलोलो न रसे गिद्धे, जिब्भादन्ते अमुच्छिण्ण।  
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥ १७ ॥

अलोलुपी, रस (स्वाद) में अगृह्य (आसक्त न होने वाला) जिह्वा (रसना) इन्द्रिय का दमन करने वाला (स्वाद में) मूर्च्छित-ममत्व, लालसा न रखने वाला महामुनि रस (स्वाद) के लिए न खाये, संयम यात्रा के निर्वाह हेतु भोजन करे ॥ १७ ॥



### 7. Seventh point : Negation of gourmandism

A great ascetic, who is not obsessed and infatuated with taste, who has subdued the sense of taste, who is free of fondness and desire for taste, should not eat food for taste. He should eat only in order to sustain his life and journey of ascetic discipline. (17)

(८) आठवाँ सूत्र : पूजा-प्रतिष्ठा का निषेध

अच्चरणं रयणं चैव, वन्दनं पूयणं तथा ।  
इड्डीसक्कार-सम्माणं, मणसा वि न पत्थए ॥ १८ ॥

अर्चना, रचना और वन्दना, पूजा तथा ऋद्धि, सत्कार, सम्मान आदि की मुनि मन से भी इच्छा न करे ॥ १८ ॥

### 8. Eighth point : Negation of worship and honour

Even in his thoughts an ascetic should not desire for offerings, facilities, salutations, worship, felicitation, respect, honour and the like. (18)

(९) नौवाँ सूत्र : जीवन पर्यन्त मुनि-धर्म पालन

सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अणियाणे अकिंचणे ।  
वोसट्टुकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥ १९ ॥

जब तक काल का पर्याय है (जीवन है) तब तक मुनि शुक्लध्यान ध्याता रहे। निदानरहित, अकिंचन बनकर तथा काय का व्युत्सर्ग (ममत्व त्याग) करके विचरण करे ॥ १९ ॥

### 9. Ninth point : Observing the code for life

As long as he is alive, an ascetic should perform purest of meditation. Without any expectations (of fruits of his practices) and possessions, he should move about dissociating his mind from his body. (19)

फलश्रुति

निज्जूहिऊण आहारं, कालधम्मे उवट्टिए ।  
जहिऊण माणुसं बोन्दिं, पहु दुक्खे विमुच्चई ॥ २० ॥

(अनगार मार्ग पर गति करने वाला मुनि) कालधर्म (मृत्यु) उपस्थित होने पर आहार का परित्याग करके मनुष्य-शरीर को छोड़कर तथा प्रभु बनकर दुःखों से विमुक्त हो जाता है ॥ २० ॥

The fruits

At the time of death he (the ascetic moving on the ascetic path) abandons food and then the earthly body to become supreme-soul and get free from all miseries. (20)

निम्ममो निरहंकारो, वीयरागो अणासवो ।  
संपत्तो केवलं नाणं, सासयं परिणिव्वुए ॥ २१ ॥

—सि बेमि ।



ममत्वरहित, अहंकारशून्य, वीतराग एवं आस्रवरहित होकर तथा केवलज्ञान से संपन्न होकर (अनगार) शाश्वत परिनिर्वाण (सिद्धगति) को प्राप्त कर लेता है ॥ २१ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Getting free of fondness, devoid of ego, free of attachments, immune to inflow of *karmas*, endowed with omniscience he (the ascetic) attains eternal liberation (the status of Siddha). (21)

—So I say.

### विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ४-६—भिक्षु को किवाड़ों से युक्त मकान में रहने की मन से भी इच्छा न करनी चाहिये। यह उत्कृष्ट साधना का, अगुप्तता का और अपरिग्रहभाव का सूचक है।

श्मशान में रहने से अनित्य भावना एवं वैराग्य की जगृति रहती है। चित्त में जलते शवों को और दग्ध अस्थियों को देखकर किस साधक को विषयभोगों से विरक्ति न होगी ?

वृक्ष के नीचे रहना भी महत्वपूर्ण है। प्रतिकूलताओं को तो सहना होता ही है। बौद्धग्रन्थ विशुद्धि मार्ग में कहा है कि वृक्ष के नीचे रहने से साधक को हर समय पेड़ के पत्तों को परिवर्तित होते और पीले पत्तों को गिरते देखकर जीवन की अनित्यता का ख्याल पैदा होता रहेगा। अल्पेच्छता भी रहेगी।

गाथा २०—देह के छोड़ने का अर्थ देह को नहीं देहभाव को छोड़ना है, देह में नहीं देह की प्रतिबद्धता-आसक्ति में ही बन्धन है। देह की प्रतिबद्धता से मुक्त होते ही साधक के लिये देह मात्र जीवन यात्रा का एक साधन रह जाता है, बन्धन नहीं।

### IMPORTANT NOTES

**Verse 4-6**—An ascetic should not even wish to live in a house with doors. This denotes his excellent spiritual pursuit, openness and resolve of non-possession.

The feeling of ephemeralness and renunciation remains alive by dwelling in cremation ground. Which aspirant would not develop apathy for worldly pleasures and comforts after looking at corpses and bones in burning pyres?

To live under a tree is also important. Adversities are to be tolerated. Vishuddhi Marg, a Buddhist scripture, says that by living under a tree and looking every moment at the changing texture of leaves and the falling yellow leaves, the thought of transitoriness of life is always live and vivid in the mind of an aspirant and his desires also remain a few.

**Verse 20**—To quit body does not mean to renounce the body; but to renounce the attachment to the body. Because, the body is not bondage, it is the attachment to the body that is bondage. Once the ascetic is free from fondness for his body, the body remains only a means of sustaining ascetic life, not bondage.



## छत्तीसवाँ अध्ययन : जीवाजीव-विभक्ति

### पूर्वांलोक

प्रस्तुत छत्तीसवाँ अध्ययन इस सूत्र का अन्तिम अध्ययन है। इसका नाम जीवाजीव-विभक्ति है। नाम के अनुरूप इस अध्ययन में जीव और अजीव की विभक्ति-दोनों को पृथक्-पृथक् करके उनको सम्यक् रूप से निरूपित किया गया है।

लोक में जीव और अजीव-ये दो ही मूल तत्त्व इन्हीं के संयोग-वियोग का परिणाम हैं।

जीव और अजीव (रूपी-अजीव-पुद्गल) का अनादि संयोग सम्बन्ध है। लेकिन तप-संयम आदि की साधना के द्वारा इस सम्बन्ध को सदा के लिए विच्छिन्न किया जा सकता है तब जीव शुद्ध रूप-अपना निज रूप प्राप्त कर लेता है और पुद्गल से सम्पूर्णतया विमुक्त होकर सिद्ध बन जाता है।

जब तक जीव के साथ अजीव (कर्म पुद्गलों) का सम्बन्ध रहता है तभी तक शरीर, इन्द्रियों, मन आदि की रचना होती है। जीव में ममत्व मूर्च्छा का अस्तित्व रहता है, पर-द्रव्यों, भौतिक पदार्थों के प्रति उसका आकर्षण रहता है, यही जीव की वैभाविक प्रवृत्ति है, जो राग-द्वेष, संकल्प-विकल्पों के माध्यम से प्रकट होती है और यही जीव का संसार है जिसमें वह अनादिकाल से परिभ्रमण करता आ रहा है।

जीव का अजीव से पृथक्करण मोक्ष-प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इसी पृथक्करण को भेदविज्ञान कहा जाता है। भेदविज्ञान होते ही जीव स्वयं को पुद्गल से, कर्मों और नोकर्मों से अलग समझने लगता है। भेदविज्ञान का पूर्ण विश्वास होते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है, ज्ञान भी सम्यक् हो जाता है और जीव अपनी आत्मा और आत्मिक गुणों में रमण करने लगता है, यही सम्यक् चारित्र है। संयम-चारित्र की पूर्ण निर्मलता और समग्रता ही जीव की मुक्ति है।

अजीव का जीव से पृथक्करण इष्ट होने से ही प्रस्तुत अध्ययन में सर्वप्रथम अजीव का निरूपण किया गया है।

जीव की शुद्ध दशा की प्रतीति कराने के लिए पहले सिद्धों का विस्तृत वर्णन करने के बाद संसारी जीवों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

अन्त में संयम-पालन की प्रेरणा दी गई है।

आराधक बनने के लिए संलेखना, संधारा और समाधिमरण का प्रतिपादन किया गया है।

कन्दर्पी आदि पाँच भावनाओं, मिथ्यात्व, निदान, हिंसा, कृष्ण आदि अधर्म लेश्याओं से बचकर सम्यक्त्व, शुक्लध्यान, जिन वचनों में अनुराग आदि तथा आत्म-शुद्धि करके परीत संसारी और मोक्ष-प्राप्ति की सुन्दर प्रेरणा दी गई है।

प्रस्तुत अध्ययन इस सूत्र में सबसे बड़ा है। इसमें २६८ गाथाएँ हैं।



## SHATTRIMSH ADHYAYAN : JIVAJIVA VIBHAKTI

### Foreview

This thirty-sixth chapter is the last chapter of this scripture. It is titled Jivajiva Vibhakti or Life and Non-life. This chapter, as its name suggests, defines *jiva* (life; soul) and *ajiva* (non-life and/or matter) properly after dividing the two and dealing them separately.

There are only two basic elements in this universe (*Lok*)—soul and non-soul. Remaining all elements are consequences of integration and disintegration of these two.

The relationship of assimilation between life and matter continues since time immemorial. But it can be permanently terminated with the help of restraint, austerities and other spiritual practices. Having done that, the soul regains its pristine pure form, gets absolutely free of matter and becomes a perfected soul (*Siddha*).

Body, sense organs and mind come into being only as long as soul is associated with matter. And only till then a living being has feelings of fondness, delusion and attraction for other things and matter. For a soul it is an unnatural tendency born through attachment and aversion, desires and alternatives. This is the worldly existence of soul in the form of cycles of rebirth in which it has been wandering from time immemorial.

Separation of soul from non-soul (*karma* particles) is essential for attaining liberation. This separation is called discerning knowledge (*bhed vijñana*). The moment one acquires this discerning knowledge he considers the self as different from matter, *karmas* and *nokarmas* (auxiliary *karmas*). With development of complete faith in this principle of separateness he gains right perception/faith; knowledge also becomes right; he gets engrossed in his soul and its attributes, virtues; and that is right conduct. The absolute purity and perfection of restraint or conduct is the liberation of soul.

As separation of non-soul from soul is the desired theme of this chapter, the concept of non-soul (matter) is defined first.

A vivid description of *Siddhas* (perfected souls) has been given first in order to explain the pure state of soul. This is followed by detailed description of worldly beings.

In the end comes inspiration for practising restraint.

For becoming true spiritual aspirant the ultimate vows of *samllekhaṇa*, *santhara* and *samaadhi maraṇa* are explained.

Inspiration has been provided eloquently to avoid five ignoble feelings including sexual (*kandarpī*), unrighteousness, volition and ignoble soul-complexions like black, and pursue the path of righteousness, pure meditation and love for the word of Jinās in order to purify the soul, renounce this world and attain liberation.

This is the longest chapter in this scripture. It has 268 verses.



छत्तीसद्वयं ब्रह्मयणं : जीवाजीवविभक्ती  
षट्त्रिंश अध्ययन : जीवाजीव-विभक्ति

Chapter-36 : THE DIVISION OF LIFE AND NON-LIFE

जीवाजीवविभक्तिं, सुणेह मे एगमणा इओ ।  
जं जाणिऊण समणे, सम्मं जयइ संजमे ॥ १ ॥

जीव और अजीव के विभाग (विभक्ति) को मुझसे एकाग्रचित्त होकर सुनो; जिसे जानकर श्रमण संयम में सम्यक् प्रकार से यतनाशील बनता है ॥ १ ॥

Hear from me attentively about the division of soul and non-soul; knowing which an ascetic carefully exerts himself in restraint. (1)

जीवा चेव अजीवा य, एस लोए वियाहिए ।  
अजीवदेसमागासे, अलोए से वियाहिए ॥ २ ॥

जीव और अजीव जहाँ हैं, वह लोक कहा गया है। और अजीव का एक देश (विभाग या अंश) जो (मात्र) आकाश है, वह अलोक (अलोकाकाश) है ॥ २ ॥

The place where soul and non-soul exist is called universe (*Lok*). Empty space, which is a part of the non-soul, is called unoccupied space (*Alok* or *Alokakash*). (2)

द्व्वओ खेत्तओ चेव, कालओ भावओ तहा ।  
परूवणा तेसिं भवे, जीवाणमजीवाण य ॥ ३ ॥

उन जीवों और अजीवों की प्ररूपणा—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से की जाती है ॥ ३ ॥

Soul (life) and non-soul (matter) are being described with reference to substance, place, time and modes or developments. (3)

अजीव-प्ररूपणा

रूविणो चेवऽरूवी य, अजीवा दुविहा भवे ।  
अरूवी दसहा वुत्ता, रूविणो वि चउव्विहा ॥ ४ ॥

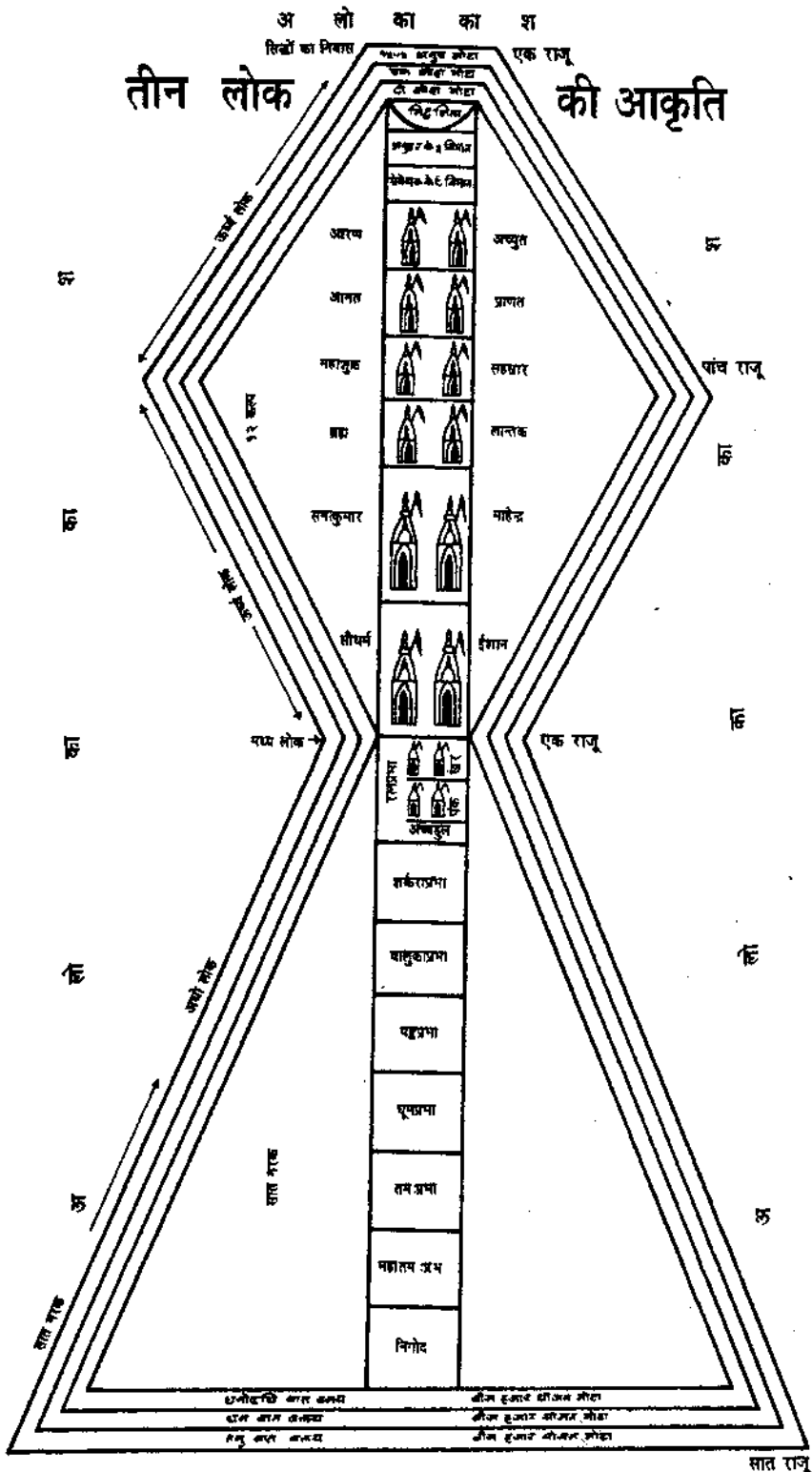
अजीव दो प्रकार का होता है—(१) रूपी, और (२) अरूपी। अरूपी (अजीव) दस प्रकार का है और रूपी (अजीव) के चार भेद हैं ॥ ४ ॥

Non-life

Non-life is of two kinds—(1) with form (*rupi*), and (2) without form (*arupi*). Non-life without form is of ten kinds and that with form is of four types. (4)

अरूपी-अजीव-प्ररूपणा

धम्मत्थिकाए तद्देसे, तप्पएसे य आहिए ।  
अहम्मे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए ॥ ५ ॥







धर्मास्तिकाय तथा उस (धर्मास्तिकाय) के देश और उस (धर्मास्तिकाय) के प्रदेश कहे गये हैं तथा इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय, उस (अधर्मास्तिकाय) का देश और उस (अधर्मास्तिकाय) का प्रदेश भी बताया गया है ॥ ५ ॥

### Non-life without form

*Dharmastikaya* (motion entity), its divisions, its indivisible parts are mentioned. In the same way *Adharmastikaya* (rest entity), its divisions and its indivisible parts are also mentioned. (5)

आगासे तस्स देसे य, तप्पएसे य आहिए।  
अद्धासमए चेव, अरूवी दसहा भवे ॥ ६ ॥

आकाशास्तिकाय, उस (आकाशास्तिकाय) का देश और उस (आकाशास्तिकाय) का प्रदेश बताया गया है और अद्धासमय (काल) । इस तरह अरूपी अजीव दस प्रकार का है ॥ ६ ॥

Likewise *Akaashastikaya* (space entity), its divisions and its indivisible parts are mentioned; also mentioned is *Addha Samaya* or *Kaal* (time entity). Thus formless non-soul substances are of ten types. (6)

धम्माधम्मे य दोऽवेए, लोगमित्ता वियाहिया।  
लोगालोगे य आगासे, समए समयखेत्तिए ॥ ७ ॥

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय-ये दोनों ही लोकप्रमाण-सम्पूर्ण लोक में व्याप्त बताये गये हैं । आकाशास्तिकाय लोक और अलोक दोनों में व्याप्त है तथा समय (काल) समय-क्षेत्रिक-ढाई द्वीप प्रमाण मानव-क्षेत्र में है ॥ ७ ॥

Both *Dharmastikaya* and *Adharmastikaya* are co-extensive only with the universe (*Lok*). But *Akaashastikaya* is co-extensive with the universe (*Lok*) as well as unoccupied space. And time exist only in the area of time (area where humans live; Adhai Dveep or two and a half continents). (7)

धम्माधम्मागासा, तिन्नि वि एए अणाइया।  
अपज्जवसिया चेव, सव्वद्धं तु वियाहिया ॥ ८ ॥

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय-ये तीनों ही द्रव्य अनादि, अपर्यवसित (अनन्त) तथा सर्वकाल स्थायी (नित्य) हैं ॥ ८ ॥

*Dharmastikaya*, *Adharmastikaya* and Space (*Akaash*), all the three substances are beginningless, endless and eternal. (8)

समए वि सन्तइं पप्प, एवमेवं वियाहिए।  
आएसं पप्प साईए, सपज्जवसिए वि य ॥ ९ ॥

समय (काल) भी संतति-प्रवाह की अपेक्षा से इसी प्रकार (अनादि, अनन्त, स्थायी-नित्य) कहा गया है किन्तु आदेश (प्रतिनियत) की अपेक्षा से वह आदि (आदिसहित) और अन्तसहित (सपज्जिए) भी होता है ॥ ९ ॥



Time is also said to be beginningless, endless and eternal with regard to its continuous flow but with regard to particularity it has a beginning and an end too. (9)

### रूपी अजीव-प्ररूपणा

खन्धा य खन्धदेसा य, तप्पएसा तहेव य।  
परमाणुणो य बोद्धव्वा, रूविणो य चउव्विहा ॥ १० ॥

(१) स्कन्ध, (२) स्कन्ध के देश, (३) उस (स्कन्ध) के प्रदेश, और (४) परमाणु-इस प्रकार रूपी अजीव द्रव्य के चार भेद हैं ॥ १० ॥

### Non-life with form

(1) *Skandh* (aggregate), (2) *Skandh-desh* (sections of aggregate), (3) *Skandh-pradesh* (sub-sections of aggregate), and (4) *Paramanu* (ultimate particle); thus non-life with form (*rupi ajiva* or matter) is of four kinds. (10)

एगत्तेण पुहत्तेण, खन्धा य परमाणुणो।  
लोएगदेसे लोए य, भइयव्वा ते उ खेत्तओ ॥  
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ ११ ॥

परमाणुओं के एकत्व (सम्मिलन) से स्कन्ध का निर्माण हो जाता है और स्कन्ध के पृथक्त्व (विभाजित होने-बिखर जाने) से परमाणु बन जाते हैं (यह स्थिति द्रव्य की अपेक्षा से बताई गई है)।

क्षेत्र की अपेक्षा से वे स्कन्ध और परमाणु लोक के एक देश में तथा संपूर्ण लोक में भाज्य हैं। अतः उनके असंख्य विकल्प (भेद) हैं।

यहाँ से आगे मैं उन स्कन्ध और परमाणुओं के काल विभाग की अपेक्षा से चार भेद कहूँगा ॥ ११ ॥

Aggregate (*Skandh*) is created by assimilation of *Paramanus* (ultimate particles) and when the aggregate disintegrates it turns into *Paramanus* (This is in context of substance).

In context of place those aggregates and *Paramanus* (ultimate particles) can be divided in one section of the universe as well as the whole. As such they have innumerable alternatives.

Now I shall describe the four divisions of those aggregates and *Paramanus* in context of time. (11)

संतइं पण्य तेऽणाइं, अपज्जवसिया वि य।  
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १२ ॥

प्रवाह (संतति) की अपेक्षा से वे स्कन्ध-परमाणु अनादि और अनन्त हैं। स्थिति (नियत स्थान पर अवस्थान) की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥ १२ ॥

In context of continuity these aggregates and *Paramanus* are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as an end. (12)



असंखकालमुक्कोसं, एगं समयं जहन्निया।  
अजीवाण य रूवीणं, तिई एसा वियाहिया ॥ १३ ॥

रूपी अजीव द्रव्यों की यह स्थिति जघन्य (कम से कम) एक समय की और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) असंख्यात काल की कही गई है ॥ १३ ॥

This state of non-life with form (*rupi ajiva*) continues for a minimum of one Samaya and maximum of innumerable time. (13)

अणन्तकालमुक्कोसं, एगं समयं जहन्नयं।  
अजीवाण य रूवीणं, अन्तरेयं वियाहियं ॥ १४ ॥

रूपी अजीव द्रव्यों का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्यात काल का है। (अन्तर का अभिप्राय है—अपने प्रतिनियत पूर्वावगाहित स्थान से चलकर पुनः उसी स्थान पर पहुँचने के मध्य-अन्तराल का समय) ॥ १४ ॥

The minimum intervening period (*antar*) between shifting of a non-life with form (*rupi ajiva* or matter) from a place and regaining the same place is one Samaya and the maximum is innumerable period of time. (14)

वण्णओ गन्धओ चव, रसओ फासओ तहा।  
संठाणओ य विन्नेओ, परिणामो तेसि पंचहा ॥ १५ ॥

स्कन्ध आदि का परिणमन—(१) वर्ण की अपेक्षा से, (२) गन्ध की अपेक्षा से, (३) रस की अपेक्षा से, (४) स्पर्श की अपेक्षा से, और (५) संस्थान की अपेक्षा से—पाँच प्रकार का जानना चाहिये ॥ १५ ॥

The transformation of aggregates should be known in five contexts; in context of (1) colour, (2) smell, (3) taste, (4) touch, and (5) structure (*samsthan*). (15)

वण्णओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।  
किण्हा नीला य लोहिया, हालिहा सुक्किला तहा ॥ १६ ॥

वर्ण से जो (स्कन्ध आदि रूपी अजीव-पुद्गल) परिणत होते हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं—(१) कृष्ण, (२) नील, (३) लोहित (लाल), (४) आरिद्र (पीत), और (५) श्वेत-शुक्ल ॥ १६ ॥

The transformation of aggregates of non-life with form (matter) in context of colour is said to be of five kinds—(1) black, (2) blue, (3) red, (4) yellow, and (5) white. (16)

गन्धओ परिणया जे उ, दुविहा ते वियाहिया।  
सुब्धिगन्धपरिणामा, दुब्धिगन्धा तहेव य ॥ १७ ॥

जो (स्कन्ध आदि) पुद्गल गन्ध से परिणत होते हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) सुरभिगन्ध परिणमन, और (२) दुरभिगन्ध परिणमन ॥ १७ ॥

The transformation of aggregates of non-life with form (matter) in context of smell is said to be of two kinds—(1) pleasant smell, and (2) unpleasant or foul smell. (17)



रसओ परिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।

तित्त-कडुय-कसाया, अम्बिला महुरा तथा ॥ १८ ॥

जो (पुद्गल) रस से परिणत हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं—(१) तिक्त-तीखा या चरपरा, (२) कटुक-कड़वा, (३) कषायला, (४) अम्ल-खट्टा, और (५) मधुर-मीठा ॥ १८ ॥

The transformation of aggregates of non-life with form (matter) in context of taste is said to be of five kinds—(1) bitter, (2) pungent, (3) astringent, (4) sour, and (5) sweet. (18)

फासओ परिणया जे उ, अट्टहा ते पकित्तिया।

कक्खडा मउया चेव, गरुआ लहुया तथा ॥ १९ ॥

जो (पुद्गल) स्पर्श से परिणत होते हैं, वे आठ प्रकार के कहे गये हैं—(१) कर्कश-खुरदरा, (२) मृदु-मुलायम, कोमल, (३) गुरु-भारी, (४) लघु-हल्का— ॥ १९ ॥

The transformation of aggregates of non-life with form (matter) in context of touch is said to be of eight kinds—(1) hard, (2) soft, (3) heavy, (4) light, - (19)

सीया उण्हा य निद्धा य, तथा लुक्खा व आहिया।

इइ फासपरिणया एए, पुगला समुदाहिया ॥ २० ॥

(५) शीत-ठंडा, (६) उष्ण-गर्म, (७) स्निग्ध-चिकना, (८) रूक्ष-कटोर, कड़ा—इस प्रकार ये स्पर्श से परिणत पुद्गल सम्यक् रूप से कहे गये हैं ॥ २० ॥

(5) cold, (6) hot, (7) smooth, and (8) rough, thus the aggregates transformed in context of touch are properly described. (20)

संठाणपरिणया जे उ, पंचहा ते पकित्तिया।

परिमण्डला य वट्टा, तंसा चउरंसमायया ॥ २१ ॥

संस्थान से परिणत जो पुद्गल होते हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं—(१) परिमण्डल (चूड़ी की तरह गोल), (२) वृत्त-गेंद की तरह गोल, (३) त्र्यंश-त्रिकोणाकार, (४) चतुरस्र-चौकोर, चौकोन (वर्गाकार), और (५) आयताकार ॥ २१ ॥

The transformation of aggregates of non-life with form (matter) in context of constitution is said to be of five kinds—(1) circular, (2) spherical, (3) triangular, (4) square, and (5) rectangular. (21)

वण्णओ जे भवे किण्हे, भइए से उ गन्धओ।

रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ २२ ॥

कृष्ण (काले) वर्ण (रंग) वाला पुद्गल-गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भी भाज्य-अनेक विकल्पों (प्रकारों) वाला होता है ॥ २२ ॥

The matter of black colour is further divisible many ways by attributes of smell, taste, touch and constitution. (22)

वण्णओ जे भवे नीले, भइए से उ गन्धओ।

रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ २३ ॥



नीले वर्ण का पुद्गल-गंध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य है। इस अपेक्षा से उसके अनेक विकल्प होते हैं ॥ २३ ॥

The matter of blue colour is further divisible many ways by attributes of smell, taste, touch and constitution. (23)

वण्णओ लोहिए जे उ, भइए से उ गन्धओ।

रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ २४ ॥

जो पुद्गल लाल वर्ण वाला है, वह गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥ २४ ॥

The matter of red colour is further divisible many ways by attributes of smell, taste, touch and constitution. (24)

वण्णओ पीयए जे उ, भइए से उ गन्धओ।

रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ २५ ॥

जो पुद्गल पीले वर्ण वाला होता है, वह गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥ २५ ॥

The matter of yellow colour is further divisible many ways by attributes of smell, taste, touch and constitution. (25)

वण्णओ सुक्किले जे उ, भइए से उ गन्धओ।

रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ २६ ॥

श्वेत (शुक्ल) वर्ण वाला पुद्गल-गंध, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता है) ॥ २६ ॥

The matter of white colour is further divisible many ways by attributes of smell, taste, touch and constitution. (26)

गन्धओ जे भवे सुब्भी, भइए से उ वण्णओ।

रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ २७ ॥

गंध से जो पुद्गल सुरभित-सुगन्धित होता है, वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भी भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥ २७ ॥

The matter with pleasant smell is further divisible many ways by attributes of colour, taste, touch and constitution. (27)

गन्धओ जे भवे दुब्भी, भइए से उ वण्णओ।

रसओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ २८ ॥

जो पुद्गल दुरभिगन्ध वाला-दुर्गन्धित होता है वह वर्ण, रस, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥ २८ ॥

The matter with unpleasant smell is further divisible many ways by attributes of colour, taste, touch and constitution. (28)



रसओ तित्तए जे उ, भइए से उ वण्णओ।  
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ २९ ॥

जो पुद्गल तिक्त-चरपरे रस वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥ २९ ॥

The matter with bitter taste is further divisible many ways by attributes of colour, smell, touch and constitution. (29)

रसओ कडुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।  
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३० ॥

कटु (कड़वा) रस वाला पुद्गल-वर्ण, गंध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥ ३० ॥

The matter with pungent taste is further divisible many ways by attributes of colour, smell, touch and constitution. (30)

रसओ कसाए जे उ, भइए से उ वण्णओ।  
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३१ ॥

जो पुद्गल रस से कषाय-कसैला होता है, वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनेक विकल्पों वाला होता) है ॥ ३१ ॥

The matter with astringent taste is further divisible many ways by attributes of colour, smell, touch and constitution. (31)

रसओ अम्बिले जे उ, भइए से उ वण्णओ।  
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३२ ॥

जो पुद्गल रस से अम्ल-खट्टा होता है वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य (अनन्त विकल्पों-भेदों वाला होता) है ॥ ३२ ॥

The matter with sour taste is further divisible many ways by attributes of colour, smell, touch and constitution. (32)

रसओ मधुरए जे उ, भइए से उ वण्णओ।  
गन्धओ फासओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३३ ॥

जो पुद्गल मधुर रस वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, स्पर्श और संस्थान से भाज्य है ॥ ३३ ॥

The matter with sweet taste is further divisible many ways by attributes of colour, smell, touch and constitution. (33)

फासओ कक्खडे जे उ, भइए से उ वण्णओ।  
गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३४ ॥

जो पुद्गल कर्कश स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य है ॥ ३४ ॥

The matter with hard touch is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and constitution. (34)



फासओ मडए जे उ, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३५ ॥

जो पुद्गल मृदु—कोमल स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य है ॥ ३५ ॥

The matter with soft touch is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and constitution. (35)

फासओ गुरुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३६ ॥

जो पुद्गल स्पर्श से गुरु—भारी होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य है ॥ ३६ ॥

The matter with heavy touch is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and constitution. (36)

फासओ लहुए जे उ, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३७ ॥

जो पुद्गल लघु—(हल्का) स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥ ३७ ॥

The matter with light touch is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and constitution. (37)

फासओ सीयए जे उ, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३८ ॥

जो पुद्गल शीत स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥ ३८ ॥

The matter with cold touch is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and constitution. (38)

फासओ उण्हए जे उ, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ३९ ॥

जो पुद्गल उष्ण (गर्म) स्पर्श वाला होता है, वह वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥ ३९ ॥

The matter with hot touch is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and constitution. (39)

फासओ निद्धए जे उ, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ४० ॥

स्निग्ध स्पर्श वाला पुद्गल—वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥ ४० ॥

The matter with smooth touch is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and constitution. (40)

फासओ लुक्खए जे उ, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए संठाणओ वि य ॥ ४१ ॥



रूक्ष स्पर्श वाला पुद्गल-वर्ण, गन्ध, रस और संस्थान से भी भाज्य होता है ॥ ४१ ॥

The matter with rough touch is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and constitution. (41)

परिमण्डलसंठाणे, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥ ४२ ॥

परिमण्डल (चूड़ी के समान गोल आकार) संस्थान वाला पुद्गल-वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ॥ ४२ ॥

The matter having a circular (like a bangle) constitution is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and touch. (42)

संठाणओ भवे वट्टे, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥ ४३ ॥

वृत्त संस्थान (गेंद के समान गोल आकार वाला) पुद्गल वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से भाज्य है ॥ ४३ ॥

The matter having a spherical (like a ball) constitution is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and touch. (43)

संठाणओ भवे तंसे, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥ ४४ ॥

त्र्यंश (त्रिकोण) संस्थान (आकार) वाला पुद्गल वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से भाज्य होता है ॥ ४४ ॥

The matter having a triangular constitution is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and touch. (44)

संठाणओ य चउरंसे, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥ ४५ ॥

चौरस-चौकोन (वर्गाकार) संस्थान वाला पुद्गल-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से भी भाज्य होता है ॥ ४५ ॥

The matter having a square constitution is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and touch. (45)

जे आययसंठाणे, भइए से उ वण्णओ।

गन्धओ रसओ चेव, भइए फासओ वि य ॥ ४६ ॥

आयत संस्थान वाला पुद्गल-वर्ण, गंध, रस और स्पर्श से भी भाज्य है ॥ ४६ ॥

The matter having a rectangular constitution is further divisible many ways by attributes of colour, smell, taste and touch. (46)

एसा अजीवविभत्ती, समासेण वियाहिया।

इत्तो जीवविभत्तिं, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ ४७ ॥





यह संक्षिप्त में अजीव विभक्ति की प्ररूपणा की गई है। अब यहाँ से क्रमशः जीवन-विभक्ति का कथन करूँगा ॥ ४७ ॥

Thus the divisions of non-life with form have been briefly described. Now I will describe the divisions of soul in sequence. (47)

### जीव-प्ररूपणा

संसारस्था य सिद्धा य, दुविहा जीवा वियाहिया।

सिद्धाऽणोगविहा वुत्ता, तं मे कित्तयओ सुण ॥ ४८ ॥

(१) संसारस्थ (संसारी), और (२) सिद्ध (संसार-मुक्त) — जीव दो प्रकार के बताये गये हैं। सिद्ध जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, उनका मैं वर्णन करता हूँ, सुनो ॥ ४८ ॥

### Life (soul)

The souls are said to be of two kinds—(1) worldly, and (2) liberated (Siddha of perfected). Liberated souls are said to be of many types. I now describe them; listen. (48)

### सिद्ध जीवों की प्ररूपणा

इत्थी पुरिससिद्धा य, तहेव य नपुंसगा।

सलिंगे अन्नलिंगे य, गिहिलिंगे तहेव य ॥ ४९ ॥

स्त्री-पुरुष-नपुंसक, स्वलिंग, अन्यलिंग और गृहस्थलिंग से जीव सिद्ध होते हैं ॥ ४९ ॥

Liberation is attained by different categories of people including (by gender—) women, men, hermaphrodite, (by faith—) own faith (Jain) other faith, and householders. (49)

उक्कोसोगाहणाए य, जहन्नमज्झिमाइ य।

उड्ढं अहे य तिरियं च, समुद्धम्मि जलम्मि य ॥ ५० ॥

उत्कृष्ट अवगाहना में, जघन्य और मध्यम अवगाहना में (सिद्ध होते हैं) तथा ऊर्ध्वलोक में, तिर्यक् लोक में, अधोलोक में और समुद्र तथा जल (नदी, जलाशय आदि) में जीव सिद्ध होते हैं ॥ ५० ॥

Liberation is attained by people of maximum, medium or minimum *avagaahana* (space-occupation or height) and from higher regions (heavens), transverse regions (including earth), lower regions (infemal worlds), oceans and other water bodies (rivers, lakes etc.). (50)

दसं चेव नपुंसेसु, वीसं इत्थियासु य।

पुरिसेसु य अट्ठसयं, समणोणेण सिज्झई ॥ ५१ ॥

एक समय में (अधिक से अधिक) नपुंसकों में से दस, स्त्रियों में से बीस और पुरुषों में से १०८ जीव सिद्ध हो सकते हैं ॥ ५१ ॥

In one Samaya (a maximum of) ten individuals from hermaphrodites, twenty from women and one hundred eight from men can get liberated. (51)



चत्तारि य गिहिलिंगे, अन्नलिंगे दसेव य।  
सलिंगेण य अद्रुसयं, समएणेगेण सिज्झई ॥ ५२ ॥

गृहस्थलिंग में चार, अन्यलिंग में दस और स्वलिंग में १०८ जीव एक समय में सिद्ध हो सकते हैं ॥ ५२ ॥

In one Samaya (a maximum of) four individuals from householders, ten from other faith and one hundred eight from own faith (Jain) can attain liberation. (52)

उक्कोसोगाहणाए य, सिज्झन्ते जुगवं दुवे।  
चत्तारि जहन्नाए, जवमज्झऽटुत्तरं सयं ॥ ५३ ॥

उत्कृष्ट अवगाहना में दो, जघन्य अवगाहना में चार और मध्यम अवगाहना में १०८ जीव (एक समय में) सिद्ध हो सकते हैं ॥ ५३ ॥

Two individuals of maximum *avagaahana*, four of minimum and one hundred eight of medium can attain liberation (at the most in one Samaya). (53)

चउरुड्ढलोए य दुवे समुद्दे, तओ जले वीसमहे तहेव।  
सयं च अटुत्तर तिरियलोए, समएणेगेण उ सिज्झई उ ॥ ५४ ॥

चार ऊर्ध्वलोक में, दो समुद्र में, तीन जल (जलाशय) में, बीस अधोलोक में, १०८ तिर्यक् लोक में एक समय में जीव सिद्ध हो सकते हैं ॥ ५४ ॥

Four individuals from higher regions, two from oceans, three from other water bodies, twenty from lower regions and one hundred eight from the transverse regions (including earth) can attain liberation (at the most) in one Samaya. (54)

कहिं पडिहया सिद्धा?, कहिं सिद्धा पइट्ठिया?  
कहिं बोन्दिं चइत्ताणं?, कत्थ गन्तूण सिज्झई ॥ ५५ ॥

(प्रश्न) सिद्ध जीव कहाँ जाकर रुकते हैं, कहाँ पर सिद्ध प्रतिष्ठित होते हैं (ठहरते हैं), शरीर को कहाँ छोड़कर और कहाँ जाकर सिद्ध होते हैं ॥ ५५ ॥

(Q.) Where do the perfected souls go and get stopped? Where do they get ensconced? Where do they leave their bodies; and where do they become perfected ones (Siddhas)? (55)

अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया।  
इहं बोन्दिं चइत्ताणं, तत्थ गन्तूण सिज्झई ॥ ५६ ॥

(उत्तर) सिद्ध जीव अलोक द्वारा रुके हुए हैं, लोक के अग्र भाग (ऊर्ध्व दिशा का लोकान्त) में ठहरे हुए हैं, यहाँ मनुष्य क्षेत्र में शरीर को छोड़कर वहाँ लोक के अग्र भाग में जाकर सिद्ध होते हैं ॥ ५६ ॥

(A.) Perfected souls go to the edge of the universe (*Lok*) and are stopped by *Alok* (unoccupied space). They are ensconced at the edge of the universe (*Lok*). They leave their bodies in the world of humans and become perfected ones on reaching the edge of the universe. (56)



बारसहिं जोयणोहिं, सव्वट्टस्सुवरिं भवे।  
ईसीपब्भारनामा उ, पुढवी छत्तसंठिया ॥ ५७ ॥

सर्वार्थसिद्ध विमान से बारह योजन ऊपर ईषत्प्राग्भारा नाम की छत्राकार पृथ्वी है ॥ ५७ ॥

There is an umbrella (*chhatra*) shaped land named *Ishatpragbhara Prithvi* (the land or world just before the edge) twelve Yojans above *Sarvarthasiddha Vimaan* (celestial vehicle). (57)

पणयालसयसहस्सा, जोयणाणं तु आयया।  
तावइयं चेव वित्थिण्णा, तिगुणो तस्सेव परिरओ ॥ ५८ ॥

वह पृथ्वी पैंतालीस लाख योजन लम्बी और उतनी ही विस्तीर्ण (चौड़ी) है तथा उसकी परिधि (कुछ अधिक) तीन गुनी है ॥ ५८ ॥

That world is four and a half million Yojans in length and same in breadth and its circumference is slightly more than three times that. (58)

अट्टजोयणबाहल्ला, सा मज्झमि वियाहिया।  
परिहायन्ती चरिमन्ते, मच्छियपत्ता तणुयरी ॥ ५९ ॥

वह मध्य में आठ योजन बाहल्य वाली (स्थूल-मोटी) कही गई है। फिर वह क्रमशः पतली होती गई है और चरम-अन्त में मक्खी की पाँख से भी अधिक पतली है ॥ ५९ ॥

It is eight Yojan deep at the center tapering down to the thickness of the wings of a house-fly at its periphery. (59)

अज्जुणसुवण्णगमई, सा पुढवी निम्मला सहावेणं।  
उत्ताणगच्छत्तगसंठिया य, भणिया जिणवरेहिं ॥ ६० ॥

जिनेन्द्रों ने बताया है कि वह पृथ्वी अर्जुन स्वर्णमयी (श्वेत सुवर्ण वाली) और स्वभाव से ही निर्मल (उज्ज्वल) है और उसका आकार तने हुए उलटे छते जैसा है ॥ ६० ॥

Jinas have told that this world is made up of white gold, pure by nature and its shape is like an upturned open umbrella. (60)

संखंक-कुन्दसंकासा, पण्डुरा निम्मला सुहा।  
सीयाए जोयणे तत्तो, लोयन्तो उ वियाहिओ ॥ ६१ ॥

वह पृथ्वी शंख, अंकरत्न और कुन्द पुष्प के समान श्वेत, निर्मल तथा शुभ है। उस सीता (ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी) से एक योजन ऊपर लोक का अन्त कहा गया है ॥ ६१ ॥

That world is white, pure and pious like conch-shell, *Ankaratna* (a gem) and *Kunda* flower. One Yojan above that world named *Sita* (*Ishatpragbhara*) is the end of the universe (*Lok*). (61)

जोयणस्स उ जो तस्स, कोसो उवरिमो भवे।  
तस्स कोसस्स छब्भाए, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥ ६२ ॥

उस योजन का जो सबसे ऊपर का कोस है, उस कोस के छठे भाग में सिद्धों की अवगाहना है—वहाँ सिद्ध जीव ठहरे हुए हैं ॥ ६२ ॥



In the uppermost sixth part of the highest Kosa (2 miles) of that Yojan is the space occupation (*avagaahana*) of Siddhas; in other words the perfected souls dwell there. (62)

तत्थ सिद्धा महाभागा, लोयग्गम्मि पइड्डिया।

भवप्पवंचउम्मुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥ ६३ ॥

भव प्रपंच-जन्म-मरणादि संसार के प्रपंचों से उन्मुक्त, परम श्रेष्ठ सिद्ध गति को प्राप्त, महाभाग्यशाली सिद्ध भगवान वहाँ लोक के अग्र भाग में स्थित-प्रतिष्ठित हैं ॥ ६३ ॥

Free from the vagaries of the world (births and deaths), attaining the most exalted state of perfection the most fortunate Siddha Bhagavan dwell there at the edge of the universe (*Lok*). (63)

उस्सेहो जस्स जो होइ, भवम्मि चरिमम्मि उ।

तिभागहीणा तत्तो य, सिद्धाणोगाहणा भवे ॥ ६४ ॥

अन्तिम भव (जिस जन्म से जीव मुक्त होता है) में जिसकी (जिस मनुष्य की) जितनी ऊँचाई होती है, सिद्धावस्था में उस ऊँचाई की तिभाग (एक-तिहाई भाग) कम ऊँचाई होती है ॥ ६४ ॥

The height of perfected soul remains two-third of his height during his last existence (from which he attains liberation). (64)

एगत्तेण साईया, अपज्जवसिया वि य।

पुहुत्तेण अणाईया, अपज्जवसिया वि य ॥ ६५ ॥

एक सिद्ध जीव की अपेक्षा से सिद्ध सादि (आदि सहित) और अनन्त भी हैं और पृथक्-पृथक् अनेक जीवों की अपेक्षा से सिद्ध अनादि-अनन्त भी हैं ॥ ६५ ॥

Considered individually, perfected souls have a beginning and no end. Considered collectively (as a class) they are without a beginning or an end. (65)

अरूविणो जीवघणा, नाणदंसणसन्निया।

अउलं सुहं संपत्ता, उवमा जस्स नत्थि उ ॥ ६६ ॥

वे सिद्ध जीव अरूपी हैं, घनरूपी सघन हैं, ज्ञानदर्शन संज्ञा से सम्पन्न उपयोगमय हैं, ऐसा अतुल सुख उन्हें प्राप्त है, जिसकी कोई उपमा नहीं है ॥ ६६ ॥

Those perfected souls are formless, exist in coalesced state and are endowed with the attribute of ever active pulsating perception and knowledge. They possess incomparable limitless bliss. (66)

लोएगदेसे ते सव्वे, नाणदंसणसन्निया।

संसारपारनिच्छिन्ना, सिद्धिं वरगइं गया ॥ ६७ ॥

वे सभी सिद्ध जीव-ज्ञान-दर्शन से संपन्न (युक्त), संसार से पार पहुँचे हुए, परम गति-सिद्धि को प्राप्त लोक के एक देश (भाग) में अवस्थित हैं ॥ ६७ ॥

All those perfected souls, endowed with knowledge and perception, having reached beyond the world, having attained the ultimate state of perfection, dwell in one (specific) section of universe (*Lok*). (67)



### संसारस्थ (संसारी) जीवों की प्ररूपणा

संसारस्था उ जे जीवा, दुविहा ते वियाहिया।

तसा य थावरा चेव, थावरा तिविहा तहिं ॥ ६८ ॥

संसारस्थ (संसार में अवस्थित-संसारी) जीवों के दो भेद कहे गये हैं—(१) त्रस, और (२) स्थावर। इनमें से स्थावर जीवों के तीन भेद (प्रकार) हैं ॥ ६८ ॥

### Worldly beings

The mundane souls (living beings existing in the world) are said to be of two kinds—(1) mobile, and (2) immobile. Of these, the immobile beings are of three types. (68)

### स्थावर जीव-प्ररूपणा

पुढवी आउजीवा य, तहेव य वणस्सई।

इच्चेए थावरा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥ ६९ ॥

स्थावर जीव तीन प्रकार के हैं—(१) पृथ्वीकायिक, (२) जलकायिक, (३) वनस्पतिकायिक। अब इनके भेद (प्रकार) मुझसे सुनो ॥ ६९ ॥

### Immobile beings

Immobile beings are of three kinds—(1) earth-bodied, (2) water-bodied and (3) plant-bodied: Now hear from me the sub-divisions of these. (69)

### पृथ्वीकाय की प्ररूपणा

दुविहा पुढवीजीवा उ, सुहमा बायरा तहा।

पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ७० ॥

पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म, और (२) बादर। इन दोनों प्रकार के दो-दो भेद हैं—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त ॥ ७० ॥

### Earth-bodied beings

Earth-bodied beings are of two kinds—(1) minute, and (2) gross. These two are also of two types each—(1) fully developed (*paryapt*), and (2) under-developed (*aparyapt*). (70)

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया।

सण्हा खरा य बोद्धव्वा, सण्हा सत्तविहा तहिं ॥ ७१ ॥

बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) श्लक्ष्ण-कोमल, और (२) खर-कठिन। इन दोनों में भी श्लक्ष्ण (मृदु अथवा कोमल) के सात भेद जानने चाहिये ॥ ७१ ॥

Fully developed gross earth-bodied living beings are said to be of two kinds—(1) smooth (soft), and (2) rough (hard). Among these soft are of seven types. (71)

किण्हा नीला य रुहिरा य, हालिहा सुक्किला तहा।

पण्डु-पणमट्टिया, खरा छत्तीसईविहा ॥ ७२ ॥



(मृदु पृथ्वी मिट्टी) के सात भेद—(१) काली, (२) नीली, (३) लाल, (४) पीली, (५) श्वेत-शुक्ल-सफेद, (६) पाण्डु-भूरी, और (७) पनक (मिट्टी)—अत्यन्त सूक्ष्म रज तथा खर-कठिन पृथ्वी (मिट्टी) छत्तीस प्रकार की है ॥ ७२ ॥

The seven types (of soft earth-bodied or clay)—(1) black, (2) blue, (3) red, (4) yellow, (5) white, (6) pale, and (7) fine sand. The hard one is of thirty-six types. (72)

पुढवी य सक्करा बालुया य, उवले सिला य लोणूसे ।

अय-तम्ब-तउय-सीसग, रूप्य-सुवण्णे य वड्रे य ॥ ७३ ॥

शुद्ध पृथ्वी शर्करा-कंकड़ वाली-कँकरीली बालू-रेत, उपल-पत्थर-पाषाण, शिला-चट्टान, लोणु-लवण, ऊस-क्षार (नौनी मिट्टी), अय-लोहा, ताँबा, रांगा, सीसा, चाँदी-रजत, स्वर्ण और वज्र-हीरा— ॥ ७३ ॥

Pure earth, gravel, sand, stones, rocks, rock-salt, iron, tin, copper, lead, silver, gold and diamond,— (73)

हरियाले हिंगुलुए, मणोसिला सासगंजण-पवाले ।

अब्भपडलऽब्भवालुय, बायरकाए मणिविहाणा ॥ ७४ ॥

हरिताल हिंगुल, मेनसिल, सासक (अथवा सस्यक-एक धातु), अंजन प्रवाल-मूँगा, अभ्रपटल-अभ्रक अभ्रबालुका-अभ्रक की परतों में चिपकी-मिली हुई बालू तथा विविध प्रकार की मणियाँ भी बादर पृथ्वीकाय में ही परिगणित होती हैं— ॥ ७४ ॥

Orpiment, vermillion, *mainsil* (a metal; realgar), *saasaka* (or *sasyaka*; a metal), antimony, coral, mica and sand sticking to mica-slivers; also included in gross earth-bodied beings are various types of gem stones; — (74)

गोमेज्जए य रुयगे, अंके फलिहे य लोहियक्के य ।

मरगय-मसारगल्ले, भुयमोयग-इन्दनीले य ॥ ७५ ॥

यथा-गोमेदक, रुचक, अंक (रत्न), स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजमोचक, इन्द्रनील— ॥ ७५ ॥

Such as—*Gomedak* (Cinnamon; Hessonite), *Ruchak* (a gem), *Anka* (a gem), *Sphatik* (rock crystal), *Lohitaaksa* (ruby), *Marakat* (emerald), *Masaaragalla* (carnelian), *Bhujamochaka*, *Indraneel* (sapphire)— (75)

चन्दण-गेरुय-हंसगम्भ, पुलए सोगन्धिए य बोद्धव्वे ।

चन्दप्पह-वेरुलिए, जलकन्ते सूरकन्ते य ॥ ७६ ॥

चन्दन, गेरुका या हंसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रप्रभ, वैडूर्य, जलकान्त और सूर्यकान्त ॥ ७६ ॥

*Chandana* (a gem), *Geruk* (a gem), *Pulaak* (black stone), *Saugandhik* (ruby), *Chandraprabh* (moonstone), *Vaidurya* (Chrysoberyl catseye), *Jalakanta* (water-agate) and *Suryakanta* (Spinel). (76)

एए खरपुढवीए, भेया छत्तीसमाहिया ।

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ॥ ७७ ॥



ये छत्तीस भेद (प्रकार) खर (कठोर) पृथ्वीकाय के कहे गये हैं। उन दोनों (पृथ्वीकाय के भेदों) में सूक्ष्म पृथ्वीकाय अनानात्व (अनेक प्रकार के भेदों से रहित) एक ही प्रकार की कही गयी है ॥ ७७ ॥

These are said to be the thirty-six kinds of hard earth-bodied beings. Of the said two kinds (of earth-bodied beings) the minute earth-bodied beings are said to be of one kind only. (77)

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।

इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ ७८ ॥

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीव समस्त लोक में व्याप्त हैं किन्तु बादर पृथ्वीकायिक जीव लोक के एक देश में ही हैं। अब यहाँ से आगे मैं इन (पृथ्वीकायिक जीवों) के चार प्रकार के काल विभाग का वर्णन करूँगा ॥ ७८ ॥

Minute earth-bodied species are spread all over the universe (*Lok*) while gross ones are only in one part of it. Now I will describe their (gross earth-bodied beings) fourfold divisions with regard to time. (78)

संतंइं पप्पण्णाईया, अपज्जवसिया वि य।

ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ ७९ ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा पृथ्वीकायिक जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त भी हैं ॥ ७९ ॥

In context of continuity these earth-bodied beings are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as an end. (79)

बावीससहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।

आउठिईं पुढवीणं, तन्तोमुहुत्तं जहनिया ॥ ८० ॥

पृथ्वीकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति बाईस हजार वर्ष है और जघन्य आयु स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥ ८० ॥

The maximum life-span of earth-bodied beings is twenty-two thousand years and minimum is of one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes.) (80)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहनयं।

कायठिईं पुढवीणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥ ८१ ॥

पृथ्वीकायिक जीव, यदि पृथ्वीकाय को न छोड़कर उसी में जन्म-मरण करते रहें तो इस अपेक्षा से उनकी उत्कृष्ट कायस्थिति असंख्यात काल की होती है तथा जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥ ८१ ॥

If earth-bodied beings continue to die and get reborn in the same state without leaving their body-type, then the maximum life-span for the body-type is immeasurable time and minimum is of one Antarmuhurt. (81)



अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।  
विजदमि सए काए, पुढवीजीवाण अन्तरं ॥ ८२ ॥

अपने काय (पृथ्वीकाय) को एक बार छोड़कर (दूसरे अन्य कार्यों में उत्पन्न होने-जन्म-मरण करने के पश्चात्) पुनः पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने का अन्तर (अन्य कार्यों में बिताया हुआ काल-मध्यवर्ती अन्तराल) उत्कृष्ट अनन्त काल और जघन्य अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ ८२ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (earth-body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body types) and again taking rebirth in the same body-type (earth-body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (82)

एसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।  
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ८३ ॥

ये पृथ्वीकायिक जीव वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा संस्थान के आदेश (अपेक्षा) से भी हजारों प्रकार के होते हैं ॥ ८३ ॥

These earth-bodied beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (83)

#### अपकाय की प्ररूपणा

दुविहा आउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा ।  
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ८४ ॥

अपकायिक जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म, और (२) बादर। पुनः इन दोनों प्रकारों के दो-दो भेद और होते हैं—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त ॥ ८४ ॥

#### Water-bodied beings

Water-bodied beings are of two kinds—(1) minute, and (2) gross. These two are also of two types each—(1) fully developed (*paryaapt*), and (2) under-developed (*aparyaapt*). (84)

बायरा जे उ पज्जत्ता, पंचहा ते पकित्तिया ।  
सुद्धोदए य उस्से, हरतणू महिया हिमे ॥ ८५ ॥

जो पर्याप्त बादर अपकायिक जीव हैं, वे पाँच प्रकार के बताये गये हैं, यथा—(१) शुद्धोदक-शुद्ध जल, (२) उस्स-ओस, (३) हरतणु-गीली, (आर्द्र) भूमि से उत्पन्न वह पानी जो प्राप्तःकाल तृण के अग्र भाग पर बिन्दु के रूप में दृष्टिगोचर होता है, (४) महिका-कुहासा, कोहरा, और (५) हिम-बर्फ ॥ ८५ ॥

Fully developed gross water-bodied living beings are said to be of five types - (1) pure water, (2) dew, (3) exudations, (4) fog, and (5) ice. (85)

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ वियाहिया ।  
सुहुमा सब्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा ॥ ८६ ॥

नानात्व (अनेकता) से रहित सूक्ष्म अपकायिक जीव एक ही प्रकार के हैं और वे समस्त लोक में व्याप्त (भरे हुए) हैं; लेकिन बादर अपकायिक जीव लोक के एक देश (विभाग) में ही हैं ॥ ८६ ॥





Without having any variety, the minute water-bodied beings are said to be of one kind only and are spread all over the universe (*Lok*); however, the gross ones are only in one part of it. Now I will describe their (gross water-bodied beings) fourfold divisions with regard to time. (86)

सन्तइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।

ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ ८७ ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से अप्कायिक जीव अनादि-अनन्त है। और स्थिति की अपेक्षा वे सादि-सान्त भी हैं ॥ ८७ ॥

In context of continuity these water-bodied beings are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (87)

सत्तेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।

आउट्ठई आऊणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ ८८ ॥

उनकी (अप्कायिक जीवों की) उत्कृष्ट आयुस्थिति सात हजार वर्ष की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की होती है ॥ ८८ ॥

The maximum life-span of water-bodied beings is seven thousand years and minimum is of one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes.) (88)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया।

कायट्ठिई आऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥ ८९ ॥

अप्कायिक जीव, यदि अप्काय को न छोड़कर लगातार उसी में जन्म-मरण करते हैं। वह उनकी कायस्थिति कहलाती है। उनकी कायस्थिति उत्कृष्ट असंख्यात काल की होती है तथा जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की होती है ॥ ८९ ॥

If water-bodied beings continue to die and get reborn in the same state without leaving their body-type, then the maximum life-span for the body-type is immeasurable time and minimum is of one Antarmuhurt. (89)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।

विजडमि सए काए, आऊजीवाण अन्तरं ॥ ९० ॥

अपनी काय (अप्काय) को छोड़कर (अप्काय से निकलकर अन्य कार्यों में जन्म-मरण करने के बाद) पुनः अप्काय में उत्पन्न होने का अन्तर (अन्य कार्यों में बिताया गया समय-मध्यवर्ती अन्तराल) उत्कृष्ट अनन्तकाल का और जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का है ॥ ९० ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (water-body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body types) and again taking rebirth in the same body-type (water-body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (90)



एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रस-फासओ।  
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ९१ ॥

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश-अपेक्षा से भी अप्कायिक जीवों के हजारों प्रकार कहे गये हैं ॥ ९१ ॥

These water-bodied beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (91)

### वनस्पतिकाय की प्ररूपणा

दुविहा वणस्सईजीवा, सुहुमा बायरा तथा।  
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ९२ ॥

दो प्रकार के वनस्पतिकायिक जीव हैं—(१) सूक्ष्म, और (२) बादर। पुनः इन दोनों के दो-दो भेद और हैं—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त ॥ ९२ ॥

### Plant-bodied beings

Plant-bodied beings are of two types—(1) minute, and (2) gross. These two are also of two types each—(1) fully developed (*paryaapt*), and (2) under-developed (*aparyaapt*). (92)

बायरा जे उ पज्जत्ता, दुविहा ते वियाहिया।  
साहारणसरीरा य, पत्तेगा य तहेव य ॥ ९३ ॥

पर्याप्त बादर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) साधारण शरीरी (अनन्त जीवों का निवास स्थान-पिंड), और (२) प्रत्येक शरीरी (एक जीव का निवास) ॥ ९३ ॥

Fully developed plant-bodied beings are said to be of two kinds—(1) common-bodied (aggregate of infinite souls sheltered in one plant-body; *sadharan shariri*), and (2) individual-bodied (each soul having its own body; *pratyeka shariri*). (93)

पत्तेगसरीरा उ, णेगहा ते पक्कित्तिया।  
रुक्खा गुच्छा य गुम्मा य, लया वल्ली तथा जहा— ॥ ९४ ॥

प्रत्येक शरीरी वनस्पतिकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा—रुक्ख-वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, बल्लरी-बेल (ककड़ी आदि की बेल) तथा तृण आदि— ॥ ९४ ॥

Individual-bodied plant-bodied beings are said to be of several types—trees, shrubby plants, shrubs, creepers, tendrils, grass etc.— (94)

लयावलया पव्वगा कुहुणा, जलरुहा ओसही-तिणा।  
हरियकाया य बोद्धव्वा, पत्तेया इति आहिया ॥ ९५ ॥

लतावलय, पर्वज-ईख आदि, कुहन-भूमिफोड़, जलरुहा-जल में उत्पन्न होने वाले, औषधि (गेहूँ, चना आदि धान्य), तृणा-शालि आदि धान्य, हरितकाय आदि ये सभी प्रत्येक शरीरी (वनस्पतिकायिक) हैं ॥ ९५ ॥



Palms, plants of knotty stems or stalks like sugarcane, mushrooms, water-plants, seasonal plants (wheat, gram, rice etc.), and green vegetables etc.; all these are individual-bodied (plant-bodied beings). (95)

साहारणसरीरा उ, णेगहा ते पक्कित्तिया।  
आलुए मूलए चेव, सिंगबेरे तहेव य॥ ९६ ॥

साधारण शरीरी (वनस्पतिकायिक) भी अनेक प्रकार के कहे गये हैं, यथा—आलुए—आलूक (अथवा आलू), मूलए—मूलक (अथवा मूली), सिंगबेरे—अदरक— ॥ ९६ ॥

Common-bodied (plant-bodied beings) are also of several types—potato, radish, ginger,— (96)

हिरिली सिरिली सिस्सिरिली, जावाई केय-कन्दली।  
पलंडू-लसणकन्दे य, कन्दली य कुडुंबए॥ ९७ ॥

हिरली-हिरलीकन्द, सिरिली-सिरिलीकन्द, सिस्सिरिली-सिस्सिरिलीकन्द, जावाई-जावाईकन्द, केयकन्दली-केदकन्दलीकन्द, पलण्डु-प्याज, लसणकन्द-लहसुन, कन्दली-कन्दली, कुडुंबए-कुस्तुम्बक— ॥ ९७ ॥

*Hirli (Hiralikanda), Sirili (Sirilikanda), Sissirili (Sissirilikanda), Jaavai (Jaavaikanda), Keyakanduli (Kedakandalikanda), onion (Palandu), garlic (Lasanakanda), plantain tree (Kandali), Kudumba (Kustumbaka)— (97)*

लोहि णीहू व थिहू य, कुहगा य तहेव य।  
कण्हे य वज्जकन्दे य, कन्दे सूरणए तहा॥ ९८ ॥

लोहि-लोही, लोहिणी, लीहू-स्निहु, कुहक, कृष्णकन्द, वज्रकन्द और सूरणकन्द— ॥ ९८ ॥

*Lohi, Lohini, Lihu (Snihu), Kuhak, Krishnakanda, Vajrakanda and Surankanda— (98)*

अस्सकण्णी य बोद्धव्वा, सीहकण्णी तहेव य।  
मुसुण्डी य हलिहा य, ऽणेगहा एवमायओ॥ ९९ ॥

अश्वकर्णी, सिंहकर्णी, मुसुंडी, हरिद्रा-हल्दी इत्यादि अनेक प्रकार के साधारण शरीरी वनस्पतिकाय जाननी चाहिए ॥ ९९ ॥

*Ashvakarni, Simhakarni, Musundi, turmeric etc., thus know various types of common-bodied (plant-bodied) beings. (99)*

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा तत्थ विधाहिया।  
सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा॥ १०० ॥

नानात्व (अनेकता) से रहित एक ही प्रकार के सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीव कहे गये हैं। वे समस्त लोक में व्याप्त हैं लेकिन बादर वनस्पतिकायिक जीव लोक के एक देश (अंश अथवा भाग) में ही हैं ॥ १०० ॥

Without having any variety, the minute plant-bodied beings are said to be of one kind only and are spread all over the universe (*Lok*); however, the gross ones are only in one part of it. (100)



संततं पप्यङ्गाईया, अपज्जवसिया वि य।  
ठिईं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥ १०१॥

संतति प्रवाह की अपेक्षा से वनस्पतिकायिक जीव अनादि-अनन्त हैं किन्तु स्थिति की अपेक्षा से वे सादि-सान्त भी हैं ॥ १०१ ॥

In context of continuity these plant-bodied beings are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (101)

दस चेव सहस्साईं, वासाणुक्कोसिया भवे।  
वणप्फईण आउं तु, अन्तोमुहुत्तं जहन्नगं॥ १०२॥

इन (बादर वनस्पतिकायिक जीवों) की उत्कृष्ट आयुस्थिति दस हजार वर्ष की है और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ॥ १०२ ॥

The maximum life-span of (gross) plant-bodied beings is ten thousand years and minimum is of one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (102)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।  
कायठिईं पणगाणं, तं कायं तु अमुंचओ॥ १०३॥

वे वनस्पतिकाय के जीव यदि उसी काय में जन्म-मरण करते हैं तो उनकी कायस्थिति उत्कृष्टतः अनन्तकाल की और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥ १०३ ॥

If plant-bodied beings continue to die and get reborn in the same state without leaving their body-type, then the maximum life-span for the body-type is infinite time and minimum is of one Antarmuhurt. (103)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।  
विजड्ढमि सए काए, पणगजीवाण अन्तरं॥ १०४॥

अपनी यानी वनस्पतिकाय से निकलकर अन्य कार्यों में जन्म-मरण करके पुनः वनस्पतिकाय में उत्पन्न होने (अन्य कार्यों में बिताया हुआ काल-अन्तराल) का अन्तर उत्कृष्टतः अनन्तकाल का है और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त काल का है ॥ १०४ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (plant-body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body types) and again taking rebirth in the same body-type (plant-body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (104)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ।  
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्सओ॥ १०५॥

इन वनस्पतिकायिक जीवों के-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के आदेश-अपेक्षा से हजारों प्रकार बताये गये हैं ॥ १०५ ॥

These plant-bodied beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (105)



इच्चेए थावरा तिविहा, समासेण वियाहिया।  
इत्तो उ तसे तिविहे, वुच्छामि अणुपुव्वसो ॥ १०६ ॥

इस तरह तीन प्रकार के स्थावर जीवों का संक्षेप में वर्णन किया गया। इससे आगे तीन प्रकार के त्रस जीवों का आनुपूर्वी से क्रमपूर्वक कथन करूँगा ॥ १०६ ॥

Thus three kinds of immobile beings have been described. Now I will describe three kinds of movable species one by one in due order. (106)

तीन त्रसकायों का नामोल्लेख

तेऊ वाऊ य बोद्धव्वा, उराला य तसा तहा।  
इच्चेए तसा तिविहा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥ १०७ ॥

तेजस्काय, वायुकाय तथा उदार (एकेन्द्रिय त्रसों की अपेक्षा द्वीन्द्रिय आदि उदार-स्थूल) त्रस-इस तरह ये तीन प्रकार के त्रस हैं, उनके भेदों को मुझसे सुनो ॥ १०७ ॥

**Names of three mobile-bodied beings**

Mobile-bodied beings are of three kinds—(1) fire-bodied, (2) air-bodied, and (3) gross (gross as compared to one-sensed mobile being) mobile beings. Now hear from me the sub-divisions of all these three. (107)

तेजस् त्रसकाय की प्ररूपणा

दुविहा तेउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।  
पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ १०८ ॥

तेजस्कायिक जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म, और (२) बादर। पुनः इन दोनों के दो-दो भेद हैं—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त ॥ १०८ ॥

**Fire-bodied mobile beings**

Fire-bodied beings are of two types—(1) minute, and (2) gross. These two are also of two types each – (1) fully developed (*paryapt*), and (2) under-developed (*aparyapt*). (108)

बायरा जे उ पज्जत्ता, णेगहा ते वियाहिया।  
इंगाले मुम्मरे अग्गी, अच्चि जाला तहेव य ॥ १०९ ॥

जो बादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीव हैं, उनके अनेक प्रकार बताये गये हैं; यथा-अंगार-निर्धूम अग्निकण, मुर्मुर-भस्ममिश्रित अथवा भस्म से आवरित अग्निकण, अग्नि-आग, अर्चि-मूल सहित अग्निशिक्षा अथवा दीपशिखा या प्रकाशकिरण, ज्वाला-प्रदीप्त अग्नि- ॥ १०९ ॥

Fully developed fire-bodied beings are said to be of many kinds – embers (*angaar*), ash-covered embers (*murmur*), fire, wick-top flame or ray of light (*archi*), blaze, – (109)

उक्का विज्जू य बोद्धव्वा, णेगहा एवमायओ।  
एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया ॥ ११० ॥



उल्का-तारों के समान गिरने वाली आकाशीय अग्नि, यथा—उल्कापात, विद्युत-मेघों के संघर्ष से उत्पन्न होने वाली आकाशीय बिजली-इत्यादि तेजस्कायिक जीव अनेक प्रकार के जानने चाहिए। नानात्व (अनेकता) से रहित सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव एक ही प्रकार के कहे गये हैं ॥ ११० ॥

Meteoros, lightning and the like are included in the numerous kinds of fire-bodied beings. Without having any variety, the minute fire-bodied beings are said to be of one kind only. (110)

सुहृमा सव्वलोगम्मि, लोग देसे य बायरा।

इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ १११ ॥

सूक्ष्म तेजस्कायिक जीव समस्त लोक में व्याप्त (भरे हुए) हैं किन्तु बादर तेजस्कायिक जीव लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं। यहाँ से आगे अब मैं उन (तेजस्कायिक जीवों के) चार प्रकार के कालविभाग को कहूँगा ॥ १११ ॥

The minute fire-bodied beings are spread all over the universe (Lok); however, the gross ones are only in one part of it. Now I will describe the fourfold division of fire-bodied beings with regard to time. (111)

संतइं पप्पण्णाईया, अपज्जवसिया वि य।

ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ ११२ ॥

वे (बादर तेजस्कायिक जीव) संतति-प्रवाह की अपेक्षा अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सांत भी हैं ॥ ११२ ॥

In context of continuity these (gross fire-bodied beings) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (112)

तिण्णेव अहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।

आउट्ठिइं तेऊणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ ११३ ॥

तेजस्कायिक जीवों की आयुस्थिति उत्कृष्टतः तीन अहोरात्र-दिन-रात्रि-७२ घण्टे की हैं और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण है ॥ ११३ ॥

The maximum life-span of (gross) fire-bodied beings is three days and nights (72 hours) and minimum is of one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes.) (113)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नया।

कायट्ठिइं तेऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥ ११४ ॥

अपनी काय को न छोड़ते हुए-उसी में जन्म-मरण करते हुए तेजस्कायिक जीवों की कायस्थिति उत्कृष्टतः असंख्यात काल की और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त काल की होती है ॥ ११४ ॥

If fire-bodied beings continue to die and get reborn in the same state without leaving their body-type, then the maximum life-span for the body-type is uncountable time and minimum is of one Antarmuhurt. (114)



अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहनयं।

विजदंमि सए काए, तेउजीवाण अन्तरं ॥ ११५ ॥

अपनी काय (तेजस्काय) से निकलने-छोड़ने (से लेकर अन्य काय में जाकर जन्म-मरण करते हुए बिताया हुआ काल-अन्तराल और पुनः तेजस्काय में उत्पन्न होने तक का समय) तेजस्कायिक जीवों का अन्तर उत्कृष्टतः अनन्तकाल का और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त काल का होता है ॥ ११५ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (fire-body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body types) and again taking rebirth in the same body-type (fire-body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (115)

एएसिं वण्णओ चव, गन्धओ रसफासओ।

संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ ११६ ॥

वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श के आदेश-अपेक्षा से इन तेजस्कायिक जीवों के हजारों भेद बताये गये हैं ॥ ११६ ॥

These fire-bodied beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (116)

### वायु त्रसकाय की प्ररूपणा

दुविहा वाउजीवा उ, सुहुमा बायरा तहा।

पज्जत्तमपज्जत्ता, एवमेए दुहा पुणो ॥ ११७ ॥

वायुकायिक जीवों के दो प्रकार कहे गये हैं—(१) सूक्ष्म, और (२) बादर। इन दोनों प्रकारों के पुनः दो-दो भेद होते हैं—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त ॥ ११७ ॥

### Air-bodied mobile beings

Air-bodied beings are of two types—(1) minute, and (2) gross. These two are also of two types each—(1) fully developed (*paryaapt*), and (2) under-developed (*aparyaapt*). (117)

बायरा जे उ पज्जता, पंचहा ते पक्कित्तिया।

उक्कलिया-मण्डलिया, घण-गुंजा सुद्धवाया य ॥ ११८ ॥

जो पर्याप्त बादर वायुकायिक जीव हैं, वे पाँच प्रकार के कहे गये हैं—(१) उत्कलिक वात, (२) मण्डलिका वात, (३) घनवात, (४) गुंजावात, और (५) शुद्धवात ॥ ११८ ॥

Fully developed air-bodied beings are said to be of five kinds—(1) squalls or intermittent winds (*utkalika vaat*), (2) whirl winds (*mandulika vaat*), (3) heavy winds (*ghana vaat*), (4) high winds or buzzing wind (*gunja vaat*), and (5) low wind or pure air (*shuddha vaat*). (118)

संवट्टगवाते य, ऽण्णेगविहा एवमायओ।

एगविहमणाणत्ता, सुहुमा ते वियाहिया ॥ ११९ ॥



संवर्तक वात आदि और अनेक प्रकार के बादर पर्याप्त वायुकायिक जीव हैं। नानात्व (अनेक प्रकार के भेदों) से रहित सूक्ष्म वायुकायिक जीवों का एक ही भेद है ॥ ११९ ॥

There are also tornado or hurricane (*samvartak vaat*) and many other kinds of gross air-bodied living beings. Without having any variety, the minute air-bodied beings are said to be of one kind only. (119)

सुहुमा सव्वलोगम्मि, लोगदेसे य बायरा।  
इत्तो कालविभागं तु, तेसिं वुच्छं चउव्विहं ॥ १२० ॥

सूक्ष्म वायुकायिक जीव सर्वलोक में व्याप्त हैं किन्तु बादर वायुकायिक जीव लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं। यहाँ से आगे में वायुकायिक जीवों के चार प्रकार का कालविभाग कहूँगा ॥ १२० ॥

The minute air-bodied beings are spread all over the universe (*Lok*); however, the gross ones are only in one part of it. Now I will describe the fourfold division of air-bodied beings with regard to time. (120)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।  
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १२१ ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा वायुकायिक जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा वे सादि-सान्त भी हैं ॥ १२१ ॥

In context of continuity these (gross air-bodied beings) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (121)

तिण्णेव सहस्साइं, वासाणुक्कोसिया भवे।  
आउट्ठिइं वाऊणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १२२ ॥

उनकी (वायुकायिक जीवों की) उत्कृष्ट आयुस्थिति तीन हजार वर्ष की है और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है ॥ १२२ ॥

The maximum life-span of (gross) air-bodied beings is three thousand years and minimum is of one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (122)

असंखकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।  
कायट्ठिइं वाऊणं, तं कायं तु अमुंचओ ॥ १२३ ॥

उस वायुकाय को न छोड़कर उसी में जन्म-मरण करते रहने पर वायुकायिक जीवों की कायस्थिति उत्कृष्टतः असंख्यात काल की और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥ १२३ ॥

If air-bodied beings continue to die and get reborn in the same state without leaving their body-type, then the maximum life-span for the body-type is uncountable time and minimum is of one Antarmuhurt. (123)





अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।  
विजर्दमि सए काए, वाउजीवाण अन्तरं ॥ १२४ ॥

स्वकाय छोड़कर-निकलने के बाद (अन्य कार्यों में परिभ्रमण के बाद पुनः वायुकाय में उत्पन्न होने तक का अन्तराल) अन्तर उत्कृष्टतः अनन्तकाल तथा जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त होता है ॥ १२४ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (air-body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body types) and again taking rebirth in the same body-type (air-body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (124)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।  
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १२५ ॥

इन वायुकायिक जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार होते हैं ॥ १२५ ॥

These air-bodied beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (125)

### उदार त्रसकाय की प्ररूपणा

ओराला तसा जे उ, चउद्धा ते पकित्तिया ।  
बेइन्द्रिय-तेइन्द्रिय, चउरो-पंचिन्द्रिया चेव ॥ १२६ ॥

जो उदार (उराला) त्रस हैं, वे चार प्रकार के कहे गये हैं, यथा—(१) द्वीन्द्रिय, (२) त्रीन्द्रिय, (३) चतुरिन्द्रिय और (४) पंचेन्द्रिय ॥ १२६ ॥

### Gross mobile beings

The gross mobile-bodied beings (mobile beings) are said to be of four kinds—(1) two-sensed, (2) three-sensed, (3) four-sensed, and (4) five-sensed beings. (126)

### द्वीन्द्रिय त्रस जीवों की प्ररूपणा

बेइन्द्रिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया ।  
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥ १२७ ॥

जो द्वीन्द्रिय जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त। उन द्वीन्द्रिय जीवों के भेदों को मुझसे सुनो ॥ १२७ ॥

### Two-sensed mobile beings

Two-sensed beings are of two types—(1) fully developed (*pariyaapt*), and (2) under-developed (*apariyaapt*). Hear from me the subdivisions of these two-sensed beings. (127)

किमिणो सोमंगला चेव, अलसा माइवाहया ।  
वासीमुहा य सिप्पीया, संखा संखणगा तहा ॥ १२८ ॥



किमिणो-कृमि, सोमंगला-सौमंगल, अलसा-अलसिया, माइवाहिया-मातृवाहक, वासीमुहा-वासीमुख, सिप्पीया-सीप, शंख, संखणगा-शंखनक— ॥ १२८ ॥

Worms (*krimi*), *saumangala*, small snake or earthworm (*alasia*), *matrivahaka*, *vasimukha*, shells, conch-shell, *shankhanak*, (128)

पल्लोयाणुल्लया चैव, तहेव य वराडगा।

जलूगा जालगा चैव, चन्दणा य तहेव य ॥ १२९ ॥

पल्लोय-पल्लक, अणुल्लया-अणुल्लक (छोटे पल्लक), वराडगा-वराटक (कौड़ी), जलूगा-जलौका (जोंक), जालगा-जालक, चन्दणा-चन्दनक (अक्ष) (चन्दनिया) इत्यादि ॥ १२९ ॥

*Pallak, anullak, cowri, leech, jaalak, chandanak (aksha) etc.* (129)

इइ बेइन्दिया एए, पेगहा एवमायओ।

लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥ १३० ॥

इस तरह अनेक प्रकार के ये द्वीन्द्रिय जीव हैं, वे लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं, समस्त लोक में नहीं हैं, ऐसा कहा गया है ॥ १३० ॥

Thus there are several types of two-sensed mobile beings and it is said that they exist only in a part of the universe (*Lok*) not in the whole. (130)

संतइं पप्पण्णार्इया, अपज्जवसिया वि य।

ठिइं पडुच्च सार्इया, सपज्जवसिया वि य ॥ १३१ ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से द्वीन्द्रिय त्रस जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥ १३१ ॥

In context of continuity these (two-sensed mobile beings) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (131)

वासाइं बारसे व उ, उक्कोसेण वियाहिया।

बेइन्दियआउठिई, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १३२ ॥

द्वीन्द्रिय जीवों की आयुस्थिति उत्कृष्टतः बारह वर्ष की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ॥ १३२ ॥

The maximum life-span of two-sensed beings is twelve years and minimum is of one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (132)

संखिज्जकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।

बेइन्दियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥ १३३ ॥

द्वीन्द्रियकाय को न छोड़कर उसी में जन्म-मरण करते रहने की उन (द्वीन्द्रिय जीवों) की कायस्थिति उत्कृष्टतः असंख्यात काल की है और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥ १३३ ॥

If two-sensed beings continue to die and get reborn in the same state without leaving their body-type, then the maximum life-span for the body-type is uncountable time and minimum is of one Antarmuhurt. (133)



अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।  
बेइन्द्रियजीवाणं, अन्तरेयं विद्याहियं ॥ १३४ ॥

द्वीन्द्रिय जीवों का अन्तर (द्वीन्द्रिय से निकलकर पुनः द्वीन्द्रिय में उत्पन्न होने के मध्य का समय) उत्कृष्टतः अनन्तकाल का और जघन्यतः अन्तर्मुहुत्तं का है ॥ १३४ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (two-sensed body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body-types) and again taking rebirth in the same body-type (two-sensed body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (134)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ।  
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्सओ ॥ १३५ ॥

इन द्वीन्द्रिय जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥ १३५ ॥

These two-sensed beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (135)

### त्रीन्द्रिय त्रसकाय की प्ररूपणा

तेइन्द्रिया उ जे जीवा, दुविहा ते पक्कित्तिया।  
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥ १३६ ॥

जो त्रीन्द्रिय जीव हैं वे दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त। इन जीवों के भेद मुझसे सुनो ॥ १३६ ॥

### Three-sensed mobile beings

Three-sensed beings are of two types—(1) fully developed (*paryaapt*), and (2) under-developed (*aparyaapt*). Hear from me the subdivisions of these three-sensed beings. (136)

कुन्थु-पिपीलि-उड्डंसा, उक्कलुहेहिया तथा।  
तणहारा-कट्टहारा, मालुगा पत्तहारगा ॥ १३७ ॥

कुन्थु-कुन्थुआ, पिपीलि-पिपीलिका (चींटी), उड्डंसा-उड्डंस (खटमल), उक्कल (मकड़ी), उद्वेहिया-उद्वेई (दीमक), तणहारा-तृणहारक, कट्टहारा-काष्ठहारक (घुन), मालुगा-मालुका, पत्तहारगा-पत्रहारक— ॥ १३७ ॥

*Kunthu, Pipilika* (ant), *Uddamsa* (bed-bug), *Ukkal* (spider), *Udai* (white ants), *Trinahaaraka* (straw-worm), woodlouse, *maaluka, patraharak*— (137)

कप्पासऽट्टिमिंजा य, तिंदुगा तउसमिंजगा।  
सदावरी य गुम्पी य, बोद्धव्वा इन्दकाइया ॥ १३८ ॥

कपासऽट्टिमिंजा-कपास और उसकी अस्थि कपासिये-करकड़ों में उत्पन्न होने वाले जीव, तिंदुगा-तिन्दुक, तउसमिंजगा-तुपुषमिंजक, सदावरी-सतावरी, गुम्पी-गुल्मी-(कानखजूरा), इन्द्रकायिक-षट्पदी (जूँ) ये सब-त्रीन्द्रिय त्रसकायिक जीव जानने चाहिये ॥ १३८ ॥



*Kapasatthiminja* (Duga shining like lead, which originates in the kernel of cotton seed), *tinduk*, *tripushaminjak*, *sataavari*, *gulmi* and louse, all these are three-sensed mobile beings. (138)

इन्द्रगोवगमाईया, षेगहा एवमायओ।  
लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ॥ १३९ ॥

इन्द्रगोवय-इन्द्रगोयक (वीरबहूटी) इत्यादि त्रीन्द्रिय जीवों के अनेक प्रकार कहे गये हैं। ये सभी लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं, समस्त लोक में नहीं हैं ॥ १३९ ॥

Thus there are several types of three-sensed mobile beings including Cochineal and it is said that they exist only in a section of the universe (*Lok*) and not in the whole. (139)

संतइं षप्यऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।  
ठिइं षडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १४० ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से ये त्रीन्द्रिय जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥ १४० ॥

In context of continuity these (three-sensed mobile beings) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (140)

एगूणपण्णऽहोरत्ता, उक्कोसेण वियाहिया।  
तेइन्दियआउठिई, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १४१ ॥

त्रीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति उनचास (४९) दिन-रात्रि की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहुत्त की बताई गई है ॥ १४१ ॥

The maximum life-span of three-sensed beings is forty-nine days and nights and minimum is of one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (141)

संखिज्जकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।  
तेइन्दियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥ १४२ ॥

उस त्रीन्द्रिय की (काय को न छोड़कर बार-बार उसी काय में जन्म-मरण करने का काल) कायस्थिति उत्कृष्टतः असंख्यात काल की है और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहुत्त की बताई गई है ॥ १४२ ॥

If three-sensed beings continue to die and get reborn in the same state without leaving their body-type, then the maximum life-span for the body-type is uncountable time and minimum is of one Antarmuhurt. (142)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।  
तेइन्दियजीवाणं, अन्तरेयं वियाहियं ॥ १४३ ॥

उन त्रीन्द्रिय जीवों का अन्तर (त्रीन्द्रिय काय को छोड़कर अन्य कायों में परिभ्रमण करके पुनः त्रीन्द्रिय काय में जन्म ग्रहण करना-इस मध्य में अन्य योनियों में व्यतीत हुआ काल) ॥ १४३ ॥



The maximum intervening period between once leaving the body-type (three-sensed body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body-types) and again taking rebirth in the same body-type (three-sensed body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (143)

एसिं वण्णओ च्चव, गन्धओ रसफासओ।  
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १४४ ॥

इन त्रीन्द्रिय जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार कहे गये हैं ॥ १४४ ॥

These three-sensed beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (144)

चतुरिन्द्रिय त्रसकाय प्ररूपणा

चउरिन्दिया उ जे जीवा, दुविहा ते पकित्तिया।  
पज्जत्तमपज्जत्ता, तेसिं भेए सुणेह मे ॥ १४५ ॥

जो चतुरिन्द्रिय (चार इन्द्रियों वाले) जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं--(१) पर्याप्त, और (२) अपर्याप्त। उनके भेद मुझसे सुनो ॥ १४५ ॥

Four-sensed mobile beings

Four-sensed beings are of two types--(1) fully developed (*paryaapt*), and (2) under-developed (*aparyaapt*). Hear from me the subdivisions of these four-sensed beings. (145)

अन्धिया पोत्तिया च्चव, मच्छिया मसगा तथा।  
भमरे कीड-पयंगे य, ढिंकुणे कंकुणे तथा ॥ १४६ ॥

अन्धिया-अन्धिका, पोत्तिया-पोत्तिका, मच्छिया-मक्षिका (मक्खी), मसगा-मशक (मच्छर-डांस), भमरे-भ्रमर (भौरा), कीड-पयंगे-कीट (टिड्डे, पतंगे), ढिंकुणे (पिस्सु), कंकुणे-कंकुण- ॥ १४६ ॥

*Andhika, Pottika, fly, mosquito, bumble-bee, moth and grasshopper, flea, kankun-* (146)

कुक्कुडे सिंगिरीडी य, नन्दावत्ते य विंछिए।  
ढोले भिंगारी य, विरली अच्छिवेहए ॥ १४७ ॥

कुक्कुडे-कुक्कुड, सिंगिरीडी-शृंगिरीटी, नन्दावत्ते-नन्दावर्त, विंछिए-बिच्छु (वृश्चिक), ढोले-ढोल, भिंगारी-भृंगरीटक (झींगुर अथवा भ्रमरी), विरली-विरली, अच्छिवेहए-अक्षिवेधक- ॥ १४७ ॥

*Kukkud, shringiriti, nandavarta, scorpion, dhol, bhringritaka* (cricket or black bee), *virali, akshivedhaka-* (147)

अच्छिले माहए अच्छिरोडए, विचित्ते चित्तपत्तए।  
ओहिंजलिया जलकारी य, नीया तन्तवगाविया ॥ १४८ ॥



अच्छिन्ने-अक्षिल, माहए-मागध, अच्छिरोडए-अक्षिरोडक, विचित्ते-विचित्र, चित्तपत्तए-चित्रपत्रक, ओहिंजलिया-ओहिंजलिया, जलकारी-जलकारी, नीया-नीचक, तन्तवगाविण-तन्तवक (अथवा तम्बगाइणताम्रक या तम्बकायिक) — ॥ १४८ ॥

*Aksila, Maagadh, Akshirodak, Vichitra, Chitrapatrak, Ohimjalia, Jalakari, Nichaka, and Tantavak-* (148)

इइ चउरिन्दिया एए, ऽणोगहा एवमायओ ।  
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे परिकित्तिया ॥ १४९ ॥

इत्यादि चतुरिन्द्रिय त्रसकायिक जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं। ये सभी लोक के एक देश (अंश या भाग) में हैं; समस्त लोक में नहीं हैं ॥ १४९ ॥

Thus there are several types of four-sensed mobile beings and it is said that they exist only in a section of the universe (*Lok*) and not in the whole. (149)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।  
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १५० ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से (सभी चतुरिन्द्रिय जीव) अनादि और अनन्त हैं तथा स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥ १५० ॥

In context of continuity these (four-sensed mobile beings) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (150)

छच्चेव य मासा उ, उक्कोसेण वियाहिया ।  
चउरिन्दियआउठिई, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १५१ ॥

चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति छह (महीने) की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ॥ १५१ ॥

The maximum life-span of four-sensed beings is six months and minimum is of one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (151)

संखिज्जकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।  
चउरिन्दियकायठिई, तं कायं तु अमुंचओ ॥ १५२ ॥

उस अपनी चतुरिन्द्रिय काय को न छोड़कर (उसी में बार-बार जन्म-मरण करने का काल) कायस्थिति उत्कृष्टतः संख्यात काल की और जघन्यतः स्थिति अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ॥ १५२ ॥

If four-sensed beings continue to die and get reborn in the same state without leaving their body-type, then the maximum life-span for the body-type is uncountable time and minimum is of one Antarmuhurt. (152)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।  
विजडंमि सए काए, अन्तरेयं वियाहियं ॥ १५३ ॥



अपनी चतुरिन्द्रिय काय को छोड़कर अन्य योनियों में भ्रमण करने के बाद पुनः चतुरिन्द्रिय में जन्म ग्रहण करने तक का काल-अन्तर उत्कृष्ट रूप से अनन्तकाल का तथा जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त काल का है ॥ १५३ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (four-sensed body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body types) and again taking rebirth in the same body-type (four-sensed body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (153)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ।  
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १५४ ॥

वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से चतुरिन्द्रिय जीवों के हजारों प्रकार हैं ॥ १५४ ॥

These four-sensed beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (154)

**पंचेन्द्रिय त्रसकायिक जीवों की प्ररूपणा**

पंचिन्दिया उ जे जीवा, चउव्विहा ते वियाहिया।  
नेरइया तिरिक्खा य, मणुया देवा य आहिया ॥ १५५ ॥

जो पंचेन्द्रिय त्रसकायिक जीव हैं, वे चार प्रकार के कहे गये हैं—(१) नैरयिक, (२) तिर्यंच, (३) मनुष्य, और (४) देव ॥ १५५ ॥

**Five-sensed mobile beings**

Five-sensed beings are of four types—(1) infernal beings (*nairayik*), (2) animals (*tiryanch*), (3) human beings (*manushya*), and (4) divine beings (*deva*). (155)

**नैरयिक त्रस जीव प्ररूपणा**

नेरइया सत्तविहा, पुढवीसु सत्तसू भवे।  
रयणाभ-सक्कराभा, वालुयाभा य आहिया ॥ १५६ ॥

नैरयिक सात प्रकार के हैं, वे सात पृथिवियों (नरकभूमियों) में उत्पन्न होते हैं। वे सात पृथिवियाँ हैं—(१) रत्नाभा, (२) शर्कराभा, (३) बालुकाभा— ॥ १५६ ॥

**Infernal mobile beings**

Infernal beings are of seven types. There are seven infernal lands (*prithvis* or hells)—(1) Ratnaabha, (2) Sharkaraabha, (3) Balukaabha, — (156)

पंकाभा धूमाभा, तमा तमतमा तथा।  
इइ नेरइया एए, सत्तहा परिकित्तिया ॥ १५७ ॥

(४) पंकाभा, (५) धूमाभा, (६) तमा, और (७) तमस्तमा—इन सात पृथिवियों में उत्पन्न होने के कारण नैरयिक जीव सात प्रकार के कहे गये हैं ॥ १५७ ॥

(4) Pankaabha, (5) Dhoom-abha, (6) Tama, and (7) Tamastama. As they are born in these seven hells the infernal beings are said to be of seven types. (157)



लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे उ वियाहिया।

एत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं॥ १५८ ॥

वे सभी नैरयिक (नारकी) जीव लोक के एकदेश (अंश या भाग) में ही हैं-ऐसा कहा गया है। अब इससे आगे मैं उन नारकी जीवों का चार प्रकार का कालविभाग कहूँगा ॥ १५८ ॥

All these infernal beings are said to exist only in one section of the universe (*Lok*) and not in the whole. Now I will describe the fourfold division of infernal beings with regard to time. (158)

संतइं पप्पउणाईया, अपज्जवसिया वि य।

ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य॥ १५९ ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से नारक जीव अनादि और अनन्त हैं तथा स्थिति की अपेक्षा से वे सादि और सान्त भी हैं ॥ १५९ ॥

In context of continuity these (infernal beings) are beginningless and endless. However, in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (159)

सागरोवममेगं तु, उक्कोसेण वियाहिया।

पढमाए जहन्नेणं, दसवाससहसिसिया॥ १६० ॥

प्रथम-रत्नाभा या रत्नप्रभा नरक पृथिवी में नैरयिक जीवों की आयुस्थिति उत्कृष्टतः एक सागरोपम की और जघन्यतः दस हजार वर्ष की बताई गई है ॥ १६० ॥

The maximum life-span of infernal beings in the first hell (*Ratnaprabha prithvi*) is said to be one Sagaropam and minimum ten thousand years. (160)

तिण्णेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।

दोच्चाए जहन्नेणं, एगंतु सागरोवमं॥ १६१ ॥

दूसरी शर्कराभा या शर्कराप्रभा नरक पृथिवी में नैरयिक-नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तीन सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति एक सागरोपम की कही गई है ॥ १६१ ॥

The maximum life-span of infernal beings in the second hell (*Sharkaraabha prithvi*) is said to be three Sagaropam and minimum one Sagaropam. (161)

सत्तेव सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।

तइयाए जहन्नेणं, तिण्णेव उ सागरोवमा॥ १६२ ॥

तीसरी बालुकाभा या बालुकाप्रभा नरक पृथिवी के नैरयिकों-नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति सात सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति तीन सागरोपम की कही गई है ॥ १६२ ॥

The maximum life-span of infernal beings in the third hell (*Balukaabha prithvi*) is said to be seven Sagaropam and minimum three Sagaropam. (162)

दस सागरोवमा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।

चउत्थीए जहन्नेणं, सत्तेव उ सागरोवमा॥ १६३ ॥





चौथी पंकाभा या पंकप्रभा नरक पृथिवी के नैरयिकों-नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति दस सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति सात सागरोपम की कही गई है ॥ १६३ ॥

The maximum life-span of infernal beings in the fourth hell (Pankaabha *prithvi*) is said to be ten Sagaropam and minimum seven Sagaropam. (163)

सत्तरस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।

पंचमाए जहन्नेणं, दस चेव उ सागरोवमा ॥ १६४ ॥

पाँचवीं धूमाभा या धूमप्रभा नरक पृथिवी के नैरयिकों-नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति सत्रह सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति दस सागरोपम की बताई गई है ॥ १६४ ॥

The maximum life-span of infernal beings in the fifth hell (Dhoom-abha *prithvi*) is said to be seventeen Sagaropam and minimum ten Sagaropam. (164)

बावीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।

छट्ठीए जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥ १६५ ॥

छठी तमा या तमःप्रभा नरक पृथिवी के नैरयिकों-नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति बाईस (२२) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति सत्रह (१७) सागरोपम की कही गई है ॥ १६५ ॥

The maximum life-span of infernal beings in the sixth hell (Tama *prithvi*) is said to be twenty-two Sagaropam and minimum seventeen Sagaropam. (165)

तेत्तीस सागरा ऊ, उक्कोसेण वियाहिया।

सत्तमाए जहन्नेणं, बावीसं सागरोवमा ॥ १६६ ॥

सातवीं तमतमा या तमस्तमा नरक पृथिवी के नैरयिकों-नारकी जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तेत्तीस (३३) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति बाईस (२२) सागरोपम की कही गई है ॥ १६६ ॥

The maximum life-span of infernal beings in the seventh hell (Tamastama *prithvi*) is said to be thirty-three Sagaropam and minimum twenty-two Sagaropam. (166)

जा चेव उ आउठिई, नेरइयाणं वियाहिया।

सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे ॥ १६७ ॥

नैरयिक-नारकी जीवों की जो (जघन्य और उत्कृष्ट) आयुस्थिति बताई गई है, वही उनकी जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति होती है ॥ १६७ ॥

The minimum and maximum life-span for the body-type for infernal beings is same as their life-span. (167)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं।

विजडंमि सए काए, नेरइयाणं तु अन्तरं ॥ १६८ ॥

स्वकाय-नैरयिक शरीर के छोड़ने के बाद पुनः नैरयिक शरीर प्राप्त करने का अन्तराल-अन्तर उत्कृष्ट रूप से अनन्तकाल का और जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त काल का होता है ॥ १६८ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (infernal body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other



body-types) and again taking rebirth in the same body-type (infernal body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (168)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।

संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १६९ ॥

वर्ण, गन्ध रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से इन नैरयिक जीवों के हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥ १६९ ॥

These infernal beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (169)

तिर्यच पंचेन्द्रिय त्रसकायिक जीवों की प्ररूपणा

पंचिन्द्रियतिरिक्खाओ, दुविहा ते वियाहिया ।

सम्मूर्च्छिमतिरिक्खाओ, गब्भवक्कन्तिया तथा ॥ १७० ॥

जो पंचेन्द्रिय तिर्यच जीव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) सम्मूर्च्छिम तिर्यच पंचेन्द्रिय जीव, और (२) गर्भ व्युत्क्रान्तिक (गर्भज) पंचेन्द्रिय तिर्यच जीव ॥ १७० ॥

**Animal mobile beings**

Animal beings are said to be of two types—(1) *sammurchhim tiryanch panchendriya jiva* (five-sensed animals of asexual origin), and (2) *garbhavyutkrantik panchendriya tiryanch jiva* (five-sensed animals born out of womb)—(170)

दुविहावि ते भवे तिविहा, जलयरा थलयरा तथा ।

खहयरा य बोद्धव्वा, तेसिं भेए सुणेह मे ॥ १७१ ॥

ये दोनों प्रकार के (गर्भज और सम्मूर्च्छिम) पंचेन्द्रिय जीवों के तीन प्रकार और जानने चाहिये—(१) जलचर, (२) थलचर (स्थलचर), और (३) नभचर। इन तीनों के भेद मुझसे सुनो ॥ १७१ ॥

Again, either of them is of three kinds—(1) aquatic, (2) terrestrial, and (3) aerial (animals). Hear the subdivisions of these from me. (171)

तिर्यच पंचेन्द्रिय जलचर जीव

मच्छा य कच्छभा य, गाहा य मगरा तथा ।

सुंसुमारा य बोद्धव्वा, पंचहा जलयराहिया ॥ १७२ ॥

जल में विचरण करने वाले तिर्यच पंचेन्द्रिय जलचर जीव पाँच प्रकार के कहे गये हैं—(१) मत्स्य, (२) कछुआ, (३) ग्राह-घड़ियाल, (४) मगरमच्छ, और (५) सुंसुमार—ये पाँच प्रकार जानने चाहिये ॥ १७२ ॥

**Five-sensed aquatic animals**

Five-sensed aquatic animals are said to be of five types—(1) fish, (2) tortoise, (3) alligator, (4) crocodile, and (5) sumsumar (may be Gangetic porpoises). (172)



लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ।

एत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥ १७३ ॥

ये सभी लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं, समस्त लोक में नहीं होते-ऐसा कहा गया है। इससे आगे अब मैं इन जलचर जीवों का कालविभाग चार प्रकार से कहूँगा ॥ १७३ ॥

It is said that they exist only in a section of the universe (*Lok*) and not in the whole. Now I will describe fourfold division with regard to time of these aquatic animals. (173)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।

ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १७४ ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा ये जलचर जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥ १७४ ॥

In context of continuity these (aquatic animals) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (174)

एगा य पुव्वकोडीओ, उक्कोसेण वियाहिया ।

आउट्टिई जलयराणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १७५ ॥

इन पंचेन्द्रिय जलचर जीवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति एक करोड़ पूर्व (७,०५,६०,००,००,००,००० वर्ष) की है और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बताई गई है ॥ १७५ ॥

The maximum life-span of these five-sensed aquatic animals is ten million Purvas (7,05,60,00,00,00,000 years) and the minimum is one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (175)

पुव्वकोडीपुहत्तं तु, उक्कोसेण वियाहिया ।

कायट्टिई जलयराणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १७६ ॥

इन पंचेन्द्रिय जलचर जीवों की कायस्थिति जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्टतः पूर्व कोटि-पृथक्त्व (२ से ९ करोड़ पूर्व) की बताई गई है ॥ १७६ ॥

The maximum life-span for the body-type of these five-sensed aquatic animals is Purva koti *prithakatva* (20 to 90 million Purvas) and minimum is of one Antarmuhurt. (176)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्यं ।

विजढमि सए काए, जलयराणं तु अन्तरं ॥ १७७ ॥

स्वकाय-जलचरकाय छोड़कर तथा अन्य योनियों में भ्रमण करके पुनः जलचरकाय में उत्पन्न होने तक का मध्यवर्ती अन्तराल-अन्तर जलचर जीवों का अन्तर अधिक से अधिक अनन्तकाल का और कम से कम अन्तर्मुहूर्त का होता है ॥ १७७ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (five-sensed aquatic animal body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth



as other body-types) and again taking rebirth in the same body-type (five-sensed aquatic animal body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (177)

एएसिं वण्णओ चव, गंधओ रसफ्फासओ ।  
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १७८ ॥

इन जलचर पंचेन्द्रिय जीवों के-वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥ १७८ ॥

These five-sensed aquatic animals are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (178)

तिर्यच पंचेन्द्रिय स्थलचर जीव

चउप्पया य परिसप्पा, दुविहा थलयरा भवे ।  
चउप्पया चउविहा, ते मे कित्तयओ सुण ॥ १७९ ॥

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों के दो प्रकार हैं—(१) चतुष्पाद, और (२) परिसर्प। चतुष्पाद जीव चार प्रकार के होते हैं, उनका वर्णन मुझसे सुनो ॥ १७९ ॥

**Five-sensed terrestrial animals**

Five-sensed terrestrial animals are of two kinds—(1) quadruped, and (2) reptilian. Quadruped animals are of four kinds. Hear from me the description these. (179)

एगखुरा दुखुरा चव, गण्डीपय-सणप्पया ।  
हयमाइ-गोणमाइ, गयामाइ-सीहमाइणो ॥ १८० ॥

चतुष्पाद पंचेन्द्रिय जीवों के चार भेद—(१) एक खुर वाले, (२) दो खुर वाले, (३) गण्डीपद वाले, और (४) सनखपद वाले। (इनके क्रमशः उदाहरण) (१) एक खुर वाले—घोड़े, गर्दभ-गधा आदि, (२) दो खुर वाले—गाय, बैल, भैंसा आदि, (३) गण्डीपद—हाथी, ऊँट आदि, (४) सनखपद—बिल्ली, श्वान-कुत्ता आदि ॥ १८० ॥

Four kinds of five-sensed quadruped animals—(1) solid-ungular animals like horse, (2) bi-ungular animals like cow, (3) multi-ungular (or with solid circular feet) animals like elephant and camel, and (4) animals with toes having nails like cat, dog and lion. (180)

भुओरगपरिसप्पा य, परिसप्प दुविहा भवे ।  
गोहाई अहिमाई य, एक्केक्का ऽणोगहा भवे ॥ १८१ ॥

परिसर्प स्थलचर तिर्यच पंचेन्द्रिय जीव दो प्रकार के होते हैं—(१) भुज-परिसर्प, और (२) उर-परिसर्प। (इनके उदाहरण क्रमशः) भुज-परिसर्प—गोधा-गोह (गिलहरी, चूहा आदि), और (२) उर-परिसर्प—सर्प आदि। इनमें से प्रत्येक के अनेक भेद (प्रकार) हैं ॥ १८१ ॥

Five-sensed terrestrial reptiles are of two kinds—(1) limbed reptilians (*bhuj-parisarp*) like, lizards, (2) non-limbed reptilians (*urparisarp*) like-serpent; both these have many other kinds. (181)



लोएगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया।

एत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥ १८२ ॥

ये सभी स्थलचर पंचेन्द्रिय जीव लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही हैं; समस्त लोक में नहीं हैं। इससे आगे अब मैं उन तिर्यच पंचेन्द्रिय स्थलचर जीवों के कालविभाग का चार प्रकार से वर्णन करूँगा ॥ १८२ ॥

All these five-sensed terrestrial animals exist only in a section of the universe (*Lok*) and not in the whole. Now I will describe fourfold division with regard to time of these five sensed terrestrial animals. (182)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।

ठिइं पडुच्च सार्इया, सपज्जवसिया वि य ॥ १८३ ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से वे तिर्यच पंचेन्द्रिय स्थलचर जीव अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥ १८३ ॥

In context of continuity these (terrestrial animals) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (183)

पलिओवमाउ तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।

आउटिट्ठई थलयराणं, अन्तोमुहुत्तं जह्निया ॥ १८४ ॥

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों की आयुस्थिति (भवस्थिति) उत्कृष्टतः तीन पल्योपम की और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त की कही गई है ॥ १८४ ॥

The maximum life-span of these five-sensed terrestrial animals is three Palyopam and the minimum is one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (184)

पलिओवमाउ तिण्णि उ, उक्कोसेण तु साहिया।

पुव्वकोडीपुहत्तेणं, अन्तोमुहुत्तं जह्निया ॥ १८५ ॥

स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों की कायस्थिति उत्कृष्ट रूप से कोटि पूर्व पृथक्त्व सहित तीन पल्योपम की होती है और जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त की बताई गई है ॥ १८५ ॥

The maximum life-span for the body-type of these five-sensed aquatic animals is Purva koti *prithakatva* (20 to 90 million Purvas) more than three Palyopam and minimum is of one Antarmuhurt. (185)

कायड्ढिई थलयराणं, अन्तरं तेसिमं भवे।

कालमणन्तमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥ १८६ ॥

उनका अन्तर उत्कृष्ट अनन्तकाल का और जघन्य अन्तर्मुहूर्त का है ॥ १८६ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (five-sensed terrestrial animal body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body-types) and again taking rebirth in the same body-type (five-sensed terrestrial animal body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (186)



एएसिं वण्णओ चेष, गंधओ रसफासओ ।  
संठणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १८७ ॥

इन स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यच जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥ १८७ ॥

These five-sensed terrestrial animals are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (187)

नभचर पंचेन्द्रिय त्रस जीव

चम्मे उ लोमपक्खी य, तइया समुग्गपक्खिया ।  
विययपक्खी य बोद्धव्वा, पक्खिणे य चउव्विहा ॥ १८८ ॥

नभचर-पक्षी तिर्यच पंचेन्द्रिय जीव चार प्रकार के जानने चाहिये—(१) चर्म पक्षी (चमगादड़ आदि), (२) लोम पक्षी (रोम पक्षी) (हंस आदि), (३) समुद्र पक्षी, और (४) वितत पक्षी ॥ १८८ ॥

Five-sensed aerial animals

Five-sensed aerial animals are of four kinds—(1) of membranous wings, like bat, (2) of feathered wings, like swan, (3) of box shaped wings, which are always closed, like *Samudga* bird (mythical bird), and (4) of outspread wings, like *Vitata* birds (mythical bird). (188)

लोगेगदेसे ते सव्वे, न सव्वत्थ वियाहिया ।  
इत्तो कालविभागं तु, वुच्छ तेसिं चउव्विहं ॥ १८९ ॥

ये नभचर (पक्षी) लोक के एक देश (अंश या भाग) में ही रहते हैं, समस्त लोक में नहीं रहते। इससे आगे मैं उन नभचर (आकाशचारी-खेचर) पक्षियों के कालविभाग का चार प्रकार से वर्णन करूँगा ॥ १८९ ॥

All these five-sensed aerial animals exist only in a section of the universe (*Lok*) and not in the whole. Now I will describe fourfold division with regard to time of these five-sensed aerial animals. (189)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य ।  
ठिइं षडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १९० ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा से नभचर पक्षी अनादि-अनन्त होते हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त (आदि और अन्त सहित) भी होते हैं ॥ १९० ॥

In context of continuity these (aerial animals) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (190)

पलिओवमस्स भागो, असंखेज्जइमो भवे ।  
आउड्डिईं खहयराणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १९१ ॥

खेचर (नभचर) पक्षियों की उत्कृष्ट आयुस्थिति पत्योपम के असंख्यातवें भाग की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥ १९१ ॥



The maximum life-span of these five-sensed aerial animals is uncountable fraction of Palyopam and the minimum is one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (191)

असंखभागो पलियस्स, उक्कोसेण उ साहियो ।  
पुव्वकोडीपुहत्तेणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ १९२ ॥

खेचर जीवों की कायस्थिति उत्कृष्टतः कोटिपूर्व पृथक्त्व अधिक पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है ॥ १९२ ॥

The maximum life-span for the body-type of these five-sensed aquatic animals is Purva koti prithakatva (20 to 90 million Purvas) more than uncountable fraction of Palyopam and minimum is of one Antarmuhurt. (192)

कायठिई खहयराणं, अन्तरं तेसिमं भवे ।  
कालं अणन्तमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ॥ १९३ ॥

उन खेचर जीवों का अन्तर उत्कृष्टतः अनन्तकाल का और जघन्यतः अन्तर्मुहूर्त का होता है ॥ १९३ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (five-sensed aerial animal body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body-types) and again taking rebirth in the same body-type (five-sensed aerial animal body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (193)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।  
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ १९४ ॥

इन खेचर जीवों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा हजारों प्रकार होते हैं ॥ १९४ ॥

These five-sensed aerial animals are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (194)

**मनुष्यों सम्बन्धी प्ररूपणा**

मणुया दुविहभेया उ, ते मे कित्तयओ सुण ।  
संमुच्छिमा य मणुया, गब्भवक्कन्तिया तहा ॥ १९५ ॥

मनुष्यों के दो भेद हैं—(१) संमुच्छिम् मनुष्य, और (२) गर्भ-व्युत्क्रान्तिक-गर्भज मनुष्य। उन भेदों के विषय में मैं कहता हूँ, सुनो ॥ १९५ ॥

**Human beings**

Human beings are of two kinds—(1) *sammurchhim manushya* (human beings of asexual origin), and (2) *garbhavyutkrantik manushya* (human beings born out of womb or placental human beings). I will describe their divisions, listen to me. (195)

गब्भवक्कन्तिया जे उ, तिविहा ते वियाहिया ।  
अकम्म-कम्मभूमा य, अन्तरद्दीवया तहा ॥ १९६ ॥

जो गर्भज मनुष्य हैं, वे तीन प्रकार के बताये गये हैं—(१) कर्मभूमिज, (२) अकर्मभूमिज, और (३) अन्तरद्दीपज ॥ १९६ ॥



Placental human beings are of three types—(1) born in *Karmabhumi* (land of endeavour), (2) born in *Akarmabhumi* (land of non-endeavour), and (3) born in middle islands (*Antaradvipaj*). (196)

पन्नरस-तीसड़-विहा, भेया अट्टवीसड़।  
संखा उ कमसो तेसिं, इइ एसा वियाहिया ॥ १९७ ॥

कर्मभूमिज मनुष्यों के पन्द्रह (१५) प्रकार, अकर्मभूमिज मनुष्यों के तीस (३०) प्रकार और अन्तरद्वीपज मनुष्यों के अट्टाईस (२८) प्रकार कहे गये हैं ॥ १९७ ॥

There are said to be fifteen kinds of those born in *Karmabhumis*, thirty kinds of those born in *Akarmabhumis* and twenty-eight kinds of those born in middle islands. (197)

संमुच्छिमाण एमेव, भेओ होइ आहियो।  
लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे वि वियाहिया ॥ १९८ ॥

इसी तरह के तीन भेद संमूर्च्छिम मनुष्यों के होते हैं। ये सभी (गर्भज और संमूर्च्छिम) मनुष्यलोक के एक देश (अंश या भाग) में ही बताये गये हैं ॥ १९८ ॥

Likewise, there are three kinds of human beings of asexual origin. They all (humans of the said two origins) exist in a section of the universe and not in the whole. (198)

संतइं पप्पण्णाईया, अपज्जवसिया वि यं।  
ठियं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ १९९ ॥

संतति-प्रवाह की अपेक्षा (सभी प्रकार के मनुष्य) ये सभी अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा से सादि-सान्त भी हैं ॥ १९९ ॥

In context of continuity these (human beings) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (199)

पलिओवमाइं तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।  
आउट्ठई मणुयाणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ २०० ॥

(गर्भज) मनुष्य की उत्कृष्ट आयुस्थिति तीन पल्योपम की और जघन्य आयुस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है ॥ २०० ॥

The maximum life-span of these placental human beings is three Palyopam and the minimum is one Antarmuhurt (less than forty-eight minutes). (200)

पलिओवमाइं तिण्णि उ, उक्कोसेण वियाहिया।  
पुव्वकोडीपुहत्तेणं, अन्तोमुहुत्तं जहन्निया ॥ २०१ ॥

(गर्भज) मनुष्य की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि-पृथक्त्व अधिक तीन पल्योपम की है और जघन्य कायस्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की बताई गई है ॥ २०१ ॥

The maximum life-span for the body-type of placental human beings is Purva koti *prithakatva* (20 to 90 million Purvas) more than three Palyopam and minimum is of one Antarmuhurt. (201)





कायद्विई मणुयाणं, अन्तरं तेसिमं भवे।  
अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुतं जहनयं ॥ २०२ ॥

उन (गर्भज मनुष्यों) का अन्तर (काल) उत्कृष्टतः अनन्तकाल है और जघन्यतः अन्तर्मुहुतं काल का होता है ॥ २०२ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (placental human body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body-types) and again taking rebirth in the same body-type (placental human body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (202)

एसेसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ।  
संठाणादेसओ वावि, विहाणाइं सहस्ससो ॥ २०३ ॥

उन (गर्भज मनुष्यों) के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥ २०३ ॥

These placental human beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (203)

देवों के सम्बन्ध में प्ररूपणा

देवा चउव्विहा वुत्ता, ते मे कित्तयओ सुण।  
भोमिज्ज-वाणमन्तर, जोइस-वेमाणिया तहा ॥ २०४ ॥

देव चार प्रकार के बताये गये हैं—(१) भोमिज्ज-भवनवासी, (२) वाणमन्तर-वाणव्यन्तर (व्यन्तर), (३) जोइस-ज्योतिष्क (ज्योतिषी), और (४) वेमाणिया-वैमानिक। मैं इन चारों की प्ररूपणा करता हूँ, तुम मुझसे सुनो ॥ २०४ ॥

Divine beings

There are four kinds of divine beings (*deva* or god)—(1) Bhavanavasi (abode dwelling), (2) Vaanavyantar (interstitial), (3) Jyotishk (stellar), and (4) Vaimaaniks (celestial vehicular). I describe all the four, hear from me. (204)

दसहा उ भवणवासी, अड्डहा वणचारिणो।  
पंचविहा जोइसिया, दुविहा वेमाणिया तहा ॥ २०५ ॥

दस प्रकार के भवनवासी देव, आठ प्रकार के व्यन्तर देव (वणचारिणो), पाँच प्रकार के ज्योतिषी देव और दो प्रकार के वैमानिक देव हैं ॥ २०५ ॥

There are ten kinds of Bhavanavasi *devas* (abode dwelling gods), eight kinds of Vyantara *devas* (interstitial gods), five kinds of Jyotishk *devas* (stellar gods) and two kinds of Vaimaanik *devas* (celestial vehicular gods). (205)

असुरा नाग-सुवण्णा, विज्जू अग्गी य आहिया।  
दीवोदहि-दिसा वाया, थाणिया भवणवासिणो ॥ २०६ ॥



भवनवासी देव दस प्रकार के कहे गये हैं, यथा—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार (सुवण्णा), (४) विद्युत्कुमार (विज्जू), (५) अग्निकुमार (अग्गी), (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिक्कुमार, (९) वायुकुमार (वाया), और (१०) स्तनितकुमार (थाणिया) ॥ २०६ ॥

The ten kinds of Bhavanavasi devas are—(1) Asura Kumar, (2) Naag Kumar, (3) Suparna Kumar, (4) Vidyut Kumar, (5) Agni Kumar, (6) Dveep Kumar, (7) Udadhi Kumar, (8) Dik Kumar, (9) Vayu Kumar, and (10) Stanita Kumar. (206)

पिसाय-भूय-जम्बूवा य, रक्खसा किन्नरा य किंपुरिसा ।

महोरगा य गन्धव्वा, अद्दुविहा वाणमन्तरा ॥ २०७ ॥

वाणव्यन्तर (व्यन्तर) देव आठ प्रकार के होते हैं, यथा—(१) पिशाच, (२) भूत, (३) यक्ष, (४) राक्षस, (५) किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) महोरग, और (८) गन्धर्व ॥ २०७ ॥

The eight kinds of Vaanavyantar devas are—(1) Pishaach, (2) Bhoot, (3) Yaksha, (4) Rakshas, (5) Kinnar, (6) Kimpurush, (7) Mahorag, and (8) Gandharva. (207)

चन्द्रा सूर्या य नक्खत्ता, गहा तारागणा तथा ।

दिसाविचारिणो चैव, पंचहा जोइसालया ॥ २०८ ॥

ज्योतिष्क (ज्योतिषी) देव पाँच प्रकार के हैं, यथा—(१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) नक्षत्र, (४) ग्रह, और (५) तारागण । इन पाँचों प्रकार के ज्योतिषी देवों के विमान (आलय) भ्रमणशील (दिसाविचारी) (मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते) हैं ।

(आ. उ. ऋ. प्रति में दिसाविचारी के स्थान पर दिये गये 'ठिया वि चारी, पाठ के अनुसार अर्थ होगा—इन पाँचों प्रकार के ज्योतिषी देवों के विमान स्थिर (ठिया) भी (वि) हैं और चर-गतिशील-भ्रमणशील (चारी) भी हैं।) ॥ २०८ ॥

There are five kinds of Jyotishk devas—(1) Moon, (2) Sun, (3) Nakshatra (constellations), (4) Graha (planets), and (5) Tara (stars). The dwellings of all these gods are ever moving (they go around the Meru mountain).

(According to an alternative text the dwellings of all these gods are stationary as well as moving.) (208)

वेमाणिया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ।

कप्पोवगा य बोद्धव्वा, कप्पाईया तहेव य ॥ २०९ ॥

जो वैमानिक देव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) कल्पोपगक (कल्पोपपन्न), और (२) कल्पातीत—जानने चाहिये ॥ २०९ ॥

The Vaimaanik gods are of two kinds—(1) Kalpopapanna (born in Kalp-heaven or a specific celestial area), and (2) Kalpateet (born outside the Kalp-heaven and in the highest heavenly abodes). (209)

कप्पोवगा बारसहा, सोहम्पीसाणगा तथा ।

सणंकुमार-माहिन्दा, बम्भलोगा य लन्तगा ॥ २१० ॥



कल्पोपक (कल्पोपपन्न) देवों के बारह भेद हैं, यथा—(१) सौधर्म, (२) ईशानक, (३) सनत्कुमार, (४) माहेन्द्र, (५) ब्रह्मलोक, (६) लान्तक— ॥ २१० ॥

The *Kalpopapanna* gods are of twelve kinds—(1) Saudharma, (2) Ishaanak, (3) Sanat Kumar, (4) Maahendra, (5) Brahmaloak, (6) Laantak, – (210)

महासुक्का सहस्सारा, आणया पाणया तथा ।

आरणा अच्युया चेव, इइ कप्पोवगा सुरा ॥ २११ ॥

(७) महाशुक्र, (८) सहस्रार, (९) आणत, (१०) प्राणत, (११) आरण, और (१२) अच्युत—ये कल्पोपक देव हैं ॥ २११ ॥

(7) Mahashukra, (8) Sahasrara, (9) Aanat, (10) Praanat, (11) Arana, and (12) Achyut. (211)

कप्पाईया उ जे देवा, दुविहा ते वियाहिया ।

गेविज्जाऽणुत्तरा चेव, गेविज्जा नवविहा तहिं ॥ २१२ ॥

जो कल्पातीत देव हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—(१) ग्रैवेयक, और (२) अनुत्तर (विमानवासी) देव । ग्रैवेयक देवों के पुनः ९ भेद हैं ॥ २१२ ॥

Kalpateet gods are of two kinds—(1) Graiveyak, and (2) Anuttar. Again Graiveyaks are of nine types. (212)

हेट्टिमा-हेट्टिमा चेव, हेट्टिमा-मज्झिमा तथा ।

हेट्टिमा-उवरिमा चेव, मज्झिमा-हेट्टिमा तथा ॥ २१३ ॥

(१) अधस्तन-अधस्तन (२) अधस्तन-मध्यम, (३) अधस्तन-उपरितन, (४) मध्यम-अधस्तन— ॥ २१३ ॥

(1) *Adhastan-Adhastan* (lower-lower), (2) *Adhastan-Madhyam* (lower-middle), (3) *Adhastan-Uparitan* (lower-upper), (4) *Madhyam-Adhastan* (middle-lower), – (213)

मज्झिमा-मज्झिमा चेव, मज्झिमा-उवरिमा तथा ।

उवरिमा-हेट्टिमा चेव, उवरिमा-मज्झिमा तथा ॥ २१४ ॥

(५) मध्यम-मध्यम, (६) मध्यम-उपरितन, (७) उपरितन-अधस्तन, (८) उपरितन-मध्यम— ॥ २१४ ॥

(5) *Madhyam-Madhyam* (middle-middle), (6) *Madhyam-Uparitan* (middle-upper), (7) *Uparitan-Adhastan* (upper-lower), (8) *Uparitan-Madhyam* (upper-middle), – (214)

उवरिमा-उवरिमा चेव, इय गेविज्जगा सुरा ।

विजया वेजयन्ता य, जयन्ता अपराजिया ॥ २१५ ॥

और (९) उपरितन-उपरितन—ये ९ प्रकार के ग्रैवेयक देव हैं । (१) विजय, (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपराजित— ॥ २१५ ॥

And (9) *Uparitan-Uparitan* (upper-upper); these are nine types of Graiveyak gods. (1) Vijaya, (2) Vaijayant, (3) Jayant, (4) Aparajit, – (215)



सव्वडुसिद्धगा चेव, पंचहाऽणुत्तरा सुरा।  
इइ वैमाणिया देवा, णोगहा एवमायओ ॥ २१६ ॥

और (५) सर्वार्थसिद्धक—ये पाँच प्रकार के अनुत्तर (विमावासी) देव हैं। इस तरह वैमानिक देव अनेक प्रकार के कहे गये हैं ॥ २१६ ॥

And Sarvarthasiddhak—these are five kinds of *Anuttara* celestial vehicular gods. Thus there are said to be many types of Vaimanik devas (celestial-vehicular gods). (216)

लोगस्स एगदेसम्मि, ते सव्वे परिकित्तिया।  
इत्तो कालविभागं तु, वुच्छं तेसिं चउव्विहं ॥ २१७ ॥

ये सभी (चारों निकायों के) देव लोक के एक देश (अंश या भाग) में कहे गये हैं। इससे आगे में चार प्रकार से अनेक कालविभाग को कहेंगा ॥ २१७ ॥

All these gods (of four realms) exist in a section of universe. Now I will describe fourfold division with regard to time of these divine beings. (217)

संतइं पप्पऽणाईया, अपज्जवसिया वि य।  
ठिइं पडुच्च साईया, सपज्जवसिया वि य ॥ २१८ ॥

(ये चारों निकायों के देव) संतति-प्रवाह की अपेक्षा अनादि-अनन्त हैं और स्थिति की अपेक्षा सादि-सान्त भी होते हैं ॥ २१८ ॥

In context of continuity these (divine beings of all four realms) are beginningless and endless. However in context of existence at a particular place they have a beginning as well as end. (218)

साहियं सागरं एक्कं, उक्कोसेण ठिई भवे।  
भोमेज्जाणं जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥ २१९ ॥

भवनवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति कुछ अधिक एक सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति दस हजार वर्ष की होती है ॥ २१९ ॥

The maximum life-span of these Bhavanavasi devas is a little more than one Sagaropam and the minimum is ten thousand years. (219)

पलिओवमेगं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।  
वन्तराणं जहन्नेणं, दसवाससहस्सिया ॥ २२० ॥

व्यंतर देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति एक पल्योपम की तथा जघन्य आयुस्थिति दस हजार वर्ष की होती है ॥ २२० ॥

The maximum life-span of these Vyantar devas is one Palyopam and the minimum is ten thousand years. (220)

पलिओवमं एगं तु, वासलक्खेण साहियं।  
पलिओवमऽडुभागो, जोइसेसु जहन्निया ॥ २२१ ॥

ज्योतिष्क (ज्योतिषी) देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की और जघन्य आयुस्थिति पल्योपम के आठवें भाग प्रमाण होती है ॥ २२१ ॥



The maximum life-span of these Jyotishk devas is one hundred thousand years more than one Palyopam and the minimum is one-eighth of one Palyopam. (221)

दो चैव सागराङ्गं, उक्कोसेण वियाहिया।  
सोहम्ममि जहन्नेणं, एगं च पलिओवमं ॥ २२२ ॥

सौधर्म (देवलोक में) देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति दो सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति एक पत्योपम की बताई गई है ॥ २२२ ॥

The maximum life-span of gods in Saudharma *kalp* is two Sagaropam and the minimum is one Palyopam. (222)

सागरा साहिया दुन्नि, उक्कोसेण वियाहिया।  
ईसाणम्मि जहन्नेणं, साहियं पलिओवमं ॥ २२३ ॥

ईशान (देवलोक में) देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति कुछ अधिक एक पत्योपम की होती है ॥ २२३ ॥

The maximum life-span of gods in Ishaan *kalp* is slightly more than two Sagaropam and the minimum is slightly more than one Palyopam. (223)

सागराणि य सत्तेव, उक्कोसेण ठिई भवे।  
सणंकुमारे जहन्नेणं, दुन्नि ऊ सागरोवमा ॥ २२४ ॥

सनत्कुमार देवलोक के देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति सात सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति दो सागरोपम की होती है ॥ २२४ ॥

The maximum life-span of gods in Sanatkumar *kalp* is seven Sagaropam and the minimum is two Sagaropam. (224)

साहिया सागरा सत्ता, उक्कोसेण ठिई भवे।  
माहिन्दम्मि जहन्नेणं, साहिया दुन्नि सागरा ॥ २२५ ॥

माहेन्द्रकुमार स्वर्ग के देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति कुछ अधिक सात सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की होती है ॥ २२५ ॥

The maximum life-span of gods in Maahendra *kalp* is slightly more than seven Sagaropam and the minimum is slightly more than two Sagaropam. (225)

दस चैव सागराङ्गं, उक्कोसेण ठिई भवे।  
बम्भलोए जहन्नेणं, सत्त ऊ सागरोवमा ॥ २२६ ॥

ब्रह्मदेवलोक के देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति दस सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति सात सागरोपम की होती है ॥ २२६ ॥

The maximum life-span of gods in Brahma Lok *kalp* is ten Sagaropam and the minimum is seven Sagaropam. (226)

चउहस सागराङ्गं, उक्कोसेण ठिई भवे।  
लन्तगम्मि जहन्नेणं, दस ऊ सागरोवमा ॥ २२७ ॥



लान्तक देवलोक के देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति चौदह सागरोपम की और जघन्य दस सागरोपम की होती है ॥ २२७ ॥

The maximum life-span of gods in Lantak *kalp* is fourteen Sagaropam and the minimum is ten Sagaropam. (227)

सत्तरस सागराईं, उक्कोसेण ठिई भवे।  
महासुक्के जहन्नेणं, चउद्दस सागरोवमा ॥ २२८ ॥

महाशुक्र देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति सत्रह सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति चौदह सागरोपम की होती है ॥ २२८ ॥

The maximum life-span of gods in Mahashukra *kalp* is seventeen Sagaropam and the minimum is fourteen Sagaropam. (228)

अठारस सागराईं, उक्कोसेण ठिई भवे।  
सहस्सारे जहन्नेणं, सत्तरस सागरोवमा ॥ २२९ ॥

सहस्रार देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति अठारह सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति सत्रह सागरोपम की होती है ॥ २२९ ॥

The maximum life-span of gods in Sahasrar *kalp* is eighteen Sagaropam and the minimum is seventeen Sagaropam. (229)

सागरा अउणवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।  
आणयम्मि जहन्नेणं, अट्ठारस सागरोवमा ॥ २३० ॥

आणत (आनत) देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति उन्नीस (१९) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति अठारह सागरोपम की होती है ॥ २३० ॥

The maximum life-span of gods in Anat *kalp* is nineteen Sagaropam and the minimum is eighteen Sagaropam. (230)

वीसं तु सागराईं, उक्कोसेण ठिई भवे।  
पाणयम्मि जहन्नेणं, सागरा अउणवीसई ॥ २३१ ॥

प्राणत देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति बीस सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति उन्नीस (१९) सागरोपम की है ॥ २३१ ॥

The maximum life-span of gods in Pranat *kalp* is twenty Sagaropam and the minimum is nineteen Sagaropam. (231)

सागरा इक्कवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।  
आरणम्मि जहन्नेणं, वीसई सागरोवमा ॥ २३२ ॥

आरण स्वर्गलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति इक्कीस सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति बीस सागरोपम की होती है ॥ २३२ ॥

The maximum life-span of gods in Aran *kalp* is twenty-one Sagaropam and the minimum is twenty Sagaropam. (232)



बावीसं सागराङ्गं, उक्कोसेण ठिई भवे।

अच्चुयम्मि जहन्नेणं, सागरा इक्कवीसई ॥ २३३ ॥

अच्युत देवलोक के देवों की अधिकतम आयुस्थिति बाईस (२२) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति इक्कीस सागरोपम की होती है ॥ २३३ ॥

The maximum life-span of gods in Achyut *kalp* is twenty-two Sagaropam and the minimum is twenty-one Sagaropam. (233)

तेवीसं सागराङ्गं, उक्कोसेण ठिई भवे।

पढमम्मि जहन्नेणं, बावीसं सागरोवमा ॥ २३४ ॥

प्रथम ग्रैवेयकवासी देवों की अधिकतम आयुस्थिति तेईस (२३) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति बाईस सागरोपम की होती है ॥ २३४ ॥

The maximum life-span of gods in first Graiveyak area is twenty-three Sagaropam and the minimum is twenty-two Sagaropam. (234)

चउवीसं सागराङ्गं, उक्कोसेण ठिई भवे।

बिइयम्मि जहन्नेणं, तेवीसं सागरोवमा ॥ २३५ ॥

द्वितीय ग्रैवेयकवासी देवों की अधिकतम आयुस्थिति चौबीस सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति तेईस (२३) सागरोपम की होती है ॥ २३५ ॥

The maximum life-span of gods in second Graiveyak area is twenty-four Sagaropam and the minimum is twenty-three Sagaropam. (235)

पणवीसं सागराङ्गं, उक्कोसेण ठिई भवे।

तइयम्मि जहन्नेणं, चउवीसं सागरोवमा ॥ २३६ ॥

तृतीय ग्रैवेयकवासी देवों की अधिकतम आयुस्थिति पच्चीस (२५) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति चौबीस सागरोपम की होती है ॥ २३६ ॥

The maximum life-span of gods in third Graiveyak area is twenty-five Sagaropam and the minimum is twenty-four Sagaropam. (236)

छव्वीसं सागराङ्गं, उक्कोसेण ठिई भवे।

चउत्थम्मि जहन्नेणं, सागरा पुणवीसई ॥ २३७ ॥

चौथे ग्रैवेयकवासी देवों की अधिकतम आयुस्थिति छब्बीस (२६) सागरोपम की और न्यूनतम आयुस्थिति पच्चीस सागरोपम की होती है ॥ २३७ ॥

The maximum life-span of gods in fourth Graiveyak area is twenty-six Sagaropam and the minimum is twenty-five Sagaropam. (237)

सागरा सत्तवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।

पंचमम्मि जहन्नेणं, सागरा उ छवीसई ॥ २३८ ॥

पाँचवें ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति सत्ताईस (२७) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति छब्बीस (२६) सागरोपम की होती है ॥ २३८ ॥



The maximum life-span of gods in fifth Graiveyak area is twenty-seven Sagaropam and the minimum is twenty-six Sagaropam. (238)

सागरा अद्दुवीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।

छद्दुम्मि जहन्नेणं, सागरा सत्तवीसई ॥ २३९ ॥

छठे ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति अद्दुईस (२८) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति सत्ताईस (२७) सागरोपम की होती है ॥ २३९ ॥

The maximum life-span of gods in sixth Graiveyak area is twenty-eight Sagaropam and the minimum is twenty-seven Sagaropam. (239)

सागरा अउणतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।

सत्तमम्मि जहन्नेणं, सागरा अद्दुवीसई ॥ २४० ॥

सातवें ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति उन्तीस (२९) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति अद्दुईस (२८) सागरोपम की होती है ॥ २४० ॥

The maximum life-span of gods in seventh Graiveyak area is twenty-nine Sagaropam and the minimum is twenty-eight Sagaropam. (240)

तीस तु सागराइं, उक्कोसेण ठिई भवे।

अद्दुमम्मि जहन्नेणं, सागरा अउणतीसई ॥ २४१ ॥

आठवें ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तीस सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति उन्तीस (२९) सागरोपम की होती है ॥ २४१ ॥

The maximum life-span of gods in eighth Graiveyak area is thirty Sagaropam and the minimum is twenty-nine Sagaropam. (241)

सागरा इक्कतीसं तु, उक्कोसेण ठिई भवे।

नवमम्मि जहन्नेणं, तीसई सागरोवमा ॥ २४२ ॥

नौवें ग्रैवेयकवासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति इक्कतीस (३१) सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति तीस सागरोपम की होती है ॥ २४२ ॥

The maximum life-span of gods in ninth Graiveyak area is thirty-one Sagaropam and the minimum is thirty Sagaropam. (242)

तेत्तीस सागरा उ, उक्कोसेण ठिई भवे।

चउसुं पि विजयाईसुं, जहन्नेणेक्कतीसई ॥ २४३ ॥

विजय आदि चार अनुत्तर विमान विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित वासी देवों की उत्कृष्ट आयुस्थिति तेत्तीस सागरोपम की और जघन्य आयुस्थिति इक्कतीस सागरोपम की होती है ॥ २४३ ॥

The maximum life-span of gods in the four Anuttar celestial vehicles (Vijaya, Vaijayant, Jayant and Aparajit) is thirty-three Sagaropam and the minimum is thirty-one Sagaropam. (243)





अजहन्नमणुक्कोसा, तेत्तीसं सागरोवमा ।  
महाविमाण-सव्वट्टे, ठिई एसा वियाहिया ॥ २४४ ॥

सर्वार्थसिद्ध महाविमानवासी देवों की न जघन्य और न उत्कृष्ट-एक जैसी आयुस्थिति तेतीस सागरोपम की होती है ॥ २४४ ॥

The maximum and minimum life-span of gods in the Sarvarthasiddha great celestial vehicle is same, thirty-three Sagaropam. (244)

जा चेव उ आउठिई, देवाणं तु वियाहिया ।  
सा तेसिं कायठिई, जहन्नुक्कोसिया भवे ॥ २४५ ॥

देवों की (उपर्युक्त गाथाओं में) जो आयुस्थिति बताई गई है, वही उनकी जघन्य और उत्कृष्ट कायस्थिति होती है ॥ २४५ ॥

The maximum and minimum life-span for the body-type of gods mentioned in aforesaid verse is same as their respective life-spans. (245)

अणन्तकालमुक्कोसं, अन्तोमुहुत्तं जहन्नयं ।  
विजहंमि सए काए, देवाणं हुज्ज अन्तरं ॥ २४६ ॥

देवों का अपने देव शरीर को छोड़कर पुनः देव शरीर प्राप्त करने में जो काल का व्यवधान-अन्तर होता है वह उत्कृष्ट रूप से अनन्तकाल का तथा जघन्य रूप से अन्तर्मुहूर्त का है ॥ २४६ ॥

The maximum intervening period between once leaving the body-type (divine body), (taking rebirth in other body-types and moving in cycles of rebirth as other body-types) and again taking rebirth in the same body-type (divine body) is infinite time and the minimum is one Antarmuhurt. (246)

एएसिं वण्णओ चेव, गन्धओ रसफासओ ।  
संठाणादेसओ वा वि, विहाणाइं सहस्सओ ॥ २४७ ॥

इन सभी देवों के—वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से हजारों प्रकार हो जाते हैं ॥ २४७ ॥

These divine beings are also of thousands of kinds with regard to colour, smell, taste, touch and constitution. (247)

**उपसंहार और साधक को निर्देश**

संसारत्था य सिद्धा य, इइ जीवा वियाहिया ।  
रूविणो चेवऽरूवी य, अजीवा दुविहा वि य ॥ २४८ ॥

संसारस्थ (संसारी) तथा सिद्ध-इन दोनों प्रकार के जीवों का कथन किया गया है। साथ ही रूपी और अरूपी दोनों प्रकार के अजीवों का भी वर्णन हो गया ॥ २४८ ॥

**Conclusion and directions**

This concludes the description of both worldly and liberated souls. At the same time this also concludes the description of non-life (matter) with and without form. (248)



इइ जीवमजीवे य, सोच्चा सहहिऊण य।

सव्वनयाण अणुमए, रमेज्जा संजमे मुणी ॥ २४९ ॥

इस जीव और अजीव की व्याख्या को सुनकर, उन पर श्रद्धा करके सभी प्रकार की ज्ञान व क्रिया, नयों से अनुमत (नैगम आदि सर्व नयों से अनुमत-सत्यतः प्रमाणित) संयम में मुनि रमण करे ॥ २४९ ॥

Having listened to the definitions of soul (life) and non-soul (matter) substances that are in accordance with rules of logic and resting faith in the same, the ascetic should sincerely indulge in practice of restraint. (249)

**संलेखना : साधक की अन्तिम साधना**

तओ बहूणि वासाणि, सामण्णमणुपालिया।

इमेण कमजोगेण, अप्पाणं संलिहे मुणी ॥ २५० ॥

इसके उपरान्त बहुत वर्षों तक श्रमणधर्म का पालन करके मुनि इस क्रम योग से आत्मा की संलेखना (विषय-कषायादि विकारों की क्षीणता) करे ॥ २५० ॥

**Samllekhana : The ultimate vow**

After this, following the ascetic code for many years the ascetic should cleanse his soul (destroy passions and fondness for sensual pleasures) by observing the ultimate vow of *Samllekhana* in the following sequence. (250)

बारसेव उ वासाइं, संलेहुक्कोसिया भवे।

संवच्छरं मज्झिमिया, छम्मासा य जहन्निया ॥ २५१ ॥

बारह वर्ष की संलेखना उत्कृष्ट, एक वर्ष की मध्यम और जघन्य संलेखना छह मास की होती है ॥ २५१ ॥

Maximum duration of the ultimate vow is of twelve years, the medium is of one year and the minimum is of six months. (251)

पढमे वासचउक्कम्मि, विगईनिज्जूहणं करे।

बिइए वासचउक्कम्मि, विचित्तं तु तवं चरे ॥ २५२ ॥

पहले चार वर्षों में दूध-दही-घी-तेल आदि विकृति कारक पदार्थों का त्याग करे तथा दूसरे चार वर्षों में विविध प्रकार के तपों का आचरण (तपश्चरण) करे ॥ २५२ ॥

During the first four years, the ascetic should renounce the passion causing (harmful) food like milk, curd, *ghee* (butter-oil), oil etc. In the following four years (5<sup>th</sup> to 8<sup>th</sup>) he should indulge in various austerities. (252)

एगन्तरमायामं, कट्टु संवच्छरे दुवे।

तओ संवच्छरद्धं तु, नाइविगिट्ठं तवं चरे ॥ २५३ ॥

फिर दो वर्षों तक (नवें-दसवें वर्ष में) एकान्तर तप (एक दिन तप, एक दिन पारणा) करके पारणे के दिन आचाम्ल (आयंबिल) करे। फिर ग्यारहवें वर्ष के पहले छह माह में तेला-चौला-पचौला आदि अतिविकृष्ट तप न करे ॥ २५३ ॥



During following two years (in 9<sup>th</sup> and 10<sup>th</sup> year) he should observe *Ekantar-tap* (series of one day fast followed by one day of food intake) with intake of *ayambil* food (eating once in a day food cooked or roasted with a single ingredient even without any salt or other condiments). And then during the first six months of the eleventh year he should not observe rigorous austerities like three-day, four-day, five-day or more day fasts. (253)

तओ संवच्छरद्धं तु, विगिद्धं तु तवं चरे।  
परिमियं चैव आयामं, तंमि संवच्छरे करे ॥ २५४ ॥

तदुपरान्त छह मास तक विकृष्ट तप का आचरण करे। इस संपूर्ण वर्ष में परिमित-पारणे के दिन सीमित आचाम्ल (आयंबिल) करे ॥ २५४ ॥

After that during the next six months of eleventh year, he should observe rigorous austerities. During this whole year on the days of food intake he should eat only *ayambil* food (eating once in a day food cooked or roasted with a single ingredient even without any salt or other condiments). (254)

कोडीसहियमायामं, कट्टु संवच्छरे मुणी।  
मासद्धमासिएणं तु, आहारेण तवं चरे ॥ २५५ ॥

(बारहवें वर्ष में) एक वर्ष तक कोटि सहित-लगातार आचाम्ल (आयंबिल) करके मुनि, पक्ष या मास के आहार से पाक्षिक अथवा मासिक-मासखमण का तप-अनशन करे ॥ २५५ ॥

During the last (twelfth) year, the ascetic should continuously observe austerity of alternative fasting and *ayambil* of fortnight or month long duration (month long fasting followed by month long eating of *ayambil* food etc.). (255)

समाधिमरण में बाधक-साधक तत्व

कन्दप्पमाभिओगं, किब्बिसियं मोहमासुरत्तं च।  
एयाओ दुग्गईओ, मरणम्मि विराहिया होन्ति ॥ २५६ ॥

पाँच प्रकार की भावनाएँ दुर्गति रूप हैं, दुर्गति में ले जाने वाली हैं। ये भावनाएँ हैं—(१) कान्दर्पी, (२) आभियोगिकी, (३) किल्विषिकी, (४) मोही (सम्मोही), और (५) आसुरी। मरण के समय ये भावनाएँ संयम की विराधिका होती हैं ॥ २५६ ॥

Supports and impediments of ultimate vow

Five feelings lead to ignoble existence (rebirth). They are—(1) *kaandarpi*, (2) *aabhiyogiki*, (3) *kilvishiki*, (4) *mohi (sammohi)*, and (5) *aasuri* (elaborated in verses 263-267). At the time of death, these feelings become obstructions to restraint. (256)

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाण हु हिंसगा।  
इय जे मरन्ति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥ २५७ ॥

जो जीव (मरण समय में) मिथ्यादर्शन में अनुरक्त, निदान सहित-निदान से युक्त और हिंसक (हिंसा-भाव वाले) होते हैं—इन भावों में मरण करते हैं, उनके लिए पुनः बोधि-प्राप्ति दुर्लभ होती है ॥ २५७ ॥



The beings, who (at the time of death) are obsessed with wrong belief, ambition and violence and die in that frame of mind; for them regaining of enlightenment becomes rare. (257)

सम्मद्दंसणरत्ता, अनियाणा सुक्कलेसमोगाढा ।  
इय जे मरन्ति जीवा, सुलहा तेसिं भवे बोही ॥ २५८ ॥

जो जीव सम्यग्दर्शन में अनुरक्त हैं, निदान (आगामी भोगाकांक्षा) से रहित हैं, शुक्ललेश्या में अवगाढ़ (निमग्न) हो जाते हैं तथा इस प्रकार (इन भावों में) मरण प्राप्त करते हैं, उनके लिए पुनः बोधि-प्राप्ति सुलभ होती है ॥ २५८ ॥

The beings who (at the time of death) are keenly involved in right faith, are devoid of ambition, become resplendent with white soul complexion and die in that frame of mind; for them regaining of enlightenment becomes easy. (258)

मिच्छादंसणरत्ता, सनियाणा कणहलेसमोगाढा ।  
इय जे मरन्ति जीवा, तेसिं पुण दुल्लहा बोही ॥ २५९ ॥

जो जीव मिथ्यादर्शन में अनुरक्त, निदान सहित और कृष्णलेश्या में निमग्न होकर मरण को प्राप्त करते हैं, उनके लिए पुनः बोधि की प्राप्ति दुर्लभ होती है ॥ २५९ ॥

The beings that (at the time of death) are obsessed with wrong belief, ambition and get engulfed in black soul complexion; and die in that frame of mind; for them regaining of enlightenment becomes rare. (259)

जिणवयणे अणुरत्ता, जिणवयणं जे करेन्ति भावेण ।  
अमला असंकिलिद्धा, ते होन्ति परित्तसंसारी ॥ २६० ॥

जो जीव (अन्तिम समय तक) जिन-वचनों में अनुरक्त रहते हैं, जिनेन्द्र भगवान के वचनों के अनुसार भावपूर्वक आचरण करते हैं, वे निर्मल और राग-द्वेष आदि से असंकलिष्ट (क्लेशयुक्त भावों से रहित) रहकर परिमित संसारी होते हैं ॥ २६० ॥

The beings who (till the last moment of their life) are engrossed in the word of the Jina, who steadfastly follow the word of the Jina, they remain pure and uncontaminated with vices like attachment and aversion and limit their cycles of rebirth (*samsar*). (260)

बालमरणाणि बहुसो, अकाममरणाणि चेव य बहूणि ।  
मरिहन्ति ते वराया, जिणवयणं जे न जाणन्ति ॥ २६१ ॥

जो जीव जिन-वचनों को नहीं जानते, वे बेचारे बहुत बार बालमरणों और अकाममरणों से मरते रहते हैं ॥ २६१ ॥

Those who are ignorant of the word of the Jina; pitiable persons as they are, they are trapped in the cycles of rebirth and keep on embracing time and again ignorant and unwilling death. (261)

बहुआगमविन्नाणा, समाहिउप्पायगा य गुणगाही ।  
एण्ण कारणेणं, अरिहा आलोयणं सोउं ॥ २६२ ॥



जो बहुत से आगमों के ज्ञाता (बहुश्रुत), समाधि (हृदय में सुख-शांति) उत्पन्न करने वाले तथा गुणग्राही होते हैं, वे अपने इन्हीं गुणों के कारण आलोचना सुनने के योग्य होते हैं ॥ २६२ ॥

Those who are scholars of numerous canons, who are capable of infusing serenity and peace (in minds of others), and who are appreciative of virtues (of others), by virtue of these qualities they are worthy of listening to confessions. (262)

**कान्दर्पी आदि अशुभ भावनाओं का स्वरूप**

कन्दर्प-कोक्कुर्याइं तह, सील-सहाव-हास-विगहाहिं।

विम्हावेन्तो य परं, कन्दर्पं भावणं कुणइ ॥ २६३ ॥

जो कन्दर्प-कामवर्द्धक चर्चा-वार्ता, कौत्कुच्च-हास्य-उत्पन्न करने वाली कुचेष्टाएँ, अपने आचरण-स्वभाव-हास्य और विकथाओं से दूसरों को विस्मित करता है—वह कान्दर्पी भावना करता है ॥ २६३ ॥

**Five ignoble feelings**

One, who bewilders other persons with his lewd conversation; ribaldry, buffoonery; comical disposition, behaviour and gossip is said to have embraced *kaandarpi* (salacious) sentiment. (263)

मन्ता-जोगं काउं, भूर्डकम्मं च जे पउंजन्ति।

साय-रस-इडिढ्हेउं, अभिओगं भावणं कुणइ ॥ २६४ ॥

जो (साधक) साता (मन एवं पंचेन्द्रिय विषय-सम्बन्धी सुख-सुविधा) रस (स्वादिष्ट रस) और ऋद्धि (समृद्धि, सिद्धि, प्रसिद्धि) के लिए मंत्र, योग (तंत्र-कुछ विशेष पदार्थों को मिलाकर किया जाने वाला) और भूतिकर्म (मंत्रित करके भस्म देना) का प्रयोग करता है, वह आभियोगिकी भावना का आचरण करता है ॥ २६४ ॥

One (an aspirant), who employs mantra, yoga (*tantra* and other spells with the help of some special material and tools) and potentated ashes, in order to gain mental and sensual pleasures and comforts; wealth, fortune and fame; and to gratify taste-buds, is said to have embraced *aabhiyogiki* (intent of use of mantras, sorcery and black magic to influence and control people) sentiment. (264)

नाणस्स केवलीणं, धम्मायरियस्स संघ-साहूणं।

माई अवणवाई, किब्बिसियं भावणं कुणइ ॥ २६५ ॥

जो ज्ञान का, केवलज्ञानियों का, धर्माचार्यों का, संघ और साधुओं का अवर्णवाद (जो दोष उनमें नहीं है, उनका प्रक्षेप करके निन्दा करना) करता है, वह मायावी-कपटी किल्बिषिकी भावना करता है ॥ २६५ ॥

One who slanders and falsely accuses omniscients, preceptors, religious organization (*sangh*), ascetics and even wisdom is said to have embraced *kilvishiki* (slanderous) sentiment. (265)

अणुबद्धरोसपसरो, तह य निमित्तंमि होइ पडिसेवी।

एएहि कारणोहिं, आसुरियं भावणं कुणइ ॥ २६६ ॥



जो सतत रोष-क्रोध को प्रसारित करता है, निमित्त प्रतिसेवी ( ज्योतिष विद्या का दुष्प्रयोग करना) होता है, वह इन कारणों से आसुरी भावना करता है ॥ २६६ ॥

One, who continuously radiates anger and makes evil use of augury, is said to have embraced *aasuri* (demonic) sentiment. (266)

सत्थग्गहणं विसभक्खणं च, जलणं च जलप्पवेसो य।  
अणायार-भण्डसेवा, जम्मण-मरणाणि बन्धन्ति ॥ २६७ ॥

जो शस्त्र प्रयोग से, विष भक्षण से, आग में जलकर, पानी में डूबकर आत्मघात करता है तथा अनाचार करता है, भांडों जैसी कुचेष्टा करता है (अथवा साध्वाचार से विरुद्ध भाण्ड-उपकरण रखता है) वह (मोही-सम्मोही भावना का आचरण करता हुआ) जन्म-मरणों का बन्धन करता है ॥ २६७ ॥

One who commits suicide by using a weapon, consuming poison, burning himself or drowning; and acts like a clown or uses prohibited ascetic-equipment is said to get trapped into cycles of death and rebirth as a consequence of embracing *mohi* or *sammohi* (obsessive) sentiment. (267)

इइ पाउकरे बुद्धि, नायए परिनिव्वुए।  
छत्तीसं उत्तरज्झाए, भवसिद्धीयसंमए ॥ २६८ ॥

—त्ति बेमि।

इस तरह भव्य जीवों के लिए संमत (प्रिय-इच्छा करने योग्य-इष्ट) छत्तीस श्रेष्ठ अध्ययनों को प्रगट करके समस्त पदार्थों के ज्ञाता सर्वज्ञ-सर्वदर्शी ज्ञातवंशीय भगवान महावीर परिनिवृत्त-मुक्त (निर्वाण को प्राप्त) हुए ॥ २६८ ॥

—ऐसा मैं कहता हूँ।

Thus after revealing (propounding) (aforesaid) thirty-six chapters (of *Uttaraadhyayana Sutra*), which are beneficial for worthy persons, the enlightened, omniscient and all perceiving, Bhagavan Mahavir of Jnata clan attained liberation. (268)

— So I say.

## विशेष स्पष्टीकरण

गाथा ५—पदार्थ के दो रूप हैं—खण्ड और अखण्ड। धर्मास्तिकाय आदि अरूपी अजीव वस्तुतः अखण्ड द्रव्य हैं। फिर भी उनके स्कन्ध, देश, प्रदेश के रूप में तीन भेद किए हैं। धर्मास्तिकाय स्कन्ध में देश और प्रदेश वास्तविक नहीं, बुद्धि-परिकल्पित हैं। एक परमाणु जितना क्षेत्रावगाहन करता है, वह अविभागी विभाग, अर्थात् फिर भाग होने की कल्पना से रहित सर्वाधिक सूक्ष्म अंश प्रदेश कहलाता है। अनेक प्रदेशों से परिकल्पित स्कन्धगत छोटे-बड़े नाना अंश देश कहलाते हैं। पूर्ण अखण्ड द्रव्य स्कन्ध कहलाता है। धर्म और अधर्म अस्तिकाय स्कन्ध से एक हैं। उनके देश और प्रदेश असंख्य हैं। असंख्य के असंख्य ही भेद होते हैं, यह ध्यान में रहे। आकाश के अनन्त प्रदेश होते हैं। लोकाकाश के असंख्य और अलोकाकाश के अनन्त होने से अनन्त प्रदेश हैं। वैसे आकाश स्कन्धतः एक ही है।



गाथा ६—काल को अद्वा-समय कहा है। यह इसलिए कि समय के सिद्धान्त आदि अनेक अर्थ होते हैं। अद्वा के विशेषण से वह वर्तनालक्षण कालद्रव्य का ही बोध कराता है। स्थानांगसूत्र (४/१/२६४) की अभयदेवीय वृत्ति के अनुसार काल का सूर्य की गति से सम्बन्ध रहता है। अतः दिन-रात आदि के रूप में काल अद्वाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र में ही है, अन्यत्र नहीं। काल में देश-प्रदेश की परिकल्पना सम्भव नहीं है, क्योंकि वह निश्चय में समय रूप होने से निर्विभागी है। अतः उसे स्कन्ध और अस्तिकाय भी नहीं माना है।

गाथा ७—समय क्षेत्र-जहाँ समय, आवलिका, पक्ष, मास, वर्ष आदि काल का ज्ञान होता है। जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड तथा अर्ध-पुष्कर द्वीप-समय क्षेत्र अथवा मनुष्य क्षेत्र कहलाते हैं।

गाथा ९—अपरापरोत्पत्ति रूप प्रवाहात्मक सन्तति की अपेक्षा से काल अनादि-अनन्त है। किन्तु दिन, रात आदि प्रतिनियत व्यक्तिस्वरूप की अपेक्षा सादि-सान्त है।

गाथा १०—पुद्गल के स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु चार भेद हैं। मूल पुद्गल द्रव्य परमाणु ही है। उसका दूसरा भाग नहीं होता है, अतः वह निरंश होने से परमाणु कहलाता है। दो परमाणुओं से मिलकर एकत्व परिणति रूप द्विप्रदेशी स्कन्ध होता है। इसी प्रकार त्रिप्रदेशी आदि से लेकर अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्ध होते हैं। पुद्गल के अनन्त स्कन्ध हैं। परमाणु स्कन्ध में संलग्न रहता है, तब उसे प्रदेश कहते हैं और जब वह पृथक् अर्थात् अलग रहता है, तब वह परमाणु कहलाता है।

गाथा १३, १४—पुद्गल द्रव्य की स्थिति से अभिप्राय यह है कि जघन्यतः एक समय तथा उत्कृष्टतः असंख्यात काल के बाद स्कन्ध आदि रूप से रहे हुए पुद्गल की संस्थिति में परिवर्तन हो जाता है। स्कन्ध बिखर जाता है तथा परमाणु भी स्कन्ध में संलग्न होकर प्रदेश का रूप ले लेता है।

अन्तर से अभिप्राय है—पहले के अवगाहित क्षेत्र को छोड़कर पुनः उसी विवक्षित क्षेत्र की अवस्थिति को प्राप्त होने में जो व्यवधान होता है, वह बीच का अन्तर काल।

गाथा १५ से ४६—पुद्गल के असाधारण धर्मों में संस्थान भी एक धर्म है। संस्थान के दो भेद हैं—(१) इत्थंस्थ, और (२) अनित्थंस्थ। जिसका त्रिकोण आदि नियत संस्थान हो, वह इत्थंस्थ कहलाता है, और जिसका कोई नियत संस्थान न हो, उसे अनित्थंस्थ कहते हैं। इत्थंस्थ के पाँच प्रकार हैं—(१) परिमण्डल-चूड़ी की तरह गोल, (२) वृत्त-गेंद की तरह गोल, (३) त्र्यम्ब-त्रिकोण, (४) चतुरस्र-चौकोन, और (५) आयत-बाँस या रस्सी की तरह लम्बा। (चित्र देखें)

पुद्गल के वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श आदि इन्द्रियग्राह्य भाव हैं, अतः उनका वर्णन विस्तार से किया गया है। कृष्णादि वर्ण, गन्ध आदि से भाज्य होते हैं, तब कृष्णादि प्रत्येक पाँच वर्ण २० भेदों से गुणित होने पर वर्ण पर्याय के कुल १०० भंग होते हैं। इसी प्रकार सुगन्ध के २३ और दुर्गन्ध के २३, दोनों के मिलकर गन्ध पर्याय के ४६ भंग होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक रस के बीस-बीस भेद मिलाकर रस पंचक के संयोगी भंग १०० होते हैं। मृदु आदि प्रत्येक स्पर्श के सतरह-सतरह भेद मिलाकर आठ स्पर्श के १३६ भंग होते हैं।

परिमण्डल



वृत्त



त्र्यम्ब



चतुरस्र



आयत





प्रत्येक संस्थान के बीस-बीस भेद मिलाकर संस्थान-पंचक के १०० संयोगी भंग होते हैं। समग्र भंगों की संकलना ४८२ है।

ये सब भंग स्थूल दृष्टि से गिने गये हैं। वस्तुतः तारतम्य की दृष्टि से सिद्धान्ततः देखा जाए तो प्रत्येक के अनन्त भंग होते हैं।

**गाथा ४८**—सिद्ध होने के बाद सब जीव समान होते हैं। यहाँ पर बताये गये सिद्धों के स्त्रीलिंग और पुरुषलिंग आदि अनेक प्रकार पूर्व जन्मकालीन विभिन्न स्थितियों की अपेक्षा से हैं। वर्तमान में स्वरूपतः सब सिद्ध एक समान हैं। केवल अवगाहना का अन्तर है। अवगाहना का अर्थ शरीर नहीं है। अपितु अरूप आत्मा भी द्रव्य होने से अपनी अमूर्त आकृति तो रखता ही है। द्रव्य आकरशून्य कभी नहीं होता। आत्मा आकाश के जितने प्रदेश क्षेत्रों को अवगाहन करता है, उस अपेक्षा से सिद्धों की अवगाहना है।

**गाथा ५६**—सिद्ध लोकाग्र में स्थित हैं, इसका अभिप्राय यह है कि उनकी ऊर्ध्वगमन रूप गति वहाँ तक है। आगे अलोक में गति हेतुक धर्मास्तिकाय का अभाव होने से गति नहीं है।

**गाथा ६४**—पूर्व-जन्म के अन्तिम देह का जो ऊँचाई का परिणाम होता है उससे त्रिभागहीन (एक-तिहाई कम) सिद्धों की अवगाहना होती है। पूर्वावस्था में उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ धनुष की मानी है, अतः मुक्त अवस्था में शुषिर (शरीर के खाली पोले अंश) से रहित आत्म-प्रदेशों के सघन हो जाने से वह घटकर त्रिभागहीन अर्थात् तीन सौ तेतीस धनुष बत्तीस अंगुल रह जाती है और सबसे कम जघन्य (दो हाथ वाले आत्माओं की) एक हाथ आठ अंगुल प्रमाण होती है।

**गाथा ७२**—प्रस्तुत सूत्र में खर पृथ्वी के ३६ भेद बताए हैं, जबकि प्रज्ञापना में ४० भेद गिनाए हैं। इतने ही क्यों, यह तो स्थूल रूप से प्रमुखता की अपेक्षा से गणना है। वैसे असंख्य भेद हैं।

आगमकार ने ३६ भेदों की प्रतिज्ञा की है, जबकि मणि के प्रकारों में चार भेद गणना से अधिक हैं। वृत्तिकार ने इनका उपभेद के रूप में अन्तर्भाव दूसरों में बताया है। पर, किसमें किसका अन्तर्भाव है, यह सूचित नहीं किया है।

**गाथा ९३**—साधारण का अर्थ समान है। जिन अनन्त जीवों का समान-एक ही शरीर होता है, वे साधारण कहलाते हैं। शरीर का एकत्व उपलक्षण है। अतः उनका आहार और श्वासोच्छ्वास भी समान अर्थात् एक ही होता है। 'उपलक्षणं चैतद् आहारानपानयोरपि साधाणत्वात्—सर्वार्थसिद्धिः।'

प्रत्येक वे कहलाते हैं, जिनका शरीर अपना-अपना भिन्न होता है। जो एक का शरीर है, वह दूसरों का नहीं होता। प्रत्येक वनस्पति जीवों की उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की आयु होती है, जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त। साधारण जीवों की जघन्य-उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की ही आयु है।

**गाथा १०४**—पनक का अर्थ सेवाल अर्थात् जल पर की काई है। परन्तु यहाँ कायस्थिति के वर्णन में पनक समग्र वनस्पतिकाय का वाचक है। सामान्य रूप से वनस्पति जीवों की उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तकाल बताई है, जो प्रत्येक और साधारण दोनों की मिलकर है। अलग-अलग विशेष की अपेक्षा से तो प्रत्येक वनस्पति, बादर निगोद और सूक्ष्म निगोद जीवों की असंख्य काल की कायस्थिति है। प्रत्येक की जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट ७० कोटाकोटि सागरोपम है। निगोद की समुच्चय कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल है। बादर निगोद की उत्कृष्ट ७० कोटाकोटि है और सूक्ष्म निगोद की असंख्यात काल। जघन्य स्थिति दोनों की अन्तर्मुहूर्त्त है।





गाथा १०७—तेजस्, वायु और उदार त्रस—ये त्रस के तीन भेद हैं। तेजस् और वायु एकेन्द्रिय हैं, अतः अन्यत्र इनकी गणना पाँच स्थावरों में की गई है। यह पक्ष सैद्धान्तिक है। स्थावर नामकर्म का उदय होने से ये निश्चय से स्थावर हैं, त्रस नहीं। केवल एक देश से दूसरे देश में त्रसन अर्थात् संक्रमण क्रिया होने से तेजस् और वायु की त्रस में गणना की गई है। इसका परिणाम यह हुआ कि त्रस के उदार और अनुदार भेद करने पड़े। आगे चलकर तेजस् और वायु को 'गतित्रस' और द्वीन्द्रिय आदि को त्रसनाम कर्म के उदय के कारण 'लब्धि त्रस' कहा गया। स्थानांगसूत्र (३/२/१६४) में उक्त तीनों को त्रस संज्ञा दी है। श्वेताम्बरसम्मत तत्त्वार्थसूत्र में भी ऐसा ही उल्लेख है। आचारांगसूत्र का प्रथम श्रुतस्कन्ध सर्वाधिक प्राचीन आगम माना जाता है। उसमें यह जीवनिर्णय का क्रम एक भिन्न ही प्रकार का है—पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति, त्रस और वायु।

गाथा १६९—नरक से निकलकर पुनः नरक में ही उत्पन्न होने का जघन्य व्यवधानकाल अन्तर्मुहूर्त्त का बताया है, उसका अभिप्राय यह है कि नारक जीव नरक से निकलकर संख्यात वर्षायुष्क गर्भज तिर्यच और मनुष्य में ही जन्म लेता है। वहाँ से अति क्लिष्ट अध्यवसाय वाला कोई जीव अन्तर्मुहूर्त्त परिणाम जघन्य आयु भोगकर पुनः नरक में ही उत्पन्न हो सकता है।

गाथा १७०—अतिशय मूढ़ता को संमूर्च्छा कहते हैं। संमूर्च्छा वाला प्राणी संमूर्च्छिम कहलाता है। गर्भ से उत्पन्न न होने वाले तिर्यच तथा मनुष्य मनःपर्याप्ति के अभाव से सदैव अत्यन्त मूर्च्छित जैसी मूढ़ स्थिति में रहते हैं।

'गर्भ व्युत्क्रान्तिक' शब्द में व्युत्क्रान्तिक का अर्थ उत्पत्ति है।

गाथा १८०—स्थलचर चतुष्पदों में एकखुर अश्व आदि हैं, जिनका खुर एक है, अखण्ड है, फटा नहीं है। द्विखुर गाय आदि हैं, जिनके खुर फटे हुए होने से दो अंशों में विभक्त हैं। गण्डी अर्थात् कमलकार्णिका के समान जिनके पैर वृत्ताकार गोल हैं, वे हाथी आदि गण्डी पद हैं। नखसहित पैर वाले सिंह आदि सनख पद हैं।

गाथा १८१—भुजाओं से परिसर्पण (गति) करने वाले नकुल, मूषक आदि भुज-परिसर्प हैं तथा उर (वक्ष, छाती) से परिसर्पण करने वाले सर्प आदि उर-परिसर्प हैं।

गाथा १८५—स्थलचरों की उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटि पृथक्त्व तीन पल्योपम की बताई है, उसका अभिप्राय यह है कि पल्योपम आयु वाले तो मरकर पुनः वहीं पल्योपम की स्थिति वाले स्थलचर होते नहीं हैं। मरकर देवलोक में जाते हैं। पूर्व कोटि आयु वाले अवश्य इतनी ही स्थिति वाले के रूप में पुनः उत्पन्न हो सकते हैं। वे भी सात-आठ भव से अधिक नहीं, अतः पूर्व कोटि आयु के पृथक्त्व भव ग्रहण कर अन्त में पल्योपम आयु पाने वाले जीवों की अपेक्षा से यह उत्कृष्ट कायस्थिति बताई है।

गाथा १८८—चर्म की पंखों वाले चमगादड़ आदि चर्म पक्षी हैं और रोम की पंखों वाले हंस आदि रोम पक्षी हैं। समुद्ग अर्थात् डिब्बा के समान सदैव बन्द पंखों वाले समुद्ग पक्षी होते हैं। सदैव फैली हुई पंखों वाले वितत पक्षी कहलाते हैं।



## IMPORTANT NOTES

**Verse 5**—Substance has two forms, divisible and indivisible. *Dharmastikaya* and other formless non-life substances are, in fact, indivisible. However, for convenience of understanding they have been hypothetically divided into aggregates, sections and indivisible units (space-point). The indivisible area of space occupied by an ultimate particle of matter (*paramanu*) is called *pradesh* or space-point. Small and large sections of hypothetical aggregates of these space-points are called sections (*desh*). The undivided substance is called *Skandh*. *Dharmastikaya* and *Adharmastikaya* are unitary *Skandhs*. They have innumerable sections and space-points. There are innumerable divisions of the innumerable too. *Akaash* (space) has infinite space-points but it is a unitary *Skandh*.

**Verse 6**—*Addha-samaya* is the term used here for *kaal* (time). This is because the word *samaya* has many different meanings including 'principle'. By adding the prefix *addha* it specifies the entity time having the attribute of 'passing'. According to Abhayadev's commentary (*Vritti*) of *Sthananga Sutra* (4/1/264) *kaal* (time) is associated with the movement of the sun. As such its manifestation in the form of night, day etc. is limited to the area of humans, the two and a half continents and nowhere else. The time entity has no scope of physical sections and space-points because in absolute terms it is just time and without physical division. That is why it is not considered an aggregate or *astikaaya* (conglomerative ontological category according to Jain philosophy).

**Verse 7**—*Samaya Kshetra*—The area where there is awareness of units of time including *Samaya*, *Avalika*, fortnight, month, year etc. The two and a half continents of human habitation are called *Samaya Kshetra* (Area of Time) or *Manushya Kshetra* (Area of Humans). The two and a half continents are *Jambu Dweep*, *Dhatki Khand* and *Ardha Pushkar Dweep*.

**Verse 9**—Time is also said to be beginningless, endless and eternal with regard to its continuous flow but with regard to particularity (day, night etc.) it has a beginning and an end too.

**Verse 10**—There are four physical divisions of matter—*Skandh* (aggregate), *desh* (section), *pradesh* (ultimate section), and *paramanu* (ultimate particle). The basic constituent of matter is ultimate particle, which is indivisible. An aggregate of two ultimate particles is bisectonal aggregate (*skandh* having two *pradesh*). This combination extends from two to three to infinite sections. Matter has infinite aggregates. Ultimate particle in its aggregate state is called ultimate section (*pradesh*) and ultimate particle (*paramanu*) in its free existence.

**Verse 13, 14**—The life of matter means the span of its stable existence in terms of form and space. After a lapse of a minimum period of one *Samaya* and maximum of innumerable time it changes its physical form (disintegrates or acquires some more particles) and/or changes its place of existence.

Intervening period means the time taken to regain the same form and/or space of existence after losing it once.

**Verse 15 to 46**—One of the distinguishing attributes of matter is constitution (*samsathan*). This constitution has two types—(i) specific, and (ii) unspecific. Specific constitution includes defined shapes like triangle and unspecific includes any undefined shape. Specific constitution has five types—(i) *parimandal* or circular like a ring, (ii) *vritta* or spherical like a ball, (iii) *trayansra* or triangular (and tetrahedron), (iv) *chaturasra* or square (and cube), and (v) *aayat* or rectangle (and hexahedron).



Colour, taste, smell, touch and the like are sensually conceivable attributes of matter and as such these have been described in detail. The attributes of 5 colours including black are further divisible by 20 other attributes including those of smell making a total of  $20 \times 5 = 100$  attributes. In the same way there are 46 attributes of smell ( $2 \times 23 = 46$ ), 100 of taste ( $5 \times 20$ ), 136 of touch ( $8 \times 17$ ) and 100 of constitution ( $5 \times 20$ ). This makes a total of 482 attributes.

These are gross divisions. If taken minutely in detail there are infinite such attributes.

**Verse 48**—After becoming Siddha (perfected souls) all souls are equal. The genders and other attributes mentioned here are in relation to various states from the past birth. With regard to the present incarnation all liberated souls are same. The only difference is in space occupation (*avagahana*). Being a substance a soul, though formless, keeps its formless shape. This is because a substance is never without shape. The space occupation of Siddhas is defined as the space occupation of the specific soul.

**Verse 56**—The Siddhas are located at the edge of the universe (*Lok* or occupied space). This means that their upward movement (in relation to the world of humans) stops there. Beyond that point exists *Alok* or unoccupied space; in absence of the entity of motion (*Dharmastikaya*) there is no movement there.

**Verse 64**—The space occupation of Siddhas, in terms of height is, two-third that of the preceding birth. The maximum height of preceding birth is said to be 500 Dhanush and minimum to be two yards. In the liberated state the soul space-points get compacted to remove any empty space; this makes the space occupation two-third of the original. Accordingly the maximum and minimum space occupation of liberated souls is 32 Anguls more than 333 Dhanush and eight Anguls more than one yard respectively.

**Verse 72**—Here the hard clay is said to be of 36 types, whereas *Prajnapana Sutra* mentions 40 types. In fact there are innumerable types; here it is only gross classification.

The author of Agam mentions 36 types. There are four additional classes as types of gems. The commentator (*Vritti*) has stated their inclusion as sub-types in other types but has not specified which is included in which.

**Verse 93**—*Sadharan* means common or same. The infinite numbers of souls occupying the same body are called *sadharan shariri*. As sameness is a basic attribute their food intake and respiration is also same.

*Pratyek* are those having individual bodies. The maximum life-span of individual plant-bodied beings is ten thousand years and minimum is Antarmuhurt. As regards the *sadharan* plant-bodied beings, the maximum and minimum life-span are same, Antarmuhurt.

**Verse 104**—*Panak* means water weeds or moss. But here in context of life-span of body-type it represents the whole range of plant-bodied beings. The maximum general life of body-type, said to be infinite time, is jointly for both *pratyek* and *sadharan* classes. As a group body-type life of *pratyek* plant-bodied beings and gross and minute dormant beings (*nigod*) is uncountable time. That of *pratyek* plant-bodied beings is minimum Antarmuhurt and maximum 70 Koti-koti Sagaropam. That of dormant beings (*nigod*) is minimum Antarmuhurt and maximum infinite time. The maximum life of gross dormant beings is 70 Koti-koti Sagaropam and that of minute dormant beings is uncountable time; minimum being Antarmuhurt in both cases.



**Verse 107**—Mobile beings are of three classes—fire-bodied, air-bodied and gross. The first two are one-sensed beings, as such principally they have been included in five immobile beings. This is because they are born due to fruition of *sthavar naam-karma* (the immobile body-type determining *karma*). As they shift from one section to another, fire and air-bodied beings have also been included in the class of mobile beings. This necessitated division of immobile beings into gross and minute. In due course fire-bodied and air-bodied beings were called *gati-tras* (mobile due to movement) and two-sensed beings were called *labdhi-tras* (mobile due to acquired nature as they acquire the property of movement due to fruition of *tras naam-karma* or the mobile body-type determining *karma*). *Sthananga Sutra* defines these three only as mobile beings (3/2/164). The classification of bodied life has been given in an altogether different way in *Acharanga Sutra*, the oldest Agam,—earth-bodied, fire-bodied, plant-bodied, mobile-bodied and air-bodied.

**Verse 169**—The minimum intervening period for an infernal being moving out from hell and returning to hell is said to be one Antarmuhurt. This indicates that on leaving hell an infernal being takes rebirth only as a placental animal or human and due to its extremely evil intent, it can get reborn in hell again after completing the minimum life-span of one Antarmuhurt in that genus.

**Verse 170**—*Sammurchha* means extreme stupor. A being with extreme stupor is called *sammurchhim*. In absence of fully developed mind the asexually born animals and humans are always in a state of extreme stupor.

In the term *garbha-vyutkrantik*, *vyutkrantik* means origin.

**Verse 180**—Among terrestrial quadruped animals solid-ungular or single or undivided hoofed animals are like horse. Bi-ungular or split hoofed animals are like cow. Multi-ungular or solid circular footed animals are like elephant and camel and nailed animals with claws and nails are like lion.

**Verse 181**—Those moving with the help of limbs (*bhuja*) are limbed reptilian animals (*bhujparisarp*) like crocodile and lizard. And those moving with the help of breast (*ur*) are non-limbed reptiles (*ur-parisarp*).

**Verse 185**—The maximum life of body-type for terrestrial animals is said to be Purva koti *prithakatva* (20 to 90 million Purvas) more than three Palyopam. This is with regard to the beings with a life-span of Purva koti *prithakatva* (20 to 90 million Purvas) because those with a life-span of three Palyopam never get reborn as animals; they get reborn only as divine beings. Those with a life-span of Purva koti *prithakatva* can get reborn as animals of the same life-span but that too only for seven or eight rebirths, not more.

**Verse 188**—Animals with membranous wings are like bats. Those with feathered wings are like swans. Those with box shaped wings, which are always closed, are like *Samudga* bird (mythical bird). Those with outspread wings are like *Vitat* birds (mythical bird).



## प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी. म.

प्रस्तुत सूत्र के सम्पादक प्रवर्तक श्री अमर मुनि जी, श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमणसंघ के एक तेजस्वी संत हैं।

जिनवाणी के परम उपासक गुरुभक्त श्री अमर मुनि जी का जन्म वि. सं. १९९३ भाद्रपद सुदि ५ (सन् १९३६), क्वेटा (बलुचिस्तान) के मल्लोत्रा परिवार में हुआ।

११ वर्ष की लघुवय में आप जैनागम रत्नाकर आचार्यसम्राट् श्री आत्माराम जी महाराज की चरण-शरण में आये और आचार्यदेव ने अपने प्रिय शिष्यानुशिष्य भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज को इस रत्न को तराशने/सँवारने का दायित्व सौंपा। गुरुदेव श्री भण्डारी जी महाराज ने अमर को सचमुच अमरता के पथ पर बढ़ा दिया। आपने संस्कृत-प्राकृत-आगम-व्याकरण-साहित्य आदि का अध्ययन करके एक ओजस्वी प्रवचनकार, तेजस्वी धर्म-प्रचारक तथा जैन आगम साहित्य के अध्येता और व्याख्याता के रूप में जैन समाज में प्रसिद्धि प्राप्त की।

आपश्री ने भगवती सूत्र (४ भाग), प्रश्नव्याकरण सूत्र (२ भाग), सूत्रकृतांग सूत्र (२ भाग) आदि आगमों की सुन्दर विस्तृत व्याख्याएँ की हैं।

## Pravartak Shri Amar Muniji M.

The editor-in-chief of this Sutra, is a brilliant ascetic affiliated with Shri Vardhaman Sthanakvasi Jain Shraman Sangh.

A great worshiper of the tenets of Jina and a devotee of his Guru, Shri Amar Muni Ji was born in a Malhotra family of Queta (Baluchistan) on Bhadva Sudi 5th in the year 1993 V.

He took refuge with Jainagam Ratnakar Acharya Samrat Shri Atmaram Ji M. at an immature age of eleven years. Acharya Samrat entrusted his dear grand-disciple, Bhandari Shri Padmachandra Ji M. with the responsibility of cutting and polishing this raw gem. Gurudev Shri Bhandari Ji M. indeed, put Amar (immortal) on the path of immortality. He studied Sanskrit, Prakrit, Agams, Grammar and Literature to gain fame in the Jain society as an eloquent orator, an effective religions preacher and a scholar and interpreter of Jain Agam literature.

He has written nice and detailed commentaries of Bhagavati Sutra (in four parts), Prahsnavyakaran Sutra (in two parts), Sutrakritanga Sutra (in two parts) and some other Agams.



# सचित्र आगम साहित्य

 <p>सचित्र <b>उत्तराध्यायन सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>UTTARADHYANA SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>दशवैकालिक सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>DASAVAKALIKA SUTRA</b> SHRI AMAR MUNI</p>	 <p>सचित्र <b>अनुयोगद्वार सूत्र</b> श्री अमर मुनि 1 <b>Anuyog-dvar Sutra</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>अनुयोगद्वार सूत्र</b> श्री अमर मुनि 2 <b>Anuyog-dvar Sutra</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री इफराक दन्त एवं अमलतेश्रपाता दशा सूत्र</b> श्री अमर मुनि Ipharak-danta And Amaltesrapata Dasha Sutra Shri Amar Muni</p>
---	---	--	---	--

 <p><b>ACHARANGA SUTRA</b> सचित्र <b>आचारंग सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>Acharanga Sutra</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>आचारंग सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>Acharanga Sutra</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>स्थानंग सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>STHANANGA SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>स्थानंग सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>STHANANGA SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री नन्दी सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>SRI NANDI SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री नन्दी सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>SRI NANDI SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>
---	---	--	--	--	---

 <p>सचित्र <b>औपपातिक सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>AUPAPATIK SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र</b> श्री अमर मुनि 1 <b>Jnata Dharma Kathanga Sutra</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र</b> श्री अमर मुनि 2 <b>Jnata Dharma Kathanga Sutra</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>रैपसेनिया सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>Rai-Paseniya Sutra</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री इश्वकेश प्रश्नपति सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>SRI ISHWAKED PRASNAPTI SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री कल्प सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>KALPA SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>
--	--	--	--	--	---

 <p>सचित्र <b>प्रश्नवाक्यकरण सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>PRASHNAVYAKARAN SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>निरयावलीका विपाक सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>NIRAYAVALIKA AND VIPAKA SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री छेद सूत्र</b> श्री अमर मुनि ILLUSTRATED <b>Shri Chhed Sutra</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री भगवती सूत्र</b> श्री अमर मुनि 1 <b>SHRI BHAGWATI SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री भगवती सूत्र</b> श्री अमर मुनि 2 <b>SHRI BHAGWATI SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>	 <p>सचित्र <b>श्री भगवती सूत्र</b> श्री अमर मुनि 3 <b>SHRI BHAGWATI SUTRA</b> Shri Amar Muni</p>
--	---	--	---	--	---

PUBLISHERS & DISTRIBUTORS :

**Padma Prakashan**  
Padma Dham, Narela Mandi,  
Delhi - 110 040



**Shree Diwakar Prakashan**  
A-7, Awagarh House, M. G. Road, Agra - 282 002  
Phone : 0562-2851165, 9319203291  
e-mail : sansuman21@rediffmail.com